विज्ञान

अक्टूबर १९५५
तुला २०१२

भाग ८२
अंक १

वार्षिक मूल्य
चार रुपए

प्रति अंक
छः आने

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८१ | तुला २०१२; अक्टूबर १९५५ | संख्या ७

डा० अमर नाथ झा का निधन

विज्ञान परिषद् के आजीवन सदस्य डा० अमरनाथ झा का २ सितम्बर १९५५ को पटना में स्वर्गवास हो गया। इसके लिए विज्ञान परिवार को अत्यन्त दुख है। डा० झा का परिषद् से पारिवाकि संबन्ध सा था। आपके पिता स्वर्गीय डा० गंगा नाथ झा विज्ञान परिषद् के संस्थापकों में से थे। डा० अमरनाथ झा ने परिषद् के संस्थापक प्रो० सालिगराम भार्गव की मृत्यु पर "विज्ञान" के स्मृति अंक में अपना जो संस्मरण लिखा था, उसमें चालीस वर्षों पूर्व परिषद् की स्थापना से लेकर अंत समय तक स्व० प्रो० भार्गव जी से सम्पर्क रहने का विशेष उत्लेख किया था। गत वर्ष परिषद् के वार्षिक अधिवेशन में डा० अमरनाथ ने प्रमुख आतिथि रूप में भाषण भी दिया था।

डा० अमरनाथ का जीवन शिक्षा और लोकसेवा के क्षेत्र में चिर-स्मरणीय रहेगा। आप मृत्यु के समय लोक-सेवा आयोग, विहार के सभापति थे। इसके पूर्व उत्तर प्रदेश के लोक सेवा आयोग के भी सभापति १९४८ ई० के १९५३ तक रह चुके थे। इस अवधि में कुछ समय तक काशी विश्व विद्यालय के उपकुलपति थे। प्रयाग वि० वि० के उपकुलपति तो तीन बार निर्वाचित हुए थे और १९३८ से १९४७ तक इस पद पर आसीन रहे।

डा० अमर नाथ झा का जन्म २५ फरवरी १८९७ ई० को दरभंगा (बिहार) के पहिटोला ग्राम में मैथिल ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका परिवार विद्वत्ता और विद्याध्ययन के लिए प्रसिद्ध था। इनकी शिक्षा गव० हाई स्कूल और म्योर सेंट्रल कालेज, इलाहाबद में हुई।

डा० अमरनाथ झा प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व यशस्वी उपकुलपति डा० गंगा नाथ झा के द्वितीय पुत्र थे। अंग्रेजी में एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर १९१७ ई० में म्योर सेंट्रल कालेज में अंग्रेजी के अध्यापक नियुक्त हुए। १९३० में ये अंग्रेजी के प्रोफेसर नियुक्त हुए। उस पद पर रहने के बाद अपने पिता की मृत्यु पर ये उपकुलपति निर्वाचित हुए।

डा० अमरनाथ बड़े ही साहित्य-प्रेमी थे। आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति का पद भी ग्रहण किया था। आपका परिवार प्रतिष्ठा-सम्पन्न है। आपके सहोदरों में श्री० ए० एन० झा उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव हैं, एक भाई मानभूमि (बिहार) के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट हैं। एक भाई फैजाबाद में जिला इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स हैं।

डा० झा की मृत्यु से हमारे समाज की अवश्य ही भारी क्षति हुई है जिसकी पूर्ति शीघ्र संभव नहीं है।

केन्द्रीय सरकार की गणितीय शब्दावली

डा० ब्रजमोहन एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०

हमारी केन्द्रीय सरकार ने वर्ष १९५०-५१ में एक पारिभाषिक शब्दावली मंडल बनाया। उक्त मंडल के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न विषयों की विशेषज्ञ समितियाँ बनीं। इन समितियों ने अपने-अपने विषयों में सर्वप्रथम प्रायोगिक शब्दावलियाँ बनाईं और जनमत जानने के लिये उन शब्दावलियों को सम्बद्ध विषय के विद्वानों और विशेषज्ञों के पास भेजा। उक्त सज्जनों ने शब्दावलियों पर अपनी सम्मति दी। इन आलोचनाओं के आधार पर विशेषज्ञ समितियों ने अपनी शब्दावलियों को दुहराया। गणित की प्रायोगिक शब्दावली को देखने का हमको भी अवसर मिला था और हमने अपनी टीका विशेषज्ञ समिति के पास भेज दी थी। अब समितियों ने अपनी शब्दावलियों को अन्तिम रूप दे दिया है। गणित की शब्दावली इस समय हमारे सम्मुख है। इसमें संदेह नहीं कि गणितीय समिति ने अपनी शब्दावली पर पुनर्विचार किया है और उसके बहुत से दोष दूर कर दिये हैं। किन्तु फिर भी उनकी अन्तिम शब्दावली में कुछ शब्द ऐसे हैं जो हमें सर्वथा अनुपयुक्त जंचते हैं। यहाँ हम इन्हीं का उल्लेख करेंगे :—

१. समिति ने गणितीय शब्दावली के पृष्ठ १० पर लिखा है कि उन्होंने कुछ लंबे पदों के रूप संक्षिप्त कर दिये हैं जैसे :—

अंग्रेजी पद	पुराने समानार्थी	संक्षिप्त रूप
Co-factors	सहगुणनखंड	सहखंड
Continued proportion	विततसमानुपात	विततानुपात
Parallelogram	समानान्तर चतुर्भुज	समान्तर चतुर्भुज

किन्तु बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका संक्षेपण सरलता से हो सकता था परन्तु नहीं किया गया है। हम यहाँ दो चार उदाहरण देते हैं :—

अंग्रेजी पद	शब्दावली के समानार्थी	हमारे समानार्थी
Equilateral triangle	समबाहु त्रिभुज	समत्रिभुज
Isosceles triangle	समद्विबाहु त्रिभुज	द्विसम त्रिभुज
Scalene triangle	विषमबाहु त्रिभुज	विषम त्रिभुज

हम यह जानना चाहते हैं कि यदि उपरिलिखित शब्दों में से बाहु शब्द निकाल दिया जाता और ऊपर दिये हुये पर्याय स्वीकार कर लिये जाते तो कौन सी हानि हो जाती। लाभ तो प्रत्यक्ष ही है कि शब्दों का संक्षेपण हो जाता।

एक बात और भी आश्चर्य की है। पृष्ठ ४७ पर तो Scalene triangle का पर्याय दिया हुआ है, 'विषमबाहु त्रिभुज'। किन्तु पृष्ठ ३७ से प्रतीत होता है कि उक्त पद का समानार्थी 'विषमभुज त्रिभुज' है।

हम यह मानते हैं कि प्राचीन शब्द ऋतुरंजित हो जाते हैं और उनमें एक प्रकार की पवित्रता आ जाती है। किन्तु आवश्यकतानुसार उनका लाघव या परिवर्तन भी करने में अत्यधिक संकोच नहीं करना चाहिये। Common

के लिये प्राचीन शब्द उभयनिष्ठ और सर्वनिष्ठ थे। गणितीय शब्दावली समिति ने इन दोनों कठिन शब्दों को हटाकर इनके स्थान पर 'सार्व' और 'सामान्य' जैसे सरल और कर्णप्रिय शब्दों को निर्धारित किया है। हमारे विचार में समिति का यह कार्य स्तुत्य है। किन्तु फिर Vertical के पर्याय 'ऊर्ध्वाधर' जैसे जबड़ातोड़ शब्द को क्यों अछूता रहने दिया। यदि इसके स्थान पर कोई अन्य शब्द उपलब्ध ही न होता तब तो विवशता थी। किन्तु अंग्रेजी संस्कृत कोषों में Vertical के तीन पर्याय दिये हैं:—

ऊर्ध्वाधर, ऊर्ध्व, ऊर्ध।

फिर क्यों न इनमें से सबसे सरल शब्द 'ऊर्ध' को अपना लिया जाय।

यदि समिति ने समानान्तर चतुर्भुज को ज्यों का त्यों रहने दिया होता तो हम समझते कि प्राचीन पद का आदर किया। किन्तु उन्होंने उसका 'समान्तर चतुर्भुज' करके संक्षेपण कर दिया है। हम स्वयं संक्षेपण सिद्धान्त के कायल हैं। किन्तु क्या उक्त पद को और भी संक्षिप्त करके 'समान्तरभुज' अथवा 'समानाभुज' नहीं बनाया जा सकता। Parallelogram अंग्रेजी का एक शब्द है। यदि इसके लिये हिन्दी में एक ही शब्द से काम चल जाय तो क्यों दो शब्दों के पद का प्रयोग किया जाय। जब शब्दावली समिति Parallelopiped का पर्याय बनाने बैठेगी तो कदाचित समान्तर चतुर्भुज की ही भांति 'समान्तर षट्फलक' बनायेगी। इन दोनों शब्दों को भी मिलाकर एक शब्द 'समान्तरफलक' क्यों न बना दिया जाय।

इसी प्रसंग में दो एक शब्द और भी उल्लेखनीय हैं। समिति की शब्दावली में Concentric circles का पर्याय 'एककेन्द्र वृत्त' दिया है। क्या इस पद के उच्चारण में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। जब Concurrent का पर्याय 'संगामी' स्वीकार कर लिया गया तब Concentric circles के लिये 'संकेन्द्र' वृत्त स्वीकार करने में क्या आपत्ति हो सकती है। 'संकेन्द्र' का उच्चारण बहुत सरल और कर्णप्रिय है। एक केन्द्र का उच्चारण कदापि सरल नहीं कहा जा सकता।

संस्कृत में सं और सम दोनों के अर्थ बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। अतः यदि कहीं पर सम के बदले सं लेने से शब्द सरल बन जाता हो तो कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता कि सम के स्थान पर सं का प्रयोग क्यों न किया जाय। हम यहां इस प्रकार के दो उदाहरण देते हैं:—

अंग्रेजी शब्द	समिति का पर्याय	हमारा सुझाव
Symmetry	सममिति	सम्मिति
Collinear	समरेख	संरेख

यदि हम सं को एक का समानार्थी मान लें और सम को बराबर का तो इन दोनों उपसर्गों के प्रयोग में अन्तर भी पड़ जायगा। जैसे Concurrent के लिए संगामी और Homogeneous के लिए समघात और समांग।

Bisection का पर्याय 'समद्विभाजन' प्राचीन है। किन्तु शब्द 'अर्द्धन' भी काफी पुराना पड़ चुका है और समद्विभाजन से सरल है। इसी अर्थ वाला एक प्रचलित शब्द 'अधियाना' भी है। हमारे विचार में Bisection के लिये यह तीनों पर्याय देने चाहिये।

एक बात और भी है। न जाने कितने वर्ष से गणितीय पुस्तकों में निम्नलिखित पर्याय प्रयुक्त होते आ रहे हैं—

Abscissa भुज

Ordinate कोटि

फिर न जाने क्या समझकर समिति ने 'भुज' का 'भुजांक' कर दिया और 'कोटि' का 'कोटि अंक'। एक ओर तो समिति शब्दों का संक्षेपण करती है, दूसरी ओर शब्दों को और दीर्घकाय बनाती है। जब भुज और कोटि से काम चल सकता है तो इन शब्दों में एक अनावश्यक शब्द अंक और क्यों जोड़ा जाय। यदि इस सिद्धान्त को मान लिया जाय तो क्या 'जीवा' का 'जीवांक' होना चाहिये और 'चाप' का 'चापांक'।

२. समिति की शब्दावली में Integer, Integral number और Perfect number तीनों का पर्याय पूर्ण संख्या दिया है। आश्चर्य है क्या गणित के विद्वानों को भी इस बात की याद दिलानी पड़ेगी कि Perfect number किसे कहते हैं। २८ एक Perfect number है क्योंकि २८ के भाजक हैं १,२,४,७,१४, जिनका जोड़ भी २८ है। क्या Perfect number और Integral number दोनों के लिये एक समानार्थी से काम चल सकता है? यदि हम यह लिखें कि

२८ एक पूर्ण संख्या है

तो इसका क्या अर्थ निकलेगा? २८ एक Integral number है या एक Perfect number है।

शब्दावली में Whole number नहीं दिया गया है। यदि यह पद भी दे दिया जाता तो अच्छा था। इसके अतिरिक्त Integral number के लिये भी समस्त स्थानों पर 'पूर्ण संख्या' से काम नहीं चलेगा। यदि हम यह कहें कि

31 is an integral number

तो इसका अनुवाद हो सकता है—

३१ एक पूर्ण संख्या है।

किन्तु यदि हम यह कहना चाहें कि

An integral number of roots obeys the rule

तो क्या इसका यह अनुवाद ठीक होगा कि

मूलों की एक पूर्ण संख्या नियम का पालन करती है।

इस वाक्य में पूर्ण संख्या से Total number का आभास मिलता है। इससे कहीं अच्छा हो यदि हम उक्त वाक्य का अनुवाद इस प्रकार करें :—

मूलों की एक पूर्णाङ्क संख्या नियम का पालन करती है।

हमारे विचार में तत्सम्बन्धी शब्दावली इस प्रकार की होनी चाहिये :—

Integer पूर्णाङ्क
Integral number पूर्णाङ्क संख्या
Perfect number संपूर्ण संख्या
Whole number पूर्ण संख्या

३. शब्दावली में Corresponding का पर्याय दिया है संगत। यह माना कि यह शब्द बहुत सी गणितीय पुस्तकों में आ चुका है। किन्तु प्रश्न यह है कि अब इससे काम चल सकता है या नहीं। 'न्यायसंगत' और 'तर्कसंगत' जैसे शब्द बहुत प्राचीन हैं। इनमें संगत का अर्थ Corresponding नहीं बल्कि Consistent है। यदि केवल इतना ही होता तो हम इस पर्याय का विरोध नहीं करते। किन्तु समस्या यह है कि हमें किसी दिन Principle of correspondence और Principle of Consistency के लिये भी पर्याय निश्चित करने हैं। क्या शब्दावली समिति ने Consistency के लिये कोई और पर्याय सोच रखा है? गणितीय पुस्तकों में "असंगति प्रदर्शन" की विधि बहुत बार काम में आती है। उक्त संदर्भ में भी असंगति Inconsistency का ही पर्याय है। इसके अतिरिक्त

Corresponding शब्द साधारण भाषा में भी प्रयुक्त होता है जैसे Corresponding train. क्या समिति के विचार में उसे 'संगत गाड़ी' कहना चाहिये ?

गणितीय पुस्तकों में With respect to का अनुवाद किया जाता है 'के प्रति' अथवा 'के अनुसार'। यदि हम इन पदों को इस प्रकार निश्चित करदें तो हमारा काम चल जायगा :—

With respect to　　के प्रति
Corresponding to　　के अनुसार ।

यदि यह सुझाव स्वीकार कर लिया जाय तो हमारी शब्दावली इस प्रकार की बनेगी :—

Consistent　　संगत
Consistency　　संगति
Inconsistent　　असंगत
Inconsistency　　असंगति
Corresponding　　अनुसारी
Corresponding train अनुसारी गाड़ी
Correspondence अनुसारिता
To correspond to के अनुसार होना

४. शब्दावली में Supplementary के दो पर्याय दिये गये हैं 'संपूरक' और ऋजुपूरक।' कदाचित 'संपूरक' साधारण अर्थ के लिये और ऋजुपूरक 'ज्यामितीय अर्थ के लिये। क्या ही अच्छा होता यदि यह अन्तर शब्दावली में स्पष्ट कर दिया गया होता ताकि गणितीय पुस्तकों के लेखकों को कोई भ्रम न होता। और भी अच्छा होता यदि दो एक उदाहरण इस प्रकार दे दिये गये होते।

Supplementary　　१. ऋजुपूरक (ज्यामितीय)
　　२. संपूरक

Supplementary angle ऋजुपूरक कोण
Supplementary grant संपूरक अनुदान

यह बात उल्लेखनीय है कि इस शब्द के इस अर्थ का प्रचलित पर्याय 'पूरक' है न कि 'संपूरक।' नित्यप्रति समाचारपत्रों में Supplementary Budget के लिये 'पूरक आय-व्ययक का प्रयोग होता है।

५. शब्दावली के पृष्ठ २० पर Decimal Notation का पर्याय दिया है 'दशमलव लेखन'। किन्तु पृष्ठ ३१ पर Notation के पर्याय हैं 'संकेतन' और 'अंकन पद्धति।' इस असंगति का क्या कारण है ?

६. शब्दावली में Directed का पर्याय दिया है 'सदिश।' अच्छा होता यदि क्रियाओं के पर्याय क्रियाओं में ही दिये गये होते ताकि उनसे और भी शब्द व्युपत्न हो सकते। यदि Directed का पर्याय 'सदिश' है तो Directed to the right का क्या अनुवाद होगा ? हमारे विचार में सदिश Directed का नहीं Vector का पर्याय होना चाहिये।

७. शब्दावली में Correct, Accurate और Exact तीनों के पर्यायों में यथार्थ' प्रयुक्त हुआ है। इस संबंध में निम्नलिखित शब्द विचारणीय हैं। Correct, Accurate, Exact, Precise, True. इनमें True का प्रचलित पर्याय तो 'सत्य' है ही। अंग्रेजी कोषों से पता चलता है कि शेष चारों शब्दों में यथार्थता के परिमाण का अंतर है। प्रत्येक शब्द अपने पूर्वनामी शब्द की अपेक्षा यथार्थता के अधिक समीप है। यदि हम अर्थों के इन सूक्ष्मान्तरों को हिन्दी में भी ला सकें तो बहुत अच्छा हो। शब्दावली में Precise का पर्याय 'सूक्ष्म दिया है। इस शब्द से काम चल सकता है क्योंकि संस्कृत कोषों में 'सूक्ष्म' का एक अर्थ Precise भी किया है। प्राचीन गणितीय पुस्तकों में Close value के लिये 'सूक्ष्म मान' लिखा गया है। Close और Precise में अन्तर है। फिर भी हम सोचते हैं कि 'सूक्ष्म' को कम से कम गणिती

विषयों में Precise का समानार्थी माना जा सकता है। अंग्रेजी के शेष तीनों शब्दों के लिये भी अलग-अलग पर्याय निश्चित हो जायँ तो अच्छा हो। हमारा सुझाव इस प्रकार है:—

Correct	शुद्ध
Accurate	परिशुद्ध
Exact	यथार्थ

परंपरा से शुद्ध Pure का भी पर्यायवादी माना गया है। यदि हम Pure के लिये 'विशुद्ध' और Impure के लिये 'अविशुद्ध' निर्धारित कर दें तो भ्रम की संभावना बिल्कुल न रहे।

८. शब्दावली में Finite का पर्याय दिया है 'परिमिति' और Infinite का 'अनन्त'। Infinite के लिये तो 'अनन्त' बहुप्रचलित हो चुका है। इसको चलने दिया जाय। किन्तु यदि Infinite 'अनन्त' है तो Finite 'सान्त' हुआ न कि 'परिमिति'। जब अंग्रेजी के दोनों शब्द एक ही गुण का भाव और अभाव प्रदर्शित करते हैं तो इस गुण को हिन्दी में भी क्यों न अक्षुण्ण बनाये रखा जाय। इसके अतिरिक्त यदि 'परिमिति' Finite का पर्याय है तो Finiteness को तो 'परिमितता' कहना होगा 'परिमा' नहीं कह सकते। सारी कठिनाई दूर हो जाय यदि 'परिमा' को Bound का पर्याय निर्धारित कर दिया जाय और Finite के लिये 'सान्त' कर दिया जाय।

९. शब्दावली में Identical का समानार्थी दिया है। 'सर्वसम'। यदि दो त्रिभुज सर्वाङ्गसम हों अथवा किसी समीकरण के दोनों पक्ष सर्वथा समान हों तो इन दोनों दशाओं में तो 'सर्वसम' शब्द से काम चल सकता है। किन्तु Identical का एक अर्थ और भी है :—

Point A is identical with point B.

यहाँ यह अर्थ नहीं है कि दोनों विन्दु सब बातों में समान हैं बल्कि यह है कि दोनों विन्दु एक ही हैं। अतएव Identical का एक पर्याय 'अभिन्न' अथवा 'एकात्मक' भी होना चाहिये।

१०. शब्दावली में Literal का अर्थ 'अक्षर' दिया है और Mathematical का 'गणित'। यह किस प्रकार? हमारे विचार में इनके पर्याय इस प्रकार लिखने चाहिये :—

Literal	आक्षरिक, अक्षर—
Mathematical	गणितीय, गणित—

११. शब्दावली में Mean का पर्याय दिया है 'मध्यमान' जिसका वास्तविक अर्थ है Middle value यदि यह पर्याय स्वीकार कर लिया जाय तो Mean value theorem को क्या कहेंगे। इसके अतिरिक्त सांख्यिकी (Statistics) में बहुत से स्थानों पर Mean भी लेना पड़ता है और Middle value भी। इस भ्रम को मिटाने का एक सरल उपाय है कि Middle value को 'मध्यमान' कहें और Mean को 'मध्यक'।

१२. शब्दावली में Depression का पर्याय दिया है 'अवनति' किन्तु Elevation का पर्याय दिया है 'उत्सेध'। ऐसा क्यों? यदि 'उत्सेध' का देना आवश्यक ही था तो 'उत्सेध' और 'उन्नति' दोनों दिये जा सकते थे।

१३. शब्दावली में Barter और Exchange दोनों के लिये एक ही पर्याय "विनिमय" निश्चित किया गया है। यदि Barter को 'अदला बदली' और Exchange को 'विनिमय' कहें तो दोनों के लिये अलग-अलग पर्याय निश्चित हो जायँ।

१४. शब्दावली में Calculation का पर्याय 'गणन' दिया हुआ है। 'जनगणना' और 'मतगणना' में यह

शब्द केवल गिनने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। किंतु Calculation में केवल गिनती ही नहीं करनी होती, जोड़ना, घटाना, गुणा भाग इत्यादि भी करने होते हैं। इसके अतिरिक्त 'चलन कलन' और 'चलराशि कलन में कलन Calculus के लिये प्रयुक्त हुआ है। अतएव उचित तो यही प्रतीत होता है कि Calculation को 'परिकलन' कहा जाय। 'गणना' को उसके साधारण अर्थ 'गिनने' से नहीं हटाया जा सकता। क्योंकि जन-गणना और मतगणना जैसे शब्द तो प्रयोग में आते ही रहेंगे। तब यदि कोई यह कहे कि "तनिक गणना करके तो देखो" तो इसका क्या अर्थ निकलेगा Count या Calculate ?

इसके अतिरिक्त कदाचित Calculating machine के लिये शब्दावली समिति 'गणनयंत्र' निर्धारित करेगी Counting machine का क्या पर्याय होगा ?

१५. एक बात शब्दावली से स्पष्ट नहीं होती। शब्दावली समिति बिन्दुओं और लंबाइयों के लिये रोमन अक्षरों का प्रयोग चाहती है अथवा नागरी अक्षरों का ? शब्दावली के अन्त में जो उदाहरण किये गये हैं उनमें अधिकांश में तो रोमन अक्षरों का ही प्रयोग किया गया है। किंतु खंड ए-के आठवें अनुच्छेद में A और B के लिये क और ख का प्रयोग किया गया है और १६ वें अनुच्छेद में S के स्थान पर स का प्रयोग किया गया है। इसके विपरीत शब्दावली के पृष्ठ ४२ पर X-axis और Y-axis को X-अक्ष और Y-अक्ष कहा गया है।

१६. देखिये टिप्पणी AII

Find the answer correct to two decimal places

इसका अनुवाद किया गया है :—

उत्तर को दो दशमलव स्थानों तक शुद्ध बताओ।

If in the result the first two decimal places are 35, then say that the answer is correct to two decimal places.

इसका अनुवाद इस प्रकार होगाः—

यदि फल में प्रथम दो दशमलव स्थानों में ३५ हो तो उत्तर को दो दशमलव स्थानों तक शुद्ध बताओ। इस बात का और शब्दावली के उपरिलिखित वाक्य का कदापि एक आशय नहीं है। हमारे विचार में उक्त अंग्रेजी वाक्य का अनुवाद इस प्रकार होना चाहियेः—

दो दशमलव स्थानों तक शुद्ध उत्तर निकालो।'

१७. देखिये A IV 'अक्षरों के चक्रीय व्यतिहार से हम दो नये सूत्र पा सकते हैं।'

'पा सकते हैं' यह अंग्रेजी पद का शाब्दिक अनुवाद है ? किंतु हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। हमारे विचार में उक्त वाक्य इस प्रकार लिखना चाहियेः—

अक्षरों के चक्रीय व्यतिहार से हमें दो नये सूत्र प्राप्त होंगे।

१८. देखिये A IX कोण के बाहु को बढ़ाओ।

हिन्दी कोषों के अनुसार बाहु स्त्रीलिंग है। अतएव 'के बाहु' के स्थान पर 'की बाहु' होना चाहिये।

१९. देखिये A XIV 'समान राशियों के साथ समान राशियाँ जोड़ी जायँ तो योगफल भी समान होते हैं।'

इस ढंग की भाषा हमारे देखने में तो कभी नहीं आई। हमारे विचार में इस वाक्य को यों लिखना चाहियेः—

समान राशियों में समान राशियाँ जोड़ी जायँ तो योगफल भी समान होते हैं।'

२०. देखिये B VIII Fixed value निश्चित

स्थिर नियत मान 'निश्चित' का अर्थ है निश्चय किया हुआ अर्थात् Determined किन्तु; Fixed का अर्थ है 'जो बदला न जा सके।' हमारे विचार में Fixed के लिये 'निश्चित' अनुपयुक्त पर्याय है।

अब हम दो शब्द अपने दृष्टिकोण के विषय में कहना चाहते हैं। हमारी दृष्टि एक छिद्रान्वेषी की नहीं है। हम शब्दावली का वास्तविक मूल्यांकन करना चाहते हैं। हमारी समझ में शब्दावली समिति ने अथक परिश्रम किया है और अनेक दृष्टिकोणों का समन्वय करने का प्रयास किया है और इस प्रयास में उसने कोरा आदर्शवाद छोड़कर यथार्थवादिता से काम लिया है। समस्या के समस्त पक्षों पर विचार करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि शब्दावली समिति का कार्य स्तुत्य है और हमें इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि शब्दावली के ६० प्रतिशत शब्द गणितीय जगत को स्वीकार हो जायँगे। शब्दावली में लगभग १३०० शब्द दिये गये हैं जिनमें से केवल २३ की आलोचना हमने की है। इसका कारण यह नहीं है कि उपरिलिखित शब्द हमारे 'गणितीय कोष' के शब्दों से मेल नहीं खाते।*

शब्दावली में उपरिलिखित शब्दों के अतिरिक्त सैकड़ों शब्द हमारे कोष के शब्दों से भिन्न हैं किन्तु हमें शब्दावली के शब्द सिर आँखों पर स्वीकार हैं। शब्दावली के क्षेत्र में अराजकता फैली हुई है। उसमें एकरूपता लानी ही होगी और यह असंभव है कि किसी एक लेखक के ही सारे शब्द स्वीकार हो जायँ। विभिन्न लेखकों को विचारों का आदान-प्रदान करना ही होगा। इस संबंध में हम शब्दावली समिति से निम्नलिखित अनुरोध करते हैं:—

(क) समिति इस बात का हठ न करे कि विश्वविद्यालयों और विद्योचित संस्थाओं में वही पुस्तकें स्वीकार की जायँ जिनमें शतप्रतिशत उन्हीं की शब्दावली का प्रयोग हो। यदि पुस्तकों में अधिकांश पारिभाषिक शब्द उक्त शब्दावली के प्रयुक्त हों तो भी उस पर आपत्ति नहीं होनी चाहिये। कारण यह है कि आजकल का समय परिवर्तनकाल है। संभव है कुछ लेखक कुछ शब्दों के पर्याय शब्दावली के पर्यायों से अधिक सुन्दर बना दें और शब्दावली के समिति उक्त शब्दों के विषय में अपने भी विचार बदलना चाहें। जो शब्द सुन्दर और उपयुक्त होते हैं उनमें नैसर्गिक आकर्षण होता है। वह तुरन्त क्षेत्रीय जनता का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेते है। शब्दावली का क्रमिक विकास हुआ करता है। दो चार या पांच सात वर्ष के प्रयोग में जो शब्द उपयुक्त बैठेंगे वही मँजकर और परिष्कृत होकर निकलेंगे और अन्त में वही स्वीकार होंगे।

(ख) शब्दावली समिति अगली बार जब शब्दावली बनाने बैठे तो सबसे पहले गणितीय शब्दमालायें एकत्र कर ले। प्रत्येक माला में ऐसे समस्त शब्दों का समावेश हो जिनके अर्थों में थोड़े-थोड़े अन्तर हैं। ऐसी मालायें तीन चार सौ से अधिक नहीं होंगी। पहले उन मालाओं के शब्दों के शब्दों के समानार्थी निश्चित कर लिये जायँ। तत्पश्चात् शेष शब्दों पर विचार किया जाय।

(ग) जिन शब्दों की इस लेख में हमने आलोचना की है उन पर समिति पुनर्विचार करे। जब Intermediate, B. Sc. तक के शब्द तक के शब्द तैयार हो जायँ तो शब्दावली में केवल वही शब्द न दिये जायँ बल्कि हाईस्कूल के शब्दों को मिलाकर समस्त शब्दों की एक ही सूची छाप दी जाय। ताकि यदि प्रस्तुत शब्दावली में कुछ शब्दों के परिवर्तन की आवश्यकता हो तो कर दी जाय।

* देखिये, ब्रजमोहन-गणितीय कोष, प्रकाशक, चौखंभा संस्कृत सीरीज, बनारस, १६५४।

मवेशियों के कृमि-रोग

जगपति चतुर्वेदी

१—कृमि और कीटाणु

छूत की बीमारी का नाम सुनते ही कीटाणुओं का नाम याद हो आता है। इनको जीव का अंश रखने वाले बहुत ही छोटे किनके कहा जाता है जिनकी शक्ल गोल या लंबी या जंजीरदार, रोंएँदार वगैरह हो सकती है। इतनी छोटी शक्ल होती है कि फटे दूध के एक घन सेंटीमीटर में लाखों ही नहीं, करोड़ तक कीटाणु हो सकते हैं। कहते हैंकि ये पेड़ पौधों की गिनती में गिने जाने चाहिए। एक दूसरे जीवदार किनके कीटाणुओं की तरह ही पेड़ पौधों में फैलने वाले होते हैं। उनसे ही उनमें ज्यादा बीमारी फैलती है। उनको फफूंद या फंगी नाम दिया गया है कवक भी कहते हैं।

जीव जंतुओं के दर्जे में सबसे छोटे जीव को एक कोठे या एक कोश का कृमि या कीड़ा कहा जाता है। जानदार चीजों के सबसे छोटे टुकड़े को कोश या कोठा (सेल) कहा जाता है। वे तरह-तरह के हो सकते हैं जैसे हड्डी बनाने वाला कोश या छोटा-छोटा टुकड़ा अलग चीज है, पेशियों को बनाने वाले कोश भी हैं।

खून के अंदर भी कोश होते हैं लेकिन कोश या तरह तरह के कोठे होते हैं, वहां एक कोठे वाला जीव भी होता है। कीटाणु भी एक कोठे वाला होता है। लेकिन एक कोठे वाले कृमि या कीड़े से उसमें कुछ फर्क होता है।

एक कोठे वाले कीड़े (एककोशी कृमि या कीड़े या (प्रोटोजोआ) के अंदर एक बिन्दु या केन्द्र की गाँठ सी होती है। उसे भीतरी गाँठ या केन्द्र का बिन्दु (न्यूक्लियस) कहा जाता है। वही जिन्दगी का असली अड्डा होता है। उसी के फैलकर टुकड़े अलग होने से दूसरा कोश या कोठा तैयार हो जाता है जो पहले कोश या कोठे की तरह पूरी चीज होता है। वह फिर नए कोश या कोठे बना सकता है। कीटाणुओं में भीतरी गाँठ या केन्द्र-बिन्दु नहीं होता। उनका बदन ही एक की जगह दो के रूप में बँट जाता रहता है। उसके बीच भी कोई जिन्दगी का अड्डा सा केन्द्र-बिन्दु हो भी तो उसका अभी तक विज्ञान को कुछ पता नहीं चल सका है।

दूसरे जानवर या जन्तु या पेड़-पौधे बहुत से कोशों या कोठों से बने होने से बहुकोशी या बहुकोठेदार होते हैं लेकिन एककोशी जंतु या कीटाणु एक कोठादार या एककोशी ही

ही होते हैं। एक कोठे के जंतु या कीड़ों से भी कीटाणु की तरह बीमारी पैदा हो सकती है। मलेरिया की भयंकर बीमारी एक तरह के एक कोठे वाले या एककोशी कीड़े (प्रोटोजोआ) से ही होती है जिसका पता बहुत दिनों में बड़ी मुश्किल से लगा था।

एक कोठे या कोश के कृमि या कीड़े ऐसे भी हो सकते हैं जो पैदा तो कहीं हों और जिन्दगी कहीं बितावें। बहुत से कोशों वाले बड़े कीड़े या दूसरे जानवर भी ऐसे हो सकते हैं। वह उनकी जिन्दगी का एक चक्कर सा होता है। उसका पता लगाना पड़ता है। जो जीव या कीड़े अपनी जिन्दगी अपने ही सहारे न बिताकर दूसरे जीवों, पेड़-पौधों या जीव-जंतुओं के सहारे बिताते हैं उनको परजीवी कहते हैं। कीटाणु ज्यादातर परजीवी होते हैं। कुछ ही ऐसे होते हैं जो अलग जी सकें। लेकिन फफूंद या फंगी कहलाने वाले जीव के खानदान के खानदान दूसरों के ही भरोसे जीने वाले होते हैं। लेकिन उन सब ब्यौरों या बातों से हमारा यहाँ कोई खास मतलब नहीं है। हमको तो सिर्फ यह बात याद रखनी है कि अपनी मिहनत का भरोसा न कर दूसरों के सहारे रहने वाले कीड़े या जीव जंतु भी होते हैं जिनको परजीवी कहा जाता है। हमको तकलीफ देने वाले कीड़े जूं खटमल वगैरह परजीवी ही हैं। उसी तरह बीमारी वाले कीड़े भी होते हैं जो अपनी खूराक पाने के लिए दूसरे जीवजंतु का खून मांस चूस कर उसकी मौत तक ला सकते हैं। एक कोठे या कोश के कीड़े भी ऐसे होते हैं। मवेशियों की कुछ बीमारी पैदा करने वाले या तकलीफ देने वाले परजीवी या हरामखोर कीड़े एककोशी या बहुकोशी होते हैं जिनका कुछ बयान आगे दिया गया है।

२—एक कोठे के कृमि वाले रोग

(Protozoa)

(१) सुर्रा (Surra)

सुर्रा एक मवेशियों की बीमारी है जिसे यह देशी नाम मिला है। "सड़ा" कहने के लिए ही अँग्रेजी में शायद सुर्रा शब्द चल गया है। इसका कारण एक कोठे या कोश का एक कीड़ा है जो पतले रोएं सी दुम वाला होता है और खून में रह सकता है। कीटाणु या नन्हें सूत की तरह कीड़े ऐसी बारीक रोएँ सी दुम रखते हों तो उसके सहारे ही पानीदार चीज में तैर कर चलते से हैं। इस नन्हें एक-कोशी (प्रोटोज़ोआ) कीड़े की बनावट लहरियादार झिल्ली सी होती है। उसमें नन्हीं रोएँ सी दुम उसे साँप की तरह चलने लायक बनाती है। हम तो इसको सुर्रे का एककोशी कीड़ा कह कर ही काम चला लेंगे लेकिन दुनिया के खोजी तो मुश्किलों से घबड़ाते ही नहीं। उन्होंने उसका टेढ़ा सा नाम "ट्रिपानोसोमा इवान्सी" रक्खा है। शायद इवान्स नाम के खोजी ने इसकी किसी जाति का पता लगाया

हों इसलिए वह नाम पड़ा है। नहीं तो ये सब ट्रिपानोसोमा नाम के कीड़े ही होंगे जिनकी बहुत सी जातियाँ होती होंगी। इस बीमारी को इस खास किस्म की जाति ही पैदा कर सकती होगी। कुछ भी हो हमें इन नामों या कीड़ों की जातियों की किस्में जानने के झगड़े में नहीं पड़ना है। हमें तो इतना ही जान लेना काफी है कि कोई नन्हा एक कोठे का कीड़ा मवेशियों में यह बीमारी पैदा करता है।

सुर्रा रोग का कीड़ा परजीवी तो है ही, लेकिन इसकी जिन्दगी भी चक्करदार है। मलेरिया का कीड़ा भी एक कोठे वाला होता है; वह हमारे बदन में बुखार पैदा करता है उसी से जाड़ा आता है लेकिन मलेरिया बुखार से बीमार आदमी के खून के कीड़े दूसरे आदमी के बदन में यह बीमारी सीधे नहीं पैदा कर सकते। उनको एक तरह के मच्छड़ के बदन में बढ़ने का मौका मिले तभी उस मच्छड़ के काटने पर दूसरे आदमी में यह बीमारी पैदा कर कर सकते हैं। यानी मलेरिया का कीड़ा मच्छड़ के पेट में पल कर ही सयाना होता है। तब वह दूसरे आदमी के खून में जोर बाँध सकता है। मच्छड़ न हों तो मलेरिया दो चार आदमियों को एक बार किसी तरह हो भी जाय तो फैल न सके।

मलेरिया की तरह ही सुर्रा के एककोशी या एक कोठेवाले कीड़े कुछ किस्म की मक्खियों के बदन में पलते हैं। ये मक्खियाँ ही इस बीमारी के फैलाने का कारण होती हैं। अगर इन मक्खियों को आप किसी तरह दुनिया से बर्बाद कर दें तो यह बीमारी भी फिर किसी मवेशी को इस शक्ल में नहीं हो सकती।

सुर्रा रोग के एक कोठेवाले कीड़े एक कोठेवाले दूसरे नन्हें जीवों के मुकाबले कुछ बड़े होते हैं। उनकी शक्ल नाशपाती सी होती है। इनको फैलाने वाली मक्खियों में एक को घोड़ा-मक्खी कहते हैं। उसी को खोजी "टबेनस" नाम से पुकारते हैं। यह बड़ी और मोटी ताजी होती है। इसका रंग चितकबरा भूरा, लाल भूरा या खाकी होता है। दूसरी मक्खी को अस्तबल की मक्खी कह सकते हैं। उसी को खोजी लोग व विद्वान स्टोमोक्सीज नाम भी देते हैं। घरेलू मक्खी सा ही उसका रंग होता है। मूत से सने गोबर, लीद या कूड़े-कबाड़ में वह अंडे देती है। लेकिन घोड़ा-मक्खी या टबेनस मक्खी अपने अंडे प्रायः पानी के ऊपर लटके या थोड़ा-बहुत पानी से डूबी जगहों में पैदा पौधों की पत्तियों या तनों पर देती है। इसलिए नम या आधा पानी भरी जगहों या पानी भरी कई किस्मों की जगहों पर इसके अंडे बच्चे पाए जाते हैं। इसलिए थोड़ा-बहुत पानी भरी या दलदली जगहों, उसके आसपास की जगहों में भी यह बीमारी एक जानवर से दूसरे जानवर को बड़ी जल्दी फैल सकती है। बरसात और उसके बाद के दो महीनों में इस बीमारी का जोर रहता है। इसलिए इन महीनों को सुर्रा बीमारी का मौसम कहा जाता है। उस समय मवेशियों को सुर्रा रोग ज्यादा सकता है।

यह बीमारी तेजी से या कुछ धीमे ही

उभड़ती है या तन्दुरुस्त जानवर में बनी रह सकती है जिससे दूसरे जानवरों में फैल सके। इसका तेजी से उभाड़ होने पर तेज बुखार होता है, मवेशी में सुस्ती और मुर्दनी छा जाती है। वह आँखें झपकाने लगता है। खड़े होने के लिए दीवाल का सहारा लेता है। वह बेमतलब चक्कर मारकर गिर पड़ता है क्योंकि अपने बदन को सँभाल नहीं पाता। कमर में कमजोरी और पेट में पीड़ा मालूम पड़ सकती है। बराबर सन्निपात या सरेसाम होना मामूली बात हो जाती है। इसके बीच बीच में बेहोशी सी हो जाया करती है। सरेसाम (सन्निपात) की हालत में मवेशी दीवाल से टक्कर खाता है। अगर उसमें कुछ ताकत रहती है तो वह अपना सिर फर्श पर दे मारता है और अपने पिछले पैरों को इधर उधर पटकता है। उसकी साँस दिक्कत से आती है। आँखें पूरी तरह खुली ही रहती हैं और डरावनी मालूम पड़ती हैं। लार बहुत ज्यादा गिरने लगता है। पाखाना पेशाब बार बार और अनजाने होता रहता है। इसके बाद बेहोशी होती है जिसमें मवेशी जमीन पर पड़ा रहता है। कड़ी सांस लेता रहता है। दांत पीसता है। कराहता है, और हवा में डकारता है। सरेसाम और बेहोशी दो चार बार बारी बारी से होते रहने के बाद मवेशी बहुत थक जाता है और आखीर में मर जाता है।

कुछ हल्का हमला होने पर तकलीफ कम ही रहती है और कई दिनों या हफ्तों तक बीमारी में मवेशी लटका रहता है सुस्ती रहती है। बारी का बुखार हो आता है हालत खराब होने लगती है, खून के दस्त धीरे धीरे होने लगते हैं। कमर और पीठ कमजोर हो जाती है, आँख बैठने लगती हैं, दस्त शुरू हो जाते हैं, मवेशी गिर जाता है और आखीर में मर जाता है।

किसी तन्दुरुस्त मवेशी के अंदर बीमारी दबी हो तो बीमारी का उभाड़ नहीं जान पड़ता। कमजोरी बढ़ने या किसी तरह भीतरी असर बढ़ने में बीमारी का उभाड़ उसमें भी हो सकता है। ऐसा उभाड़ ज्यादातर बैलों में हो सकता है क्योंकि उनपर मिहनत ज्यादा पड़ती है इसलिए उनके बदन में कमजोरी से इस बीमारी का दौर बढ़ सकता है।

इलाज—सुर्रा रोग की ठीक दवा मवेशी के डाक्टर द्वारा ही होती है। वह मवेशी की नस में २ फी सदी के टारटर एमेटिक की ५० सी० सी० का टीका लगाता है या बेयर २०५ (नगोनोल) नाम दवा के १० फी सदी घोल को मवेशी के फी सौ पौंड वजन के हिसाब से ५ सी० सी० का टीका नस में लगाता है। नगोनोल जर्मनी की बनी दवा है। उसकी जगह इंगलैंड की बनी एँट्राइपोल या फ्रांस की बनी मोरेविल का टीका लगा सकता है। मवेशी के फी १००० पौंड वजन के हिसाब से इसका ५ ग्राम का टीका नस में ही लगता है। दवाओं का नाम सिर्फ इस लिए दे दिया गया है जिससे

किसान को भी जानकारी हो जाय कि इस रोग की ठीक दवाएँ मिलती हैं। मक्खियों को अंडा देने से रोकने के लिए गोबर और मवेशी बांधने की जगह के कूड़ा कबाड़ को किसी हिफाजत की दूर की जगह या कम्पोस्ट खाद बनाने के गढ्ढे में डालना चाहिए। नीची और पानी जमा होने वाली जगहों का पानी बहाकर गड्ढों को मिट्टी से पाट देना चाहिए। खून चूसने वाली मक्खियां प्रायः सुबह शाम के ठंडे वक्त में खून चूसने की खोज में रहती हैं। जहाँ जोरों की बीमारी हो, वहाँ बीमारी के मौसम में मवेशी बाधने की जगह पर किसान सुबह शाम धुआँ करता है।

(२) लाल पेशाब का रोग (Red Water)

लाल पेशाब की बीमारी या किलनी की बीमारी हमारे देश में बहुत ज्यादा फैलती है। इस बीमारी को एक एक कोठे या कोश का कीड़ा पैदा करता है जो जोड़े रूप में खून के लाल कोठों या कोशों में रहता है। विद्वान लोग तो उसे बबेसिया बाइजेमिनम कहते हैं लेकिन हम चाहें तो उसे लाल मूत के रोगवाला एककोशी कीड़ा कह सकते हैं। यह एक किलनी के बदन में पलता है जिसका नाम विद्वान लोग बूफिलस आस्ट्रेलिस कहते हैं लेकिन हम तो लाल मूत के रोगवाली किलनी ही कहेंगे। इसी वजह से यह बीमारी भी किलनी का बुखार कहलाती है लेकिन याद रखना चाहिए कि सीधे वह किलनी ही बुखार नहीं पैदा करती बल्कि उसके द्वारा मवेशी के खून चूसते वक्त खून के लाल कोठों में पहुँचाया कीड़ा ही रोग पैदा करता है। इसमें मलेरिया वाला ही हाल है। बीमारी का कीड़ा किलनी के बदन में ही पाला पोसा जाता है।

लाल मूत के रोग का हमला होने पर मवेशी को तेज बुखार हो आता है, कमजोरी हो जाती है, साँस जोर से चलने लगती है, खून के दस्त आने लगते हैं, खून के लाल कोशों की बर्बादी होने लगती है जिससे पेशाब में वे लाल कोश बह आने लगते हैं जिससे मवेशी का मूत लाल हो जाता है।

इसी लिए इस बीमारी का नाम ही लालमूत पड़ गया है। मवेशी की तिल्ली भी इस रोग में बढ़ जाती है। कम उम्र के मवेशियों को प्रायः लाल मूत की बीमारी नहीं होती। उन पर बीमारी के कीड़े का हमला हो भी तो उसे पचा डालते हैं इस लिए बीमारी दबी रह जाती है। बाद में भी उन पर इस बीमारी के कीड़े हमला करें तो बीमारी का असर नहीं होता। बीमारी दबाने की उनकी आदत हो जाती है लेकिन वे बीमारी फैलने के कारण ज़रूर हो सकते हैं जिससे किलनी उनके खून को चूस कर फिर दूसरे मवेशी तक बीमारी फैला सकें। जिनी मवेशियों पर कम उम्र में लाल मूत की बीमार का हमला हुआ रहता है और वे उसे पचा चुके होते हैं, उन पर बाद में कभी बहुत तेज़ी का भी हमला हो सकता है जिसमें प्रायः उनकी मौत ही हो जाती है। हल्का हमला होने पर

मवेशी की मौत नहीं होती है। मवेशी को जब किसी छूत की तेज बीमारी से बहुत कमजोरी हो जाती है तो उसके बदन में लाल मूत की बीमारी के कीड़े दबे पड़े रहने का भयानक नतीजा हो सकता है।

लाल मूत की बीमारी का अमेरिका और आस्ट्रेलिया में बहुत ज़ोर पाया जाता है। यह गाय, बैल और भैंसों को ही होती है, घोड़ों और भेड़ों को नहीं होती। यही वजह है कि इसको कहीं कहीं मवेशियो का मलेरिया कहा जाता है। टेक्सा राज्य में इसका कभी ज्यादा जोर रहने पर इसका नाम टेक्सा का बुखार भी पड़ा है। लाल मूत पैदा करने वाली दूसरी भी कई बीमारियाँ हैं। मसाना या गुर्दे या पेशाब की नली में किसी तरह चोट लग जाने पर कुछ रोग हो जाने पर भी लाल पेशाब होता है। बदहजमी या कमजोरी से भी लाल पेशाब आता है। असली पहचान तो उस एककोशी कीड़े का खून में मौजूद रहना है जो इस बीमारी का कारण है।

इस बीमारी का कीड़ा पालने वाली किलनियाँ मवेशियों की खाल से चिपकी रहती हैं और उनका खून चूसकर उनके भीतर इस बीमारी के कीड़े पहुँचाती हैं। बीमारी मवेशी के बदन से किलनियाँ गिर कर जमीन पर आती हैं और वहीं अंडे देकर मर जाती हैं। कुछ दिनों में उनसे बच्चे पैदा होते हैं। ये ही एक तन्दुस्त जानवर के बदन से चिपकने पर उनमें बीमारी फैलाते हैं।

लाल मूत की बीमारी दो तरह की होती है। एक तेज और दूसरी हल्की। हल्के असर वाली बीमारी ज्यादा दिनों तक रहती है। तेज असर या उभाड़ वाली बीमारी प्रायः गर्मी के मौसम में होती है और हल्के उभाड़ वाली जाड़ों में होती है।

हल्के उभाड़ वाली बीमारी में मवेशी का बदन गर्म होता है, उसमें सुस्त और बेहोशी सी आने लगती है। सिर और कान नीचे झुक जाते हैं। शुरू में मवेशी के पेट में दर्द हो सकता है या खून के दस्त आ सकते हैं लेकिन ज्यादातर कब्ज ही रहता है। कब्ज होते ही पेशाब का रंग लाल हो उठता है। मवेशी दुबला हो जाता है। लेकिन जब तेज हमले की बीमारी होती ही तो आखिरी हालत जल्दी ही पहुँच जाती है। जानवर दुबला नहीं होने पाता, उसकी मौत ही जल्दी आती है।

इस बीमारी की खास पहचान यह जान पड़ती है कि मवेशी शुरू में ही कमजोर पड़ जाता है, खड़े होने की हालत में पिछले पैर खास तौर पर घूमते समय डगमगाते हैं। तेज हमले की हालत में पेशाब का रंग ज्यादा गहरा हो जाता है, लाल रंग से बदल कर भूरा या काला हो उठता है। कुछ मवेशी तो ढेढ़ दो दिन के भीतर ही मर जाते हैं। मामूली हमला होने पर कमजोर होते जा कर दो हफ्ते में मवेशी मर सकता है। ४० से ९० फीसदी तक बीमार मवेशी मर ही जाते हैं।

इलाज—लाल मूत की बीमारी का इलाज करने के पहले इतमीनान कर लेना चाहिए कि यही बीमारी है। कभी कभी इसकी जगह पर ऐंथ्रैक्स बीमारी का धोखा हो सकता है लेकिन जब लाल मूत की बीमारी शुरू हो भी तो झुंड में एक सी तेज बीमारी न होगी। किसी को हल्की या किसी को ज्यादा जोर की बीमारी होगी। यह किलनियों की सूंड़ियों से फैलती है। इसलिए उन किलनियों को मवेशी के बदन से बर्बाद करना ठीक है। जहाँ यह बीमारी फैले वहाँ मवेशियों को समय पर पानी में डुबकी लगाना चाहिए। बीमार मवेशी को मवेशी के डाक्टर से नस में १ फीसदी घोल के ट्राइपन ब्ल्यू का १०० से २०० सी० तक सी० टीका लगवाना चाहिए। यह फायदा पहुँचाती है। ट्राइपन ब्ल्यू के टीका से भी फायदा न होने पर एकाप्रिन नाम की दवा का टीका लगवाना चाहिए जो एक कारखाने की खास बनी दवा है। इसका टीका लगाना आसान है। मवेशी के फी १०० पौंड (सवा मन) वजन के हिसाब से एक घन सेंटी मीटर दवा चमड़ी के नीचे टीका की पिचकारी से पहुँचाई जाय। इससे मवेशी तन्दुरुस्त हो जाता है।

३—मवेशियों का हल्का मलेरिया

(Theileriasis)

एक एककोशी कीड़ा थेइलेरिया नाम का होता है जो लाल मूत का रोग पैदा करने वाले कीड़ों की तरह ही खून के लाल कोठों या कोशों में रहता है। इसे भी एक तरह की किलनी ही मवेशियों में फैलाती है। इस किलनी का भी विद्वानों ने कुछ नाम रक्खा है। वे तो ह्यालोमा ईजिप्टियम नाम से पुकारते हैं लेकिन बोलचाल की भाषा में उसे हम मवेशियों का हल्का मलेरिया फैलाने वाली किलनी कहना ठीक समझते हैं। इस बीमारी के कीड़े लाल मूत रोग के कीड़ों से छोटे होते हैं। उनकी शक्ल कई तरह की हो सकती है जैसे गोली, अंडे की तरह और सलाई की तरह लंबी।

थेइलेरियासिस रोग का लाल मूत की बीमारी से यह फर्क होता है कि इसमें पेशाब में लाल रंग नहीं होता लेकिन उसमें खून के लाल कोश बहुत ज्यादा बर्बाद होते जरूर हैं। इस बीमारी के होने पर तेज बुखार होता है। लार बहता है। आँसू गिरता है, और तिल्ली बढ़ जाती है। ज्यादा तेज हमला होने पर आठ दस दिन में मवेशी मर जाता है।

इलाज—इस बीमारी की कोई अचूक दवा नहीं निकली है। जहाँ बीमारी फैली हो, वहाँ मवेशियों को समय समय पर पानी में डुबकी लगवा कर किलनी से छुटकारा दिलाना चाहिए।

कुछ टीका इसके लिए निकालने की कोशिश की गई है। एक ऐंटीथेईलेरिया सिरम और एक वैक्सीन है। कुछ कामयाबी भी हुई है। कुछ दवाएं भी काम करती हैं। नजदीक

के मवेशी डाक्टर से मदद लेकर बीमार पड़े मवेशी को प्लाज्मोक्विन के एक फीसदी घोलके ३० सी० सी० नस में टीका लगवाना चाहिए। एटाब्रिन देने की भी कोशिश की जा सकती है।

४—अंतड़ी की सूजन (Coccidiosis)

यह बीमारी अंडे की शक्ल के कीड़े से पैदा होती है जिससे अंतड़ी की तेज़ सूजन पैदा होती है। कीड़े अंतड़ी में रहते हैं। बारिश के दिनों में नीची और कुछ पानी भरी जमीनों में यह बीमारी तेजी से फैली होती है। बीमारी के कीड़े फैले चारा और पानी के जरिए फैलते हैं। यह बीमारी बछड़े बछियों में तेजी से होती है। लेकिन सयाने मवेशियों को इसका जोर नहीं हो पाता। जो सयाने मवेशी किसी अंतड़ी की बीमारी, रिंडरपेस्ट या दूसरी बीमारियों के शिकार बनते हैं जिससे उनकी अंतड़ी कमजोर हो जाती है, उनको यह बीमारी पकड़ सकती है। इस बीमारी में पड़ा मवेशी पीठ कुबड़ी कर खड़ा होता है, सिर आगे कर लेता है, भूख कम हो जाती है, पानी की तरह तेज दस्त होने लगती है, उसमें खून और आँव भी आता है दस्त बहुत ज्यादा होने से उसकी काँच निकल आती है। खून की दस्त हो सकतो है और मवेशी दुबला पड़ सकता है। बुखार भी आ सकता है। आखीर में मवेशी मर जाता है। ज्यादा असर के मवेशी में अगर बीमारी हो लेकिन उसका उभाड़ न दिखाई पड़ सकता हो तो वह चरागाह और चारा खाने की नाँद में बीमारी की जड़ पैदा कर सकता है उससे कम उम्र के मवेशियों को यह बीमारी हो सकती है।

इलाज—सब मवेशियों को अलग कर लेना चाहिए। जिस चरागाह से उन्हें बीमारी हुई हो, वहाँ से हटा कर किसी ऊँची जगह या साफ सूखी पशुशाला में अलग रखना चाहिए। पूरा इलाज होने तक उन्हें वहीं रखना चाहिए। बाँधने की जगह और चरागाह दोनों ही जगहों में सयाने मवेशियों से नई उम्र के मवेशियों को अलग ही रखना चाहिए। सयाने मवेशी इस बीमारी में पड़े न दिखाई पड़ने पर छिपे तौर से इसी की जड़ छिपाए रह सकते हैं। मवेशी बाँधने की जगह साफ रखनी चाहिए और वहाँ के कूड़ा कर्कट को जल्दी हटा कर जला देते रहना चाहिए। बँधी जगह का सड़ा पानी मवेशियों को नहीं पीने देना चाहिए।

बीमारी से बचाव के उपाय करने से इसका दूसरे मवेशियों में फैलाव रोका जा सकता है। बीमार पड़े मवेशी का कुछ इलाज भी हो सकता है। उसे दाना वाले चारा के साथ दो बड़े चम्मच भर एक दवा दी जा सकती है जिसमें दो हिस्सा फेरस सल्फेट, दो हिस्सा गंधक, और छः हिस्सा मामूली खाने का नमक हो। एक फी सदी फिटकरी और टैनिक ऐसिड के घोल का हल्के गर्म रूप में एनिमा भी दिया जा सकता है। इलाज चलते समय मवेशी को आराम के साथ रखना चाहिए। सर्दी

गर्मी से उसका खूब बचाव रखना चाहिए। सूखा अच्छा चारा देना चाहिए।

३—भीतरी हरामखोर कीड़े
(Internal Parasites)

मवेशियों के बदन के भीतर या बाहर ऐसे कीड़े होते हैं जो उसका खून चूस कर ही जीते हैं। इनको परजीवी या हरामखोर कीड़े ही कहना चाहिए। इनकी सारी जिन्दगी मवेशियों के भरोसे ही बीतती है। बदन के भीतरी भागों में रहने वाले कीड़ों को भीतरी हरामखोर या पर-जीवी कीड़े कहना चाहिए। बाहर रहने वालों को बाहरी हरामखोर कीड़े कहना चाहिए। बाहरी कीड़ों की ओर तो हमारी नजर जा भी सकती है। लेकिन भीतरी कीड़ों को ऊपर देखने से क्या पता लग सकता है। उनको खोजियों ने मवेशी की बीमारियों का कारण पता लगाने की उधेड़-बुन में ही देखा-सुना होगा। मवेशियों की लाशों में उनका पता लगा होगा। फिर उन कीड़ों की किस्में और नुकसान पहुँचाने की तरकीबों को जाना जा सका होगा। उन सब कीड़ों की पूरी जिन्दगी बिताने के ढंग या पैदा होने और मरने के भी समय, जगह वगैरह का पता लिया गया होगा। इन सब बातों की आज इतनी ज्यादा ठीक जानकारी पा ली गई है कि मवेशियों की बीमारियों में हरामखोर कीड़ों की खोजबीन एक खास चीज बन गई है। जिन बातों को खोजियों ने कितने ही दिनों तक मवेशियों की बारीकी से जाँच-पड़ताल कर जाना होगा, उन्हें हम आसानी से ही आज किताबों में पढ़कर जान सकते हैं और उस खतरे से अपने मवेशियों को बचाने के उपाय भी कर सकते हैं।

(१)—गोल केचुए (Round worms)

मवेशियों की खाना पचाने वाली नली में बहुत किस्मों के केचुए मिल सकते हैं जिससे उनका खाना पचाने का काम ठीक नहीं चल सकता। इन केचुओं की कई किस्में होती हैं जिनके नाम खोजियों द्वारा रक्खे गए हैं। नमूने के लिए हम मेदे के केचुओं को लेते हैं। उसमें दो जातियों के सूत से केचुए होते हैं। उनको सूत केचुए या तार केचुए कहने से भी काम चल सकता है लेकिन खोज करने वाले बारीकी से बयान कर सकने के लिए उनके नाम "हिमोंचस कंटोर्टस" और "मेकिस्टोसिर्रस डिजिटेटस" कहते हैं। अंतड़ियों में भी कई जातियों के केचुए होते हैं। गोल केचुओं को खोजी "एस्कारिक विटुलोरम" कहते हैं। मछली मारने के कांटे या अंकुसे की तरह के केचुए "बुनोस्टोमम" या हुक वर्ग कहलाते हैं। तीसरी तरह के केचुए गांठ बनाने वाले होते हैं, उनका नाम तो और भी मुश्किल और लंबा रक्खा गया है। खोजी उनको "ओइसोफेगोस्टोमम रेडिएटम" कहते हैं। लेकिन इन टेढ़े नामों से क्या, हमें तो उन

हरामखोर केचुओं की बर्बादी के उपाय ही जानने से मतलब है।

इन किस्मों के केचुओं में से किसी एक ही किस्म के या कई किस्मों के मिले-जुले केचुए मेदे और अंतड़ियों में मौजूद हो सकते हैं। केचुए को कृमि भी कह सकते हैं। इसलिए इनके बयानों में हम कृमि भी नाम लेंगे।

इन केचुओं या कृमियों का कम उम्र के मवेशियों, बछड़े-बछियों पर ज्यादा हमला होता है। इन कृमियों या केचुओं के अंडे गोबर के साथ बाहर निकलते हैं और गर्मी नमी, बगैरह का सुभीता होने से बाहर ही बच्चे पैदा करते हैं। इन कृमियों की सूंड़ियाँ घासों पर रेंग कर चढ़ जाती हैं और उनको खाने वाले मवेशियों के पेट में पहुँच जाती है। इन हरामखोर कृमियों की तादाद ज्यादा होने पर कुपच हो जाता है। भूख कम हो जाती है, बाद में दस्त आने लगते हैं। हालत खराब होने लगती है। सुस्ती बढ़ती है। खून के दस्त आते हैं। रोएं कड़े और रूखे हो जाते हैं। कम उम्र का मवेशी हो तो उसकी बाढ़ ही रुक जाती है। बीमारी बढ़ जाने पर बदन के हिस्सों में सूजन पैदा हो जाती है। मवेशी को कँपकपी आने लग जाती है। कमजोरी बहुत बढ़ जाने पर वह मर जाता है।

बीमारी की ठीक पहचान तो मवेशी के मरने पर लाश की जाँच कर मेदे और अंतड़ी में मौजूद केचुओं से हो सकती है लेकिन गोबर की भी जाँच कर जिन्दा मवेशी की बीमारी मालूम हो सकती है। गोबर में खुर्द-बीन से इस बीमारी वाले हरामखोर केचुओं के अंडों को देखा जा सकता है।

मवेशियों के मेदे और अंतड़ियों वाले हरामखोर केचुओं की जिंदगी का चक्कर एक अजीब कहानी ही है। इनकी सयानी मादा अंतड़ी में जब अंडे दे लेती है तो गोबर के साथ उनके बाहर आने पर करीब करीब एक दिन-रात में ही उनसे बच्चे पैदा होते हैं। वे सूँड़ियां एक या दो बार केंचुल बदल कर (खाल उतार कर) कुछ दिनों में ही इस लायक हो जाती हैं कि मवेशी के बदन में घुस सकें। बहुत सी इल्लियाँ या सूंड़ियाँ तो घास के साथ मवेशी के मुँह में घुसती हैं लेकिन कुछ सूँड़ियाँ मवेशी के चमड़े में छेद कर भी घुस सकती हैं। कुछ केचुओं के अंडे के ही अंदर सूंड़ियाँ पूरी तरह बढ़ जाती हैं चाहे वे अंडों से पैदा हों या न हों। गाँठ बनाने वाले केचुआ की सूंड़ी मुँह में घुस जाने पर मेदे की चमड़ी में ही कुछ हफ्तों तक चिपकी रह सकती है। बाद में अंतड़ी में पहुँचती है। इनसे मवेशियों को दो तरह से नुकसान हो सकता है। एक तो वे छोटी और बड़ी दोनों अंतड़ियों में चिपक कर गाँठनुमा घाव बना देती हैं। उनके कारण अंतड़ी में खाना सरक नहीं पाता। खाना पचने में भी रुकावट होती है। उनसे जलन होने से दस्त भी आ सकते हैं। इन गाँठों को भारत या कुछ दूसरे देशों में खासकर भेड़ों में फूट जाते भी देखा जाता है जिसमें

दूसरी बीमारियों के कीटाणु हमला कर देते हैं। गाँठ बनाने वाले सयाने केचुए बड़ी अंतड़ी में प्रायः ज्यादा आँव पैदा करते हैं जो गोबर के साथ ज्यादा निकलता है।

मेदे या गले में चमड़ी से चिपके केचुए ज्यादा दिन रुकने पर मवेशी के बदन से पैदा होने वाले कुछ रसों के कारण ज्यादातर मर भी जाते हैं। पेट और अंतड़ी के केचुए ज्यादातर एक महीने में सयाने होकर अंडे देने लग जाते हैं। गाँठ बनाने वाले केचुए डेढ़ दो महीने में अंडा देने लायक होते हैं। इन केचुओं में से बहुतों को बहुत ज्यादा तादाद में अंडे देते पाया जाता है। तागानुमा या तारनुमा केचुए की कंटोर्टस जाति की मादा रोज दस हजार अंडे ही नहीं दे सकती बल्कि इसी तेजी से लगातार कई महीनों तक रोज अंडे दिए जा सकती है।

बचाव के उपाय

मवेशियों को इन केचुओं से बचाने के बहुत से उपाय हैं जिनकी जानकारी किसानों और मवेशी पालने वालों को जरूर रखनी चाहिए। तभी वे अपने मवेशियों को इनकी बीमारियों से बचा सकते हैं।

सबसे पहले तो इन बीमारियों वाले केचुओं की पैदाइश और जिन्दगी के तरीकों और जगहों की ठीक जानकारी होनी चाहिए क्योंकि दुश्मन की जगह और ताकत का ही पता न हो तो उसको बर्बाद कैसे किया जा सकता है। केचुए के पैदा होने और जिन्दा रहने के तरीकों और जगहों को हटा देने से उस तरह के केचुए से छुटकारा मिल सकता है। जमीन, चरागाह वगैरह की हालत, आबहवा, मवेशी चराने, बाँधने, मवेशीघर की सफाई आदि का असर इन केचुओं की रुकावट के तरीकों पर पड़ता है।

पहली बात गोबर को ठीक तरह फेंकना है। केचुए अपने अंडे गोबर के द्वारा ही बाहर निकाल सकते हैं इसलिए मवेशीघर या गोशाला में उसके लिए कुछ तरीका हो सकता है। चरागाह में गोबर को तुरन्त हटाने या सफाई का इन्तजाम एक मुश्किल सी ही बात है। मवेशीघर से गोबर जल्दी उठाकर मवेशी से दूर किसी गड्ढे या काठ के संदूक में रखना चाहिए। भारी ढेरी होने पर उसकी भीतरी गर्मी से अंडे ज्यादातर बर्बाद हो सकते हैं। बाहर की ओर के गोबर को कुछदिन बाद पलट कर भीतर की ओर करते रहने से उनके भीतर के अंडे भी बर्बाद हो सकते हैं।

गोबर की खाद में इन केचुओं के अंडों और सूंड़ियों को मार डालने के लिए बहुत सी दवाएँ काम करती पाई गई हैं लेकिन कोई भी दवा गोबर ऐसी सस्ती चीज में डालने के लिए सुभीते की या सस्ती नहीं जान पड़ती। सब चीजों में सस्ता मवेशी का मूत ही साबित हुआ है जो गोबर में ३० से ४० फी सदी तक मिला देने पर केचुओं की सूंड़ियों को पूरी तरह बर्बाद कर सकता है। जो दवाएं केचुओं के अंडों और सूड़ियों को बर्बाद करने वाली साबित हुई हैं उनके नाम ये हैं:—मरकरिक क्लोराइड, सोडियम आर्सेनाइट, निकोटाइन सल्फेट, पोटेशियम

आय-डाइड, सोडियम आयडाइड, और आइडो-फार्म ।

बहुत से मवेशियों को थोड़ी जगह में चराना भी बीमारी बढ़ाने का कारण है क्योंकि चरागाह में केचुए के अंडों और सूँड़ियों की तादाद मवेशियों की ज्यादा तादाद के हिसाब से बढ़ेगी और बहुत से मवेशी बीमारी के शिकार बनेंगे । चरागाह में भीड़ के कारण चारा कम मिलने से मवेशी कमजोर भी होने लगेंगे जिससे उनके बीमार पड़ने का ज्यादा खतरा रहेगा । छूत की बीमारी की तरह केचुओं की बीमारी भी नए खरीदे मवेशियों से फैल सकती है । इसलिये इन्हें पहले पुराने मवेशियों से दूर रखना चाहिए ।

हरामखोर केचुओं के घटने बढ़ने में आबहवा का भी असर पड़ता है । कुछ ठंडे और नम आबहवा की जगहों या मुल्कों में इनकी बाढ़ ज्यादा हो सकती है । हमारे देश की गर्म और सूखी आबहवा में उनका उतना जोर नहीं रहता । सूखा के कारण सूंड़ियां मर जाती हैं । लेकिन जिन केचुओं के अंडों के अंदर ही सूड़ियाँ बढ़ती रहती हैं, उनको सूखा से नुकसान नहीं पहुँच सकता । उनके अन्दर सूंड़ियाँ जिन्दा ही पड़ी रहती हैं और बारिश होते ही या नम आबहवा होते ही अंडों से बाहर निकल आती हैं । भारत में गर्मी के मौसम के बाद बरसात का मौसम इन केचुओं की बाढ़ का खतरनाक वक्त होता है । उस समय मवेशी पर इनका हमला ज्यादा होने का डर रहता है । गर्मी की तेज धूप बहुत सी सूंड़ियों को मार डालती है । कड़ाके का जाड़ा भी बहुत से केचुए की जातियों का दुश्मन होता है । भारी बारिश होने पर गोबर के बह जाने से सूंड़ियाँ नीची जगहों में जमा हुए पानी में इकट्ठो हो जाती हैं । वहाँ ज्यादा मवेशियों के चरने आने पर इनका हमला जल्दी हो सकता है । इसलिए चरागाह की नीची जगहों को पाट देना चाहिए । पानी के बह जाने का ठीक सुभीता कर देना चाहिए । पहाड़ों में पहाड़ियों की ढाल से गोबर बह-बह कर नीचे की घाटी में जमा हो जाता है । इसलिए वहाँ पर केचुओं की सूंड़ियाँ मवेशियों पर जल्दी हमला कर सकती हैं । सूखी चरागाह की जगह नम चरागाह ही सूंडियों के बढ़े होने का खास अड्डा होती है । इसलिए सबेरे ओस से भीगी चरागाह में मवेशी को चरने न जाने देकर धूप निकल आने पर जाने देना ठीक हो सकता है । उस समय सूंड़ियाँ घास के नीचे रहती हैं ।

कुछ हरामखोर केचुए ऐसे होते हैं जो कई जाति के जानवरों पर हमला कर सकते हैं लेकिन बहुत से ऐसे होते हैं जो अलग-अलग जातियों के जानवरों के ही होते हैं । नमूने के तौर पर कहा जा सकता है कि मवेशियों के हरामखोर कीड़े घोड़ों, सूअरों और मुर्गी पर हमला नहीं करते । इसी तरह घोड़ों, सूअरों और मुर्गी के हरामखोर कीड़े मवेशियों पर हमला नहीं करते । लेकिन मवेशी, भेड़

और बकरियों में ऐसा फर्क नहीं जान पड़ता। इसलिए अदला-बदली कर या मिले-जुले जानवरों को चराने से भी हरामखोरों कीड़ों का हमला कम किया जा सकता है।

सयाने मवेशी या जानवर बहुत से हरामखोर कीड़ों से बचाव की ताकत भी पैदा कर लेते हैं लेकिन छोटी उम्र के जानवरों में वह ताकत नहीं आ सकी होती। उन पर हरामखोर कीड़ों का बड़ी जल्दी हमला होता है। इसलिए सयाने और कम उम्र के मवेशियों को साथ चराना भी खतरे का कारण हो सकता है। पहले से बीमार पड़े हुए किसी सयाने मवेशी से दूसरे सयाने मवेशी तो बचे भी रह सकते हैं लेकिन कम उम्र के मवेशी जल्दी ही बीमार पड़ जाते हैं। इसलिए मुमकिन हो तो बछड़ो, बछियों को सयाने मवेशियों से अलग कर चराया जाय।

कई चरागाहों को बारी-बारी से चराई के काम लाना भी कुछ काम कर सकता है। हरामखोर कीड़ों के हमले के दो ढंग हो सकते हैं। एक तो जानवर से आपस में ही केचुओं का हमला हो, दूसरे चरागाह में किसी बीमार मवेशी के गोबर से केचुए पैदा होकर दूसरे तन्दुरुस्त मवेशियों पर हमला करें। मवेशियों से अलग इन हरामखोर कृमियों की सूंड़ियाँ ज्यादा दिन तक जिन्दा नहीं रह पातीं। मौसम की तेजी से कुछ समय वे प्रायः बर्बाद ही हो जाती हैं। इसलिए चार या छः हफ्ते तक कोई चरागाह खाली रहने दी जाय तो वहाँ के ज्यादातर हरामखोर कीड़े अपने आप मर चुके रहेंगे, सिर्फ कुछ तरह के ही हरामखोर कीड़े महीनों भी जिंदा रह सकते हैं। इसलिए उस चरागाह में फिर मवेशियों को चरने भेजा जा सकता है। एकही चरागाह को चार छः टुकड़ों में बाँट कर इस तरह बारी- बारी से इस्तेमाल कर कुछ दिनों खाली रखना आसान है। हर टुकड़े में एक हफ्ते ही मवेशी चरने दिए जायँ। इस कारण हर टुकड़े को चार हफ्ते तक खाली पड़ा रहने से हरामखोर कीड़ों से छुट्टी मिलती रह सकती है।

चरागाह को जोत देने या कोई फसल बोने के काम लाने से भी हरामखोर कीड़ों से कुछ छुट्टी मिल सकती है। लेकिन इस तरकीब का ज्यादा भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि सूंड़ियाँ हराई के बीच भी जिंदा पड़ी रह सकती हैं। जोतने से अंडे और सूंड़ियाँ मिट्टी के नीचे दबकर धूप या मौसम की तेजी से मजे में बची पड़ी रह सकती हैं और बाद में घास पैदा होने पर बाहर निकल आ सकती हैं। खेतों में तो परती के बजाय हरामखोर कीड़ों को जिन्दा रहने का ज्यादा सुभीता रहता है। घास को जला देने से इनमें कमी होने की उम्मेद की जा सकती है।

सफाई का बड़ा असर पड़ता है। मवेशी बाँधने की जगह को खौलते पानी से धोने से हरामखोर कीड़ों की मौत हो जाती है। कीड़ा मारने की दवा फेंकना तो बेकार ही है। सफाई

ही ज्यादा ठीक है। बार बार पानी से गोशाला या मवेशीघर धोना, गोबर उठाते रहना, मवेशी को धोना नहलाना कीड़ों या केचुओं से बचे रहने के अच्छे उपाय हैं। मवेशी के बदन से चिपकी मिट्टी, गोबर आदि में ज्यादातर चिपकी सूंड़ियाँ पड़ी रहती हैं। उनको धोकर साफ करते रहना चाहिए।

इलाज—बड़ी गोल कृमि का बयान आगे किया गया है। दूसरे सूतनुमा हरामखोर केचुओं के लिए १ फीसदी तूतिया का घोल डेढ़ पाव (१२ औंस) पिलाना चाहिए। उम्र के हिसाब से बछड़े बछियों को आध पाव (३ या ४ औंस) पिलाना चाहिए। दवा पिलाने के दो तीन घंटे बाद तक कोई चारा या पानी मवेशी को न देना चाहिए।

तूतिया का दो फीसदी का घोल भी मवेशियों को पिलाया जाता है। वह भेड़ बकरियों को चौथाई छटांक से लेकर एक छटांक तक पिलाया जा सकता है। मवेशियों को वजन के हिसाब से फी २५ सेर वजन पर आधी छटाँक की एक खूराक समझ कर पिलाया जा सकता है लेकिन इस (२ फीसदी तूतिया के घोल) की एक खूराक पाव भर घोल से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। तूतिया का घोल सूतनुमा कृमियों के लिए ही ठीक है लेकिन सयानी कृमियों पर ही ज्यादा असर करता है। कम उम्र की कृमियों पर उतना असर नहीं करता। इसलिए चार हफ्ते बाद इसकी खूराक दुहराते रहना चाहिए। धातु के बर्तन में तूतिया का घोल नहीं रखना चाहिए क्योंकि यह ताँबे और गंधक के मेल से बनी चीज है और इसमें का ताँबा धातु को खा जाता है।

केचुओं का मवेशी पर ज्यादा हमला होने की बीमारी दिखाई पड़ने के पहले ही सारे मवेशियों को दवा पिलाकर इस खतरे से बचने के उपाय किए जा सकते है। मान लीजिए की कटोर्टस जाति के सूतनुमा केचुओं से मवेशियों को छुटकारा दिलाना है। इसके लिये सारे मवेशियों को फरवरी मार्च में एक एक खूराक तूतिया का घोल पिला सकते है जिससे पेट और अंतड़ी के केचुए मर जाय और उनके गोबर से चरागाह में बसंत ऋतु में बीमारी का जोर ही न हो सके। दूसरी बार जुलाई अगस्त में एक एक खूराक पिला देने से शुरू बरसात के पेट में पहुँचे सूतनुमा केचुए मर जायंगे। इसके एक दो महीने बाद फिर एक एक खूराक पिला देने से बचे खुचे सूतनुमा केचुए भी पेट में मर जाएंगे। इन होशियारियों से मवेशी के पेट में सूतनुमा केचुए इतना बढ़ने ही नहीं दिये जा सकते कि वे चरागाहों में ज्यादा अंडे गोबर के साथ बाहर कर सकें।

मवेशियों या जानवरों के पेट और अंतड़ियों वाले केचुए एक ही तरह के नहीं होते। उनकी कितनी ही जातियाँ होती हैं। उनके ऊपर अलग-अलग दवाएं ही असर करती हैं। ऐसी कोई दवा नहीं निकाली जा सकी है जो पिला देने पर पेट और अंतड़ी

के सभी किस्मों के केचुओं को बर्बाद कर सके। कोई एक दवा एक जाति के केचुए पर असर करती है तो दूसरी जाति पर नहीं करती। इसलिए होशियार डाक्टर ही उनकी ठीक जाँचकर मुनासिब दवा देते हैं। फेनोथियाजाइन ऐसी दवा जरूर निकली है जो केचुओं की बहुत सी जातियों को बर्बाद कर देती है।

फेनोथियाजाइन कुछ महँगी दवा है। यह बहुत से केचुओं का मिले जुले रूप में मवेशी या जानवर पर हमला होने पर अच्छा काम देती है। बीमारी उभड़ने के पहले भी बचाव के लिए इस दवा को सब मवेशियों या जानवरों को पिलाकर फायदा उठाया जा सकता है। मवेशियों के कंटोर्टस जाति के सूतनुमा केचुओं की तो यह खास दवा है लेकिन अंतड़ियों की दीवाल में गाँठ सी बनाकर छिपे रहने वाली सूड़यों की जाति केचुओं (ओय-सोफेगोस्टोनम) के लिए तो सिर्फ यही दवा ही काम करती है। इससे वे बर्बाद हो जाते हैं।

फेनोथियाजाइन की खूराक मवेशी के वजन के हिसाब से फी पौंड ½ ग्राम है। ढाई मन (२०० पौंड) वजन तक के मवेशी को २०—३० ग्राम की खूराक दीजा सकती है। इससे ऊपर के वजन वाले मवेशी को ३०—६० ग्राम की खूराक दी जानी चाहिए। लेकिन ज्यादा दिनों की गाभिन गायों, या नई उम्र के मवेशियों को यह दवा नहीं देनी चाहिये। बछवाबछिया को इस दवा की ज्यादा खूराक देने से धुंध की बीमारी हो सकती है। उसे दो एक दिन धूपसे बचा रखने से बीमारी दूर हो जाती है। मामूली धुंध दो हफ्ते में हट जाता है।

फेनोथियाजाइन मवेशियों के अलावे भेड़, बकरियों, घोड़ों, सूअरों और मुर्गियों को भी दिया जाता है। लेकिन चार हफ्ते से कम उम्र के भेड़ बकरियों के बच्चों को नहीं दिया जाता। दूध देने वाले जानवरों, गायों और बकरियों का दूध इस दवा के देने से रंग बदल देता है और कम भी हो जाता है।

तूतिया का घोल तो सूतनुमा केचुओं की कुछ जातियों पर ही कुछ असर करता है लेकिन बीमारी का ज्यादा जोर होने पर उसे फायदा न होने के नमूने मिले हैं। फेनोथियाजाइन उन पर तो पूरा असर करता ही है, दूसरे केचुओं को भी मारता है। इसकी बहुत थोड़ी खूराक से भी केचुओं का अंडा देना बंद हो जाता है, अंडों का बड़ा होना और गोबर में सूंड़ी का पैदा होना रुक जाता है इसलिए यह बड़े काम की दवा है। कई किस्म के केचुओं की रोक करने और उनसे पैदा बीमारी को दबाने में यह बहुत असर दिखाती है। सिर्फ नेमोटोडिरस नाम की जातियों के केचुए जो अंडे के अन्दर ही सूंड़ियों की बाढ़ करते हैं, इस दवा से काबू में नहीं आते। ये दवाएं जहर हैं इसलिए मवेशी के डाक्टर द्वारा ही हर हालत में इनका इस्तेमाल होना चाहिए।

ईफेल की मीनार

जगपति चतुर्वेदी

बच्चो, तुम्हारे मन में यह बात कभी कभी आती होगी कि हम बादलों को छूलें, अगर कोई ऊँची सींढ़ी या मीनार बन जाय तो उस पर चढ़कर ही आसमान छू लें। तुम्हारी यह इच्छा कहाँ तक पूरी हो सकती है, इसे तुम अपने बड़ों से जरूर पूछते होगे। दुनियाँ में ऐसे बहुत से लोग हुए हैं जो तुम्हारे इस तरह के सपनों को पूरा करने की तजवीज भी करते आए हैं।

दिल्ली की क़ुतुबमीनार तुमने देखी न हो तो उसका नाम ज़रूर सुना होगा। उनमें कितनी ज्यादा सींढ़ियाँ हैं, सब से ऊँची मंजिल से तो सारी दिल्ली ही दिखाई पड़ जाती है। लेकिन तुम्हारे देश में ही ऐसी मीनार नहीं बनी है। दूसरे दूसरे देशों में भी बहुत सी मीनारें बनी हैं जो इससे दूनी ऊँची होंगी। ईंट-चूने से पहले हमारे देश में लोग ऊँचे गुम्बजनुमा टीले या स्तूप भी बनाते थे। उसके भीतर किसी महात्मा या मशहूर आदमी की अस्थि रक्खी रहती थी। मिस्र में भी ऐसे ऊंचे टीले बनाए जाते थे जो बहुत ही ऊंचे होते थे। उनको पिरामिड कहते हैं। वे क़ुतुब-मीनार से दूने ऊंचे बने मिलते हैं। एक मंजिल या कोठा १२ फ़ुट हो तो क़ुतुब मीनार २० मंजिल मकान समान ऊंचा है. लेकिन पिरामिड ४० मंजिल बराबर ऊँचे मिलते हैं।

इन सब बनावटों को ईंट-चूने से ही बना पाया जाता है। लेकिन ईंट-चूने की बनावट कितनी ऊंची ही हो सकती है। ऊँचाई की कोई हद भी हो सकती है। बहुत ज्यादा ऊंचाई की इमारत ईंट-चूने से ही ५० मंजिल तक ऊंची बनाई जा सकती है लेकिन नीव इतनी चौड़ी रखनी पड़े कि नीचे की मंजिलों की चौड़ी दीवारों के कारण खिड़कियाँ गहरी सुरंग सी ही जान पड़ें। ईंट-चूने से बनी दुनिया की सबसे ऊंची इमारत अमेरिका में है जो ५५५ फ़ुट यानी ४६ मंजिलें मकान के बराबर ऊँची है। उसे वाशिंग्टन स्मारक कहते हैं।

ईंट-चूने की इमारत ज्यादा ऊंची न बन सकने के कारण फ्रांस के एक इंजीनियर ने तुम्हारे सपने को पूरा करने के लिए लोहे की मदद ली। उसने पेरिस की एक नुमाइश के लिए १८८९ ई० में लोहे की ऊंची मीनार तैयार की। वह क़ुतुबमीनार से चौगुनी यानी लगभग १००० फ़ुट ऊंची है। उसे ८० कोठों या मंजिलों के बराबर ऊंचा कह सकते हैं। उस इंजीनियर का नाम ईफेल था. इसलिए

यह मीनार भी ईफेल की मीनार कहलाती है।

पेरिस में सीन नदी के किनारे इस मीनार पर चढ़ने पर क्या मजा आ सकता है? तुम्हें सीढ़ियों से चढ़ने की कोई ज़रूरत नहीं। नीचे से ऊपर ले जाने के लिए कई कलें लगी हैं जिनको लिफ्ट कहते हैं। कई लिफ्टों से थोड़ी थोड़ी दूर चढ़कर ऊपर पहुँचा जाता है। ऊपर से ५६ मील तक चारों ओर के गाँव नगर दिखाई पड़ते हैं।

ईफेल की मीनार इंजीनियरी का एक भारी करिश्मा है इसमें लोहे के बारह हजार टुकड़े जोड़े गए हैं। इनके जोड़ों में लगे कीलों की गिनती तो बहुत ज्यादा है। बीस लाख कीले जरूर लगे होंगे। इन सब टुकड़ों को पहले कारखाने में जोड़कर देख लिया गया कि वे ठीक तरह जुटते हैं या नहीं। एक हजार से ज्यदा पन्नों पर तो उनके नकशे ही बनाए गए थे। तीन बरसों में सारे टुकड़ों को बना और जोड़कर मीनार खड़ी की गई।

यों तो ऊँचाई में आज अमेरिका की आसमान छूने वाली इमरतें ईफेल की मीनार से भी ऊँची बन गई हैं। न्यूयार्क की इम्पायर स्टेट बिल्डिंग १०२ मंजिलों की है और १२६८ फुट ऊँची है। वहाँ की ही क्रिसलर बिल्डिंग १०४६ फुट ऊँची है। लेकिन उनका ईफेल की मीनार से मुकाबला ही क्या। उनमें तो दीवालों, कमरों को सटा सटा ठस बना पाया जाता है, वे रोजगारी इमारतें हैं लेकिन ईफेल की मीनार तो खुली खुली ही है मानो मकड़ी का जाला हो। वहाँ कोई भी आदमी कुछ घड़ियाँ चैन और खुशी से ही बिताने जाता है। ऊपरी भाग में अब मौसम की जाँच पड़ताल का दफ्तर ज़रूर खुल गया है।

इसके बनाने वाले इंजीनियर एलेकजेंडर गुस्तेव ईफेल ने जब लोहे की इतनी ऊंची मीनार खड़ी करने की तजवीज की तो उसके सामने कोई भी दूसरा बड़ा नमूना नहीं था। उसने तो अकेले अपने दिमाग से ही इतनी ऊंची चीज खड़ी करने की हिम्मत की। मीनार में चार पाए बने हैं। हर एक पाए की नींव मजबूत करने के लिए पानी के भारी दबाव की तरकीब उसने अंदर ही छिपी रक्खी जो ढाई हजार मन (८०० टन) बोझ उठा सके। उसके नमूने से फायदा उठाकर ही दुनिया की उससे भी ऊंची इमारतें बनाने का लोगों को ख्याल हो सका।

ईफेल की मीनार के मुकाबले में दूसरी बड़ी मीनार बनाने की कोशिस दूसरे मुल्कों ने भी की थी लेकिन उस समय किसी को भी कामयाबी न हुई। लंदन की एक भारी कम्पनी ने तो ईफेल की मीनार से ड्योढ़ी ऊंची मीनार खड़ी कर देने के लिए भारी इनाम देने की मुनादी भी कर दी थी। उसके लिए कोशिश भी हुई लेकिन रुपए की कमी से एक हिस्सा ही बनकर रह गया। बाद में उसे तोड़ भी देना पड़ा।

अकाशवाणी, इलाहाबाद के सौजन्य से

विज्ञान समाचार

भारतीय जहाजरानी का विकास

भारत सरकार ने जहाजरानी के विकास को अत्यधिक प्राथमिकता दी है, क्योंकि देश के व्यापार और वाणिज्य की उन्नति के लिये यह परमावश्यक है। जहाजरानी में आत्मनिर्भर बनने के लिये और यहीं के जहाजों द्वारा आयात-निर्यात करने के लिये भारी प्रयत्न की आवश्यकता होगी। इसके लिये धन भी बहुत अधिक चाहिये और समय भी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में जहाजरानी विस्तार के लक्ष्यों पर विचार करने के लिये, भारत सरकार ने इस उद्योग के प्रतिनिधियों की एक विचार समिति स्थापित की थी। इसका प्रतिवेदन प्राप्त हो गया है और योजना आयोग उस पर विचार कर रहा है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में कुल ४.४५ लाख टन के ७२ जहाज और बढ़ाने का लक्ष्य है। इन पर कुल ८० करोड़ रु० खर्च होगा, जिसमें से १० करोड़ रु० गैर-सरकारी क्षेत्र से प्राप्त होगा और शेष रु० सरकार देगी। प्रथम पञ्चवर्षीय योजना में ६ लाख टन के नये जहाज बनाने का लक्ष्य था, जिसके लिये २३.२ करोड़ रु० की व्यवस्था की गई थी। इस समय भारत के पास कुल ४.७ लाख टन के जहाज हैं। भारतीय जहाजी कम्पनियां लगभग ९८,००० टन के जहाजों के लिये आर्डर दे चुकी है। चालू वित्तीय वर्ष में ४० हजार टन तक के जहाज और मँगाये जाने की आशा है।

इस प्रकार यह बिलकुल सम्भव है कि भारत प्रथम पंचवर्षीय योजना के ६ लाख टन के भारतीय जहाजों के लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा। वर्तमान प्रगति और भावी योजनाओं को देखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि वह लक्ष्य से भी आगे बढ़ जायगा। इस समय भारतीय जहाज लगभग ५ लाख टन के हैं और सारा तटीय व्यापार, काफी समीपवर्ती व्यापार और कुछ विदेशी व्यापार इन्हीं के द्वारा होता है।

समुद्रपारीय व्यापार

समुद्रपारीय व्यापार की कमी को पूरा करने के लिये, सरकार ने जहाजवालों को विश्वास दिलाया है कि यदि वे आवश्यक जहाज प्राप्त कर लेंगे तो सरकार उन्हें विदेशों में खरीदा गया अपना काफी माल ढोने के लिये दे दिया करेगी। जहाज प्राप्त करने के लिये सरकार ने इन कम्पनियों को उदारता से ऋण दिया है। पिछले साल ८ करोड़ से भी अधिक रुपया दिया जा चुका है।

सरकार कलकत्ता में एक दूसरा जहाज-निगम स्थापित करने के लिये कुछ निजी कम्पनियों का सहयोग प्राप्त करने की कोशिश कर रही है। इस निगम के स्थापित हो जाने से जहाजों की संख्या भी बढ़ जायगी और भारतीय जहाजों के समुद्रपारीय व्यापार में भी वृद्धि होगी। आशा की जाती है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में हमारे पास समुद्रपारीय व्यापार के लिये २,८०,००० टन के जहाज हो जायेंगे। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इनमें २,७०,००० टन के ३७ जहाज और बढ़ जायेंगे।

नये तेज चाल के जहाज खरीदने के लिये कम व्याज पर रुपया देने के अलावा, सरकार और भी कई तरह से जहाजी कम्पनियों की सहायता करती है। वह उन्हें सम्मेलनों में भाग लेने के लिये भेजती है, सरकारी माल ढोने के लिये देती है और विदेशों के साथ किये जाने वाले व्यापार करारों में ऐसी व्यवस्था कराती है जिससे भारतीय जहाजों को भी ढोने के लिये माल मिले।

उल्लेखनीय प्रगति

भारतीय जहाजी कम्पनियों ने लगभग सात वर्ष से ही समुद्रपारीय व्यापार में भाग लेना आरम्भ किया है। फिर भी उन्होंने इस क्षेत्र में जो प्रगति की है वह कम उल्लेखनीय नहीं है। दो भारतीय कम्पनियों ने भारत-ब्रिटिश यूरोप व्यापार में इतनी सफलता प्राप्त की है कि वे कई सम्बन्धित सम्मेलनों की सदस्य बनाली गई है। एक कम्पनी भारत-ईरान की खाड़ी के व्यापार में और एक समुद्रपारीय व्यापार में हाल ही में भाग लेने लगी है। इस प्रकार आशा की जाती है कि भारतीय कम्पनियाँ वर्तमान मार्गों पर ही नहीं, नये मार्गों पर भी अधिक व्यवस्थित और तीव्र गति से व्यापार सेवायें प्रदान करने में समर्थ हो सकेगी।

तटीय व्यापार

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में तटीय व्यापार के लिये ४ लाख टन का और समीपवर्ती क्षेत्रों के व्यापार के लिये ५०, ००० टन का लक्ष्य रखा गया है। तट पर जहाजों के समुचित प्रयोग के लिये यह आवश्यक है कि रेलों और जहाजों के आवागमन में सामन्जस्य रखा जाय। इसके लिये सरकार ने एक समिति नियुक्त की है, जो इस सम्बन्ध में सब बातों पर विचार करेगी।

तेल वाहक जहाज

भारत सरकार ने मिट्टी का तेल ढोने के दो जहाज खरीदने का निश्चय किया है। इनमें प्रत्येक ८,५०० टन का होगा। बाद में और भी जहाज खरीदे जायेंगे और इस जहाजों का एक बेड़ा बच जायगा। सरकार भारतीय तेल कम्पनियों से भी ऐसे जहाज खरीदने और चलाने को कह रही है।

बन्दरगाह

युद्ध के बाद, बदरगाहों का सुधारना और उन्हें आधुनिक ढंग से बनाना आवश्यक हो गया है। कच्छ में कांधला नामक स्थान पर एक नया बन्दरगाह बनाया जा रहा है, जो अप्रैल, १९५७ तक बन कर तैयार हो जायगा। इस पर लगभग १४ करोड़ रु० व्यय होगा।

बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कोचीन और विशाख पत्तनम के बड़े बन्दरगाहों के अधिकारियों ने विकास-योजनाओं को पूरा करना आरम्भ कर दिया है। इन योजनाओं पर कुल ४५ करोड़ रु० व्यय होगा, जिसमें से २५ करोड़ रु० प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में व्यय हो चुकेगा। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में पुराना बचा हुआ काम पूरा किया जायगा और कुछ नयी योजनायें भी चालू की जायेंगी। प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में छोटे बन्दरगाहों का भी विकास किया जारहा है। इस कार्य पर लगभग २.५ करोड़ रु० व्यय होगा। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में मद्रास के तूतीकोरिन और मंगलौर या मालपी तथा उड़ीसा के बन्दरगाह के विकास पर भी ध्यान दिया जायगा।

पिलानी में विद्युदणु-विज्ञान संस्थान

श्री कृष्णकिशोर दुग्गल—

पंजाब, राजस्थान और पेप्सू के संगम क्षेत्र में स्थित पिलानी (राजस्थान) नाम के छोटे से अज्ञात गाँव की रेतीली भूमि पर अनुसंधान सम्बन्धी एक ऐसी नयी संस्था स्थापित की जा रही है, जो भारत और पूर्व में अपने ढंग की अनोखी होगी। इस संस्था का नाम केन्द्रीय विद्युदणु (इलेक्ट्रॉनिक्स) इन्जीनियरिंग अनुसन्धान संस्थान है।

रेत पर महल खड़े करने की प्रचलित कहावत के सर्वथा विपरीत इस संस्था की जड़ें मजबूत है। विद्युदणु-विज्ञान के जन्म-स्थान अमेरिका में वर्षों से संचित ज्ञान और अनुसन्धान के आधार पर इस संस्था की नींव रखी गयी है। स्मरण रहे, आज से ४६ वर्ष पूर्व एक युवा असेरिका इन्जीनियर श्री ली डिफरौस्ट ने प्रथम बार उस तीन विद्युद्-द्वारों युक्त शून्यक नलिका (वैकम ट्यूब) का आविष्कार किया था? जिसके फलस्वरूप संसार में एक प्रकार से दूसरी औद्योगिक क्रान्ति हुई।

बेकार पड़ी भूमि पर इस संस्थान की विशाल इमारत के निर्माण का कार्य डा० नौत्तम वी० भट्ट की देख-रेख में में किया जा रहा है। आप संस्थान के कार्य संचालक नियोजन-अधिकारी हैं तथा अमेरिका की प्रसिद्ध 'मैसाचुसेट्स इंस्टिट्यूट औव टैक्नोलौजी संस्था से अपने विद्युद्-ध्वनि विज्ञान और विद्युदणु-विज्ञान विषयों में पी-एच० डी० की परीक्षा पास की थी।

शीघ्र ही संस्था की प्रयोगशाला में प्रमुख होने वाली अधिकांश सामग्री अमेरिका से आ जावेगी। इस कार्य के लिए टेक्निकल सहयोग मिशन ने २।। लाख डालर की राशि निर्धारित कर दी है। केलिफोर्निया स्थित स्टेनफर्ड विश्वविद्यालय के प्रो० डोनल्ड हैरिस, जो टेक्निकल सहयोग मिशन में विशेषज्ञ के रूप में कार्य कर रहे हैं, संस्था की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में पिलानी आकर भट्ट से बात-चीत कर चुके हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत भारत सरकार २५ लाख रुपये की अनुदान इस संस्था को दे चुकी है तथा सेठ घनश्यामदास बिड़ला ने २१ लाख रुपये की रकम प्रदान करने के अतिरिक्त संस्थान का ५० हजार रुपये का वार्षिक खर्च उठाना तो स्वीकार कर लिया है।

देश भर के राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की जो शृंखला फैलायी जा रही है, यह संस्थान बारहवीं कड़ी है। अगली जनवरी तक इस संस्थान का निर्माण-कार्य पूरा हो जाने की आशा है। संस्थान की आधार-शिला २१ सितम्बर, १६५३ को भारत के प्रधानमन्त्री श्री नेहरू ने रखी थी। उस अवसर पर उन्होंने घोषणा की थी 'विद्युदणु के क्षेत्र के प्रत्येक दृष्टिकोण से कार्य किया जाना आवश्यक है। हमारा अन्तिम उद्देश्य देश की जनता की भलाई है, जिससे कि हमारे करोड़ों देशवासी अधिक अच्छा और सुखी जीवन व्यतीत कर सकें।

अगले वर्ष के अन्त में जब इस संस्थान में कार्य शुरू हो जायेगा। तब देश में उत्पन्न होनेवाली कच्ची सामग्रियों को काम में लाने के सम्बन्ध में अनुसन्धान किये जायेंगे। नयी विधियों का प्रयोग कर खास किस्म के रेडियो-सर्किटों की सृष्टि की जायेगी तथा चिकित्सा सम्बन्धी विद्युदणु-औजार तैयार किये जायेंगे। संस्थान नागरिक उपयोग के लिए रेडियो-पद्धतियों के सम्बन्ध में भी अनुसन्धान करेगा

और धातु-उद्योग के लिए विद्युदणु-यंत्रों के इस्तेमाल के सम्बन्ध में खोज करेगा।

विद्युदण-विज्ञान क्या है ? यह वह विज्ञान है, जिससे अणु के विद्युत्युक्त सूक्ष्मतम कणों (विद्युदणुओं) से काम लिया जाता है, जिससे कि वे मनुष्य की सेवा कर सकें। विद्युदणु-नलिकाओं के निर्मित विद्युदणु-यंत्रों से सुना, देखा, चखा, मापा, गिना और बोला जा सकता है। इसमें अनुभव और स्मरण भी किया जा सकता है। ये सब काम मनुष्य के नियन्त्रण के अन्तर्गत होते हैं। आज के बिजली के काम करने वाले समस्त संवाद-वहन साधन जैसे टैलिफोन तार, टैलिटाइप, रेडियो टेलिविजन, फीते में आवाज को भरना, बोलते और चलते-फिरते फिल्म तथा रेडार—सभी का आविष्कार विद्यदणुओं के फल स्वरूप ही हुआ है।

हाल के वर्षों में यान्त्रिक-मस्तिष्क और गणना करने वाले यन्त्रों के आविष्कार से विद्युदण-विज्ञान को नया प्रोत्साहन मिला है। आज विद्युदणुमस्तिष्क सारा हिसाब-किताब कर सकता है और माल का भी हिसाब रख सकता है। इसके अतिरिक्त यह अन्य अनेक प्रकार की सूचनाएं भी प्रदान कर सकता है। एक दिन ऐसा भी आ सकता है, जब यह मस्तिष्क अमेरिकी काँग्रेस के पुस्तकालय या भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार के जितनी सूचनाएं संग्रहीत हैं उतनी हमें प्रदान कर सके।

चिकित्सा तथा चिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान के क्षेत्र के विद्युदणु-विज्ञान द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका अपनायी जाने की संभावना है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस संस्थान का अधिकतम विकास-कार्यक्रम पूरा होने की संभावना की जाती है। संस्थान के कार्य क्षेत्र की व्याख्या करते हुए डा० नौतम भट्ट ने बताया। आज वह बताना संभव नहीं कि संस्थान भविष्य में विकास और अनुसंधान की किन किन निश्चित योजनाओं को अपने हाथ में लेगा। फिर भी यह बात पर्याप्त रूप में निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि संवाद-संवहन के लिए विद्युदणु-परिधियों का विकास करने उद्योगों में यान्त्रिक नियन्त्रण-विधियों को चालू करने तथा चिकित्सा-विज्ञान के लिए यह संस्थान कार्य करेगा। यह विद्युदणु से सम्बन्धित अनेक प्रकार के यन्त्रों का भी निर्माण करेगा।

पिलानी से राजधानी तक आसानी से पहुँचा जा सके, इसके लिए पिलानी से लोहारू को मिला देने वाली एक नयी रेल-लाइन बनाने की योजना है। दिल्ली से पिलानी तक एक नयी सड़क बनाने का काम इस समय पूरे जोरों से चालू है। इस प्रकार अगले वर्ष जब यह संस्थान अपना काम शुरू करेगा, तब मोटर द्वारा दिल्ली की दूरी केवल १२० मील की होगी। तब इस संस्थान में विद्वान्, अनुसन्धानकर्ता और उद्योगपति एक ऐसे नये विज्ञान और व्यापार के संबन्ध में सूचना और परामर्श प्राप्त करने के लिए आयेंगे जिससे लोगों के जीवन और विचारों में क्रान्ति होने की संभावना की जाती है।

मोटर उद्योग की उत्साहवर्धक प्रगति

देश के मोटर उद्योग के लिए बहुत से पुर्जे विदेशों से मंगाये जाते रहे हैं और उन्हें देशी पुर्जों के साथ जोड़कर कार, ट्रक आदि गाड़ियां तैयार की जाती रही हैं। पर अब शीघ्र ही पूर्ण रूप से भारत में बनी मोटरें मिलने लगेंगी। हमारा मोटर उद्योग आत्मनिर्भरता की दिशा में काफी उन्नति कर चुका है। अब छोटी मोटरों

में मूल्य की दृष्टि से ६५ प्र० श० पुर्जे देश के बने होते हैं और उन्हें काफी अच्छा समझा जाता है। ट्रक में लगभग ५० पुर्जे भारतीय होते हैं।

पूर्णतया स्वदेशी कार, ट्रक आदि गाड़ियां तैयार करने की दृष्टि से इस उद्योग को नये सिरे से प्रारम्भ करने का हमारा प्रयास केवल २ वर्ष पुराना है और हमने इस थोड़ी सी अवधि में ही जो प्रगति की है वह कम महत्वपूर्ण नहीं है।

हम देखते हैं कि व्यापार, उद्योग और जन-साधारण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इस उद्योग के विकास को जितना अधिक महत्व दिया जाय उतना ही कम है। मार्च १९५२ में भारत सरकार ने मोटर उद्योग की सहायता तथा संरक्षण के प्रश्न को टटकर आयोग के पास भेजा। इसके बाद १९५४ में इस उद्योग के विकास में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। सरकार ने टटकर आयोग की सिफारिशों को क्रियान्वित किया और इस उद्योग के विकास का एक निश्चित तरीका अपनाया। यह भी निश्चय किया गया कि किस प्रकार की गाड़ियां तैयार की जायं। आयात लाइसेंस उन्हीं लोगों को दिये गये जो इन गाड़ियों के निर्माण का सन्तोष जनक कार्य-क्रम पेश कर सके। जो कम्पनियां केवल विदेशी पुर्जे जोड़कर गाड़ियां बनाती थीं और जिनका मोटर निर्माण का अपना कोई कार्य-क्रम नहीं था उन्हें अपना कारोबार बन्द कर देने के लिए कहा गया, किन्तु इतने पर्याप्त लाइसेंस दिये गये जिससे वे अपना कार्य सुविधा के साथ बन्द कर सकें।

निर्माण का कार्यक्रम

अब जो निर्माण का कार्यक्रम चल रहा है उसके अनुसार छोटी (वेबी), हलकी (लाइट) मध्यम (मीडियम) तथा भारी (हैवी)—चार प्रकार की गाड़ियां बन रही हैं। इनमें बस, ट्रक आदि कई किस्म की गाड़ियाँ हैं और १ टन से लेकर ५ टन या इससे अधिक टन तक की हैं। इसके अलावा, 'डीजल ट्रक' तथा जीपों के निर्माण के लिए भी लाइसेंस दिये गये हैं। इस कार्यक्रम के अनुसार लाइसेंस प्राप्त कम्पनियां अनेकों महत्वपूर्ण हिस्से बनाने लगी हैं।

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि इस उद्योग के विकास के लिए औद्योगिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्रों में जिस ढंग से कार्य होता है, भारत भी उसी प्रकार कार्य कर रहा है। निर्माता मोटर-गाड़ी (ट्रक) के अधिकांश बड़े-बड़े हिस्से स्वयं ही बनाते हैं और छोटे-छोटे पुर्जे अलग कारखानों में बनाये जाते हैं। मोटर गाड़ियों के निर्माण में इन दोनों का परस्पर घनिष्ट सहयोग होता है। साथ ही कच्चा माल तथा कपड़ा, कांच, रंग आदि भी दूसरे उद्योगों से मंगाया जाता है।

कुछ निर्मातागण अब मोटर-गाड़ी का पूरा इंजन स्वयं तैयार करने लगे हैं। केवल फ्यूल पम्प, बियरिंग्स, कारब्यूरेटर्स तथा गैस्केट आदि ही बाहर से मंगाते हैं। एक प्रकार की कार तथा मोटर-ठेले के इंजिन के बड़े बड़े पुर्जे भारत में ही बनने लगे हैं। कुछ मोटर-ठेलों और एक प्रकार की कार के लिए गियर-वाक्स भी यहीं बनाया जाता है। एक अन्य प्रकार की छोटी कार का रियर एक्सल, जिसमें डिफरेंशियल भी होता है यहीं बनने लगा है और व्यापारी गाड़ियों के लिए भी इस साल के अन्त तक एक्सल बनने लगेगा। कुछ व्यापारी गाड़ियों के लिए चेसिस का पूरा ढांचा भी यहीं बनने लगेगा। एक प्रकार की गाड़ी को छोड़कर सभी गाड़ियों में देश में बने लीफ स्प्रिंग भी प्रयोग होने लगे हैं।

फालतू पुर्जे

एक्ससरीज तथा पुर्जे बनाने के क्षेत्र में भी काफी प्रगति हुई है। गाड़ियों के पुर्जे बनाने के लिए १८ कम्पनियों को लाइसेंस मिला है जिनमें से ८ ने उत्पादन कार्य आरम्भ कर दिया है। आशा है कि पहली-पंचवर्षीय योजना के अन्त तक अन्य कम्पनियाँ भी उत्पादन कार्य आरम्भ कर देंगी। पिस्टन, पिस्टनरिंग, सिलिण्डर लाइनर, गैस्केट, वाल्व, क्लच डिश, रेडियेटर, शाक-एवजार्बर, लीफ स्प्रिंग, फ्यूल इन्जेक्टर, स्पार्किंग-प्लग आदि पुर्जे ये ही कम्पनियां बनाती हैं। १९५४ में देश में लगभग १ लाख पिस्टन, १२ लाख ५० हजार पिस्टन रिंग, ८४ हजार स्पार्किंग-प्लग और ३ हजार २ सौ फ्यूल इन्जेक्टर बने।

भारत में १९५४ में १४,४६२ मोटर-ठेले बने, जब कि १९५३ में इनकी संख्या केवल १३,९२६ ही थी। मोटर उद्योग में लगभग १४ करोड़ ३५ लाख रु० की पूँजी लगी हुई है। पूँजी लगाने वाले सभी भारतीय हैं। उद्योग में लगभग ७००० व्यक्ति काम कर रहे हैं।

माँग बढ़ने लगी

देश में सब प्रकार की मोटरों की कम मांग होना भी उद्योग की एक समस्या है। यदि मांग बढ़े तो उत्पादन भी बढ़ेगा और उसके साथ अन्य समस्याएँ भी समाप्त हो जायंगी। प्रसन्नता की बात है कि अब मांग बढ़ने लगी है। १९५५ के पहले पांच महीनों में ७,६१३ कारों तथा मोटर-ठेलों की बिक्री हुई है। जबकि १९५४ के सारे वर्ष में बिकी गाड़ियों के आधे से अधिक है।

सरकार इस बात की कोशिश में है कि मोटर उद्योग का विकास तेजी से हो तथा खरीददारों को गाड़ियाँ उपयुक्त दामों में मिलें। इसके लिए सरकार मोटर उद्योग की प्रगति पर पूरा-पूरा ध्यान दे रही है। सरकार ने गाड़ियों के मूल्य निर्धारित करने की ओर भी कदम बढ़ाया है। मोटर-पुर्जों के अधिकतम खुदरा मूल्य निश्चित कर दिए गए हैं और मोटर मालिकों को गाड़ी की सफाई आदि की और अधिक सुविधाएँ भी दी गयी हैं।

मोटर-साइकिल और स्कूटर

भारत में अब मोटर-साइकिलें भी बनने लगी हैं। मद्रास की एक कम्पनी को इसके लिये लाइसेंस दिया गया है, जो एक ब्रिटिश कम्पनी के सहयोग से मोटर-साइकिलों का निर्माण कर रही है। इटली की एक कम्पनी की सहायता से मोटर स्कूटर बनाने की एक भारतीय कम्पनी की योजना भी स्वीकार कर ली गयी है।

इस्पात के रेल डिब्बों का कारखाना

महात्मा गांधी के जन्म-दिवस, २ अक्टूबर १९५५ को, प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने पैराम्बूर में रेल के डिब्बों के कारखाने को चालू किया। प्रधान मंत्री के बटन दबाते ही कुछ सैकिंडों में पूर्णरूप से इस्पात का बना एक हल्का रेल का डिब्बा तैयार होकर सामने आ गया।

यह कारखाना मद्रास के एक उत्तर-पश्चिमी उप-नगर पैराम्बूर में बनाया गया है और इस पर ७ करोड़ ३० लाख रुपया खर्च हुआ है। यह ५२ एकड़ में फैला हुआ है और इसमें आधुनिकतम ढंग की सब चीजें लगायी गई हैं। इसके १० बड़े-बड़े भाग हैं। १९५९-६० में जब इसका उत्पादन लक्ष्य तक पहुँच जायगा, तो प्रति ६ घंटे यहाँ एक डिब्बा पूरी तरह बनकर तैयार हुआ करेगा। यह एशिया का इस तरह का सबसे बड़ा कारखाना होगा।

उत्पादन कार्य-क्रम

पहले साल इस कारखाने में २० डिब्बे तैयार होंगे। इनके पुर्जे स्विटजरलैंड से मँगाये जायँगे। इसके बाद

भारत में बने पुर्जों का इस्तेमाल लगातार बढ़ता जायगा। दूसरे वर्ष में उत्पादन ५ गुना बढ़ जायगा, तीसरे वर्ष में २०० और चौथे में ३०० डिब्बे तैयार होंगे। उत्पादन का लक्ष्य पूरा हो जायगा यानी ३५० डिब्बे तैयार होंगे और डिब्बों में काम आने वाला सब साज-सामान भी इसी कारखाने में बनने लगेगा।

फिलहाल इस कारखाने में तीसरे दर्जे के डिब्बे ही बनाये जायंगे। यहाँ केवल डिब्बों का ढांचा बनेगा। अन्दर की चीजें दूसरे रेल-कारखानों में बनायी जायंगी।

डिब्बों की विशेषता

इस कारखाने में जो डिब्बे बनाये जायंगे, वे आम डिब्बों से बिल्कुल भिन्न होंगे। इनमें नीचे और ऊपर के हिस्से अलग-अलग न होकर सारे का सारा इस्पात का बना हुआ एक ही हिस्सा होगा। इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें चलने से झटका कम लगेगा। वर्त्तमान डिब्बों का वजन ४२ टन होता है पर यह उससे ७ टन हल्का होगा। इसका लाभ यह है कि एक इन्जन के साथ अधिक डिब्बे जोड़े जा सकते हैं। टक्कर लगाने पर यह इतनी जल्दी नहीं टूटेगा, जितनी जल्दी आजकल के डिब्बे टूट जाते हैं और इस प्रकार दुर्घटना होने पर यात्रियों को कम हानि पहुँचेगी। इन डिब्बों में गरमी और शोर को रोकने की भी व्यवस्था की गई है। इनमें मुसाफिरों को बहुत आराम मिलेगा, जो भारत के लिए एक नयी चीज होगी।

एक डिब्बे के लिए ६३५ मशीनें

इन डिब्बों का निर्माण सरल नहीं है। एक डिब्बे के बनने में ७३५ मशीनों को ६ घन्टे काम करना पड़ता है। पैराम्बूर कारखाने में १० बड़े-बड़े भाग (शाप) हैं। इनमें से सबसे बड़ा १ हजार फुट लम्बा और २६० फुट चौड़ा है। यह देश का इस तरह का सबसे बड़ा 'शाप' होगा। कारखाने के अन्दर १२ मील लम्बी रेल की लाइन होगी और इसका ८४ लाख वर्ग फुट भीतरी क्षेत्र बिल्कुल साफ सुथरा रखा जायगा। यहाँ हवा और रोशनी का भी पूरा ध्यान रखा गया है। कारखाने में अधिकारियों का दूसरे भागों से सम्पर्क रखने के लिए लाउड स्पीकरों आदि की भी व्यवस्था है। कर्मचारियों के लिए उपाहार गृह और गुसलखाने आदि भी बनाये गये हैं। कारखाने में निर्माण-कार्य बिल्कुल आधुनिक ढंग से होगा यानी एक तरफ से कच्चा माल डाला जायगा और दूसरी तरफ बने बनाये डिब्बे बाहर निकलेंगे।

भारत-स्विस सहयोग

इस कारखाने के लिए यूरोप के ८ देशों से मशीनें आ रही हैं। इनमें से ६० प्रतिशत जर्मनी से, १५ प्रतिशत स्विटजरलैंड, और ब्रिटेन से और बाकी चेकोस्लोवाकिया, फ्रांस, इटली, बेलजियम और स्वीडन से मंगायी जा रही हैं। इस कारखाने को खड़ा करने के लिए भारत का स्विटजरलैंड की "कार एंड ऐलीवेटर मैन्यूफैक्चरिंग कारपोरेशन लिमिटेड" नामक एक कम्पनी के साथ करार हुआ था। करार के अन्तर्गत इस कम्पनी पर प्राविधिक जानकारी और विशेषज्ञ देने तथा भारतीयों को अपने रेल-कारखानों में आवश्यक प्रशिक्षण देने का दायित्व था। इसके अनुसार अब तक ४० भारतीय स्विटजरलैंड में कम्पनी के कारखाने में शिक्षा ले चुके हैं और १६ इस समय शिक्षा ले रहे हैं। जब यह कारखाना पूरे तौर से काम करने लगेगा उस समय इसमें लगभग ४ हजार कर्मचारी काम करेंगे। इनमें से ७५ प्रतिशत प्रशिक्षित कारीगर होंगे। प्रति वर्ष ५०० कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिए २० मार्च, १९५४ को कारखाने में एक स्कूल खोला गया था। इस स्कूल में आधुनिक प्रशिक्षण दिया जाता है और इसका अपना कारखाना (वर्कशाप) है।

३ साल लगे

सरकारी तौर से इस कारखाने का जन्म जून, १९५१ में हुआ था। सितम्बर १९५२ में कारखाने की विशालकाय इमारत के लिए बहुत जरूरी सामान कारखाने के स्थान पर पहुँचाया गया। अक्टूबर १९५४ में विदेशी मशीनों की पहली खेप मद्रास में उतरी और उसके एक साल बाद अब डिब्बों का निर्माण आरम्भ हो रहा है।

इतना ही नहीं, जब यह कारखाना पूरे तौर से काम करने लगेगा तो हम हर साल लाखों रुपये की विदेशी मुद्रा बचा सकेंगे। इसके अलावा रबड़, अल्यूमीनियम और रासायनिक पदार्थों के अनेक उद्योगों का भी इस कारखाने से बढ़ावा मिलेगा।

सरल विज्ञान ग्रंथावली

लेखक—जगपति चतुर्वेदी, सहा० सम्पा०, 'विज्ञान'

सरल विज्ञान ग्रन्थावली हिन्दी में लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य सरल रूप में प्रस्तुत करने का एक नवीन तथा अभूतपूर्व प्रयास है। सभी पुस्तकें केवल एक लेखक द्वारा लिखी हुई हैं। लगभग १५० या २०० पृष्ठों तथा बहुसंख्यक चित्रों के साथ प्रत्येक का मूल्य २) है।

भौतिक विज्ञान

बिजली की लीला—बिजली के वैज्ञानिक मर्म, तार टेलीफोन, विद्युत्प्रकाश, रेडियो आदि की कहानी।

परमाणु के चमत्कार—परमाणु सम्बन्धी वैज्ञानिक खोजों तथा परमाणु बम, आदि के मर्म की कहानी।

भूगर्भ वि०, पुरा-जीवविज्ञान, पुरा-वनस्पति विज्ञान

विलुप्त जन्तु—प्रस्तरावशेषों के आधार पर पचास करोड़ वर्षों तक पुराने जन्तुओं के वंश लोप होने की कहानी।

भूगर्भ विज्ञान—धरती के निर्माण तथा अंतः और बाह्य अंगों के रूप परिवर्तन की विलक्षण कहानी।

विलुप्त वनस्पति—प्रस्तरावशेषों के आधार पर पचास कोटि वर्षों तक पुराने वनस्पति वंशों की कहानी।

कोयले की कहानी—पत्थर कोयले की उत्पत्ति तथा वैज्ञानिक शोध और उपयोग की कहानी।

ज्वालामुखी—धरती के आंतरिक भाग में ज्वाला उत्पन्न होने के कारण तथा संसार के ज्वालामुखियों की कहानी।

रसायन

तत्वों की खोज में—रासायनिक तत्वों के अनुसंधान तथा उनके अन्वेषक वैज्ञानिकों की मनोरंजक कहानी।

साधारण

वैज्ञानिक आविष्कार—भाग १, २—पुरानी तथा नई वैज्ञानिक खोजों की विशद कहानियाँ।

आविष्कारकों की कहानी—युगान्तरकारी आविष्कारकों तथा वैज्ञानिकों की कथा।

वनस्पति विज्ञान

वनस्पति की कहानी—वनस्पति के जन्म, वृद्धि क्रियाकलाप, तथा भेद प्रभेदों की कहानी।

चिकित्सा विज्ञान, कीटाणु विज्ञान

जीने के लिए—रोगों और कीटाणुओं का मर्म ज्ञात करने वाले वैज्ञानिकों की मार्मिक कहानी।

कीटाणुओं की कहानी—रोग उत्पन्न करने वाले तथा अन्य सूक्ष्मदर्शकीय कीटाणुओं और परम कीटाणुओं की कहानी।

पेनिसिलिन की कहानी—रसायन चिकित्सा तथा पेनिसिलिन के आविष्कार, की कहानी।

शल्य विज्ञान की कहानी—शरीर में चीरफाड़ करने के प्राचीन तथा नवीन ज्ञान की कहानी।

जीव-जन्तु विज्ञान

समुद्री जीव-जन्तु—

अद्भुत जन्तु—

लक्षण जन्तु—

पक्षी ग्रन्थावली—पक्षियों के रङ्ग रूप, जीवनक्रम, निवास सन्तानोत्पादन, स्वभाव भेद तथा पहचान का वर्णन।

१—शिकारी पक्षी	२)
२—जलचर पक्षी	२)
३—वन वाटिका के पक्षी	२)
४—वन उपवन के पक्षी	२)
५—उथले जल के पक्षी	२)

नई पुस्तकें

स्तनपोषी जन्तु	२)
हिंसक जंतु	२)
खुर वाले जानवर	२)
चींटी चींटों की कहानी	२)
जंतुओं का गृह निर्माण	२)
जंतु बिल कैसे बनाते हैं ?	२)

विज्ञान परिषद्, म्योर सेंट्रल कालेज भवन, प्रयाग

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools;
Colleges and Libraries

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति. दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम
सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

नवम्बर १९५५
वृश्चिक २०१२

भाग ८२
अंक २

वार्षिक मूल्य
चार रुपए

प्रति अंक
छः आने

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—श्रीरामदास गौड़ और प्रो० सालिगराम भार्गव।=)
२—चुम्बक—प्रो० सालिगराम भार्गव ।।।=)
३—मनोरञ्जन रसायन—प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव २)
४—सूर्य सिद्धान्त—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव छः भाग मूल्य ८)। इस पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।
५—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी १)
६—समीकरण मीमांसा—पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)
७—निर्णायक डिटमिनैंटस—प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री ।।।)
८—बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)
९—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशंकर पचौली; ।=)
१०—व्यङ्ग-चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; २)
११—मिट्टी के बरतन—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; (अप्राप्य)
१२—वायुमंडल—डाक्टर के० बी० माथुर, २)
१३—लकड़ी पर पालिश—डा० गोरखप्रसाद और श्री रामरतन भटनागर, एम० ए०, २) (अप्राप्य)
१४—कलम पेवंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २)
१५—जिल्दसाजी—श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० २)
१६—तैरना—डा० गोरखप्रसाद १)
१७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—(अप्राप्य)
१८—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएं—डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० ॥)
१९—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकारनाथ परती, मूल्य ।।।)
२०—फोटोग्राफी—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन) ४),
२१—फल संरक्षण—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह २।।)
२२—शिशु पालन—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई। मूल्य ४)
२३—मधुमक्खी पालन—दयाराम जुगड़ान; ३)
२४—घरेलू डाक्टर—डाक्टर जी० घोष, डा० उमाशङ्कर प्रसाद, डा० गोरखप्रसाद, ४)
२५—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, ३।।)
२६—फसल के शत्रु—श्री शङ्कर राव जोशी ३।।)
२७—साँपों की दुनिया—श्री रमेश वेदी ४)
२८—पोर्सलीन उद्योग—प्रो० हीरेन्द्र नाथ बोस ।।।)
२९—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ—२)
३०—गर्भस्थ शिशु की कहानी—प्रो० नरेन्द्र २।।)

अन्य पुस्तकें

१—विज्ञान जगत की झाँकी	(डा० परिहार)	२)
२—खोज के पथ पर	(शुकदेव दुबे)	।।)
३—विज्ञान के महारथी	(जगपति चतुर्वेदी)	२)
४—पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ	(,,)	१।।)
५—हमारे गाय बैल	(,,)	।।)
६—मवेशियों के छूत के रोग	(,,)	।।)
७—मवेशियों के साधारण रोग	(,,)	।।)
८—मवेशियों के कृमि-रोग	(,,)	।।)
९—फसल-रक्षा की दवाएँ	(,,)	।।)
१०—देशी खाद	(,,)	।।)
११—वैज्ञानिक खाद	(,,)	।।)
१२—मवेशियों के विविध रोग	(,,)	।।)

पता—विज्ञान परिषद् (म्योर सेन्ट्रल कालेज भवन) प्रयाग

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८२ | वृश्चिक २०१२; नवम्बर १९५५ | संख्या २

परमाणु शक्ति

श्री चमनलाल गुप्त, एम० एस-सी०, बी०-एड

परमाणु शक्ति के बारे में बड़ी बड़ी बातें सुनने में आती हैं। यह सब से पहले, परमाणु बम के रूप में संसार के सामने आई। हममें से कौन जापान में इसके कृत्यों से परिचित नहीं है। हमी में से बहुत से दूसरे महायुद्ध की समाप्ति का श्रेय भी इसी को देते हैं। आज परमाणु शक्ति के युद्ध संबन्धी यंत्रों पर रोक लगाने की मांग बड़े जोरों के साथ चारों ओर से आ रही है। परन्तु क्या आपने कभी सोचा, कि हम इस स्थिति तक कैसे पहुँचे। परमाणु बम का श्रेय किन किन वैज्ञानिकों को मिलना चाहिए? क्या यह सफलता कुछ वर्षों के प्रयत्नों का फल है?

इतिहास को पढ़ने से पता लगता है कि सृष्टि के विकास के साथ साथ, मनुष्य भी अपने पुराने अनुभवों से लाभ उठाता हुआ प्रगति करता रहा। उसकी सफलता का रहस्य भी यही है।

१८९६ में बैकेरैल (Bacqueral) ने खोज की, कि यूरेनियम खनिजों में कुछ ऐसी किरणें निकलती हैं जो काले कागज़ से ढके हुए फोटोग्राफी प्लेट को भी प्रभावित कर देती हैं। बाद की कुछ और खनिजों में भी यह गुण पाये गये। इस खोज के आधार पदार्थों के दो भेद हो गये। वह पदार्थ जिनके गुणों का आधार, परमाणु (ऐटम) के बाह्य भाग के इलेक्ट्रानों पर है जैसे तांबा, चाँदी इत्यादि। दूसरे वह पदार्थ जो अपने विशेष गुणों के लिए अपने नाभिक (Nucleus) पर आश्रित है जैसे यूरेनियम इत्यादि। परमाणु शक्ति का आधार दूसरे प्रकार के पदार्थों पर है इन्हें रेडियमधर्मी तत्व कहते हैं।

१९११ में लार्ड रथरफोर्ड (Rutherford) ने सर्व प्रथम परमाणु के नाभिक का नमूना प्रस्तुत किया। उन्होंने परमाणु की उपमा सूर्य मण्डल से दी। जिस

प्रकार ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं, उसी प्रकार इलेक्ट्रान (Electorn) भी परमाणु के नाभिक के चारों ओर घूमते हैं। इस खोज ने परमाणु बम तक पहुँचने में बड़ी सहायता दी। अब रेडियमधर्मी तत्वों के बारे में अधिक ज्ञान प्राप्त होने लगा। आज यह सुनकर शायद ही आश्चर्य हो कि परमाणु का नाभिक परमाणु के १०००० वें भाग से भी छोटा है और परमाणु का लगभग तमाम भार इसी में केन्द्रित है।

१६३२ में एफ० जोलियट तथा इरीन कुरी (F. Joliot and Irene Curie) ने नाभिकीय प्रतिक्रिया द्वारा कृत्रिम रेडियमधर्मी तत्व बनाकर संसार के वैज्ञानिकों को आश्चर्यचकित कर दिया। उनकी खोजों से पता लगा कि इन प्रतिक्रियाओं से प्रबल शक्ति उत्पन्न होती है। इस खोज के पश्चात् इस शक्ति को संचित कर प्रयोग में लाने के प्रयत्न होने लगे। परमाणु बम में इसी शक्ति का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। इस प्रकार वैज्ञानिकों द्वारा सहस्त्रों वर्षों तक किए गए तप का फल यह परमाणु बम है।

इसको बनाने में यूरेनियम धातु का भी बड़ा हाथ है।

सन् १७८६ में क्लैपराथ (Klaproth) ने सेक्सानी स्थान से निकली पिचलैंड खनिज की परीक्षा के दौरान में इस धातु के एक निम्न आक्साइड की खोज की। सन् १८४१ में पेलिगोट (Peligot) ने विशुद्ध तत्व को प्राप्त किया। परमाणु बम में जिन दो तत्वों यूरेनियम २३५ तथा (Plutouinm) प्लूटोनियम का प्रयोग होता है, वह दोनों तत्व सामान्य यूरेनियम, (परमाण्वीय अंक ६२ तथा परमाण्वीय भार २३८ है) से प्राप्त किये जाते हैं। इन रेडियमधर्मी तत्वों में एक विशेष बात यह है कि इनमें अगर एक बार नाभिकीय प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाय तो ये इस प्रतिक्रिया की शृङ्खला को स्वयं चालू रख सकते हैं।

प्रकृति में जो सामान्य यूरेनियम मिलता है इसमें समस्थानिक (Isotope) यू-२३५, ०.७१ प्रतिशत के अनुपात से होता है। यूरेनियम २३४ व यू-२३५ के नाभिक में मामूली सा अन्तर है, परन्तु किन्हीं कारणों से यू-२३५ को यूरेनियम २३८ से अलग करने के लिए इस गुण का लाभ नहीं उठाया जा सकता। यू-२३५ यू-२३८ से कुछ हल्का होता है। इसी गुण की सहायता से यू-२३५ को यू-२३८ से अलग कर लिया जाता है। यह कोई आसान काम नहीं है। इस गुण का लाभ उठाने के लिए, सर्वप्रथम यूरेनियम को यूरेनियम हैक्सा-फ्लोराइड गैस में बदलते है जिसे हैक्स भी कहते हैं।

इसके लिए अनेक साधनों का प्रयोग करना पड़ता है। बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा, सामान्य यूरेनियम को छोटे-छोटे कणों में पीसा जाता है फिर इसको १००० तापमान पर विशेष प्रकार के लवणों के साथ भूनने के पश्चात पानी के बड़े बड़े हौजों में छोड़ देते हैं जहाँ उनमें रसायनिक प्रतिक्रिया होती है। इस प्रकार गहरे भूरे रंग का विशुद्ध यूरेनियम आक्साइड (UO_2) मिलता है। इसको हैक्स में बदलने के लिए फ्लोरिन गैस के सम्पर्क में लाना आवश्यक है। फ्लोरिन गैस अति संहारक है। यह कांच को घोल देती है, इस्पात को खा जाती है, कार्बनिक पदार्थों को भस्म कर देती है। नम हवा के सम्पर्क में आने पर बहुत वेग से विस्फोट करती है। इन तमाम बातों को ध्यान में रखते हुए यह समस्या उत्पन्न हुई कि यूरेनियम आक्साइड को इसके साथ प्रतिक्रिया करने के लिए किस धातु के पात्रों का प्रयोग किया जाय। इस समस्या को सुलझाने में एक नए प्रकार के पदार्थों का आविष्कार हुआ, जिन्हें फ्लोरों-कार्बन के पदार्थ कहते

हैं। यह फ्लोरिक के संहारक गुण का सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकते हैं। इनके विशेष प्रकार के पात्र बनाये गये। इनकी सहायता से, एक ही प्रक्रिया द्वारा, यूरेनियम आक्साइड को हरे रंग के हैक्स पदार्थ में बदल डाला जाता है।

गैसीय विसरण (Gaseous Diffusion) के बड़े-बड़े यन्त्रों द्वारा हैक्स से यू-२३५ को सफलतापूर्वक पृथक कर लिया जाता है। जहाँ तक प्लुटोनियम तत्व का सम्बन्ध है, यह प्रकृति में नहीं मिलता। इसको कीमियागिरी कला द्वारा विशुद्ध यूरेनियम २३८ से तैयार किया जाता है। विशुद्ध यूरेनियम हैक्स से एक ही प्रक्रिया में प्राप्त हो जाता है। विशुद्ध यूरेनियम एक कठोर पदार्थ है। इसमें एक विशेष प्रकार की चमक तथा मौलिक सुन्दरता होती है। हवा में अधिक समय तक खुला रहने पर, इस पर धूसर रंग की राख जम जाती है। इससे बचाने के लिए इसकी शलाकाओं को एल्यूमिनियम के डिब्बों में रक्खा जाता है। प्लुटोनियम को तैयार करने के लिए नाभिकीय प्रतिक्रिया वाहक (Nuclear Reactor) जैसे बड़े-बड़े यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इन यन्त्रों में न्यूट्रानों के आक्रमण से यूरेनियम के नाभिक का विस्फोट होता रहता है। इन विस्फोटों द्वारा उत्पन्न गरमी से इन यन्त्रों को बचाने के लिए, इनको पानी के प्रवाह से ठंडा रक्खा जाता है। है। इसी प्रकार, इनसे अत्यन्त प्राणघातक किरणों को रोकने के लिए सीसा (Lead) तथा कन्क्रीट (Concrete) की बड़ी बड़ी मोटी दीवारों का आश्रय लिया जाता है। प्रतिक्रिया को चालू रखने के लिए एक विशेष प्रकार की न्यूट्रान शोषक शलाकाओं का प्रयोग किया जाता है। न्यूट्रान के शोषण से प्रतिक्रिया धीमी पड़ जाती है। इस प्रकार प्रतिकिया चलते रहने के पश्चात निम्नलिखित समीकरण के अनुसार यूरेनियम २३८, प्लुटोनियम में बदल जाता है।

$$ {}^{२३८}_{९२}\text{यू} + {}^{१}_{०}\text{न्यू} \longrightarrow {}^{२३९}_{९३}\times + \text{ऋणाणु} $$

$$ {}^{२३९}_{९३}\times + {}^{१}_{०}\text{न्यू} \longrightarrow {}^{२३९}_{९४}\text{प्लूटोनियम} + \text{ऋणाणु} $$
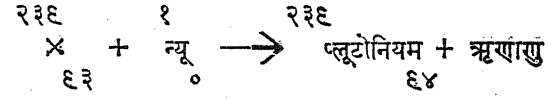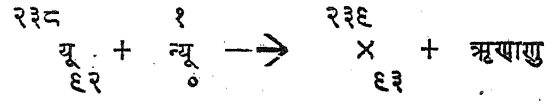
इसका परमाणु भार २३९ तथा परमाणु अंक ९४ है। यह रैडियमधर्मी तत्व बहुत विषैला है। प्लूटोनियम तथा यू-२३५ ही परमाणु शक्ति के मूलभूत पदार्थ हैं। इनकी विशेषता यह है कि न्यूट्रान द्वारा इनके नाभिक में ऐसी प्रतिकिया होती है, जिसके फलस्वरूप कुछ नये न्यूट्रान तथा गतिज उर्जा (Kinetic Energy) की काफी मात्रा प्राप्त होती है। यह न्यूट्रान क्रमशः इन तत्वों के दूसरे परमाणुओं के नाभिकों से टकराकर, इस प्रतिक्रिया के क्रम को चालू रखते हैं। इसी प्रकार गतिज उर्जा दूसरे कणों से टकराकर बहुत अधिक मात्रा में उष्मा उत्पन्न करती है। यही उष्मा परमाणु शक्ति का आधार है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज जिस परमाणु शक्ति की इतनी चर्चा है इसका श्रेय सच्चे अर्थ में यूरेनियम धातु के इन दो तत्वों को ही है जो अपने विशेष गुणों के कारण, नाभिकीय प्रतिकिया की शृङ्खला द्वारा इस शक्ति का उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। इसके साथ ही यह भी पता लगता है कि इसका आधार उन खोजों पर है जो आज तक इस क्षेत्र में भिन्न-भिन्न देशों के वैज्ञानिकों द्वारा हुई है। अतः इसके रहस्यों पर पर्दा डालना कुछ ठीक नहीं जँचता। इससे विज्ञान की उन्नति में बाधा ही पड़ सकती है।

अतीत के गर्भ से

मनुष्य के पूर्वजों की नयी हड्डियों की खोज

पी० बोरिस्कोव्स्की, डी० एस-सी० (इतिहास)

मनुष्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त की मुख्य-मुख्य बातों की स्थापना १६वीं शताब्दी के अन्त में हुई थी। ये मुख्य-मुख्य बातें संक्षेप में निम्नलिखित हैं।

मनुष्य की उत्पत्ति मानव-सदृश वनमानुसों की 'ड्रायोपिथेकस' नामक एक लुप्त जाति से हुई है जो अब से करोड़ों वर्ष पहले जीवोत्पत्ति के तृतीय चरण (वराहयुग) के उत्तरार्द्ध में पायी जाती थी। आजकल का मानव-सदृश बनमानुस (गोरिल्ला, चिंपाजी तथा ओरंग-ऊटंग) उसी में का निकला हुआ दूसरा वंशक्रम है जो कि मनुष्य से बहुत थोड़ा-थोड़ा मिलता है, क्योंकि ये बनमानुस भी 'ड्रायोपिथेकस' के वंशज हैं। 'ड्रायोपिथेकस' और आधुनिक मनुष्य के बीच कई अन्तरिम रूपों का एक क्रम था— 'पिथेकैन्थ्रोपस', 'निएन्डर्थल मैन' आदि। हमारे पूर्वजों के शारीरिक रूप के क्रमिक विकास की ये विभिन्न मंजिलें थीं। सामाजिक श्रम के दौरान में मनुष्य ने पशु का रूप छोड़ दिया, श्रम ने मनुष्य का निर्माण किया।

परन्तु नृतत्वज्ञान एक जगह स्थिर नहीं रहता, नयी खोजें की जाती हैं और प्राप्य तथ्यों के बीच-बीच में अपूर्तियाँ हैं वे धीरे-धीरे पूर्ण होती जाती हैं। अभी कुछ ही समय पहले तक 'ड्रायोपिथेकस' और प्राचीनतम बनमानुस-सदृश मानव 'पिथेकैन्थ्रोपस", जो अब से लगभग ८००,००० वर्ष पहले पाया जाता था, के बीच के अन्तरिम रूप अज्ञात थे। पिछले दो दशकों की खोजों की बदौलत यह अपूर्ति बहुत बड़ी हद तक पूरी कर ली गयी है। दक्षिणी अफ्रीका की गुफाओं तथा पत्थर की खानों में 'आस्ट्रेलोपिथेकस' अर्थात् दक्षिणी बनमानुस के अनुसंधान का विशेष महत्व है। 'आस्ट्रेलोपिथेकस अब से लगभग दस लाख वर्ष पहले पाया जाता था। ये नर वानर मुख्यतः अपने निचले अवयवों के सहारे चलते-फिरते थे। उनकी लम्बाई लगभग मनुष्य के बराबर ही थी और उनके मस्तिष्क का आकार मानव-सदृश वनमानुसों की किसी भी लुप्त या आधुनिक जाति के मस्तिष्क की अपेक्षा अधिक बड़ा था; कभी-कभी तो उसका आकार ७०० घन सेन्टीमीटर होता था।

'आस्ट्रेलोपिथेकस' मानव-सदृश बनमानुस से मनुष्य तक संक्रमण की एक मंजिल थी। कुछ वर्ष पहले 'आस्ट्रेलोपिथेकस' की हड्डियों के साथ पशुओं की ऐसी खोपड़ियाँ पायी गयीं जो किसी भारी वस्तु के आघात से टूटी थीं। इस अनुसंधान ने एंगेल्स के इस प्रख्यात सिद्धान्त की पुष्टि कर दी कि बनमानुस से मानव तक के संक्रमण की प्रकिया में मांसाहार ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यह स्पष्ट है कि पशुओं के शिकार की उत्पत्ति मनुष्य से नहीं हुई और यह भी स्पष्ट है कि 'आस्ट्रेलोपिथेकस' ही डंडों या पत्थरों की सहायता से बहुत बड़े-बड़े पशुओं पर आक्रमण करने लगा था।

मानव की उत्पत्ति से संबंधित एक रोचक अनुसंधान पूर्वी जियार्जिया में एन० ओ० बुर्चाकएब्रामोविच और ई० जी० गाबाशविली नामक जियार्जियाई लुप्त-जन्तुशास्त्र-वेत्ताओं ने किया। यह गवेषणा सबसे पहले १९४५ में प्रकाशित की गयी। उन्होंने 'गारदजियान उबानोपिथेकस' नामक मानव-सदृश बनमानुस के, जिसका 'ड्रायोपिथेकस' तथा 'आस्ट्रेलोपिथेकस' से निकट सम्बन्ध था, दो दांत और ऊपरी जबड़े का एक भाग ढूँढ़ निकाला था।

'उबानोपिथेकस' अब से दस लाख वर्ष पहले पाया जाता था। गैंडों, मैस्टोडोनों (हाथी की एक लुप्त जाति), जिराफों तथा लकड़बग्घों की हड्डियाँ भी, जो उस युग में ट्रांसकाकेशस में रहते थे इन अवशेषों के साथ पायी गयीं। 'उबानोपिथेकस' की हड्डियों का अनुसंधान यह सिद्ध करता है कि ट्रांसकाकेशस उस विस्तृत प्रदेश का ही अंग था जो मानव की प्रथम जन्मभूमि थी।

हमारे पास 'पिथेकैन्थ्रोपस' के बारे में भी, जिसकी हड्डियाँ पहली बार अब से ६० वर्ष पहले जावा में पायी गयी थीं, नये तथ्य हैं। पिछले दो दशकों में जो खोज-बीन की गयी है, उसके फलस्वरूप वैज्ञानिकों के पास 'पिथेकैन्थ्रोपस' की ७ जातियों के अवशेष हैं। उनकी खोपड़ियों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि इन प्राचीनतम बनमानुस-सदृश मानवों को वाणी की क्षमता प्राप्त हो चुकी थी। 'सिनैन्थ्रोपस' अर्थात् 'चाइनीज मैन', जो अब से ५-६ लाख वर्ष पहले पाया जाता था, बनमानुस-सदृश मानवों के एक ऐसे समूह से सम्बन्ध रखता है जो 'पिथेकैन्थ्रोपस' समूह से बहुत मिलता-जुलता है।

१९२७ और १९३७ के बीच चीनी वैज्ञानिकों ने पीकिंग के निकट चाउकाउतियान नामक गाँव के निकट ४० से अधिक 'सिनैन्थ्रोपसों की हड्डियाँ पायीं। चीन की विज्ञान अकादमी अब और 'सिनैन्थ्रोपसों' के अवशेषों की खोज में खुदाई करवा रही है। यह काम पेई वेन-चुआंग, इयांग चुंग-त्सियान तथा अन्य चीनी वैज्ञानिकों की निगरानी में हो रहा है और इसके फलस्वरूप और 'सिनैन्थ्रोपसों' की हड्डियाँ मिली हैं और उनके रहन-सहन की आदतों का कुछ संकेत मिला है। इन अवशेषों से मनुष्य की एक लाक्षणिक आदत का पता चलता है जो उसने श्रम के दौरान में प्राप्त की : मुख्यतः दाहिने हाथ का उपयोग।

'सिनैनथ्रोपस' पत्थरों को अच्छी तरह गढ़ सकते थे और उसे तेज कर सकते थे। वे आग का इस्तेमाल भी जानते थे।
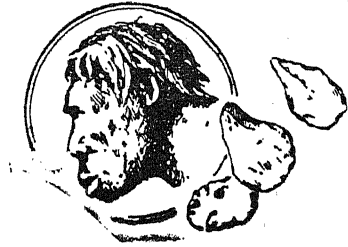
'पिथेकैन्थ्रोपस' प्राचीन-तम मानव हैं जिसके जीवाश्म (फासिल) पाये गये हैं। उसके युग के औजार पत्थर के गढ़े हुए खुरदुरे टुकड़े होते थे।

'पिथेकैन्थ्रोपस' और 'सिनैन्थ्रोपस' की हड्डियों के अध्ययन से एक ऐसी विशिष्टता का पता चलता है जो प्रारंभ में बहुत विचित्र मालूम होती है : इन प्राचीनतम

निएन्डर्थल मनुष्य ने पहले-पहल आग जलाना सीखा और वह नुकीले पत्थरों और खुरचने के साधनों से पशुओं की खाल भी उतारता था।

क्रो-मैगनोन की आकृति आधुनिक मानव शरीर जैसी थी वह पत्थर और हड्डियों से विविध प्रकार के औजार बनाता था।

मानवों की खोपड़ियों की अपेक्षा उनके हाथ-पैर आधुनिक मानव से ज्यादा मिलते-जुलते हैं; उनकी खोपड़ी कई छोटी-छोटी बातों में नर-वानरों की खोपड़ी से मिलती-जुलती है। यह प्रत्यक्ष असंगति इस सिद्धान्त का अकाट्य प्रमाण है कि बनमानुस से मनुष्य तक के संक्रमण की प्रक्रिया में श्रम की भूमिका बहुत बड़ी है।

बनमानुस सदृश मानवों के इस समूह में 'हीडेलबर्ग मैन' भी शामिल है जिसका निचला जबड़ा १६०७ में जर्मनी में पाया गया था। बनमानुस सदृश मानव की हड्डियाँ हाल ही में वियतनाम और दक्षिणी तथा पूर्वी अफ्रीका में पायी गयी हैं। 'एटलान्थ्रोपस' के जबड़े की दो हड्डियों की खोज एक विशेषतः रोचक खोज है; ये हड्डियाँ प्रोफेसर आरमबूर को जून १६५४ में उत्तरी-अफ्रीका में तेर्निफिन में खुदाई के समय मिली थीं। शारीरिक रचना की दृष्टि से 'तेर्निफिन एटलान्थ्रोपस' 'सिनैन्थ्रोपस' से बहुत मिलता-जुलता था। वह अब से कई लाख वर्ष पहले प्रस्तर युग के आरम्भ में पाया जाता था।

निएन्डर्थल मनुष्य बड़े-बड़े पशुओं को घेर कर बड़े पैमाने पर शिकार करता था।

भविष्य में जो पुरातत्व-सम्बन्धी तथा भूगर्भ-सम्बन्धी अन्वेषण होंगे उनमें निस्संदेह बनमानुस सदृश मानवों के कुछ और अवशेष मिलेंगे।

अबसे लगभग एक लाख वर्ष पहले प्रस्तर युग (पैलियोलिथिक युग) के मध्य में बनमानुस सदृश मानव 'निएन्डर्थल मैन' में परिवर्तित हो गया, जिसकी शरीर-रचना आधुनिक मानव से बहुत ज्यादा मिलती-जुलती थी। सोवियत पुरातत्ववेत्ताओं और नृतत्ववेत्ताओं ने अपने इस पूर्वज के बारे में हमारी जानकारी में बहुत योग दिया है, विशेष रूप से जी० ए० बोन्च-ओस्मोलोव्स्की और ए० पी० ओक्लादनिकोव ने जिन्होंने कीमिया की कीक-कोबा नामक गुफा में और उजबेकिस्तान के दक्षिण में तेशिक-ताश नामक गुफा में 'निएन्डर्थल मैन' की हड्डियों का पता लगाया।

प्रस्तर युग के उत्तरार्द्ध में, अब से ४०,००० से १५,००० वर्ष पहले तक, 'निएन्डर्थल मैन' के वंशज, जो शारीरिक दृष्टि से आधुनिक मानव की जाति के थे, योरप, एशिया तथा अफ्रीका में फैल गये। तीन मुख्य आधुनिक जातियों—'यूरोप्वायड (क्रोमैगनोन), 'नीग्रायड' (ग्रिमाल्डी जाति) और 'म्लांग्लायड' जातियों—के प्रथम प्रतिनिधि भी इसी युग में अस्तित्व में आये। अभी कुछ ही समय पहले तक सोवियत संघ के इलाके में उस युग की प्रायः कोई भी हड्डियाँ नहीं मिली थीं परन्तु ९५२ से १९५४ तक सोवियत पुरातत्ववेत्ताओं ने दोन नदी के किनारे वोरोनज के निकट कोसतेन्की नामक गाँव में प्रस्तर युग के मनुष्यों के चार कंकाल पाये।

यहीं पर अपेक्षाकृत एक बहुत ही छोटे इलाके में २० आदिम शिकारी पड़ावों के अवशेष भी पाये गये। सोवियत नृतत्ववेत्ता जी० एफ० देबत्स, जो कोस्तेन्की के कंकालों का अध्ययन कर रहे हैं, इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि १९५३ में जो कंकाल मिला था वह 'यूरोप्वायड' जाति का है और १९५४ में पाया गया कंकाल 'नीग्रायड' जाति का है।

दोन के मध्यभाग में प्रस्तर युग के 'नीग्रायड' अव-शेषों का पाया जाना बहुत ही अनोखी बात है और यह निस्संदेह इस बात का प्रमाण है कि योरप के आदिम निवासी कितनी दूर-दूर तक फैल गये थे।

सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी की भौतिक संस्कृति के इतिहास की इंस्टीटयूट कोस्तेन्की में खुदाई जारी रखने के उपाय कर रही है। उनके फलस्वरूप नये वैज्ञानिक अनुसंधान होंगे।

—"सोवियट भूमि" से

प्रतिभास तथा उसकी उपयोगिताएँ

श्री० हरिमोहन, भौतिक-शास्त्र विभाग, विश्व-विद्यालय, प्रयाग

प्रतिभासिक पेण्ट्स तथा वार्निस

(Fluorescent paints and varnishes)

विज्ञान, मानव की निरन्तर एवं अक्षुण्ण जिज्ञासा तथा प्रगति, इन तीनों का एक अटूट सम्बन्ध है। ज्यों-ज्यों नवीनतम वस्तुओं तथा उपकरणों का निर्माण होता जाता है त्यों-त्यों मानवीय जिज्ञासा की यह अजस्र प्रवहिनी धारा उत्तरोत्तर गतिमय होती जाती है। विलासिता एवं सुख के अन्यान्य विविध प्रसाधनों से लेकर मानव-विनाश के क्रूरतम साधन अणुबम तथा उद्जन बम आज इसी द्रुत गति के परिचायक हैं, फिर भी वैज्ञानिक गवेषणा का रथ अग्रगामी है तथा प्रकृति के नितनूतन रहस्य खुलते ही जाते हैं।

'विज्ञान' के गत अंकों में हम प्रतिभास (Fluorescence) तथा उसकी विभिन्न एवं बहुमुखी उपयोगिताओं का परिचय कराते आ रहे हैं, प्रस्तुत निबन्ध भी उसी माला का एक मुक्तक है। इसमें विभिन्न प्रकार के अवदीप्यशील पेण्ट्स (Luminiscent paints) का परिचय देते हुए उनकी विविध उपयोगिताओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

परिभाषा के रूप में अवदीप्यशील पेण्ट किसी ऐसे पेण्ट अथवा लेप को कहते हैं जिसको यदि किसी वस्तु पर पोत दिया जाय तो वह अमुक वस्तु चमकने लगती हैं तथा इस प्रकार वह स्वयं अवदीप्यशील हो जाती है। औद्योगिक उपयोगिता की दृष्टि से हम उपलब्ध अवदीप्यशील पेण्ट्स को तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

१. प्रतिभासिक (Fluorescent)

२. स्फुरणशील (Phosphorescent)

३. आत्मदीप्तिवान् (Selt-Luminious)

इनमें से तीनों प्रकार के पेण्ट्स का विवरण पृथक-पृथक किया जायगा। साधारणरूप से किसी वस्तु को अवदीप्यशील (Luminiscent) बनाने के लिए उस पर कोई उपयुक्त अवदीप्यशील पेण्ट् पोत दिया जाता है जिसके फलस्वरूप वह वस्तु स्वयं अवदीप्यशील हो जाती है। यह अत्यन्त ही सामान्य विधि है। बिना पेण्ट पोते भी वस्तुओं को यह गुण प्रदान किया जा सकता है। उदाहरणतया प्लास्टिक इत्यादि की बिभिन्न वस्तुएँ बनाते समय वस्तु-निर्माण के पूर्व ही प्लास्टिक के विलयन में कोई उपयुक्त विलयन डाल दिया जाता है जिससे निर्मित वस्तुएँ अवदीप्यशील हो जाती हैं। कागज तथा कपड़े को वस्तु-निर्माण के पूर्व ही किसी अवदीप्यशील विलयन में रंग लिया जाता है जिससे निर्मित वस्तुएँ चमकने लगती हैं, परन्तु इस विधि का क्षेत्र सीमित ही है तथा इसका प्रयोग वस्तु के आकार-प्रकार पर आश्रित रहता है वस्तुतः ऐसे पेण्ट्स का ज्ञान अभी आरंभिक अवस्था में ही है तथा इस दिशा में भी गवेषणा जागरूक है।

१—प्रतिभासिक पेन्ट्स (Fluorescent paints)

ये पेण्ट्स ऐसे होते हैं जो अतिबैंजनी प्रकाश-पुंज (ultra violet light) अथवा किन्हीं अन्य प्रभावशाली प्रकाश-किरणों से प्रभावित होकर विभिन्न प्रकार का प्रतिभासिक वर्ण निस्सृत करते हैं परन्तु क्रियमाण प्रकाश-पुंज के हटा लिए जाने पर प्रतिभास-निस्सरण भी लुप्त हो जाता है। इन प्रतिभासिक पेण्ट्स के निर्माण की सर्वसाधारण विधि किसी भी प्रतिभासिक कार्बनिक यौगिक को किसी विशेष तैलीय आधार (oil base) पर विलयन (Solution) का रूप देना होता है। विलय-आधार (Solvent base) ऐसा चुनना चाहिए जिसकी यौगिक के साथ कोई प्रक्रिया न हो। विभिन्न तैलीय-आधारों पर किसी एक यौगिक के विलयनों में यौगिक तथा पृथक-पृथक अपितु विशिष्ट अनुकूलतम सांद्रण (Specific Optimum Concentration) होता है जब कि पेण्ट की दीप्ति-सामर्थ्य अधिकतम होती है। ये सब बातें यौगिक को प्रयोग करने से पहले ही अन्य साधनों द्वारा ज्ञात कर लेना आवश्यक रहता है तथा इन सब बातों को जान लेने के पश्चात ही उपयुक्त यौगिक तैलीय आधार तुलनात्मक मात्रा में लेकर विलयन बनाना चाहिए।

यदि प्रयुक्त विलय-आधार पारदर्शक (Transparent) है तब तो उपयुक्त यौगिक का चयन और भी सावधानी से करना चाहिए। जब वस्तु पर पोता हुआ पेण्ट सूख जाय तब उसकी सुरक्षा के लिए किसी द्रव (Lacquer) का एक पर्त चढ़ा देना चाहिए। यह द्रव तथा आधार-विलयन (Base solvent or vehicle) दोनों ही ऐसे होने आवश्यक हैं कि क्रियमाण अतिबैंजनी रश्मि-पुंज के लिए पारदर्शक हों तथा धूप से अप्रभावित।

नीचे की तालिका में कुछ ऐसे ही रंगों तथा कार्बनिक यौगिकों का विवरण दिया गया है जो अवदीप्यशील पेण्ट्स बनाने में बहुधा प्रयुक्त होते हैं :—

लाल	रोडामिन बी० एक्सट्रा
नारंगी	रोडामिन बी० एक्सट्रा + औरोमिन बेस
पीला	रोडामिन ६ जी० एक्सट्रा + औरोमिन बेस
हरा मिश्रित पीला	औरोमिन + प्राइमुलीन
नीला	कार्बेजोल तथा काइजीन
नीला मिश्रित बैजनी	ऐन्थ्रासीन

रोडामिन रङ्गों (Rhodamine dyes) को सेलूलोज नाइट्रेट (Cellulose nitrate) अथवा एसिटेट में घोल कर एक अत्यन्त सुन्दर प्रतिभासिक प्लास्टिक की चादर बन जाती है। कपड़े को प्रतिभासिक बनाने के लिए उसे किसी ऐसे द्रव-विलयन में डुबा दिया जाता है जिसमें उपयुक्त तथा अभीष्ट अवदीप्यशील यौगिक की लगभग १% मात्रा हो। इस दशा में भी रोडामिन रंग ही सर्वोपयोगी सिद्ध हुए हैं। रोडामिन ६ जी० का प्रतिभासिक वर्ण (Fluorescent Tinge) सूत पर गुलाबी-पीला, रेशम पर पीला सुनहरा तथा ऊन पर लाल सुनहरा इत्यादि होता है। कहीं-कहीं पर कपड़े के स्वयं के प्रतिभास के कारण वास्तविक प्रतिभासिक वर्ण में कुछ परिवर्तन आ जाते हैं, उपयोग के समय इसका ध्यान रखना भी परमावश्यक है। कुछ रङ्गों को जब रेशम पर चढ़ाया जाता है तो तीव्र प्रतिभासिक सिद्ध होते हैं, परन्तु वे ही रंग जब सूत अथवा ऊन पर चढ़ाये जाते हैं तो तनिक भी प्रतिभास उपलब्ध नहीं होता। अतः विभिन्न दशाओं में यथा स्थान, यथा इच्छा, पृथक-पृथक अवदीप्यशील यौगिकों, आधार-विलयनों तथा आवरण-द्रवों का उपयोग किया जाता है।

प्रतिभासिक लेखन-स्याहियाँ (Fluorescent writing inks) भी बनाई जाती हैं। लाल प्रतिभास

के लिए रोडामिन तथा नीले प्रतिभास के लिए कुइनीन सल्फेट को जल में घोल दिया जाता है। छापने के लिए हम इन प्रतिभासिक स्याहियों को उसी भाँति प्रयोग कर सकते हैं जिस प्रकार अन्य स्याहियाँ प्रयुक्त होती हैं। इन प्रतिभासिक स्याहियों द्वारा लिखे अक्षर अति बैंजनी प्रकाश में बड़ी सुगमता एवं सुन्दरता पूर्वक चमकते हैं। इसी प्रकार की कुछ स्याहियों द्वारा लिखे अक्षर साधारण प्रकाश में अदृश्य रहते हैं परन्तु अतिबैंजनी प्रकाश-पुञ्ज में विभिन्न वर्णों से चमकते हैं।

मिट्टी तथा चीनी के बर्तनों पर सामान्यतः प्रतिभासिक झलक लाने के लिए मैंगनीज द्वारा क्रियान्वित जिंक बोरेट (Mn-activated Zn Borate) प्रयोग में लाया जाता है तथा बर्तनों को लगभग ८५०°C पर पकाया जाता है। पूर्ण अन्धकार में तथा श्याम प्रकाश में (Black light, ultraviolet light as obtained through a 'wood' filter) इन वस्तुओं की छटा देखते ही बनती है। सामान्य प्रकाश के लुप्त होने पर अन्धेरे में अवदीप्यशील धरातल स्वयं प्रकाश-स्रोत बन जाते हैं इसीलिए थियेटरों, विलासगृहों तथा रात्रि-क्लबों में अवदीप्यशील दरियां बिछी रहती है तथा दीवारों पर विभिन्न अवदीप्यशील पेण्ट्स की सहायता से नाना प्रकार के चित्रादि बने रहते हैं। कमरे में नितान्त अन्धकार रहने पर भी छोटे-छोटे श्याम-दीपों (Black lamps) द्वारा क्रियान्वित ये वस्तुएँ विभिन्न वर्णों वाली दृष्टिगोचर होती हैं तथा एक अच्छा जादू का खेल सा सामने आ जाता है।

केवल सजाने तथा खेल आदि के ही प्रयोग में आने के अतिरिक्त इन पेण्टस के अनेकों उपयोग हैं। अन्धेरे में उदाहरणतः ब्लैक-आउट के समय अस्पतालों, उद्योगगृहों (Work shops) तथा चित्र चलते सिनेमा हालों में इन प्रतिभासिक पेण्ट्स द्वारा पुते रहने के कारण दरवाजे, सीढ़ियां, कोनें तथा मशीनों के भाग तथा अन्य आपत्तिजनक वस्तुएँ दृश्यमान रहती हैं तथा कमरे के अन्य स्थानों पर प्रकाश फैलने भी नहीं पाता। हवाई-जहाजों के स्विच-बोर्ड में छोटे-छोटे श्याम-दीप (Black lamps) लगे रहते हैं जो विभिन्न उपकरणों के अवदीप्य-शील भागों को क्रियान्वित करके रात्रि के निविड़ अन्धकार में भी कार्यसम्पादन को अत्यन्त सरल बना देते हैं। मिलिट्री के गुप्त चित्र बहुधा अवदीप्यशील कागज पर छपे रहते हैं जिससे वे रात्रि में भी सरलतापूर्वक पढ़े जा सकें। कुछ रोडामिन पेण्ट्स की यह विशेषता होती है कि उनमें पीले प्रकाश द्वारा ही लाल प्रतिभास निस्सृत होता है अतः ये पेण्ट्स ऐसे चौराहों पर जिन पर पीला तीव्र प्रकाश देने वाले (Sodium lamps) लगे रहते हैं निर्देशक-स्तम्भों के लिए अत्यन्त उपयोगी होते हैं क्योंकि रात्रि के उस पीले प्रकाश में भी वे लाल ही चमकते हैं जैसा कि दिन में दिखाई पड़ते हैं। अनेकानेक प्रसाधन की वस्तुओं जैसे लिप-स्टिक इत्यादि में भी कभी-कभी कुछ मात्रा ऐसे अवदीप्यशील पदार्थ की मिला दी जाती है जिससे सोडियम तथा मर्करी के प्रकाश में भी ओठों इत्यादि का वर्ण प्राकृतिक ही रहता है।

कार्बनिक प्रतिभासिक पेण्ट्स को सूर्य के प्रकाश में निरन्तर खुला नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि इससे ये पेण्ट्स निरन्तर अपनी दीप्तिसामर्थ्य खोते रहते हैं। यदि ऐसा अनिवार्य ही हो कि अवदीप्यशील धरातल निरन्तर प्रकाश में खुला ही रहे जैसा कि हवाई जहाज के डायल इत्यादि, तब ऐसी दशा में ऐसे पेण्ट्स का उपयोग उचित रहता है जिनमें अकार्बनिक यौगिक ही प्रयुक्त किए जायँ ऐसे पेण्ट्स पर ऋतु-परिवर्तन पर प्रभाव भी बहुत कम

होता है। इनमें मुख्यतः कैल्शियम टन्गस्टेट, फ्लोराइट तथा जिंक सल्फाइड प्रयुक्त होते हैं।

२—स्फुरणशील पेण्ट्स (Phosphorescent paints)

ये पेण्ट्स ऐसे होते हैं जो अतिबैंजनी प्रकाशपुञ्ज अथवा अन्य प्रभावशाली प्रकाश-रश्मियों से प्रभावित होकर विभिम्न प्रकार का प्रतिभासिक वर्ण निस्सृत करते हैं तथा क्रियमाण प्रकाशपुंज के हटा दिए जाने पर प्रतिभास-निस्सरण पर्याप्त समय चलता रहता है तथा प्रतिभासिक पेण्ट्स की तरह तत्क्षण समाप्त नहीं होता। ऐसे स्फुरणशील पेण्ट्स (Phosphorescent paints) बनाने के लिये ऐसे यौगिकों का लेना आवश्यक है जिनका परि-आभास (After-glow) अधिक समय तक रहनेवाला हो तथा वे साधारण प्रकाश द्वारा ही क्रियान्वित हो सके अतः इनके लिए साधारणतया अल्कलाइन अर्थ सल्फाइड तथा जिंक सल्फाइड ही प्रयुक्त होते हैं। सामान्य रूप से प्रयुक्त होनेवाले विलय-आधार (Solvent bases) भी इन पेण्ट्स में उपयोगी सिद्ध नहीं होते। साधारण विलय-आधारों की इन यौगिकों के साथ रासायनिक प्रक्रिया होती है, जिसके फलस्वरूप इन पेंट्स का स्फुरण-गुण प्रायः लुप्त मात्र ही हो जाता है। प्राकृतिक रेजिन का जायलीन में विलयन ही इन पेंट्स में विलय आधार के रूप में प्रयोग किया जाता है। जल से रक्षा के लिए इनमें लगभग ५% मोम तथा पैराफीन मिला दिया जाता है।

जिस वस्तु पर यह पेण्ट करना होता है चाहे वह लकड़ी, धातु, शीशा तथा प्लास्टिक किसी की भी हो, उसे पूर्णरूप से साफ कर लिया जाता है तथा उसके ऊपर स्फुरणशील लेप पोत दिता जाता है। इस अवदीप्यशील लेप के ऊपर किसी पारदर्शक आवरण द्रव का होना परमावश्यक है जो पेण्टकी हवा तथा पानी से रक्षा करता है। इन स्फुरणशील पेण्ट्स के लिए यह आवश्यक नहीं कि आभास उपलब्धि के लिए क्रियमाण प्रकाश निरन्तर पड़ता ही रहे वरन् एक बार उत्तेजित होने पर कई घंटों तक आभास प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार के पेण्ट्स के अनेक लाभ हैं किसी कमरे का प्रकाश लोप हो जाने पर वहाँ की वस्तुएँ निरन्तर चमकती रहती हैं। स्विच-बोर्ड के बटन इत्यादि भी स्फुरणशील पेण्ट् युक्त प्लास्टिक के बनाये जाने लगे हैं ताकि रात्रि के अन्धकार में भी दृष्टिगोचर हो। इस प्रकार के पेण्ट्स का प्रचार अभी अधिक नहीं है तथा विभिन्न परि-आभास (After-glow) तथा विभिन्न वर्ण निस्सृत करने वाले स्फुरणशील पेण्ट्स के निर्माण के लिए गवेषणा जागरूक है।

३—रेडियमधर्मितायुक्त आत्मदीप्तिवान् पेण्ट्स (Radioactive Self-Luminious-paints)

साधारण स्फुरणशील पेन्ट्स का, जिसमें सामान्यतः कैल्शियम, टिन अथवा जिन्क के सल्फाइड्स ही प्रयुक्त होते हैं, परि-आभास काल (After glow period) चार पाँच घंटों से अधिक नहीं होता। इतने समय पश्चात् इन पेण्ट्स को पुनः प्रकाश द्वारा उत्तेजित करना अनिवार्य हो जाता है। जिन्क सल्फाइड के स्फुर-यौगिकों को उत्तेजन शक्ति प्रदान करने का सर्व सुगम साधन अल्फा—किरणें हैं। यदि किसी रेडियम-धर्मी यौगिक (Radio-active compound) का जिससे अल्फा—किरणें निकलती हों, जिन्क सल्फाइड के साथ मिला पेण्ट बनाया जाय तब उस दशा में ऐसे पेण्ट का प्रतिभास तब तक निरन्तर विद्यमान रहेगा जब तक कि अल्फा—किरण निस्सरण समाप्त ही न हो जाय। रेडियम का अर्ध-आयुकाल (Half-life period) १०० वर्ष से ऊपर ही होता है अतः रेडियम युक्त स्फुरणशील पेण्ट का प्रतिभास निरन्तर बना रह सकता

है तथा पेण्ट् को बार-बार क्रियान्वित कराने की आवश्यकता नहीं। परन्तु रेडियम तथा रेडियम यौगिकों का मूल्य अपेक्षाकृत अधिक होता है अतः सामान्यतः ऐसे पेन्ट्स मेसोथोरियम प्रयोग में लाया जाता है इसका अर्थ आयुकाल (Half-life period) लगभग ८ वर्ष है। स्वयं मेसोथोरियम बीटा—निस्सरक (β-Omitter) है परन्तु इसकी डिसिन्टीग्रेशन प्रॉडक्ट रेडियो थोरियम अल्फा—निस्सरक है। अतः मेसोथोरियम ही ऐसे पेन्ट्स में प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के पेण्ट्स की वास्तविक विधि निर्माता की धरोहर (Monopoly) होती है। सैद्धान्तिक दृष्टि से यह इस प्रकार ! (Cu-activated-Zns) कॉपर ऐक्टीवेटेड जिंक सल्फाइड को किसी विशिष्ट अनुपात में रेडियम ब्रोमाइड अथवा मेसोथोरियम के पानी में विलयन के साथ मिला लिया जाता है। इस विलयन का वाष्पीकरण कर दिया जाता है तथा उसके पश्चात् उसे उत्तरोत्तर वर्धमान् तापक्रम में सुखा लिया जाता है। अधिक कर्म करने से तथा यौगिक के कणों को अधिक महीन पीसने से पेण्ट की दीप्ति-सामर्थ्य पर्याप्त कम हो जाती है। जब यह विलयन सूख जाय तब उसे किसी चेपक (Adharent) में घोल लिया जाता है। इसके पश्चात् जिस वस्तु को अवदीप्यशील बनाना है। साधारणतः अधिक पतले पर्त से अच्छे परिणाम नहीं मिलते इसलिये पर्याप्त मोटा पर्त चढ़ाना चाहिए। इस भाँति के पेण्ट विशेषतः घड़ियों तथा अन्यान्य उपकरणों पर प्रयुक्त किये जाते हैं जिससे उनके अंक बाह्य प्रकाश के बिना भी अंधकार में दृष्टिगोचर हो सकें। अंकों का ठीक प्रकार चमकना केवल इसी बात पर निर्भर नहीं रहता कि कौन सा पेण्ट प्रयुक्त किया गया है वरन पेण्ट किस भांति प्रयुक्त हुआ है इसका विशेष प्रभाव रहता है, विभिन्न प्रयोगों से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अंकों की अधिकतम दीप्ति के लिए अंकों की चौड़ाई तथा ऊँचाई का अनुपात ६:१ ही रहना चाहिए।

इतनी विशेषता होने के फलस्वरूप भी उपलब्ध रेडियमधर्मी यौगिकों तथा उपयुक्त स्फुरणशील पेण्टस की अल्पता एवं बहुमूल्यता के कारण इन पेण्ट्स का प्रचार अभी अत्यल्प ही हैं।

बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट आव् पेलिओबाटनी

पुराउद्भिद् विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धानशाला के अनुसन्धान कार्य का विवरण।
१ अप्रैल १९५१ से ३० नवम्बर १९५३ तक।

प्रस्तावनाः

कदाचित् पहिले यह बता देना अच्छा होगा कि किस प्रकार से फॉसिल या जीवाश्म, चट्टानों में भूतकाल के अभिलेख के रूप में संरक्षित रहते हैं। ठंडे होने से लेकर आज तक पृथ्वी के ऊपरी भाग ने बहुत से ऐसे आकस्मिक घोर परिवर्तनों का अनुभव किया है जिनके द्वारा इसके रूपविन्यास में विस्तृत परिवर्तन हुए हैं। अनेक बार ऐसा हुआ है कि जहाँ जल था वहाँ भूमि हो गयी, और जहाँ भूमि थी वहाँ समुद्र बन गए, अथवा जो भाग पानी के भीतर थे वे ऊपर निकल आए और जो ऊपर थे पानी के नीचे डूब गए। इन घटनाओं के कारण पृथ्वी के रूपविन्यास में अनेक बार परिवर्तन हुए। स्थिर काल में भी स्थल भाग तथा पर्वतों को नदियों ने काटा और नदी के बहाव के साथ पौधों और जीवजन्तुओं के अस्थि पिंजर बहकर समुद्रों और झीलों की तलेटियों में इकट्ठा हो गए। इस प्रकार से जो सामग्री इकठी हुई वह कालान्तर में चट्टान या शिला बन गई। ऐसी शिलाओं का नाम "तलहटी चट्टानें" यह "अवक्षेपज शिला" पड़ा। इन चट्टानों के बीच में बनस्पतियों और जीवजन्तुओं के अवशेष सुरक्षित हो गए। शिलाओं की जब कटाई या खुदाई की जाती है, तो उनमें से कुछ पर इन्हीं वनस्पतियों और अस्थिपिंजरों के चित्र अंकित पाए जाते हैं। इन अवशेषों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि कौन सी शिला किस युग की बनी है, अथवा किस युग में किस प्रकार वनस्पतियाँ थीं। लखनऊ की इस प्रयोगशाला का भी उद्देश्य इसी प्रकार का अध्ययन करना है।

वर्ग १. प्राचीन पौधों की आकृति तथा उनकी रचना पर अनुसन्धान

कैम्ब्रियन

लगभग ५५,३०,००,००० वर्ष पूर्व। विन्ध्य पर्वत की चट्टानों में शैवाल और छत्रक परिवार के कुछ पौधों के अवशेष पाये जाते हैं जिनके सम्बन्ध में सिथीलेवर्मा और श्रीवास्तव ने कार्य किया। एक प्रकाशित लेख में उन्होंने इन पौधों के अवशेषों का वर्णन किया है तथा अपने अन्वेषणों के आधार पर इनकी समानताओं का विवेचन किया है और यह भी बताया है कि ये अवशेष किस युग के हैं। एक अन्य प्रकाशित लेख में उन्होंने इन सूक्ष्म जीवाश्मों के सम्बन्ध में सामान्य विवरण दिए हैं। इसी सामग्री के आधार पर उन्होंने यह अनुमान लगाने का भी प्रयत्न किया है कि ये तलहटी चट्टानें किस युग की हो सकती हैं।

डिवोनियम

लगभग ३५,४०,००,००० वर्ष पूर्व। डा० हींग ने वार्वे की डिवोनियम युग की चट्टानों में कुछ ऐसे पौधों के अंश पाये थे जिनमें धुरियां और उनके साथ में फैली

हुई अविभाजित मेरुदंड थे। पौधे उन आदिकालीन स्थली पौधों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं जिन्हें सिलोका-इटीज कहते हैं।

कोर्बोनिफेरस

लगभग ३०,६०,००,००० वर्ष पूर्व। अति प्राचीन समय का एक फर्न है जिसका नाम बोट्राइप्टेरिस एंटिका है, उस पर और दूसरे एक फर्न "स्टोरोप्टेरिस बर्नट-आइलेडिका" पर श्री सुरंगे महोदय ने अच्छा कार्य किया है। इनकी आकृतियों के अध्ययन के आधार पर श्री सुरंगे ने यह प्रदर्शित किया है कि आदि काल के फर्नो में आजकल के फर्नो के समान चपटे पत्ते नहीं होते थे। उनमें शाखाओं का क्रम हुआ करता था। सुरंगे जी ने यह भी पता लगाया है कि इन पौधों में विकास सम्बन्धी क्या-क्या प्रवृत्तियां थीं, और किन बाह्य परिस्थितियों में और किन स्थानों पर ये पौधे बढ़ते थे। श्री सुरंगे जी के ये विचार प्रकाशित हो चुके हैं।

परमियन

लगभग २२,३०, ००,००० वर्ष पूर्व। श्री सुरंगे और प्रेम सिंह जी ने बिहार के पश्चिम के बोकारी वाली कोयले की खानों के क्षेत्र में कोयले के स्तरों में से एक में शंकुधर जाति के "बाल्कोमियला" पौधे की डालियाँ पत्तियाँ और बीज पाये हैं। यह शंकुधर अब तक केवल आस्ट्रेलिया में ही पाया जाता था। सर्वश्री सुरंगे, श्रीवास्तव तथा प्रेमसिंह ने बोकारों। विहार। के कुछ कोयले के स्तरों से माइक्रोस्पोर अथवा लघुबीजाणु और मैगास्पोर अथवा वृहत बीजाणु तथा काष्ठ के टुकड़े पाये, जिनके आधार पर उन्होंने उस क्षेत्र के विभिन्न कयले के स्तरों में यह सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया हैं। रानीगंज के कोयले के क्षेत्र में अश्ववार गोत्र सम्बन्धी शंकु। कोन का पाया जाना श्रीवास्तव जी द्वारा स्पष्ट सिद्ध किया गया है। श्री सुरंगे के साथ प्रकाशित दूसरे लेखों में सर्वश्री श्रीवास्तव और प्रेमसिंह ने उन मेगास्पोरों का वर्णन दिया है जो पश्चिमी बोकारों की विभिन्न कोयले की खानों वाले क्षेत्रों में पाए गए। श्री उत्तम प्रकाश ने झरिया के कोयलों की परीक्षा की। उन्होंने कोयले के एक ऐसे स्तर का पता लगाया जो पहले ज्ञात न था और उसका उन्होंने एक अन्य स्तर से यह सम्बन्ध प्रदर्शित किया।

लेले महोदय ने दक्षिणी रीवाँ गोंडवाना की शिलाओं के विन्यास का और उन शिलाओं के स्तर में दबे हुए प्राचीन वानस्पतिक अवशेषों का अध्ययन किया है। इसी स्थान की पारसोरा नामक भू-भागों का भी श्री लेले ने अध्ययन किया। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि विद्वानों में अब तक पारसोरा भू भाग की आयु के सम्बन्ध में मत-वैभिन्य रहा है, और इसलिए श्री लेले के इस अध्ययन का और भी अधिक महत्व रहा है, और यह पारसोरा भू-भाग किस युग का है, हम यह समझ सके हैं। श्री लेले जी ने इस स्थल की शिलाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया है और निकट की अन्य शिलाओं से उनका सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है। इसी इन्स्टीट्यूट में हसू तथा वोस महोदयों ने चीन देश से प्राप्त पुरातन बनस्पतिक अवशेषों का भी अध्ययन किया। इनमें उन्होंने एक विशेष तने का निरीक्षण किया जिसका नाम उन्होंने प्रो० बीरबलसाहनी के नाम पर "कोर्डटीज साहनीई" रक्खा है। सिथीले महोदय ने साल्टरेंज की पर्मियन कालीन शिलाओं में कुछ नये पौधों और दो पत्तियों बाले रज-कणों की खोज की है। श्री राव और वर्मा ने साल्टरेञ्ज से प्राप्त पुरातन "एलगी" या "शैवालों" का भी अध्ययन किया है। इस क्षेत्र में इन्हें जिन्मोसिडियम की तीन नयी जातियाँ

भी मिलीं, जिनका इन्होंने अपने प्रकाशित लेखों में उल्लेख किया है।

जुरासिक काल

लगभग १५,७०,००,००० वर्ष पूर्व। श्री सिथौले और वोस ने बिहार के राजमहल के एक संग्रह का अध्ययन किया। इस अध्ययन के परिणाम स्वरूप उन्हें विलियमसोनिआ जाति के एक नर पुष्प का पता चला, जिसका नाम उन्होंने "विलियमसोनिया सैटालेनसिस" रक्खा है। श्री भरद्वाज के कॉनिफर से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी कई वनस्पतियों का अध्ययन किया जो अब तक राजमहल में नहीं पायी गई थीं। इन वनस्पतियों में से चार तो नई थीं, जिनके नाम (१) टेक्सोइलीन राजमहलेन्स (२) मेसेम्ब्रिओक्सिलोन इंडिकम; (३) क्यूप्रेसिनोक्सिलोन राजमहलेन्स और ४) डैडोक्सिलोन ज्यूरेसिकम हैं। बहुत दिन हुए, प्रोफेसर साहनी ने होमोक्सिलोन राजमहलेन्स नामक एक प्राचीन वनस्पति की कल्पना की थी; इस कल्पना के आश्रय पर हसू और बोस महोदयों ने भी अध्ययन किया। राजमहलों से प्राप्त कुछ कॉनिफेरस शंकु आकार की है, पर निश्चय पूर्वक अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। श्री बोस ने विलियमस्टोनिआ के तने का जिसका नाम "बवल" डिआ साहनीई पड़, विवरण प्रकाशित किया है, और ब्रैकिफाइलम सिप्रिआंक्सिलोन, टाइलोफाइलम एमजेर्लिन्स, और पुरातन साइकोडीन तनों का भी इन्होंने अध्ययन किया है। राजमहल सामग्री पर श्री शाह ने जो अध्ययन किया है, उससे "गिंकगोइटीज" का पता चला है। यह उस वर्ग का मालूम होता है, जिस वर्ग का जापान का प्रसिद्ध और उपासकों की दृष्टि से पूज्य वृक्ष "गिंकगो बाइलोबा" है। इससे स्पष्ट है कि जापान के इस वृक्ष से मिलती जुलती कुछ प्राचीन जातियाँ किसी समय भारत के इस प्रदेश में पुराने समय में अवश्य थीं। इस सम्बन्ध की तीन जातियों का पता श्री शाह को चला है। इसी प्रकार एक अन्य संग्रह का अध्ययन श्री मित्रे ने किया और उनके इस प्रकाशित विवरण से केरोफाइटिक अवशेषों का पता चलता है। मित्रे ने पेंटोकिसलाई नामक एक नवीन समूह के "जिम्नोस्पर्मी" नर और मादा पुष्पों का उल्लेख किया है, जिसकी पुष्टि प्रोफेसर साहनी ने की थी। इसी प्रकार श्री सूर्य नारायण ने भारत के पूर्वी तक तट फैले हुए राजमहल के एक संग्रह में शंकु वर्ग की एक नई वृक्ष जाति "मेसेम्ब्रिओक्सिलोन" की खोज की है।

क्रिटेशस

लगभग १२,५०,००,००० वर्ष पूर्व। श्री वर्मा ने त्रिचनापली की क्रिटेशस युग की शिलाओं में से प्राप्त एक क्षुद्र संग्रह का अध्ययन किया है। इस संग्रह में उन्हें "क्लाइपीइना" नाम की एक शैवाल जाति मिली है। इस जाति का क्रिटेशस काल में पाया जाना एक नवीन घटना है। वर्मा का ऐसा विचार है कि यह शैवाल जाति जूरैसिक और ईओसीन कालों के बीच में अपनी परम्परा का एक सम्बन्ध स्थापित करा देती है। इस नयी जाति का नाम "क्लाइपीइना साहनीई" रखा गया है।

तृतीय काल। लगभग ६,००,००,००० वर्ष पूर्व।

दक्षिण अमरीका में ताड़ के समान का एक वृक्ष आजकल भी पाया जाता है, जिसका नाम "साइक्लेन्थोडेड्रोन साहनीई" है। यह आजकल भारतवर्ष में नहीं होता है। इस देश की प्राचीन शिलाओं में इस वृक्ष के अवशेष पाये गए हैं, जिससे स्पष्ट है कि किसी समय यह हमारे देश में भी होता था। स्वर्गीय प्रोफेसर साहनी और श्री सुरंगे ने इस वृक्ष के

अवशेषों का अध्ययन किया है। श्री लखनपाल जी ने भो-ताड़ फल पर अपना लेख प्रकाशित कर दिया है। उन्होंने नयी जाति का नाम "नीपा साहनीई" रक्खा है। श्री वर्मा ने पंजाब के साल्ट रेञ्ज की नम्मल पहाड़ी की तराई में से प्राप्त निम्नतर ईश्रोसीन काल के शैवाल पुष्पों का अध्ययन किया है। उन्होंने "आर्किओलिथोथेम्नियम" की तीन नयी जातियों का विवरण प्रकाशित किया है। दूसरे एक लेख में इन्होंने "मैसो-फाइलम" की हर नयी जातियों का विवरण छापा है। इन्हें अन्य एक नयी जाति "लियोफाइलम" भी मिली है। उसी क्षेत्र से श्री राव और वर्मा ने एक नयी जाति "सोलिनोपरिस" भी पाई है, और उन्होंने इसकी शैवाल प्रवृत्ति भी पुष्ट की है। मध्य प्रदेश के इंटरट्रेपियन स्तरों से प्राप्त संग्रह से श्री उत्तम प्रकाश ने ऐसे वृक्षों का पता चलाया है जो "यूफोरबिएसीई" और 'एनाकार्डिएसीई" कुल के हैं। इनके अतिरिक्त इन्हें कुछ ताड़ वृक्ष और फल भी मिले हैं। श्री रामानुज ने दक्षिण भारत के पांडिचेरी के निकट से प्राप्त संग्रह का अध्ययन किया है। इन्होंने इस संग्रह में "पार्मीविसलोन" की एक नयी जाति और "मेसएम्ब्रिओविसलोन" की दो नयी जातियाँ पायी हैं। इस संग्रह में इन्हें द्विदल वाले वृक्ष भी मिले हैं, जिनमें आम भी हैं। श्री सूर्य नारायण ने पांडिचेरी के निकट प्राप्त लिग्नाइटों का भी अध्ययन किया। उन्होंने इस ओर संकेत किया है कि इस समय के सूक्ष्म पुष्प ठीक से सुरक्षित नहीं रह पाये हैं उन्होंने आसाम की कोयले की खान माकुम के कोयलों का भी अध्ययन किया है। इन कोयलों के बीच में इन्हें एंजिओस्पर्म वर्ग के पौधों के अवशेष मिले हैं।

चतुर्थक काल। लगभग १,०००,००० वर्ष पूर्व

श्री दुबे ने कश्मीर की चतुर्थक कालीन शिलाओं में लिग्नाइट और मिट्टियों का अध्ययन किया। उन्हें इनमें बीज और रजकण मिले। उन्होंने इस बात की कुछ मीमांसा की है कि उस समय कश्मीर की घाटी में किस प्रकार की जलवायु थी।

अर्वाचीन काल और आजकल का युग

श्री नायर आजकल उत्तर प्रदेश के वायुमंडल में छितरे बीजाणुओं का अध्ययन कर रहे हैं। उनका विचार इस प्रदेश की पुष्प रजों के पूर्ण अध्ययन करने का है, और वे इस बात पर प्रकाश डालना चाहते हैं कि यह रज किस प्रकार हवा में उड़ा करती है। मिश्र और नायर आजकल के बीजाणु और रजकणों का पूर्ण संग्रह कर रहे हैं।

वर्ग २. संस्था के संचालित अनुसंधान योजनाओं के अंतर्गत किये गए अनुसंधान कार्य के फल

(१) चट्टानों के भूगर्भ विद्या सम्बन्धी आयु के माप के सम्बन्ध में पुरा उद्भिद विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान।

भूगर्भ विद्या में यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि पृथ्वी के इतिहास में विशेष वर्ग अथवा कुछ विशेष प्रकार के व्यक्ति किसी एक विशेष युग में प्रगट हुए और उस युग के अन्त में लुप्त हो गये। यह कोई कम आश्चर्य की बात नहीं है कि व्यक्तियों अथवा वर्गों का लुप्त होना एक बहुव्यापी चमत्कार पूर्ण घटना है। इस तथ्य के कारण कुछ निदेशक जीवाश्मों का आविष्कार हुआ। अर्थात् इन जीवाश्मों से उक्त चट्टानों की एक विशेष आयु तथा पृथ्वी पर उनका वितरण प्रकट होता है। इस प्रकार इन वनस्पतिक अवशेषों के आधार पर पुराउद्भिद विज्ञानवेत्ता यह अब बता सकते हैं कि कौन सी शिलायें एक युग की

हैं, या विभिन्न युगों की। इसी सिद्धान्त के आधार पर भारत वर्ष की शिलाओं की आयु यथासम्भव निश्चित की जा सकी है। डा० आर० वी० सिथाले और उनके सहयोगियों ने विन्ध्या श्रेणियों की शिलाओं की आयु निश्चित करने का प्रयत्न किया है। शिमला सुबाथू क्षेत्र दार्जिलिंग और कश्मीर गोडवानों की विभिन्न ऊँचाइयों की शिलाओं के सम्बन्ध में भी कुछ प्रारम्भिक कार्य किया गया है। इन्फ्राक्रोलों में कुछ ऐसे वानस्पतिक अवशेष मिले हैं जिनके आधार पर उनकी आयु परमो। कोर्बोनिफेरस युग की ठहराई जा सकती हैं। यहीं मत उन वैज्ञानिकों का भी है, जिन्होंने अपने निष्कर्ष भूगर्भ विज्ञान के आधार पर स्थिर किए हैं।

२. भारतीय कोयले के पुराउद्भिद विज्ञान सम्बन्धी जांच पड़तालों पर योजना

इस योजना के अन्तर्गत विभिन्न स्तरों पर पाये जाने वाले कोयलों का अध्ययन किया जा रहा है। कहीं-कहीं इन कोयलों पर वनस्पतियों के पुरातन अवशेष अंकित दिखायी पड़ते हैं। कोयले के ये स्तर करोड़ों वर्षों से बनते चले आ रहे हैं, इतिहास के इतने लम्बे युग में इस भूमि पर कई बार क्रान्तियाँ हुईं, जिन्होंने कोयले के स्तरों में भी उथल-पुथल की। इस उथल-पुथल के परिणामस्वरूप उनके कुछ स्तर टूट भी गये और टूट कर ऊपर नीचे या अगल-बगल भी खिसक गए। अगर इस प्रकार की उथल-पुथल कई बार हुई हो, और एक ही शिलास्तर को कई बार अपना स्थान परिवर्तित करना पड़ा हो, तो उनकी वर्तमान स्थिति, निश्चय है कि, बड़ी जटिल हो गयी होगी, और भूगर्भ वेत्ताओं को इनका अध्ययन करना अत्यन्त कठिन हो जायेगा। ऐसी अवस्था में यदि कोई पुराना अवशेष या जीवाश्म मिल जाय, तो कोयले के उस स्तर की आयु का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है और विभिन्न स्तरों में सम्बन्ध भी स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार के सम्बन्ध के आधार पर कोयले के अज्ञात स्तरों की भी कल्पना की जा सकती है और यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि ईंधन के रूप में उपयोग योग्य यह कोयला होगा या नहीं। डा० के० आर० सुरंगे और उनके सहकारियों ने इसी दृष्टि से अनेक स्तरों के कोयलों का परीक्षण किया है, विशेषतया पश्चिमी बोकारे क्षेत्र के कोयलों के स्तरों का।

पैलीनोलॉजी पर अनुसन्धान योजना

यह योजना अभी हाल में ही हाथ में ली गई है तथा कार्यारम्भ कर दिया गया है। इस योजना के अन्तर्गत वनस्पतिकसंग्रहालयक, एवं रजकण संग्रहालय बनाने का विचार है। इस संग्रहालय में संग्रहीत सामग्री से तुलना करके नये प्राप्त स्पोरों और रजः कणों की आयु आदि का निर्धारित करना सरल हो जायेगा। अब तक रजः कणों के २०० स्लाइड और ३५० पौधों का संग्रह हो चुका है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के वायुमंडल में फैले हुए रजः कणों का भी अध्ययन कार्य चल रहा है। इसके आयोजन में कार्य करने वाले एक सहयोगी ने रजः कण पकड़ने वाले एक नये यंत्र और मोटर संचालित इलेक्ट्रिक ब्लोअर की खोज भी की है जिससे अन्तरिक्ष में उड़ते हुए रजः कणों के अध्ययन में सुविधा होगी। रजः कण सम्बन्धी यह सब कार्य जो इस संस्था में किया जा रहा है, उद्भिद् कुल के वर्गीकरण में हितकर होगा। इसके आधार पर तलहटी के जमाने से बने आधुनिक स्तरों में से प्राप्त रजः कणों की मीमांसा की जा सकेगी। रजः कणों के विकास पर इससे प्रकाश पड़ेगा। इससे "हे फीवर" एक प्रकार का रोग जो विशेष जाति के रजः कणों द्वारा कुछ विशेष व्यक्तियों को हो जाया करता है, का भी अध्ययन किया जा सकेगा। इसका अध्ययन शद के व्यवसाय के लिये भी हितकर होगा। पुरातत्व शास्त्र की दृष्टि से तो इसका महत्व है ही।

सोवियत वैज्ञानिक मिचुरिन

डा० आई० एस० गोर्शकोव

निर्देशक—मिचुरिन केन्द्रीय प्रजनन प्रयोगशाला

इवान व्लादिमिरोविच मिचुरिन की जन्मशती जिनका नाम एक महान् प्रकृति-विज्ञानविद के रूप में विज्ञान के इतिहास में अमर है, २७ अक्टूबर १९५५ को मनाई गई। उन्होंने अपने जीवन के साठ वर्ष उपयोगी पौधों के विकास में लगाये। उन्होंने नूतन, उच्चकोटि के विविध पौधों से सोवियत भूमि के फलोद्यानों को समृद्ध बनाया। उन्होंने सेब, नाशपाती, चैरी, बेर, बादाम, खुबानी, अखरोट की तरह के जंगली पेड़, गिरीवाले फल-वृक्षों के तीन सौ से ऊपर नये किस्मों का अंगूर, रसभरी, छुहारे, आँवले, झड़बेर, बिही, सब्जियाँ, औद्योगिक एवं आलंकारिक पौधों के नये किस्मों का विकास किया। मिचुरिन द्वारा तैयार किये गये पौधों के विविध प्रकार तथा संकर, कोमल पौधों के बहुमूल्य संग्रह सोवियत वनस्पति प्रजनन के सुनहरे कोष हैं।

अनेक वर्षों तक बड़े परिश्रमपूर्वक शोध एवं प्रयोग करके मिचुरिन ने अंतर्जातीय एवं दूरवर्ती संकरीकरण के अत्यन्त सुसम्वद्ध सिद्धान्त एवं पद्धतियों का, तथा प्रशिक्षण एवं प्रजनन के सिद्धान्त एवं पद्धतियों का विकास किया।

बहुमूल्य पौधों के नये रूपों का विकास करने में संकरीकरण को भारी महत्व देते हुए आई० बी० मिचुरिन ने वनस्पति-रचना तथा छोटे संकर-जैव्य तत्व के क्रमिक विकास की विशेषता पर वातावरण के प्रभाव के सिद्धान्त द्वारा, जैव्य रूपों की वंशपरम्परा एवं परिवर्तनशीलता की प्रक्रियाओं के नियमन-सिद्धान्त द्वारा इसकी परिपुष्टि कर दी। पौधे को जीवनक्रिया के निर्देशित प्रशिक्षण में संकरीकरण तथा पौधों के छांटने के सिद्धान्त शक्तिशाली वस्तु हैं।

सोवियत संघ में मिचुरिन के सिद्धान्तों को व्यापक मान्यता प्राप्त हो गई। पौधे उगाने तथा उनके प्रजनन क्षेत्र में आई० बी० मिचुरिन की भव्य उपलब्धियां विकासवाद के सिद्धान्त की दृढ़ता की पुष्टि करती हैं तथा डार्विनवाद के सृजनात्मक विकास में एक नया अध्याय जोड़ती हैं।

वनस्पति उत्पादन में मिचुरिन के सिद्धान्त और छांटने की विधि, छोटे-छोटे संकर पाधों का निर्देशित पालन, अंतर्जातीय एवं दूरवर्ती संकरीकरण सोवियत वैज्ञानिकों, कृषि-विशेषज्ञों, तथा मिचुरिनवादी प्रयोगकर्त्ताओं के लिए महान् सम्भावनाओं के द्वारा उन्मुक्त करते हैं।

क्रांति से पूर्व आई० बी० मिचुरिन अपनी केन्द्रीय प्रजनन प्रयोगशाला के आधार पर बहुमूल्य किस्मों तथा नये पौधों के विकास के लिए कुछ छोटे-छोटे प्रायौगिक स्टेशनों का स्वप्न देखा करते थे। लेकिन उनका स्वप्न सोवियत काल में ही साकार हुआ।

सोवियत वनस्पति सम्वर्द्धन एवं पशुपालन अब शोध-संस्थानों, प्रायौगिक एवं प्रजनन स्टेशनों, प्रायौगिक खेतों और प्रयोगशालाओं, बोटानिकल उद्यानों तथा

राज्यकीय छटाई स्टेशनों के व्यापक जाल पर निर्भर रह सकता है जो देश के सभी भागों में चालू हैं। बागवानी बहुधन्धी सामूहिक फार्मों और राज्यकीय फार्मों का अभिन्न अंग बन गई है। ऐसी उम्मीद की जाती है कि १९६० तक ५३ लाख हेक्टर के विस्तार में फलोद्यान और बेरों के झाड़ लग जायँगे। यूराल, साईबेरिया तथा दूरपूर्व में जहां पहले फलों के बाग-बगीचे नहीं थे ४०,००० हेक्टर से अधिक विस्तार में फलों से लदे मिचुरिन उद्यान हैं।

केन्द्रीय प्रजनन प्रयोगशाला और फलोत्पादन शोध-संस्थानों के फलोद्यानों और प्रायोगिक बगीचों में जिनका नामकरण आई० बी० मिचुरिन के नाम पर हुआ है वर्षों तक मिचुरिन द्वारा तैयार किये गये विविध किस्मों पर प्रयोग करने तथा उनका व्यावहारिक अध्ययन करने के फलस्वरूप मिचुरिन द्वारा प्रस्तुत विविध किस्मों के व्यापक प्रसार, उनके भौगोलिक वितरण तथा उत्पादन में बुद्धिसम्मत प्रयोग सम्बन्धी समस्याओं के हल के लिए आधार तैयार हो गया है।

मिचुरिन द्वारा तैयार किये गये फलों के ऐसे विविध किस्मों के उद्यान, जो बर्फ और पाले की परवाह नहीं करते लाखों हेक्टर के विस्तार में अच्छे से अच्छे सेब, नाशपाती, चैरी, बेर तथा अन्य फल पैदा कर रहे हैं। मिचुरिन द्वारा तैयार किये गये विविध प्रकार के अंगूर सोवियत संघ के युरोपीय भाग के मध्यवर्ती इलाकों, निचले और मध्यवर्ती बौला क्षेत्रों, बश्कीरिया तथा अल्ताई क्षेत्र में व्यावसायिक पैमाने पर पैदा होते हैं।

वैज्ञानिक संस्थानों तथा मिचुरिनवादी प्रजनन-शास्त्रियों के शोध के फलस्वरूप अकेले रूसी संघ में फल और बेर के पांच सौ से ऊपर नये किस्म प्रामाणिक रूप में स्वीकार किये गये हैं। मिचुरिन शोध-संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशनों तथा छंटाई केन्द्रों के श्रमिकों के प्रयास द्वारा पिछले अट्ठारह वर्षों में लगभग दस लाख फलदार पौधों के मिश्रित आगार तैयार किये गये हैं, तथा २२५ नये किस्मों के सेब, नाशपाती, चेरी, बेर तथा अन्य वृक्ष सामूहिक रूप में तैयार करने की सिफारिश की गई है। युराल तथा साईबेरिया के प्रायोगिक स्टेशनों के लिखोनोव, ओलोनीचेंको, झावोरीन्कोव, लिसावेंको तथा अन्य वनस्पति-विशेषज्ञों ने एक सौ से ऊपर उच्च कोटि के ये ही पौधे तैयार किये हैं।

मिचुरिन केन्द्रीय प्रजनन प्रयोगशाला ने जो विज्ञान की मिचुरिन धारा का केन्द्र है फल, बेर, साग-सब्जी, आलंकारिक तथा अन्य पौधों के नये रूप और किस्म तैयार करने तथा आई० बी० मिचुरिन की वैज्ञानिक धरोहर को आगे बढ़ाने का काम जारी रखा है। प्रयोगशाला के फलोद्यानों और प्रायौगिक खेतों में आई० बी० मिचुरिन तथा उनके अनुयायियों द्वारा विकसित फलदार पौधों के ५९९ से ऊपर नमूनों का अध्ययन एवं परीक्षण हो रहा है। प्रयोगशाला के कार्यकर्त्ता मंडल द्वारा तैयार किये गये सैकड़ों नये किस्म के पौधों में से बीसियों का व्यावहारिक प्रयोग हुआ है।

प्रयोगशाला द्वारा तैयार किये गये नये किस्म के फल, बेर तथा अन्य पौधे जल्दी पकते हैं, उनकी पैदावार ज्यादा होती है, कड़ी ठंड बर्दाश्त करते हैं और स्वादु होते हैं। प्रयोगशाला दसियों हजार अग्रणी कृषिविदों तथा मिचुरिनवादी प्रयोगकर्त्ताओं के साथ सम्पर्क रखती है।

मिचुरिन केन्द्रीय प्रजनन प्रयोगशाला वनस्पति के संकररूपों के सुपरिचालित सम्वर्द्धन के फसलों पर तथा संकरीकरण के दौरान में उत्पादनशील एवं आर्थिक दृष्टि से उपयोगी पौधों की वृद्धि करने की दिशा में मिचुरिन वनस्पति सम्वर्द्धन के सैद्धान्तिक आधार का विस्तार करने में अपने शोधकार्य को लगाती है।

पौधे उगाने के सम्बन्ध में प्रयोगशाला द्वारा संग्रहीत तथ्य कृषि सम्बन्धी ऐसी समस्याओं के व्यावहारिक हल का आधार प्रस्तुत करते हैं जो राज्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

पेट्रोल महाराज

श्री नन्दलाल जैन

तुम लोगों ने मेरे नामरूप और गुणों के विषय में पर्याप्त उत्सुकता प्रकट की है : तुम्हारी यह जिज्ञासावृत्ति तुम्हारे ज्ञान के अभिवर्धन का मूल है। तुम्हारी उत्सुक और जिज्ञासु वृत्ति से मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ और यही कारण है कि मैं आज अपना मूक रूप प्रच्छन्न कर तुम्हारे सामने अपनी आत्म कहानी सुनाने जा रहा हूँ।

संसार में बहुत से परिवर्तन परिस्थितिवश होते हैं। मैं भी देख रहा हूँ कि वर्तमान प्रजातंत्रीय युग में नेताओं और वक्ताओं की ही बोलती है। जिसके पास वाणी है : जो अपने भावों को, अपनी बात को जितनी ही अच्छी भाषा में दूसरों के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है, वही प्रसिद्ध, यश और लाभ लूटता है : उसकी महत्ता और उपयोगिता बढ़ती है। तुम लोग कहोगे कि यह बात केवल सजीव जगत् में ही है, पर ऐसा कहना इसलिये माना है कि तुम अभी मूकों की भाषा ही नहीं मानते, उसे समझ कैसे सकते हो? तुमने देखा होगा कि बहुत से मनुष्य विभिन्न पशु-पक्षियों की बोलियों का अनुकरण करते हैं और उन्हें समझने का अभ्यास भी करते हैं। जैन धर्म में भगवान् की वाणी सभी प्राणियों के लिये मुखरित होती है : उनकी वाणी मानव भाषा-नहीं—प्राणिमात्र की भाषा में प्रकट होती है। उसे दिव्य ध्वनि कहते हैं—उसका आशय गणधर लोक विभिन्न प्रकार के प्राणियों को उनकी भाषाओं में समझाया करते हैं। इसी प्रकार हम निर्जीवों की भी वाणी होती है, भाषा होती है, और उसे गणधर मानव ही समझ पाते हैं। वर्तमान में दुनियां की प्रगति का साज शृंगार इन्हीं मानवों की कृपा पर निर्भर है। यदि ये मानव हमें समझना बन्द कर दें और हमारी बात आप से न कहें, तो मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि आप लोगों ने अबतक जितनी प्रगति की है, वह स्तब्ध हो जावेगी और आप एक नये अंधकार युग में अपने को पावेंगे।

हमने अपनी वाणी के प्रसार के लिये अच्छा मनन और प्रयोगशील वैज्ञानिक मानव पाया है। हम उसीसे बोलते हैं, उसी के साथ अठखेलियां करते हैं और उसे ही अपनी महत्ता और उपयोगिता का मान कराते हैं। वही हमारा माध्यम है जो हमें आपकी सेवा के लिये उपयोगी बताकर हमारा आकर्षण और महत्व बढ़ाता है। वही सब देशों में सब लोगों के लिये हमारी बात कहता है : हमारी सेवाओं से मानव को लाभान्वित होने के लिये प्रेरित करता है।

परन्तु मैं आज अपने गणधर के बावजूद भी तुम लोगों के बीच में बोल रहा हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि बालक ईश्वर के प्रतिरूप हैं। वह ईश्वर जिसने सब को बनाया है, जिसने सबकी वाणी दी है और जिसने सबको समझने की शक्ति दी है। वह सबकी वाणी बोल सकता

है और समझ सकता है। तुम उसी के प्रियतम रूप हो, क्या तुम मेरी वाणी, मेरी भाषा नहीं समझ सकोगे ?"

तुम तो जानते हो कि यदि संसार में यातायात समाप्त हो जायँ, तो मानव की प्रगति रुक जावेगी और वह पुनः उसी अंधकार युग में अपने को देखेगा, जिसमें से अपने मस्तिष्क की सहायता, अन्वेषणप्रियता और परिश्रम से अब तक इस स्थिति पर पहुँच सका है। एक समय था जब मनुष्य केवल पैदल चलकर ही काम चला लेता था। पर चलने के लिये शरीर में बल चाहिये। कहीं भूखा आदमी लम्बी दौड़ चल सकेगा ? पैदल यातायात की प्रक्रिया मनुष्य की आदिम स्थिति रही है, जब वह समूहों में रहता था. और जंगलों में अपने खाद्य खोजा करता था धीरे धीरे अग्नि, कृषि और उपकरणों के विकास के साथ मानव में सामाजिकता का प्रादुर्भाव हुआ; और अब दूर देश व स्थानों की दौड़ लगानी पड़ती थी; तब अपनी सीमित शक्ति का उसे भान हुआ और उसने अपने निकटवर्ती पशुओं की सहायता से यातायात प्रारम्भ किया। पशु मनुष्य से अधिक शक्तिशाली था। यद्यपि ऊँट सरीखे कुछ अच्छे पशु भी थे लेकिन उनकी रफ्तार इतनी कम थी कि मनुष्य उससे संतुष्ट न हो सका। धीरे धीरे बैलगाड़ियों का अभ्युदय हुआ। घोड़ा गाड़ी, भैंसागाड़ी आदि उसके अन्य रूप भी विकसित हुए पर इससे यातायात के साधनों में विशेष प्रगति इसलिये नहीं हो सकी कि इन सब साधनों की गति बहुत ही सीमित रही है। मानव मस्तिष्क में इस सीमा से फिर विलोड़न हुआ, और औद्योगिक क्रान्ति के युग का आरम्भ हुआ, जिसमें यंत्रों का आविष्कार हुआ। पहियेदार गाड़ियों की शुरूआत हुई और फिर साइकिल, मोटर, रेल, वायुयान और जेटों का प्रादुर्भाव और विकास क्रमशः होता जा रहा है। साइकिल और बैलगाड़ियों में मनुष्य या पशु अपनी असली शक्ति के उपयोग करता रहा, जो बहुत ही सीमित था। अतः मानव को शक्ति के अन्य स्रोत खोजने के लिये विवश होना पड़ा। जब मनुष्य को अपने चारों ओर किसी भी प्रकार की शक्ति के स्रोत का पता न चला, तो उसने प्रकृति माता की शरण ली और भूगर्भ में गया, वहाँ मानव ने देखा कि कोयला जलने पर निकली हुई गर्मी से पानी उबलने लगता है। यदि इस उबाल को नियंत्रित किया जा सके, तो यंत्रों को चलने में सहायता मिलेगी। बस फिर क्या था ? मानव ने कोयले की शक्ति का स्रोत खोज लिया और उससे जल-वाष्प बनाई और रेलगाड़ी चला दी। पर मानव इस शक्ति के स्रोत से संतुष्ट न हुआ, क्योंकि उसे तो आरामदेह यातायात के साधन चाहिये। और कोयले की शक्ति से ऐसे साधनों को चलाने में पर्याप्त पेचीदगी का अनुभव किया जा रहा था। मानव ने सोचा एक बार और क्यों न भूगर्भ में गोता लगाया जावे ? उसने जो गोता लगाकर प्रकृति देवी से प्रार्थना की, प्रकृति ने मानव की उत्कट जिज्ञासा और अनुसंधान कर्म की लगन से प्रसन्न होकर अपने वरदान के रूप में मुझे उसकी सहायतार्थ प्रस्तुत कर दिया।

और जब से मैं मानव के हाथ आया हूँ, मानव ने यातायात के साधनों की वृद्धिकर अपनी सभ्यता में आश्चर्यजनक प्रगति कर ली है। यही नहीं, उसने मेरे प्राकृतिक रूप को परिष्कृत करने की प्रक्रिया में ऐसे ऐसे नवीन पदार्थ प्राप्त कर लिये हैं, जिनके बिना आज मानव की सभ्यता लंगड़ी हो जावे। अब मैं यातायात के लिये ही केवल शक्ति प्रदान नहीं करता, आपने घरों में प्रकाश दीप जलाता हूँ, आपके यंत्रों को सुचारु रीत्या संचालित होते रहने के लिये उनकी तैल-मालिश करता हूँ, आपके शरीर पर होने वाले कीटाणुओं के आक्रमण की तीव्रता समाप्त कर आपके स्वाथ्य और सौंदर्य की शुद्धि करता हूँ।

मैं बहुत पुराने समय से मनुष्य के हाथ रहा हूं। बेबी लोन की सभ्यता के आदिम युग में लोग मुझे प्रकाश दीप के लिये ईंधन के रूप में काम में लेते थे। लगभग २५०० वर्ष पूर्व राजा हीरोडोटिस के जमाने में डायोडोडोरस ने सिसिली के झीलों के तटपर मुझे प्राप्त किया था। अरस्तू. और प्लाइनी ने अपनी पुस्तकों में मेरा उल्लेख किया है। रूस देश के बाकू तैल क्षेत्र की ज्वालायें और उनकी पूजा संसार प्रसिद्ध है। बर्मा और चीन निवासी लोग भी मेरे गैस को जलाते रहे हैं। बर्मा में मेरा नाम ही रमून का तेल' है। अमरीका में, कनाडा में और अन्य देशों में लोग मुझे केवल जलाने के लिये काम में लेते रहे हैं।

अपने सीमित ज्ञान, अनुभव तथा आवश्यकताओं के कारण मानव ने मेरा उपयोगी रूप उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध तक नहीं जान पाया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में वैज्ञानिक प्रगति के कारण दृष्टिकोण की विशालता और आवश्यकताओं की पूर्ति में आने वाली बाधाओं का अनुभव हुआ। भूगर्भ से कोयले को सुनियोजित रूप में प्राप्त करने की युक्तियाँ प्रयोग में लाई गईं और सन् १८५६ में कर्नल ड्रेक ने मुझे भी भूगर्भ से औद्योगिक मात्रा में प्राप्त करने का सर्वप्रथम प्रयोग सफल किया था। कर्नल ड्रेक के पूर्व जर्मनों ने मुझे शुद्ध करने की विधि भी ज्ञान करली थी। इस प्रकार मेरे उत्पादन, शोधन और फिर विविध उपयोजनाओं का प्रारंभ हुआ और इन एक सौ वर्षों में ही मैंने इतने क्षेत्रों में मानव को प्रगति दिलाई है कि मैं नाम भी नहीं गिना सकता हूँ।

मेरा जन्म कब हुआ, मैं नहीं जानता। कैसे हुआ, यह भी मैं नहीं बता सकता? परन्तु मेरे गणधर बड़े चतुर हैं और उनकी आंखें तथा मस्तिष्क बहुत सूक्ष्म हैं उन्होंने पृथ्वी और भूगर्भ की परीक्षा की है,उस पर पाये जाने वाले समस्त जीव-वनस्पति के भग्नावशेष का सूक्ष्मतम निरीक्षण किया है और तब मुझे बताया कि यह पृथ्वी तो अधिक से अधिक २-५ अरब वर्ष पुरानी है धीरे-धीरे उस पर बनस्पतियों ने जन्म लिया, जीवधारी आये और आज से लगभग ५लाख वर्ष पूर्व मानव भी अवतरित हुआ। मानव तो भूतल पर अवतरित हुआ और मैं भी उसके और पूर्व भूगर्भ में। बात यह हुई कि जैसे आजकल बरसात के दिनों में नदियों में भीषण बाढ़ आती है, तो किनारे के पेड़-पौधे, खेती, नगर और पशु बह जाते हैं और धीरे धीरे पानी की रेत के जमने पर कहीं उसी में रह जाते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में भी होता था: और भी अधिक भीषणता से। पेड़ पौधे और जीव-जन्तु इसी प्रकार हर समय पृथ्वी की सतह पर जमते गये और हर वर्ष पर उनपर मिट्टी की तह जमती गई। वह तह जमती जमती आज मीलों ऊँची हो गई है। यदि एक भारवाही पशुपर आवश्यकता से अधिक बोझ लाद दिया जावे, तो उसकी क्या दुर्गति होगी, यह आप सोच सकते हैं। इसी प्रकार मीलों लम्बी ऊँची मिट्टी की तह का भार पड़ जाने के कारण उन जमे हुए पेड़-पौधों और जन्तुओं का भी क्या हाल हुआ होगा? वे बेचारे पिच गये, उनका पानी निकल गया, सूख गये, सूख-सूख कर काले पड़ गये। कहने का अर्थ यह है कि कोयला बन गये। इसी प्रक्रिया में अनंत भार के दाब और तज्जन्य ताप के कारण इनके कुछ भागों ने परस्पर विच्छेदित होकर मेरा रूप धारण कर लिया। पृथ्वी के गर्भ में पर्याप्त मात्रा में धातवीय योगिक पाये जाते हैं, उन पर भीषण ताप और दाब का प्रभाव पड़ा और उन्होंने भी मेरा रूप धारण कर लिया, दबे हुए जीवधारियों के शरीर ने भी इसी परिस्थिति में मुझे जन्म दिया। तुम्हें मालूम है कि संसार के सर्व-प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री ऐंग्लर, श्री मेंडलीफ और श्री ट्राइब ने अपने निरीक्षणों एवं कुछ प्रयोगों द्वारा मेरे प्रादुर्भाव

की यह कहानी अच्छी तरह ज्ञात कराली है। इस प्रकार संचित प्राणि-शरीरों वनस्पतियों एवं धातवीय योगिकों ने पृथ्वी माता की गोद में मुझे जन्म दिया है।

यह तो मैं बता ही चुका हूँ कि मेरा जन्म इस भूतल पर मानव के प्रादुर्भाव के पहले ही हुआ है, और मैं भूगर्भ में संचित होता रहा हूँ, मेरी उपस्थिति का ज्ञान मानव को मेरे जन्म से बहुत बाद में हुआ है।

जनमते समय मेरा रंग-रूप काला, मटमैला, बदबूदार और गाढ़े तेल सरीखा बहने वाला होता है। मैं अकेला नहीं जनमता, मेरे साथ इतने लोग जनमते हैं कि स्वयं मैं भी नहीं जानता कि कितने लोग हैं। वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि तीस हजार साथी तक भी साथ जनमते हैं। मानव प्राकृतिक रूप में मेरी सेवाओं से लाभ नहीं ले सकता। क्योंकि तुम्हीं सोचो, बच्चे में कितनी और कैसी अव्यवस्थित शक्ति होती है। मानव ने देखा कि मैं भूगर्भ में अपार मात्रा में संचित हूँ और जलाने के काम आसकता हूँ। अभी तक तिल आदि वनस्पतियों के तेल ही दीपकों में काम आते थे, जो कृषि और यांत्रिक पेचीदगी से प्राप्त हो सकते थे। मानव ने सोचा क्यों न मुझे ही भूगर्भ से प्राप्त करने की विधियाँ खोजी जावें। मैं भूगर्भ में पाँच हजार फीट से पचास हजार फीट तक की गहराई में संचित होकर हिलोरें लेता रहता हूँ। उसने जमीन में सुराख करने के यंत्र और नलियों व चूषकपंपों की सहायता से मुझे भूतल पर ला बैठाया। मनुष्य ने देखा कि जमीन में सुराख करते समय एक जलने वाली गैस भी निकलती है, जो और कुछ नहीं, मेरा ही कम दबा हुआ एक अवयव है, जो पृथ्वी के काफी ऊपरी तल में होता है। तुम जानते हो गैस को दबाव डाल कर द्रव बनाया जा सकता है; दाब कम करने पर द्रव पुनः गैस बन जाता है। पृथ्वी के ऊपरी अन्तस्तल में दाब कम होने से गहरे अन्तस्तल की अपेक्षा मैं द्रव की अपेक्षा गैस तम रूप में रहता हूँ; और पृथ्वीतल पर आते-आते दबाव के बिलकुल ही घट जाने से पूर्ण गैसीय रूप में सनसनाता हुआ निकलने लगता हूँ। मानव पहले तो मेरे इस ज्वलनशील रूप से घबड़ाता था और इसे हवा में उड़ा देता था; पर अब उसने इसको एकत्रितकर उपयोग करना प्रारंभ कर दिया है जिससे मानव को कृत्रिम रबर, प्लास्टिक और अन्य उपयोगी पदार्थ प्राप्त होने लगे हैं।

अपने जन्म के समय तो मैं भूगर्भ के सछिद्र भागों में भी उत्पन्न होता था, परंतु भूगर्भ के निचले सतहों की ओर मैं बहने लगा और उन उन स्थानों में एकत्रित होने लगा, जहाँ ऐसी चट्टाने थीं जिनमें मैं और नीचे की ओर नहीं बह सकता था। मेरा यह संचय भूगर्भ में ठीक ऐसे ही स्थलों में हुआ जैसे भूतल पर कुओं में पानी का संचय होता है। यही कारण है कि जहाँ मैं पाया जाता हूँ, और जहाँ से मुझे मानव नलियाँ लगा कर भूतल पर ले आता है, उन स्थानों को मेरा ही कूप कहा जाता है। मेरा जन्म इन कूपों में नहीं हुआ, परंतु भूगर्भ की सछिद्रता ने हमें इन अप्रवेश्य स्थानों में अपना निवास बनाकर संगठित रूप में रहने के लिये प्रेरित किया।

हां और मैं भूगर्भ में निरंतर जन्म लेता रहता हूँ; तभी तो मैं तुम लोगों की इतनी अधिक सेवा करता रहता हूँ।

जब मनुष्य ने मुझे भूगर्भ से प्राप्त किया, तो मैं बड़ा ही भद्दा, बदबूदार, कुछ काला-भूरा सा, कुछ गाढा-सा द्रव था। मेरे रूप को मनुष्य ने घृणाव से देखा और सोचा कि मैं जितना उपयोगी हूँ, उतना ही सुन्दर होता, तो कितना अच्छा होता ? मैंने भी भौतिक दुनियां की चकाचौंध के साथ अपने रूप की तुलना की, और ऐसा

लगा, "मानव मुझे भूगर्भ में ही पड़ा रहने देता, तो अच्छा था"

अभी आप लोग जानते होंगे कि मैं अपने इस प्रकृति रूप में ही आपके मोटर और हवाई जहाज चलाता हूँ। पर यह आपकी भ्रान्ति है : यदि मैं इसी रूप में ऐसा करने लगूँ, तो कुछ ही समय में आपके साथ आपका वाहन भी बेकार हो जाय। यही कारण है कि मेरे प्राकृतिक और शक्ति-दायी रूप के भिन्न-भिन्न नाम आप लोगों ने अपनी सुविधा के लिए रख दिये हैं। प्राकृतिक रूप को आप को 'पेट्रोलियम' कहते हैं और शक्तिदायी रूप को मुख्यतः पेट्रोल कहते हैं। इसी प्रकार मेरे बहुत से रूपों का आप लोगों ने भिन्न-भिन्न नामकरण कर लिया है, डीजल ऑयल, मोबिल ऑयल, किरासिन तेल, नेप्था आदि, पिच और वेसलीन इत्यादि। आप पूछेंगे कि केवल एक ही द्रव के रूप तो मैं पृथ्वी पर आता हूँ और इतनी बड़ी जनमती सेना कहाँ से बनाली ? बात यह है कि पृथ्वी तल या भूगर्भ में प्रकृति देवी की अपार लीला है। उसकी कार्यप्रणाली का रहस्य क्या किसी ने पाया है.? वह ऐसी वस्तुओं का निर्माण करती है जिसकी बनावट आज का चतुर वैज्ञानिक भी अब तक नहीं जान सके हैं। गागर में सागर वाली कहावत प्रकृति देवी के लिये पूर्णतया चरितार्थ होती है। मेरे प्राकृतिक रूप में भी बहुत से दीर्घकाय अणु रचना वाले पदार्थों को विच्छेदन संयोजन की प्रक्रियाओं द्वारा अगणित पदार्थों का सागर मुझ में भर दिया गया है। प्रकृति की यह जादूगरी मनुष्य ने अच्छी तरह समझ ली है, जिसका परिणाम है कि जहाँ देखो, तुन्हें मेरा रूप ही अपने सामने मिलेगा।

वैसे सच पूछा जावे, तो मेरी शरीर-रचना पृथ्वी पर विद्यमान कुछ ही तत्वों द्वारा हुई है। कार्बन, हाइड्रोजन ऑक्सीजन, नाइट्रोजन व गंधक इत्यादि। पर भूगर्भ में अत्यन्त ही दाब और ताप के कारण उनमें ऐसे रासायनिक संयोगों की कड़ियां बन गई हैं कि नित नये यौगिक प्राप्त करने के बाद भी मानव कहता है—अभी उसने मेरी जांच नहीं कर पाई है। साधारणतः रसायन शास्त्री बताते हैं कि मेरा प्राकृतिक रूप खुली और आवृत शृंखला वाले भिन्न-भिन्न पदार्थों से बना है। इन पदार्थों में कई गैसीय हैं, कई द्रव है जिनमें गैस घुले रहते हैं, और कई ठोस हैं जो द्रवों में घुले रहते हैं, मेरी अन्तःरचना में तो प्रमुखतः कार्बन और हाइड्रोजन के भिन्न भिन्न योगिकों की बहुलता हैं, जिनमें ज्वलनशीलता, और शक्तिप्रदता पाई जाती है; ऑक्सीजन युक्त यौगिक या अन्य प्रकार के यौगिक अपेक्षाकृत कम हैं।

—शेष अगले अंक में।

विद्युदणु-विज्ञान की महत्ता

श्री० ब० सोबती

विद्युदणु-विज्ञान की नींव किसी एक उपज्ञा से ही नहीं रखी गई। एडिसन, मारकोनी, फ्लेमिंग, डी फ़ारस्ट और आर्मस्ट्रांग जैसे बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के कार्य कुछ ही आरम्भ के सहांश है। इसके विकास में महत्व पूर्ण तिथियों में से कुछ ये हैं—

१. १८६१ ई०——विद्युदणु विज्ञान का आविष्कार।

२. १८६६ ई०——पहले पहल वितन्तु-संचार का प्रयोग।

३. १६०७ ई०——त्रिद्वार का उपयोग।

४. १६२८ ई०——निद्वार-किरण-नाल का विकास।

५. १६३५ ई०——राडर का आरम्भ।

६. १६३६ ई०——दूरदर्शन का साधारण उपयोग।

७. १६४८ ई०——ट्रांजिस्ट्र का ज्ञान।

आरम्भ धुन्धला होने पर भी विद्युदणु-विज्ञान ने गत् तीस वर्षों में बड़ी उन्नति की है। इसका भविष्य तो और भी सुनहरा जान पड़ता है, क्योंकि "होनहार बिरवान के होत चिकने पात"। द्वितीय महा-युद्ध तक तो यह विज्ञान अभी बच्चा ही था। परन्तु इस युद्ध के दिनों हर वैज्ञानिक विषय की तरह, इसे भी बड़ी उन्नति प्राप्त हुई। सच तो यह है कि इन्हीं दिनों विद्युदणु-युग आरम्भ हुआ।

विद्युदणु-विज्ञान केवल नभोवाणी और दूरदर्शन भर ही नहीं है। उद्योग के लिये तो यह इस प्रकार हो सकता है, जैसे मानव शरीर के लिये उसका मस्तिष्क और स्नायु संहिता है। उद्योग में विद्युदणु-विज्ञान की उन्नति करने के लिए कई नये नये क्षेत्र हैं। जैसे :—

यांत्रिक-वशीकरण—बहुत से विद्युदणु सम्बन्धी आविष्कारों का उपयोग तो, प्रयोगशाला के बाहर होता ही नहीं। ज्यों ज्यों निर्माण कार्य कठिन होता जाता है, इनसे यांत्रिक वशीकरण का काम लिया जा सकता है। जैसा कि उद्योगों की रुचि है, आजकल कई चालू मशीनें (कलें) विद्युदणु-विज्ञान से चलाई और वश की जाती है। परन्तु यथार्थ में स्वतः चालन में तो आरम्भ (कच्चा माल ग्रहण करने) से लेकर अन्त (तैयार माल) गठित होने) तक सब कुछ बिल्कुल स्वतः चलित होना चाहिये। ऐसा तो उन विद्युदणु उपज्ञाओं, जो समय, रंग, घनता, स्वच्छता, ऊँचाई, लम्बाई, दबाव इत्यादि को माप और वश कर सकती है, से ही हो सकता है। जहाँ मानव कल्पना नहीं पहुँच पाती, विद्युदणु-विज्ञान अवश्य ही पहुँच जावेगा।

गणना :—विद्युदणु-मस्तिष्क अब केवल वैज्ञानिक खोज में ही काम नहीं आते। अब तो कई छोटे बड़े कार्यालय अपने वेतन-चिट्ठों सूची-पत्रों, मूल्य-पद्धति, इत्यादि के लिये उनके प्रयोग पर निर्भर हैं। सच तो यह है कि अभी तो उनका प्रयोग पूर्णता से हो ही नहीं पाया है। हर उन्नतिशील देश में इनके विकास पर ध्यान दिया जा रहा है। वह दिन दूर नहीं जब विद्युदणु मस्तिष्क हर छोटे बड़े उद्योग-धन्धे में उपयोग किया जाने लगेगा।

अस्थायी द्विदिक् नभोवाणी :—यह तो नवीनतम् क्षेत्र है। जलयान और वायुयान में तो इसका प्रयोग

होता ही है, परन्तु अब तो आरक्षी (पुलीस) और बस-संचालक और ऐसी ही दूसरी संस्थाओं ने इससे लाभ उठाना आरम्भ कर दिया है। इससे हमें एक ऐसी सर्व-ऋतु संचार पद्धति प्राप्त होती है, जिसके असीम गुण हैं।

सूक्ष्म-तरंग पुनर्सारण :—दूरदर्शन कार्यक्रम का दूर दूर पहुँचाया जाना, यह इसका एक प्रयोग तो होता ही है। इस पद्धति के दूसरे बड़े-बड़े प्रयोग होने तो अभी शेष ही हैं। जैसे बड़ी बड़ी पैट्रोल और तेल की नालियों के साथ साथ और रेल्वे इत्यादि में।

ट्रांजिस्टर— कोई ही दिन ऐसा बीतता होगा जब ट्रांजिस्टर के नये से नये उपयोग न ज्ञात होते हों। अभी तो प्रायः इसकी सभी निर्मित वस्तुएं, फौजी कामों में ही जाती हैं। परन्तु भविष्य में, इसके जन साधारण के भी काम आने की बहुत सम्भावना हो सकती है। इसकी तुलना विद्युदणु नाल से की जावे तो इसके गुणों का पता चलता है। विद्युदणु-नाल की कम आयु होती है, वह जल्दी टूट जाने वाली, अधिक जगह घेरने वाली और अधिक ऊष्मा उत्पन्न करने वाली होती है। ट्रांजिस्टर में ऐसा कोई दोष नहीं, फिर भी यह सोचना कि, यह विद्यु-दणु-नाल की जगह ही ले लेगा, भूल होगी। क्योंकि इसकी महत्ता से विद्युदणु-नाल के प्रयोगों का अन्त नहीं हो सकता।

रंगीन-दूरदर्शन :—अभी सफेद-काले दूरदर्शन का प्रभाव तो पूरी तरह फैला ही नहीं, कि रंगीन दूरदर्शन का भी विकास होने लगा है। इंगलैण्ड और अमेरिका (संयुक्त राष्ट्र) में तो रंगीन दूरदर्शन सम्बन्धी नये नये आविष्कार आये दिन होते ही रहते हैं।

परिश्रमी जनों के लिये इन सब क्षेत्रों में उन्नति प्राप्त करने का सुनहरा अवसर है। किसी भी क्षेत्र में काम का तो कभी अभाव नहीं होता और इसमें तो होने की सम्भा-वना ही नहीं है। विद्युदणु उद्योग धन्धे में सहल उन्नति का एक कारण यह भी है कि इसमें लागत बहुत कम आती है।

विज्ञान-समाचार

अभिनवीकरण—विकास का एक अंग

श्री नित्यानन्द कानूनगो, उद्योग मंत्री, भारत सरकार

यह विचित्र बात है कि अभिनवीकरण का अर्थ सूती वस्त्र उद्योग में स्वचालित करघे के चलन से लगाया जाता है। सूती वस्त्र उद्योग में स्वचालित करघे के प्रयोग के विरुद्ध मजदूर संघों की ओर से काफी विरोध प्रकट किया गया है। यह विरोध उचित है या नहीं, यह बात दूसरी है। पर इसका एक खास परिणाम यह हुआ है कि करघे के बजाय अब वस्तुतः अभिनवीकरण का ही विरोध किया जाने लगा है।

सृष्टि के आरम्भ से ही हर सजीव वस्तु को जीवन संघर्ष में विजयी होने के लिये, अपने अपने आचरण और व्यवहार को उपयुक्त रूप से बदलते रहना पड़ता है। पौधों ने आकार और पत्रों में अभिवृद्धि की है, जिससे वे पर्याप्त सूर्य-प्रकाश और पोषण तत्व, प्राप्त कर सकें। पशुओं और पक्षियों ने अपने आकार, रूप, रंग तथा आदतों को ऐसे ढंग से विकसित किया है, जिससे वे खाद्य, निवास और सुरक्षा पा सकें। इसी प्रकार मनुष्य ने अपने कौशल का विकास किया है और अपनी मानसिक और शारीरिक शक्तियों को बढ़ाया है; उसी उद्देश्य से प्रेरित होकर अर्थात् भोजन, निवास और सुरक्षा पाने के लिए।

उस समय से लेकर, जब मनुष्य पत्थर के औजारों से अपने भोजन की व्यवस्था करता था, आज उसने स्वचालित बड़ी-बड़ी मशीनों का निर्माण कर लिया है, जो बिजली से चलती हैं। तब और अब के युग के बीच में बड़े बड़े परिवर्तन हुए हैं।

संभवतः एक लक्ष्य बेकार परिश्रम से बचने का भी रहा है। विकास का यह क्रम निरन्तर चालू रहा है, और रहेगा। इस क्रम को कोई रोक नहीं सकता। मुमकिन है कुछ समय के लिये प्रगति रुक जाय, लेकिन उससे रोड़ा अटकाने वाले ही पिछड़ जायँगे।

यह मानते हुए कि अभिनवीकरण विकास का एक आवश्यक अंग है, चतुराई इसी बात में है कि जीवन के प्रत्येक पहलू में इसे अपनाया जाय। विशेष तौर से उद्योग के क्षेत्र में अभिनवीकरण की बहुत आवश्यकता है।

किसी भी उद्योग की आधे दर्जन इकाइयों का अध्ययन किया जाय, तो पता चलेगा कि कहीं प्रबन्ध की खराबी से, कहीं सामान की खराबी से और कहीं आयोजन के अभाव से कारखानों का बुरा हाल है।

एक औद्योगिक कारखाना एक संगीत मंडली के समान है। जब सब वाद्य यन्त्रों की ठीक संगति होती है, तभी उसमें से मधुर स्वर निकलता है। उसी प्रकार एक कारखाने के जब सभी अंग व्यवस्थित रूप से काम करते हैं, तभी काम ठीक तरह होता है। उत्पादन के समस्त साधनो में सामंजस्य जरूरी है।

वनस्पति-रोगों की रोकथाम में भारतीय वैज्ञानिक का सहयोग

अजीत सिंह

खाद्य-पदार्थ की फसलों को फफूंदी लग जाने से अक्सर बड़ा नुकसान होता है। इस बीमारी की रोकथाम के उपाय खोजना वनस्पति-रोगों के विशेषज्ञों का काम है।

इस काम में जो बहुत से भारतीय लगे हुए हैं उनमें बंगलौर के २८ वर्षीय युवक डी० सी० एस० वेंकटरामन् भी हैं। उन्हें एक व्यावसायिक फर्म ने मद्रास विश्वविद्यालय में काम करने पर लगाया है। फफूंदी पैदा करने वाले विषैले द्रव्यों को पहचानने और उनकी रोकथाम करने के लिए विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है। फफूंदी लगने के कारण तथा उसकी रोकथाम के उपाय मालूम करने के लिए वेंकटरामन को महीनों तक अणुवीक्षण यन्त्रों द्वारा मिट्टी की परीक्षा करनी होगी, शिक्षकों से परामर्श लेना होगा और किसी पौधे का निकट से अध्ययन करने के लिए बागीचे में घुटनों के बल बैठना होगा।

अपने विस्तृत ज्ञान एवं अनुभव के कारण ही श्री वेंकटरामन् ने इस कार्य को करने का संकल्प किया है। मद्रास विश्वविद्यालय से वनस्पति-रोगों के विषय में एम० एस-सी० तथा पी-एच० डी० की उपाधियां प्राप्त कर लेने के बाद वे स्मिथमंड छात्र वृत्ति प्राप्त करके अध्ययन के लिए १६५२ में मिनेसोटा विश्वविद्यालय (अमेरिका) में गये थे।

श्री वेंकटरामन् का कहना है कि मिनेसोटा विश्वविद्यालय के पास परीक्षणों के लिये ८५ एकड़ में फैला हुआ बागीचा है। इस बागीचे में पोधों को लगने वाले रतुआ एवं फफूंदी आदि रोगों के कीटाणुओं की खूब बहार दीखती है। इसी बागीचे में वनस्पति-रोगों के विशेषज्ञों ने फसलों को नष्ट करने वाले रोगों के सम्बन्ध में जानकारी हासिल की है। इन खोजों के परिणामस्वरूप अब किसान पहले से अच्छी किस्म का गेहूँ तथा अन्य अनाज पैदा करने लगे हैं।

जलवायु एवं मिट्टी सम्बन्धी भिन्नताओं के कारण किसी पौधे की ऐसी रोग-निरोधक किस्म शायद भारत आदि अन्य देशों में अच्छी तरह न फल-फूल सके, जो अमेरिका में पैदा की गयी हो। यही कारण है जो वेंकटरामन् तथा दूसरे वैज्ञानिकों को पौधों की ऐसी किस्में पैदा करने के लिए निरन्तर अनुसन्धान में लगा रहना पड़ता है जो अन्य देशों के जलवायु में रोगों का मुकाबला करसकें।

अमेरिका तथा अन्य देशों के खाद्यान्नों की फसलों को रोगों से बचाने की दिशा में डा० स्टेकमैन की सेवाएं अमूल्य हैं। एक बार श्रेणी में डा० स्टेकमैन ने कहा था, "संसार की जन संख्या अत्यन्त तेजी के साथ बढ़ती जा रही है। हम उनका कैसे भरण-पोषण कर सकेंगे?" थोड़ी देर सोच कर वह स्वयं बोलेः "पौधों को रोगों से मुक्त करने की दिशा में अधिकाधिक वैज्ञानिक अनुसन्धान करके ही यह कार्य किया जा सकता है।"

दिल्ली से लेकर सनफ्रांसिस्को तक वनस्पति रोगों के वेंकटरामन् जैसे विशषज्ञों के कार्य के लिए डा० स्टेकमैन का विश्वास ही प्रेरक बना हुआ है। वनस्पति-रोगों के विरुद्ध चल रहा संघर्ष अब तक असीम प्रतीत होता है।

चाहे अनाज के पौधों की किस्में कितनी ही रोग-निरोधक शक्तिशाली क्यों न बनायी जायें उनमें रोगों का मुकाबला करने की क्षमता अस्थायी ही होती है। वे अधिक से अधिक १५ वर्ष तक रोगमुक्त रह सकती हैं। इसलिए यह बड़ा प्रश्न सदा बना ही रहेगा कि अब आगे कौन सा नया रोग सामने आने वाला है।

विज्ञान के चमत्कार

क—छोटा सा विद्युत-उत्पादक यन्त्र

अमेरिका की 'जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी'' ने पानी के गिलास के बराबर एक छोटा सा बिजलीघर (विद्युत्-उत्पादन यन्त्र) तैयार किया है, जो लगभग ८५० जैट हौर्सपावर बिजली तैयार कर सकता है। इस यन्त्र को ''गैस जैनरेटर'' कहा जाता है।

इस छोटे से विद्युत्-उत्पादक यन्त्र में तरल हाइड्रोजन पर ऑक्साइड को प्रयुक्त किया जाता है। उच्च दबाव और उच्च ताप से इस में ऑक्सीजन और भाप की ऽते प्रवाह-धारा को नियन्त्रित कर के टर्बाइन के चक्र पर डाला जाता है। इससे टर्बाइन घूमने लगता है। और उससे चालकशक्ति पैदा होने लगती है, जिसे किसी भी काम के लिए सामान्य रूप के प्रयुक्त किया जा सकता है।

उक्त कम्पनी के अधिकारियों का कथन है कि चूँकि इस नये विद्युत-उत्पादक यन्त्र का वजन बहुत कम होता है, इसलिए इसका प्रयोग ऐसी किसी भी जगह किया जा सकता है जहाँ बिजली की आवश्यकता हो और विद्युत यन्त्र को किसी स्थान पर आसानी से उठा कर पहुँचाना हो। इस यन्त्र का उपयोग विभागों के हिस्सों आदि की परीक्षा करने के लिए या किसी जगह जल्दी से भाप का प्रयोग करने के लिए आसानी से किया जा सकता है।

ख—गठिया की दो नयी अचूक औषधियाँ

''अमेरिकन रूमैटिज्म एसोसियेशन'' को गठिया रोग की दो नयी प्रभावकारी औषधियों के बारे में जानकारी मिली है। ये 'कार्टिजोन' नामक औषधि से तीन या चार गुना अधिक गुणकारी बतलायी जाती हैं और इनके इस्तेमाल के बाद प्रतिकूल प्रभाव भी बहुत कम होता है। इन्हें ब्लूमफील्ड (न्यूजर्सी) के शैरिंग कार्पोरेशन ने तैयार किया है। इन नयी औषधियों को ''मैटाकार्टैएड्रालोन'' और ''मैटाकारटेएड्रोसिन'' नाम दिये गये हैं।

तीन महीने तक एक रोगी का उपचार करने के बाद इनके जो सफल परिणाम निकले हैं उन्हें एक चलचित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। चलचित्र में दिखाया गया है कि किस तरह बाजू एवं टाँगों की पीड़ा से ग्रस्त रोगी ठीक हो गया है। नयी औषधियों की खुराक की मात्रा कार्टिजोन से ''बहुत कम'' है और कुछ दशाओं में तो १० प्रतिशत मात्रा ही देनी पड़ती है। इस तरह प्रतिकूल प्रतिक्रिया का भय भी बहुत कम हो जाता है।

ग—सन्तरे और नींबू के छिलकों से जुकाम का उपचार

चार अमेरिकी डाक्टरों ने ''अमेरिकन जर्नल औव् डाइजैस्टिव डिसीजेज'' में हाल ही में यह प्रकट किया है कि विटामिन की तरह के कुछ रासायनिक तत्व सन्तरे और नींबू के छिलकों (फांकों के ऊपर के छिलके) में पाये जाते हैं, जो जुकाम तथा विषाणुओं वाले अन्य संक्रामक रोगों के उपचार में बहुत ही उपयोगी हैं। इन से आँख का एक तरह का मोतियाबिन्द भी दूर हो जाता है।

इन तत्वों को 'बायोफ्लेवोनायड्स' या विटामिन-पी कहते हैं। ये तत्व शरीर में विद्यमान सूक्ष्म रक्त-कोषों की दीवारों को मजबूत बना देते हैं। इस तरह शरीर में शोथ-प्रतिरोध-कामना बढ़ जाती है। यद्यपि बायोफ्लोवनोनायड्स का सबसे पहले १९३६ में पता चला है कि इन से जुकाम आदि रोग बड़ी जल्दी ठीक हो जाते हैं।

मौन्टामरी के किसानों ने किस प्रकार अपनी किस्मत पलटी

कपास की फसल बोने से जमीन कमजोर पड़ जाती है, पर किसी समय ऐलाबैमा राज्य की मौन्टामरी काउन्टी में, राज्य के अधिकांश प्रदेशों तथा अन्य दक्षिण-पूर्वी राज्यों के समान, कपास की ही खेती हुआ करती थी। १९१४ में इस काउन्टी तथा शेष दक्षिण-पूर्वी भाग में कपास की फसल को कीड़ा लग जाने से बड़ी हानि हुई। किन्तु इसके कारण एक प्रकार से उस प्रदेश का रूप ही बदल गया।

कीड़ा लग जाने से कई वर्षों तक कपास की फसलें नष्ट होती चली गयीं। विवश होकर किसानों ने कपास बोनी बन्द कर दी और हजारों खेतों को पशुओं के चरागाहों में बदल दिया। पशुओं को जल पिलाने के लिए बड़े-बड़े तालाब भी खोदे गये। आज भी मौन्टामरी काउन्टी के किसान पशु पालन का व्यवसाय करते हैं। कुछ किसान मांस के व्यवसाय के लिए तथा अन्य दूध के उत्पादन के लिए यह व्यवसाय करते हैं। पहले ये तालाब बेकार पड़े रहते थे, पर अब इनसे पशुओं को पानी पिलाने के अलावा मछलियां पैदा करने का उपयोग भी लिया जाता है। तालाबों से भूमिक्षरण की रोकथाम होती है। सिंचाई का काम लिये जाने के अलावा इन तालाबों में देहाती परिवार तैर कर मनोरंजन का लाभ भी उठाते हैं।

निरन्तर कपास की खेती करते रहने से भूमिक्षरण के कारण उस क्षेत्र की उर्वरा शक्ति नष्ट हो गयी थी। अब मौन्टामरी काउन्टी ने अनेक दक्षिणी काउन्टियों के समान भूमि को उपजाऊ बनाने वाले फलीदार पौधे व घासें बोकर तथा अन्य प्रकार के पेड़-पौधों को लगा कर अपनी भूमि को उपजाऊ बना लिया है।

४० वर्ष पूर्व मौन्टामरी में पोखरों को अंगुलियां पर ही गिना जा सकता था। पहले लोग अधिक से अधिक भूमि में कपास की खेती करने के लिए प्रायः कहीं भी खाली जमीन नहीं छोड़ते थे। इसके परिणाम-स्वरूप भूमिक्षरण से सदैव भूमि की उर्वरा-शक्ति नष्ट होती रहती थी।

आज मौन्टगमरी काउन्टी में तालाबों की संख्या इतनी बढ़ गयी है कि यदि कोई व्यक्ति किसी भी स्थान पर खड़ा होकर अपने आसपास नजर दौड़ाये तो उसे अनेक तालाब दिखायी पड़ेंगे। उनमें से अधिकांश तालाब भूमिक्षरण को रोकने तथा बेकार बह जाने वाले जल को पशुओं, सिंचाई एवं अन्य कार्यों के लिए एकत्र करने के उद्देश्य से बनाये गये हैं।

जोहड़ों से सिंचाई

३७ वर्ष का अनुभव रखने वाले कृषि-सुधार कर्मचारी लेम एडमौन्सन का कहना है कि मौन्टामरी के क्षेत्र में १४०० से अधिक जोहड़ हैं जो ५ हजार एकड़ भूमि में फैले हुए हैं। इनसे ४,९६,९२६ एकड़ कृषि भूमि की सिंचाई की जाती है। ये जोहड़ आकार-प्रकार में आध एकड़ से लेकर ३० एकड़ तक के हैं और औसतन ये तालाब लगभग ४ एकड़ के होते हैं।

एडमौन्सन का कथन है : १९१४ में कपास की फसल को कीड़ा लगने से पूर्व प्रत्येक किसान कपास की खेती करके अपना निर्वाह किया करता था। हम लोग कपास की खेती के अलावा भोजन के लिए थोड़ा-बहुत अनाज पैदा कर लेते थे और मांस प्राप्त करने तथा खेती-बाड़ी के काम के लिए थोड़े से सुअर, घोड़े, गाय-बैल अथवा खच्चर पालते थे। जब कीड़ा लगने से

हमारी कपास की फसलें बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट होने लगीं तब हमें आय के अन्य साधन ढूंढने पड़े।

पशुपालन का व्यवसाय

तब पशुओं का पालन करना हमें सबसे बढ़िया धन्धा प्रतीत हुआ। हमने मांस तथा दूध पैदा करने का व्यवसाय आरम्भ किया। आज मौन्टगमरी नगर दक्षिण में 'पायों का शहर' कहलाता है।

"मौन्टामरी काउन्टी पशु-पालन करने वाले प्रमुख क्षेत्रों-वायोमिंग, मोन्टौना, टैक्सास, ओक्लाहोमा, कोलोराडो तथा दूध एवं मांस का व्यवसाय करने वाले प्रमुख राज्यों-मिनेसोटा, आयोवा और विस्कौन्सिन की अपेक्षा आकार में बहुत छोटा है, फिर पशुपालन की दृष्टि से अमेरिका की ३,०७० काउन्टियों में इसका ४३ वां स्थान है।"

मछली पालन

अनुसन्धान-विशेषज्ञों ने तालाबों की प्रबन्ध व्यवस्था (जिसमें निर्माण, किनारे बाँधने, मछलियों को पालने व उनकी संख्या बढ़ाने तथा अनावश्यक घास-फूस पर नियंत्रण करने के काम शामिल हैं) के सम्बन्ध में पूरा पूरा अध्ययन किया है। इसके फलस्वरूप काउन्टी के किसानों के पशुओं को पहले से अधिक स्वच्छ जल मिलने लगा है। इसके अलावा १५ लाख पौण्ड मछलियां भी उपलब्ध होने लगी हैं।

मौन्टामरी काउन्टी एक मनोरंजन-स्थल बन गया है। श्री एडमौन्सन का अनुमान है कि किसान-परिवारों तथा देहाती लोगों सहित ४५ हजार से लेकर ५० हजार तक व्यक्ति इन तालाबों में मछलियाँ पकड़ते हैं तथा जल-बिहार करते हैं। काम की समाप्ति पर, शहर के अनेक व्यापारी अपने हाथ में मछली पकड़ने की बन्सी लेकर अपने किसी किसान मित्र के साथ मछलियाँ पकड़ते दीखते हैं।

खेती के कीड़ों की रोकथाम के लिए गवेषणा

(ई० एस० नारायणन)

भारत में पहले पहल १८८८ में कलकत्ता के भारतीय विचित्रालय ने खेती के कीड़ों की ओर ध्यान दिया और तभी से देश में कीट विज्ञान का श्री गणेश समझना चाहिए। १९वीं शताब्दी के अंत में इस बारे में कई लोगों के अनुसंधानों के परिणाम प्रकाशित हुए। १९०१ में भारत सरकार ने कलकत्ता के विचित्रालय में एक कीट वैज्ञानिक को नियुक्त किया और १९०५ में पूसा में कृषि गवेषणा संस्थान की स्थापना होने पर इसे वहीं तैनात कर दिया गया।

तब से देश की खेती को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़ों के बारे में विधिवत् खोज आरम्भ हुई। इस क्षेत्र में प्रथम कीट वैज्ञानिक श्री मेक्सवेल लेफ्राय के दो संकलित ग्रन्थ 'इंडियन इन्सेक्ट पेस्ट्स' और 'इन्डियन इसेक्ट लाइफ' बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये भारतीय कीट विज्ञान के आधार ग्रंथ माने जाते हैं। श्री लेफ्राय के बाद दूसरे कीट-वैज्ञानिक श्री टी० वेनब्रिग फ्लेचर ने भी १९१० में दक्षिण भारत के कीड़ों के बारे में एक उपयोगी पुस्तक लिखी। इसके बाद तो इस विषय के लेखों और बुलेटिनों आदि का एक तांता सा बंध गया।

अमूल्य संग्रह

पिछले ५० बर्षों में बहुत से किस्म के कीड़े संस्थान ने इकट्ठे किये हैं। इस समय इसमें १५ हजार से अधिक जातियों के लगभग १,१०,००० नामवाले कीड़े हैं और

बहुत से ऐसे कीड़े है जिनका अभी तक नाम भी किसी का नहीं पता है। कीड़ों का यह संग्रह अपने देश के ही नहीं आसपास के देशों के कीट वैज्ञानिकों के लिये भी बड़े लाभ का है। बाहर के देशों से कीड़ों के पहचान के बारे में पूछ-ताछ होती रहती है।

नयी उपजातियों की खोज

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की ओर से काफी अनुदान मिलने से अब कई जातियों के कीड़ों के बारे में विस्तृत अध्ययन किया गया है और उनकी अनेक उपजातियों का पता लगाया गया है। ईख में लगने वाले कीड़ों की जिन्हें 'चीली' कहा जाता था अब कई अलग-अलग उपजातियां खोज निकाली गयी हैं।

जीव विज्ञानीय विधि

जीव विज्ञानीय विधि से अर्थात कीड़ों या जीवों से कीड़ों को मारने के लिए परजीवी और शिकारी कीड़ों के जन्म और जीवन के बारे में विस्तृत ज्ञान आवश्यक है। ईख, कपास, मक्का, ज्वार और तरकारियों में लगने वाले कीड़ों के शिकारी कीड़ों के बारे में अध्ययन किया भी गया है। इस तरह की मूल समस्याओं की ओर संस्थान बराबर ध्यान दे रहा है। उसे जैविक विधि से फसलों के कीड़ों को नष्ट करने के क्षेत्र में सफलता भी मिली है। ईख के कीड़ों को दूसरी तरह के कीड़े पैदा कर के नष्ट करने की विधि उपयोगी पायी गयी है।

कश्मीर में सेव, नाख और बेरों को लगने वाले कीड़ों को नष्ट करने वाले परजीवी और शिकारी कीड़ों के बारे में भी हाल में पड़ताल की गयी है। इससे जो ज्ञान उपलब्ध हुआ है उससे इन फलों के कीड़ों की रोकथाम में काफी मदद मिलेगी। कृषि गवेषणा संस्थान की कीट विज्ञान शाखा न केवल लगनेवाले कीड़ों की रोकथाम का ही काम करती है बल्कि भावी रोगों से भी फसलों को बचाने में संलग्न रहती है। ताप से कीड़ों की उत्पत्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है इसके अध्ययन के फलस्वरूप दो यंत्र 'बायोग्राफ' और 'बायोमीटर' बनाये गये हैं। ये दोनों कीट-वैज्ञानिकों के बड़े काम के हैं।

विष विज्ञान प्रयोगशाला

संस्थान मे एक सुसज्जित विष विज्ञान प्रयोगशाला भी है। कीड़ों को मारने की औषधियों आदि की खोज के लिए यहाँ विश्वविद्यालयों आदि से वैज्ञानिक आते रहते हैं। वैसे कीट विष विज्ञान संबंधी मूल गवेषणा कार्य यहां १९४८ से ही आरम्भ हुआ है। अब तक हाइड्रोसायनिक एसिड और डी० डी० टी० के कीट मारक गुणों के बारे में ये खोज की जा चुकी है। टिड्डियों के बारे में भी मूल गवेषणा कार्य कीट विज्ञा शाखा में ही होता है। फसलों के कीड़ों के अलावा गोदामों या खत्तियों में अनाज में लगने वाले कीड़ों के मारने की दवा भी इस शाखा ने तैयार की हैं और वैज्ञानिक ढंग से मधु-मक्खी पालन कार्य में भी उसने योग दिया है।

ईख व तम्बाकू की फलों को हानि पहुँचाने वाले और ज्वार के गोदामों के लगने वाले कीड़ों के बारे में भी भारतीय कृषि अनुसंधान की सहायता से संस्थान ने काफी काम किया है।

कीट विज्ञान के शास्त्रीय और व्यावहारिक क्षेत्र में, कीट विज्ञान शाखा ने अब तक जो काम किया है उस पर उसे गर्व है। और आगे वह और भी अच्छा काम करने की आशा करता है।

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम
सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग

प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद
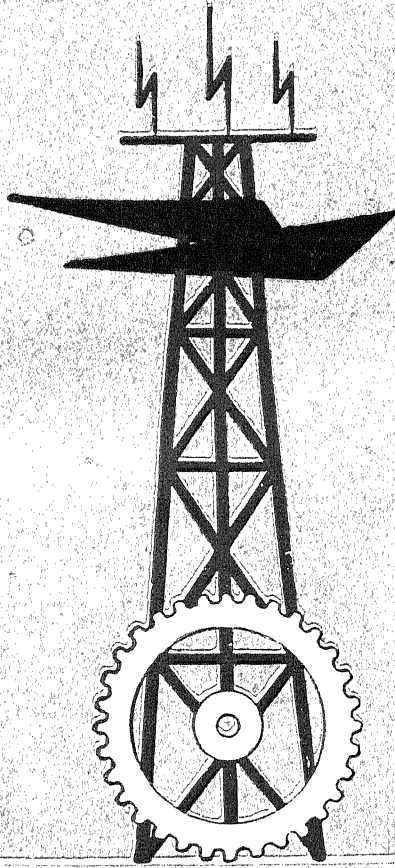
विज्ञान
विज्ञान
परिषद्
प्रयाग का
मुख-पत्र
दिसम्बर १९५५
धनु २०१२
भाग ८२
अंक ३
वार्षिक मूल्य
चार रुपए
प्रति अंक
छः आने

विषय सूची

———-——

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८२ | धनु २०१२; दिसम्बर १९५५ | संख्या ३

उच्चतर विमायें (घ)

डा० व्रजमोहन एम० ए० एल-एल० बी० पी-एच० डी०

चौथी विमा (Fourth dimension)

किसी द्वैविम संसार के प्राणी को एकविम संसार के किसी काय (Body) का देखना सरल है। त्रैविम संसार का प्राणी किसी द्वैविमिक काय के समस्त अंगों को बिना किसी कठिनाई के देख सकता है। यदि हम कागज पर एक आयत (Rectangle) बनायें तो हम उस आकृति के अन्दर के समस्त बिन्दुओं को देख सकते हैं। किन्तु किसी त्रैविम संसार के प्राणी को किसी त्रैविम काय के समस्त अंगों को देखना कठिन है। यदि हमारे सम्मुख एक हाथी खड़ा हो तो हम उसका बाहरी आकार-प्रकार तो देख सकते हैं किन्तु उसके शरीर के आन्तरिक भाग को बिना किसी विशेष उपकरण की सहायता के नहीं देख सकते। बाहरी आकार के भी समस्त अंगों को हम किसी भी एक स्थान से नहीं देख सकते। यदि हम हाथी के एक ओर खड़े हैं तो उसका दूसरा पार्श्व हमारी दृष्टि से ओझल होगा। यदि हम हाथी से किसी ऊंचे स्थान पर स्थित हैं तो भी हाथी के पैरों का निचला भाग नहीं दिखाई देगा। परन्तु हम हाथी के चारों ओर चक्कर लगाकर उसके बाहरी आकार के समस्त अंगों पर दृष्टिपात कर सकते हैं।

अब मान लीजिये कि हमें हाथी की आकृति किसी ऐसे व्यक्ति को दिखानी है जो यहाँ से दूर है और न उसको यहाँ बुलाना सरल है न हाथी को उसके पास ले जाना। तो हम यह उपाय करेंगे कि हाथी का चित्र लेकर उस व्यक्ति के पास भेज

देंगे। चित्र से हाथी की आकृति का थोड़ा अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। चित्र क्या है? एक त्रैविम का द्वैविम पृष्ठ (कागज के समतल) पर विक्षेप। जितने भी चित्र हमलोग देखते हैं चाहे कपड़े पर हों अथवा कागज या भूमि पर, सब के सब द्वैविम विक्षेप ही हैं। जहाँ कहीं भी हम वास्तविक वस्तु तक नहीं पहुँच सकते विक्षेप से ही काम चलाते हैं। सिनेमा में हम चित्र-पट पर विक्षेप ही देखते हैं। आजकल एक नये प्रकार के चित्र चले हैं जिन्हें त्रैविम चित्र कहते हैं। वास्तव में ये चित्र भी द्वैविम ही हैं किन्तु इनमें तृतीय विमा का आभास मिल जाता है। इन चित्रों और परंपरागत चित्रों में केवल इतना अन्तर रहता है कि उन चित्रों में सदैव हमें इस बात का भान रहता है कि हम रजत पट पर चित्र देख रहे हैं। इन नये चित्रों में हमें "दूरी का भी भ्रम हो जाता है अतः हमारी आंखों पर त्रैविम प्रभाव पड़ता है। छाया-चित्र (Shadowgraph) भी हमारे शरीर के विक्षेप ही हैं। इनमें और साधारण चित्रों में यह अन्तर है कि साधारण चित्र में एक बार विक्षेप ले लिया जाता है। उसक 'ठप्पा' बनाकर सैकड़ों प्रतिलिपियां तैयार कर ली जाती हैं। किन्तु छायाचित्र में प्रतिक्षण नया विक्षेप दिखाई देता है। साधारण चित्र अथवा सिनेमा चित्र में अभिनेता के शरीर की एक ही बार आवश्यकता पड़ती है छायाचित्र में हर समय अभिनेता को सशरीर अभिनय करना पड़ता है।

अब इस बात पर विचार करना है कि यदि चतुर्विम वस्तुओं का वास्तव में कोई अस्तित्व है तो उनका हमारे त्रैविम संसार पर किस प्रकार का विक्षेप पड़ेगा। एक घन (cube) ले लीजिये :—

इसमें ८ शीर्ष हैं ६ फलक हैं और १२ तट (Edges)
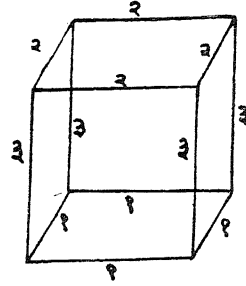
चित्र १०

अब मान लीजिये कि हम इस घन को इस कागज के समतल से कुछ इंच ऊपर लटका दें और घन के ठीक ऊपर थोड़ी दूर पर एक बत्ती टांग दें। कागज पर इस प्रकार का चित्र बनेगाः—
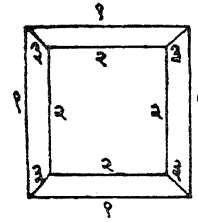
चित्र ११

इस चित्र में एक वर्ग के अन्दर दूसरा वर्ग बना हुआ है। चित्र १० में नीचे के फलक की जो भुजायें हैं, जिन पर अंक १ पड़ हुआ है, बाहर के वर्ग की भुजायें बन जायंगी। ऊपर के फलक की भुजायें जिन पर २ बना हुआ है, अंदर के वर्ग की भुजायें बन जायंगी। और चित्र १० के ऊर्ध्व (vertical) तट जिन पर अंक ३ पड़ा हुआ है, चित्र ११ में वह रेखायें बन जायेंगी जो बाह्य और आंतरिक वर्गों के शीर्षों को मिलाती हैं।

घन के आठों शीर्ष चित्र ११ में स्पष्ट दिखाई देते हैं : दोनों वर्गों के आठों शीर्ष। घन के छओं फलक भी इसमें दृष्टिगोचर हो रहे हैं: एक बड़ा वर्ग, एक छोटा वर्ग और किनारे के चारों समलम्ब (trapezium)

वर्ग दो विमाओं की आकृति है। तीन विमाओं में वर्ग की अनुसारी (corresponding) आकृति है घन। घन के सब फलक वर्ग होते हैं। घन की चार विमाओं की अनुसारी आकृति क्या होगी। मान लीजिये कि हम उसका नाम पराघन (Super cube) रखे देते हैं, उसका स्वरूप किस प्रकार का होगा। हम उसे देख तो नहीं सकते किंतु हमारे त्रैविम संसार पर उसका विक्षेप किस प्रकार का होगा, इसकी कल्पना कर सकते हैं। हमने देखा है कि समतल पर घन का विक्षेप एक ऐसी आकृति है जिसमें एक के अन्दर दूसरा वर्ग बना हुआ है।
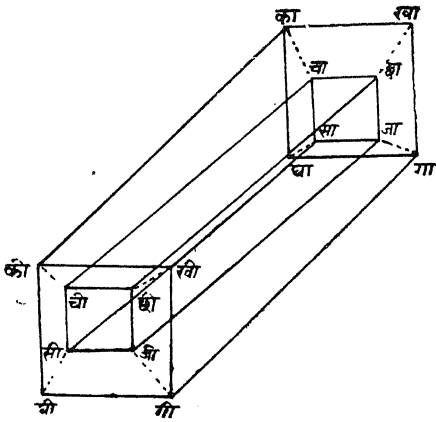
चित्र १२

अतः हम अनुमान लगा सकते हैं कि एक पराघन का हमारे संसार पर विक्षेप एक ऐसा ठोस होगा जिसमें एक घन के अन्दर दूसरा घन रखा हुआ होगा। चित्र १२ में यह विक्षेप दिया हुआ है ❀ इस विक्षेप में जो १६ अक्षर दिये हुये हैं, वही पराघन के १६ शीर्ष होंगे। पराघन में तट कितने होंगे। १२ तट बाह्य घन (का खा गा घा, की खी गी घी) के, १२ तट आन्तरिक घन (चा छा जा झा, ची छी जी झी) के, और ८ तट जो दोनों घनों के शीर्षों को मिलाते हैं। ये आठ तट बिन्दुमय रेखाओं से निरूपित किये गये हैं।

उक्त पराघन में फलक कितने होंगे ? ६ फलक बारह के घन के, ६ फलक अन्दर के घन के। इनके अतिरिक्त १२ फलक ऐसे होंगे जो दोनों घनों को जोड़ेंगे। चित्र १२ में ये फलक इस प्रकार हैं:—

का चा छा खा, खा चा जा गा, गा जा झा घा, घा झा चा का, की ची छी खी, खी ची जी गी, गी जी झी घी, घी झी ची की, का की ची चा, खा खी छी छा, गा गी जी जा, घा घी झी झा।

इस प्रकार पराघन में २४ फलक होंगे। स्पष्ट है कि उक्त "पराठोस" (Supersolid) औयलर के प्रमेय

$$त + २ — फ + शी$$

का पालन नहीं करता।

एक प्रयोग और कीजिये : एक सफेद पर्दे के सामने कांच का एक भूमिगोल (Globe) रखिये और उसके पीछे से प्रकाश फेंकिये। पर्दे पर एक वृत्तिय चित्र अंकित हो जायगा। यह चित्र ऐसा होगा मानो एक अर्धगोल के ऊपर दूसरा अर्धगोल बिठाया गया

❀सच पूछिये तो चित्र १२ पराघन त्रैविम वरिमा (Three dimensional space) पर डाले गये विक्षेप का भी कागज पर विक्षेप है।

हो। मान लीजिये कि भूमिगोल का पर्दे की ओर का भाग पूर्वी अर्धगोल है और प्रकाश की ओर का भाग पश्चिमी अर्धगोल। चित्र में ऐसा प्रतीत होगा मानो पूर्वी अर्धगोल पर पश्चिमी अर्धगोल बिठाया गया हो। चित्र का प्रत्येक विन्दु भूमिगोल के दो विन्दुओं का विक्षेप होगा जो भूमिगोल के किसी व्यास के सिरों पर स्थित होंगे। इस प्रकार मध्य भारत और मैक्सिको एक दूसरे पर चिपके रहेंगे। भूमिगोल पर बरार और पनामा की मध्यस्थ दूरी प्रायः १२००० मील होगी किन्तु चित्र पर दोनों एक दूसरे के बिल्कुल समीप दिखाई देंगे। मान लीजिये की एक वायुयान बरार के किसी नगर से उड़कर पनामा को जाता है। चित्र में वायुयान पहले बरार से चित्र की परिधि तक जायगा। यदि दो वायुयान भूमिगोल के दो ओर उड़ रहे हों तो चित्र में ऐसा प्रतीत होगा मानो दोनों एक दूसरे के बिल्कुल निकट उड़ रहे हों। यह भी सम्भव है कि चित्र में दोनों में टक्कर हो जाय किन्तु वास्तव में भूमिगोल पर दोनों एक दूसरे से बहुत दूर होंगे।

एक गोले का द्वैविम विक्षेप इस प्रकार का होगा। यूँ समझ लीजिये कि दो चपटे बहुत ही पतले विम्ब (disc) एक दूसरे से चिपका दिये गये हों। अब एक चतुर्विम परागोल (Supersphere) की कल्पना कीजिये। उसका त्रैविम विक्षेप ऐसा होगा मानो दो गोले एक दूसरे के अन्दर बिठा दिये गये हों। ये दोनों गोले केवल बाहरी पृष्ठ पर ही जुड़े होंगे। पाठकों ने भूल-भुलइयां देखी होंगी। ये इस प्रकार बनाई जाती है कि इनमें छोटी-छोटी गलियों और बन्द द्वारों की भरमार रहती है। कोई अनजान व्यक्ति यदि किसी प्रकार किसी भूल भुलइया में फंस जाय तो उसका बाहर निकलना बहुत कठिन हो जाय।

अब कल्पना कीजिये कि एक गोले के अन्दर दो भूल-भुलइयां बिठा दी गई हैं जो एक दूसरे से

चित्र १३

बिल्कुल अलग हैं। एक सफेद और एक काली। इन भूल-भुलइयों की गलियाँ एक दूसरे के बिल्कुल समीप घूमती हैं किन्तु दोनों में कोई भी मार्ग समानिक (Common) नहीं है। दोनों भूल-भुलइयां केवल बाहरी पृष्ठ पर जुड़ी हुइ हैं। जो व्यक्ति काली भूल-भुलइयों के किसी भाग में हो वह बिना गोले के बाहर आये सफेद भूल-भुलइयां में नहीं जा सकता। इसी प्रकार सफेद भूल-भुलइयों का निवासी जब तक गोले के बाहर पृष्ठ पर न निकल आये किसी प्रकार सफेद भूल-भुलइया में प्रवेश नहीं पा सकता क्यों कि दोनों भूल-भुलइयों की गलियां और मार्ग एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं और एक से दूसरे में जाने का कोई मार्ग नहीं है। गलियों और मार्गों के सिरे गोले के बाहरी पृष्ठ पर ही खुलते हैं।

हम उक्त ठोस की इस प्रकार भी कल्पना कर सकते हैं: मान लीजिये कि एक नाशपाती के अन्दर दो प्रकार के कीड़े पनप रहे हैं: काला कीड़ा और

सफेद कीड़ा। दोनों कीड़े अन्दर ही अन्दर नाशपाती को खाते हैं और एक दूसरे के मार्ग में कभी नहीं आते। कुछ समय पश्चात् नाशपाती में मार्गों के दो ऐसे संस्थान (System) तैयार हो जायेंगे जिनमें कोई भी समानिक मार्ग अथवा द्वार नहीं होगा।

यदि इन मार्गों की चौड़ाई घटती जाय और संख्या बढ़ती जाय तो अन्त में एक स्थिति ऐसी आयेगी की दोनों मार्ग-संस्थान पूरी नाशपाती को घेर लेंगे और एक संस्थान में से दूसरे संस्थान में जाने का गोले के बाहरी पृष्ठ के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं रहेगा।

परागोल का विक्षेप इस प्रकार का होगा। स्वयं परागोल किस प्रकार का होगा इसकी कल्पना करनी भी कठिन है।

यदि यह कल्पना वास्तविक है तो मानना होगा कि मनुष्य एक चतुर्विम प्राणी का विक्षेप है। जिस प्रकार छाया चित्र की आकृति प्रतिक्षण बदलती रहती है उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में प्रतिक्षण थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहता है। जब अभिनेता पर्दे के पीछे आता है उसका छायाचित्र बनना आरम्भ होता है। वह जैसे-जैसे नृत्य करता है, छायाचित्र भी वैसे ही वैसे अपने हाव-भाव बदलता रहता है। और जब अभिनेता रङ्गमंच से बाहर चला जाता है, छायाचित्र लुप्त हो जाता है। उसी प्रकार चतुर्विम परामनुष्य (Superman) संसार के पर्दे के पीछे नृत्य करता रहता है। सांसारिक मनुष्य उसी के अनुसार अपना आचरण करता रहता है। जब परामनुष्य रङ्गमंच से चला जाता है, उसकी छाया भी सांसारिक पर्दे से लुप्त हो जाती है। यही है हमारे जीवन-मरण का रहस्य।

पेट्रोल महाराज—[पृष्ठ ७८ का शेषांश]

आज की इस विकसित दुनिया में, चाहे कोई धनी हो या निर्धन, किसी का भी मेरे बिना काम नहीं चल सकता। संसार में ईश्वर एक है, पर उसके नाना रूपों की माया के समान ही मैंने भी एक रूप में जन्म लेकर अपनी माया जगत् में बिखेर दी है। राजा और रंक—कोई भी कहीं न कहीं मेरी शरण लेता है, न केवल विशेष अवसरों पर ही, अपितु समय-समय पर और प्रतिदिन मैं प्रत्येक छोटे बड़े आदमी के काम आता हूँ, सबकी सुनता हूँ, और कल्पवृक्षों के समान उसे भौतिक सुख-सामग्री के साज सजाता हूँ। मेरे राज्य में सभी एक हैं, मेरे लिये युद्ध और शान्ति में कोई भेद नहीं है, मेरी क्रिया की गति अवश्य कभी-कभी तीव्र हो जाती है। मैं तीनों लोकों की सैर कराता हूँ और भूतल, नभतल और जलतल की बात बताता हूँ। तुम बताओ, है कोई दुनिया में ऐसा प्राणी, जो मेरे समान अहर्निश सेवा कर तुम्हारी सुख-सुविधा की प्रगति करता जावे? आज के सभी देश, प्राचीन काल के सभी सम्राट भी युद्ध काल में समदर्शी नहीं होते, पर मैं, यदि मानव अनीतिपूर्ण न बने तो, पूर्ण समदर्शिता का पालन करता हूँ और एक दृष्टि से सबकी सहायता करता हूँ। मेरे लिये युद्ध के न्याय-अन्याय का प्रश्न नहीं रहता, क्योंकि जो एक के लिये न्याय होगा, वह दूसरे के लिये अन्याय भी हो सकता है। यह सब तो व्यवहार की दुनिया है, यहाँ अपेक्षा से ही परिणाम बताया जाता है। ऐसी स्थिति में तुम्हीं बताओ मैं मनुष्यों का महासेवक हूँ या नहीं?

प्रतिभास तथा उसकी उपयोगिताएँ

[हरिमोहन, भौतिक-शास्त्र विभाग, विश्वविद्यालय, प्रयाग]

प्रतिभास—डाक्टरों, जीवाणु-विशेषज्ञों एवं रसायन-वेत्ताओं का अपूर्व सहायक

(Fluorescence as an aid to Medical men, Bacteriologists & Chemists)

विज्ञान-मन्दिर के कर्मनिष्ठ तथा अटल पुजारियों की अनवरत एवं अक्षुण्ण तपस्या के वरदान स्वरूप ऐसे-ऐसे सुस्वादु फल आज मानव को उपलब्ध हैं कि वह अतीव आनन्द-विभोर है। अन्यान्य उपकरणों तथा विविध प्रसाधनों की अपार राशि को दृष्टिगत कर वह कभी-कभी अचम्भित् तक हो जाता है। परन्तु—परन्तु इस अपार राशि से उसका चिर-पिपासा अभी अतृप्त ही दिखाई देती है, तपस्वी का अनुष्ठान अक्षुण्ण है। उसके मस्तिष्क में शान्ति का वास नहीं तथा वह निरन्तर अभी भी कर्मपथ पर अग्रसर है। आगामी युग देखेगा कि इस तपस्वी के कर्मपथ के इस अग्रणी के अनन्य, अखंड, अनवरत एवं अलिप्त आह्वान का अन्तिम आशय क्या निकलता है।

प्रस्तुत लेख भी मानव की कतिपय ऐसी ही प्राप्तियों का सूक्ष्म विवेचन मात्र है तथा विज्ञान के गताङ्कों में प्रकाशित प्रतिभास-लेखमाला का एक मुक्तक रूप है। अधोलिखित पंक्तियों में इस बात का विवेचन करने का प्रयास किया गया है कि प्रतिभास-परीक्षण विधि डाक्टरों (Medical Men) जीवाणु-विशेषज्ञों (Bacteriologists) तथा रसायन वेत्ताओं (Chemists & Druggists) को स्थान-स्थान पर अत्यन्त ही लाभकारी सिद्ध होती है।

१—प्रतिभास तथा डाक्टरी विज्ञान (Fluorescence & Medical Science) त्वचा-सम्बन्धी उपचार—डरमैटोलॉजिकल डॉयगनौसिस (Dermatological Diagonosis) प्रतिभास-दीप (Fluorescence-exciting lamp) की सहायता से अत्यन्त सुगम बन जाता है। जब अतिबैंजनी रश्मिपुञ्ज (Ultraviolet beam) निरीक्ष्य स्थान (Spot under test) पर केन्द्रित किया जाता है तब उसके फलस्वरूप प्राप्त प्रतिभास की व्याख्या तथा उसके विवेचन से डाक्टर लोग रोग की वास्तविक अवस्था का निदान सरलतापूर्वक कर लेते हैं। दाद (Ringworm) को उसकी सामान्य माइक्रोस्पर्न अवस्था (Microsporn State) में ही अतिबैंजनी किरणों की सहायता से उसके तीव्र हरे प्रतिभास गुण के कारण तुरन्त पहिचान लिया जाता है तथा अन्यान्य अवयवों (Communities) को उसके सम्पर्क को पृथक करके, संक्रमण (Infection) को रोका जा सकता है, तथा इसके उपरान्त उपयुक्त उपचार करना सरल हो जाता है। ल्यूकोडर्मा (Leucoderma), फावस (Favus) इम्पीटीगो (Impetigo), सोराइसिस (Psoriasis), पिटिरा-

इसिस (Pityriasis) तथा वर्सीकलर (Versi Colour) इत्यादि प्रदाह भी अपने विभिन्न विशिष्ट प्रतिभासिक वर्गों के कारण अतिबैंजनी रश्मियों में सरलतापूर्वक पहिचान लिए जाते हैं तथा आरम्भिक अवस्था में ही उपचार कर दिया जाता है। एक्स-किरण त्वचा-प्रदाह-एक्सरे डर्मेटाइटिस (X ray Dermatitis) भी प्रारम्भिक अवस्था में परख लिया जाता है। गुप्त-लालिमा-लेटेन्ट इरीथिमा (Latent Erythema) को अदृश्य अवस्था में ही साधारण त्वचा की तुलना में प्रतिभास वर्ण-परिवर्तन (Fluorescence Colour Change) द्वारा पहिचान लेना अत्यन्त सरल हो गया है। शरीर में रक्त-संचार (Blood Circulatioh) को प्रत्यक्ष रूप में परखने के लिए फ्लूरोसीन (Fluorosceiu) के ५% जल-विलयन का १० सी० सी० अन्तर्शिरा इन्जेक्शन (Intervenous injection) के रूप में शरीर में पहुँचाया जाता है। इसके फलस्वरूप तत्काल ही अतिबैंजनी प्रकाश में ओठों, आँखों तथा त्वचा पर, जब तक सञ्चरण ठीक है, हल्के हरे प्रतिभास की झलक दिखाई देने लगती है। संशयात्मक दशा में जब देखने में यह लगता हो कि प्राणी की मृत्यु हो गई है प्रतिभास-दर्शन इस बात की सहज ही पुष्टि कर देता है कि हृदय अभी गतिमय है अथवा नहीं। तीव्र रक्त-अवरोध (Acute Embolism) की अवस्था में प्रतिभास-परीक्षण रक्त-प्रवाह के स्तर को सुगमता से दर्शा देता है। यह भी सत्य है कि रोग की विभिन्न अवस्थाओं में किसी प्राणि-विशेष का रक्त-रस (Human Sera) विभिन्न प्रतिभासिक रंग का होता है। इस बात की पुष्टि भी हो चुकी है कि प्रतिभास का अभाव रक्त-रस में (Serum) में हानिकारक अवयवों का समावेश सूचित करता है।

अधिकांश मानव-स्राव (Human Secretions) प्रतिभासिक होते हैं। मूत्र (urins) का प्रतिभास-परीक्षण मूत्र में निकोटिनिक अम्ल (Nicotinic Acid) के अभाव की परीक्षा करने के लिए अत्यन्त सुगम साधन है। मूत्र का गुलाबी-लाल प्रतिभास पौरफ्रीनुरिया (Porphreneoria) का निर्देश करता है। पलैग्रा रोग (Pellagra) के उपचार काल में रोगी को मूत्र का नित्य प्रतिभास-परीक्षण करके रोग की निरंतर प्रगति अथवा अवगति देखी जाती है। नेत्र-विशेषज्ञों (ophthalmic experts) को विट्रयस (Vitreous) को निकालने की विधि में सम्बन्धित अवयवों (Related parts) के पृथक-पृथक प्रतिभास से प्रर्याप्त सहायता मिलती है। ५% फ्लूरोसीन विलयन (Fluoroscein Solution) के एक इन्जेक्शन की सहायता से नेत्र-पटल (Eye-lids) के लेजन्स (Lesions) अथवा कनीनिका (Cornea) का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। रोग-परीक्षा में कटे हुए अंगों तथा हड्डियों को बिना अभिरञ्जित किये ही (Withont Ptaining) रोगग्रसित भागों का अति बैंजनी प्रकाश-पुञ्ज में सम्यक् विवेचन हो जाता है। साधारण-अर्बुद (Ordinaty Tumours), कर्कटार्बुद (Carcinoma Tumours) तथा मैटास्टेसेज (Metastases) के उच्छेद (Cross Section) अतिबैंजनी किरणों में बैंजनी दिखाई पड़ते हैं।

आशु एवं सूक्ष्म प्रतिभासिक परीक्षण विधियों (Rapid & Micro-fluorscent Methods) की सहायता से रक्त अथवा अन्यान्य जीव सम्बन्धी

द्रवों में (Biological fluids) में पैनीसिलिन (Penicellin); ऐड्रीनैलीन (Adrenaline), स्टिलवामैडिन (Stilbamidine), यूरोविलिन (Urobilin) तथा अन्यान्य सैलिसिलेट्स (Salicyalates) की उपस्थिति तथा मात्रा का ज्ञान अत्यन्त सरल हो गया है।

पशु-पालन विज्ञान (Veterinary Science and Animal Husbandary) में जानवर के विशेषतः घोड़ी के मूत्र में प्राप्त फौलिकुलिन (Folliculin) की प्रतिभास परीक्षा से इस बात का निर्णय करना अत्यन्त सरल हो जाता है कि अमुक मवेशी गर्भ धारण किये है अथवा नहीं। पशु-विज्ञान के क्षेत्र में इस दिशा में नित-नवीन गवेषणाएँ जागरूक हैं।

२—प्रतिभास तथा जीवाणु विज्ञान

(Fluorescence & Bacteriology)

प्रतिभास-परीक्षण विधि से सूक्ष्मदर्शी निरीक्षणों (Microscopical Investigations) तथा विशिष्ठ प्रकार की सुसंयत प्रयोगशालाओं (Specifically equipped Laboratories) के बिना ही विभिन्न उपजों (Cultures) का अन्तर्विवेचन अत्यन्त सरल हो जाता है। उदाहरणतः विभिन्न प्रकार के टाइफस तथा तपेदिक जीवाणु (Typhus and Tuberculosis bacteria) अतिवैंजनी किरणों में अपने भिन्न-भिन्न प्रतिभास के कारण सरलता पूर्वक परखे जा सकते हैं। लैम्पार्ट (Lampart) नामक एक जीवाणुवेत्ता ने स्प्यूटम-स्मीयर्स् (Sputum Smears) में एम-तपेदिक जीवाणुओं (M-Tuberculosis bacteria) के परीक्षण के लिए एक अत्यन्त ही उत्कृष्ट प्रतिभासिक सूक्ष्मदर्शी (Fluorescence Microscopy Technique) विधि निकाली है।

इस विधि के अन्तर्गत, सर्वप्रथम स्मीयर (Smear) बनाया जाता है, उसे थोड़ा-थोड़ा गर्म करके स्थिर कर लिया जाता है। तदुपरान्त उसमें ०.३% आरोमिन (Auromine) का ३% फीनोल (Phenol) में विलयन का लगभग १० घ० से० डाल कर रासायनिक प्रक्रिया की जाती है।

इसके पश्चात् इसे खूब धोकर सुखा दिया जाता है। अब उस पर ०.५% नमक का अम्ल (HCl), ०.५% लवण (NaCl) तथा ७५% अलकोहल (Alcohol Elhyl) का थोड़ा सा विलयन डाल कर उसका रंग उड़ा दिया जाता है। ०.१% पोटाशियम परमैंगेनेट के विलयन में ३० सें० तक पड़े रहने के पश्चात् इस रंगहीन सूखे स्मीयर (Smear) में जीवाणु (Bacilli) चमकीली पीली-पीली प्रतिभासयुक्त लकीरों के रूप में स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं।

अधिकांश फफूँद (Fungi) का प्रतिभास जीवाणुओं (Bacteria) के प्रतिभास से सर्वथा भिन्न ही होता है। तथा ऐसी जातियाँ (Species) जो वास्तविक रूप में पृथक हों परन्तु साधारण निरीक्षण से समान ही समझी जाती हों, प्रतिभास परीक्षण से पृथक-पृथक दृष्टिगोचर होने लगती हैं। इस प्रकार फफूँद (Fungi) की विविध जातियों का अन्तर्विवेचन अत्यन्त सुगम तथा सरल हो गया है।

जीवित जीवाणु युक्त वस्तु (Substance Containing Living Bacteria) को एक्रेडीन ऑरेंज विलयन (Acridine Orange Solution)

में कुछ देर डुबाने पर पर उसका प्रतिभास हरा हो जाता है। परन्तु मृत जीवाणुओं (Dead Bacteria) का प्रतिभासिक वर्ण सामान्यतः ताम्र लाल वर्ण का होता है। यही स्वभाव जीवित तथा मृत पादक-कोष्ठों (Plants-cells) का होता है। इस प्रकार प्रतिभासिक सूक्ष्मदर्शी यंत्र (Fluorescence-Microscope) की सहायता से उपयुक्त अभिरंजकों (Stains) का उपयोग करते हुए विभिन्न जीवाणुओं (Bacteria) तथा खमीर (Yeasts) इत्यादि की परख करना अत्यन्त सुगम हो गया है।

रक्तधारा में कतिपय उपयुक्त प्रतिभासिक यौगिकों के विलयनों का इन्जेक्शन देते हुए प्रतिभासिक सूक्ष्मदर्शी यंत्र (Fluorescenee Microscope) की सहायता से अतिनिद्रा रोग के कीटाणु—ट्राइपैनोसोम्ज (Trypanosomes) बड़ी सरलता से परखे जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर Bacteria, Fungi and Growth of various cultures की समुचित परीक्षा के लिए प्रतिभास-दीप अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध होता है, जिनका पूर्ण विवरण प्रस्तुत लेख की सीमा से परे है।

३—प्रतिभास तथा रसायन एवं ओषधि-वेत्ता

(Fluorescence and Chemists and Druggists)

ओषधियों में प्रयुक्त होने वाले मुख्य-मुख्य अलकैलायड्स (Alkaloids) में से अधिकांशतः अतिबैंजनी प्रकाश में किसी न किसी प्रकार का प्रतिभास अवश्य निस्सृत करते हैं तथा उनकी परीक्षा पाउडर अथवा टिकिया किसी भी रूप में की जा सकती है। पेपर-क्रोमेटोग्राफी द्वारा प्राप्त कागज की पट्टियों का प्रतिभासिक निरीक्षण विविध प्रकार के एलकैलायड्स की परख का एक अत्यन्त ही सूक्ष्म ग्राही (Sensitive) तथा विश्वस्त साधन है। प्रत्येक एलकैलायड विशेष के अनुरूप वर्णिक-खंड समूह (Coloured Zones) स्पष्ट दिखाई देते हैं। एलकैलायड्स का अत्यन्त क्षीण विलयन जिसकी Mayer's Reagent जैसे सूक्ष्मग्राही रसायन तक से प्रक्रिया नहीं हो पाती, इस विधि से अच्छी प्रकार परख लिया जाता है। उदाहरणतः मोरफीन (Morphine) का ३० घं० से० में ०·०००१ मि० ग्र० विलयन भी इस विधि से सरलता पूर्वक परख लिया जा सकता है। कोई वस्तु प्रकाश में निरन्तर रक्खे रहने से अथवा बन्द रख देने से क्षय हो गई है अथवा नहीं, इसका निर्णय अतिबैंजनी किरणें अत्यन्त सरलता से कर देती हैं। इस विधि का एक विशेष लाभ यह भी है कि रंगीन द्रवों में भी एलकैलायड्स की मात्रा सुगमतापूर्वक ज्ञात की जा सकती है। टिंक्चर्स (Tinctures) में क्लोरोफिल (Chlorophyll) अपने लाल प्रतिभास के कारण बिना किसी रासायनिक प्रक्रिया के ही सरलता से परख लिया जाता है। कुइनीन लवणों (Quinine Salts) का प्रतिभास लाल वर्ण का होता है अतः संशयात्मक स्थिति में उनको पहिचाना जा सकता है।

परिशुद्ध केसर (Genuine Saffron) का प्रतिभास लालिमा मिश्रित पीत वर्ण का होता है तथा मिलावट होने पर उसके प्रतिभास में लाल-भूरी झलक आने लगती है। लार, स्त्री का दूध तथा अन्यान्य ऐसे द्रवों में विविध एलकैलायड्स की

अल्पमात्राओं को ज्ञान करने के लिए ये अतिबैंजनी रश्मियाँ अत्यन्त सहायता करती हैं। विभिन्न ओषधिओं में एलकैलाइड्स की तुलनात्मक मात्रा का विवेचन इस विधि से अत्यन्त सरल हो जाता है। ओषधियों के पेड़ों के डंठल, फल, फलियाँ तथा पत्तियाँ सभी वस्तु विशेष का प्रतिभास निस्सृत करते हैं। प्रतिभासिक सूक्ष्मग्राही विधियों द्वारा आरसेनिक (Arsenic) की ०.००००००१ ग्रा० मात्रा तक की परख की जा सकती है।

विभिन्न ओषधियों की शुद्धि-परीक्षा की भिन्न-भिन्न प्रतिभासिक विधियाँ होती हैं इनमें से कुछ का विवरण नीचे दिया गया है।

१. *कुइनीन* (Quinine) हल्के गन्धक के अम्ल में कुइनीन का प्रतिभास तीव्र नील वर्ण का होता है।

२. *हाशिश* (Hashis) ईथर के extract में हाशिश का प्रतिभास हरे वर्ण का होता है।

३. *फिसोसटिगीन* (Physostiguine) सर्व प्रथम गन्धक के अम्ल से इसकी प्रक्रिया की जाती है। तत्पश्चात् इस पर आमोनिया डाल कर सुखा लिया जाता है। अब उपलब्ध पाउडर को अल्कोहल तथा एसिटिक अम्ल में घोल कर विलयन की प्रतिभास-परीक्षा की जाती है। विलयन का प्रतिभास लाल वर्ण का होता है।

४. *विटाट्रीन* (Vetatrine) : गन्धक के अम्ल के साथ इसका विलयन पीले हरे वर्ण का प्रतिभास निस्सृत करता है।

५. *मौरफीन* (Morphine) :

०.५ ग्रा० से० तीव्र गन्धक के अम्ल के साथ इसे पहले ७-८ मि० तक खूब गर्म किया जाता है तत्पश्चात् जल तथा अमोनिया के हल्के विलयन से इसे क्षीण बनाया जाता है। अतिबैंजनी किरणों में इस विलयन में धीरे-धीरे बैंजनी प्रतिभास का भास होने लगता है।

६. *कोडीन* (Codeine)

पाइक्रोलोनिक अम्ल (Picrolonic Acid) के साथ विलयन का प्रतिभास पीत वर्ण का होता है।

इसी भाँति अन्य अनेकों ओषधियों की प्रतिभासिक परीक्षा करके सत्यता का विवेचन किया जा सकता है।

कासमेटिक्स (Cosmetics) तथा परफ़्यूमरी (Perfumery) के प्रयोग में आने वाले अन्यान्य अवयवों (Constituents) तथा तेलों के विवेचन के लिए भी प्रतिभास दीप अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध होते हैं।

वस्तुतः प्रतिभास-परीक्षण वैज्ञानिकों तथा उद्यमशील व्यक्तियों का एक ऐसा साधन है, जिसके बल पर अन्यान्य वस्तुओं की शुद्धि-परीक्षा शीघ्रता तथा सरलता से हो जाती है।

प्रतिभास की अन्यान्य उपयोगिताओं तथा उसकी बहुमुखी प्रतिभा के विवेचन का समावेश आगामी लेखों में किया जायगा।

पेट्रोल महाराज (२)

श्री नन्दलाल जैन, एम० एस-सी०

[३]

मैं यह पहले ही कह चुका हूँ कि मेरा भूगर्भीय रूप मुझे स्वयं पसंद नहीं है और उससे मैं मानव को अधिक लाभान्वित भी नहीं कर पाता। केवल दीपक जलाकर ही मैं मानव के दुर्धर प्रयास का प्रत्युपकार नहीं कर सकता। मानव की विनय पर प्रकृति देवी ने मुझे जिस काम के लिये उसे सौंपा है, वही मेरी जीवन साधना होगी। मानव ने बैठ कर क्षणभर सोचा, "मेरा परिश्रम व्यर्थ गया" तभी मैंने उसे सांत्वना दी, "नहीं, तुम निराश न हो; मुझे उबाल कर तो देखो" बस फिर क्या था, मानव ने मुझे उबालकर शुद्ध करने की विधि और उसकी पूर्ण यंत्र कला सजा दी। मानव ने तब मुझे तपे हुए लौह-सांसों में डाला और मेरा खरा रूप प्राप्त किया। उसने अनुभव किया कि मैं भद्दा नहीं हूँ, प्राचीन सभ्यता में जो स्थान सोने का था, वही आज मेरा स्थान मुझे प्राप्त हो गया है, मुझमें और सोने में केवल अवस्था का भेद है, वह पीला और ठोस है, पर मैं पीला और तरल हूँ। तरल स्वर्ण के रूप में मैं मानव को दुनिया की सैर क्षणों में कराता हूँ, मानव के स्वास्थ और सौन्दर्य के लिये स्वास्थ्य और शृङ्गार प्रसाधन प्रस्तुत करता हूँ, मानव की यातायात प्रक्रिया को सुरक्षित और स्थायी बनाता हूँ, मानव को कृत्रिम रबर और वस्त्र देता हूँ और न जाने क्या-क्या............युद्ध और शांति मैं दोनों का अग्रदूत हूँ। मेरी सेवा क्रूरता और कोमलता दोनों से ओत-प्रोत है।

हाँ तो मैंने मानव को अपनी कुंजी दे दी। इससे मुझे हानि हुई, यद्यपि मानव को अपरिमित लाभ हुआ। भूगर्भ के दाब और ताप से तो मेरा जन्म ही हुआ है। इसलिये मेरे ऊपर इनका तो कुछ असर नहीं पड़ा, परन्तु मेरे जितने साथी मेरे साथ थे, और जो समय पाकर मेरे रूप में ही बदल जाते, मानव की भट्ठियों की गर्मी न सह सके और एक-एक कर मुझे छोड़कर चलते बने। कुछ ने सोचा," बड़ी तेज गर्मी है, अच्छा है पहले ही भाग चलो।' कुछ उबलते पानी के तापक्रम तक तो मेरे साथ रहे, फिर वे भी मुझे छोड़ चले। जब मैंने देखा कि मेरे सब साथी मुझे छोड़-छोड़कर जा रहे हैं; तो मैं भी अपने कुछ गाढ़े दोस्तों को छोड़कर ऊपर आगया और मानव ने भी बड़ी चालाकी से मेरे सब साथियों को अलग-अलग इकट्ठा कर लिया। मैंने वायु की शीतलता पाकर जब चारों ओर देखा, तो पता लगा कि मेरे सब साथी अलग-अलग उपकरणों में बैठे हुए हैं। हम लोगों को एक बार मिलने की इच्छा हुई, पर हममें इतनी शक्ति कहाँ कि धातुओं

से लोहा ले सकें और उन्हें तोड़कर, बाहर निकलकर मिल सकें। मेरी इच्छा मन की मन में रह गई। मैंने चारों ओर देखकर मानव की बुद्धि पर अचंभा किया कि उसने इतने ऊँचे अगणित बेलनाकार स्तंभों का एक जाल बिछाकर किस प्रकार हमें कैद करने का षड्यंत्र रचा है। पर अब क्या हो सकता था, अपने ही हाथों ही मैंने कुल्हाड़ी पटकी थी।

हाँ, जब मैं अन्य साथियों के साथ छोड़कर कुछ साथियों के समान असह्य गर्मी से बचकर भाग आया, तो मेरे साथी बड़े नाराज हुए और उन्होंने सोचा कि वे गर्मी में भुलस जावेंगे, पर गद्दारी कर एक दूसरे को न छोड़ेंगे। लेकिन अपना जीवन किसे पसन्द नहीं है। कोई उसे भुलसाना नहीं चाहता, फलतः अनिच्छा से ही सब लोग उड़-उड़कर आगये और चिक्कणतर तैलों, मोमों, वैसलीन, तार, कोल आदि के रूप में पकड़ लिये गये। अन्त में गर्मी खाकर जो हमारे कुछ साथी भुलस गये, वे उन गरम भट्टियों में ही पड़े रह गये और 'कोक' बन गये। इस प्रकार प्राकृतिक रूप से निखर कर अब मैं निम्न साथियों के साथ इस जगत में विद्यमान हूँ।

१—पेट्रोलियम ईथर, नैप्था, बैन्जाइन, आदि घोलक-मित्र।

२—मिट्टी का या किरासन तेल व उसके साथी दीपकों के ईंधन।

३—डीजल, आदि भारी तेल जो चिकनाहट के काम आते हैं, और जो अब मेरे समान ही वाहन-चालक बनते जा रहे हैं।

४—वेसलीन, मोम, तार, कोक इत्यादि।

अपने रूप निखारने की इस प्रक्रिया में मेरा नाम 'गैसोलीन' है, और मैं ७०°-१२०°C तापक्रम की गर्मी पाकर ही तप्त स्तंभों में से बाहर आ जाता हूँ। किरासिन तेल मेरा बड़ा भाई है; क्योंकि वह मेरे बाद मैदान छोड़ता है। आप लोग अभी तक यह जानते हैं कि जो पहले पैदा हो, वही बड़ा होता है। पर हम लोग तो सब लगभग एक साथ ही जन्मे हैं, हम लोगों की बिरादरी में छोटा बड़ापन शक्ति और और सहिष्णुता के आधार पर होता है। छोटे लोग अधिक उतावले और सक्रिय होते हैं, पर बड़े लोग सहिष्णुता के लिये प्रसिद्ध हैं। यही कारण है कि किरासिन तेल से भी बड़े डीजल, मोम आदि मेरे भाई हैं जो अंत तक ताप सहन कर अपनी तीव्र सहिष्णुता का परिचय देते रहते हैं।

(४)

जैसा कि मैं तुमसे पहले कह चुका हूँ कि मनुष्य के यातायात को संवर्धित करने और विश्व में एकरूपता के दर्शन कराने के लिये मानव ने जिन अन्तर्दहन यंत्रों का आविष्कार किया था, उन्हें चलाने के लिये मुझे सर्वोपयोगी माना गया। फिर मुझे बिजली के उत्पादन करने वाले यंत्रों को चलाने के लिये भी अधिकारी माना गया। जब इस शताब्दी में विश्वयुद्धों का नृत्य प्रारंभ हुआ, तब यह अनुभव किया गया कि यातायात और विद्युत् के उत्पादन की इतनी अधिक मात्रा में आवश्यकता है कि मुझे भी भूगर्भ से अधिकाधिक मात्रा में निकालकर शुद्ध रूप में प्राप्त करना चाहिये। प्रकृति की कार्य-प्रणाली की रफ्तार मंदता पर नियमित है; और मानव की सभ्यता यांत्रिक और तेज रफ्तार वाली है। लाखों वर्षों की प्राकृतिक क्रियाओं ने मुझे जिस परिमाण में जन्म दिया था, उसके अनुरूप यदि

आज की आवश्यकतायें बढतीं, तो संभव था कि मैं अगली कई सदियों तक मानव को दुनिया की सैर कराता रहता; परन्तु आवश्यकता और मेरे उत्पादन का अनुपात बिलकुल पलट गया और मानव ने अनुभव किया कि यदि वह अपनी सभ्यता को निरंतर विकसित और वृद्धिगत करता गया, तो वह प्रकृति का भांडार अल्पकाल में ही समाप्त कर लेगा। अतः भविष्य के विषय में चिन्तित होकर मानव ने अपना मस्तिस्क पुनः विलोड़ित किया और सोचा कि मुझे प्रकृति से तो अधिक मात्रा में प्राप्त नहीं किया जा सकता। फलतः यदि उसे मेरी आवश्यकता है तो दो ही उपाय हैं—(१) या तो रसायनशास्त्री मुझे प्रयोगशाला में ठीक उसी विधि का अनुसरण कर बनाये, जिससे मैं भूगर्भ में जन्म लेता हूँ। (२) या फिर मेरे बड़े भाइयों से कहे कि वे मेरे बनाने की विधि बतावें। इसके लिये उन्हें मेरे बड़े भाइयों के प्रति क्रूरता भी प्रदर्शित करनी होगी। उन्हें झुलसाना भी होगा। उनके शरीर में सुई की नोकों वाले पदार्थ चुभाने होंगे, जिनके कष्टों से आहत होकर वे सम्भव है कोई उपाय बता दें। सबसे पहले मानव ने मुझसे पूछा, "तुम्हीं बताओ, तुम्हें हम कैसे और अधिक मात्रा में प्राप्त कर सकते हैं?'

मैंने अपनी मूकवाणी में सलाह दी, "तुम्हें मेरी शरीर-रचना का पर्याप्त ज्ञान हो गया है। क्यों नहीं तुम मेरे शरीर में पाये जाने वाले तत्वों को संयोग कराकर मुझे अपनी प्रयोगशाला में तयार कर डालते हो।"

पहले विश्वयुद्ध में जर्मनी तबाह हो गया था, दूसरे स्थानों में ही मेरी सलाह की उपेक्षा की गई; परन्तु वहाँ के रसायन-शास्त्रियों ने मेरी सलाह मानली और कुछ ही समय में कोयला और कोल-तार सरीखे पदार्थों से बने गैसों या द्रवों पर कुछ उत्तेजक पदार्थों की सहायता से हाइड्रोजन नामक गैस की क्रिया कराई गई। दाब और तापक्रम की तो आवश्यकता थी ही। इस प्रक्रिया से जर्मनी के लोगों को सफलता मिली और उन्हें मेरे जैसा ही द्रव पदार्थ प्रयोगशाला में मिल गया। फिर क्या था? जर्मनी ने पुनः अपना विकास किया और सन् ३६ में फिर से युद्ध-दुन्दुभि उद्घोषित कर डाली। जिन जर्मन रासायनिकों ने मुझे प्रयोगशाला में तयार किया, उनमें फिशरस्ट्राप्स और वरग्विस के नाम उल्लेखनीय हैं।

इधर अमेरिका आदि देशों में मुझे प्राप्त करने की दूसरी ही प्रक्रिया अपनाई गई। एक तो अमेरिका में मैं इतनी अधिक मात्रा में विद्यमान हूँ, कि उसे मुझे प्रयोगशालाओं में तयार करने की जरूरत नहीं। पर वैज्ञानिक के सामने कई समस्या जब आजाती है, तो वह उस ओर से आँख नहीं मूँद सकता। उन्होंने सोचा तत्वों से नये सिरे से संश्लेषण करना पेचीदी प्रक्रिया है। पदार्थ परमाणुओं के संगठन से बनते हैं। कुछ पदार्थों के अणु छोटे होते हैं, कुछ के बड़े अणु होते हैं। छोटे अणुओं को विशेष परिस्थिति में मध्यम श्रेणी के अणुओं में बदला जा सकता है और बड़े अणुओं को झुलसाकर मध्यम श्रेणी के अणुओं में बदला जा सकता है। प्रक्रियाओं को अभिनवीकरण और अणुक्लेदन कहते हैं। कोई यह नहीं चाहता कि छोटी जाति बड़ी जाति से सम्बन्ध बना डाले; परन्तु यदि बड़ी जाति छोटी जाति वालों से मिलती है, तो छोटी जाति का लाभ

तो होता ही है. बड़ी जाति वालों की उदारता भी व्यक्त होती है। विज्ञान के क्षेत्र में यद्यपि जातिवाद नहीं है, फिर भी कुछ धुंधली सी रेखा अवश्य है। क्योंकि पहले मेरे बड़े भाइयों को भुलसाकर मेरे समान मध्यम अणुओं में बदला गया। किरासिन तेल, डीजल आदि पदार्थों के अणुओं को जब रक्त ताप में भुलसाया गया, और हवा भी सांस लेने के लिये दी गई, तो बेचारों ने अपनी जीवन लीला समाप्त कर मेरा रूप धारण कर लिया। बाद में फिर प्राकृतिक और अन्य छोटे अणुओं को भी बहुलीकरण, उदजनीकरण, शृङ्खलीकरण समावयवीकरण आदि विधियों से मझोल अणुओं में परिवर्तन कराकर मेरा रूप धारण कराया गया। अतः सभी तरफ से मुझे बनाने की प्रक्रियाओं में अब सफलता प्राप्त हो चुकी है। इसलिये अब यह आशंका भी निर्मूल हो गई है कि सभ्यता की गति की वृद्धि के साथ कहीं प्रकृति खिलवाड़ न कर बैठें ?

प्रकृति मुझे जिस परिमाण में मानव को भेंट करती है, अब वह उससे भी कहीं अधिक मात्रा में मुझे बना सकता है। और अल्पकाल में मानव मस्तिष्क ने करोड़ों की राशि खर्चकर इसीलिये बड़े-बड़े कारखाने बना डाले हैं।

इन प्रक्रियाओं के पूर्व मुझमें एक खराबी पाई जाती थी, वह यह कि जब मैं मोटर चलाने लगता था, तो मेरी प्राकृतिक रचना की विशेषता के कारण एक प्रकार की घर्र-घर्र की कर्णकटु ध्वनि मैं उत्पन्न करता था, जो निरंतर यात्रियों को खटकती रहती थी। इन प्रक्रियाओं से यह ध्वनि भी पर्याप्त अंशों में समाप्त हो गई है, कुछ ऐसे पदार्थ खोज लिये गये हैं, जिन्हें मिला देने पर मैं उनसे ही बातचीत करने लगता हूँ और घर्र-घर्र करने की आदत छोड़ बैठता हूँ। मेरे इस शान्त रूप को 'हाइ-ऑक्टेन-पेट्रोल' कहा जाता है और आप लोगों को जिस रूप में मैं मिलता हूँ, वह मेरा यही रूप है।

(५)

कारखानों में से निखर कर या नयी प्रक्रियाओं से बनकर मैं बन्द पीपों में सारी दुनिया की सैरकर सब लोगों की सेवा में उनके नगरों के विक्रेताओं द्वारा बनाये गये पम्पों की सहायता से पहुँचता हूँ। कुछ देशों में, जहाँ प्रकृति ने मुझे कम मात्रा में जन्म दिया है मुझे 'पावर-अलकोहल' के साथ मिलाकर आप लोगों की सेवा में पहुँचाया जाता है। भारत एक ऐसा ही देश है, पहले लोगों का विचार था कि पावर अलकोहल, जो शक्कर के शीरे से बनाया जाता है, मेरा काम कर सकता है, पर यह भ्रान्त सिद्ध हुआ। अत; अब मैं कहीं-कहीं शुद्ध रूप में और कहीं पावर अलकोहल से मिलकर आपकी सेवा में पहुँचता हूँ।

वर्तमान में मानव ने अब मुझे इतनी अधिक मात्रा में उत्पादन करना प्रारम्भ कर दिया है कि कहीं-कहीं तो मैं बेकार बच रहता हूँ। पर आजकल बेकार वस्तुओं का भी एक नया विज्ञान चल पड़ा है। उन्हें कैसे उपयोगी बनाया जावे ? सब बेकार वस्तुयें रसायनशास्त्री के पास पहुँचती हैं, वह गोबर से जलाऊ गैस भी निकालता है, खाद भी निकालता है। शक्कर के शीरे से शक्तिदायी अलकोहल निकालता है, इसी प्रकार मेरी इस बेकार मात्रा से नये-नये पदार्थ प्राप्त कर रहा है। विभिन्न प्रकार के शीतकारक पदार्थ, विस्फोटक पदार्थ, कीटनाशक पदार्थ, अपद्रव्यों को घोलकर दूर करने वाले पदार्थ, प्लास्टिक, रबर, कपड़े और अगणित पदार्थ.........।

[शेष पृ० ६६ पर]

मिचुरिन के फलों के बाग़ में

लेखक : एन० वर्जिलिन तथा वी० कोर्सुन्स्काया

सोवियत सङ्घ के सुन्दर फलों के बाग में एक बाग ऐसा है जो केवल सोवियत सङ्घ में ही नहीं, बल्कि कई अन्य देशों में प्रसिद्ध है। इसमें असंख्य नई प्रचलित की हुई जातियों के फलों के पेड़ और झाड़ियाँ लगी हुई हैं।

यह अद्भुत बाग लेसनाई वोरोनेज नामक छोटी-सी चक्करदार नदी के तट पर मिचुरिंस्क नामक शहर में स्थित है।

आइए हम बाग का एक चक्कर लगाएँ। छोटी-सी नदी का पुल पार करके हम एक चौड़ी-सी मेहराब के नीचे से फाटक में प्रवेश करते हैं। हमारे सामने एक रास्ता है। उसके बायीं तरफ जङ्गले के पार हम नदी के किनारे बागान देख सकते हैं। दाहनी तरफ जङ्गले के पीछे ही इस बाग का मुख्य भाग स्थित है। एक फाटक खोलकर हम इस बाग के भीतर की तरफ बढ़ते हैं।

वहाँ विभिन्न प्रकार के सेब के पेड़ लगे हैं। अति उत्पादनशील और पाले को सहन करने वाली "बेलेफ्लयोर किताइका" जाति के पेड़ों पर सुन्दर बड़े-बड़े सेब लटक रहे हैं। "पेपिन शाफरान" जाति के फल देखने और स्वाद में इससे निम्नकोटि के नहीं हैं। मध्यवर्ती प्रदेश के फलों के बागों में इसी जाति के पेड़ सबसे व्यापक रूप से लगाये जाते हैं। पास ही के एक पेड़ पर बहुत बड़े-बड़े सुन्दर सेब लगे हैं, जिनमें से एक-एक का वजन कम से कम ५०० ग्रैम होगा। उनका रङ्ग हल्का पीला है और बीच-बीच में सफेद धब्बे हैं और उनकी शक्ल कुछ-कुछ लम्बोतरे शलजम से मिलती है। यह एक नयी जाति का सेब है—"६०० ग्रैम आन्तोनोवेका" जाति का। इस सेब में बड़ी भीनी-भीनी सुगन्ध आती है और स्वाद में यह मीठा होता है, जिसमें एक हल्की-सी स्वादिष्ट खटास होती है।

पास ही के एक पेड़ पर लगे हुए "कान्दिल किताइका" जाति के सेब देखने में इतने भले मालूम होते हैं, यह भी एक नयी जाति है और इसके अंडाकार गुलाबी फल बहुधा नये वर्ष के वृक्षों को सजाने के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं।

नाशपाती के पेड़ मानों सेब के पेड़ से होड़ कर रहे हैं। उनकी संख्या भी बहुत अधिक है। सबसे बड़े फल ब्यूरे जिमनाया मिचुरिना (मिचुरिन शीत ब्यूरे) जाति के पेड़ों पर लगते हैं। शरद ऋतु में उनका रङ्ग पीतवर्ण-श्वेत होता है और वे कुछ कड़े होते हैं पर दो ही तीन महीनों में वे इतना बदल जाते हैं कि पहचाने में भी नहीं आते। उनका रङ्ग बिल्कुल पीला हो जाता है और उनमें हल्के उन्नाबी रङ्ग का पुट भी आ जाता है और वे बहुत मीठे और रसदार हो जाते हैं। इस जाति की थोड़ी-सी नाशपातियों से सारा कमरा मादक सुगन्ध से महक उठता है। यह जाति उत्तर के कठोर जाड़े को अच्छी तरह सहन कर सकती है।

इस बाग में एक अनोखा नाशपाती पेड़ का लगा है, उसमें छोटे छोटे गोल फल लगते हैं। यदि हम इनमें से एक नाशपाती को हाथ में लेकर निचोड़ें तो उसमें से शक्कर के शरबत जैसा मीठा गाढ़ा रस निकलेगा। इस जाति को "शक्कर का बदल" (सुरोगात साखारा) का नाम दिया गया है। सूख जाने पर ये नाशपातियाँ सचमुच बिल्कुल फलों की मिसरी हो जाती हैं।

एक पेड़ की डाल पर नाशपातियाँ भी लटक रही हैं और लाल ऐशबरी के गुच्छे भी। नाशपाती के पेड़ में प्रतिवर्ष नए उगने वाले पहाड़ी ऐश वृक्ष की टहनी की कलम लगा दी गई है। इसके फल स्वरूप एक अत्यन्त दिलचस्प सजाटवी पेड़ तैयार हो गया है।

इस बाग में हम एक नई जाति के पौधे के बिना गुठलीदार फल देखते हैं जो इसी बाग में तैयार की गई हैं; इस जाति का नाम है त्सेरोपेडस जो वर्डचेरी और साधारण चेरी के सम्मिश्रण से प्राप्त हुई है। इसकी कुछ जाति के पेड़ों में लाल फल लगते हैं और कुछ में चमकदार काले रंग के मानो ऊपर वार्निश कर दी गई है।

बाग में बेर के और पाला सहन करने वाली (शीत सहन शील) जाति खूबानी के कई पेड़े हैं जो आम तौर पर केवल दक्षिण में ही होती है। वहाँ उत्तरी सफर जल की भी एक जाति है जो काकेशियाई जंगली पहाड़ी सफर जल से विकसित की गयी है। उत्तरी सफर जल लम्बे से लम्बे और सख्त से सख्त जाड़े को बर्दाश्त कर सकता है। नाशपाती की विकसित जातियों की कलम इसमें लगा दी गई हैं। फलस्वरूप नाशपाती के पेड़ अब उत्तर में और दूर तक उग सकते हैं।

यहाँ लियाना की एक बेल भी लगी हुई है जिसकी पत्तियाँ बहुत ही सुन्दर हैं वे ऊपर से हरी और नीचे सफेद और गुलाबी। यह एन्टीनीडिया अन्नास है। इसे एक जंगली बेल से विकसित किया गया है जो सुदूर पूर्व के जंगलों में होती है। गर्मी के अन्त में उसके लंबे पारदर्शी और कुछ चपटे फल पकने लगते हैं। ये फल बहुत ही मीठे होते हैं किशमिश से भी मीठे।

घर के निकट कई प्रकार के फूल लगे हैं। वहाँ बगीचों की चमेली की घनी झाड़ियाँ हैं, जिनमें जंगली स्ट्राबेरी की असाधारण सुगंध आती है। "स्लावा स्वेता" (विश्व गौरव) जाति के गुलाब तो विशेष रूप से सुन्दर हैं, ये हल्के गुलाबी, प्रायः बिल्कुल रुपहले रंग के बड़े-बड़े दोहरे गुलाब हैं जिनकी अपनी अलग ही एक भीनी-भीनी सुगन्ध है। इनकी पंखड़ियों में एसेन्शल आयल का अंश बहुत अधिक होता है—एसेन्शल आयल निकालने के प्रख्यात काजानलिक जाति के गुलाब से भी ज्यादा। "स्लावा स्वेता" पहला रूसी गुलाब है जिस एसेन्शल आयल निकाला जाता है। वहाँ गुलाब का एक ऐसी जाति का भी पेड़ लगा है जिसमें कांटें नहीं होते— इसे "बलागो रोदनाया" ("नेक" गुलाब) कहते हैं।

यह अद्भुत बाग किसका तैयार किया हुआ है? इसके संस्थापक थे ईवान व्लादिमीरोविच मिचुरिन। उनका जन्म १८५५ में हुआ था और वह अस्सी वर्ष की उम्र तक जीवित रहे। अपने जीवनकाल में उन्होंने ३०० से अधिक नयी जाति के पौधे विकसित किये

और कई पुस्तकें लिखीं जिनमें उन्होंने अपनी विधियां बयान कीं।

ईवान व्लादिमीरोविच मिचुरिन का बचपन रियाजान प्रदेश के अत्यन्त सुन्दर स्थान में बीता। उनके माता-पिता के पास प्रोनिया नामक नदी के किनारे एक छोटा-सा ग्रामीण घर था जिसके पास ही एक फलों का बाग था।

वानया अभी चार वर्ष का भी नहीं था कि उसकी माँ का देहान्त हो गया। उसे अपने किसी भाई-बहन की याद नहीं थी; वे सब शैशवकाल में ही मर गये थे। उसके पिता हर समय बाग में ही [illegible]स्त रहते थे और जब वानया कुछ बड़ा हुआ तो [illegible] पौधों के लिए क्यारियाँ खोदने में अपने पिता [illegible] सहायता करने लगा। इन पौधों को उगाना [illegible]र उनकी देखभाल करना उसका प्रिय मनोरंजन था। वानया अक्सर अपनी चाची तात्याना इवानोवा के यहाँ जाया करता था; उनके यहाँ भी फलों का एक बाग था। अपनी इन्हीं चाची और पिता से वानया ने पौधों के बारे में जानकारी प्राप्त की और सेब, नाशपाती, चेरी तथा सब्जियों की विभिन्न जातियों के बीच अन्तर करना सीखा।

इस बालक को सबसे अधिक दिलचस्पी बीजों में थी। और सब बच्चे तो किसी फल को खाने के बाद उसके बीज फेंक देते थे पर वानया सेब खा चुकने पर उसके बीज को कसकर अपनी मुट्ठी में दबा लेता था। फिर वह अपनी मुट्ठी खोलकर सोचने लगताः इस बीज से एक पूरा पेड़ निकलेगा और फिर वह बड़ा होकर बहुत सुन्दर होगा। इस बालक को सेब, नाशपाती और चेरी के बीजों में विशेष रुचि थी। फलों और सब्जियों के बाग में वह विभिन्न पौधों के सबसे बड़े, सबसे भारी और सबसे सुन्दर फल ढूँढता और उनके बीज जमा कर लेता। इस प्रकार उसने कई छोटी-छोटी अचारियों और डब्बों का संग्रह जमा कर लिया। ये उसकी सबसे बहुमूल्य निधि थे।

ईवान व्लादिमीरोविच पढ़ने के पीछे पागल रहता था, उद्यान-विद्या की किताबों में उसे विशेष रुचि थी। वह बहुत ही होनहार बालक था। वह हाई स्कूल में भरती हुआ; उसका इरादा कालेज में अपनी पढ़ाई जारी रखने का था। पर उसके पिता बहुत बीमार हो गए और कर्ज चुकाने के लिए घर और जमीन बेच देना पड़ा। जीविका का कोई साधन नहीं रह गया और बालक को हाई स्कूल छोड़ देना पड़ा। इस जमाने में वह अपनी चाची के घर रहता था; वह बहुत ही नेक औरत थीं और उसे अपने भतीजे से बहुत प्यार था, पर वह बहुत गरीब थी।

१७ वर्ष की उम्र में ईवान व्लादिमीरोविच कोजलेव नामक शहर में आया और वहाँ रेलवे में क्लर्क का काम करने लगा। उन दिनों दफ्तर के कर्मचारी दिन में १५–१६ घंटे काम करते थे लेकिन उनकी तनख्वाहें इतनी कम थीं कि सादे-से-सादा जीवन बिताने के लिए भी काफी नहीं थीं। किसी तरह अपना पेट पालने के लिए ईवान व्लादिमीरोविच ने घड़ियाँ, टेलीफोन और अन्य छोटी-मोटी मशीनों की मरम्मत करने की कोशिश की। हालत कुछ अच्छी हो गयी और मिचुरिन को जो आमदनी होती उससे वह वनस्पति-शास्त्र और पौधों की शरीर-क्रिया तथा उनकी भौगोलिक विशिष्टताओं के बारे में किताबें खरीद लेते थे। वह फलों की नयी अद्भुत जातियाँ विकसित करने के स्वप्न देखने लगे। परन्तु अभी तक वह

फलों के बाग के लिए थोड़ी-सी जमीन खरीदने की बात भी न सोच सकते थे।

अपनी खिड़की के नीचे मिचुरिन ने सेब और नाशपाती के कुछ पेड़ लगा लिए और खिड़कियों की चौखट पर कुछ बक्सों में विभिन्न प्रकार के पौधों के चुने हुए बीज बोकर रख दिये।

यहाँ कोजलोव में ईवान व्लादिमीरोविच की दोस्ती एक मजदूर की नौजवान बेटी साशा से हो गयी। दोनों नोजवानों को एक दूसरे से गहरा प्रेम हो गया और उन्होंने शादी कर ली।

इसके शीघ्र ही बाद मिचुरिन के जीवन में एक महान् परिवर्तन आया। रेलवे लाइन के एक प्रधान पदाधिकारी को याद आया कि कोजलोव में मिचुरिन नामक एक क्लर्क था जो घड़ियों वगैरह की मरम्मत किया करता था। उसे घड़ियों और सिगनल देने के यंत्रों की देखभाल करने वाले मेकैनिक की नौकरी दी गयी। उस दिन के बाद से कोजलोव से रियाज़ान-देन्कोव और लेबेदयान जाने वाले यात्री अक्सर उस रेलवे लाइन पर मिचुरिन को देखने लगे।

उदाहरण के लिए मिचुरिन किसी स्टेशन पर पहुँचते और एक छोटे-से सूटकेस में से, जिसे वह हमेशा साथ रखते थे, आवश्यक औजार निकाल कर जल्दी से बड़ी होशियारी के साथ यंत्र को ठीक करते और आगे बढ़ जाते। यदि उनके पास खाली समय होता तो वह जाकर स्थानीय बागों का चक्कर लगाते।

ये बाग कैसे हैं? उनमें किस-किस जाति के पौधे उगते हैं? फलों के पेड़ कैसे उगाये गये हैं? इन प्रश्नों का और इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों का मिचुरिन उत्तर देने का प्रयत्न करते।

मिचुरिन को यह देखकर बहुत खेद हुआ कि मध्यवर्ती तथा उत्तरी रूस में फलों के बाग बहुत निम्न श्रेणी के थे। इनमें बहुत ही थोड़ी जातियों के पेड़ थे और उनमें भी आधी जंगली जाति के पेड़ों का मेल हो गया था। सेब के पेड़ों में दो या तीन बरस में एक बार फल लगते थे, और सेब छोटे भी होते थे और स्वादहीन भी। शीतकाल में होने वाली नाशपाती के पेड़ तो वहाँ थे ही नहीं।

उन दिनों कई पुस्तकों और पत्रिकाओं का कहना यह था कि रूस की जलवायु और मिट्टी अच्छी जाति के पेड़ों के विकास के लिए अनुकूल नहीं है। ऐसे फल केवल विदेशों से मँगाये जा सकते थे।

परन्तु मिचुरिन इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते थे। वह पक्के देश-भक्त थे और वे अपने देश को एक फलते-फूलते उद्यान के रूप में देखना चाहते थे।

ईवान व्लादिमीरोविच ने सोचा, "फलों के ऐसी जाति के पेड़ तैयार करना चाहिए जो पाले को सहन

कर सकें और हमारी मिट्टी में अच्छी तरह उग सकें। वह ऐसी पौधों के स्वप्न देखने लगे जो अब तक कहीं नहीं उगे थे। केवल अमीरों के ही घरों में नहीं बल्कि हर व्यक्ति के खाने की मेज पर सुन्दर फल होने चाहिएँ।"

यह सोचकर उन्होंने लगभग ५०० वर्गमीटर क्षेत्रफल का एक छोटा-सा जमीन का टुकड़ा किराये पर ले लिया। अब तक वहाँ केवल कूड़ा-करकट ढेर किया जाता था। मिचुरिन और उनकी पत्नी तथा साली ने मिलकर उसे साफ किया और फिर जमीन खोदकर उसमें फलों का एक बाग लगाना आरंम्भ किया। जमीन का किराया देने, आवश्यक औजार खरीदने, दूसरे देशो से बीज और कलमें मँगाने के लिए एक-एक पाई बचाने की जरूरत थी। शीघ्र ही उस जमीन पर पेड़ों की भरमार हो गयी और वे मुरझाने लगे।

अविश्वसनीय मितव्ययिता और अनथक परिश्रम के द्वारा ईवान व्लादिमीरोविच जमीन का एक और बड़ा टुकड़ा लेने में सफल हो गये। वह अपना सारा संग्रह इस जमीन पर ले आये। मगर अभी आठ बरस भी नहीं बीतने पाये थे कि पौधे इतने ज्यादा हो गये कि उनके लिए काफी जगह नहीं रह गयी। ईवान व्लादिमीरोविच ने अपना बागवानी का सारा सामान बेच दिया, अपने दोस्तों से कुछ पैसा क़र्ज लिया और २६ मई १८८८ को वह कोज़लोव से सात किलोमीटर से भी कम दूरी पर स्थित तुर्मासोवो नामक गांव के निकट लगभग १३.५ हेक्टेयर जमीन के टुकड़े के मालिक बन गये। उनके पास इतना पैसा भी नहीं बचा कि वह अपने पौधों को ढोने के लिए गाड़ी किराये पर ले लेते: मिचुरिन और उनके परिवार ने सारे पौधे अपने कंधों पर ढोकर वहाँ पहुँचाये।

इस नयी जमीन पर रहने को कोई घर नहीं था। दो मौसम भर मिचुरिन-परिवार एक झोपड़ी में रहा। अपने बाग की सब्जियाँ और रोटी और चाय, यही उनका कुल खाना-पीना था। बाद में ईवान व्लादिमीरोविच अक्सर इस बात की याद किया करते थे कि वे लोग किस प्रकार खारे पानी में रोटी के टुकड़ों और प्याज की खिचड़ी पकाया करते थे।

पाँच वर्ष बीत गए। फलों के बाग में सीधी क़तारों में फलों के पौधे उगे हुए थे; सेब, नाशपाती बेर और चेरी के पेड़ और कई अन्य पौधे। वहीं चारों ओर हरियाली से घिरा हुआ एक छोटा-सा बँगला था, जो रहने के घर की अपेक्षा खलिहान ज्यादा मालूम होता था। पर उनकी मुसीबतें कम

होने के बजाय बढ़ती ही जा रही थीं। ईवान व्लादिमीरोविच दक्षिणी रूस और विदेशों से सर्वश्रेष्ठ क़लमें मँगाने और उन्हें स्थानीय जाति के पेड़ों में लगाने में काफी समय लगाते थे और इस काम को काफ़ी मेहनत से करते थे। यदि जाड़ा बहुत सख्त नहीं होता था तो ये अल्पवयस्क पौधे उसे भली-भाँति सहन कर लेते थे परन्तु ज्योंही जाड़ा सख्त पड़ने लगता था, वे मुरझा जाते थे। ऐसा क्यों होता था ? उस समय की एक प्रसिद्ध पत्रिका 'रुस्सकोये सादोवद्स्तवो' ("रूसी उद्यान-विद्या") ने लिखा था कि दक्षिण के पेड़ विषम जलवायु को "सहन करने की शक्ति" प्राप्त कर लेंगे।

परन्तु ऐसा नहीं था। ईवान व्लादिमीरोविच ने कई बार बहुत महँगी-महँगी क़लमें मँगायीं, उन्हें दूसरे पेड़ों में लगाया और बड़ी सावधानी से इन क़लम लगे हुए पेड़ों की देख-भाल की। पर वे सब पाले का शिकार हो गये। कोजलोव में उनके लिए काफी धूप और गर्मी नहीं थी। इन पौधों के पूर्वज कई वर्षों से दक्षिण में उगते आये थे जहाँ की जलवायु मिट्टी और रोशनी—जीवन की सारी परिस्थितियाँ बिल्कुल भिन्न थीं।

दस वर्ष तक असफलता ने ईवान व्लादिमीरोविच का पीछा नहीं छोड़ा। आखिरकार उन्हें विश्वास हो गया कि इस तरह से अच्छे परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते। मिचुरिन ने दूसरा ढंग अपनाने का फैसला किया। वह दक्षिणी पौधों के बीजों से अंखुए और फिर संकर, अर्थात् दक्षिणी जातियों का उत्तरी जातियों से मेल करके प्राप्त होनेवाले बीजों से, पौधे उगाने लगे। ये अखुए हल्के जाड़े को बर्दाश्त कर सकते थे। पर कड़ाके के जाड़े में या जब वसन्त ऋतु में सर्दी पड़ती थी, ये अखुए नष्ट हो जाते थे। मिचुरिन ने कई पुस्तकें पढ़ी और इसका कारण मालूम करने के लिए बहुत समय तक विचार किया। रात को बहुत देर तक ईवान व्लादिमीरोविच अपने मेज पर बैठे बार-बार उन वृत्तान्तों को पढ़ते रहते जिनमें फलों के पौधों के विस्तृत अवलोकनों का उल्लेख था और इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने का प्रयत्न करते कि ये अखुए क्यों नष्ट हो जाते हैं। धीरे-धीरे और कठिनाई के बाद इसका उत्तर मिल गया।

सब लोग सो रहे थे।...बाग में और उस छोटे-से घर में चाँदनी छिटकी हुई थी। आखिरकार ईवान व्लादिमीरोविच ने फैसला किया : इस छोटे-से जमीन के टुकड़े को छोड़ना पड़ेगा यद्यपि अब उसमें हजारों पौधे थे। ऐसी जमीन का एक नया टुकड़ा ढूँढ़ना आवश्यक था जिसकी मिट्टी आवश्यक रूप से खराब हो। अच्छी मिट्टी में अखुओं में तुषार को सहन न कर सकने वाली दक्षिणी जातियों की विशिष्टताएँ आने लगती थीं, और इसलिए वे नष्ट हो जाते थे।

मिचुरिन के सामने बागवानों के पत्र पड़े हुए थे। उन्होंने उनसे सलाह माँगी थी और अपने बीज उन्हें भेजे थे। उन्होंने उन सब पत्रों के उत्तर दिये और फिर अपनी तरफ से इन व्यावहारिक कार्य-

कर्ताओं की सलाह माँगी। इन पत्रों से मिचुरिन के विचारों की पुष्टि हो गयी : संकर अंखुओं को काली
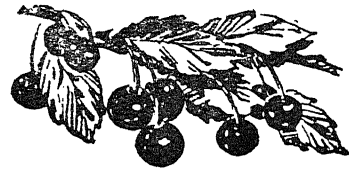
मिट्टी में नहीं जमाना चाहिए। उन्हें कठोर विषम परिस्थितियों में उगने देना चाहिए।

यह तो ठीक है कि उनमें से कुछ वहाँ भी नहीं पनपेंगे, पर जो बच जायेंगे वे मजबूत होंगे। कुछ बड़े होने पर उनमें खाद और पानी देकर उनका पोषण किया जा सकता है। वहाँ की मिट्टी रेतीली थी, और कहीं-कहीं चिकनी थी। मिचुरिन ने वह जमीन ख़रीद ली, जिस पर उसके सारे पड़ोसियों को बहुत आश्चर्य हुआ। वसन्त ऋतु की बाढ़ के दिनों में खेत में पानी भर गया। पिघली हुई वर्फ को निकालने के लिए नालियाँ काटनी पड़ीं।

और एक बार फिर उन्हें तुर्मासोवो वाले के बाग से पेड़ों को अपने कंधे पर ढोकर लाना पड़ा। इस बार केवल उनकी पत्नी और साली ही ने नहीं बल्कि उनके बच्चों ने भी ईवान व्लादिमीरोविच की सहायता की। वे अब बड़े हो गये थे, और अब वे भी बाग में काम करने लगे थे।

इस नयी जगह पर आई० बी० मिचुरिन ने एक विलक्षण बाग लगाया जिसमें वह जीवन के अन्त तक काम करते रहे।

दस वर्ष बीत गए। अब ईवान व्लादिमीरोविच ५० वर्ष के हो चुके थे। उन्होंने गुठलीदार और बिना गुठली के फलों के छूट बाग पहले की ही तरह बहुत निम्न कोटि के बने रहे। मिचुरिन को भय हुआ कि उनकी सारी कोशिशें बेकार जायेंगी। प्रतिवर्ष उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था उनके काम कौन आगे बढ़ायेगा? ईवान व्लादिमीरोविच ने जारशाही सरकार के सामने एक सुझाव रखा कि उनके फलों के बाग के आधार पर उद्यान-विद्या का स्कूल खोला जाये, पर व्यर्थ। मिचुरिन और उनके काम के भविष्य की किसी को परवाह नहीं थी। उनके प्रयोगों को लोग हँसी में उड़ा देते थे।

पौधों का पोषण करने के इस बाग की उचित देख-भाल नहीं हो रही थी। मिचुरिन और उनका परिवार बाग के पूरे काम को नहीं सँभाल सकता था। पहला साम्राज्यवादी युद्ध आरम्भ हुआ। लोगों ने मिचुरिन के बाग से अखुए खरीदना बंद कर दिये। उनके सारे साधन खत्म हो चले थे इसके बाद एक और विपत्ति आयी। नदी की बाढ़ में सारा बाग डूब गया और प्रायः सभी पौधे नष्ट हो गए। पर सब से बड़ी विपत्ति तो १९१५ में आयी। मिचुरिन की पत्नी और वफ़ादार मित्र तथा सहायिका आलेक्सांद्रना मिचुरिना हैजे में मर गयीं।

× × ×

अपने जीवन भर मिचुरिन एक महान् कार्य को पूरा करने का स्वप्न देखते आये थे—रूसी उद्यान-विद्या की नींव डालने का स्वप्न। उन्हें पक्का विश्वास था कि एक समय आयेगा जब उनके पूरे देश में फलों के बाग लहलहायेंगे।

अक्तूबर की महान् समाजवादी क्रान्ति के दूसरे ही दिन मिचुरिन क्षेत्रीय भूमि-व्यवस्था कार्यालय में गये और बोले: "मैं नयी सरकार के लिए काम करना चाहता हूँ।"

सोवियत सरकार ने उनकी सहायता की। अब वह अकेले अपने बल-बूते पर काम करने वाले वैज्ञानिक नहीं रह गये थे। उन्हें सहायक, वैज्ञानिक कार्यकर्त्ता, धन और अन्य सामग्री दी गयी। एक नये जीवन का आरम्भ हुआ! ईवान व्लादिमीरोविच ने इससे पहले कभी इतने उत्साह से काम नहीं किया था। वी० आई० लेनिन के वैयक्तिक आदेश पर

एम० आई० कालिनिन मिचुरिन से मिलते गए। जे० वी० स्तालिन ने मिचुरिन के काम में दिलचस्पी ली। कोजलोव शहर का नाम बदलकर मिचुरिंस्क रख दिया गया और वहाँ फलों के पेड़ों तथा झाड़ियों के बारे में वैज्ञानिक शोध-कार्य की एक इंस्टी-ट्यूट स्थापित की गयी! आई० वी० मिचुरिन की समस्त लिखित रचनाओं का प्रकाशन आरम्भ किया गया। सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी ने मिचुरिन को अपना आनरेरी सदस्य चुना। ईवान व्लादिमीरोविच मिचुरिन ने अपना समस्त उदात्त जीवन धरती का रूप बदलने के महान् ध्येय को अर्पित कर दिया।

ईवान व्लादिमीरोविच ने अपने विलक्षण जाति के पौधों का किस प्रकार प्रसार किया? यह एक नाशपाती का पेड़ है जिसका नाम "ब्यूरे जिमनाया मिचुरिन" ("मिचुरिन शीत ब्यूरे") है। इसके फल तीन-तीन सौ ग्रैम के होते हैं और बहुत खुशबूदार, रसीले और मीठ होते हैं, बिल्कुल मलाई जैसे।

उन्हें बहुत दिन तक रखा जा सकता है। जाड़ों में वे और भी हो जाते हैं और इनका रूप और भी निखर आता है यह नाशपातियों की एक शीतकालीन जाति है। ये फल आमतौर पर पेड़ से तोड़े जाने के बाद पकते हैं और जाड़े भर खराब नहीं होते। इस लिए गर्मियों में पकने वाली जातियों से अलग करने के लिए इस जाति का नाम "ब्यूरे जिमनाया' (शीत) रख दिया गया है।

परन्तु इस जाति की सबसे महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि यह अपनी पहले की सीमा से कई सौ किलोमीटर उत्तर तक उग सकती है।

ईवान व्लादिमीरोविच ने बाईस वर्ष तक इस वृक्ष का अवलोकन किया। इस इसकी एक टहनी को भी पाले से हानि नहीं पहुंची यद्यपि कभी-कभी तो जाड़ों में तापमान शून्य से भी ३६ डिग्री नीचे गिर जाता था।

कई वर्ष तक ईवान व्लादिमीरोविच ने नाजुक विदेशी जातियों के नाशपाती के पेड़ यहाँ उगाने की कोशिश की थी जिनके फल बहुत स्वादिष्ट होते थे, पर मध्य रूस की विषम जलवायु में वे ठिठुर कर रह गये थे।

"ब्यूरे जिमनाया मिचुरिना" नामक जाति के विकास का इतिहास निम्नलिखित है।

१६०३ की वसन्त ऋतु की बात है। ईवान व्लादिमीरोविच ने अपने जान-पहचान के एक शौकिया बागवानी करने वाले के घर पर खिड़की की चौखट पर एक गमले में नाशपाती का एक पेड़ देखा जिसमें फूल लगे हुए थे।

पता करने पर मालूम हुआ कि वह भूमध्यसागर के तट पर दक्षिणी फ्रांस में नाइस नामक शहर के निकट पैदा होने वाली ब्यूररायल जाति का नाशपाती का पेड़ था। हल्की गर्म जलवायु और उपजाऊ जमीन में ब्यूरे-रायल जाति के पेड़ों को विकास तथा पोषण के लिए अच्छी परिस्थितियाँ प्राप्त रहती हैं। यह जाति अपने स्वादिष्ट मीठे फलों के लिए प्रसिद्ध है, जिनका गूदा बहुत नर्म होता है और मुँह में जाते ही घुल जाता है।

ईवान व्लादिमीरोविच उस गमले को खरीद लेना चाहते थे जिसमें वह नाशपाती का पेड़ लगा हुआ था। पर उनके मित्र को वह छोटा-सा पेड़ बहुत प्रिय था और वह केवल उसके फूलों का थोड़ा-सा पराग देने को तैयार हुए।

ईवान व्लादिमीरोविच ने बड़ी सावधानी से

पराग एक टेस्टट्यूब में रख लिया; उनकी योजना के लिए इतना ही काफी था।

ईवान व्लादिमीरोविच के बाग में एक जंगली उसूरियाई नाशपाती का पेड़ लगा था जो उन्होंने सुदूर पूर्व से मँगाये गए बीजों से उगाया था। उसूरियाई (जो अब प्रिमोरिये है) प्रदेश की विषम जलवायु में यह नाशपाती का पेड़ घोरतम तुषारपात को भी सहन कर सकता था पर इसके फल बहुत छोटे, बदजायका और खाने में कसैले होते थे।

जंगली उसूरियाई नाशपाती पहाड़ियों पर, और नदियों के किनारे घाटियों में देवदार और चौड़ी पत्तियों वाले पेड़ों के बीच उगती है।

ईवान व्लादिमीरोविच मिचुरिन बहुत दिनों से ब्यूरे-रायल जैसी स्वादिष्ट, मीठी और रसीली नाशपाती के स्वप्न देखते आये थे, जो सुदूर फ्रांस में नहीं बल्कि स्वयं उनके देश में पैदा हो।

और उनका यह स्वप्न पूरा हुआ।

उसी वर्ष १६०३ की वसन्त ऋतु में उसूरियाई नाशपाती के पेड़ में कई फूल खिले; यह पेड़ उस समय छः वर्ष पुराना था।

एक चिमटी की सहायता से ईवान व्लादिमीरोविच ने कुछ फूलों की बंद कलियाँ खोलीं और थोड़ा-सा कच्चा पराग केसर निकाल कर इन फूलों पर जाली की एक थैली चढ़ा दी। उन्होंने यह इसलिए किया कि फूल के खिलने पर बाद में पराग गर्भकेसर तक न पहुँचने पाये। यदि फूलों को न ढका जाता तो शहद की मक्खियाँ उसी पेड़ के या अन्य पेड़ों के फूलों से पराग ला सकती थीं।

उसूरियाई नाशपाती के पेड़ के फूल जब खिले और उनके गर्भ-केसर पक गये तो ईवान व्लादिमीरोविच ने जाली की थैली हटा दी और एक तार के सिरे पर कार्क का छोटा-सा टुकड़ा लगाकर टेस्ट-ट्यूब में से ब्यूरे-रायल नाशपाती के पेड़ के फूलों का पराग गर्भ-केसर के अभाग तक पहुँचा दिया। उन्होंने कृत्रिम संकरीकरण सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया था।

परागीकृत फूलों पर फिर जाली की थैली चढ़ा दी गयी। शीघ्र ही पंखड़ियाँ झड़ गयी और जंगली उसूरियाई नाशपाती के छोटे-छोटे फल बढ़ने लगे। पर ईवान व्लादिमीरोविच ने यह मान लिया था कि उनके अन्दर जो बीज होंगे, वे भिन्न प्रकार के होंगे।

उन्होंने ये बीज जमा कर लिए और बड़ी सावधानी से उन्हे एक क्यारी में बो दिया। क्या वे उगेंगे? और यदि वे उगे तो उनके अखुए कैसे होंगे, ? और जब आखिर में इन बीजों के पेड़ बड़े होंगे और उनमें फल लगेंगे तो वे फल कैसे होंगे?

अगले वर्ष बसन्त ऋतु में केवल पाँच संकर अखुए फूटे। उनमें से दो एक नाजुक-सी डंठल पर छोटी-छोटी चिकनी हल्के-पीले रंग की पत्तियाँ थीं, जिनकी नसें खुरदुरी थीं और वे जंगली सेब से मिलती-जुलती थीं। बाकी तीन में चिड़ियों के पर जैसी नसों वाली गहरे हरे रंग की पत्तियाँ थी, जिनमें नीचे की तरफ रोएँ थे। पर इन पत्तियों के डंठल मोटे और छोटे थे। आठ वर्ष बाद पहले दो पौधों में फूल आये और उनमें छोटी-छोटी बदजायका जंगली नाशपातियाँ लगीं।

नवें साल दो और पौधों में बड़े-बड़े स्वादिष्ट फल लगे। ईवान व्लादिमीरोविच ने इनमें से एक जाति की नाशपाती का नाम, जिसमें लाल चित्तियाँ

थीं, "राकोवका" ("केकड़ा") रखा। दूसरी जाति का नाम, जिसके अंकुर मोटे थे, "तोल्स्तोवेजका" रखा गया।

१९१४ की शरद्-ऋतु में जाकर पाँचवें पेड़ में फल लगे। यह पेड़ इस समय ११ वर्ष का हो चुका था। इसमें केवल २५ फल लगे थे, पर अगले वर्ष इसमें फलों की संख्या १५० तक पहुँच चुकी थी। जैसे-जैसे वर्ष बीतते गए, पेड़ में फलों की संख्या बढ़ती गयी और वे लगातार बड़े भी होते गये। शक्ल और स्वाद में ये फल ब्यूरे-रायल नाशपाती जैसे थे। परन्तु यह पेड़ जंगली उसूरियाई नाशपाती के पेड़ की तरह सख्त पाला सहन कर सकता था।

मिचुरिन ने व्लादिमीरस्काया चेरी के पेड़ के फूलों को, जिसमें उन्नावी रंग की खट्टी चेरियाँ लगती

थीं, विन्क्लेयर बेल्ली (सफेद) दक्षिणी खूबानी की धीरे-धीरे अधिक उत्तर की ओर बोकर (३. रोस्तोव—२. आर्चादिंस्क स्टेशन—१. मिचुरिंस्क) मिचुरिन ने "उत्तरी खूबानी" नामक एक नयी जाति तैयार की। मीठी चेरी के पराग से परागीकृत कर दिया। इस प्रकार जो फल प्राप्त हुए उनके बीज फिर बोये गए। चार वर्ष बाद एक पौधे में फूल आये और फिर उसमें फल लगे। फलों का रंग सफेद था और वे बड़े—३ सेन्टीमीटर तक चौड़े—और खाने में मीठे थे। उन्होंने चैरी की इस नयी जाति का नाम "बेलाया (सफेद मोरेल" रखा।

ये मीठी सफेद चेरियाँ सब को बहुत पसंद थीं और उन्हें प्रसारित करने के लिए ईवान व्लादिमीरोविच ने "बेलाया मोरेल" की टहनियों में से थोड़े-से छिलके के साथ उनकी "आँखों" को काट लिया और साधारण लाल चेरी के पेड़ के अखुओं में उनकी कलम लगा दी।

जब इस कलम लगे हुए पेड़ में फल लगे तो उनका रंग सफेद नहीं बल्कि हल्का गुलाबी था। लाल चेरी (जिसमें कलम लगायी गयी थी) का प्रभाव कलम (जो कलम उसमें लगायी गयी थी) पर निश्चित रूप से पड़ा था।

ईवान व्लादिमीरोविच को हल्के गुलाबी रंग के फलों वाले चेरी के इस पेड़ का नया नाम रखना था--उन्होंने उसका नाम रखा "क्रासा सेबेरा (उत्तरी सौन्दर्य)। और सचमुच इस जाति के पेड़ उत्तर में भली-भाँति उगते हैं और वे हल्के गुलाबी रंग की चेरियों से लदे रहते हैं। इन चेरियों का गूदा हल्के रंग का, रसदार और मीठा होता है जिसमें एक हल्की-सी खटास होती है जो स्वाद में अत्यन्त रुचिकर और आनंददायक होती है।

ईवान व्लादिमीरोविच बीजों से फलों के पेड़ उगाने और उनके अखुओं को विषम जलवायु का आदी बनाने को बहुत महत्व देते थे; उनमें यह आदत डालने की प्रक्रिया को वह 'स्पार्टन' कहते थे। धीरे-धीरे बागों को दक्षिण से उत्तर की ओर ले जाकर वह

खूबानी की एक उत्तरी जाति विकसित करने में सफल हुए। रोस्तोव-आनदोन में पले-बढ़े खूबानी के एक पेड़ के फलों की गुठलियाँ वहाँ से ३०० किलोमिटर दूर उत्तर में आर्चादिंस्काया नामक गाँव में बोयी गयीं। बहुत-से अखुए तो सर्दी में ठिठुर गये पर उनमें से एक बड़ा हुआ और उसमें फल लगे। ईवान व्लामिमीरोविच ने इस पेड़ के बीज कोजलोव में अर्थात् ३०० किलोमीटर और उत्तर की ओर बोये। इस बार भी सब अखुए पाले का मुकाबला नहीं कर पाये, परन्तु जिनमें सबसे अधिक सहन-शक्ति थी उनमें बहुत उम्दा खूबानियाँ लगीं। आई० वी० मिचुरिन ने इस जाति का नाम "सेवेरनी ऐब्रीकोस" (उत्तरी खूबानी) रखा।
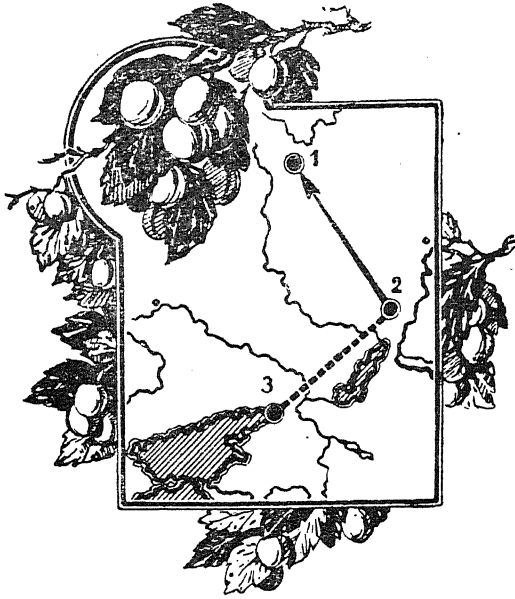
दक्षिणी खूबानी को धीरे-धीरे अधिक उत्तर की ओर बोकर (३. रोस्तोव—२. आर्चादिंस्क स्टेशन—१. मिचुरिंस्क) मिचुरिन ने "उत्तरी खूबानी" नामक एक नयी जाति तैयार की।

विभिन्न विधियाँ इस्तेमाल करके ईवान व्लादिमीरोविच ने ३०० नयी जातियों के फलों के पेड़ तथा झाड़ियाँ लगायीं जो अधिक उत्तरी इलाकों में बोये जाने के लिए उपयुक्त थीं। उन्होंने सेब, नाशपाती और खूबानी के पेड़ों और अंगूर की बेलों की जो नयी जातियाँ विकसित की थीं, वे अब मिचुरिंस्क से बहुत दूर उत्तर तक उगायी जाती हैं।

मिचुरिन हमारे लिए पौधों की नयी जातियाँ विकसित करते तथा उन्हें परिस्थितियों का आदी बनाने से संबंधित अपनी शिक्षाओं की धरोहर छोड़ गये हैं सोवियत वैज्ञानिक—जीव-शास्त्रवेत्ता, कृषिवेता, सामूहिक किसान तथा बागबानी के शौकीन—सभी लोग पौधों की नयी जातियाँ विकसित करने में मिचुरिन की शिक्षाओं का पालन करते हैं। मिचुरिन ने बताया है कि बीजों को लगातार जमा करना चाहिए उन्हें सुरक्षित रखना चाहिए, और बोने के लिए उन्हें बड़ी सावधानी से तैयार करना चाहिए। ईवान व्लादिमीरोविच ने हमें बीजों को छाँटने अर्थात् नयी जातियों का प्रसार करने की समस्याओं का अध्ययन करने का परामर्श दिया। वह इस बात को आवश्यक समझते थे कि "हर स्कूल में, या इससे भी अच्छा हो कि राज्यीय फार्मों तथा सामूहिक फार्मों में, फलों तथा सब्जियों के प्रयौगिक बाग लगाये जायें जिनमें सेब, नाशपाती, बेर, और चेरी के जंगली पेड़ लगाये जायें और उनकी कलमें सर्वश्रेष्ठ विकसित जातियों के पेड़ों में लगायी जायें और फिर उनकी सहनशीलता तथा उनके फलों और बेरियों के श्रेष्ठतर गुणों के आधार पर पौधों को चुना जाये और सबसे अच्छी सब्जियों और खरबूजों (खरबूजे भी और तरबूज भी) के बीज निरन्तर छाँटे जायें।

"दुनिया में अनेक पेड़-पौधे हैं—कई लाख जाति के। पर मनुष्य उनका बहुत कम उपयोग करता है। हमें उद्योग-धंधों के लिए, खाद्य-सामग्री के लिए, और समाजवादी शहरों के चारों ओर हरियाली के लिए और दवाओं के लिए पेड़-पौधों की आवश्यकता है।

आई० वी० मिचुरिन ने लिखा है, "क्या आप जानते हैं कि इस वर्ष (१९३४ में) अल्ताई में किशोर पयनियरों के एक छोटे-से अभियान ने बहुत बड़ी सफलता प्राप्त की। इन बच्चों ने दो माह के भीतर ५० किलोमीटर के इलाके में १३ जाति के लहसुनों, २० जाति की गूसबेरियों, २७ जाति के लाल छुहारों और २० जाति के काले छुहारों, ६ जाति की रैस्प-बेरियों और दो जातियों की बहुत ही मीठी बर्ड-चेरी एक जाति की काली बेरी एक जाति की मोखोवका (काई) और कई अत्यन्त रोचक सजावटी पौधों का पता लगाया।

"यह काम बहुत ही थोड़े बच्चों ने पूरा किया।"

ईवान व्लादिमीरोविच शहरों के चारों ओर हरियाली लगाने और उन्हें फलों से सजाने को विशेष महत्व देते थे। उन्होंने शहरों और गाँवों में बाग, पार्क और छायादार वृक्षों के बीच जानेवाली सड़कें बनाने के लिये बच्चों का आवाहन किया। उन्होंने स्कूली बच्चों से कहा कि वे फूलों की क्या-रियों की देखभाल करें और उन्हें छोटे बच्चों या नासमझ बच्चों से सुरक्षित रखें।

कई जगहों पर सुविख्यात सजावटी पौधों के अलावा, जिनके फूल बहुत सुन्दर होते हैं, जंगली इलाकों के बहुत-से नये पौधे भी लगाये जा सकते हैं। "हमारे देश के विशाल इलाके में ट्यूलिप, तथा लिली, बहुत ही सुन्दर आर्चिड, गुलाब, हियासिन्थ, ग्लैडियोली आदि की बहुत सी जातियाँ पायी जाती हैं।...ये सब चीजें टैगा के जंगलों के बजाय श्रमिकों की राजधानियों में पैदा होनी चाहिये।"

ईवान व्लादिमीरोविच मिचुरिन ने अपना सारा जीवन फलों के पेड़ों और झाड़ियों में सुधार करने तथा उनकी नस्ल को फैलाने को अर्पित कर दिया। उन्होंने अपने शोध-कार्य के बारे में कई लेख तथा पुस्तकें लिखीं। आई० वी० मिचुरिन की रचनाओं का संग्रह चार खण्डों में प्रकाशित हुआ है। उनमें पौधों में सुधार करने के बारे में उनकी आश्चर्यजनक शिक्षाओं की व्याख्या की गयी है।

प्रकाश की द्वैत प्रकृति

श्री० भूपेन्द्र नारायण मेहरोत्रा, का० वि० वि०

भौतिक जगत में अनेक ऐसी समस्यायें हैं जिनका अभी तक समाधान नहीं हुआ है। ऐसी ही एक समस्या प्रकाश की प्रकृति की है। आज के लोगों की धारणायें, पुराने युग की धारणाओं से बिलकुल भिन्न हैं। कहा नहीं जा सकता कि भविष्य में इन धारणाओं का कितना मूल्य रह जायेगा।

अठाहरवीं शताब्दी में वैज्ञानिकों को न्यूटन के वादों में पूर्ण रूप से विश्वास था। प्रकाश का सीधी रेखा में चलना, न्यूटन ने उद्गिरण-वाद(Emissiou Theory) से समझाया था। इस वाद के अनुसार विकिरण छोटे-छोटे कणों से बनता है। यह कण उङ्गमय स्थान से चलकर हमारी आँख तक पहुंचते हैं और इसीसे हमें प्रकाश का भान होता है।

ज्यों-ज्यों विज्ञान की उन्नति होती गई त्यों-त्यों वैज्ञानिकों को इस वाद में सन्देह होने लगा। कारण यह था कि विज्ञान की उन्नति से हमें अनेक परिवृत्तिओं का ज्ञान हुआ, जैसे भुजायन (Refraction) मिथोघट्टन (Interference) आदि, और यह वाद इन परिवृत्तियों को समझाने में असमर्थ रहा।

वैज्ञानिकों की अजीब महिमा है, जो काम उन्हें कठिन लगता है उसे और अधिक लगन के साथ करते हैं। अतः इन नई परिवृत्तियों को समझाने का प्रयत्न होने लगा। इनका हल हाईजन नामक वैज्ञानिक ने तरंग-वाद (Wave Theory) से किया। इस वाद के अनुसार प्रकाश तरंग की गति है, (Light is wave motion) इस वाद से मिथोघट्टन तटेनमन (Diffraction), और अभिस्पन्दन (Polarisation) आदि परिवृत्तियों को बड़े ही सुन्दर रूप से समझाया जा सका। आज भी भौतिक जगत में इस वाद का विशिष्ट स्थान है।

यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि इतना होने पर भी यह वाद पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इस वाद के द्वारा भी कुछ भौतिक क्रियायें, जैसे प्रकाश प्रचूषण का(Absorption)व उद्गिरण(Emission) न समझायी जा सकीं।

सन १९०० ई० में पलान्क नामक वैज्ञानिक ने ऊर्जाणु-वाद (Quantum theory) प्रस्तुत किया। इस वाद के अनुसार प्रकाश-ऊर्जी (Lightenergh) उर्जाणु Quanttim से बनी है। इस वाद ने प्रचूषण व उद्गिरण को बड़े ही अच्छे रूप से समझाया। इस वाद की पुष्टि रमन व काम्पटन विपाकों और भा--विद्युतीय (Photo Electric) परिवृत्ति ने की है। तरंगवाद की तरह ऊर्जाणुवाद भी आज अपना महत्त्व रखता है। कुछ परिवृत्तियाँ केवल तरंगवाद के द्वारा समझायी जा सकती हैं तो कुछ केवल ऊर्जाणु-वाद से ही। जैसे कि यदि हम क्ष-रश्म (X-Ray) को पैराफिन के टुकड़े से प्रविक्षेप (Seatter) करायें तो जो विकरण ९०° से कम कोण पर प्रविक्षेपित होते हैं वे प्राथमिक विकिरण से अधिक तरंग-आयाम (Wave length) रखते हैं। यह वाद तरंग-वाद

नियमों के विपरीत है पर ऊर्जाणुवाद से अच्छी तरह समझाया जा सकता है। यदि मिथोघट्टन आदि परिवृत्तियों को ऊर्जाणुवाद से समझाने का प्रयत्न करते हैं तो यह असंभव जान पड़ता है कि एक ऊर्जाणु दूसरे ऊर्जाणु से मिलकर कैसे नष्ट हो जाता है।

आधुनिक युग में इन दोनों वादों का समन्वय किया गया है। दो विपरीत धारणाओं को मिलाकर एक कर दिया गया है। इन दो विरोधी वादों के समन्वय का श्रेय डी-ब्रोगली नामक वैज्ञानिक को है। इन्होंने इन दोनों के बीच एक 'पुल' तैयार किया है। इस 'पुल' की विशेषता यह है कि इस पर बैठकर यह पता नहीं चलता कि ऊर्जाणुवाद और तरंगवाद की सीमायें कहाँ तक हैं यह दोनों वाद अलग हैं या एक दूसरे में समाये हुए हैं, और यदि समाये हुए हैं तो कहाँ तक! यह वाद जिसको कि शोडिंगर वैज्ञानिक ने बढ़ाया, तरंगयन्त्रिकी (Wave mechanics) के नाम से प्रसिद्ध हैं। कुछ लोग जो कि ऊर्जाणुवाद से बहुत अधिक प्रभावित हैं। इस वाद को नया-ऊर्जाणु-वाद (New Quantum theory) कहते हैं। इस वाद के अनुसार किन्हीं निश्चित दशाओं में पदार्थ तरंग की तरह वर्त्ताव करता है। अर्थात् हर मौतिककण के साथ एक तरंग रहती है। इसी प्रकार प्रकाश के ऊर्जाणु के साथ प्रकाश तरंग (Light wave) रहती है।

इस वाद ने वैज्ञानिकों को अपनी ओर बहुत आकर्षित किया। क्योंकि इसके द्वारा वे भौतिक कण को तरंग का रूप दे सकते हैं। इस उपकल्पना को दृढ़ करने के लिये अनेक प्रयोग किये गये। इनमें से निम्न बहुत ही महत्त्व के हैं :—

(१) डेविसन गरमर का प्रयोग।

(२) जी० पी० थोमसन का प्रयोग।

(३) स्टर्न गेर्लाक का प्रयोग।

इन प्रयोगों ने यह सिद्ध किया कि विद्यदणु (Electron) के साथ एक तरंग होती है।

हीसेनवर्ग व वोर नामक वैज्ञानिकों ने इस वाद का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। इनके द्वारा हमें यह पता चलता है कि तरंग अथवा कण किसी भौतिक-क्रिया को देखने के दो भिन्न-भिन्न ढंग हैं। जब हम क्रिया की गमता (Momentum) के बारे में सोचते हैं तो कण रूप में उसे समझाने की कोशिश करते हैं और जब क्रिया की स्थिति का ज्ञान होता है हमें तरंग का आभास होता है।

प्रकाश की प्रकृति पर दार्शनिक दृष्टि से विचारने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस भौतिक-जगत के सम्बन्ध में कोई निश्चित-वाद नहीं रखा जा सकता।

अमेरिका में भारतीय ग्वार का महत्व

जगदीश मलहोत्रा

कृषि एवं उद्योग की दृष्टि से अमेरिका में जब ग्वार का महत्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। इसके पौधे में फलियाँ लगती हैं और भारत में प्राचीन काल से इसकी खेती होती है।

जब अमेरिका में खूब कमाई करने और भूमि की उर्वरा-शक्ति बढ़ाने के लिए इसकी फसल बड़े पैमाने पर बोयी जाने लगी है। ग्वार की फलियां पौष्टिक चारे के रूप में पशुओं को खिलायी जाती हैं। ग्वार से निकला हुआ गोंद विविध औद्योगिक कार्यों तथा मनुष्यों के आहार में प्रयुक्त होता है।

अमेरिकी कृषि-विभाग के वैज्ञानिक तथा गैर सरकारी कम्पनियों के अनुसन्धानकर्त्ता गत ५२ वर्षों से ग्वार के सम्बन्ध में अनुसंधान करते आ रहे हैं। इसका पौधा पहले-पहल १९०३ में भारत से टैक्सास राज्य में मंगाया गया था। पिछले सिर्फ ५ वर्षों से ही अमेरिका में ग्वार की खेती के सम्बन्ध में अधिक ध्यान दिया गया है।

अमेरिका के पशुपालकों ने अब यह बात मालूम कर ली है कि उनके पशु ग्वार खाना पसन्द करते हैं फिर भी उनमें ग्वार का चारा खाने की आदत डालने के लिए अक्सर ग्वार के साथ काफी समय तक दूसरा चारा मिलाना पड़ता है। ग्वार को खा कर पशु मोटे-ताजे हो जाते हैं। अन्य चारों की अपेक्षा ग्वार खाने से उनका वजन अधिक बढ़ता है।

अमेरिका में मनुष्यों के आहार में भी ग्वार का प्रयोग होने लगा है।

इस समय बिनौलों की खली तथा सोयाबीन की खली से ग्वार के पोषण तत्वों की तुलना करने के सम्बन्ध में परीक्षण किये जा रहे हैं। ग्वार में २४ प्रतिशत से ३४ प्रतिशत तक प्रोटीन पायी जाती है जबकि बिनौलों की खली में लगभग ४१ प्रतिशत प्रोटीन होती है।

भूमि को उपजाऊ बनाता है

यह सिद्ध हो गया है कि ग्वार की फसल बोने से भूमि की उर्वरा-शक्ति बढ़ जाती है। जब ग्वार को अदल-बदल कर अन्य फसलों के साथ बोया जाता है तब भूमि के पोषण तत्वों की वृद्धि होने से भूमि फिर उपजाऊ हो जाती है। इसके परिणाम स्वरूप जब पहले से अधिक पैदावार तथा पहले से अधिक मुनाफा होने लगा है। अमेरिका के किसानों ने यह अनुभव किया है कि ग्वार बोने पर रासायनिक खाद की आवश्यकता कम हो जाती है और थोड़ी लागत से भूमि की उर्वरा-शक्ति को कायम रखा जा सकता है।

अमेरिका की एक बहुत बड़ी कम्पनी 'जनरल मिल्स' ने सर्वप्रथम ग्वार की खेती और उसके लाभों के सम्बन्ध में पड़ताल की थी। उसके सम्बन्ध में एक अनुसन्धान-कार्यक्रम शुरू किया। कैनेडी (टैक्सास) क्षेत्र में गयी ग्वार की प्रारम्भिक खेती से यह पता चला कि ग्वार परती भूमि में केवल पैदा ही नहीं होता, बल्कि उस भूमि को उपजाऊ भी बना देता है।

१९५२ की वसन्त ऋतु में अमेरिका के दक्षिण-पश्चिमी भाग के गरम एवं अपेक्षाकृत शुष्क प्रदेश इण्डियन एक्सप्रेस (बम्बई) के समाचार-सम्पादक श्री एच. वाई. शारदाप्रसाद को "एसोसियेट नीमैन फैलो" नामक छात्रवृत्ति प्रदान की गयी है। आप एक वर्ष तक हारवर्ड विश्वविद्याय में पत्रकारिता की पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में अध्यन करेंगे। नीमैन छात्रवृत्ति का उद्देश्य पत्रकारिता के स्तर को ऊँचा उठाना है में लगभग १ लाख पौण्ड ग्वार का बीज बोया गया। वहां मौसम इतना शुष्क था कि बहुत से किसानों के बीज का खर्च भी निकला। किन्तु इससे यह बात स्पष्ट हो गयी कि ग्वार की खेती से भूमि उपजाऊ हो जाती है।

चूँकि उस क्षेत्र क अन्य फसलों को भी १९५२ म सूखा पड़ जाने के कारण बहुत हानि पहुँची थी, इसलिए किसानों ने १९५३ में फिर ग्वार की खेती की। उस वर्ष भी मौसम बिलकुल प्रति-कूल रहा। फिर भी, ग्वार की फसल बहुत निराशाजनक नहीं हुई। उस वर्ष १० लाख पौण्ड ग्वार उत्पन्न हुआ।

इसके बाद 'जनरल मिल्स' ने बाहर से और अधिक ग्वार मंगाया। वर्षा न होने के कारण १९५४ में ग्वार की फसल देर से बोयी गयी तथा प्रतिकूल मौसम को ध्यान में रखते हुए इसके परिणाम इतने अच्छे निकले कि जनरल मिल्स तथा किसानों, दोनों ने अनुभव किया कि ग्वार की खेती का भविष्य बहुत उज्जवल है।

ग्वार के संबन्ध में अनुसन्धान करने वालों ने बताया है कि इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इस पौधे में रोगाणुओं तथा रोगों का मुकाबला करने की अपेक्षाकृत अधिक क्षमता होती है। ग्वार की फसल को घास की सामान्य तितलियों तथा टिड्डों आदि से क्षति नहीं पहुँचती।

ग्वार के बोने से दो उद्देश्यों-हरी खाद तथा बीज उत्पादन-की पूर्ति होती है। बीज निकाल लेने के बाद जो कुछ डंठल आदि का अंश बच रहता है उसे भूमि में दबा देने से वह खाद का काम देता है। यह भूमि में मिट्टी की ऊपरी तह के नीचे फैल जाती है। इसमें वर्षा का जल जज्ब हो जाता है और उसमें भूमि में नमी बनी रहती है।

अमेरिकी वैज्ञानिकों का कहना है कि ग्वार जैसी फसलें इस बात का प्रमाण हैं कि रासानिक खादों का प्रयोग किये बिना भूमि की ऐन्द्रियिक आवश्यकताएं पूरी की जा सकती हैं।

कुछ वर्षों से ग्वार के बीजों से तैयार किया हुआ आटा अनेक उद्योगों में इस्तेमाल किया जा रहा है। गत वर्ष 'स्टाइन हाल एण्ड कम्पनी' नामी अमेरिकी फर्म ने 'जेगवार' नाम से बढ़िया चूर्ण के रूप में एक गोंद बनाना शुरू-किया है। सामान्य भाषा में जेगवार एक बढ़िया सफेद चूर्ण है जिसमें टेपिओका के समान ही गुण होता है। इस चूर्ण का एक छोटा सा चमचा लेकर उसे ठंडे पानी के गिलास में मिलाने से ऐसा लेसदार घोल तैयार हो जाता है कि यदि कुछ घंटों बाद उस गिलास को उल्टा कर दें तब भी वह नीचे नहीं गिरेगा।

बाजार में इसका आम प्रयोग बनावटी मक्खन को जमाने तथा सलाद पर लगाने के लिए किया जाता है। निःसन्देह इसके अन्य बहुत से औद्योगिक प्रयोग निकल आयेंगे। लेसदार होने से कागज बनाने तथा रंगों की छपाई आदि के कामों में यह बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकेगा। यह फलों के रसों को मूरब्बे की तरह गाढ़ा बनाने के लिए बहुत ही अच्छी चीज है।

विज्ञान-समाचार

कृत्रिम चावल निर्माता भारतीय

पश्चिमी वर्जिनिया में एक भारतीय वैज्ञानिक कृत्रिम चावल तैयार करने के सम्बन्ध में परीक्षण करने में आज संलग्न है। इन परीक्षणों के फल-स्वरूप संसार के लोगों को प्रचुरमात्रा में स्वास्थ्य-वर्धक भोजन उपलब्ध हो सकने की सम्भावना है।

पश्चिमी वर्जिनिया के सेलैम कालेज में डा० महेन्द्र सी० गुहा ने एक किस्म का कृत्रिम चावल तैयार किया है। उनका कहना है कि यह चावल सस्ता है और इसका उत्पादन करना बहुत सुगम है। इसके साथ-साथ उनका दावा है कि कृत्रिम चावल पालिश किये हुए चावल से अधिक पौष्टिक है।

डा० गुहा ने बताया कि वे उस भोजन के लाभ-कारी परिणामों का प्रदर्शन कर चुके हैं, जिसमें उनके द्वारा निर्मित कृत्रिम चावल भी शामिल था। इस भोजन की तुलना में पालिश किये हुए चावल तथा जल से तैयार किये गये भोजन के परिणाम बहुत ही असन्तोषजनक सिद्ध हुए हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने भारत में एक तथा अमेरिका में दो परीक्षण किये हैं।

कृत्रिम चावल पौष्टिक और रोगनाशक

उन्होंने बताया कि मैंने प्रत्येक परीक्षण में यह सिद्ध कर दिखाया है कि मेरा कृत्रिम चावल केवल स्वास्थ्य वर्धक एवं पौष्टिक ही नहीं है, बल्कि वह व्याधिनाशक भी है। उन्होंने बाताया कि उनके द्वारा निर्मित कृत्रिम चावलों के खाने से पेट के ऐसे फोड़े ठीक हो गये, जो पालिश किये हुए चावलों को खाने से हो गये थे।

श्री गुहा के चावल बनाने के नुस्खे में असल चावल में पाये जाने वाले तत्व-प्रोटीन, चिकनाई, कार्बोहाइड्राट तथा जल-मौजूद हैं, किन्तु इस भारतीय वैज्ञानिक ने इन तत्वों में लाभकारी विटामिन भी शामिल कर दिये हैं।

डा० गुहा ने बताया : खाने योग्य ऐसे सभी कन्दमूलों एवं जड़ी-बूटियों से कृत्रिम चावल बनाया जा सकता है, जिनमें कार्बोहाइड्रेट प्रचुरमात्रा में मौजूद हो। भारत तथा पाकिस्तान में पैदा होने वाले जंगली अरारोट, मक्के के निशास्ते, जई, जौ तथा गेहूँ आदि अन्नों से कृत्रिम चावल तैयार किया जा सकता है। साधारण चावल में बहुतायत से पाये जाने वाले कार्बोहाइड्रेट की पर्याप्त मात्रा इन पदार्थों में होती है।

कृत्रिम चावल बनाने की विधि

डा० गुहा का कहना है कि जब कृत्रिम चावलों को पकाया जाता है, तब वे देखने में पालिश किये हुए चावलों के समान नरम और खिले हुए होते हैं। कृत्रिम चावल बनाने की अपनी विधि को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया कि सब वस्तुओं का अनुपात के अनुसार समावेश करने के बाद वे मिश्रण को उस समय तक गरम करते रहते हैं, जब

तक कि वह साने हुए आटे के समान नहीं हो जाता। फिर उसे ठण्डा करके सांचे में ढाला जाता है और अन्त में उसे चलनी में से गुजार कर चावल जैसे दाने बनाये जाते हैं। जब दाने सूख जाते हैं, तब उनको अन्य चावलों की तरह उबाला एवं परसा जा सकता है।

डा० गुहा का संक्षिप्त परिचय

गत पतझड़ में डा० गुहा रसायन-विभाग के अध्यक्ष के रूप में सेलैम कालेज में आये थे और इस समय आप संस्था के इतिहास में एक बहुत बड़ी रसायनशास्त्र की कक्षा को शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि और शिकागो विश्वविद्यालय से बी० ए० तथा एम० ए० की उपाधियां प्राप्त की हैं। शिकागो में आपने पोषण तत्वों के सम्बन्ध में विस्तृत अनुसन्धान भी किया था। आपको भारत में सम्मान-सूचक डाक्टर की उपाधि भी मिल चुकी है।

सेलैम नियुक्त होने से पूर्व डा० गुहा ने अमेरिका के अनेक कालेजों में अध्यापन-कार्य करके शिक्षक, वैज्ञानिक एवं लेखक के रूप में नाम पैदा कर लिया था।

सेलैम कालेज में, डा० गुहा को कृत्रिम चावल सम्बन्धी अपने परीक्षणों में विद्यार्थियों एवं शिक्षकों दोनों का हार्दिक सहयोग मिल रहा है। विज्ञान के अनेक विद्यार्थी अपने खाली समय में प्रयोगशाला में इस भारतीय वैज्ञानिक की सहायता करते हैं। कालेज के अध्यापक भी परिणामों का विश्लेषण करने में उन्हें अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं।

चावलों के छिलके से तेल एवं मोम का उत्पादन

अमेरिकी कृषि-विभाग के अनुसन्धानकर्ताओं ने चावलों के छिलके से एक ही प्रक्रिया में तेल तथा मोम हासिल करने की विधि मालूम करके एक नयी सफलता प्राप्त की है। यह पहला अवसर है जब चावलों के छिलके से मोम बनाने की व्यावहारिक विधि मालूम की गयी है। इस विधि से जो मोम तैयार होता है, वह उच्च कोटि का कड़ा मोम होता है और घरेलू उपयोग के लिए बड़ा अच्छा रहता है। यह मोम लगभग १७४ दर्जे फारेनहाइट (७९ दर्जे सैण्टिग्रेड) ताप पर पिघलता है। अनुसन्धानों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि व्यापारिक रूप में चावलों के छिलकों से तेल एवं मोम निकालने पर काफी लाभ हो सकता है।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२ - परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी :

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम
सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग

प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

जनवरी १९५६ भाग ८२
मकर २०१२ अंक ४

वार्षिक मूल्य चार रुपए
प्रति अंक छः आने

विषय-सूची

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५।

भाग ८२ | मकर २०१२; जनवरी १९५६ | संख्या ४

सांख्यिक भाषा का विकास

श्री० दयालसिंह कोठारी B. Sc., B. Ed., *उदयपुर*

रामानुजम कहा करते थे, "संख्याएँ मेरे व्यक्तिगत मित्र हैं, उनका उच्च व्यक्तित्व है, मैं उनसे खेलता हूँ।" रामानुजम को संख्याएँ भले ही खिलौने मात्र प्रतीत हों परन्तु कुछ ही वर्ष पूर्व संसार संख्या लेखन व उनके परिगणनीय उपयोग से सर्वथा अनभिज्ञ था। यूनान का पिथेगोर (Pythagoras, 'प्रत्येक वस्तु संख्या है, संसार संख्या मात्र है' आदि की दार्शनिक उड़ान में ही उड़ता रहा और अपने संख्या ब्रह्म को वैज्ञानिक प्रयोगात्मक भूमि पर नहीं उतार सका। प्लेटो (Plato) ने जहाँ अपने भूमिति के अगाध प्रेम के कारण कहा कि संख्या और आकृति में ही विश्व का रहस्य छिपा है, वहाँ वह सांख्यिक भाषा में कोई क्रान्ति या चेतना न ला सका। एम्स (Ahmes) और महान पिरेमिड निर्माता गणितज्ञों के पश्चात मिश्र में गणित, जैसाकि छटी शताब्दी के अखमीन (Akhmin) में प्राप्त पत्र से स्पष्ट है, दो हजार वर्षों तक कब्रों में सोती रही और सांख्यिक चित्र-प्रणाली में कोई प्रगति न हो सकी। चीन में खड़ी रेखाओं द्वारा संख्याएँ व्यक्त की जाती थी। वहाँ के एक मन्दिर की दीवार पर बुद्ध निर्वाण के पश्चात प्रतिदिन एक रेखा बना दी जाती थी। आठवीं शताब्दी में, आधुनिक अंक प्रणाली के प्रवेश होने पर, इन रेखाओं को गिन कर पता लगाया गया कि बुद्ध निर्वाण कितने वर्ष पूर्व हुआ। चीन का यह कार्य ठीक वैसा ही है जैसा कि ग्वाले बिंद या रेखा आदि बनाकर दूध का लेखा रखते हैं। इंगलेंड में राज्यकोष का लेखा, (Charles Dickens) के अनुसार जार्ज तृतीय के राज्य काल अर्थात् १८२६ ई० तक, लकड़ियों पर चिट्ठा या खाँचे बना कर रखा जाता था। युरोप में ईसा की बारहवीं शताब्दी से

पूर्व नवीन अंक प्रणाली का उल्लेख नहीं पाया जाता है। रोम के पास एक हजार (Milli) से बड़ी संख्या प्रकट करने की कोई नामावली न थी। अमरीका की मय जाति ने केवल दशमलव के आठ स्थान (कोटि) तक संख्या व्यक्त की है। भारत के प्राच्य इतिहास में अवश्य ही बड़ी-बड़ी संख्याएँ व उनकी नामावलियाँ उल्लेखित हैं। जैनियों की शीर्ष प्रहेलिका हेमचन्द्रसूरि के कथनानुसार दशमलव के १६४ स्थान घेरती है व इस संख्या के बालुकण सारे ब्राह्माण्ड को भर सकते हैं। भारत में प्रयुक्त बड़ी-बड़ी संख्या नवीन अंक-प्रणाली के ज्ञात होने को प्रमाणित करती हैं, जिसके अभाव में परिगणन (Calculation) सर्वथा असम्भव था। इसके अभाव के कारण ही अन्य देश संख्याओं की अपार शक्ति से अपरिचित रहे।

नवीन अंक प्रणाली मनुष्य के सैकड़ों वर्षों के अनवरत परिश्रम का फल है। सांख्यिक विकास के प्रारम्भ में जब तक मनुष्य आकृति की निर्विघ्नता में आबद्ध रहा तब तक वह 'एक और अनेक' की कल्पना न कर सका। आकृति और विघ्नता (Form and Discontinuity) ही सांख्यिक भाषा के मूल आधार हैं, जिनके बिना एक और अनेक की कल्पना करना असम्भव है। अब प्रश्न यह उठता है कि एक और अनेक में से पहले किसका बोध हुआ होगा ? विस्तृत एक रूप आकाश में जब तक विभिन्नता न हो तब तक एक, दो या अनेक की कल्पना कैसे की जा सकती है। सच तो यह है कि दोनों का बोध साथ-साथ ही हुआ होगा क्योंकि बिना अनेक की उपस्थिति के एक की कल्पना करने की न तो आवश्यकता ही थी न सम्भव ही था।

अनेकता का बोध हो जाने पर मनुष्य के लिए यह आवश्यक हुआ कि वह इस अनेकता की अभिव्यक्ति करे। प्रारम्भ में मनुष्य वनों में दल बना कर रहते थे। सन्ध्या को जब एक दल वाले एकत्रित होते तब वे दैनिक घटनाओं का वर्णन करते हुए यह बताने की चेष्टा करते कि अमुक शत्रुओं का दल कितना बड़ा है। ऐसा वे शिशु की तरह दोनों हाथों को सामने फैलाकर या किसी क्षेत्र की ओर संकेत कर दिया करते; परन्तु ऐसा करने से उन्हें शत्रुओं की संख्या का सही-सही ज्ञान न हो पाता था। दो-चार तक गिनने में उन्हें कोई कठिनाई न हो पाती थी। एक के लिए यह व दो के लिए वह के संकेत पर्याप्त थे। इसी प्रकार तीन व चार के लिए 'फिर यह' 'फिर वह' आदि शब्द प्रयुक्त होते थे, जिस प्रकार आज भी हम चौथे व पाँचवें दिन को परले दिन व उस परले दिन आदि शब्दों से प्रकट किया करते हैं।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने पशुपालन व कृषि करना आरम्भ किया। कितने पशु चरागाह में गए व कितने पुनः लौटकर आए। इसका लेखा रखना आवश्यक था। इसकी पूर्ति कई प्रकार से की गई। पशुओं का वर्गीकरण एक विधि थी जो उनकी आकृति, ऊँचाई, आयु, रंग आदि की भिन्नता के अनुसार, जैसा कि आज भी ग्वाले किया करते हैं, होती थी। नामकरण दूसरी विधि थी। परन्तु वे पद्धतियाँ दलों की विशालता के साथ-साथ स्मरण रखने में दुष्कर होने से अव्यवहारिक सिद्ध हुई। फलस्वरूप अन्य प्रगतिशील प्रणालियाँ आविष्कृत हुई। प्रातःकाल जब पशुओं को छोड़ने का समय होता तब दो व्यक्ति बाड़े के द्वार पर

खड़े हो जाते। एक-एक पशु बाड़े से बाहर निकाला जाता व साथ ही एक व्यक्ति अपनी अंगुली खड़ी कर देता। इस प्रकार दसों अंगुलियों के खड़े होने पर दूसरा व्यक्ति अपनी एक अंगुली खड़ी कर लेता। इस प्रकार विधि के द्वारा काफी बड़े पशु दल की गणना की जा सकती थी। गये हुए पशु पुनः लौटकर आए या नहीं इसकी जाँच उक्त क्रिया को दुहराने से की जाती। इस विधि से भले ही गणना करना सम्भव था परन्तु पशुओं की संख्या का न तो कोई चित्र मस्तिष्क में अंकित हो पाता था, न कोई परिगणना ही सम्भव था। परन्तु यह विधि दशांशिक होने से अन्य विधियों से श्रेष्ठ थी। नवीन अंक प्रणाली को पूर्णता प्रदान करने में आगे चलकर यह दशांशिक आधार अत्यन्त सार्थक सिद्ध हुआ।

पशुओं या सैनिकों का लेखा रखने की एक और विधि थी। प्रत्येक सैनिक या पशु के लिए एक हथियार या लकड़ी सुरक्षित रख लेते थे। कितने सैनिक युद्ध में मारे गए इसका ज्ञान दलपति हथियारों से लौटे हुए सैनिकों की तुलना करने पर प्राप्त करता। बचे हुए सैनिकों का लेखा बचे हुए हथियारों को हटाकर रखा जाता। सम्पति का लेखा रखने में भी इसी प्रकार से लकड़िएँ या अन्य साधन प्रयुक्त होते थे। दो व्यक्तियों में से कौन आयु में बड़ा है इसके जानने की अत्यन्त प्राचीन काल से एक विधि प्रचलित थी प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक रस्सी रखी जाती। वर्ष के अन्त में अर्थात् जन्म दिवस पर रस्सी में गाँठ डाल दी जाती। दो व्यक्तियों में से कौन आयु में बड़ा है इसका बोध गाँठों की तुलना करने पर होता। जिस व्यक्ति की रस्सी में अधिक गाँठें होतीं वहीं बड़ा होता। लोक में यही कारण है कि आज भी जन्म दिवस को जन्मगांठ के नाम से पुकारा जाता है।

भारत से बाहर गणना के लिए अबेकस (Abacus) का प्रयोग किया जाता। (Iamblichus) के अनुसार पिथेगोर के अबेकस में लकड़ी के तख्ते पर धूल या रेत बिछी होती थी। साधारण तया अबेकस में चार छः तार होते है जिनमें काँच या पत्थर की गोलियाँ या लोहे के पत्तर पिरोए होते हैं। प्रत्येक तार में नौ (या दस) गोलियाँ होती हैं। किसी वस्तु के ढेर को गिनने के लिए एक-एक वस्तु अलग रखते जाते हैं व साथ ही अबेकस के पहले तार से एक-एक गोली हटाई जाती है। इस प्रकार दस वस्तुएँ गिन लेने पर दूसरे तार में से एक गोली हटा ली जाती है व पहले तार से फिर गणना आरम्भ की जाती है। इस प्रकार प्रत्येक दस वस्तुएँ गिन लेने पर दूसरे तार से एक गोली एक और हटा दी जाती है। इस प्रकार सौ वस्तुएँ गिन लेने पर तीसरे तार में से एक गोली एक और हटा दी जाती है। इस समय तीसरे तार में एक गोली व दूसरे और पहले में कोई गोली न होगी। चार सौ पचीस वस्तुएँ गिन लेने पर पहले, दूसरे व तीसरे तार में क्रम से पाँच, दो व चार, गोलिएँ स्थित होंगी। यह विधि एक प्रकार से अंगुली से गणना करने की तरह ही थी। इस विधि में स्थानीय मान के सिद्धान्त का प्रयोग हुआ है। डायोगिनस (Diogenes) सोलन (Solon) का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हुए कहते हैं, "दुष्टों से मित्रता रखने वाला व्यक्ति अबेकस के पत्थर की तरह है जो कभी कम व कभी अधिक प्रदर्शित करता है।" अबेकस से गणना करने वाले व्यक्ति यन्त्रवाद क

दासता से मुक्त न हो सके और सांख्यिक भाषा को, शून्य आदि आविष्कारों द्वारा परिगणनीय शक्ति प्रदान न कर सके।

उक्त विधियों से स्पष्ट है कि लेखा रखने या गणना रखने के लिए किसी तुलनात्मक उपकरण (अंगुली, रेखा, लकड़ी, रस्सी, पत्थर आदि) की आवश्यकता रहती है। सैकड़ों वर्षों तक इन विधियों ने मनुष्य की सेवा की परन्तु परिगणन व लेखा रखने में अनुपयुक्त होने से अन्य सांख्यिक विधियाँ आविष्कृत हुईं। प्रारम्भ में जहाँ तुलनात्मक साधनों के लिए अधिकतर वस्तुएँ प्रयुक्त होती थीं वहाँ मनुष्य के बौद्धिक विकास के साथ-साथ वस्तुओं के स्थान पर शब्द, वर्ण, संकेत आदि प्रतिष्ठित किए गए। प्रारम्भ में जहाँ रेखा द्वारा गणना ही प्रमुख ध्येय था वहाँ अब नये-नये संकेतों को निर्माण करने में मनुष्य का ध्येय न केवल बड़ी-बड़ी संख्याओं की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त होने वाले रेखाओं के समूह को समाप्त कर संक्षिप्तता की ओर बढ़ना था वरन परिगणनीय सफलता भी प्राप्त करना हो गया। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कई प्रणालियाँ आविष्कृत हुईं। सभी प्रणालियाँ किसी न किसी सीमा तक पूर्व प्रणालियों से संक्षिप्त थीं परन्तु नवीन अंक-प्रणाली को छोड़कर सभी प्रणालियाँ परिगणन में अशक्त थीं।

नवीन अंक-प्रणाली से पूर्व की प्रचलित प्रणालियों को मोटे रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे वर्ण, शब्द व सांकेतिक प्रणालियाँ। वर्ण-प्रणालियों में वर्ण अंकों व स्थानीय मान को प्रकट करते थे। भारत, यूनान, रोम व अरब में इस प्रकार की प्रणालियाँ प्रचलित थीं। अरबों की वर्ण-पद्धति यूनान की वर्ण-पद्धति की नकल मात्र है। रोमन वर्ण-पद्धति में घटाने के सिद्धान्त का प्रयोग होने से अंकों को प्रकट करने वाले वर्णों की संख्या यूनान व अरब की अपेक्षा कम है। रोमन वर्ण-पद्धति में I (आई अर्थात् मैं) एक को, V (पञ्जाकार वी) पाँच को, X (एक्स जो दो पाँच के संकेतो को मिलाने से बना है) दस को, L (एल) पचास को, C (सी जो हिन्दी के शतम के रूपान्तरित Centum का प्रथम वर्ण है) सौ को, D (डी) पाँच सौ को, M (एम जो हजार को प्रकट करने वाले शब्द Milli का प्रथम वर्ण है) हजार को प्रकट करते हैं। बड़ी संख्या के आगे या पीछे छोटी संख्या का प्रयोग क्रमशः जोड़ने या घटाने के काम में आती हैं। उदाहरणार्थ $ML = 1000 + 50 = 1050$ व $LM = 1000 - 50 = 950$ को प्रकट करते हैं। वर्ण के ऊपर पड़ी रेखा लगाने से वह संख्या हजार गुना हो जाती है जैसे $\overline{M} = 1000 \times 1000 = 10\,00,000$ (दस लाख)। रोमन वर्ण-प्रणाली जो खरोष्टी अंक प्रणाली के सदृश है, शून्य व स्थानीय ज्ञान का सर्वथा अभाव होने से परिगणन में सर्वथा अनुपयुक्त है उदाहरणार्थ DCCCXXIII (आठ सौ तेईस) व CXXXVIII (एक सौ अड़तीस) की गुणन क्रिया $\begin{pmatrix} \text{DCCCXXIII} \\ \text{CXXXVIII} \end{pmatrix}$ कितनी दुष्कर है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी रोमन पद्धति दोषपूर्ण है। बच्चे को चार, नौ, उनचास आदि सिखाने के लिए पहले पाँच, दस, पचास आदि के संकेत सिखाने होंगे और उसे यह भी सिखाना होगा कि चार-पाँच से, नौ दस से, उनचास पचास से एक कम है।

भारत में कटपयादि आर्यभट्टीय, अक्षरपाली आदि वर्ण-पद्धतियाँ गणितीय व काव्य ग्रन्थों में प्रयुक्त होती रही हैं। सिद्धान्त स्पष्टिकरण के लिए यहाँ केवल कटपयादि वर्ण-पद्धति का वर्णन पर्याप्त होगा। इस पद्धति में न, ञ और स्वर शून्य को, क, ट, प, य से शुरू होने वाले वर्ण अंकों को प्रकट करते हैं। संयुक्ताक्षरों में अन्तिम वर्ण का मान होता है। पद्धति को निम्न प्रकार से प्रकट किया जा सकता है :--

१	२	३	४	५	६	७	८	९	०
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म					↓
य	र	ल	व	श	ष	स	ह	—(सभीस्वर)	

निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय हैः—

अ खि ले श = संख्या

० २ ३ ५ = ५३२०

दे व स्य = दे व स्य

[८ ४ १

संख्या = १४८

उक्त वर्ण-पद्धति में स्थानीय मान का प्रयोग हुआ है उदाहरणार्थ अखिलेश में अ इकाई को, खि दहाई को, ले सैकड़े को और श हजार को प्रकट करते हैं इसलिए संख्या ५३२० हुई। उच्चारण में सुविधा व काव्य में विभिन्न अर्थ लाने की दृष्टि से यह पद्धति अन्य भारतीय वर्ण-पद्धतियों से श्रेष्ठ है।

शब्द-पद्धति और वर्ण-पद्धति में पर्याप्त सैद्धान्तिक साम्य है। भारतवर्ष को छोड़कर ईसा की तीसरी शताब्दी से पूर्व किसी भी देश में शब्द-पद्धति का प्रयोग नहीं हुआ है। इस पद्धति में अंकों के लिए वे शब्द प्रयुक्त होते जो उस वस्तु का प्रधान गुण होता जैसे ब्रह्म, सूर्य पृथ्वी आदि एक हैं इसलिये ये या इनके पर्यायवाची शब्द एक को प्रकट करते हैं। भारतीय ग्रन्थों में अंकों के लिए विविध शब्द प्रयुक्त हुए हैं। उनमें से कतिपय इस प्रकार हैं: —

० ख, नभ, व्योम, गगन, अंतरिक्ष आदि

१ ब्रह्म, आत्मा, अवनि, रवि, हिमकर

२ बाहु, नयन, युग्म, कर्ण

३ अनल (जठरानल, दावानल, बड़वानल), गुण (सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण), लोक (स्वर्ग नरक, पाताल) काल (भूत, वर्तमान, भविष्य), ताप (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक)

४ वेद, आश्रम, वर्ण, संघ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका), कोष्ट [{ (— } क्रम से Bracket, Brace, Parenthesis and Vinculun or Bar.

५ करणीय (अहिंसासुनृता ब्रह्मचर्य्यो अपरिग्रह) अमृत, तत्व, इन्द्रिय, पाण्डव, परमेष्ठि।

६ ऋतु, रिपु (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और माया), दर्शन।

७ स्वर, गिरि, ऋषि, सिन्धु

८ प्रहर, कर्म, बसु

९ ग्रह, निधि, अंक, भक्ति

१० अंगुली, दिशा।

११ अक्षौहिणी १२ मास, राशि, १५ तिथि १६ रिपु। १८ पाप, पुराण २० नख, २४ जिन अर्हत ३२ दंत, ७२कला, ८४ आसन, १०० आयु, कौरव।

एक ही अंक के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होने से काव्य में विविधता, विचित्रता व सुन्दरता होती, साथ ही आवश्यक मात्रा का छन्द-बनाने में भी सुविधा होती। भारत के प्राच्य, ज्योतिष व गणितीय ग्रन्थों में इस पद्धति का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इस पद्धति के द्वारा संख्याओं को स्मरण रखना सहज हो जाता है। सिद्धान्त स्पष्टिकरण के लिए मैथिली शरण गुप्त के रंग में भंग से निम्नलिखित उदाहरण उद्धृत किया जाता है:—

जिस समय से इस कथा का है यहाँ वर्णन चला,

था अनल[३] निधि[९] गुण[३] अवनि[१] का तब विक्रमी संवत भला।

उक्त पद्य में अनल तीन को, निधि नौ को, गुण तीन को और अवनि एक को प्रकट करते हैं। साथ ही अनल, निधि, गुण और अवनि स्थानीय मान के सिद्धान्त के अनुसार क्रम से इकाई, दहाई, सौ व हजार के स्थान पर हैं इसलिए पद्य में वर्णित घटना विक्रम संवत १३९३ की है। इस पद्धति के द्वारा जहाँ संख्याओं को स्मरण रखना सहज है वहाँ बड़ी सख्याओं की अभिव्यक्ति अवश्य दुष्कर है क्योंकि ऐसी दशा में पद्य की मात्राएँ बढ़ जाती हैं। फिर भी इस पद्धति के द्वारा भारतीय ग्रन्थों में काफी बड़ी-बड़ी संख्याएँ व्यक्त हुई हैं। सूर्य-सिद्धान्त, ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, गणित सार संग्रह, त्रिशटिका आदि ग्रन्थ इसके साक्ष्य हैं।

सांकेतिक अंक-प्रणालियों में अंकों के लिए विभिन्न प्रकार के संकेत प्रयुक्त हुए हैं। मिश्र के मन्दिरों, भवनों व शिलाओं पर प्रयुक्त हियरोग्लिफिक पद्धति में अंकों को चित्रों द्वारा प्रकट किया गया है। सुमेरिया में खूँटा, चीन में डण्डा (Rod), अमेरीका में रेखा व बिंदु, भारत में रेखाएँ, बिन्दु व अन्य संकेत अंकों को प्रकट करते थे। शून्य व स्थानीय मान के अभाव के कारण मिश्र की चित्र पद्धति में एक, दस, सौ, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़ आदि के लिए अलग-अलग संकेत थे। इस पद्धति में संख्याओं को लिखने में स्थानीय मान के बजाय जोड़ के सिद्धान्त का प्रयोग होता था। उदाहरणार्थ अट्ठानवे को लिखने के लिए दस के नौ संकेत व एक के आठ संकेत को लिखा जाता था जैसे ९८ = ∩∩∩∩∩∩∩∩∩ııııııii

१११११ लिखने में जहाँ आधुनिक अंक प्रणाली में केवल एक ही संकेत प्रयुक्त होता है। वहाँ इस पद्धति में एक, दस, सौ, व हजार के संकेतों की आवश्यकता होगी क्योंकि ११११ = १००० + १०० + १० + १ होते हैं। हियरेटिक पद्धति (मिश्र में प्रचलित हिगरोग्लफिक का रूपान्तर मात्र है। इस पद्धति के आधार कहीं पर चार हैं तो कहीं पर दस है। संकेतों की संख्या भी चित्र-पद्धति की अपेक्षा बहुत अधिक है। इस पद्धति में चालीस को लिखने में चार के संकेत (जो पड़ी रेखा है) पर एक बिंदु लगा दिया गया है जैसे चालीस = -॰-। जहाँ चालीस लिखने में बिंदु का प्रयोग हुआ है वहाँ दस, बीस, तीस, पचास, साठ, सत्तर, अस्सी आदि में कहीं भी बिंदु का प्रयोग नहीं हुआ है। इस प्रकार इस पद्धति में शून्य, स्थानीय मान व दशमलवीय आधार का अभाव था। साथ ही संकेतों की संख्या भी बहुत अधिक थी। सुमेरिया की अंक-पद्धति में जोड़ के सिद्धान्त के साथ-साथ गुणन सिद्धान्त का भी प्रयोग हुआ है। इस पद्धति में खूटे को भिन्न-

भिन्न प्रकार से रख कर एक, दस व सौ के संकेत बनाए गए हैं जैसेः—

उदाहरण

V	<	V>
एक	दस	एक सौ
<VV <V	<V>	<<V>
तेईस	एक हजार	दस हजार

उक्त उदाहरणों में तेईस को प्रकट करने में दस को दो बार व एक को तीन बार लिखा गया है इस प्रकार सौ तक संख्याएँ लिखने में केवल जोड़ के सिद्धान्त का प्रयोग हुआ है। बड़ी संख्याओं के लिखने में गुणन सिद्धान्त का भी प्रयोग हुआ है। उक्त उदाहरणों में एक हजार लिखने में सौ के संकेत के बांई ओर दस का संकेत लिख दिया गया है व दस हजार लिखने में एक हजार को इकाई मान कर उसके बांई और दस का संकेत रख दिया गया है। संकेतों की कमी, शून्य का अभाव, स्थानीय मान की अपूर्णता इस पद्धति के दोष थे जिससे बड़ी संख्याएँ लिखने में कठिनाई होती थी। चीन की अंक-पद्धति यद्यपि दशमलवीय थी परन्तु उसमें शून्य का अभाव था व स्थानीय मान का प्रयोग भी अपरिपक्व था। अमरीका की मय पद्धति में जहाँ स्थानीय मान व शून्य का प्रयोग (शून्य का प्रयोग दोषपूर्ण है) हुआ है वहाँ यह पद्धति १८ व २० पर आधारित होने से भारतीय पद्धति की तरह उपयुक्त न हो सकी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि संसार की सभी सांख्यिक पद्धतियाँ संख्या-लेखन व परिगणन की दृष्टि से अपूर्व थी। इसका कारण दशमलवीय आधार, शून्य व स्थानीय मान का प्रयोग आदि विशेषताओं में से किसी न किसी का अभाव होना था। भारत में इन तीनों का सम्मेलन हुआ जिससे सांख्यिक भाषा व पूर्ण व सशक्त हो सकी। व केवल दस संकेतों के द्वारा संख्या लेखन व परिगणन सम्भव हो सका। शून्य स्वयं अंक नहीं है। इसके द्वारा अंक की अनुपस्थिति या स्थान को प्रकट करना सम्भव होने से दस, बीस, तीस आदि के लिए प्रयुक्त होने वाले भिन्न-भिन्न संकेतों की आवश्यकता न रही। स्थानीय मान के सिद्धान्त के द्वारा एक ही अंक का भिन्न-भिन्न स्थान पर भिन्न-भिन्न मान होता है जैसे २२२ में दो का स्थानीय मान क्रम से २, २० व २०० है। इसके पूर्ण विकास के फलस्वरूप ही संख्या-लेखन सरल व संक्षिप्त हो सका। अन्य आधारों की अपेक्षा दस पर आधारित भारतीय मान अधिक उपयुक्त हो सके। कुछ विद्वान परिगणन की सरलता व सहज स्मरण की दृष्टि से प्रत्येक पैमाने को दशमलवीय बनाने के पक्ष में हैं जैसे रुप० के दस आने की दस पाई आदि। दूसरे और कुछ विद्वान संख्याओं का आधार परिवर्तित करने के पक्ष में हैं। स्वीडन का चार्ल्स बारहवाँ (XII) व फ्रान्स का वैज्ञानिक बुफन संख्याओं का आधार बारह व लेंग्राज ७ व ११ आदि करने के पक्ष में थे। दशमलवीय आधार से ये आधार कहाँ तक ठीक है विचारणीय है।

भारत में नवीन अंक-प्रणाली का क्रमिक विकास हुआ। शून्य व स्थानीय मान का प्रयोग संसार के सभी देशों से पूर्व प्रचलित था। भारत के प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित बड़ी-बड़ी संख्याएँ, स्थानीय मान

का गणितीय ग्रन्थों में प्रयोग व शून्य की उपमाएँ इसके साक्ष्य हैं। सूर्य सिद्धान्त में नौ के लिए प्रयुक्त 'अंक' शब्द से प्रमाणित होता है कि सूर्य सिद्धान्त के लेखन काल में नवीन अंक-प्रणाली प्रचलित थी। ईसा की छठीं शताब्दी के गुर्जर ताम्रपत्र में उत्कीर्ण संवत् ३४६ को आधुनिक पद्धति के द्वारा प्रकट किया गया है। संसार में अन्यत्र कहीं इससे पूर्व नवीन अंक-प्रणाली द्वारा संख्याएँ व्यक्त नहीं की गई हैं। फ्लोरियन केजोरी (Florian Cajori) Histoy of Elementary Mathematies में लिखते हैं, "शून्य व स्थानीय मान को सिद्धान्त के पूर्ण व व्यवस्थित विकास के लिए हम ईसा की पाँचवीं व छठीं शताब्दी के हिन्दुओं के ऋणी हैं। मानव प्रतिभा के विकास में किसी अकेले गणितीय आविष्कार ने इतना अधिक योग नहीं दिया, जितना कि इस कार्य ने। जहाँ कि पुरातन प्रणालियाँ केवल किसी अंकगणितीय परिगणन के उत्तर को लेखबद्ध करती थीं, वहाँ हिन्दू प्रणाली (जिसे भूल से अरबी पद्धति कहा जाता है) स्वयं परिगणन की आश्चर्यजनक शक्ति प्रदान करती है।"

नवीन अङ्क प्रणाली भारत की महान देन है। भारत से यह अरब व अरब से अन्यत्र प्रचारित हुई। इसकी अत्यन्त सरलता व उपयोगिता से प्रभावित होकर संसार के सभी देशों ने बिना किसी विरोध व हिचकिचाहट के इसे अपनाया। संकेत के रूप भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से सभी पद्धतियाँ भारतीय सांख्यिक भाषा के अनुरूप हैं, अर्थात प्रत्येक में शून्य, दशमलवीय आधार, स्थानीय मान व दस संकेत हैं। उदाहरणार्थ रेडियो सेट में Resistance का मान प्रकट करने के लिए भूरा रंग एक, लाल दो, नारंगी तीन, पीला चार, हरा पाँच, नीला छः, बैंगनी सात, भस्मवत रंग आठ, श्वेत नौ व काला रंग शून्य को प्रकट करते हैं। स्थानीय मान आदि का प्रयोग कर इन रंगों के द्वारा संख्याएँ व्यक्त की जा सकती हैं, जिसे २५० प्रकट करने के लिए बाईं से दाईं ओर लाल, हरे व काले रङ्ग की धारिएँ या बिन्दु बनाने होंगे। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न संकेतों के प्रयोग के द्वारा गुप्त सांख्यिक प्रणालियाँ बनाई जा सकती हैं। संख्याएँ रूपी सिक्के, नवीन अङ्क प्रणाली के फलस्वरूप ही आज इतने प्रचलित हो गए हैं कि हम उनका सही मूल्यांकन तक नहीं कर सकते।

सेंट अगस्तीन के शब्दों में संख्याएँ पवित्र हैं, क्योंकि ईश्वर अपने विश्रामकाल में उनसे खेलता है। ऋण अनन्त से धन अनन्त तक फैली हुए संख्याओं का उस अनन्त ईश्वर की तरह कोई कूल किनारा नहीं। सृष्टि के विनाशात्मक शस्त्रों के निर्माण में संख्याओं का प्रयोग सांख्यिक भाषा का दोष नहीं वरन मनुष्य की भौतिक बुद्धि का द्रोह है। सत्य की रक्षा में डटे हुए सैनिक की तरह १ से लेकर ईश्वर आराधना में सर झुकाए भक्त की तरह बैठे हुए ६ (नौ) तक के अंकों व दार्शनिक शून्य से निर्मित संख्याएँ पवित्र हैं। संख्याओं का सन्देश है कि इस शून्यवत संसार में नवधा भक्ति में लीन हो, आठों प्रहर सप्त स्वरों से षट रिपुओं का दमन कर पंच तत्वीय प्राणी प्रत्येक युग में त्रिताप रहित हो, माया और ईश्वर में से एक मात्र ईश्वर की आराधना में रत रहे।

ध्वनि की गति-सीमा के परे

डी० स्ताब्रो वित्सकी

प्रकृति के रहस्यों के भेदने में कदाचित मनुष्य के पहले कभी इतने दृढ़ निश्चय, बुद्धि और अटल धैर्य का परिचय नहीं दिया है, जितना कि "ध्वनि की गति-सीमा" को पार करने के अपने प्रयासों में।

"ध्वनि की गति-सीमा" को पार करने का प्रयत्न करते हुए फ्रांसीसी विमान-चालक कान्स्तातिन रोज़ानवे की मोलिन विलारोश हवाई अड्डे पर दुःखद मृत्यु हो गई। भय से स्तब्ध होकर सैकड़ों इंजीनियर तथा अन्य लोगों ने देखा कि "मिस्त्येर ४—बी" नामक फाइटर विमान बेतहाशा रफ्तार से जमीन में धँस कर चूर चूर हो गया।

'ध्वनि की गति-सीमा" पार करने का प्रयत्न करते हुए अंग्रेज विमान-चालक जान डेरी की दुःखद मृत्यु हो गयी। उसका विमान जो एक आधुनिकतम डिजाइन का जेट फाइटर विमान था, फार्नबारों के ऊपर हवा में वस्तुतः टुकड़े टुकड़े हो गया था।

"ध्वनि की गति-सीमा" को पार करने का प्रयत्न करते हुए अमरीकी विमान-चालक वार्देन "स्काहिरे एक-४-डी" विमान में····प्रयत्न करते हुए—प्रयत्न करते हुए···समाचार पत्रों के शीर्षक, विमानों के नाम!······

बढ़ती हुई रफ्तार के साथ मनुष्य के सामने अधिकाधिक संख्या में उलझा देने वाली और पूर्णतः अप्रत्याशित समस्यायें आती गयीं। आसानी से नियंत्रित हो जाने वाला विमान ८ किलोमीटर से अधिक की रफ्तार पर पहुँच कर चालक की इच्छा के अनुसार चलाने से इनकार कर देता था, नियंत्रण के सभी प्रचलित ढंग सहसा बेकार हो जाते थे और विमान काबू से बाहर होकर सीधे जमीन की तरफ नाक के बल गिरने लगता था। विमान के पंख 'एलेरोन' (पंख के बगलवाले सिरे पर लगी हुई पट्टियाँ जिन्हेंइच्छानुसार दबा या उठा कर चालक वायुयान को दाहिनी या बाईं ओर झुका सकता है) तथा पूरा ढाँचा बुरी तरह काँपने लगता था।···और फिर परिणाम वही होता था—भयानक दुर्घटना।

इन रहस्यमय घटनाओं का कारण मालूम करने के लिए अंग्रेजों और जर्मनों ने युद्ध के अंतिम वर्षों में जेट फाइटर विमानों के साथ कई परीक्षण किये परन्तु वे इस रहस्य का भेद न पा सके।

दुर्घटनाओं पर दुर्घटनाएँ होती रहीं।···युद्ध के मोर्चे से दूर इन देशों के अन्दर हवाई अड्डों पर सिद्धहस्त विमान-चालक मौत का शिकार होते गये, पर अपनी मृत्यु से वे कुछ भी सिद्ध न कर सके वे उडड्यन विज्ञान में किंचित मात्र भी प्रगति न ला सके।

दूसरे महायुद्ध के बाद से संयुक्त अमरीका में भी इस अत्यंत महत्वपूर्ण समस्याओं के बारे में व्यापक रूप से काम किया गया है। अमरीकियों का विचार था कि वे वायुमंडल में ही इन सारी पहेलियों

का हाल मालूम कर सकेंगे। उनके प्रयास भी निष्फल रहे : इस नये क्षेत्र में जो अत्यंत जटिल प्रक्रियाएँ काम कर रही थीं उनकी सैद्धान्तिक व्याख्या किये विना सफलता प्राप्त करना असंभव था। और अधिक घटनाएं हुईं, और अधिक विमानचालक मौत के शिकार हुए।

उस समय अमरीकी पत्र पत्रिकाओं में पहली बार दो शब्द छपे; जिन्होंने साहसी से साहसी चालकों के मजबूत से मजबूत दिल भी दहलादिये "ध्वनि की गति-सीमा"।

"ध्वनि की गति-सीमा" क्योंकि वह संकटमय क्षेत्र जिस के बाद इन दुःखद अप्रत्याशित घटनाओं का सामना होता था, वहाँ से आरंभ होता था जहाँ विमान की गति ध्वनि की गति के बराबर पहुँचने लगती थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रकृति स्वयं मनुष्य के प्रयत्नों में बाधा डालकर कह रही है। बसः इससे आगे बढ़ने का साहस न करना।" और इस चेतावनी के साथ वह वायवीय गति शास्त्र के सभी स्थापित नियमों को नष्टभ्रष्ट कर देती थी।

सोवियट विमानों के डिज़ाइन बनाने वाले भी इन वर्षों में बहुत बड़े पैमाने पर इसके बारे में प्रयोग करते रहे हैं, पर उन्होंने दूसरा रास्ता अपनाया। उन्होने अपना काम परीक्षा विमान बचाने से आरंभ नहीं किया; उन्होंने नये वायवीय गति शास्त्र के नियमों की गहरी जानकारी प्राप्त करने से पहले उड़ान भी करने का प्रयत्न नहीं किया। गति के विरुद्ध लड़ाई में शोधकार्य के नये केन्द्र काम में लाये गये।

यह मालूम किया जा चुका है कि जब कोई पिंड ध्वनि की गति से या उससे तेज चलता है तो वायु के कणों को पीछे हटने का समय नहीं मिलता। जिसका नतीजा यह होता है कि उस गतिशील पिंड के चारों ओर हवा की धारा में काफी परिवर्तन हो जाता है। पिंड के धरातल पर और उसके सामने घनीभूत वायुराशियों का निर्माण होता है जिन्हें "डेन्सिटी लीप्स' कहते हैं। ध्वनि की गति में तेज चलते समय पिंड को बहुत भारी "डेन्सिटी लीप" का सामना करना पड़ता है और उड़ने वाले इस पिंड की सारी शक्ति इस अवरोध को दूर करने में खर्च होती है। ध्वनि की गति से कम रफ्तार से ध्वनि की गति से तेज रफ्तार में संक्रमण के समय अवरोध में इतनी अधिक वृद्धि का यही कारण है।

सचमुच, ध्वनि की गति से उड़ते समय सामने आनेवाले अवरोध में तीर की शक्ल वाले विमानों ने एक मूलभूत परिवर्तन कर दिया। पहले इस अवरोध को "७," "१०," "१४," आदि संख्याओं के द्वारा इंगित किया जाता था, अब "तरंग संकट" की सीमा पर यह अवरोध दुगने या तिगुने से अधिक नहीं रह गया। यह सर्वथा मान्य अवरोध था जिस पर मोटर की शक्ति के द्वारा काबू पाया जा सकता था। परन्तु मुख्य समस्या का हल मिल जाने पर विमानों के डिजाइन बनानेवालों के सामने अनेक नयी तथा एक दूसरे से सम्बन्धित समस्याएँ आ खड़ी हुईं। पंख में नये ढंग के यंत्रों, नियंत्रण की एक नयी पद्धति, वायुयान की भिन्न आकार की बाडी तथा भिन्न प्रकार की दुम की आवश्यकता हुई।

यह डिजाइन ध्वनि से तेज गति पर चलने के लिए बनाया गया था और धीमी गति पर भी चल सकता था, जिसकी कि जमीन पर उतरते समय आवश्यकता पड़ती थी। पर वायु के न्यूनतम अवरोध में गति के जो नियम लागू होते हैं वे ध्वनि

की गति से कम और ध्वनि की गति से अधिक रफ्तारों पर अलग-अलग होते हैं। फलस्वरूप वायवीय गतिशास्त्र की दृष्टि से विमान की रचना इस प्रकार की होनी चाहिये कि वायु के न्यूनतम अवरोध में गति के अलग-अलग नियमों के बावजूद उसमें किसी भी रफ्तार के लिए आवश्यक स्थायित्व आ जाये और उसे आसानी से इच्छानुसार मोड़ा तथा झुकाया जा सके।

चालक की सुरक्षा के लिए वायुयान में एक ऐसी कैबिन बनाने की आवश्यकता थी, जिसमें वायु प्रवेश न कर सके और उसमें एक नियमित दबाव कायम रहे। वायुमंडल की ऊपरी तहों में, जहाँ हवा पतली होती है, पृथ्वी से मिली हुई निचली तहों की अपेक्षा दबाव कम होता है। यदि कोई व्यक्ति साधनों के बिना ५०,००० फीट की ऊँचाई पर पहुँच जाये तो इस बात का खतरा रहता है कि उसकी रक्त-वाहिनियाँ फट जायें या उसके भेजे में रक्तस्राव हो जाये या इसी प्रकार की और कोई दुर्घटना हो जाये। विमान को काबू में रखनेवाले पुर्जों की रचना में मूलभूत परिवर्तन करना आवश्यक हो गया। ध्वनि की गति से कम रफ्तार पर नियंत्रण रखनेवाले पुर्जों पर हवा का एक निश्चित दबाव रहता है। ध्वनि की गति से अधिक रफ्तारों पर यह दबाव बढ़ जाता है और यह दबाव पड़ने का स्थान बदल जाता है। फलस्वरूप उड़ने की विभिन्न रफ्तारों के लिए मूलभूत रूप से भिन्न डिजाइन के नियंत्रण रखनेवाले पुर्जों की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, ध्वनि की गति से कम रफ्तार पर विमान-चालक केवल अपनी मांस-पेशियों की शक्ति से वायुयान को इच्छानुसार अपने वश में रख सकता है पर "ध्वनि की गति-सीमा" पर यह शक्ति काफी नहीं होती। इसलिए विमान पर नियंत्रण रखनेवाले पुर्जों के डिजाइन में परिवर्तन करना और विमान को मोड़ने आदि के लिए विशेष यंत्र लगाना आवश्यक हो गया।

यह स्पष्ट है कि समस्याएँ अत्यन्त विविध थीं। आखिरकार तीर की शक्ल के पांव वाला पहला परीक्षणविमान धूप में चमकता हुआ सुगमतापूर्वक बाहर मैदान में आया।

लावोचकिन की बगल ही में स्मुर्स्की खड़ा था। चालक ने झपटकर कैबिन का दरवाजा खोला और विमान हवा में ऊपर उठा। वह बड़े विश्वास के साथ ऊपर उठता जा रहा था। और वह हवा में उठते ही चकनाचूर भी नहीं हो गया। हवा में पहुँचकर भी विमान ने कोई गड़बड़ नहीं की और बिना किसी दुर्घटना के नीचे आ लगा। इस परीक्षण में विमान की सफलता ने फौरन तीर की शक्ल के पंखों के बारे में सारी शंकाएँ दूर कर दीं। और यह फैसला किया गया कि "ध्वनि की गति-सीमा" को पार करने के लिए इस नये विमान को इसके मोटरों की उच्चतम रफ्तार पर इस्तेमाल किया जाये। कंट्रोल पैनेल पर "मैकमीटर" नामक एक नया यंत्र लगा दिया गया।

बात यह है कि अत्यधिक रफ्तार से उड़नेवाले विमानों में दो विशेष यंत्र होते हैं: एक यंत्र तो विमान की वास्तविक रफ्तार बताता है और दूसरा मैकमीटर होता है जो विमान की वास्तविक रफ्तार और उस वातावरण में ध्वनि की गति के अनुपात को इंगित करता है। इस अनुपात को "मैक" संख्या कहते हैं।

उस निर्णायक उड़ान के लिए सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं। बिना किसी संकोच के आई०

फ्योदोरोव, परीक्षण विमान-चालक, विमान को बाहर मैदान में निकाल लाया और हवाई अड्डे पर एक चक्कर लगाकर नील गगन में खो गया।

टर्बाइन पूरी रफ्तार से चल रही थी। यंत्र इंगित कर रहे थे कि विमान ३२,००० फीट की ऊँचाई पर है। पंख को जरा-सा घुमा-कर फ्योदोरोव ने बड़ी सुगमता से विमान की दिशा पृथ्वी की ओर मोड़ दी। लेकिन वह साधारण ढंग से पृथ्वी की ओर नहीं जा रहा था; यह कहना अधिक उचित होगा कि विमान एक ढलान पर तेजी से नीचे उतर रहा था, परन्तु मैकमीटर की सुई धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रही थी, एक क्षण के लिए वह १ की संख्या पर रुकी और फिर उसे पार करके दूसरा चक्कर लगाने लगी। यह काम पूरा हो जाने पर फ्योदोरोव धीरे-धीरे कंट्रोल-स्टिक अपनी ओर खींचने लगा और बिना किसी कठिनाई के उसने विमान की दिशा नीचे की ओर से बदलकर ऊपर की ओर कर दी।

बारह हजार फीट। विमान-चालक ने अपने चेहरे पर से आक्सीजन की नकाब उतार दी। अब वह नीचे उतरना आरंभ कर सकता था। "ध्वनि की गति-सीमा" को पार करने जैसी ऐतिहासिक घटना इतनी निराशाजनक हद तक साधारण सिद्ध हुई। हवाई अड्डे पर लोग विमान की तरफ दौड़े; लावोचकिन सबसे आगे था। फ्योदोरोव को गले लगाया गया, उसे लोगों ने चूमा। निर्णायक कदम उठाया जा चुका था।

इसके बाद अन्य सफलताओं की खबरें आयीं: ए० आई० मिकोयान द्वारा तैयार किये गए एक विमान ने प्रायः लावोचकिन के विमान के साथ ही "ध्वनि की गति-सीमा" को पार किया और कुछ दिन बाद ए० एस० याकोवलेव को इस डिजाइन बनानेवाले की सफलता पर उसके मित्रों ने बधाइयाँ दीं।

इस प्रकार "ध्वनि की गति-सीमा" को भंग कर दिया गया।

चूँकि इस अतिरिक्त अवरोध के स्वरूप का सम्बन्ध सीधे-सीधे ध्वनि तरंगों के साथ है, इसलिए इसे "तरंग अवरोध" भी कहते हैं और इसके फलस्वरूप पैदा होने वाले घटनाक्रमों को "तरंग संकट" या "ध्वनि की गति-सीमा का अवरोध" कहते हैं।

१९४६ में वी० वी० स्त्रुमिंस्की नामक नवयुवक भौतिक-शास्त्रवेत्ता के नेतृत्व में काम करनेवाले सोवियत वैज्ञानिकों, इंजीनियरों तथा विमानों के डिजाइन बनानेवालों के एक बहुत बड़े दल के भगीरथ प्रयासों को सफलता प्राप्त हुई; उन्होंने इस रहस्यमय घटनाक्रम के सैद्धान्तिक आधार का पता लगा लिया। इस प्रकार विज्ञान के एक नये क्षेत्र, ध्वनि की गति से तेज रफ्तारों से सम्बन्धित वायवीय गतिशास्त्र, की उत्पत्ति हुई। इसके बाद के समस्त शोध-कार्य के लिए एक ठोस वैज्ञानिक आधार की रचना हो गयी थी।

बुनियादी तौर पर एक नये प्रकार के पंख, तीर की शक्ल के पंख, का डिजाइन एक महान् सफलता थी। वैज्ञानिकों का विश्वास था कि यह पंख हमेशा के लिए तेज रफ्तार पर उड़ते समय सामने आने-वाली उन सभी कठिनाइयों को दूर कर देगा, जो अब तक अलंघ्य प्रतीत होती थीं।

समाजवादी श्रमवीर एस० ए० लावोचकिन के संचालन में अनुभवी डिजाइन बनानेवालों के एक

दल के सहयोग से एक सर्वथा नये ढंग का विमान बनाया गया। ह्वाटमैन पेपर पर एक पतली-सी नुकीली बाडी की रूपरेखा तैयार की जा चुकी थी जिसकी नोक बहुत आगे को निकली हुई थी। मूल योजना में दुम पीछे की ओर झुकी हुई थी। पर सब से महत्वपूर्ण भाग उसके पंख थे। छोटे-छोटे और तीर की तरह पीछे को मुड़े हुए। यह विमान उस तैराक जैसा दिखायी देता था जो गोता मारने के लिए तख्ते पर से छलांग मारने को तैयार खड़ा हो।

इस प्रकार तीर की शक्ल के पंख वाला पहला सोवियत विमान अस्तित्व में आया; यह तीर की शक्ल के पंख वाले विमानों पर आधारित उड्डयन-विद्या, आधुनिक उड्डयन-विद्या, का अग्रदूत था।

यह स्थापित सिद्धान्तों का एक साहसपूर्ण तथा क्रान्तिकारी उल्लंघन था। पर यह अनुसंधान आकाश से नहीं टपका था; इसकी उत्पत्ति केवल इसके निर्माताओं की प्रतिभा या किसी तुक्के के कारण नहीं हुई थी। उड्डयन-सम्बन्धी उन्नत सोवियत विज्ञान के अब तक के विकास के द्वारा इसके लिए जमीन तैयार हो गयी थी और उसकी दिशा पहले से निर्धारित कर ली गयी थी।

सोवियत संघ में एक-से-एक अच्छे नए विमान बनाये गए हैं, उनकी रफ्तार एकदम २००-३०० किलोमीटर बढ़ जाती है।

.....“ध्वनि की गति-सीमा,” “मैक संख्या”—जहाँ तक सोवियत विमानों के डिज़ाइन बनाने वालों का सम्बंध है, ये सब कल की, अतीत की बातें हैं। अब उनके सामने नयी समस्याएँ हैं। अब जब कि रफ़्तार “मैक” के हिसाब से नापी जाने लगी है, डिजाइन बनाने वालों के सामने तापमान की समस्याएँ हैं। तीव्र गति पर उड़ान भरते समय जिस घनीभूत वायु का सामना करना पड़ता है वह एक ठोस पिंड के समान होता है। वायु की भीत को चीरता हुआ विमान ऐसे बढ़ता है, जैसे आरी धातु को काटती है। और उसके सामने की हवा धातु की छीलन की तरह हटने लगती है। १,४०० मील से अधिक की रफ्तार पर विमान की बाडी और पंखों का तापमान ४८० फारेनहाइट तक पहुँच जाता है। यह तो केवल एक समस्या है। इस प्रकार की न जाने कितनी और समस्याएँ उठती रहती हैं।

जीवन की गति अविराम है, शोध-कार्य का काम भी जारी है।.....

बहुमुखी नदी घाटी योजनाएं

श्री यादवमोहन, एम० आई० ई०

मनुष्य का और नदियों का परंपरा से सम्बन्ध चला आया है। वल्कि अधिक उपयुक्त कथन तो यह होगा कि मनुष्य मात्र का जीवन सदा ही अनेक रूप से नदियों पर ही निर्भर रहा है। इस बात का कारण स्पष्ट है। वायु के उपरान्त जीवन के लिए जल ही सब से आवश्यक पदार्थ है। इसलिए यह अनिवार्य हुआ कि रहने के स्थान नदियों के किनारे हों। फिर एक और बात भी है। प्रारम्भ में एक स्थान से दूसरे स्थान तक आने जाने के साधन भी न थे। मनुष्य ने देखा कि नदियों का वहाव बड़े बड़े वृक्षों को कहीं से कहीं ले जाता है। मनुष्य ने जल की इस प्रकृति के लाभ उठाया और सर्वप्रथम यातायात के साधन नौकाओं द्वारा नदियों पर आरम्भ हो गए। आगे चलकर मनुष्य ने यह भी देखा की अनाज व वृक्षों की उपज में समय पर जल मिल जाने से बहुत लाभ होता है। नदियों के पानी को ऊपर के स्थान से काट कर नीचे की भूमि पर लाया गया या वहीं बरतनों से या ढेकलियों से उठा कर भूमि पर उड़ेला गया और इस प्रकार मनुष्य ने अपने भोजन में वृद्धि की, यही सर्वप्रथम सिंचाई योजना थी। समय चलता गया और भांति-भांति से जीवन निर्वाह में नदियों से सहायता मिली। कुछ देशों का तो समस्त जीवन पूर्णतया नदियों के ही सहारे है। मिश्र ही को लीजिए, नाइल नदी का बरसाती पानी हर वर्ष बहुत सी भूमि को ढंक देता है। इस पानी में उपजाऊ भू-कण मिले रहते हैं जो हर साल नाइल के इधर-उधर के किनारों की भूमि पर फैल जाते हैं और फिर इस भूमि पर जो फसलें होती हैं देखते ही बनता है। इसी से तो कहावत है कि मिश्र नाईल नदी है और नाईल नदी ही मिश्र है! मनुष्य ने नदियों का आभार मानने में अकृतज्ञता नहीं प्रकट की और नदियों की पूजा की। इजिप्ट वाले नाईल नदी को फादर नाईल कहते हैं। ऐसे ही भारतवासी गंगाजी को गंगा मां कहते हैं।

परन्तु जहां नदियां मनुष्यों को आश्रय देती रहीं, वहीं समय समय पर अपना भयानक रूप भी दिखा देती थीं। बाढ़ के समय कहीं कहीं तो त्राहि त्राहि मच जाती है। बिहार के कोसी के क्षेत्र को ही ले लीजिए। सहस्रों वर्ग मील भूमि की फसलें बाढ़ के प्रकोप में आकर नष्ट विनष्ट हो जाती हैं। ब्रह्मपुत्रा ने आसाम में एक दो शहरों को ही लगभग विलीन कर दिया है। ऐसी ऐसी घटनाओं से बचने का मनुष्य को प्रयत्न करना पड़ा और अपने बचाव के लिए नदियों के किनारे छोटे मोटे बांध बनाए। यही सर्वप्रथम बाढ़ के बचाव की योजना रही होगी।

नदियों का पानी बरसात के महीनों के अतिरिक्त बहुधा और महीनों में बहुत कम रह जाता है। यह पानी इधर-उधर की भूमि से नीचा रहता है। उसलिए जब तक इसे ऊंचा न किया जाय इसका प्रयोग नहीं हो पाता। किसी भांति नदी के आरपार बांध बनाना आवश्यक हुआ। आरम्भ में कच्चे पक्के बांध बनाए

गए और पानी से सिंचाई की गई। यह नदी की सिंचाई की योजना में एक महत्त्वशाली प्रगति हुई। किसी किसी स्थान पर देखा गया कि जल के प्रपात में इतनी शक्ति है कि बड़ी-बड़ी चट्टानें इधर से उधर हो जाती हैं। समय के साथ मनुष्य की बुद्धि में विकास हुआ और उसने सोचा कि इस शक्ति को भी किसी प्रकार कार्य में लाया जाय। मनुष्य ने जांच पड़ताल की और सुविधाजनक स्थानों पर जल को ऊपर से नीचे गिराया गया। नीचे पंखड़ियां लगा दीं और एक धुरी घूमने लगी—यही पहली 'टरबाईन' हुई। धुरी पर चक्की जड़ दी और पनचक्की बन गई।

इस प्रकार कहीं सिंचाई की योजना बनी, कहीं बाढ़ के रोकने की। कहीं यातायात हुआ तो कहीं पनचक्की लगीं। कहीं कहीं साथ ही एक से अधिक कार्य सम्पन्न होने लगे। नहरें बनतीं और उसमें यातायात के लिए छोटी बड़ी नौका चलाने के लिए साधन जोड़ दिए। जहां जहां अवसर पाया पनचक्की लगा दी। सिंचाई के लिए बांध बना दिया। यही पहली बहुमुखी नदी घाटी योजनाएं थीं। यह योजनाएं कोई आधुनिक काल में ही आरम्भ नहीं हुई हैं, हमारे देश में सदियों से चली आ रही है। हम इन्हें 'बहुमुखी योजना' न कह कर यदि बहुगुणी योजना' कहें तो अधिक उचित होगा।

आगे चल कर पिछली शताब्दी में विश्व में भांति भांति के आविष्कार हुए। कहीं बिजली का आविष्कार भी हो गया। पहले पहले बिजली की मशीनें तेल के इंजनों से चलती रहीं। फिर पानी की शक्ति को उपयोग में लाया गया, और जलप्रपातों पर बिजली की मशीनें लगने लगीं। नदियों के पानी की शक्ति से बिजली उत्पन्न की गई और नदी घाटी योजनाओं से एक नया गुण प्राप्त हुआ।

नदियों की बिजली की योजनाएं दो प्रकार की होती हैं। एक तो वह जो नदियों के बहाव के पानी पर ही निर्भर है। इन योजनाओं में नदी में एक साधारण ऊँचाई का बांध बना कर नदी के पानी को स्थान की उपयुक्तता के अनुसार घुमा लिया जाता है। फिर खुली नालियों द्वारा ले जा कर मशीनों में निकालते हुए नीचे गिरा देते हैं! या पानी को नलों द्वारा नीचे के स्थान पर ले जाते हैं और वहां मशीनें लगा कर उन मशीनों को दबाव भरे पानी से चला देते हैं। इन नदी बहाव पनबिजली योजनाओं में एक विशेष त्रुटि रहती है। नदी का बहाव कुछ महीनों में तो बहुत रहता है, और कुछ महीनों में बहुत कम हो जाता है। नदी बहाव की पनबिजली योजना केवल नदी के कम से कम बहाव पर ही आश्रित की जा सकती है। और इसलिए यह बहुधा बहुत बड़ी नहीं बन पातीं। नदी का अधिकतर पानी काम में ही नहीं आता। आगे चल कर ध्यान में आया कि बरसाती पानी को यदि रोक लिया जाय और फिर आवश्यकता अनुसार सिचाई के लिए या बिजली उत्पादन के लिए काम में लाया जाय तो कई गुणा लाभ प्राप्त हो सकेगा। बस दूसरी प्रकार की योजनाएं बनीं। इन योजनाओं में नदी का बहुत सा बरसाती पानी बड़े बड़े सागरों में एकत्रित कर लिया जाता है। नदी के आरपार उचित स्थान पर आवश्यकतानुसार ऊंचे ऊंचे बांध बनाने पड़ते हैं। इन ऊंचे बांधों के बनाने से बांध के ऊपर पानी की सतह सैकड़ों फुट ऊंची उठ जाती है। और फिर सागरों से नलों के द्वारा पानी लेकर बिजली की मशीनों में से,

भूमि की सिंचाई व पौने तीन लाख किलोवाट बिजली इस योजना का ध्येय है।

तीसरी उड़ीसा की हीराकुन्ड बांध योजना है जिसकी लागत अब लगभग सत्तर करोड़ रुपए आंकी गई है। इस योजना से कोई १८ लाख भूमि की सिंचाई होगी और सवा लाख किलोवाट बिजली मिलेगी।

फिर तुँगभद्रा बांध योजना को लीजिए। यह योजना हैदराबाद, मैसूर व आंध्र प्रदेश के लिए बनी है। इसकी लागत ५६ करोड़ है, और इससे सात लाख एकड़ की सिंचाई और ६० हजार किलोवाट बिजली प्राप्त होगी।

आपने कोसी योजना के विषय में भी सुना ही होगा। इस योजना की लागत कोई ५० करोड़ रुपए के लगभग आंकी जा रही है। इस योजना से बिहार में बाढ़ का बचाव व सिंचाई होगी। साथ ही नैपाल राज्य में भी सिंचाई हो सकेगी। १६ लाख एकड़ की सिंचाई इस योजना से प्राप्त होगी।

एक है उत्तर प्रदेश की रिहन्द बांध योजना जिसकी लागत कोई ३५ करोड़ रुपए है। इस पर लगभग ढाई लाख किलोवाट की बिजली की मशीनें लग सकेंगी जिनसे उत्तर प्रदेश के साथ बिहार, मध्यप्रदेश को भी बिजली मिलेगी। साथ ही रिहन्द सागर के पानी से आगे चल कर बिहार में सिंचाई होगी। एक बंबई की कोयना योजना है जिसकी लागत ३३ करोड़ है। इस पर भी २ लाख चालीस हजार किलोवाट की बिजली की मशीनें लगेंगी।

इनके अतिरिक्त मैसूर की भद्रा बांध योजना है जिसकी लागत बीस करोड़ रुपए हैं और जिससे सवा दो लाख एकड़ की सिंचाई होगी और १४ हजार किलोवाट बिजली की प्राप्ति होगी।

बंगाल व बिहार की मयूराक्षी योजना की लागत भी १६ करोड़ रुपये से अधिक है। इस योजना से चार हजार किलोवाट बिजली के अतिरिक्त ६ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी।

काश्मीर में है सिंध बैली योजना। और एक नई योजना है कृष्णा नदी पर जिससे हैदराबाद व आंध्र देश में विकास होगा।

हमारी नदी घाटी योजनाओं पर कार्य की प्रगति अच्छी चल रही है। इस बात की आशा होती है कि हमारे देश का भविष्य उज्ज्वल है और अब शीघ्र ही हम विश्व के अन्य अग्रगामी और सम्पन्न देशों से पीछे न रहेंगे।

वायुमण्डल और उसके ऊपर

डा० मुहम्द नसीर खाँ, रीडर, भूगोल विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

भूगोल विषय के अन्तर्गत हम वायुमण्डल, जलमण्डल और थलमण्डल का अध्ययन, मनुष्य की क्रियाओं को दृष्टि में रखकर करते हैं। वायुमण्डल का उनपर विभिन्न रूपों में प्रभाव पड़ता है, अतः इसके विशेष अध्ययन की आवश्यकता है। यह ऋतु-कार्य का एक शक्तिशाली माध्यम है और इसी के द्वारा जलवायु सम्बन्धी अवस्थाएँ निर्मित होती हैं। वायुमण्डल का ज्ञान दिलचस्प एवं उपयोगी दोनों हैं।

निर्माण—वायुमण्डल का निर्माण बहुत सी गैसों के संयोग से होता है। गैसों के मिश्रण में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वायुमण्डल का ९९ प्रतिशत भाग नत्रजन और प्राणवायु नामक दो गैसों से निर्मित होता है। इनके अतिरिक्त अन्य सभी विधायक-तत्त्वों की मात्रा १ प्रतिशत से भी कम है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अपेक्षाकृत घनी गैसें वायुमण्डल के ऊपरी भागों का सृजन करती हैं।

वाष्प और धूल के कण भी निचले वायुमण्डल को बनाने वाले प्रधान तत्व कहे जा सकते हैं। वायुमण्डल में पानी की भाप का आनुपातिक वितरण तापक्रम के साथ घटता बढ़ता रहता है। पानी के भाप की अधिक मात्रा शीतल वायु में वर्तमान रहती है। वाष्प और तापक्रम के इस संबन्ध के कारण, वाष्प का अनुपात वायु में विषुवत रेखा से ध्रुवों की तरफ निचले अक्षांशों में कम होता जाता है। जबकि इसके विपरीत अन्य तत्वों का अनुपात बढ़ता जाता है। प्रस्तुत सारिणी कुछ विशेष अक्षाँशों पर वायुमण्डल के निर्माणकारी विभिन्न तत्वों के वार्षिक सामान्य-अनुपात को प्रदर्शित करती है :—

वायुमण्डल में संयुक्त तत्व %

अक्षांश	नत्रजन	प्राणवायु	आरगन	वाष्प	कार्बन-डाई आक्साइड	हाइड्रोजन
विषुवत रेखा ०	७५·९९	२०·४४	०·९२	२·६३	०·०२	
५०° उ०	७७·३२	२०·८०	०·९४	०·९२	०.०२	०·०१
७०° उ०	७७·८७	२०·९४	०·९४	०·२२	०·०३	

केवल जल की वाष्प के वितरण संबन्धी वैषम्य को छोड़कर वायुमण्डल के धरातल का निर्माण तत्वतः पृथ्वी के सभी भागों पर समान हुआ है।

वायु के विभिन्न निर्माणकारी तत्व नाना प्रकार के कार्य करते हैं।

नत्रजन—नत्रजन गतिशून्य होता है। यद्यपि वह आक्सीजन के साथ साँसों के द्वारा खींची जाती है, फिर भी यह प्रत्यक्ष रूप में जानवरों के किसी उपयोग में नहीं आती। फिर भी जानवर और पौधे दोनों को नत्रजन की आवश्यकता होती है, यद्यपि

उनमें से कुछ वायु से ही इसको प्राप्त कर लेते हैं। इसके पूर्व कि अधिकांश पौधे इस गैस का उपयोग करें, इसका किसी और वस्तु के साथ मिश्रित होना आवश्यक है। तब यह मिश्रित या संयुक्त नत्रजन हो जाता है। ऐसे मिश्रण से जानवर और अधिकांश पौधे आवश्यकता नुसार नत्रजन खींच लेते है।

प्राणवायु—वायु से प्राणवायु का उपयोग सभी जानवरों के द्वारा अनवरत किया जाता है। वायु में सांस लेने वाले जानवर इसको सीधे वायु से ही ग्रहण करते हैं, और पानी में सांस लेने वाले इसको जल में से ग्रहण करते है, क्योंकि उसमें प्राणवायु मिली होती है। इसका उपभोग पौदों के द्वारा भी किया जाता है। विशेष रूप से हरे पौधे इसे अधिक ग्रहण करते हैं। प्राणवायु का उपयोग और रीतियों से भी होता है। वायुमण्डलीय-प्राणवायु का निरंतर एवं द्रुतगति से उपयोग (व्यय) होने पर भी इसकी मात्रा घटती हुई नहीं प्रतीत होती। इसलिए हमें अनुमान करना चाहिए कि जैसे ही इसका व्यय होता है वैसे ही यह वायु के चारों तरफ भेज दी जाती है। वायु में प्राण-वायु के आने के अनेक साधन हैं। पौधे नत्रजन और प्राणवायु को विभक्त कर प्राणवायु को अलग कर देते हैं। यह सम्भवतः प्राणवायु के प्राप्त होने का सबसे बड़ा साधन है। ज्वालामुखी के क्वेटरों से भी प्राण वायु वायमंडल में प्रवेश करती है। यह कार्य एक प्रकार के परिवर्तन से होता है जो कुछ विशेष प्रकार की चट्टानों में होता है। सम्भवतः इसके कुछ और भी साधन हो सकते हैं।

कार्बन-डाइ ऑक्साइड—वायुमण्डल में उपस्थित कार्बन-डाई आक्साइड़ (CO_2) की जहां तक मात्रा का प्रश्न है अत्यन्त अल्प रहता है, परन्तु यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यह लकड़ी, कोयले, गैस आदि के जलाने से लगातार पैदा होता चला जा रहा है। काबनिक (आरगैनिक) वस्तुओं के विनाश से भी इसका निर्माण होता है। जानवरों के श्वांस लेने से भी यह वायु वायुमण्डल में पहुँचती है। कभी-कभी बहुत बड़ी मात्रा में ज्वालामुखी के मुख से भी इसका प्रवेश वायुमण्डल में होता है। वायु से कार्बन-डाई आक्साइड का व्यय मुख्यतः दो साधनों से होता है। (i) हरे-भरे पौधों द्वारा, जिनका यह प्रधान भोजन है (ii) खनिज पदार्थों के मिश्रण के द्वारा। वायु में से यह गैस पौधों के द्वारा ग्रहण की जाती है और इसके निर्माणकारी तत्व या उनमें से कुछ पौधे के लकड़ी वाले अंश बन जाते हैं। रूपान्तर की इस प्रक्रिया में कुछ प्राणवायु वायु में स्वयं आ जाती है। तब पौधे में निहित कार्बन का विनाश अग्नि द्वारा या उसके नष्ट हो जाने से होता है। इस प्रकार पौधों के जनने से और उसके नष्ट होने से बना हुआ कार्बन वायु में मि जाता है, और फिर पौधों के प्रयोग में आता है। वर्तमान समय में कार्बन-डाइ आक्साइड का निर्माण और व्यय संतुलित रीति से हो रहा है, और इसके परिमाण में कोई परिवर्तन नहीं देखा गया है।

यद्यपि कार्बन-डाइ ऑक्साइड वायुमण्डल का नितान्त सूक्ष्म निर्माण-कारी तत्व है फिर भी अन्य तत्वों की अपेक्षा पौधों को खाद्य पहुँचाने में इसका कार्य महत्त्वपूर्ण होता है। यह पृथ्वी के कुछ भागों में व्याप्त ताप को पुनः आकाश में वापस लेने की शक्ति रखता है। इसलिए यह पृथ्वी के ताप को कायम रखने के लिए कम्बल का काम करता है।

यदि यह थोड़ा घना और होता तो यह पृथ्वी को और भी गर्म होने में साधक का काम करता।

पानी की भाप—वायुमण्डल में पानी की भाप की मात्रा परिवर्तित होती रहती है। यह अनवरत, वायुमण्डल को भोजन दे रहा है, और घनीभूत होने पर वर्षा, बर्फ, ओस और कुहरे के रूप में दृष्टिगोचर होता है। उसके ये रूप पुनः परिवर्तित होते हैं और पुनः इन्हीं रूपों को धारण करते हैं। कार्बन-डाई आक्साइड की भांति यह भी पृथ्वी को गर्म रखने के लिए कम्बल का काम करता है।

धूल—धूल के अन्तर्गत वायुमण्डल में समाविष्ट सभी प्रकार की ठोस वस्तुओं के कण आ जाते हैं। वायु-मण्डल में ये महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। ये सूर्य

के प्रकाश को वितरित करने में सहायता करते है, और इस भांति भली प्रकार से सम्पूर्ण वायुमण्डल को प्रकाशित करते हैं। यदि धूल के कण वायुमण्डल में न होते तो सूर्य और भी उद्दंडता के साथ चमकता।

वायुमण्डल की पर्तें—वायुमण्डल का अध्ययन तीन भागों में होता है। सबसे निचले भाग को ट्रोपॉसफियर, उससे ऊपरी भाग को स्ट्रेटॉसफियर और सबसे ऊपरी भाग को आयनॉसफियर कहते हैं। विषुवत रेखा पर ट्रोपॉसफियर १० मील तक विस्तृत है, मध्यवर्ती अक्षांशों पर इनका विस्तार उससे कम है और ध्रुवों पर यह केवल ४ से ६ मील तक की ऊँचाई तक विस्तृत है। स्ट्रेटॉसफियर जो ट्रोपॉसफियर के ऊपर है ४० से ६० मील तक की ऊंचाई तक विस्तृत है तथा इसके भी ऊपर आयनासफियर का विस्तार २५० मील से भी अधिक ऊंचाई तक पहुँचता है।

प्रस्तुत सारिणी कुछ विशेष ऊचाइयों तक प्राप्त होने वाले वायुमण्डल में निहित तत्वों के वितरण को प्रदर्शित करती है :

गैसों का वितरण—

(हम्फरेज के अनुसार)

उँचाई किलो०	नत्रजन	प्राणवायु	आरगन	पानी की भाप	कार्बन-डाई आक्साइड	हाईड्रोजन	उपस्थिति का योग
१००	६० किलोमीटर से घटना शुरू होता है ८१.२%	...	.....	.....	...	१०० किलोमीटर से बढ़ना शुरू होता है। ९५.५%	.....
९०		.....	.....	०.१०	...		.....
८०		...	.....	०.१७	...		.....
७०		...	.....	०.२०	.....		.....
६०		...	.....	०.१५	.....		.....
५०		...	.....	०.१०	.....		.....
४०		.....	.....	.....	०.००	.....	.....
३०	८४.२६	१५.१८	०.३५	०.०३	०.०१	०.१६	८.६८
२०	८१.२४	१८.१०	०.५६	०.०२	०.०१	० ०४	४०.६६
१०	७८.०२	२०.६६	०.६४	०.०१	०.०३	०.०१	१६८
५	७७.८६	२० ६५	०.६४	०.१८	०.०३	०.०१	४०५
०	७७.१४	२०.६६	०.६३	१.२०	०.०३	०.०१	७६०

ट्रोपॉसफियर—ट्रोपॉसफियर गतिशील वायु का वह प्रदेश है, जहां पर शीतल और शुष्क हवाएँ गर्म एवं वाष्प युक्त हवाओं के संयोग से तूफान और अस्थायी मौसम पैदा करती हैं। जैसे जैसे हम ऊपर चढ़ते हैं ट्रोपॉसफियर प्रदेश की वायु अपेक्षाकृत ठंडी होती जाती है। यह पतली भी होती है, जिसके परिणाम स्वरूप २१,००० फुट या इसके समान उँचाइयों पर प्राणवायु के अभाव में मोमबत्ती नहीं जल सकती।

ऊपरी भाग नीचे के भागों की अपेक्षा अधिक शीतल है। वायुमंडल के निचले प्रदेश में तापक्रम ३०० फुट की उँचाई पर एक फारेनहाइट घट जाता है। वायुमण्डल में इसी ऊँचाई तक तापक्रम का निरीक्षण किया जा सकता है।

जब वायु ऊपर उठती है, तो यह फैलती है क्योंकि ऊपर इसको संकुचित करने के लिए वायु का भार बहुत कम होता है। कोई गैस जब फैलती है तो ठंडी होती है, और संकुचित होने पर गर्म होती है। ऊपरी भाग नीचे के भाग की अपेक्षा ठंडे होते हैं, क्योंकि वहाँ वायु पतली होती है। पतली वायु (अ) सूर्य की सीधी किरणों से बहुत कम ताप ग्रहण करती है, क्योंकि वहाँ पर कार्बन-डाई—

ऑक्साइड का अभाव होता है, और उसमें पानी की भाप और धूल के कणों का भी अभाव रहता है (ब) यहाँ की वायु पतली होने के कारण पृथ्वी के धरातल से विकीर्ण होने वाले ताप को अपने अन्दर अधिक देर तक नहीं रख सकती।

इस तथ्य का अनुसंधान कि स्ट्रॉटॉसफियर का तापक्रम ऊँचाई के अनुसार परिवर्तित होता है, उल्काओं के ज्ञान के विषय में एक महत्त्वपूर्ण एवं विश्वसनीय आधार का निर्माण करता है। इसकी व्यवस्था इस प्रकार है।

३०,००० फुट की उँचाई से आकाश बैंगनी रंग का दिखलाई पड़ने लगता है क्योंकि ऊपर की पतली हवा सूर्य के प्रकाश को चारों ओर उतना नहीं फैला पाती, जितनी नीचे की घनी वायु फैला देती है। प्रकाश के इसी वितरण के ही कारण नीचे का आकाश नीले रंग का दृष्टिगोचर होता है।

स्ट्रेटॉसफियर ट्रोपॉसफियर के ऊपर स्ट्रेटॉसफियर है, जहाँ पर वायु साफ है, उसमें धूल के कण पानी और बादल कुछ नहीं है। वहाँ मौसम नहीं होता। ६५%के लगभल वायुमण्डल भार के अनुसार १३.७१ मील की उँचाई के नीचे विस्तृत रहता है, जहाँ पर एक्सप्लोर द्वितीय की यात्रा द्वारा पहुँचा जा चुका है, परन्तु शेष ५% की पतली तह कई मीलों तक ऊपर की ओर विस्तृत है।

८०,००० फीट की उँचाई को केन्द्र मानते हुए १५ मील के चतुर्दिक एक ओजोन की घनी पेटी है, जो हम सब को प्राणदान देने वाली है, क्योंकि यह हमारी रक्षा सूर्य से आने वाली विषैली अल्ट्रावॉयलेट किरणों से करती हैं। विभिन्न लम्बाइयों वाली तरंगों की अनुपयोगी विनाशकारी किरणें जो हम पर सूर्य के प्रकाश के साथ गिरती हैं—पृथ्वी पर के सम्पूर्ण जीवों को नष्ट कर देतीं यदि वे ओजोन के द्वारा ग्रहण न कर ली जातीं।

स्ट्रेटॉसफियर में ठंडक पड़ती है, परन्तु ठंडक उंचाइयों के साथ बढ़ती नहीं। स्ट्रेटॉसफियर का तापक्रम उत्तर से दक्षिण की ओर तेजी से घटता जाता है। इसका सबसे ठंडा भाग जिसका तापक्रम ११२° फारेनहाइट होता है—विषुवत रेखा के ऊपर पाया जाता है। २५ से ३० मील की उंचाई पर तापक्रम फिर बढ़ना शुरू होता है। और इसका तापक्रम १७०° फारेनहाइट होता है। इतना अधिक ताप पृथ्वी के धरातल पर सबसे गर्म रेगिस्तानों में भी नहीं पाया जाता। इसका कारण सम्भवतः वायु और अल्ट्रावॉयलेट की ओजोन पर्त से ताप का शोषण, सूर्य की इनफ्रारेड (लालोत्तर) किरणें और पृथ्वी के धरातल से लौटाई गई इनफ्रारेड (लालोत्तर) किरणों का प्रभाव हो सकता है।

पृथ्वी से ४५ मील की उँचाई पर चारों तरफ पूर्ण शान्ति फैली रहती है क्योंकि वहाँ वायु के परमाणु इतनी दूर-दूर होते हैं कि आवाज की तरंगे सहज में नहीं भेजी जा सकती।

आयनॉसफियर—से पृथ्वी से ४०-६० मील की उंचाई तक स्ट्रैटॉसफिर एनॉस-फियर में परिवर्तित हो जाता है। इसमें एक रेडियो मेरर' होता है, जो लम्बी विद्युत तरंगों को वाप स कर देता है। यह क्रिया ठीक उसी प्रकार होती है जैसे शीशे के ऊपर से प्रकाश लौट जाता है। यदि आयनॉसफियर न होता तो ये विद्युत तरंगे ऊपर ही चली जातीं और अन्ततोगत्वा ऊपर ही विलीन हो जातीं। वे पुनः पृथ्वी पर लौटकरीं न आत।

आयनॉसफियर की पर्तें—आयनासफियर में तीन प्रधान विम्ब ग्रहणकरने वाली पर्तें होती हैं, जो २०५ मील की ऊँचाई तक विस्तृत हैं। नीचे की दो पर्तें सूर्य डूबने के बाद रात्रि में ओझल हो जाती हैं और इसकी किरणें इसके अणुओं को प्रकाशित नहीं करतीं। परन्तु ऊपरी पर्त दिन और रात दोनों समय वर्तमान रहती हैं। यह 'रेडियो की तरंगों' को कुछ विशेष ऋतुओं और अक्षांशों में दूसरी पर्तों की अपेक्षा अच्छी तरह प्रतिविम्बित करती हैं। यह कार्य यहां दिन के अन्य समयों की अपेक्षा ठीक दोपहर के बाद स्वतंत्रता पूर्वक होता है।

मनुष्य ने राकेट का निर्माण कर लिया है उसके पास वी—२ के हथियार हैं जिसका प्रयोग जर्मन निवासियों ने किया था और वह आयनॉसफियर के निचले स्तर तक पहुँच गया है जो उन स्थानों से बहुत ऊँचे हैं, जहाँ ओजोन गैस की पर्तें विस्तृत है और तारे टूटते रहते हैं। आयनासफियर के ऊपरी धरातलों पर वायु का प्रसार ऊपर की ओर विस्तृत है और इसका ठीक धरातल कहाँ पर है—इसे कोई नहीं जानता। यह समुद्र के पानी के धरातल के समान कोई सामान्य और परिमापित धरातल नहीं लेता।—जैसा कि यहां की वायु लगातार अधिक पतली होती जाती है और अन्ततोगत्वा इसके कुछ परमाणु तो सम्भवतः संयुक्त होकर भी आकारशून्य हो जाते हैं और दिखलाई नहीं पड़ते।

उल्का—इस बाह्य भाग के नीचे वायु के सागर में नाना प्रकार की विचित्र वर्षा होती है। इसका प्रभाव तो नीचे से देखते हैं।

इस वर्षा का कुछ भाग टूटते हुए ताराओं द्वारा निर्मित होता है। करोड़ों की संख्या में छोटे-छोटे कण जो प्रायः बालू के दानों से अधिक बड़े नहीं होते यहाँ के रिक्त स्थान में बिखरे होते हैं—इसी वर्षा के एक अंग हैं। इनमें से अधिक उलका तारे होते हैं जो तेजी से नीचे जाना चाहते हैं, रास्ते में वायु की रगड़ और ताप इन्हें इतना गर्म कर देती है कि वे प्रकाशित होते हैं और शीघ्र ही जलकर राख हो जाते हैं। वे प्रायः रात में चकाचौंध करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। वे प्रायः टूटते तारों के नाम से पुकारे जाते हैं परन्तु सत्य तो यह है कि ये तारे होते ही नहीं।

बहुत सी उल्काएँ पृथ्वी के धरातल से ४५ मील की ऊचाई तक अयनॉफियर में प्रवेश करती हैं और तब वे पूर्णतया जल जाती हैं। इस ऊंचाई पर पड़ने वाले वायुयान बहुत कुछ खतरे से घिरे होते हैं जो धक्के से पैदा होने वाला होता है क्योंकि नीचे की ओर आता हुआ एक छोटा से

छोटा उल्का भी जिसकी चाल उस वायुयान से कई गुना अधिक होती है, गेंद से भिड़ कर बहुत कुछ हानि कर सकता है।

उल्काओं की जली हुई राख नाक्टीलूमेंट बादलों का निर्माण करती है-ऐसा विश्वास किया जाता है। ये बादल ५० मील की ऊंचाई पर कहीं कहीं पाए जाते हैं। इनके नाम का अर्थ होता है, रात में चमकने वाले" क्योंकि ये इतनी ऊँचाई पर होते हैं कि रात में सूर्य के उस प्रकाश से प्रकाशित होते हैं जो उन्हें पृथ्वी के दूसरी तरफ से मिलता है।

अरोरा-वायु के सागर में होने वाली दूसरे प्रकार की वर्षा सूर्य से आने वाले अणुओं के बौछार से होती है। यह वर्षा लगातार नहीं होती परन्तु अचानक पानी छिड़कने वाली नली की धार के समान तेजी से फट पड़ती है। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति इन अणुओं को अपनी ओर खीचती है जिसके परिणाम स्वरूप ये उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव प्रदेश के आस पास गिरते हैं। ये वायु में जैसे ही नीचे आते हैं ये वायु के परमाणुओं से संघर्ष करते हैं और प्रकाशित होते हैं। यह वही प्रकाश है जिसे अरोरा बारेलिस अथवा 'उत्तरी प्रकाश' कहते हैं, बिल्कुल इसी प्रकार का प्रकाश जिसे अरोरा आस्ट्रेलिस अथवा 'दक्षिणी प्रकाश' कहते हैं प्रायः पृथ्वी से ६०—७० मील की उँचाई पर दिखाई पड़ता है। कुछ अरोरा की रोशनी और देखी जाती है जो गुणनानुसार ६०० मील की उँचाई की प्रतीत होती है, इसी से हमें अनुमान होता है कि उस उँचाई पर भी कुछ वायु है।

कॉसमिक किरणें (विश्वरश्मि)—तीसरी और सबसे रहस्यपूर्ण वर्षा-अनवरत पड़ने वाली कॉसमिक किरणों की है, इनका यह नाम इसीलिए पड़ा कि ये इसी विश्व से उद्भूत प्रतीत होती हैं। ये किरणें सूर्य से बहुत दूर सम्भवतः सुदूर के तारों या उनसे भी आगे से अत्यंत द्रुत गति से आने वाले परमाणु हैं। पृथ्वी पर आते हुए ये रास्ते भर चमकते रहते हैं। यहाँ तक कि गहरी खानों में प्रवेश करते हुए भी इनका प्रकाश बन्द नहीं होता।

विश्वरश्मियाँ (कॉसमिक किरणें) पर अणु-शक्ति के रहस्य को इतने बड़े पैमाने पर प्रदर्शित करती हैं, जो अणुबम की शक्ति के द्वारा भी प्रदर्शित नहीं की जा सकती, यद्यपि यह शक्ति उतनी मात्रा भी अधिकृत नहीं की जा सकती जितनी कि अणु बम में की जाती है।

सम्भवतः, विश्वरश्मियें (कॉसमिक किरणें) सूदूर के तारों के मध्य से उत्पन्न होती हैं। विश्वरश्मियाँ (कॉसमिक किरणें) हमारे शरीर में एक मिनट में १० से २० बार तक तरंगित हो जाती हैं, परन्तु हम उनका अनुभव नहीं करते। उनका अनुभवजन्य प्रभाव नहीं होता, फिर भी इसके विश्वास करने के कुछ कारण हैं क्योंकि वे फल की मक्खियों के अंडों में परिवर्तन प्रस्तुत करते हैं, जिससे आने वाली खानदान की परम्परा नाना प्रकार की मक्खियों से पैदा हो जाती हैं।

पृथ्वी से बहुत अधिक उँचाई पर कासमिक किरणें इस प्रकार के राकेट की उड़ान में अवरोध उपस्थित करने के लिए शक्तिशाली सिद्ध हो सकती हैं, जो वायु-मण्डल के बाहर वाले प्रदेश में भी यात्रा कर सकते हैं। ये किरणें राकेट की धातु एवं उसके रसायनिक निर्माण को भी क्रियाशील होने से विमुखकर सकती हैं।

ऊपरी वायुमण्डल का आधुनिक ज्ञान—आज से कुछ ही दिन पूर्व लोगों को 'वायु के सागर' के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त न था। लोग लोग पृथ्वी के कुछ मील ऊपर तक के वायुमण्डल का हाल जानते थे जहाँ मौसम और तूफान बनते बिगड़ते रहते हैं। यह तो केवल १२ साल पहले की बात है जब वायुमण्डल में अधिक से अधिक ऊँचे जाने के अनुसंधान प्रारम्भ हुए और कैप्टेन एलबर्ट डब्लू० स्टीवेन्स एवं आरविल ए० ऐंडरसन ने एक्सप्लोरट द्वितीय की उड़ान में स्ट्राटसफियर प्रदेश की महत्त्वपूर्ण यात्रा की और १३,७१ मील की उँचाई तक पहुँच कर एक नया रिकार्ड स्थापित किया।

भारत की खनिज सम्पत्ति

डा० सत्य प्रकाश, डी० एस-सी०

साधारणतया खान से निकले पदार्थों को खनिज (Minerals) कहा जाता है। अति प्राचीन काल से इस भूमि में से लोग तरह-तरह की वस्तुयें खोदकर निकालते रहे हैं, जैसे सोना, चाँदी नमक, हीरा आदि। बहुत से पदार्थ ऐसे हैं जो भूमि में शुद्ध रूप में नहीं होते, पर रासायनिक विधियों से इनको शुद्धावस्था में पृथक् किया जा सकता है, जैसे ताँवा जमीन में नहीं होता, पर ताँबे के कुछ ऐसे खनिज होते हैं, जो देखने में ताँबे से बिलकुल भिन्न हैं, पर उनसे ताँबा निकाला जा सकता है। इसी प्रकार लोहे और ऐल्यूमीनियम वाली मिट्टियाँ हैं, जिनसे ये धातुयें पृथक् की जाती हैं।

पहाड़ी खानों में तरह-तरह के पत्थर, संगमरमर, संगमूसा, चूने का पत्थर, खड़िया आदि पदार्थ मिलते हैं। रसायनज्ञों ने इन पदार्थों से बहुत से रासायनिक पदार्थ बनाये हैं। हम यहाँ पर कुछ मुख्य खनिजों का उल्लेख करेंगे।

खनिजों के नाम—अंग्रेजी में खनिजों के नाम उनके रङ्ग, गुण, या किसी खनिजवेत्ता के नाम पर रक्खे गये हैं, कभी-कभी उस स्थान के नाम पर इन खनिजों का नाम पड़ा है, जहाँ ये पहले पहल पाये गये। अधिकांश खनिजों के नाम के आगे—आइट (–Ite) प्रत्यय लगा हुआ है, जैसे बौक्साइट, मेगनेटाइट, क्यूप्राइट आदि।

धातु कर्म वाले खनिज—धातु कर्म उस क्रिया को कहते हैं जिसके द्वारा खनिजों से धातुयें तैयार की जाती हैं। बहुत-सी खनिजों का महत्व इसी बात में है कि उनसे धातुयें तैयार की जाती हैं। ऐसे खनिजों को अयस्क (Ore) कहते हैं। जैसेः—

हेमेटाइट (Haematite), या मेग्नेटाइट (Magnetite) जिससे लोहा निकाला जाता है।

बौक्साइट (Bauxite) जिससे ऐल्यूमीनियम निकाला जाता है।

केसिटेराइट (Cassiterite) जिससे वंग या टिन निकाला जाता है।

गेलीना (Galena) जिससे सीसा (लेड) तैयार किया जाता है।

सिनेबार (Cinnebar) जिससे पारा निकलता है।

मेलेकाइट (Malachite) जिससे ताँबा निकलता है।

जिंकाइट (Zinci e) जिससे यशद (जस्ता) निकलता है।

आर्जेण्टाइट (Argentite) जिससे चाँदी निकलती है।

अन्य उपयोगों वाले खनिज—कुछ खनिजों का उपयोग अन्य कामों में होता है—

नमक—भोजन के काम का।

जिप्सम (Gypsum) या सिलखड़ी—इससे मूर्तियाँ बनती हैं।

अभ्रक (Mica) जिसकी पत्नियों के बहुत उपयोग हैं।

केओलिन (Kaolin —इसकी मिट्टी चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के काम आती है।

चूने का पत्थर—इससे चूना, सीमेंट आदि बनाते हैं।

पेट्रोलियम—इससे मिट्टी का तेल, पेट्रोल, आदि बनाते हैं।

पत्थर का कोयला—इसका उपयोग ईंधन में है। इससे अन्य रासायनिक पदार्थ भी तैयार किये जाते हैं।

भारतवर्ष के खनिज—भारतवर्ष में लगभग सभी प्रकार के उपयोगी खनिज पाये जाते हैं। इस देश की खनिज सम्पत्ति को चार विभागों में बाँट सकते हैं—

१. ऐसे खनिज जो देश में इतने काफी पाये जाते हैं, जितने और कहीं नहीं और जो विदेशों में भेजे जाते रहे हैं—जैसे लोहे के अयस्क, इलमेनाइट या टाइटेनियम खनिज, अभ्रक, आदि।

२. ऐसे खनिक जो देश में अपने काम भर के लिए ही काफी नहीं है, प्रत्युत बाहर भी जाते हैं—जैसे मैंगनीज़ खनिज, मेग्नेसाइट, जिप्सम, ग्रेनाइट, मोनेजाइट, बौक्साइट, कोरण्डम, सीमेण्ट बनाने वाली मिट्टियाँ।

३. ऐसे खनिज जो देश की अपनी आवश्यकता के लिए काफी हैं. जैसे कोयला, सोना और क्रोम-अयस्क, भवन निर्माण के पत्थर, स्लेट, पेंट आदि। रंगों के काम के खनिज, काँच बनाने की बालू, सुहागा, रत्न आदि।

४. ऐसे खनिज जिनके लिए देश को विदेशों पर निर्भर रहना है, जैसे ताँबे, चाँदी, सीसा निकेल के अयस्क, गन्धक, पेट्रोलियम, ग्रेफाइट, प्लेटिनम, पारा, पोटा आदि।

नीचे दिये गये आँकड़ों से स्पष्ट होगा कि सन् १९४८ में इस देश में कितने मूल्य के खनिज का व्यवसाय हुआ—

खनिज	रुपया
एस्बेस्टस	२७५०
एपेटाइट	१५,४१०
बेराइटीज	३,५१,१०५
बौक्साइट	१,६१,२५५
भवन निर्माण सामग्री	२,९६,८४,०८७
कैलसाइट	३,३३०
क्रोमाइट	६,५१,००३
चिकनी मिट्टी	१५,२२,२७५
कोयला	४५,२०,५६,४७४
ताँबा	५,४१,८३,८=०
कोरंडम	३०,७५०
हीरा	२,०८,६८७
फेल्सपार	८७७३
फुलर मिट्टी	१,६७,४८६
सोना	५,४१,८३,८३०
ग्रेफाइट	२,६४,३४९
जिप्सम	८,२६,०९५
इलमेनाइट	२९,०९,४५१
लोहा	४१,८३,५२,०००
क्येनाइट	५,६४,४९०
सीसा	४१,८००
मेग्नेसाइट	६,६१,०१५
मेंगनीज अयस्क	१,२४,३७,६५२
अभ्रक	५,७५,४५,७१०
ओक्कर	२,३२,२०१
पेट्रोलियम	१,८,९९,१२६
रुटाइल	४९,७९३
नमक	१,६१,६२,१००
चाँदी	६०,२९९

लोहा—भारतवर्ष में सिंहभूमि और उड़ीसा में लोहे की बड़ी-बड़ी खानें हैं। सिंहभूमि प्रान्त में टाटा का प्रसिद्ध लोहे का कारखाना है। इन खानों से प्राप्त अयस्क में ६०-६५ प्रतिशत लोहा होता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस प्रान्त में ८ अरब टन लोहे का अयस्क है जो कई शताब्दियों तक के लिये काफ़ी है।

मैसूर में मेग्नेटाइट अयस्क भी लोहा देता है। यहाँ भद्रावती लोहे का कारखाना है। मद्रास में सलेम में २० करोड़ टन लोहे का खनिज है। द्रुग प्रान्त और अन्य स्थानों में भी लोहे की खानें हैं। सन् १९४७ में हमारे देश में बिहार, मध्य प्रदेश, मैसूर और उड़ीसा में २,४,९८,४५९ टन लोहे का अयस्क (कच्ची धात) निकाला गाया।

कोयला—हमारे देश में बोकरो, गिरिडीह रानीगंज, झरिया आदि स्थानों में कोयले की अच्छी खानें हैं। इन खानों से १६४७ में ३०,१४४,५०५, टन अर्थात् ३ करोड़ टन से कुछ अधिक कोयला निकाला गया। यह कोयला बहुधा रेल के इंजिनों में और कारखानों में भट्टियों को जलाने में काम आता है। कोयला कई जातियों का होता है, जैसे (१) लिग्नाइट lignite) जिसे जलाने से धुआँ अधिक निकलता है और जो भूरे रङ्ग का होता है और जिसमें ६७% कार्बन होता है। (२) पीट (peat) इसमें सजीव पदार्थ अधिक होते हैं, और ६०% कार्बन होता है। वनस्पतियाँ दब कर जब जमीन में कोयला बनती हैं, तो सब से पहले पीट बनता है। (३) विटुमिनी कोयला (Bituminous coal) जिसमें ८०% कार्बन होता है, (४) एन्थ्रेसाइट (anthracite) जिसमें ६०% कार्बन होता है। यह सब से अधिक कठोर कोयला है।

झरिया में हमारे देश के समस्त कोयले का ४२% कोयला निकाला जाता है, और रानी गंज में ३२%।

मैंगनीज—इस पदार्थ की जितनी खोदाई हमारे देश में होती है, उतनी संसार में और कहीं नहीं। मैंगनीज का उपयोग लोहे के कारखानों में अधिक है। लोहे में मैंगनीज मिला कर सुन्दर मिश्र धातु (alloy) तैयार करते हैं। हमारे देश में बहुधा लोहे और मैंगनीज के अयस्क मिले-मिले पाये जाते हैं। इन मैंगेनिफेरस लोह अयस्कों में ५-३० प्रतिशत मैंगनीज और ३०-६५ प्रतिशत लोहा होता है।

हमारे देश में शुद्ध पायरोलूसाइट (pyrolusite) को मैंगनीज का आक्सीजन से मिश्रित एक यौगिक है, मद्रास आदि प्रान्तों में पाया जाता है। छिंदवाड़ा में ब्रौनाइट (braunite) नाम का मैंगनीज अयस्क मिलता है। नागपुर, बालाघाट, सिंह भूमि आदि स्थानों में भी मैंगनीज के अयस्क हैं। सन् १६४७ में भारतवर्ष ४५१,०३४ टन मैंगनीज अयस्क की खोदाई हुई थी।

यह याद रक्खें कि कुएँ में छोड़ी जाने वाली लाल दवाई (पोटैसियम परमैंगनेट) मैंगनीज अयस्कों से ही तैयार की जाती है। इस अयस्क से जो मैंगनीज सलफेट बनता है उसका उपयोग रंगाई के काम के पेण्ट बनाने में है।

सोना—हमारे देश का अधिकांश सोना मैसूर की खानों से निकलता है 'सन् १६४८ में ५॥ करोड़ के लगभग रुपयों के का सोना (लगभग ३॥ लाख औन्स सोना) इन खानों से निकला। मैसूर के अतिरिक्त थोड़ा सा सोना सिंहभूमि, अनन्तपुर, धारवार, नीलगिरि आदि स्थानों से भी मिला। मैसूर की कोलर क्षेत्र की ५ खानें जगत्-प्रसिद्ध हैं। ये पाँच खानें मैसूर खान, कैस्पियनरीफ खान, अर-गाँव खान, नन्दीद्रुगखान और बालाघाट खान कहलाती हैं।

ताँबा—ताँबा हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से बनता चला आ रहा है। दक्षिण भारत, राजपूताने और पर्वती प्रदेशों (जैसे कूलू, गढ़वाल, नैपाल) में ताँबा बनाया जाता था, सिंहभूमि प्रान्त में ८० मील लम्बी ताँबे के अयस्क की एक श्रेणी है। धारवार में भी थोड़ा सा ताँबा होता है। ताँबे के बर्तन बनाये जाते हैं। ताँबा अन्य धातुओं में मिलाकर मिश्र धातुयें जैसे काँसा, पीतल, जर्मन सिलवर आदि बनायी जाती हैं। ताँबे के पैसे भी बनते हैं।

चाँदी—हमारे देश में चाँदी की खानें बहुत ही कम हैं। अधिकांश चाँदी और सीसा बर्मा से आती रही है।

ऐल्यूमीनियम—इस धातु का प्रसिद्ध खनिज बौक्साइट कटनी (मध्य प्रदेश) बेलगाँव, कपड्वंज (खैरा के निकट गुजरात) और उड़ीसा की कुछ रियासतों में पाया जाता है। अब तक हमारे देश का बौक्साइट विदेशों में जाता रहा, और वहीं इसमें ये धातु निकाली जाती रही हैं। बौक्साइट से ऐल्यूमीनियम तभी निकाला जा सकता है, जब देश में सस्ती बिजली का प्रबन्ध हो।

अभ्रक—इसका व्यापार गत चालीस वर्षों में अधिक बढ़ गया है क्योंकि इसका उपयोग वायुयानों

और बिजली के कामों में अधिक होने लगा। हमारे देश में इसकी मुख्य खानें हजारी बाग (बिहार) और नेलोर (मद्रास) में हैं। ट्रावनकोर, मैसूर और अजमेर में भी अभ्रक पाया जाता है।

टाइटेनियम—इसके दो अयस्क इलमेनाइट और रूटाइल ट्रावनकोर की काली बालू में पाये जाते हैं। प्रतिवर्ष २ लाख टन के लगभग इन अयस्कों का उपयोग पेंट के व्यापार में होता है।

मोनेजाइट (monazite)—हमारे देश में रेडियम के समान मूल्यवान धातु तो नहीं मिलती, पर ट्रावनकोर की मोनेजाइट बालू में थोरियम पाया जाता है, जिसमें भी रेडियोएक्टिव गुण है। यह पहले तो विदेश भेजी जाती थी, पर जब से एटम बम का आविष्कार हुआ है, इस बालू पर सरकारी प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। इसे अब देश की मूल्यवान सम्पत्ति माना जाता है।

जन्मकुण्डली या आकाश घड़ी—[पृष्ठ १२७ का शेषांश]

राशि में ढाई वर्ष रहता है। गुणनफल या उसमें ३०, ६० या ९० जोड़ने पर योग स्थूल आयु देगा।

उदाहरण—वर्तमान राशि ७–जन्म शनि २=५; ५×२½=१२½ वर्ष या १२½+३०=४२½ या २½ +६०=६२½ या १२½+९०=१०२½ वर्ष।

अधिक शुद्धता और निश्चय के लिए वृहस्पति की वर्तमान राशि से उसकी जन्म राशि पहले की भाँति घटाओ। यह अन्तर या उसमें १२ के किसी अपवर्त्य (multiple) २४, ३६, ४८, ६०, ७२, ८४, आदि का योग जातक की ठीक आयु देगा।

उदाहरण—वर्तमान गुरु २+१२—जन्म गुरु ९=५; ५, १७, २९, ४१, ५३, ६५, ७७, ८९, वर्ष

अब निश्चय के लिए देखो कि शनि और वृहस्पति द्वारा दी हुई संभावित आयु संख्याओं में कौन परस्पर मेल खाती हैं। मेल खाई वृहस्पति द्वारा दी संख्या ठीक आयु देगी। शनि और वृहस्पति द्वारा निश्चित की गई आयु ४१ वर्ष वर्तमान संवत से प्राप्त वर्तमान आयु घटाने पर जन्म संवत प्राप्त होगा।

मुर्गा बधिया करना—[पृष्ठ १२४ का शेषांश]

की मलोत्सर्जन इन्द्रिय में कॉल्सियम जमा हुआ पाया जाता है।

मुर्गे में बधिया होने पर कलँगी सिकुड़ जाती है। बाँग देना बन्द हो जाता है, लड़ने की वृत्ति कम हो जाती है। पुच्छ-देशीय पंख आंशिक रूप में गिर भी जाते है।

ये लक्षण औषधि प्रयोग से दस दिन बाद दिखाई पड़ने लगते हैं और छः सप्ताह तक रहते हैं। इसके बाद ये धीरे-धीरे समाप्त होने लगते है।

बधिया करने का समय—मास खाने के लिए मारने के सात सप्ताह पहले मुर्गे का बधिया करना चाहिए।

बधिया करने के आर्थिक लाभ—१५ मिली ग्राम स्टिलकैप की टिकिया दो आने को आती है। लगभग नौ महीने की आयु का बधिया किया हुआ मुर्गा अन्य मुर्गों की अपेक्षा आधा सेर अधिक वजनी होता है। इतने वजन के मास का मूल्य बारह आने होता है। इस प्रकार दस आने का लाभ हुआ।

मुर्गा बधिया करना

श्री० ओ० पी० अग्रवाल बी० एस०-सी० (एग्र०)
पशुपालन विभाग, कृषि महाविद्यालय, नैनी, इलाहाबाद,

मुर्गे को बधिया करने या नपुँसक बनाने को केपन बनाना या वन्ध्याकरण कहा जाता है। बधिया किया हुआ मुर्गा कैपन कहा जाता है। उसे जनन-क्रिया शून्य कर दिया जाता है। बधिया करने की शल्य क्रिया में कुशलता और पर्याप्त अभ्यास की आवश्यकता होती है। बहुत कुशल हाथों से शल्य क्रिया होने पर भी २ से ५ फीसदी तक की मृत्यु हो सकती है या उन में नपुंसकता का गुण विकसित नहीं हो पाता। बहुत मुर्गों में वायु की गाँठ सी पैदा हो जाती है जो शल्य क्रिया के मूल स्थान पर त्वचा के के नीचे वायु के प्रवेश हो जाने से बन जाती है। इन वायु गाँठों को तत्काल शल्यक्रिया से दूर करने की आवश्यकता होती है।

रासायनिक वन्ध्याकरण

मुर्गे का रासायनिक विधि से बधिया करना सुगम है। उसे एक किसान भी सम्पन्न कर सकता है। रासायनिक बन्ध्याकरण की दो सर्वोत्तम प्रसिद्ध औषधियाँ "हेकसूस्ट्रोल" और "स्टिलबूस्ट्रोल" हैं। इनमें से प्रत्येक में लिंग हारमोन 'इस्ट्रिन' होता है।

स्टिलबूस्ट्रोल का यथार्थ में वैज्ञानिक भय डाइइथिल स्टिलबूस्ट्रोल है और यह तेल में घुले तरल पदार्थ रूप में विकता है। जब यह टिकिया रूप में बेंचा जाता है तो इसे "स्टिलकैप" कहा जाता है जो एक व्यापारिक नाम ही है। स्टिलबूस्ट्रोल तो रवादार वस्तु है किन्तु हेक्सूस्ट्रोल श्वेत चूरे रूप में मिलता है। ये दोनों औषधियाँ बाजार के किसी अंग्रेजी औषधि-विक्रेता की दूकान से मिल सकती हैं। या "मे ऐंड बेकर (इंडिया) लिमिटेड", पोस्ट बक्स नं० ६६३, दिल्ली से मँगाई जा सकती हैं।

प्रयोग विधि-रसायनिक बन्ध्याकरण की प्रयोग विधि यह है कि स्टिलबूस्ट्रोल घोल का एक सी० सी० पेशी के अन्दर इंजेक्शन दिया जाय या त्वचा के नीचे स्टिलकैप की १५ मिलीग्राम की टिकिया रक्खी जाय। त्वचा की परत के नीचे टिकिया रखने के लिए मुर्गे की गर्दन में एक स्थान चुना जाता है। जो कलंगी से कम से कम आधा इंच की दूरी से लेकर ढाई इंच की दूरी तक में कहीं पर हो। ऐसा करने का यह कारण है कि मुर्गा मारने के समय बिना पची दवा निकाल फेंकी जा सके।

टिकिया रखने के लिए या तो नश्तर से त्वचा काट ली जाती है और उसके नीचे चिमटी से वह रक्खी जाती है या इंजेक्शन देने वाली पिचकारी और सुई के समान दवा प्रवेश करने वाला-एक विशेष यंत्र काम में लिया जाता है। सुई के बीच में एक छेद होता है जिसमें "स्टिलकैप' टिकिया रक्खी जाती है। सुई के छेद में ऊपर से पिचकारी का पिस्टन दबाव डालकर टिकिया त्वचा के अंदर ढकेल देता है।

प्रभाव--मुर्गे की जननेन्द्रिय और पिट्युटरी ग्रन्थियों के रस में पारस्परिक क्रिया होता है। मुर्गे में इस क्रिया के कारण अंडकोष की वृद्धि हो जाती है। स्टिलबूस्ट्रोल ऐसी क्रिया बंद करता है। यह रक्त में वसा और कालसियम के प्रवाह को भी बढ़ाता है। वसा (चर्बी) पेशियों और वसा के भंडारों में जम जाती है। इस कारण बधिया किए हुए मुर्गे दूसरे मुर्गों की अपेक्षा अधिक चर्बीदार और वजनी बन जाता है। अस्थियों से रक्त धारा में आनेवाले कालसियम की मात्रा गुर्दे द्वारा बाहर निकल जाती है। इसी कारण बधिया हुए मुर्गे की

[शेष पृष्ठ १२३ पर

जन्म-कुंडली या आकाश घड़ी

जन्म-कुंडली का गणितीय विनोद—आकाश घड़ी की सुइयां ग्रहों की पहचान

श्री सोहन लाल गुप्त एम० एस-सी०, एम०ए०, एल-एल० बी०, एल० टी०, म्युनिसिपल कालेज, हरद्वार

जन्म कुंडली जन्म के समय राशियों और ग्रहों की स्थिति का चित्र है। दूसरे शब्दों में समय, तिथि, पक्ष, मास और वर्ष बतलाने वाली आकाशीय घड़ी का जन्म के क्षण का फोटोग्राफ जन्म कुंडली है। अतः जन्म कुंडली से जिसमें बारह कोष्ठों में एक से बारह तक संख्याएँ और नवग्रहों के नामों के प्रथम अक्षर दिए रहते हैं, जातक के जन्म का समय (दिन या रात और घंटा) जन्म तिथि पक्ष, मास और वर्ष या आयु बतलाये जा सकते हैं। जन साधारण क्या विद्वानों को भी चमत्कृत करने वाले इस ज्योतिषीय जादू का आधार गणित में है अतः यह गणितीय विनोद ही है।

जन्म कुंडली में आकाशीय घड़ी के अंक बारह राशियों को दिखाने की तीन विधियां हैं। साधारणतः
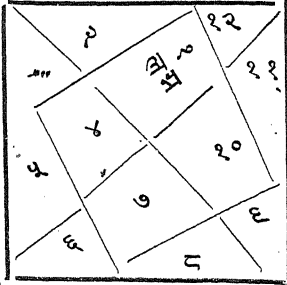
एक वर्ग की आसन्न भुजाओं के मध्य विन्दुओं को मिला तथा उसके कर्णों को खींच उसके बारह भाग करते हैं। प्रत्येक कोष्ठक को घर कहते हैं। ऊपर बीच का घर पहला कहा जाता है। घड़ी के डायल में इस स्थान पर १२ का अंक होता है। इस घर को लग्न कहते हैं, क्योंकि जन्म समय की लग्न राशि (अर्थात् उस समय पूर्व क्षितिज पर स्थित राशि) इसी घर में रखी जाती है। कुंडली में घरों के सूचक अंक लग्न से बाईं ओर को (घड़ी के अंकों से विपरीत दिशा में) बढ़ते हैं। इस प्रकार सातवां घर अस्त लग्न अर्थात् पश्चिम क्षितिज पर स्थित राशि का है। दसवां घर सर के ऊपर स्थित राशि का और चौथा घर पैरों के नीचे स्थित राशि का। कुंडली के घरों को नाम देने वाले अंक उनमें लिखे नहीं जाते। घरों में उन राशियों के अंक लिखे जाते हैं जो उनमें पड़ती हैं।

जन्म पत्र में आकाश घड़ी के डायल को दिखाने की दूसरी बिधि वृत्त द्वारा है, जिसमें घरों का क्रम अधिक स्पष्ट रहता है। दक्षिण में बारह घरों को

२	१	१२	११
३			१०
४			९
५	६	७	८

वर्गाकार पट्टी में क्रम से दिखाने की तीसरी विधि अपनाई गई है। यह कुंडली चौकोर घड़ियों के डायल से कुछ अन्तर के साथ मेल रखती है। जन्म कुंडली बनाने के लिए यदि जन्म रात्रि का है, जब निर्मल आकाश में तारे देखे जा सकते हैं तो जन्म के समय पूरब क्षितिज पर स्थित राशि को देख कर लग्न राशि जान उसका अंक कुंडली के पहले घर में रखेंगे। राशियों के क्रमांक इस प्रकार हैं। मेष—१, वृष—२, मिथुन—३, कर्क—४, सिंह—५, कन्या—६, तुला - ७, वृश्चिक—८, धनु—९, मकर—१०, कुंभ —११, मीन—१२।

यदि जन्म दिन का है या रात्रि में आकाश

बादलों से घिरा है तो घड़ी से समय देख फिर पंचांग में दी लग्न सारिणी से लग्न जान सकते हैं। पहले घर में लग्न राशि का अङ्क लिख उससे अगली राशियों के अङ्क क्रम से अगले घरों में लिखते हुए बारहों राशियां बारहों घरों में स्थापित करते हैं। फिर जो ग्रह जिस राशि में उस समय होता है, जो आकाश में देखा या पंचांग से जाना जा सकता है, उसके घर में लिख दिया जाता है। बस जन्म कुंडली बन गई।

सौर मास बतलाने वाली आकाश घड़ी की सुई सूर्य है जो रात्रि में स्वयं नहीं देखा जा सकता और दिन में अपने प्रकाश में राशियों को अदृश्य बना देता है। अतः उसकी स्थिति का ज्ञान प्रातः सूर्योदय के पहले पूरब क्षितिज पर उदय होती राशि या सायङ्काल को सूर्यास्त के बाद पश्चिम क्षितिज पर अस्त होती हुई राशि को देखकर कर सकते हैं। या अर्धरात्रि में याम्योत्तर रेखा पर (सिर पर) स्थित राशि देखो। उससे छः राशियों के अन्तर की राशि सूर्य की राशि होगी।

चांद्र मास, पक्ष और तिथि को बतलाने वाली आकाश घड़ी की सुई चन्द्रमा है। अमावस्या के अतिरिक्त मास के सभी दिनों में देखा जा सकता है। शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा सदैव सायङ्काल को देखा जाता है और कृष्ण पक्ष में प्रातःकाल को। अमावस्या को (तथा उसके बाद की परिवा में भी) चन्द्रमा सूर्य की राशि में रहता है। अतः तब उसकी राशि प्रातः की उदय लग्न या सन्ध्या की अस्त लग्न होगी।

वर्ष बतलाने की सुइयां आकाश घड़ी में बृहस्पति और शनि हैं। बृहस्पति बृहत् = बड़ा शब्द से बना है। बृहस्पति को गुरु भी कहते हैं, जिसका अर्थ भी बड़ा है। बृहस्पति सौर मङ्गल के सभी ग्रहों में सब से अधिक बड़ा है। अतः यह शुक्र को छोड़ अन्य सब ग्रहों और तारों से अधिक चमकीला हैं। अतः यह आसानी से पहचाना जा सकता है। बृहस्पति एक राशि में एक वर्ष रहता है।

शनिश्चर दो शब्दों शनैः और चर के मेल से बना है, जिसका अर्थ है, धीमे चलने वाला। सप्त ग्रहों में शनि की चाल सब से धीमी है। यह एक राशि में ढाई वर्ष रहता है। अतः इसको यह नाम मिला है। शनि के दूसरे नाम मन्द और असित भी हैं। मन्द का अर्थ भी धीमा है। असित का अर्थ काला है। शनि सप्त ग्रहों में अधिकतम दूर होने से सब से कम चमकीला है।

शुक्र और बुध की आकाश घड़ी में कोई विशेष महत्ता नहीं। यह दोनों पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य के अधिक निकट हैं। अतः आकाश में सूर्य से अधिक दूर नहीं जाते। यह प्रातःकाल य सायङ्काल को देखे जाते हैं। प्रातःकाल में पूरब में और सायङ्काल में पश्चिम में ही देखे जा सकते हैं। शुक्र अधिक से अधिक ४५ अंश आकाश में उठता है। अतः सूर्योदय से तीन घंटे से अधिक पहले नहीं उदित हो सकता। गांव वाले शुक्र का उदय देख प्रातःकाल का होना जान अँधेरे में ही हल बैल ले खेतों को चल पड़ते हैं। बुध और भी कम ऊँचा उठता है।

स्वाती जेष्ठा, आर्द्रा और रोहिणी तारों की भाँति मंगल का रंग लाल है। भारत में स्त्रियों के मस्तक के मंगल या सौभाग्य बिन्दु से रंग में मिलने के कारण ही संभवतः इसे यह नाम मिला है। मंगल का यूरोपीय नाम मार्स (Mars) मार्शल (Martial) युद्ध प्रिय शब्द से उसके खूनी रंग के कारण बना। मंगल एक राशि में दो महीने रहता है।

राहु और केतु दृश्य पिण्ड न होकर केवल अदृश्य बिन्दु है जिन पर चन्द्रमा और पृथ्वी की कक्षाएं एक दूसरे को काटती हैं। इनमें ६ राशियों का अन्तर रहता है। वे एक राशि में डेढ़ वर्ष तक रहते हैं। सूर्य-चंद्र-ग्रहणों में उनका विचार होता है। फलित ज्योतिष में उनका विचार होने से जन्म कुंडली में उनको भी स्थान मिलता है।

यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो ग्रह नग्न आँख से नहीं देखे जा सकते। लग्न का उपयोग ही जन्म कुंडली में किया जाता है। जन्म कुंडली में युरेनस को भी स्थान मिलने से साठ वर्ष के ऊपर के काल में जो अभी थोड़ा अनिश्चय रहता है वह खत्म हो जाएगा।

जन्म कुंडली से जातक का जन्म समय जानना।

देखो कि सूर्य की राशि से जन्म-लग्न कितने घर आते हैं। यदि अंतर छः घरों से कम है तो
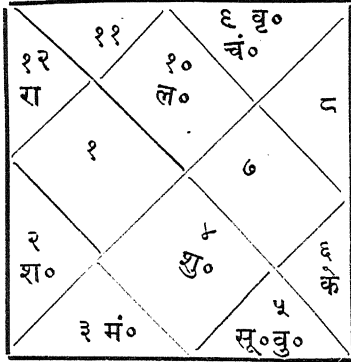
जन्म दिन का है। यदि यह अंतर छः से अधिक है तो जन्म रात्रि का है। यदि अंतर छः है तो जन्म संध्या का है। सूर्य लग्न में ही है तो जन्म प्रातः काल का है।

उपरोक्त, अन्तर को २ से गुणा कर दो। गुणन फल सूर्योदय से जन्म काल तक का समय घंटों में देगा क्योंकि एक राशि की लग्न दो घन्टे तक रहती है।

उदाहरण—लग्न राशि १०-सूर्य राशि ५=५ ∴ दिन का जन्म)

५×२=१० ; सूर्योदय के १० घन्टे बाद अर्थात् ४ बजे सायं काय का जन्म

जन्म मास जानना—कुंडली में सूर्य के घर का राशि अंक देखो। वैशाख से १ आरंभ करते हुए उस अंक तक महीने गिनो। सूर्य राश्यांक पर प्राप्त मास जन्म का सौर मास होगा जो चांद्र मास से काफी समय के लिए मेल खाता है।

उदाहरण—सूर्य राशि ५. अतः बैशाख से पांचवां महीना भाद्रपद का जन्म

जन्म पक्ष जानना—जन्म पक्ष का ज्ञान जन्म कुंडली में सूर्य और चंद्रमा के स्थानों से होता है। यदि सूर्य और चन्द्रमा एक ही घर में है तो जन्म अमावस्या या उससे एक तिथि आगे पीछे का है। यदि चंद्रमा सूर्य से आगे है पर छः राशियों के अन्तर से कम दूरी पर है तो जन्म शुक्लपक्ष का होगा। यदि चंद्रमा और सूर्य में छः राशियों का अन्तर है तो जन्म पूर्णमासी या उसके पास का होगा। यदि चंद्रमा सूर्य से छः राशियों से अधिक आगे या छः राशियों से कम पीछे है तो कृष्ण पक्ष का जन्म होगा।

जन्म तिथि जानना—तिथि ज्ञान भी सूर्य और चंद्रमा के अन्तर से होता है। देखो कि चन्द्रमा सूर्य से कितनी राशि आगे है। इस अन्तर को २½ से गुणा कर दो क्योंकि चन्द्रमा सूर्य से आगे एक राशि २½ दिन में बढ़ता है। यदि यह गुणनफल १५ से कम है तो शुक्ल पक्ष का है और प्राप्त संख्या जन्म तिथि देगी। यदि गुणनफल १५ से अधिक है तो जन्म कृष्ण पक्ष का है। उसमें से १५ घंटा देने पर शेष जन्म की तिथि देगा।

उदाहरण—चंद्र राशि ९-सूर्य राशि ५=४ ∴ शुक्ल पक्ष का जन्म ४×२½=१० : दशमी का जन्म।

नोट—उत्तर में दो तिथियों तक की अशुद्धता हो सकती है। यदि सूर्य और चंद्रमा के नक्षत्र भी जन्म कुंडली में दिए हों तो उनके विचार से जन्म तिथि सदैव पूर्णतः शुद्धतः प्राप्त होगी।

जन्म संवत तथा जातक की वर्तमान आयु जानना—

जन्म कुंडली से आयु तथा जन्म संवत का ज्ञान शनि और बृहस्पति द्वारा करते हैं। शनि की जन्म राशि से उसकी वर्तमान राशि आगे है। यह शनि की वर्तमान राशि संख्या से शनि की जन्म राशि संख्या घटाने से मिलेगा। यदि वर्तमान राशि संख्या छोटी है तो उसमें घटाने के पहले १२ जोड़ दो। शेष को २½ वर्ष से गुणा करो क्योंकि शनि एक

[शेष पृष्ठ १२३ पर]

विज्ञान-समाचार

चीनी से रासायनिक द्रव्य तैयार करने के नये उद्योग का विकास

अमेरिका में धीरे-धीरे एक नये उद्योग का विकास हो रहा है। अब चीनी से अनेक रासायनिक द्रव्य तैयार किये जाने लगे हैं।

चीनी के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान रखने वाले प्रमुख विशेषज्ञ डा० हेनरी वी० हैस ने हाल में अमेरिकन कैमिकल सोसाइटी के समक्ष इस विकासशील क्षेत्र में प्राप्त होने वाली सफलताओं का उल्लेख किया है।

डा० हैस ने बताया कि अटलस पाउडर कम्पनी पहले से ही चीनी से मेनिटोल तथा सोर्बिटोल नामक मीठे पदार्थ तैयार कर रही है। यह कम्पनी शीघ्र ही एक कारखाना लगायेगी, जहाँ सोर्बिटोल से ऐसी ग्लिसरीन तैयार की जायेगी जो कान्तिवर्द्धक वस्तुएँ तैयार करने तथा अन्य पदार्थों के उत्पादन के काम में जा सकेगी।

अन्य कम्पनियां चीनी से प्राप्त होने वाले रासायनिक द्रव्यों से रक्ताम्बु (ब्लड प्लाजमा) की वृद्धि करने वाली औषधियाँ तथा पेड़ों की पत्तियाँ पर कीटाणुनाशक औषधियों को चिपकाने वाले द्रव्य तैयार कर रही हैं। ग्रेट वेस्टर्न सुगर कम्पनी १९५५ के अन्त में ३० लाख डालर की लागत से एक नया कारखाना स्थापित करेगी, जिसमें मोनोसोडियम ग्लुटैनेट तैयार किया जायेगा। यह एक स्वादिष्ट पदार्थ है, जो खाद्य-वस्तुओं के निर्माण में व्यापक रूप में प्रयुक्त होता है।

अनेक फर्में गन्ने की सीठी से अखबारी कागज, लिखने के बढ़िया कागज, गत्ते, थैले आदि बना रही हैं।

सन कैमिकल कार्पोरेशन गन्नों के ऊपरी भाग से बड़े पैमाने पर प्राकृतिक मोम हासिल करके इसे पालिश बनाने के लिए बेच रही है।

गन्नों से प्राप्त होने वाले शीरे का गायों तथा अन्य पशुओं के लिए पौष्टिक चारे के रूप में अधिकाधिक प्रयोग हो रहा है। इस का उपयोग रोगाणुनाशक औषधियाँ तैयार करते समय खमीरे के रूप में भी किया जा रहा है। इसके अलावा एक कम्पनी एकोनाइटेट बनाने में चीनी का प्रयोग कर रही है। एकोनाइटेट प्लास्टिक को लचकीला बनाने के काम में आता है।

एक प्रमुख साबुन-साज चीनी से तैयार किये गये सस्ते शोधक द्रव्यों के सम्बन्ध में परीक्षण कर रहा है तथा अमेरिका के विभिन्न भागों में अनुसन्धानकर्ता चीनो से प्लास्टिक, कृत्रिम तन्तु, ईंधन तथा रंग तैयार करने के सम्बन्ध में भी अनुसन्धान कर रहे हैं। गन्ने की सीठी का नाइलोन बनाने में भी प्रयोग किया जा रहा है। फोनोग्राफ के रेकार्ड बनाने वाली एक अमेरिकी कम्पनी अपने रेकार्डों पर सीठी से प्राप्त होने वाले एक द्रव्य की राल का कोट करती है।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—श्रीरामदास गौड़ और प्रो० सालिगराम भार्गव ।=)
२ चुम्बक—प्रो० सालिगराम भार्गव ।।।=)
३—मनोरञ्जन रसायन—प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव २)
४—सूर्य सिद्धान्त—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव छः भाग मूल्य ८)। इस पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।
५—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी १)
६ समीकरण मीमांसा—पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)
७ निर्णायक डिटमिनेंटस—प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री ।।।)
८—बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)
९ सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशंकर पचौली; ।=)
१० व्यङ्ग-चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; २)
११ मिट्टी के बरतन—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; (अप्राप्य)
१२ वायुमंडल डाक्टर के० बी० माथुर, २)
१३ लकड़ी पर पालिश डा० गोरखप्रसाद और श्री रामरतन भटनागर, एम० ए०, २) (अप्राप्य)
१४ कलम पेवंद ले० श्री शंकरराव जोशी; २)
१५ जिल्दसाजी—श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० २)
१६ तैरना—डा० गोरखप्रसाद १)
१७ सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—(अप्राप्य)
१८ वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएं—डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० ॥)
१९ खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकारनाथ परती. मूल्य ।।।)
२०—फोटोग्राफी—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन) ४),
२१—फल संरक्षण—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह २।।)
२२—शिशु पालन—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई। मूल्य ४)
२३—मधुमक्खी पालन—दयाराम जुगड़ान; ३)
२४—घरेलू डाक्टर—डाक्टर जी० घोष, डा० उमाशङ्कर प्रसाद, डा० गोरखप्रसाद, ४)
२५—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, ३।।)
२६—फसल के शत्रु—श्री शङ्कर राव जोशी ३।।)
२७—साँपों की दुनिया—श्री रमेश वेदी ४)
२८—पोर्सलीन उद्योग—प्रो० हीरेन्द्र नाथ बोस ।।।)
२९—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ—२)
३०—गर्भस्थ शिशु की कहानी—प्रो० नरेन्द्र २।।)

अन्य पुस्तकें

१—विज्ञान जगत की झाँकी	(डा० परिहार)	२)
२—खोज के पथ पर	(शुकदेव दुबे)	।।)
३—विज्ञान के महारथी	(जगपति चतुर्वेदी)	२)
४—पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ	(,,)	१।।)
५—हमारे गाय बैल	(,,)	।।)
६—मवेशियों के छूत के रोग	(,,)	।।)
७—मवेशियों के साधारण रोग	(,,)	।।)
८—मवेशियों के कृमि-रोग	(,,)	।।)
९—फसल-रक्षा की दवाएँ	(,,)	।।)
१०—देशी खाद	(,,)	।।)
११—वैज्ञानिक खाद	(,,)	।।)
१२—मवेशियों के विविध रोग	(,,	।।)

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools;
Colleges and Libraries

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१६७० वि० या १६१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० *हीरालाल निगम*
सहायक संपादक—श्री *जगपति चतुर्वेदी*

नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग

प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञान

फरवरी १९५६
कुम्भ २०१२

भाग ८२
अंक ५

वार्षिक मूल्य
चार रुपए

प्रति अंक
छः आने

विषय-सूची

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५।

भाग ८२ | कुम्भ २०१२; फरवरी १९५६ | संख्या ५

विज्ञान परिषद् के ४२ वें वर्ष का कार्य-विवरण

(अक्टूबर १९५४ से सितम्बर १९५५ तक)

इस वर्ष का कार्य अन्य वर्षों की भांति सन्तोषजनक नहीं रहा। गतवर्ष की अपेक्षा इस वर्ष हमें पुस्तकों से लगभग १५०) कम की आय हुई। विज्ञान द्वारा हमें इस वर्ष लगभग ५००) की अधिक आय हुई। शिक्षा प्रसार विभाग द्वारा हमें इस वर्ष १७४ ग्राहक मिले। इसके लिये हम शिक्षा प्रसार-अधिकारी उ० प्र० प्रयाग के आभारी हैं।

इस वर्ष श्री हरिभगवान (लखनऊ विश्वविद्यालय) आजीवन सभ्य बने। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित सज्जन सभ्य बने :—

१—श्री विष्णुदत्त भार्गव, प्रयाग
२—डा० प्यारेलाल श्रीवास्तव, प्रयाग
३—श्री देवेन्द्र वैद्य, मथुरा
४—प्रधानाचार्य चम्पा अग्रवाल विद्यालय कालेज, मथुरा

गतवर्ष हमें उत्तर प्रदेशीय सरकार से पुस्तक के प्रकाशन हेतु १०००) का अनुदान मिला था। इसके अतिरिक्त नार्दर्न रेलवे ने कृपा करके पुस्तकों के मूल्य का अग्रिम १०००) हमें दिया था। इसके फलस्वरूप हम श्री ओंकारनाथ शर्मा लिखित पुस्तक "रेल इंजिन परिचय" का प्रथम भाग प्रकाशित कर सके। धनाभाव के कारण इस पुस्तक के अन्य भागों की छपाई का कार्य हम न कर सके। पिछले वर्षों में हमें प्रतिवर्ष २०००) से लेकर ५०००) तक का अनावर्तक अनुदान मिल जाता था किन्तु इधर पिछले तीन वर्ष में हमें केवल १०००) ही सरकार से प्राप्त हो सका है।

प्रयाग विश्वविद्यालय से प्राप्त ३५०० वर्ग गज भूमि में हमारे विज्ञान भवन के निर्माण का कार्य चल रहा है। सरकार से हमें १०,०००) रुपये का अनुदान भवन-निर्माण हेतु मिला है। अभीतक हम

लगभग १४०००) व्यय कर चुके हैं। अब धनाभाव के कारण हम भवन के निर्माण में वेग नहीं ला पा रहे हैं। प्रयाग और बाहर के गण्यमान्य व्यक्तियों से हमें आर्थिक सहायता मिली है। परिषद् के उदार प्रेमियों की सहायता के बिना हम विज्ञान भवन के निर्माण का कार्य सुचारु रूप से नहीं चला सकते। हम इस दिशा में पूरा प्रयत्न कर रहे हैं और हमें विश्वास है कि देश के विज्ञान-प्रेमी हमारी सहायता के लिये अपना हाथ बढ़ायेंगे।

हम परिषद् की ओर से एक चतुर्मासिक "अनुसंधान पत्रिका" को निकालना चाहते हैं। हमें सरकार से इसके लिये अनुदान मिलने की पूर्ण आशा है। रिसर्च कमेटी ने इसके लिये हमारी सिफारिश कर दी है। आशा है अगले वर्ष हम अनुसंधान पत्रिका निकालने में सफल होंगे।

वैज्ञानिक ज्ञान-कोष के प्रकाशन के सम्बन्ध में भी हम जागरूक हैं। इसके लिये प्रकाशन सामग्री एकत्र की जा रही है। इस कोष के एक-एक हजार पृष्ठ के ६ भागों को जिनमें लगमग ३ लाख रुपया व्यय होगा हम धीरे-धीरे छाप सकेंगे। सरकार से या उदारमना व्यक्तियों से आर्थिक सहायता मिलने पर हम इस कार्य को शीघ्र ही समाप्त कर सकेंगे।

विज्ञान परिषद के तथा विज्ञान के इस वर्ष के आय-व्यय का विवरण इस प्रकार है :—

विज्ञान परिषद् का सन् १९५४-५५ का आय-व्यय

आय	
विज्ञान	१५५२-०-०
पुस्तकें	१२१९-११-०
सभ्य शुल्क	१६७-०-०
आजीवन सभ्य शुल्क	१००-४-०
उत्तर प्रदेशीय सरकार से	२०००-०-०
भारत सरकार से	१००००-०-०
व्याज से	७-७-०
योग	१५०४६-६-०
पिछले वर्ष की रोकड़	२८१७-२-२
	१७८६३-८-२
व्यय	१५७७५-०-३
इस वर्ष की रोकड़ बाकी	२०८८-७-११*

व्यय	
लिपिक का पारिश्रमिक	४८०-०-०
सह सम्पादक का पारिश्रमिक	४८०-०-०
चपरासी का वेतन	५२२-०-०
विज्ञान की छपाई	२९४०-१३-९
ब्लाक	८९-११-०
पोस्टेज	४१२-९-६
साइकिल की मरम्मत	२२-५-०
स्टेशनरी	२७-१२-०
जिल्द बंधाई	६३-१०-०
इक्का ठेला	७-२-०
फुटकर	५४-८-६
पार्सल का खर्च	८-५-९
पुस्तकें खरीदीं	४०-०-०
विज्ञान भवन का व्यय	६१४-२-९
इंसीडेन्टल	१२-०-०
विज्ञान भवन के खाते में ट्रांसफर	१००००-०-०
योग	१५७७५-०-३

* नार्दर्न रेलवे से "रेल इंजन परिचय" पुस्तक छपाने के लिये १०००) मिला था। उत्तर प्रदेशीय सरकार से भी १०००) पुस्तक के लिये प्राप्त हुआ था। इस पुस्तक की छपाई का २०००) देना है। इस प्रकार से असली रोकड़ बाकी कुल ८८।≈)११ है।

विज्ञान के सम्बन्ध में (१९५४-५५) का आय-व्यय

आय		व्यय	
ग्राहकों से	१५५२-०-०	विज्ञान की छपाई	२९४०-१३-६
सभ्यों से [कुल का २/५]	३३-६-०	ब्लाक	८९-११-०
यू० पी० गव० से	२०००-०-०	डाक व्यय	२४०-७-६
	३५८५-६-०	लेखक का पारिश्रमिक कुल का २/३	३२०-०-०
		सह सम्पादक का ,,	४८०-०-०
		चपरासी का वेतन कुल का २/३	३४८-०-०
		इक्का ठेला	७-२-०
		साइकिल की मरम्मत	२२-५-०
		जिल्द बँधाई फाइल विज्ञान	६-०-०
		पिछला घाटा	१९१४-०-०
		पुस्तकें खरीदी	१२३-११-०
			६४९२-२-६
		इस वर्ष का घाटा	२९०६-१२-६
			३५८५-६-०

विज्ञान से इस वर्ष हमें ३५८५।=) की आय हुई है। किन्तु हमें विज्ञान पर ६४९२=)॥ खर्च करना पड़ा है। इस प्रकार हमें इस वर्ष विज्ञान से २९०६।।।)॥ का घाटा हुआ है। इस घाटे को हम परिषद् की आय से [पुस्तकों आदि की बिक्री से] भी पूरा नहीं कर सके हैं और हमें अपनी पिछली वर्ष की रोकड़ से भी ८१२।-)। व्यय कर देना पड़ा है। यदि सरकार हमारा वार्षिक (आवर्तक) अनुदान ५०००) कर दे और समय-समय पर अनावर्तक अनुदान भी देती रहे तो हमारा कार्य ठीक से चल सकेगा।

इस वर्ष परिषद् के आजीवन सभ्यों की संख्या ५८ सभ्यों की १४२ और ग्राहकों की संख्या २४० रही।

इस वर्ष के परिषद् के पदाधिकारी इस प्रकार थेः—

श्री हीरा लाल खन्ना	सभापति
प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव	उपसभापति
डा० गोरख प्रसाद	,,
डा० रामदास तिवारी	प्रधान मंत्री
डा० देवेन्द्र शर्मा	मन्त्री
डा० रामचरण मेहरोत्रा	,,
डा० संत प्रसाद टंडन	कोषाध्यक्ष
डा० प्यारे लाल श्रीवास्तव	स्था० अंतरंगी
डा० अनन्त प्रसाद मेहरोत्रा	,,
श्री हरिमोहन दास टंडन	,,
प्रो० नन्दकुमार तिवारी	,,

डा० हीरालाल निगम	प्रधान संपादक
डा० जगराज बिहारी लाल, इन्डस्ट्रियल केमिस्ट कानपुर	बाहरी अंतरंगी
डा० ब्रजमोहन काशी, वि० वि०	,,
डा० दौलत सिंह कोठारी, देहली	,,
डा० रामधर मिश्र लखनऊ विश्वविद्यालय	,,
डा० आत्माराम, कलकत्ता	,,
डा० सत्य प्रकाश	आयव्ययपरीक्षक

सन् १६५५-५६ का अनुमान-पत्र

परिषद के विषय में

आय

आजीवन सभ्यों से	१००)
सभ्यों से	४००)
पुस्तकों से	१२००)
योग	१७००)

व्यय

रेल-इंजन पुस्तक भाग २ की छपाई, कागज	२०००)
स्टेशनरी	५०)
डाक व्यय	२००)
लेखक का वेतन कुल का $\frac{१}{३}$	१६०)
चपरासी ,, ,, ,,	१७८)
विज्ञान का घाटा	२००६)
	४५६४)

इस प्रकार परिषद को २८६४) का घाटा होगा। इसके अतिरिक्त पिछला कर्ज ३६६६) भी हमें देना है।

विज्ञान के विषय में

आय

ग्राहकों से	१०००)
सभ्यों से	१५०)
सरकार से	२०००)
	३१५०)

व्यय

विज्ञान की छपाई	१८००)
,, का कागज	७००)
कवर ,, ,,	२३०)
,, की छपाई	४००
बाइंडिंग	२४०)
ब्लाक	३००)
सहायक सम्पादक	४८०)
लेखक कुल का $\frac{२}{३}$	३२०)
चपरासी कुल का $\frac{२}{३}$	३५६)
फुटकर	५०)
डाक व्यय	२८०)
	५१५६)
घाटा जो परिषद देगी	२०६०)

[शेष पृष्ठ १३६ पर]

बीजगणित और बुककीपिंग की परम्परा

[ले० डा० सत्यप्रकाश]

लगभग दो वर्ष हुए, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने मुझे "वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा" पर कुछ व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया था और ये व्याख्यान परिषद् की ओर से पुस्तकाकार प्रकाशित भी हो गए हैं। श्री कस्तूर मल बाँठिया हिन्दी के पुराने लेखक हैं और उन्होंने हिन्दी बही-खाता, नामा-लेखा और मुनीवी और इसी प्रकार की अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें आज से लगभग बीस वर्ष पहले लिखीं थीं। श्री बाँठया जी बुककीपिंग आदि की परम्पराओं के अनुशीलन में रुचि रखते हैं। आपका विचार है कि जिस परम्परा से बीजगणित भारत से यूरोपीय देशों में पहुँचा, उसी परम्परा से बुककीपिंग की कला भी इसी देश से पूरब, मिश्र और यूनान में होती हुई यूरोप में पहुँची होगी। उन्होंने मेरी पुस्तक से उद्धरण देकर अपने विचार निम्न प्रकार रक्खे हैं—

बीजगणित के विकास का इतिहास—अरब वासी अलजेब्रा के प्रवर्तन का श्रेय मुहम्मद बिन मूसा या मूसा को देते हैं, जो खलीफा अलममून के समय में नवीं शताब्दी के मध्य में हुआ था। कहा जाता है कि उसने एक ग्रन्थ लिखा जिसका इटली की भाषा में भी अनुवाद हुआ था; पर यह अनुवाद अब लुप्त है। अरबी लिपि में लिखी गई सन् १३४२ की इसकी एक प्रति ऑक्सफोर्ड की बोडलीयन लाइब्रेरी में अब भी सुरक्षित है। यह अरबी भाषा का ग्रन्थ भारतीय बीजगणित के आधार पर ही लिखा गया होगा, यह इन वाक्यों से स्पष्ट है—

"The circumstance of this treatise professing to be only a compilation, and, moreover, the first Arabian work of the kind, has led to an opinion that it was collected from books in some other language. As the author was intimately acquainted with the astronomy and other compilations of the Hindoos, he may have derived his knowledge of Algebra from the same quarter. The Hindoos, as we shall presently see, had a science of Algebra, and knew how to solve indeterminate problems. Hence we may conclude, with some probability, that the Arabian Algebra was originally derived from India." (Encyclopedia Brittanica, 9th Edition, page 512.)

१० वीं शताब्दी के अन्त में अरब में एक गणितज्ञ मुहम्मद अबुलवफा हुआ, जिसने अपने पूर्ववर्ती गणितज्ञों (विशेषतया डायोफैण्टस) की पुस्तकों के अनुवाद किये; पर डायोफैण्टस के बीजगणित का अरब के बीजगणित पर प्रभाव नहीं पड़ा। अरब का बीजगणित बेहाउद्दीन (६५३-१०३१) के समय तक अपनी पूर्व परम्परा में ही बढ़ा। अरब से यूरोप में बीजगणित कैसे पहुँचा, इसके सम्बन्ध में अब यह माना जाता है कि पीसा (Pisa) का एक व्यापारी लेओनार्डो (Leonardo) पहले-पहल बीजगणित ले गया। उस समय बीजगणित पाटीगणित का ही अंग माना जाता था। लेओनार्डो ने स्वयं एक पुस्तक सन् १२०२ में लिखी।

लेओनार्डो के समय से बीजगणित का पठन-पाठन यूरोप में आरम्भ हुआ। खुरासान के मुहम्मद बिन मूसा के ग्रन्थ का भी लेटिन में अनुवाद हुआ। यूरोप में छपी हुई सबसे पहले बीजगणित की पुस्तक लूकस पेसिओलस (Lucas of Paciolus or Lucas de Burgo) की है—"Summa de Arithmetica, Geomatria, Proportionie et Proportionalita" जो सन् १४६४ में छपी। यह पुस्तक लेओनार्डो के आधार पर लिखी गई थी, इस प्रकार सन् १५०० के लगभग के यूरोपीय ज्ञान का परिचय लूकस के इस ग्रन्थ से मिलता है।

—डा० सत्य प्रकाश—वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा पृष्ठ ६६-६७

(१) लूकस पेसिओलस की पुस्तक लेओनार्डो के आधार पर लिखी गई इसका प्रमाण क्या है ?

(२) लूकस पेसिओलस के इसी ग्रन्थ में क्या Double Entry Bookkeeping के कुछ अध्याय अन्त में नहीं जोड़ दिये गये हैं ? और क्या ये भी लेओनार्डो की पुस्तक के आधार पर लिखी जाना सम्भव है ?

(३) लेओनार्डो की सन् १२०२ में लिखी बीजगणित सम्बन्धी पुस्तक कहाँ सुरक्षित है ? और उसकी विषय सूची क्या है ?

(४) जब लेओनार्डो द्वारा अरब से यूरोप में बीजगणित पहुँचा, तो क्या यह अनुमान करना गलत होगा कि अरब से यूरोप में Double Entry Bookkeeping भी उसी द्वारा पहुँचा होगा ?

(५) इन्साइक्लोपीडिया के उद्धृत मतानुसार अरबी बीजगणित भारत से ही मूलतः उद्भूत है तो Double Entry Bookkeeping भी अरब में भारत से ही पहुँची मान लेने में क्या आपत्ति है ? भारत में बुककीपिंग के किसी प्राचीन ग्रन्थ का प्रमाण अभी तक अप्राप्य है।

उक्त शंकाओं के स्पष्टीकरण की प्रार्थना है।"

बुक कीपिंग की परम्परा

श्री बाठिया जी ने जो शंकायें उपस्थित की हैं, वे अवश्य विचारणीय हैं। "डबल-एंट्री बुक कीपिंग" मेरा विषय नहीं हैं, और वणिक्-विज्ञान में मेरी गति भी नहीं है, और इसलिए इन शंकाओं का उत्तर देना मेरे क्षेत्र से बाहर है। निश्चय ही बीजगणित इस देश में बहुत दिनों तक पाटीगणित का अंग रहा। पाटी गणित में कुछ ऐसे विषयों का भी समावेश होता रहा है जिनका व्यापार से संबंध है, जैसे ब्रह्मगुप्त ने अपने ब्राह्म स्फुट सिद्धान्त में भाण्ड प्रति भाण्ड (barter and exchange) और चिति (Stock) का विवरण दिया है। भारतवर्ष में बुक-कीपिंग की परम्परा कितनी पुरानी है, इसका मुझे विशेष पता नहीं है। श्री बाँठिया जी के अनुसार वहीखाता के सूत्रों का शुक्रनीति में पुराने से पुराना संदर्भ मिलता है (शुक्रनीतिसार अध्याय २, श्लोक ३४०-३४२, ३६२, ३६७ और ३७१)। बक्षाली की पोथी (जो बीजगणित की सबसे पुरानी प्राप्त भारतीय रचना है) में बुक-कीपिंग का उल्लेख नहीं है। शुक्रनीतिसार की प्राचीनता में सन्देह है। कीथ ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में (पृष्ठ ४६४, सन् १६४१) शुक्रनीति को बहुत अर्वाचीन माना है (देखो वैज्ञानिक इतिहास की परम्परा, पृ० २०६), क्योंकि इसमें अग्निचूर्ण या बारूद का उल्लेख है।

प्लिनी के लेखों से मालूम होता है कि बुक-कीपिंग की कला लोगों को बहुत पुराने समय में भी ज्ञात थी (Pliny, lib ii, cap 7)। सिसेरो (Cicero) ने अपने पुत्र की शिक्षा की सुविधा के लिए ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा था कि एथेन्स और रोम के बीच में बिलों का भुगतान बिना रुपया भेजे हुए भी हो सके (Eppis. ad Att. xii. 24; xv. 25)। यह प्रबन्ध किसी न किसी प्रकार की बुक कीपिंग पद्धति के आधार पर ही हुआ होगा। सन् १८०५ में केली (Kelly) ने अपने एक लेख में यह लिखा कि बुक-कीपिंग की सबसे पहली पुस्तक लूकस डि बुर्गो (Lucas di Burgo) की है, जिसने बीजगणित पर

भी एक पुस्तक लिखी थी। लूकस पेसिओलस भी इसी का नाम था। इसका ग्रन्थ (Summa de Arithmetica, &c.) सन् १४९४ का है। लूकस डि बुर्गो की बुक-कीपिंग वाली पुस्तक भी १४९५ में प्रकाशित हुई, इसके बाद बुक-कीपिंग पर शास्त्रीय ढंग पर कई ऐसी पुस्तकें लिखी गईं जिनके रचयिताओं को वणिक् कला का व्यावहारिक ज्ञान न था और इसलिए उन पुस्तकों में निर्दिष्ट सामग्री का जनता में प्रचार न हो सका। अब तक तो गणितज्ञ ही बुक-कीपिंग पर ग्रन्थ लिखते थे, पर इस समय से व्यापार में दक्ष व्यक्तियों ने बुक-कीपिंग पर लिखना आरंभ किया। इन पुस्तकों में विषयों का प्रतिपादन अब भी बड़ी जटिल पद्धति पर होता रहा; ५००-६०० पृष्ठों के ग्रन्थ में अत विस्तार, और व्याख्यायें बहुत रहीं, और इसलिए जनता उनका भी उपयोग करने में समर्थ न हो पायी। आवश्यकता इस बात की प्रतीत होने लगी कि बुककीपिंग की पद्धति को सरल बनाया जाय। सन् १७९६ में ब्रिस्टल के ई० टे० जोन्स ने बही-खाता को ठीक से रखने की एक आयोजना रक्खी। उसकी पुस्तक आज भी बड़े ऐतिहासिक महत्व की मानी जा सकती है। इसके बाद अन्य रचयिताओं ने भी सुधार किए, जिनमें से मुख्य ये हैं:—बेंजामिन बूथ (१७८९), हेमिल्टन (१८२०), जोन्स (१८२१, १८३१ द्वितीय और तृतीय संस्करण), सी. मोरिसन (१८२३), इनमें से बहुतों की रचनायें तो स्कूल के विद्यार्थियों के स्तर की थीं, केवल जोन्स के ग्रन्थ अवश्य ऊँचे स्तर के थे। कार्टर ने "Practical Book Keeping, Adopted to Commercial and Judicial Accountancy" पुस्तक लिखी जिसका तीसरा संस्करण १८७५ में प्रकाशित हुआ। यूराप में बुक-कीपिंग के विकास का यह छोटा सा इतिहास है।

सोलहवीं शताब्दी तक यूरप में बीजगणित—

यूरोप में सोलहवीं शताब्दी तक बीजगणित के अनेक ग्रन्थ बन गए थे, जिनमें से उल्लेखनीयों की सूची इस प्रकार है—

१. डायोफेण्टस (Diophantus)—Arithmeticorum, Libri sex (सन् ३९० के निकट)। इसका पहला संस्करण १५७५ में मुद्रित हुआ।

२. लेओनार्डो बोनाकी (Leonardo Bonacci)—१२२२

३. लूकस पेसिओलस या डि बुर्गो—Summa de Arithmetica &c. १४९४

४. रुडोल्फ (Rudolf)—Algebra—१५२२

५. स्टिफेलियस (Stifelius)—Arithmetica Integra etc.—१५४४

६. कार्डन (Cardan)—Ars Magna quam vulgo Cossam vocant—१५४५

७. फेरिअस (Ferreus)—१५४५

८. फेरारी (Ferrari)—जिसने चतुर्थ घात के वर्गात्मक समीकरणों को पहली बार हल किया—१५४५

९. टार्टेलिआ (Tartalea) Quesiti ed Inventioni diverse—१५४६

१०. शूबेलिअस (Scheubelius)—Algebra Compendiosa—१५५१

११. रिकोर्ड (Recorde)—Whetstone of Wit—१५५७

१२. पेलेटेरियस (Peletarius)—De Occulta parte Numerorum—१५५८

१३. बूटिओ (Buteo)–De Logistica–१५५९

१४. रेमस (Ramus)—Arithmeticae Libri duo et totidem Algebrae—१५६०

१५. पेड्रो नुगनेज (Pedro Nugnez or Nonnius) - Libro de Algebra—१५६७

१६. जोसेलिन (Jossalin)—De Occulta parte Mathimaticorum—१५७६

१७. बोम्बेली (Bombelli) १५७९

१८—क्लेविअस (Clavius)—१५८०

१६—बर्नर्ड सोलिग्नक (Bernard Solignack)—Arith. Libri ii. et Algebrae totidem—१५८०

२०—स्टेविनस (Stevinus)—Arithmetique, &c., aussi l' Algebre—१५८५

२१—वीटा (Vieta)—Opera Mathematica—१६००

बीज गणित की ऐतिहासिक पुस्तकों की सूची मरहर्ड (Murhard) की Bibliotheca Mathematica में विस्तार से दी हुई है, जिससे हमें गत शताब्दी तक के साहित्य का परिज्ञान हो सकता है।

यूरोप में बीज गणित की सबसे पुरानी रचना डायोफैण्टस की है। उसने चौथी शती में वस्तुतः अंक गणित पर एक पुस्तक लिखी जिसमें १३ खंड कहे जाते हैं। इनमें से केवल प्रथम ६ खंड और १३ वें खंड के कुछ अंश (जिसका सम्बन्ध polygomal संख्याओं से है) इस समय प्राप्त हैं। यह रचना बीज गणित का कोई सांगोपांग ग्रन्थ नहीं है। पर इससे बीज गणित का सूत्रपात अवश्य प्रतीत होता है। इसमें सरल और वर्गात्मक समीकरणों से हल करने की विधि दी है और ऐसे प्रश्न दिए हैं कि जैसे—यदि दो संख्याओं का योग और उनका अन्तर दिया हो, तो उन संख्याओं को बताओ। ऐसे प्रश्न भी दिए हैं जिनके हल अनिर्णीत (indeterminate) होते हैं। डायोफैण्टस यूनानी बीज गणित का चाहे आविष्कारक रहा हो, पर बीज गणित के सिद्धान्त उससे भी पूर्व प्रचलित थे, उसने उनको संग्रह किया और कुछ का विकास भी किया। वर्गात्मक समीकरणों को हल कर लेना ही उस समय के बीज गणित-परिज्ञान की चरम सीमा मानी जाती थी।

थिओन (Theon) की पुत्री हिपेटिआ (Hypatia) ने डायोफैण्टस के ग्रन्थ पर भाष्य लिखा। हिपेटिआ ने एपोलोनियस (Apollonius) के Conics (शंकु-गणित या बीज ज्यामिति) पर भी भाष्य लिखा। पर उसके ये दोनों भाष्य अप्राप्य हैं। खेद की बात है कि इस प्रतिभा-सम्पन्न महिला का ५ वीं शती के आरम्भ में मूढ़ जन-समूह द्वारा वध हो गया।

१६ वीं शती के मध्य में डायोफैण्टस के यूनानी भाषा में लिखे ग्रन्थ की एक प्रति रोम के पोप की लायब्रेरी में मिली। शायद जब तुर्कों ने ग्रीस पर अधिकार जमा लिया था, उस समय यह प्रति इटली में पहुँची थी। सन् १५७५ में ज़ाइलैंडर (Zylander) ने इसका लैटिन अनुवाद किया (इसमें मूल ग्रन्थ नहीं था), और १६२१ में फ्रैंच एकेडमी के सदस्य बेचेट डि मेज़ेरिआक (Bachet de Mezeriac) ने भाष्य सहित और भी अधिक पूर्ण अनुवाद प्रस्तुत किया। अनिर्णीत विश्लेषण (indeterminate analysis) में बेचेट को विशेष योग्यता प्राप्त थी, अतः वह इस भाष्य के करने का पूर्ण अधिकारी था। पर उस समय तक डायोफैण्टस की मूलप्रति इतनी भ्रष्ट हो गयी थी, कि बेचेट को अनुमान का सहारा अनेक स्थलों पर लेना पड़ता था, और अपनी ओर से भ्रष्ट स्थलों की पूर्ति करनी पड़ती थी। बाद को १६७० के लगभग बेचेट के भाष्य का फ्रैंच गणितज्ञ फर्मेट (Fermat) ने और सुधार किया।

डायोफैण्टस के ग्रन्थों का उद्धार किया जाना गणित के इतिहास की उपयोगी घटना अवश्य है, पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि यूरोप वालों को बीज गणित से परिचय उसकी रचनाओं से हुआ। गिनती और दशमलव पद्धति के समान बीजगणित का भी प्रचार यूरोप में अरब वालों द्वारा हुआ। जिस समय यूरोप अन्धकार के आवरण में था, अरब वासियों ने ज्ञान की ज्योति को बुझने से बचाया, इन्होंने यूनानियों के ग्रन्थों का संग्रह किया, उन पर भाष्य लिखे और उन्हें सुरक्षित रक्खा। अरबी भाषा में ही यूक्लिड की रेखा-गणित यूरोप में पहुँची। एपोलोनियस की यूनानी भाषा वाली मूल रचनायें तो बिलकुल लुप्त हो गयी हैं, पर उनके अरबी अनुवाद अब भी सुरक्षित हैं।

यूरोप में पहला देश इटली था जहाँ बीजगणित पहुँची, और इटली में ही स्वभावतः इसका विकास हुआ। लेओनार्डो से लेकर पेसिओलस (Paciolus) के समय तक, (लगभग ३ शती तक) इसमें विशेष प्रगति नहीं हुई, पर जब से मुद्रण कला का विकास हुआ, गणित के सभी अंगों की वृद्धि तीव्रता से हुई। सन् १५०५ में सिपिओ फेरिअस (Scipio Ferreus) तृतीय घात के सभी कारणों के हल करने में समर्थ हो सका, यह महत्वपूर्ण घटना थी। यह वह युग था कि जब कोई गणितज्ञ किसी प्रश्न का हल निकाल लेता, तो वह हल निकालने की विधि गुप्त रखता था और अन्य गणितज्ञों को चैलेञ्ज करता था। इस परम्परा के आधार पर ही फेरिअस ने अपने हल को गुप्त रक्खा, केवल उसने इसे अपने एक प्रिय शिष्य पादरी फ्लोरिडो (Florido) को बताया। १५३५ में फ्लोरिडो वेनिस नगर में आकर रहने लगा और वहाँ उसने ब्रेसिआ के टारटेलिआ (Tartelea ot Brescia) नामक गणितज्ञ को चैलेन्ज दिया। उसने प्रश्न को इस रूप में रक्खा था कि उसे वही निकाल सकता था जिसे फेरिअस के हल का पता हो। पर टारटेलिआ बड़ा चतुर था, वह ५ वर्ष पूर्व ही फेरिअस से भी अधिक उन्नत हल निकाल चुका था। उसने चैलेंज स्वीकार किया। शास्त्रार्थ का दिन निश्चित हुआ, और दोनों ओर से ३०-३० प्रश्न पूछे जाने का प्रस्ताव रक्खा गया। इस निश्चित तिथि से पूर्व टारटेलिआ ने घन समीकरणों के ऐसे दो हल और निकाल लिए थे, जिनका उसे पहले ज्ञान न था। इनके आधार पर प्रतियोगिता का फल यह हुआ कि टारटेलिआ तो फ्लोरिडा के सब प्रश्नों का उत्तर २ घंटे में दे सका, पर फ्लोरिडो उसके एक भी प्रश्न का उत्तर न दे पाया।

टारटेलिआ के आविष्कारों की धूम मच गयी। इसका एक समकालीन कार्डन (Cardan) था। यह मिलन में गणित का अध्यापक था, और इसने बीज गणित, रेखा गणित, और अंक गणित पर एक पुस्तक छपवायी। उसकी बहुत इच्छा थी कि मैं टारटेलिआ के अनुसन्धानों को जान जाऊँ और उन्हें भी पुस्तक में सम्मिलित करलूँ। उसने टारटेलिआ से बहुत अनुनय-विनय की, बाद को उसने जब इवेंजेलिस्टों के पवित्र नाम पर शपथ ली कि मैं उन्हें प्रकाशित नहीं करूँगा, और न किसी को बताऊँगा, और उन्हें इस प्रकार गुप्त रूप से अंकित करूँगा कि मरने पर भी कोई उनके अर्थ न निकाल सके, तब कहीं टारटेलिआ ने उसे अपने व्यावहारिक नियम बताये, और वे भी गोल-मोल रूप में। ये नियम किस आधार पर थे, यह बात उसने फिर भी गुप्त रक्खी, पर कार्डन ने अपनी प्रतिभा से, जितना भी उसे बताया गया था, उस आधार पर ही, घन समीकरणों के समस्त हल निकाल लिए। उसने अपनी शपथ की परवाह न की और सन् १५४५ में उसने टारटेलिआ की, एवं अपनी खोजों को प्रकाशित कर दिया। गणित साहित्य की मुद्रित यह दूसरी पुस्तक थी। अगले वर्ष टारटेलिआ ने बीज गणित पर एक दूसरी पुस्तक छपवायी जिसे उसने इंगलैंड के राजा अष्टम हेनरी को समर्पित किया। घात समीकरण के हल अब भी "कार्डन-नियम" नाम से प्रसिद्ध हैं, यद्यपि इनमें से कई का आविष्कारक टारटेलिआ था। कार्डन का एक प्रिय छात्र ल्यूइस फेरारि (Lewis Ferrari) था। उसने चतुर्थ घात के समीकरणों के हल निकालने में भी सफलता प्राप्त की। उससे पहले यह समझा जाता था कि इन समीकरणों का हल नहीं निकाला जा सकता। सन् १५७२ में इटली के एक और गणितज्ञ बॉम्बेलि (Bombelli) ने तृतीय घात के उन समीकरणों पर प्रकाश डाला जो कार्डन नियमों से हल नहीं किये जा सकते थे, और जिन्हें उसी कोटि में रक्खा जाता है जिसमें कोण को ३ बराबर भागों में बाँटने का प्रश्न।

कार्डन और टारटेलिया के समकालीन दो गणितज्ञ स्टिफेलियस और शूबेलिअस जर्मनी में थे। उन्हें इटली वालों की खोजों का उस समय पता न था

जिस समय उन्होंने अपनी रचनायें प्रकाशित कीं। उन्हें ऋण (−), धन (+) और वर्गमूल (√) इन संकेतों के आविष्कार का श्रेय दिया जा सकता है।

अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित सर्वप्रथम बीजगणित ग्रन्थ रॉबर्ट रिकोर्ड (Roberf Recorde) का है जो कैम्ब्रिज में गणित भी पढ़ाता था, और चिकित्सा भी करता था। उस समय बहुधा चिकित्सक ही गणित, ज्योतिष और रसायन के विशेषज्ञ हुआ करते थे। यह प्रथा स्पेन के मूरों में भी थी। हमारे देश में अब भी गाँव का पंडित पुरोहिताई करता है, वैद्यक भी जानता है, और ज्योतिषी भी वही है, ऐसा ही यूरोप में भी था। स्पेन के प्रसिद्ध ग्रन्थ "डॉन क्विक्सोड" में उल्लेख आता है कि जब प्रतिद्वन्द्व में केरेस्को घायल हो गया, तो उसका इलाज करने के लिए बीजगणितज्ञ (Algebrista) बुलाया गया। रिकोर्ड ने अपना अंकगणित का एक ग्रन्थ षष्ठ एडवर्ड को समर्पित किया और उसने बीजगणित की पुस्तक लिखी जिसका विचित्र नाम "The Whetstone of Wit" था। इसने समीकरणों में समता का चिन्ह (=) पहली बार गणित साहित्य में प्रयुक्त किया।

रेखागणित के प्रश्नों में बीजगणित का पहले पहल उपयोग वीटा (Vieta) का है। यह अपने युग का परम विख्यात गणितज्ञ था और इसने बीजगणित के अनेक अंगों का विस्तार किया। इसने ही ज्ञात और अज्ञात राशियों को वर्णमाला के अक्षरों से व्यक्त करने की परिपाटी चलायी। वीटा का जीवन काल १५४०-१६०३ ई० है। इसने अपने ग्रन्थ अपने खर्चे से छपवाये। और उन्हें गणितज्ञों में बँटवाया।

बुक कीपिंग और बीजगणित का आदिम सम्बंध

बीजगणित की इस परम्परा का इतिहास देने के अनन्तर अब हम संक्षेप में बाँठिया जी के प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे—

१. लूकस पेसिओलस की पुस्तक लेओनार्डो के आधार पर लिखी गयी, इसके समर्थन में इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका का निम्न उद्धरण कुछ प्रकाश डाल सकता है—

"The earliest printed book on algebra was composed by Lucas Paciolus, or Lucas de Burgo, a minorite friar. It was printed in 1494, and again in 1523. The title is Summa de Arithmetica, Geometria, Proportioni, et Proportionalite.. This is a very complete treatise on arithmetic, algebra and geometry, for the time in which it appeared. The author followed close on the steps of Leonardo; and indeed from this work that one of his lost treatises has been restored. Lucas de Burgo's work is interesting, in as much as it shows the state of algebra in Europe about the year 1500; probably the state of the science was nearly the same in Arabia and Africa, from which it had been received".

(Vol. I, p. 512, ed. 1875.)

२. संभव है कि लूकस पेसिओलस के गणित के उक्त ग्रन्थ में ही (Book-Keeping संबंधी अध्याय भी हों, और यदि ऐसे हैं, तो ये अध्याय भी लेओनार्डो की पुस्तक में अवश्य होंगे। पर बुक कीपिंग के इस अध्याय में (Double Entry) पद्धति होगी, इसका मुझे सन्देह है।❀

३. यह कहना कठिन है कि लेओनार्डो की मूल पुस्तक कहीं अब है भी या नहीं। हमारे यहाँ के पुस्तकालयों में तो नहीं है। इसके कुछ अंश लुप्त भी हो गए थे, जिनका उद्धार लूकस पेसिओलस ग्रन्थ के आधार पर किया गया। बिबलिओथेका मेथेमेटिका (मरहठ का) देखने से शायद कुछ अधिक विस्तार मालूम हो।

४. बाँठिया जी का अनुमान ठीक है कि हो सकता

है कि अरब से यूरोप में लेओनार्डो द्वारा ही Book Keeping पहुँची हो।

५. यह हो सकता है कि बहीखाता की पद्धति भारत से अरब में गयी हो, पर बहीखाता में, चाहे वह अरब का हो, या भारत का, डबल एण्ट्री पद्धति रही ही होगी, इसमें मुझे सन्देह है। हो सकता है कि पुरानी पद्धतियाँ (Single entry) पद्धति की ही हों।

---

*लूकस पेसिओलस या लूकसडिबर्गो ने बुक-कीपिंग पर पुस्तक लिखी, इसका प्रथम उल्लेख केली (Kelly) ने १८०५ में अपने ग्रन्थ में किया। इस संबंध में इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटिनका (भाग २, पृ० ४४, १८७५ ई०) में ये शब्द हैं—Kelly, however who wrote on the subject in 1805, asserts, and it is not disputed, that a friar, named Lucas di Borgo, whose work on algebra was first to appear in print, was the first to write a treatise upon book-keeping, and this was published at Venice in 1895' इन शब्दों से यह व्यञ्जना निकलती है, कि लूकस ने बुक कीपिंग पर एक स्वतंत्र ही ग्रन्थ लिखा था, जो उसकी बीजगणित का अध्याय नहीं था। यह कहीं नहीं लिखा कि इस बुककीपिंग में डबल एण्ट्री पद्धति थी ही।

विज्ञान परिषद् के ४२ वें वर्ष का कार्य-विवरण—[पृष्ठ १३२ का शेषांश]

वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर इन्डियन साइंस काँग्रेस के शिविर में निर्वाचन पत्र खोले गये। अगले वर्ष के लिये निम्नलिखित सज्जन पदाधिकारी निर्वाचित हुए :—

सभापति	श्री हीरालाल खन्ना
उपसभापति	डा० निहाल करण सेठी
,,	डा० गोरख प्रसाद
प्रधान मंत्री	डा० रामदास तिवारी
मंत्री	डा० देवेन्द्र शर्मा
,,	डा० रामचरण मेहरोत्रा
कोषाध्यक्ष	डा० सन्त प्रसाद टंडन
स्था० अंतरंगी	डा० प्यारे लाल श्रीवास्तव
,,	डा० धर्मेन्द्र नाथ वर्मा
स्था० अंतरंगी	श्री हरिमोहन दास टंडन
,,	डा० रामकुमार सक्सेना
प्रधान संपादक	डा० हीरालाल निगम
बाहरी अंतरंगी	श्री हरद्वारी लाल टंडन, प्रिंसिपल जी० एन० के० इन्टर कालेज, कानपुर
,,	डा० ब्रजमोहन, काशी वि० वि०
,,	डा० दौलत सिंह कोठारी, दिल्ली वि० वि०
,,	डा० रामधर मिश्र, लखनऊ
,,	डा० आत्माराम, कलकत्ता
आयव्ययपरीक्षक	डा० सत्य प्रकाश

उत्तर प्रदेश के सर्प

श्री विनयकुमार, लखनऊ

उत्तर प्रदेश के सर्प विषैले तथा विषरहित दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं। अब तक इन दोनों भागों के अन्तर्गत ३२० से भी अधिक जाति के सर्प पहिचाने गये हैं। इनमें से केवल तीन प्रकार के सर्प ही प्राणघातक सिद्ध हुए हैं। शेष या तो पूर्णतया विषरहित हैं या इनके विष से कोई विशेष हानि नहीं होती है। विषरहित सर्पों के डसने से जो मृत्यु हो जाती है, वह अधिकतर भय या घबड़ाहट के कारण होती है, विष का कोई सम्बन्ध नहीं होता। विषैले तथा विना विष वाले सर्पों की पहिचानने की कई विधियाँ हैं। पर सर्पों के आकार, रूप तथा उनके शरीर के सिरनों (Scales) की सहायता से वर्तमान प्रकृतिवादियों की जो पहिचानने की विधियाँ हैं वह साधारणतया कम पढ़े लोगों के लिये बिलकुल व्यर्थ है। क्योंकि बहुत ही कम ऐसे साहसी होंगे जो जीवित सर्प के निकट जाकर उसके आकार तथा सर और धड़ के छोटे-छोटे सिरनों (Scales) की परीक्षा करके उनको पहचान सकते हों, चाहे उनको वर्गीकरण की विधियाँ कंठगत ही क्यों न हों और वास्तव में वर्तमान पहचानने की विधियाँ केवल भूरे सर्पों के लिये ही ठीक हैं। फिर भी सर्पों का वर्गीकरण उनके दंत (Fangs) द्वारा भी सरलता से किया जा सकता है। हर एक विषैले सर्प के ऊपरी जबड़े के सामने वाले भाग पर दो लम्बे दंत पाये जाते हैं जो कि बिना विष वाले सर्पों में बिलकुल नहीं होते हैं। विषैले सर्प इन्हीं दंत द्वारा वार करते हैं।

सर्पों के विभाजन की रीति कुछ इस प्रकार का होनी चाहिये जिससे साधारण मनुष्य भी उनको दूर से पहिचान सकें। परन्तु दुर्भाग्य वश हमारे समक्ष अभी तक कोई ऐसी सुविधाजनक विधियाँ नहीं रक्खी गई हैं, क्योंकि अधिकतर जो अन्वेषण हुए हैं वह केवल मरे सर्पों के ऊपर किये गये हैं, जीवित सर्पों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। जहाँ तक मुझे ज्ञान है अभी तक कोई ऐसा विवरण नहीं प्रकाशित हुआ है जिसमें जीवित सर्पों का उनकी प्रवृत्ति तथा व्यवहार द्वारा वर्गीकरण किया गया हो। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इस जन्तु के बारे में हम सभी अनभिज्ञ हैं जो कि हजारों वर्षों से मनुष्य को हानि पहुँचाते आ रहे हैं। हम लोगों का अधिकांश ज्ञान व्यावसायिक सपेरों की कथित कहानियों से है।

विषैले सर्प

(१) फन वाले सर्पः—फनीस, कोबरा (किंग कोबरा)

(२) त्रिभुजाकार सर वाले सर्पः–दबोइया 'वाइपर'

(३) धारी वाले करेत :—काला करेत

फन वाले सर्प (फनीस) :—उत्तर प्रदेश के सब फन वाले सर्प विषैले होते हैं पर शरीर पर के चिन्हों तथा रंगों में भिन्न प्रकार के पाये जाते हैं। परन्तु इनकी आयु के साथ-साथ रंग तथा चिन्हों के बदलने के कारण इनका वर्गीकरण इस आधार पर नहीं किया जा सकता। कोबरा की मुख्य जाति जो उ० प्र० में पाई जाती है काले रंग की होने के नाते Blak Cobro काला सांप कहलाती है। पर हैदराबाद में भूरे कोबरा भी पाये गये हैं तथा कुछ सफेद कोबरा जिन्हें दूधिया भी कहते हैं, पकड़े गये हैं। उत्तर प्रदेश में कोबरा की तीन मुख्य किस्में पाई जाती हैं।

(अ) Two ringed Cobra या Spectacled Cobra जिसके फन पर दो वृत्त (rings) का ऐनक की भाँति बाना चिन्ह होता है।

(ब) एक का कला Moncled Cobrq जिसके सर पर केवल एक वृत्त का चिन्ह होता है।

(स) बिना चिन्ह वाले Cobra with unmarked hoods यह कई प्रकार के होते हैं। किन्तु अपने विष तथा आदतों में एक समान होने के कारण उनके चरित्र के भिन्न-भिन्न छोटे-छोटे तत्वों पर विचार करने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है।

किसी भी हिलती हुई वस्तु को देखकर फन वाले सर्प अपने फन को फैलाकर खड़ा कर लेते हैं और फिर अपने समक्ष हिलती हुई वस्तु के अनुसार एक गुणात्मक ढंग से अपने फन को इधर-उधर हिलाने लगते हैं। यह कोबरा की एक ऐसी चारित्रिक विशेषता है जिससे वह शीघ्र ही पहचाना जा सकता हूँ। संपेरे के अपनी बीन बजाकर सर्प को मोहित कर लेने में, बीन की संगति नहीं अपितु बीन का इधर-उधर हिल'ना, महत्व रखता है। संपेरे इस तथ्य से पूर्णतया परिचित हैं। पर वर्षों से संगीत द्वारा आकर्षित करने की विधि को रहस्य बनाकर इसे उन लोगों ने अपना जीविका-निर्वाह का साधन बना रक्खा है। प्रायः बनों में मनुष्य, पत्ती तथा और जन्तुओं में भय का संचार करने के लिये (डराने के लिये) कोबरा अपने राजसी फन को फैलाये, शान से वायु में इधर-उधर हिलाते हुए एक विशेष स्थिति में रहता है। जब तक इसका उद्देश्य अपने विरोधी को डराने का रहता है यह इसी स्थिति में बैठा रहता है। पर जब कोबरा वास्तव में किसी पर वार करना चाहता है तो अपने फन को पृथ्वी के समीप लाकर कमानी की भाँति झटके से वार करता है। इस दशा में यह बड़ा भयंकर होता है। ऐसी परिस्थिति में किसी कपड़े के टुकड़े या रूमाल को किसी लकड़ी के सिरे पर बांध कर आगे बढ़ते हुए सर्प के सामने लाकर इधर-उधर हिलाने से सर्प आगे नहीं बढ़ता और वार भी नहीं करता, फिर अपने फन को उठाकर हिलाने लगता है। कोबरा की इस मुख्य प्रवृत्ति के कारण सर्प की दृष्टि हिलती हुई वस्तु पर स्थिर हो जाती है और उसका ध्यान बिलकुल एकाग्र हो जाता है और वह उस समय हर एक दूसरी चीजों को भूल जाता है जिससे कि इसको पकड़ लेना बहुत ही सरल हो जाता है। अब यदि कोई दो या तीन फुट की दूरी पर अपने बायें हाथ में कोई कपड़ा लेकर सर्प के सामने इधर-उधर हिलयें और फिर अपने हाथ को धीरे-धीरे चारों तरफ ले जायें तो कोबरा भी अपना फन जिधर कपड़ा घूमेगा उधर ही फेर लेगा और अन्त में अपनी पीठ आप की तरफ कर लेगा। और तब आप दाहिने हाथ से उसके सर को नीचे लटका कर दुम पकड़ सकते हैं।

इस स्थिति में सर्प अपने फन को ऊपर उठाकर हाथ तक पहुँचाने का प्रयत्न करेगा। पर एक धीरे से झटका देने से वह कुछ न कर सकेगा। लेकिन इसका एक दूसरा उपाय यह भी है। कि उसके धड़ Trunk को ऐसे ऐंठ दिया जाय कि उसकी दुम अलग हो जाय जो कि साधारण छिपकली की दुम की भाँति फिर निकल आती है। वास्तव में जब कोबरा का ध्यान किसी हिलती हुई वस्तु पर स्थिर हो जाता है तो चाहे दुम के भाग से या शरीर के मध्य भाग से या उसके गले से भी पकड़ सकते हैं। पर हिलाते हुये कपड़े को बराबर उसी दशा में हिलाते रखना चाहिये नहीं तो परेशान होकर कोबरा वार कर सकता है। इस गति को ही वह जीवन का चिन्ह समझता है।

दबोइया Vipers

इन सर्पों के विशेष त्रिभुजाकार सर से इन्हें सरलता से पहचाना जा सकता है। इनका शरीर गले के पास कुछ संकुचित होता है तथा दुम भी (धड़) trunk के बाद एकदम पतली हो जाती है। इसकी चाल और सर्पों से बिलकुल भिन्न है। जब यह किसी हिलती हुई वस्तु को देखता है तो यह अपने सर को उसी तरफ घुमाकर आगे की ओर न चलकर पीछे चलने लगता है। इसलिए हम वास्तव में कह सकते हैं कि यह हार मानकर भागने पर पीठ नहीं दिखाता। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि चाहे यह आगे चले या पीछे इसके Coils

गिण्डुरी, गोले का आकार कभी नहीं बदलता। जब यह क्रोधित हो जाता है तो घड़ी की कमानी की भाँति अपने को लपेटकर यह उछल-उछल कर अपने शरीर को सीधा और टेढ़ा करके आगे या पीछे की ओर बढ़ता है। इस जाति के सर्प पंजाब, सिंध और भारत के सूखे और पहाड़ी भागों में भी पाये जाते हैं। इनका जीवन-निर्वाह अन्डों तथा Lizards पर होता है। यह अधिकतर आबादी के मकानों में नहीं रहते क्योंकि ये चूहों को नहीं खाते हैं।

देहली के समीप जंगलों में इन सर्पों के शरीर पर कड़ी scales होती है और जब यह जमीन पर रेंगते हैं तब एक विचित्र चरचराना, grating sound पैदा होती है। यह आवाज और सर्पों के विशेष hiss से बिलकुल परे हैं। सर्पों की यह सनसनाहट (hissing) केवल उनकी श्वासोच्छ्वास क्रिया है जो कि संगीतात्मक होती है। पर Vipers द्वारा प्रसारित ध्वनि गर्म घी की बनबनाहट से बहुत कुछ मिलती है। अमरीकीय Vipers के दुम के सिरे पर rattle होता है जिससे वह खड़खड़ाहट rattle sound पैदा करते हैं तथा उनको इसीलिये rattle snakes के नाम से पुकारते हैं। देहली के जिलों में Vipers की जाति को afai, Bombay में pharsa पंजाब में phissy तथा U. P. में Gunas के नाम से पुकारते हैं। इसकी hiss बहुत तीव्र होती है। इनके दंत (Fang) बहुत लम्बे होते हैं और जब यह क्रोधित होकर मुख खोलता है तब वे बाहर निकले दिखलाई देते हैं। इसके न तो फन ही होता है और न यह अपने trunk को उठाकर Cobra की भाँति इधर-उधर हिलाता ही है।

करेत—वैसे तो ये समस्त भारत में पाये जाते हैं पर उत्तर प्रदेश के करेत बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके शरीर पर काला और सफेद Coral line के चिन्ह होने के कारण इनको 'काले गडते' कहते हैं। वास्तव में इनका पहचानना कठिन है क्योंकि और बहुत से विषरहित सर्पों के शरीर पर भी ऐसे ही चिन्ह पाये जाते हैं। परन्तु इनकी कुछ मुख्य विशेषतायें और दूसरे सर्पों से कुछ हद तक अलग हैं। यदि आप दूर से ही इसके सर पर किसी भी लकड़ी से मार दें तो यह तुरन्त लिपटकर अपने सर को Coils कुण्डली में छिपा लेता है और इस दशा में किसी भी छड़ी से इसे Coils में फँसाकर टोकरी में बन्द कर सकते हैं क्योंकि ऐसी दशा में यह कभी नहीं काटता। यह ज्यादातर लुकछिप कर रहना पसन्द करता है। और अपने आप वार भी कम करता है। अपने आप वार करने के गुण Vipers तथा Cobras में होते हैं। इन्हीं सब कारणों से करेत को चोट्टा (चोर) साँप भी कहते हैं।

सर्पों को पकड़ने की विधियाँ

Black Cobra के पकड़ने की विधि का हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं। पर और जातियों के सर्पों के पकड़ने की विधियाँ अधिकतर उनकी भिन्न-भिन्न आदतों पर आधारित होती हैं। सर्प निकलने पर शोरगुल करना तथा दौड़धूप करना बिलकुल बेकार है। क्योंकि सर्पों के कान की बनावट ऐसी होती है जिससे वह वायु द्वारा प्रसारित ध्वनि को नहीं ग्रहण कर सकता है। पर सर की हड्डियों द्वारा प्रसारित धीमी खरखराहट या भारी आवाज को स्पष्ट सुन सकता है। पर इनकी सुगन्ध तथा दृष्टि की शक्ति बहुत ही तीव्र होती है। ये गति को ही जीवन का चिन्ह समझता है और इसीलिए किसी भी हिलती वस्तु को देखकर या तो उससे दूर भागता या उस पर वार कर बैठता है। पर इसकी प्रवृत्ति मनुष्यों से बचने की होती है और फिर दूसरी बात यह है कि इसकी आदत चोरी से वार करने की होती है क्योंकि ऐसा करने से कोई खाने की चीज भी नहीं मिलती। यह अपने आप किसी भी खुले स्थान पर वार नहीं करता। इसे चाहे चूहे का भी शिकार करना हो तो चुपके से ही वार करेगा। सर्प के निकलने पर उसके सामने कोई कपड़े का टुकड़ा, कमीज, धोती फेंकने से वह उसी में छिप जायगा और जब तक बाहर rapping noise होती रहेगी वह उसी में छिपा रहेगा और तब इसके सर को

ासी लकड़ी से दबाकर सरलता से पकड़ सकते । अधिकतर सर्प जमीन पर काटता है जब उसे ाई बचने की उपाय नहीं सूझती। पर बहुत सी टनाओं पर सर्पों को जानबूझकर मनुष्य पर वार रते पाया गया है। पर ऐसी घटनाओं के बारे में तो मैं अधिक प्रकाश ही डाल सकता हूँ और न रे सामने हुई ही हैं।

वाइपर सर्प को पकड़ने की विधियां

Vipers की कटीली झाड़ियों में रहने तथा य के समय पीछे चलने की आदतों से इनके हचानने तथा पकड़ने में बहुत सुविधा पड़ती है। पेरे कुछ टहनियों को एक लकड़ी के सिरे पर बाँध र सर्प के पास ले जाते हैं और वह तुरन्त उस पर ढ़ जाता है और तब इसे कहीं भी सुरक्षित स्थान र ले जाया जा सकता है। ये सर्प अधिकतर बिलों ; भीतर रहना पसन्द करते हैं। इसीलिये यदि एक ोन के डिब्बे के सूराख को इनके सामने रख दिया ाय और पीछे से (Rapping noise) की जाय ो यह डिब्बे में घुस जायगा। इसकी एक दूसरी ादत घर के कोमों में छिपने की भी है और तब कसी थैले या मिट्टी के घड़े को उसके सामने रखने ो सर्प तुरन्त उसके भीतर घुस जायगा। इस तरीके ो करते (Kraits) को भी पकड़ सकते हैं। पर रेत को पकड़ना और भी आसान है। यदि किसी ड़ी से या किसी चिकनी मिट्टी के टुकड़े से इसके र पर धीरे से चोट किया जाय तो यह तुरन्त घड़ी ी कमानी की भाँति लिपट जायगा और इस दशा ां उसे उठाकर थैले में रक्खा जा सकता है।

विषरहित सर्पों को तो किसी भी तरीके से पकड़ कते है क्योंकि उनमें से बहुतों को तो काटने की वेधि तक भी नहीं मालूम होती। कोई भी उनसे खेल सकता है, चाहे किसी बच्चे के गले में माला नाकर डाल दें, या अपने जेब या बाहों में रख कते है उसे घरों में पाल भी सकते हैं। यह सर्प नुष्य जाति के लिये बहुत उपयोगी होते हैं, जहाँ भी ये होंगे चूहों का पता भी न लगेगा। और इस तरह फसल को चूहों से सरलता से बचाया जा सकता है। मनुष्य जाति के ऐसे संगी तथा लाभ-कर्त्तों को मारना पाप ही है।

'सर्पों का पालना'

सर्पों को उनके रहन-सहन के अनुसार दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है।

१. Burrowing Snakes:—इनमें से कुछ तो देखने में Blind worm के रूप से मिलते जुलते हैं पर 'दुमुहाँ' सर्प के समान होते हैं। वास्तव में दुमहाँ सर्प के दो सर नहीं होते! दूसरा सर केवल दुम का एक छोटा सा भाग होता है। यह सर्प विष रहित है तथा यह इतना सीधा होता है कि चाहे कोई पैरों तले भी कुचल दे तो भी नहीं काटेगा। इसको किसी ढके डिब्बे या मिट्टी के बर्तन में पाला जा सकता है। इसके बच्चों का मुख्य आहार bird worm है। पर बड़े सर्प चूहों पर जीविका निर्वाह करते हैं।

(२) Ground snakes : - इनमें से अधिकतर non burrowing होते हैं तथा दूसरे जानवरों द्वारा बनाये बिलों में रहते हैं।

यदि सर्प के लम्बाई से अधिक गहरा कोई गड्ढा बनाया जाय जिससे वह अपने धड़ पर खड़ा होकर भी ऊपर न चढ़ सके तो, इस गड्ढे में उसे बन्दी किया जा सकता है। कम से कम यह गड्ढा पाँच फुट गहरा होना चाहिये और इसकी दीवालों को गोबर (Cowdung) से चिकना बना देना चाहिये। ऐसा करने से सर्प किसी खुरदुरी चीज का लाभ उठाकर ऊपर नहीं निकल सकता है।

ये सर्प अधिकतर चूहों, मेढकों, Lizards तथा चिड़ियों के अन्डों और छोटे बच्चों का आहार करते हैं। ये समूचे को निगल जाते हैं। जीवित पक्षियों तथा जन्तुओं को इसके सम्मुख रखकर वहाँ से हट जाना चाहिये क्योंकि यह एकान्त में ही भोजन करना पसन्द करता है। गड्ढे में कुछ सूखी घास भी डाल देनी चाहिये जिससे कि यह

इच्छानुसार अपने को छिपा सके, फिर गड्ढे में कुछ सूखी टहनियों को भी डाल देना चाहिये क्योंकि यह सर्प झाड़ियों में रहना बहुत पसन्द करते हैं। और जन्तुओं की भांति सर्प को भी जल की आवश्यकता पड़ती है इसलिये इसके सामने नियमानुसार जल रख देना चाहिये। सिद्धान्तानुसार सर्प दुग्ध नहीं पीते पर भोजन न मिलने पर पी भी सकते हैं। इसीलिये सर्प के सामने दुग्ध रखने से कोई लाभ नहीं। कभी-कभी बन्दी दशा में सर्प भोजन तथा जल का बहिष्कार कर देते हैं। ऐसी दशा में इसके मुख को बलपूर्वक खोलकर जल और भोजन गले में डाल देना चाहिये।

'ध्यान रखने की कुछ बातें'

निम्नलिखित सर्पों की आदतों पर आधारित सिद्धान्तों को यदि ध्यानपूर्वक ठीक तरीके से माना जाय तो सर्प के काटने के भय को न्यून करने में बहुत ही सहायता मिल सकती है।

(१) सर्प सदा अपने को छिपा कर रखना पसन्द करते हैं। इसीलिये बस्ती के पास कोई सूराख या कोने न रखने चाहिये जहाँ कि वे आसानी से छिपे रह सकें।

(२) बहुधा सर्प, विशेषकर Cobra, चूहों की खोज में गृहस्थ के मकानों में चले जाते हैं। इसीलिये यदि घरों में चूहे न हों तो सर्प नहीं आवेगा।

(३) सर्प दूसरे जन्तुओं द्वारा बनाये बिलों में रहते हैं। इसीलिये घर के सब दरारों और सूराखों को बन्द करवा देना चाहिये तथा घर के सामने को इस तरह न रखना चाहिये जिसमें कि सर्प छिप सकें। घर की नाली के बाहरी सिरे को जाली से बन्द रखना चाहिये। साधारणतः सर्प घर के मुख्य द्वार से भीतर आते हैं। मकानों के पास कबूतरों या मुर्गी के दर्बे न रखना चाहिये क्योंकि अन्डों की खोज में सर्प घर में भी आ सकता है।

(४) जमीन पर सोते समय जहां तक हो सके खुले स्थान पर लेटना चाहिये। दीवाल तथा कोनों के पास कभी नहीं लेटना चाहिये क्योंकि सर्प दीवाल के निकट रेंगना ज्यादा पसन्द करते हैं। और ऐसी दशा में सोते हुए आदमी के शरीर से दब कर काटना स्वाभाविक है।

(५) सर्प सदैव ऊपर चढ़ने के बजाय किसी भी रुकावट के चारों तरफ घूम कर जाना ज्यादा पसन्द करते हैं। इसीलिये सोफे, चौकी, चारपाई पर लेटना सबसे उत्तम होता है।

(६) चिकने धरातल पर सर्प आसानी से रेंग नहीं सकता। इसीलिये फर्श पर कोई चिकनी चटाई बिछा लेनी चाहिये।

(७) सर्प (rapping noise) खटखट की ध्वनि को आसानी से सुन सकते हैं इसीलिये रात को लकड़ी का खड़ाऊँ या चप्पल पहनना चाहिये।

(८) सर्पों के प्राकृतिक शत्रुओं को भी जैसे नेवला, बिल्ली, मोर आदि को पाल कर उससे बचाव किया जा सकता है।

प्रतिभास तथा उसकी उपयोगिताएँ

श्री हरिमोहन, भौतिक शास्त्र विभाग, विश्वविद्यालय प्रयाग

प्रतिभास तथा खाद्य-विज्ञान

(Fluorescence and Food-Technology)

विज्ञान के संस्पर्श से मानव जीवन का कदाचित ही कोई ऐसा क्षेत्र अवशेष हो जिसकी रूपरेखा में कुछ न कुछ मूलभूत परिवर्तन न आए हों। वर्तमान युग को वैज्ञानिक युग कहना समय की पुकार है। मनुष्य आज प्रत्येक वस्तु का वैज्ञानिक विश्लेषण चाहता है तथा उसके इसी दृष्टिकोण के सहारे क्या-क्या अनुसंधान किये जा चुके हैं तथा किये जा रहे हैं इसका समुचित अनुमान लगाना साधारण मस्तिष्क से परे है। ध्येय-साधना में सतत परिश्रमशील इस वैज्ञानिक ने भूत के असंभाव्य को वर्तमान का खेल बना कर भविष्य की अनूठी कल्पना आज विश्व को दी है।

प्रस्तुत लेख भी "विज्ञान" के गताङ्कों में प्रकाशित प्रतिभास लेखमाला का एक मुक्तक है। इसमें इस रहस्य के दिग्दर्शन कराने का समुचित प्रयास किया गया है कि खाद्य-विज्ञान में प्रतिभास तथा प्रतिभास-परीक्षण का क्या स्थान है। इस उपयोगिता का वर्णन विभिन्न शीर्षकों में किया गया है।

निम्नांकित विभिन्न विचारों को व्यक्त करने से पूर्व ही हम यह कहना अत्यन्त उपयुक्त समझते हैं कि यद्यपि प्रतिभास परीक्षा से वस्तु-शुद्धि की पर्याप्त पुष्टि हो जाती है फिर भी प्रतिभास-परीक्षण के परिणाम का मूल्य अन्यान्य विभिन्न भौतिक तथा रासायनिक परीक्षणों की उपस्थिति में ही निर्णयात्मक मानना चाहिए।

(१) प्रतिभास-परीक्षण तथा मक्खन, दूध एवं तत्सम अन्यान्य खाद्य

(Fluorescene test and Butter, milk and other farm product.) अतिबैंजनी प्रकाश किरणों में परिशुद्ध मक्खन का प्रतिभास पीला तथा मारगैरीन का नीला होता है। दोनों के मिश्रण भी सामान्यतः प्रतिभास वर्ण-परिवर्तन के कारण पहिचाने जा सकते हैं। वनस्पति तेल की मिलावट से देशी घी की आर्तवन संख्या (Refractive Index) में कमी हो जाती है परन्तु जब मिलावट इतनी कम हो कि मिश्रण की आवर्तन संख्या में कोई माप्य परिवर्तन न हो तब प्रतिभास-परीक्षण अन्तर विवेचन के लिए अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध होता है। देशी घी का प्रतिभास कुछ-कुछ हरे रंग का होता है परन्तु उसमें अन्य तेल मिला देने से प्रतिभास लुप्त हो जाता है।

शुद्ध दूध का प्रतिभासिक वर्ण पीला होता है तथा शुद्ध दूध की प्रतिभासिक तीव्रता उसकी चिकनाई की समानुपाती होती है। वैज्ञानिक अवलोकनों के अनुसार गाय, भेड़, बकरी, शेरनी तथा घोड़ी इत्यादि सभी जानवरों के दूध का प्रतिभास पीला होता है। स्त्री के दूध का प्रतिभासिक वर्ण भी कुछ कुछ पीला ही होता है।

पनीर (Cheese) का प्रतिभासिक वर्ण भी साधारणतः पीला ही होता है तथा बासी होने पर प्रतिभास में पर्याप्त परिवर्तन आ जाता है इसकी वास्तविक समीक्षा का सम्बन्ध तत्सम्बन्धी अनुभव से है।

(२) प्रतिभास-परीक्षण तथा खाद्यान्न

(Fluorescence test and Food-grains)

उच्चकोटि के गेहूँ के दाने के पार्श्वच्छेद (Cross-Section) को यदि अतिबैंजनी प्रकाश-पुञ्ज में निरीक्षण किया जाय तो उसके नीले प्रतिभास से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि उसमें ग्लूटेन (Gluten) की मात्रा पर्याप्त है। निम्नकोटि के गेहूँ का प्रतिभास पीला होता है। अच्छे गेहूँ तथा (Rye) के आटे का प्रतिभास हल्के नीले रंग का होता है परन्तु अधिक दिनों तक रखने से पीला होने लगता है। जौ तथा आलू के आटे प्रतिभास-हीन दिखाई पड़ते हैं। मटर के आटे का प्रतिभास लाल तथा सोयाबीन के आटे का हरा-नीला होता है। आटों की मिलावट का पर्याप्त ज्ञान प्रतिभास-सूक्ष्मदर्शी यंत्र की सहायता से सरलतापूर्वक हो जाता है। इस बात को परखने के लिए कि अमुक आटा किसी क्लोरीन-यौगिक से प्रभावित तो नहीं है, आटे को पहले ईथर से क्रियान्वित करके तब उसकी प्रतिभास परीक्षा की जाती है।

(३) प्रतिभास-परीक्षण तथा शकर इत्यादि

(Fluorescence-testing and Confectionary, Sugars and Jams)

चुकन्दर की शकर का प्रतिभास लगभग नहीं के बराबर होता है परन्तु Lactose, साधारण चीनी (Cane Sugar) तथा Solid glucose इन प्रकाश-रश्मियों में लाल दिखाई पड़ती हैं। Succrose प्रकाश हीन होती है। परन्तु ग्लूकोज़ के पानी में शरबत का प्रतिभास नीला होता है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य रासायनिक परीक्षण जो कि विभिन्न Sugars के अन्तर-विवेचन के काम आते हैं अतिबैंजनी रश्मिपुञ्ज में अति-सुगम हो जाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के Jams की शुद्धता की परख करने के लिए भी प्रतिभास-परीक्षण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है।

इस विषय में विशेष जानकारी के लिए पढ़िए

(Fluorescent Analysis under ultra-violet light by Radley and Grant)

इन रश्मियों में जब शहद का निरीक्षण किया जाता है तब कोई विशेष प्रकार का प्रतिभास दृष्टि-गोचर नहीं होता परन्तु Capillary-method (केशिका-विधि) में केशिका में भरा हुआ शुद्ध प्राकृतिक शहद एक हल्के नीले रंग का एक स्तम्भ रूप से दिखाई पड़ता है।

(४) प्रतिभास-परीक्षण तथा तेल इत्यादि

(Fluorescence-testing and Oils etc)

विभिन्न उद्गमों से उपलब्ध जैतून के तेल के प्रतिभास का अध्ययन वैज्ञानिकों ने किया है। प्राकृतिक जैतून के तेल का प्रतिभास पीले रंग का होता है परन्तु विलय करके निकाले गये तेल का प्रतिभास सामान्यतः बैंजनी रंग का होता है तथा मिश्रण का ज्ञान परिशुद्ध तेल के प्रतिभास से तुलना करने पर ही भली प्रकार हो सकता है।

बादाम, मूंगफली तथा तिल इत्यादि तेलों का प्रतिभास पीलापन लिये होता है। चीड़ के तेल का प्रतिभास हल्का हरा तथा अरंडी के तेल (Castor oil) का नीला होता है। अनेकों प्रकार के Cod-liver oils का प्रतिभासिक अध्ययन भी किया जा चुका है तथा प्रतिभास-परीक्षण उनके विवेचन में अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है।

(५) प्रतिभास-परीक्षण तथा अंडे, गोश्त तथा इस प्रकार के अन्यान्य खाद्य

(Fluorescence-testing and eggs, meat and other such edibles)

ताजे अंडों के छिलकों का प्रतिभास गुलाबी होता है तथा बासी अंडों का प्रतिभास नीले से बैंजनी तक होता है। पाउडर किये हुए सूखे अंडे का प्रतिभास बादामी रंग का होता है जो धीरे-धीरे नीले रंग में परिवर्तित हो जाता है। बासी मांस में शिरायें तथा पेशियां इत्यादि अपने विशिष्ट प्रतिभास के कारण सरलता से पहिचानी जा सकती हैं।

बासी मांस में उत्पन्न कुछ कीड़े बड़ा विचित्र सा प्रतिभास निस्सृत करते हैं जिसके कारण उनकी पहिचान अत्यन्त सरल हो जाती है।

मछली जब बिल्कुल ताजी होती है तो अति बैंजनी प्रकाश पुञ्ज में गहरे बैंजनी रंग तथा बीच-बीच में सफेद नीले तथा लाल धब्बे ऐसी दिखाई देती है। ताजी मछली का रक्त प्रतिभास हीन रहता है। परन्तु सड़ने पर लाल हो जाता है। मछली के सड़ना शुरू होने से २४ घंटे पहले ही उनके प्रतिभासिक वर्ण में परिवर्तन आना आरम्भ हो जाता है अतः ऐसी मछलियों की जो कि शीघ्र ही सड़ जाने वाली हो, परख करके बाजार में बेचने के लिए भेज दिया जाता है। किसी अन्य विधि से २४ घंटे पहले यह जान लेना कि अमुक मछलियां सड़ जाने वाली हैं अत्यन्त ही दुस्तर है। प्रतिभास-परीक्षण से यह कार्य अत्यन्त ही सुगम हो जाता है। खाद्य रूप में काम आने वाले फफूँद का प्रतिभास पीला-स्लेटी रंग का होता है परन्तु विषैले फफूँद बादामी रंग का प्रतिभास निस्सृत करते हैं।

इसके अतिरिक्त अन्यान्य ऐसी खाद्य-सामिग्रियों की शुद्धि-परीक्षा के लिए प्रतिभास-विधि अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है।

(६) प्रतिभास-परीक्षण तथा शराब, फलों के रस इत्यादि तरल खाद्य

(Fluorescence-testing and wines, fruits juices etc)

मिलावट की गई शराब तथा फलों के रस इत्यादि भी प्रतिभास दीप की सहायता से परखे जा सकते हैं। रंगीन शराबों को परीक्षण से पूर्व Animal charcoal से रंगहीन कर लिया जाता है तथा केशिका-विधि से उसकी परीक्षा की जाती है। लगभग १०% से ऊपर तक की मिलावट इस विधि से सरलता पूर्वक जानी जा सकती है। फलों के रसों के साथ भी यही विधि उपयोग में आती है। Non-Alcoholic wines तथा डिब्बों में बन्द माँस तथा अन्यान्य खाद्यों को अधिक समय तक सुरक्षित रखने के लिये उनमें कुछ मात्रा किसी उपयुक्त Preservative की डाल दी जाती है जिससे वस्तु शीघ्र सड़ने न पाये। यह Preservative मात्रा में इतना कम डाला जाता है कि उसकी उपस्थिति देखने मात्र से नहीं जानी जा सकती। इसके लिये प्रतिभास-परीक्षण अत्यन्त ही सुगम तथा सुलभ साधन है। उदाहरणतः Sodium Salicylate का प्रतिभास इतना तीव्र होता है कि इसका १ भाग २५००० भाग दूध में सरलता से परखा जा सकता है।

इन सब उपयोगों के अतिरिक्त भी प्रतिभास-परीक्षण का खाद्य-विज्ञान में एक विशेष स्थान है क्योंकि इस विधि द्वारा वस्तु को बिना स्पर्श किए ही उसकी परीक्षा सम्भव है।

ऋणाणु

श्री० वसन्त लाल जैन, एम० एस-सी०, लेक्चरर, डिगरी-कालेज, भरतपुर (राजस्थान)

ऋणाणु के आविष्कार के साथ वैज्ञानिक विचारधारा के इतिहास में एक महत्वपूर्ण युग का श्रीगणेश होता है। इस आविष्कार द्वारा अनुप्राणित, प्रयोगात्मक और सैद्धान्तिक अनुसंधानों ने आज के वैज्ञानिक के भौतिक विश्व सम्बन्धी दृष्टिकोण को पूर्णतः बदल दिया है। यही नहीं इस आविष्कार के फलस्वरूप हमको प्राकृतिक घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या की मूलभूत प्रणालियों और सिद्धान्तों में महत्वपूर्ण संशोधन करने के लिये विवश होना पड़ा है। इस महान वैज्ञानिक क्रान्ति को समझने के लिये हमको नवीन पदार्थ विज्ञान के मूलस्वर ऋणाणु पर अपनी अंगुली डालनी चाहिये।

न्यूटन का गतिशासन और डाल्टन का ठोस परमाणु

प्राकृतिक घटनाओं को (Dynamics) व्यवस्थित रूप में समझने का प्रारम्भ न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त तथा उसके गतिशास्त्र के साथ होता है। न्यूटन ने गतिशास्त्र का उपयोग ज्योतिर्पिन्डों की चाल की व्याख्या करने में किया। गतिशास्त्र को वृहत विश्व (Microscopic universe) के पदार्थों की प्रत्येक प्रकार की गति को गणित समीकरणों का रूप देने में अभूतपूर्व सफलता हासिल हुई। इन समीकरणों द्वारा गतिमान पदार्थों की गतिसम्बन्धी वर्तमान अवस्था का ही निर्धारित नहीं किया जा सकता था किन्तु उनकी आगामी अवस्था के बारे में भी पूर्ण शुद्धता के साथ भविष्यवाणी की जा सकती थी। तब क्या न्यूटन की गति सम्बन्धी मान्यताओं का उपयोग सूक्ष्म विश्व के पदार्थों, (Microscopic universe) अणु, परमाणु आदि की गति की व्याख्या करने में हो सकता था? डाल्टन के परमाणुवाद ने, जिसके अनुसार द्रव्य परमाणुओं का केवल संगठन मात्र है, यह सुझाव उपस्थित किया कि प्रत्येक प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या परमाणुओं की गति और उनकी अन्तर क्रिया (Inter action) के आधार पर की जा सकती है। न्यूटन के गतिशास्त्र के उसूलों के आधार पर परमाणुओं की गति को गणित के सूत्रों की शक्ल में उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया गया। परमाणविक गति की इस गणित व्यवस्था को गैसीय पदार्थों की काइनेटिक थिअरी के नाम से पुकारा जाता है। रोबर्ट ब्राउन ने सूक्ष्माति-सूक्ष्म दर्शक (Ultramicroscope) द्वारा घोलों में लटके हुये द्रव्यकीय सूक्ष्म कणों को बड़ी तेजी के साथ नृत्य करते हुए देखा। इस गति को ब्राऊनीय गति (Brownian movement) कहते हैं। विश्लेषण करने पर मालूम होता है कि इस प्रकार की गति घोल के अणुओं के तीव्र कम्पन द्वारा पैदा होती है। इस प्रकार निरीक्षण की गई ब्राऊनीय गति इस बात का प्रमाण है कि प्रत्येक द्रव्यकीय परमाणु सतत ताण्डव नृत्य में संलग्न है। काइनेटिक थिअरी की पुष्टि में ब्राउनीय गति एक जबर्दस्त प्रयोगात्मक दलील थी। रसायन शास्त्र के क्षेत्रों में भी डाल्टन का परमाणुवाद एक आधारशिला सिद्ध हुआ। इस प्रकार १६वीं शताब्दी के विज्ञान-वेत्ता का यह दृढ़ विश्वास था कि जहाँ तक द्रव्य की रचना का सम्बन्ध है, डाल्टन का परमाणुवाद अन्तिम वस्तु है और आगे के वैज्ञानिक अनुसंधान केवल साधारण ब्योरों को स्पष्ट करने तक ही सीमित

रहेंगे। वह यह अनुभव नहीं कर सका कि उसकी कल्पना का अविभाज्य ठोस परमाणु एक दिन रहस्यों का अद्भुत भण्डार सिद्ध होगा।

वैद्युतीय पारमाणुकता

(Atomicity in Electricity)

जिस समय डाल्टन के परमाणु सम्बन्धी विचार धीरे-धीरे सिद्धान्त का रूप धारण कर रहे थे, विद्युत सम्बन्धी एक समानान्तर परमाणुवाद सामने आ रहा था। विद्युतयुक्त पदार्थों के व्यवहार और गुणों के अध्ययन के आधार पर फ्रैंकलिन ने अपना विद्युत सम्बन्धी एक द्रवीय सिद्धान्त (one fliuid theory) उपस्थित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार विद्युत एक प्रकार का द्रव है। जब किसी पदार्थ में इस द्रव का अत्यधिक मात्रा में सद्भाव होता है तो हम उस पदार्थ को धनात्मक विद्युत-युक्त कहते हैं। इसी प्रकार इस द्रव का अत्यधिक मात्रा में अभाव उस पदार्थ को ऋणात्मक विद्युत-युक्त बना देता है। इस प्रकार फ्रैंकलीन के एक द्रवीय सिद्धान्त में विद्युतकीय परमाणुवाद के बीज मौजूद थे। लेकिन फ्रैंकलीन को यह स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि एक दिन इस द्रव के मूलभूत परमाणु (Elementary Atom) को अलग करके उसका अध्ययन सम्भव हो सकेगा। उसके लिये यह केवल शुद्ध कल्पना की वस्तु थी। विद्युत की परमाणुक रचना सम्बन्धी प्रथम प्रयोगात्मक साक्षी फैरेडे के वैद्युत-विश्लेषण (Electrolysis) के नियमों के आविष्कार के रूप में प्रगट हुई। फैरेडे ने यह बताया कि जब किसी घोल के अन्दर विद्युत का प्रवाह कराया जाता है तो सारे एक बन्धक (Univalent) परमाणु विद्युत की समान मात्रा को लेकर गतिमान होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक बन्धक (Bivalent) परमाणु उससे दूनी विद्युत की मात्रा को लेकर चलता है। घोल की शक्ति का परमाणुओं द्वारा प्रेषित विद्युत की मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यद्यपि ये परिणाम काफी महत्वपूर्ण और चकाचौंध उत्पन्न करने वाले थे, लेकिन फैरेडे के मस्तिष्क में विद्युत की परमाणुक रचना की बात कभी नहीं आई, बल्कि उसका ख्याल था कि प्रत्येक वैद्युत घटना (Electrical Phenomenon) उस तनाव (Strain) का परिणाम है जो विद्युताविष्ट (Electrified) पदार्थ को अवगाहन देने वाले माध्यम (Medium) में पैदा होता है। अभी तक विद्युतयुक्त पदार्थों में विद्युतकीय आवेश (Electrical charge) जैसी वस्तु के निवास की कल्पना की जाती थी। यह आवेश (charge) दूर पर स्थित अन्य विद्युतकीय आवेशों को आकर्षण और विकर्षण की शक्ति से प्रभावित करता हुआ कल्पित किया गया था। फैरेडे को दूरी पर के प्रभाव (Action at a distance) के सिद्धान्त से अत्यन्त अरुचि थी। उसका विश्वास था कि दो वैद्युत आवेशों की पारस्परिक आकर्षण की क्रिया में उनको अवगाहन देने वाला माध्यम महत्वपूर्ण भाग लेता है। इस माध्यम को ईथर के नाम से निरूपित किया गया। फैरेडे को यह मानना पड़ा कि विद्युतकीय शक्तियों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रेक्षण ईथर द्वारा ही होता है। आगे चल कर इन्हीं विचारों को "मैक्सवैल ने अपने वैद्युत चुम्बकीय सिद्धान्त (Electro-magnetic theory) के रूप में गणित का जामा पहिनाया। सन् १८६६ में हर्ट्ज ने प्रयोगात्मक रूप में यह सिद्ध किया कि ईथर में विद्युतकीय का संचालन तरंगों के रूप में होता है और यह तरंगें आकाश के वेग के साथ चलती हैं। प्रकाश का वेग प्रति सेकिंड १८६००० मील है। हर्ट्ज द्वारा उपस्थित प्रयोगात्मक साक्षी, फैरेडे की विद्युतोत्पन्न तैजस तनाव (Ether Strain) सम्बन्धी धारणा की पूर्ण विजय थी। इस प्रकार जो कुछ सिद्ध किया गया वह यह नहीं था कि विद्युतमाध्यम के तनाव की अवस्था है, बल्कि यह कि जब कभी किसी पदार्थ पर विद्युत आवेश प्रगट होता है तो उस पदार्थ के चारों ओर का माध्यम ऐसी शक्तियों का स्थान बन जाता है जिनका प्रेक्षण उसमें होकर होता है। इस प्रकार

विद्युत का तनाव सिद्धान्त उसके परमाणुक सिद्धान्त का विरोधी नहीं था। फिर भी उसने लोगों के हृदय में यह गलत धारणा पैदा कर दी कि विद्युत पारमाणविक न होकर एक अटूट सत्ता (Continuous entity) है। जोन्स्टन स्टोनी ने सन् १८७९ में केवल विद्युत के पारमाणविक सिद्धान्त का ही प्रतिपादन नहीं किया, बल्कि वे कुछ आगे भी बढ़े। उन्होंने मूलभूत विद्युत आवेश का मूल्य निर्धारित करने की कोशिश की। मूलभूत विद्युत आवेश के स्टोनी द्वारा निर्धारित मूल्य और आधुनिक प्रयोगवेत्ताओं द्वारा निर्धारित मूल्य में विशेष अन्तर नहीं है। विद्युत की इस प्राकृतिक इकाई को उन्होंने 'इलैक्ट्रॉन' नाम से निरूपित किया। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग विद्युत के मूल परिमाण को प्रदर्शित करने के लिये किया। इस मूल परिमाण के द्रव्यमान (mass) और जड़त्वमान (inertia) की उन्होंने कल्पना नहीं की। परमाणु के उदासीन व्यवहार की व्याख्या करने के लिये उन्होंने यह सुझाव उपस्थित किया कि प्रत्येक परमाणु में एक धनात्मक और एक ऋणात्मक इलैक्ट्रोन होता है।

विद्युत के स्वभाव के प्रकटीकरण का आरम्भ

जब कि विद्युत के स्वभाव को समझने के उक्त प्रयत्न किये जा रहे थे कुछ महत्वपूर्ण आविष्कारों का एक वर्ग इस समस्या पर एक नवीन प्रकाश डालता हुआ प्रतीत हुआ। सन् १८८७ में प्रकाशीय वैद्युत प्रभाव (Photo electric Effect) सन् १८९२ में एक्स किरण तथा १८९६ में रश्मि उत्सर्ग (Radioactivity) के आविष्कारों ने पदार्थ-विज्ञान-वेत्ता को विद्युतकीय घटनाओं को समझने के लिये एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया। निम्न पंक्तियों में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि उक्त आविष्कारों ने किस प्रकार ऋणाणु के आविष्कार में महत्वपूर्ण पथनिर्देशन किया।

प्रकाशीय वैद्युत प्रभाव (Photo electric effect

उक्त प्रभाव का प्रयोग उन अनेक प्रकार की घटनाओं के लिये दिया जा सकता है जिनका सम्बन्ध प्रकाश और विद्युत की अन्तर क्रिया से है, किन्तु व्यवहार में इस प्रभाव का उपयोग पदार्थों द्वारा एक विशेष तरङ्ग-दैर्घ्य के प्रकाश से प्रदीप्त होने पर, ऋणात्मक विद्युत के उद्रेक (discharge) तक सीमित है। यहाँ पर हम इस प्रभाव की सैद्धान्तिक महत्ता का विवेचन नहीं करेंगे। हम यहाँ अपने को केवल इसके प्रयोगात्मक पहलू तक ही सीमित रखेंगे। और यह समझने की कोशिश करेंगे कि किस प्रकार इस प्रभाव ने ऋणाणु के आविष्कार में सहयोग दिया। वैद्युत चुम्बकीय तरङ्गों (Electro magnetic waves) की सत्ता पर प्रयोग करने के दौरान में हर्ट्ज़ ने प्रकाश के विद्युतकीय प्रभाव का निरीक्षण किया था। उसने देखा कि (High voltage) के स्रोत से सम्बन्धित दो विद्युत द्वारों के बीच में वैद्युत विसर्ग (Electrical Discharge) अधिक आसानी से होने लगता है, यदि इनमें से एक विद्युत द्वार को नील लोहितोत्तर (Ultraviolet) प्रकाश से प्रदीप्त कर दिया जाय। हौलवाश और रिघी ने इस प्रयोगात्मक घटना का अधिक गहराई के साथ अध्ययन किया। हौलवाश ने निरीक्षण किया कि ताजा पालिश की हुई ऋणात्मक विद्युत युक्त जस्ते की प्लेट नीललोहितोत्तर प्रकाश से प्रदीप्त होने पर अपना ऋणावेश खो देती है। ऐल्स्टर और जीटलने प्रयोगात्मक अन्वेषणों के फलस्वरूप यह प्रतिपादन किया कि जस्ते की प्लेट का ऋणावेश किसी प्रकार के कणों के जरिये बाहर निकल जाता है। यह कण न तो जस्ते के परमाणु हो सकते न उसकी प्लेट की चारों ओर से घेरने वाली हवा के अणु। तब यह ऋणात्मक विद्युत को प्रक्षित करने वाले कण क्या थे? इस प्रश्न का उत्तर भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रयोगात्मक साक्षियों के एकत्रीकरण के फलस्वरूप प्राप्त हो सका। इस प्रकार की साक्षियों में दो मुख्य हैं :

१—एक्स किरणों द्वारा गैसीय पदार्थों का आयनीकरण (Ionisation) २—वायुशून्य

नलिकाओं में विद्युत के प्रवाह की घटना ।

एक्स किरणों द्वारा गैसीय पदार्थों का आयनीकरण

किसी गैसीय पदार्थ के स्तम्भ (Column) में एक्स किरणों का प्रवेश कराने पर यह निरीक्षण किया गया कि उस गैस का आयनीकरण हो जाता है। उस गैस के अणु ऋणात्मक और धनात्मक कणों में विच्छिन्न हो जाते हैं। लेकिन ये आयन (ions) हैं क्या ? अब तक जिस प्रकार के आयनीकरण का निरीक्षण किया गया था वह घोलों का आयनीकरण था। इस प्रकार के आयनीकरण का सम्बन्ध सोडियम क्लोइड (Sodium chloride) जैसे अणु का स्वतः ही धनावेश युक्त सोडियम आयन तथा ऋणावेशयुक्त क्लोरिन आयन में विभक्त हो जाने से था लेकिन एक्स किरणों द्वारा गैसों का आयनीकरण सर्वथा भिन्न प्रकार का था, क्योंकि यह ओषजन और नेत्रजन जैसी शुद्ध गैसों तथा हीलियम और आरगन जैसी एक परमाणुक (Mono atomic) गैसों में भी निरीक्षित किया गया था। इससे स्पष्ट है कि एक पारमाणुक (Mono atomic) द्रव्य का विद्युत उदासीन अणु भी सूक्ष्म विद्युत आवेशों (Charges) का बना होता है। वह पहिला मौका था जब हमें इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिला कि परमाणु विद्युत आवेशों द्वारा निर्मित एक विषम रचना है। मिलीकन के कथनानुसार इस नवीन एजेन्सी एक्स किरण के उपयोग के कारण परमाणु की एक चरम अविभाज्य कण के रूप में अस्तित्व की मान्यता समाप्त होगई और उसके भिन्न-भिन्न उपादानों (Constituents) के अध्ययन का युग प्रारम्भ हुआ। पदार्थ विज्ञानवेत्ता निम्न प्रश्नों का उत्तर तलाश करने लगे :—

१—एक्स किरणों द्वारा विच्छिन परमाणु के घटकों (Components) के द्रव्यमान और विद्युत आवेश की मात्रा कितनी है ?

२—प्रकाश और ताप तरंगों के उन्मेष (Emission) और शोषण (Absorption) से इन परमाणु घटकों का क्या सम्बन्ध है ?

३—क्या सारे परमाणुओं के घटक समान होते हैं ? क्या कोई ऐसा परम सूक्ष्म कण है जिसके द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के परमाणुओं का निर्माण होता है ?

शून्यनलिकायें विद्युत का विसर्ग तथा द्रव्य की चतुर्थ अवस्था

Electrical discharge

शून्यनलिकाओं में वैद्युत विसर्ग (Electrical discharge) के प्रयोगों ने उक्त प्रश्नों का आंशिक समाधान किया। विरल(rarefied) गैस से भरी शून्यनलिका में विद्युत का प्रवाह कराने पर अनेक मनोरंजक घटनायें दृष्टिगोचर होती है, ज्यों-ज्यों नलिका में गैस का दबाव कम किया जाता है। $\frac{1}{10}$ सेन्टीमीटर के दबाव पर नलिका कि कांच की दीवालें तेज प्रकाश से प्रदीप्त होने लगती हैं। प्रकाश का रङ्ग शून्यनलिका के कांच की रासायनिक रचना पर निर्भर करता है। लेकिन शून्यनलिका की दीवालें क्यों चमकने लगती हैं ! एक प्रकार का अदृश्य विकिरण (invisible radiation) शून्यनलिका के ऋणद्वार (Cathode) से उत्सर्गित होता है जो दीवालों के सम्पर्क में आने पर उनको प्रदीप्त कर देता है। इस अदृश्य विकिरण को ऋणद्वार किरणों (Cathode-Rays) के नाम से प्रचारित किया गया। सर विलियम क्रुक्स ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण छान-बीन की। उन्हों'ने अपने प्रयोगों का वर्णन करते समय लिखा है कि :—

"शून्यनलिका में दृष्ट घटनायें भौतिक विज्ञान के सामने एक नई दुनिया को उपस्थित करती हैं :—एक ऐसी दुनिया जहाँ द्रव्य चतुर्थ अवस्था में पाया जाता है। द्रव्य की चतुर्थ अवस्था (Fourth state of matter) का अध्ययन करते समय अन्त में हमारे नियन्त्रण और पकड़ में ऐसे अदृश्य कण आते हुये प्रतीत होते हैं जिनको

सुनिश्चितता के साथ भौतिक विश्व का आधार माना जा सकता है।"

जे० जे० थामसन द्वारा ऋणाणु का आविष्कार

ऋण द्वार किरणों (Cathode rays) पर गोल्ड स्टीन, प्लकर, लेकार्ड और पेरिन द्वारा किये गये अन्वेषणों ने क्रुक्स द्वारा आविष्कृत द्रव्य की चतुर्थ अवस्था के रहस्योद्घाटन में अद्भुत कामयाबी हासिल की। इन अन्वेषणों ने यह सिद्ध कर दिया की ऋण द्वारा किरणें ऋणात्मक विद्युत के कणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। सर्व प्रथम केम्ब्रिज के प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री सर जे० जे० थामसन ने इन कणों के आवेश और द्रव्यमान की निष्पति (ratio) $\left(\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}=\frac{e}{m}\right)$ के मूल्य का सही-सही निर्णय किया। बाद में यह निरीक्षण किया गया कि ऋणात्मक विद्युत के इन वाहकों (Carriers) के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}=\frac{e}{m}$ का मूल्य शून्य-नलिका में व्याप्त गैस के स्वभाव पर निर्भर नहीं करता। थामसन ने इन ऋण द्वार कणों (Cathode-particles) को ('Corpuscles') का नाम दिया। तदुपरान्त लारेंज़ आदि वैज्ञानिकों ने इन 'Corpuscles' को इलैक्ट्रोन के नाम से निक्षेपित किया। यह पहिले बतलाया जा चुका है कि इलैक्ट्रोन शब्द का उपयोग स्टोनी ने एक बन्धक आयन द्वारा संवाहित मूलभूत विद्युतावेश (elementary electrical charge) के ज़िये किया था। इसके बाद तो यह भी सिद्ध हो गया कि प्रकाशीय वैद्युत प्रभाव (photo-electric effect) की घटना के सिलसिले में उत्सर्गित ऋणाविष्ट (negatively charged) कण भी ऋणाणु ही होता है। लेनार्ड ने इन कणों के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}=\frac{e}{m}$ का मूल्य निर्धारित किया। लेनार्ड द्वारा निर्धारित इन कणों के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}=\frac{e}{m}$ का मूल्य सर जे० जे० थामसन द्वारा निर्धारित इलैक्ट्रोन के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ के मूल्य के बराबर पाया गया।

ऋणाणुओं का तापीय उत्सर्ग

(Thermionic emission)

यह निरीक्षण किया गया कि उष्ण पदार्थ विशेष कर तप्त धातुयें अपने तापमान के कारण ऋणाणुओं का उत्सर्ग करने लगती हैं। इस घटना को तापीय उत्सर्ग के नाम से पुकारा जाता है। ऋणाणु-नालिकायें (Electron tubes) तथा रेडियो वाल्व का निर्माण तापीय उत्सर्ग के सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है। ऋणाणु नलिकाओं के अभाव में आकाशीय ध्वन्याक्षेपण (wireless transmission) किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता था। बीसवीं सदी के व्यावहारिक वैज्ञानिक उपयोगों में ऋणाणु नलिकाओं का सर्वोपरि स्थान है। यही नहीं इनके उपयोग का क्षेत्र दिन पर दिन विस्तृत होता जाता है। (Radioactivity and the hypothesis of contractile electron.)

किरणोत्सर्ग का सिद्धान्त और संकुचनशील ऋणाणु का प्रकल्प

किरणोत्सर्ग की क्रिया (जो परमाणु के केन्द्रक के स्वतः विच्छेदन की क्रिया है) ये रेडियम जैसे भारी परमाणु के केन्द्र से अन्य प्रकार के विस्तृत विकिरण के अतिरिक्त ऋणाणुओं का भी उत्सर्ग होता है। इस क्रिया में निकले हुये ऋणाणुओं को बीटा किरण के नाम से पुकारा जाता है।

काफमैन ने इन ऋणाणुओं के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ का मूल्य निर्धारित किया। उन द्वारा निर्धारित मूल्य १.७७×१०^{७} आया जब की अन्य घटनाओं से सम्बन्धित ऋणाणुओं के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ का मूल्य १.०७×१०^{२} निश्चित किया गया था। कोफमैन ने यह भी देखा कि ज्यों-ज्यों इन ऋणाणुओं का वेग

प्रकाश के वेग के नजदीक पहुँचता है त्यों-त्यों इनके $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ का मूल्य तेजी के साथ घटने लगता है।

काफमैन और जे० जे० थामसन् ने $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ के मूल्य में निरीक्षित उक्त विषमता पर विचार किया। इसकी व्याख्या करने के लिये उन्होंने यह सुझाव उपस्थित किया कि ऋणाणु के आवेश का मूल्य तो प्रत्येक परिस्थिति में स्थिर रहता है, लेकिन द्रव्यमान वेग के साथ बदलने लगता है। इस प्रकार पहली मरतबा द्रव्यमान की स्थिरता (Constant of mass) का सिद्धान्त खंडित सा मालूम पड़ने लगा। वेग के साथ द्रव्यमान के परिवर्त्तन की व्याख्या करने के लिये लौरेंज ने संकुचनशील ऋणाणु का प्रकल्प उपस्थित किया। इन्होंने कहा कि ऋणाणु अपनी गति की दिशा में सिकुड़ने लगता है। इस प्रकल्प के आधार पर उतने वेग के साथ द्रव्यमान के परिणमन को एक गणित सूत्र में गूँथने की कोशिश की। कुछ दिनों बाद आइन्स्टाइन ने उसी सूत्र को अपने सापेक्षवाद के विशेष सिद्धान्त (Special Relativity) की मान्यताओं के आधार पर स्थिर किया। आइन्सटाइन ने कहा कि लैरेंज द्वारा प्रतिपादित संकोच भौतिक संकोच (Physical contraction) नहीं है। इस प्रकार के संकोच का ख्याल काल और आकाश की मान्यताओं कोगलत तरीके में समझने के कारण पैदा होता है।

आवेश और द्रव्यमान का निरपेक्ष मान मिलीकन द्वारा ऋणाणु की व्यक्तिगत सत्ता

विभिन्न प्रकार की प्रयोगात्मक घटनाओं में उपस्थित रहने वाले ऋण आयनों के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ का मूल्य निर्धारण ने उनमें समानता निश्चय तो कर दिया, लेकिन इतने पर भी निम्न प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल सका।

१. ऋण आयन के आवेश का निरपेक्ष औसत मूल्य कितना है ?

२. क्या प्रत्येक ऋण आयन समान आवेश से युक्त होता है। क्या गैसीय पदार्थों और घोलों में निरीक्षित विद्युत पारमाणविक है ?

३. कहीं ऋणाणु आवेश भिन्न-भिन्न मात्रा के आवेशों का औसत मूल्य तो नहीं है।

अमरीका निवासी प्रसिद्ध वैज्ञानिक मिलीकन ने अपने महत्वपूर्ण प्रयोगों के रूप में उक्त प्रश्नों के सुनिश्चित उत्तर उपस्थित किये। मिलीकन के यह प्रयोग ऋणाणु का निरपेक्ष मूल्य निर्धारित करने के लिये किये गये थे। विद्युताविष्ट तेल की छोटी-छोटी बूंदों की गति की विद्युतकीय और गुरुत्वकी क्षेत्रों की उपस्थिति में निरीक्षण करना इन प्रयोगों की विशेषता थी। मिलीकन के प्रयोगों का पूर्ण विवरण देना तो यहाँ सम्भव नहीं है, लेकिन जिन परिणामों की ओर वे हमें ले जाते हैं, वे निम्न हैं:—

१—ऋणाणु विद्युत आवेशों का औसत मूल्य (Statis.ical mean) नहीं है, बल्कि वह स्वयं ही विद्युत की मूलभूत इकाई है, दूसरे शब्दों में ऋणाणु अपनी व्यक्तिगत सत्ता रखता है।

२—जितने भी विद्युत आवेश प्रकृति में पाये जाते हैं, उनकी मात्रा का मूल्य या तो ऋणाणु के आवेश की मात्रा के मूल्य के बराबर होता है या उसका पूर्णाङ्किक अपवर्त्य (Integral multiple) होता है।

३—अग्राहक और ग्राहक पदार्थों में पाये जाने वाले सब प्रकार के स्थिर आवेशों का मूल्य मूलभूत आवेश के मूल्य का पूर्णाङ्किक अपवर्त्य होता है।

४—मूलभूत ऋण और धन आवेशों की मात्रा समान होती है।

इस प्रकार मिलीकन के सुन्दर और गम्भीर प्रयोगों द्वारा विद्युतकीय पारमाणुकता का सिद्धान्त पूर्ण रूप से निश्चित हो गया। इन प्रयोगों ने यह सिद्ध

कर दिया कि ऋणाणु विद्युत का मूलभूत कण (Elementary article होता है।

ऋणाणु का द्रव्यमान

ऋणाणु के आवेश तथा द्रव्यमान आवेश का मूल्य जान लेने पर उसका द्रव्यमान जान लेना बड़ा आसान है। इस प्रकार गणना करके निकाले गये ऋणाणु के द्रव्यमान का मूल्य ·९१०७ × १०२८ ग्राम आता है। वह द्रव्यमान उद्जन परमाणु के द्रव्यमान का $\frac{1}{1836}$ वां भाग है। रौलैंड ने गणित द्वारा यह सिद्ध किया कि प्रत्येक विद्युत आवेश जडत्व युक्त होता है। इस प्रकार हम विद्युत आवेश के वजन की कल्पना करने को विवश हो जाते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार ऋणाणु का वजन सर्वथा उसके आवेश के कारण होता है। इसका विपरीत भी सत्य माना जा सकता है। हम कह सकते हैं कि प्रत्येक प्रकार के जडत्व का मूल उद्गम बिजली है। इसका इस प्रकार पदार्थ विज्ञान के इतिहास में पहिली मरतबा हम यह महसूस करने लगते हैं कि विद्युत और द्रव्य एक ही वस्तु की दो पर्यायें हैं।

ऋणाणु का परमाणु की रचना में स्थान और प्रकाश स्कन्धन की क्रिया

ऋणाणु के आविष्कार ने परमाणु रूपी दुर्ग के जो एक ठोस और अभेद्य रचना मानी जाती थी द्वार खोल दिया। परमाणु के अन्तर्निहित कोष को प्रकाश में लाने के लिये यह आविष्कार सहस्र रजनी में वर्णित मंत्र सुमसम के समान सिद्ध हुआ। यह निश्चित सा हो गया कि परमाणु ऋणात्मक और धनात्मक विद्युत आवेशों का बना होता है। धनाणु का भार ऋणाणु के भार का लगभग १८३६ गुना होता है। परमाणु की इस रचना को मान लेने पर दो प्रश्न पैदा होते हैं :—

१. परमाणु के अन्दर धनाणुओं की व्यवस्था क्या है।

२. भिन्न-भिन्न प्रकार के परमाणुओं में ऋणाणुओं की संख्या कितनी होती है।

परमाणु के थामसन मोडल

परमाणु के स्थायित्व और उस द्वारा प्रकाश उन्मेष का ध्यान रखते हुये थामसन ने यह सुझाव उपस्थित किया कि परमाणु का धनावेश एक समान घनत्व के गोले के रूप में उपस्थित रहता है तथा ऋणाणु धनावेश के इस गोले में वितरित रहते हैं। प्रकाश का उन्मेष ऋणाणुओं के कम्पन के कारण पैदा होता है। परमाणु का यह मोडल प्रकाश स्कन्धन की क्रिया की पूर्ण व्याख्या करने में असफल रहा।

रदरफोर्ड का परमाणु-भेदन और उनका परमाणु मोडल

इन दिनों में केम्ब्रिज के प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री लार्ड रदरफोर्ड गैसीय पदार्थों के स्तम्भों और धातुओं की पतली चद्दरों के अन्दर अल्फा कणों के प्रवेश का अध्ययन कर रहे थे। उसने देखा कि कण द्रव्य के अन्दर होकर गुजरते समय सीधी रेखा के मार्ग से इधर-उधर भटक जाते हैं। चूँकि अल्फा कण विद्युताविष्ट होते हैं, उनका सीधी रेखा के मार्ग से विचलित हो जाना किसी विद्युतकीय क्षेत्र के कारण होता है जो द्रव्य के परमाणु के अन्दर व्याप्त रहता है। परमाणु अपने रूप में तो वैद्युत उदासीन होता है इसलिये इस प्रकार का मार्ग-विचलन अल्फा कणों के परमाणु के अन्तर में होकर गुजरने के कारण होता है। थामसन ने अपने परमाणु मोडल के आधार पर यह हिसाब लगाया कि इस प्रकार के विचलन की मात्रा २″ या ३″ से अधिक नहीं हो सकती। जीजर और मार्सडन ने यह निरीक्षण किया कि कभी-कभी इस विचलन की मात्रा ६०° या अधिक हो जाती है। परमाणु का थामसन मोडल दीर्घ विचलन (large scattering) की व्याख्या करने में सर्वथा असफल रहा। यही नहीं इस घटना के साथ-साथ थामसन मोडल भी समाप्त हो गया। रदरफोर्ड ने हिसाब लगाया कि परमाणु का धनावेश एक गोला के रूप में विस्तृत नहीं किन्तु एक छोटे

से क्षेत्र में केन्द्रित रहता है। इस केन्द्रित आवेश को बाद में कैन्द्रक या बीज (nucleus) के नाम से निरूपित किया गया। परमाणु-रचना सम्बन्धी उक्त मान्यतायें रदरफोर्ड के केन्द्रकीय प्रकल्प (nuclear hypothesis) के नाम से प्रसिद्ध है।

रदरफोर्ड मोडल की संकटावस्था

रदरफोर्ड द्वारा उपस्थित परमाणु के केन्द्रकीय प्रकल्प ने अल्फा कणों के दीर्घ विचलन की व्याख्या तो कर दी किन्तु परमाणु के स्थायित्व का सवाल अनिश्चित ही रहा। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि परमाणु अपने केन्द्रक से स्थिर वैद्युत शक्तियों द्वारा बंधे होते हैं। लेकिन गणना करने पर इस शक्ति की मात्रा इतनी अधिक आती है कि इस द्वारा खिचकर सारे ऋणाणु केन्द्रक में समाविष्ट हो जायें। इसलिये परमाण को स्थायित्व प्रदान करने के लिये यह कल्पना करनी पड़ी कि ऋणाणु केन्द्रक के चारों ओर परिक्रमा करते रहते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार सौरमंडल में ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इस प्रकार परमाणु एक सूक्ष्म सौरमंडल है। किन्तु ऋणाणु के परिक्रमा की मान्यता वैद्युत चुम्बकीय सिद्धान्त के विरुद्ध जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक परिभ्रमणशील ऋणाणु को निरन्तर शक्ति का विकिरण करते रहना चाहिये। यह शक्ति सिवाय परमाणु व्यवस्था के और कहाँ से आ सकती है। इस प्रकार सारी परमाणु व्यवस्था शक्तिहीन होती चली जायगी और अन्त में एक व्यवर्तन (Spiral) मार्ग से ऋणाणुओं का केन्द्रक में समावेश हो जायगा। केन्द्रक में समाविष्ट होने की इस क्रिया में प्रत्येक परमाणु द्वारा निरन्तर बढ़नेवाली फ्रीक्वेन्सी (frequency) के विकिरण का उत्सर्ग होगा। किन्तु यह बात प्रयोगात्मक निरीक्षण से मेल नहीं खाती। हम यह देखते हैं कि प्रकाश का उन्मेष निश्चित फ्रीक्वेन्सी की वर्णपट रेखाओं के रूप में होता है। सिद्धान्त और निरीक्षण की यह विषमता रदरफोर्ड मोडल के अस्तित्व के लिये एक महान संकट था।

बोहर द्वारा रदरफोर्ड मोडल की रक्षा

इस विकट परिस्थिति में बोहर ने क्रान्तिकारी नवीन धारणाओं को जन्म देकर रदरफोर्ड मोडल को स्थायित्व प्रदान किया और उसको नष्ट होने से बचा लिया। बोहर का सम्बन्ध खासतौर पर उद्जन परमाणु द्वारा उन्मेषित वर्णपट-रेखाओं की व्याख्या से था। परमाणु के अन्दर की ऋणाणु व्यवस्था और उन द्वारा उन्मेषित विकिरण के सिलसिले में बोहर ने निम्न निर्भीक मान्यतायें उपस्थित कीं:—

१. प्रत्येक ऋणाणु केन्द्रक के क्षेत्र में बिना किसी प्रकार के विकिरण के उसके चारों ओर परिक्रमणशील रहता है। ऐसा करते समय वह प्रकाश के वैद्युत चुम्बकीय सिद्धान्त का उल्लंघन करता है, किन्तु ऋणाणु की कात्तिक गति न्यूटन के गतिशास्त्र के नियमों के अनुसार होती है।

२. कक्षा विशेष में ऋणाणु की शक्ति निश्चित रहती है। शक्ति का विकिरण ऋणाणु के अधिक शक्ति वाली कक्षा से न्यूटन शक्तिवाली कक्षा में कूदने के कारण होता है। विकिरित शक्ति की मात्रा, एक मूल-भूत मात्रा का जिसे प्लांक कान्स्टैन्ट कहते हैं, पूर्णांकिक अपवर्त्य होती है। इस प्रकार बोहर ने विकरित शक्ति को भी पारमाणविकता का गुण प्रदान किया। बोहर के प्रकल्प ने केवल उद्जन वर्ण पट की ही व्याख्या नहीं की किन्तु पदार्थ विज्ञान की एक नवीन शाखा वर्णपट शास्त्र (Spectroscopy) की भी नींव डाली।

रासायनिक क्रिया में ऋणाणु का भाग
रासायनिक तत्वों का कुटुम्ब

नवीन विकसित सिद्धान्तों ने यह भली प्रकार सिद्ध कर दिया कि भिन्न-भिन्न प्रकार के मूलतत्वों में जो अन्तर पाया जाता है वह केवल उनके परमाणुओं के अन्दर के ऋणाणुओं और धनाणुओं

की संख्या और व्यवस्था का अन्तर है। तब नवीन आविष्कृत परमाणु रचना के दृष्टिकोण से रसायनिक क्रिया का क्या अर्थ है। मेंडलीन ने मूलतत्वों के परमाणुओं के रासायनिक व्यवहार में आवर्तत्व (Periodicity) और नियमितता का निरीक्षण किया। मेंडलीन का उक्त अनुसंधान मूलतत्वों का आवर्त वर्गीकरण (Periodic classification) के नाम से प्रसिद्ध है। क्या हम इस आवर्तत्व की परमाणु की विद्युतकीय रचना के रूप में व्याख्या कर सकते हैं। जीजर और मार्सडन ने अपने अलफा कणों के प्रेक्षण के प्रयोगों के आधार पर यह प्रतिपादन किया है कि प्रत्येक परमाणु के वहिःकेन्द्रक ऋणाणुओं अथवा उसके अन्तर केन्द्रक धनाणुओं की संख्या उस तत्व की मेंडलीन की आवर्त सारिणी में जो क्रम संख्या है उसको सूचित करती है। उदाहरण के लिये सोडियम के परमाणु में वहिःकेन्द्रक ऋणाणु की संख्या ११ है। मूल तत्वों की आवर्त सारिणी में भी सोडियम ११वें नम्बर पर है।

बोहर की कोष-मान्यता

बोहर ने रासायनिक क्रिया के इस आवर्तत्व को ऋणाणुओं की शैल मान्यता के साथ सम्बन्धित करने की कोशिश की। बोहर ने कहा कि प्रत्येक परमाणु के अन्दर ऋणाणु केन्द्र के चारों ओर बन्द कोष (Closed Shells) में व्यवस्थित रहते हैं। प्रत्येक कोष के ऋणाणुओं की संख्या निश्चित होती है। प्रथम कोष में २, द्वितीय कोष में ८, तृतीय में ८, चतुर्थ में १८, पंचम में १८, अष्टम में ३२ ऋणाणु व्यवस्थित रह सकते हैं। जब किसी कोष के ऋणाणुओं की संख्या उसके निश्चित भाग (Fixed quota) के बराबर होती है तो वह शैल-परिप्लावित कहलाता है। ऋणाणुओं की संख्या निश्चित भाग से कम होने पर वह अपरिप्लावित रहता है। जिस परमाणु के सारे कोष परिप्लावित होते हैं, वह दूसरे परमाणुओं के साथ रासायनिक मिलन की इच्छा नहीं रखता। उदासीन गैसों में यही होता है। हीलियम परमाणु में केवल प्रथम कोष ही होता है। और इसमें २ ऋणाणु होते हैं। निओन में दो कोष होते हैं। प्रथम कोष और द्वितीय कोष दोनों ऋणाणुओं से परिप्लावित होते हैं। अर्थात् प्रथम कोष में दो और द्वितीय कोष में ८ ऋणाणु होते हैं। हीलियम और निओन गैस के परमाणु में एक ऋणाणु के साथ ही एक धनाणु के बढ़ाने से हमको लिथियम और सोडियम नाम के क्षार तत्व मिल जाते हैं उदासीन गैसें रासायनिक दृष्टि से नपुंसक होती हैं, किन्तु क्षार तत्व तीव्र रूप से रासायनिक क्रिया शीलता लिये होते हैं।

लिथियम और सोडियम के बाह्यतम कोष में एक ऋणाणु होता है। ये तत्व एक बन्धक हैं और आसानी से एक ऋणाणु दे सकते हैं। प्रत्येक परमाणु में अपने बाह्यतम शैल (जो बहुधा अपरिप्लावित होता है) के ऋणाणुओं की संख्या को पूरा करने की प्रवृत्ति होती है। परमाणुओं की यही वृत्ति सब प्रकार की रासायनिक क्रिया का मूलाधार है। उदाहरण के लिये हम सोडियम फ्ल्यूराइड के निर्माण पर विचार कर सकते हैं। सोडियम के बाह्यतम कोष में एक ऋणाणु होता है जब कि फ्ल्यूओरीन के बाह्यतम कोष में ७ ऋणाणु होते हैं। फ्लोरीन के बाह्यतम कोष को पूर्ण कोष व्यवस्था के लिये एक ऋणाणु की आवश्यकता पड़ती है। इसलिये फ्लोरीन का परमाणु सोडियम और लिथियम जैसे परमाणुओं के प्रति जो ऋणाणु आसानी से दे सकते हैं रासायनिक आकर्षण रखता है। इस प्रकार निर्जीव द्रव्य में भी हम पूर्णत्व को प्राप्त करने की अन्तः प्रेरणा का दर्शन करते हैं।

ऋणाणु की आर्थिक गति

बोहर की ऋणाणु की 'कात्तिक' गति (orbital motion) की धारणा तथा सोमरफील्ड और अन्य विद्वानों द्वारा सापेक्षवाद के आधार पर इस धारणा का परिवर्द्धन, वर्णपट रेखाओं की विषय रचना की व्याख्या करने में अधूरे साबित हुये। यूलेनवेक और

गाऊडस्मित ने इस कठिनाई को हल करने के लिये यह मान्यता उपस्थित की कि ऋणाणु एक धुरी के चारों ओर इस प्रकार घूमता है जिस प्रकार ज्योतिर्ग्रह अपनी अक्ष के चारों ओर घूमते हैं। इस मान्यता के आधार पर ऋणाणु पर के धरातल का वेग प्रकाश के वेग से ३०८ गुना आता है और यह एक ऐसी बात है जिसकी अभी तक व्याख्या नहीं हो सकी है। ऋणाणु की आर्थिक गति की मान्यता वर्णपट रेखाओं तथा परमाणुओं के चुम्बकीय व्यवहार की व्याख्या करने से अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

ऋणाणु तरंग के रूप में

प्रकाशकीय वैद्युत प्रभाव तथा कौम्पटन प्रभाव जैसी प्रकाश से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं की प्रकाश के तरंग सिद्धान्त के आधार पर व्याख्या करना सर्वथा असम्भव प्रतीत हुआ। आइन्सटाइन ने कहा कि अच्छा हो यदि हम प्रकाश को भी द्रव्य के समान परमाणुओं का बना मान लें। प्रकाश और द्रव्य के सिद्धान्तों के समन्वय की ओर यह सबसे पहिला कदम था। २० साल बाद फ्रांस के प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री डि ब्रागली ने इसका पूरक कदम उठाया। उसने द्रव्य की रचना की व्याख्या तरंग सिद्धान्त के रूप में करने की कोशिश की। इस प्रकार भौतिक विज्ञान के इतिहास में पहिली बार 'द्रव्य तरंग' (Matter wave) की मान्यता का जन्म हुआ। डेवीसन, जरमर और जी० पी० थामसन के प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया कि ऋणाणु का व्यवहार तरंगों के समान होता है। ऋणाणु के पारमाणविक और तरंगकीय व्यवहारों का समन्वय किस प्रकार किया जाय? बौर्न ने सुझाव उपस्थित किया कि हमको किसी कण की गति के निश्चयात्मक वर्णन का विचार छोड़ देना चाहिये। किसी कण के स्थान का हम पूर्ण शुद्धता के साथ निर्णय नहीं कर सकते। हम केवल अमुक समय में अमुक स्थान पर अमुक कण के अस्तित्व की सम्भावना (Probability) की मात्रा का अनुमान लगा सकते हैं। हीसनवर्ग ने भी व्यक्तिगत ऋणाणु के वेग और स्थान को एक ही समय में शुद्धता के साथ निर्णय करने की समस्या पर विचार किया। उसने कहा कि इस प्रकार का निर्णय सर्वथा अव्यवहार्य है। हीसनवर्ग ने कहा कि जितनी शुद्धता और निश्चितता के साथ हम किसी ऋणाणु के स्थान के निर्णय करने की कोशिश करेंगे उतनी ही अनिश्चितता उसके वेग के निर्णय करने में आ जायगी। हीसनवर्ग का यह सिद्धान्त 'अनिश्चयता वाद' (Uncertainty principle) के नाम से भौतिक विज्ञान में मशहूर है। ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारे अज्ञेय के क्षेत्र में प्रवेश करने पर कुछ पाबन्दियाँ लगी हुई हैं। इस प्रकार ऋणाणु की तस्वीर जो उसके कण होने के नाते इतनी स्पष्ट और साफ नजर आती थी उसके तरंग होने के रूप में धुंधली और अस्पष्ट दृष्टिगत होने लगती है। कठिनाइयाँ वैज्ञानिक को उसकी सत्य की निरन्तर साधना में हताश नहीं करतीं। परम तथ्य के पाने की आशा में वह इन सबके बावजूद भी आगे बढ़ता है। आधुनिक समय में उसने द्रव्यकीय कणों के बारे में एक सम्भावना सिद्धान्त (Probability theory) को जन्म दिया है और इस सिद्धान्त की मूल मान्यताओं के आधार पर एक गणित व्यवस्था की रचना की है जिसे तरंग शास्त्र (Wave mechanic) कहते हैं। इस व्यवस्था की सहायता से उसने परमाणु के दृश्य के अन्तरतम क्षेत्र में प्रवेश करने की कोशिश की है और उसने आविष्कार किया है। इसी प्रकार के प्रयासों के फलस्वरूप केन्द्रक ध्वंस (fission) की घटना का जो परमाणु बम्ब के निर्माण में आधार शिला का काम करती है।

ऋणाणु केवल एक मान्यता

विश्व के नाटक में ऋणाणु एक सर्वव्यापक हस्ती नजर आती है। रासायनिक प्रकाशकीय और विद्युतकीय घटनाओं में नायक के रूप में कार्य

करते हुए, ऋणाणु विश्व की विविधता को कायम किये हुये हैं। तब क्या हमको ऋणाणु का निश्चयात्मक ज्ञान है, क्या ऋणाणु मानवीय मस्तिष्क द्वारा आविष्कृत केवल एक सुविधाजनक मान्यता नहीं है, जो परमाणु के अन्दर होने वाली घटनाओं को समझने में हमारी मदद करती है। सैद्धान्तिक अड़चनों के बावजूद भी हमारी ऋणाणु की व्यक्तिगत सत्ता को कायम रखने की कोशिशें इस बात की ओर संकेत करती हैं कि वह एक भौतिक तथ्य होने से काफी दूर है। डेवीसन और जरमर के प्रयोगों में ऋणाणु अपने परमाणु रूप को छोड़ कर तरंग के समान व्यवहार करने लगता है। ऐसी हालत में तरंग के द्रव्यमान और आवेश का क्या अर्थ है, ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारे मस्तिष्क प्राकृतिक घटनाओं को केवल तरंग और परमाणु की मान्यताओं के रूप में ही समझ सकते हैं। नवीन अनुसंधान इन दोनों मान्यताओं की सीमितता की ओर संकेत करते हैं। सम्भावना सिद्धान्त को जन्म देकर भौतिक शास्त्रियों ने तरंग और परमाणु की मान्यताओं में समन्वय कराने की कोशिश की है और एक ऐसी गणित व्यवस्था को जन्म दिया है, जो परमाणु के रहस्य को समझने में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

आधुनिक काल में आविष्कृत विषय गणित सूत्रों और व्यवस्थाओं के बावजूद भी ऋणाणु एक रहस्य ही मालूम पड़ता है। आज से ३० साल पहिले ऐसा मालूम पड़ता था कि हम सारी भौतिक घटनाओं का वर्णन टेन्सर्स (Tensers) नाम की गणित व्यवस्था द्वारा कर सकते हैं किन्तु इस प्रकार की व्यवस्था ऋणाणु की आक्षिक गति (Spin) की व्याख्या करने में अपूर्ण सिद्ध हुई इसलिये स्पाइनर्स (Spinors) नाम की नवीन गणित मान्यता का जन्म हुआ। अब प्रो॰ डिराक हमें बतलाते हैं कि क्वान्तम विद्युत गतिशास्त्र के लिये हमें एक्सपेन्सर्स (Expansors) नाम की नवीन गणित मान्यता की आवश्यकता महसूस होती है। मुमकिन है एक्सपेन्सर्स की मान्यता भविष्य में अपूर्ण सिद्ध हो जावे। मानवीय मान्यताओं की इस अपरिपूर्णता की उपस्थिति में, ऋणाणु का व्यवहार उपनिषद् सूत्र नेति-नेति को चरितार्थ करता है।

डा० एस० एल० होरा

डा० एस० एल० होरा का जन्म २ मई १८९६ ई० को हाफियाजाबाद (पञ्जाब) में हुआ था। इनके पिता का नाम लाला गोविन्द सहाय होरा था। इनकी शिक्षा पहले साईंदास ऐंग्लो संस्कृत हाई स्कूल, जालंधर और उसके बाद गवर्नमेंट कालेज,

लाहौर में हुई जहाँ से इन्होंने जन्तु विज्ञान में एम० एस-सी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। वे विज्ञान के सब विषयों में प्रथम आए और विश्वविद्यालय का मैकेगन स्वर्णपदक तथा पुरस्कार प्राप्त किया। वे १९१९ में जूलाजिकल सर्वे इंडिया में रिसर्च स्कालर नियुक्त हुए और मई १९२१ में इसके असिस्टेंट सुपरिंटेंडेन्ट नियुक्त हुए। १९४२ से ४७ तक पाँच वर्षों के लिए वे संयुक्त बंगाल के मत्स्य विभाग के सञ्चालक रहे। वहाँ से फिर जूलाजिकल सर्वे के सञ्चालक पद पर लौट आए। वे ८ दिसम्बर १९५५ को अपनी मृत्यु के समय तक उस पद पर ही थे। डा० होरा को १९२२ में पञ्जाब विश्वविद्यालय से और १९२८ में एनिबरा विश्वविद्यालय से विज्ञान के डाक्टर की उपाधि मिली। एडिनबरा विश्वविद्यालय की उपाधि के लिए प्रेषित अधिलेख वर्षाप्रचुर स्थानों के पशु-पक्षियों के विकास, पारिस्थिकी आदि के सम्बन्ध में था जो रायल सोसाइटी लंदन की शोध-पत्रिका में छपा था।

डा० होरा के जीव वैज्ञानिक तथा मत्स्य वैज्ञानिक शोधों ने उच्च मान्यता प्राप्त की और उन्हें कई देशी तथा विदेशी वैज्ञानिक संस्थाओं द्वारा सम्मान सूचक उपाधि और पदक अर्जित कराया। वैज्ञानिक शोध-कार्यों के लिए १९३६ में ही भारत में उन्हें रायबहादुर की उपाधि मिली। वे रायल एशियाटिक सोसाइटी के मान्य सभ्य थे और वहाँ से जॉय गोविन्द ला स्मारक पदक १९४४ में प्राप्त हुआ था। नेशनल इंस्टिट्यूट आफ साइंसेज के संस्थापक सदस्य थे और १९५१-५२ में इसके सभापति थे। नेशनल ज्यागरफिक सोसाइटी भारत के सभ्य थे और १९५१ में उसका जवाहर लाल नेहरू पदक प्राप्त किया था। १९५५ में उसके सभापति भी थे। इंडियन एकालाजिक (पारिस्थिकी) सोसाइटी (भारत) के सभ्य थे और १९४८-४९ में उसके सभापति हुए थे। भारत जूलाजिकल सोसाइटी के संस्थापक सदस्य थे और १९४६ से १९५१ तक उसके सभापति रहे। सोसाइटी द्वारा प्रदत्त "सर दोराब ताता स्मारक पदक"

भी इन्हें मिला था। भारत की हेलमिन्थालाजिकल सोसाइटी (कृमि परिषद) के विदेशी मंत्री थे। इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन के आजीवन सदस्य और इंडियन साइंस कांग्रेस के १९५३-५४ के अधिवेशन के सभापति थे। विदेशों में एडिनबरा रायल सोसाइटी के सभ्य थे। लंदन की जूलाजिकल सोसाइटी के संवाददाता सभ्य थे। लंदन की इंस्टिट्यूट आफ बायालजी के सभ्य थे। अमेरिका इचथ्यालाजिस्ट और हरपेटालाजिस्टों की सोसाइटी के सभ्य थे। इंडोनेशिया के ब्युटेनजोर्ग की "एस० लैंडस प्लैंटेट्विन" संस्था के अवैतनिक आचार्य थे। 'अन्तर्राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान' परिषद के भारत के समुद्र वैज्ञानिक संवाददाता थे।

डा० होरा देश के अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं के कार्यकलापों से भी संबद्ध थे। नेशनल इंस्टिट्यूट आफ साइंसेज आफ इंडिया एशियाटिक सोसाइटी और इंडियन साइंस कांग्रेस की कार्यकारिणी और अनेक समितियों के सदस्य थे। बंबई की नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी की कार्यकारिणी के सभ्य थे। भौगर्भिक भूविज्ञान के केन्द्रीय परिषद की समुद्र वैज्ञानिक समिति के सदस्य थे। कलकत्ता कारपोरेशन से जलकल विभाग की विशेषज्ञ परामर्श परिषद के १९३६-३७ में सदस्य थे। १९४७ में केन्द्रीय सरकार के इङ्गलैंड फिशरीज रिसर्च स्टेशन के अवैतनिक संचालक थे। अमेरिका के "इवल्यूशन" पत्र के संवादक मंडल के सदस्य थे। "करेंट साइंस" और "साइंस ऐंड कल्चर" के संपादक मंडल में भी थे। नेशनल इंस्टिट्यूट आफ साइंसेज (भारत) के प्रकाशनों के कई वर्षों तक सम्पादक थे।

डा० होरा ने अनेक अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सम्मेलनों में भारत का प्रतिनिधित्व किया था। १९४६ में उन्होंने रायल इम्पायर साइंटिफिक कान्फ्रेंस और ब्रिटिश कामनवेल्थ साइंटिफिक कान्फ्रेंस में भाग लिया। १९४८ में बेग्विओ (फिली-पाइन्स) की एफ० ए० ओ० फिशरीज कान्फ्रेंस में प्रमुख भाग लिया। १९४९ में संयुक्त राष्ट्र परिषद के प्रधान मन्त्री के निमन्त्रण पर लेक सक्सेस (अमेरिका) में संयुक्त राष्ट्र परिषद के प्रसाधनों की उपयोगिता और संरक्षण के वैज्ञानिक सम्मेलन में "मीठे पानी की मछलियों को तालाब में पालने की विधि" पर विचार गोष्ठी का उद्‌घाटन किया। १९५१ में मद्रास में इंडो पैसिफिक फिशरीज कौंसिल की तीसरी बैठक में भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया। १९५२ में कलकत्ता में इसकी हिल्सा उपसमिति का सभापतित्व किया। १९५१ में ब्रिस्बन (आस्ट्रेलिया) में आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड की विज्ञान संवर्धक परिषद की हीरक जयन्ती में इंडियन साइन्स काँग्रेस एसोसिएशन का प्रतिनिधित्व किया। १९५३ में लिवरपुल इङ्गलैंड में विज्ञान संवर्धन की ब्रिटिश परिषद की वार्षिक बैठक में भाग लिया। १९५४ में पर्थ (आस्ट्रेलिया) में अखिल भारतीय महासागर विज्ञान परिषद के दूसरे अधिवेशन में भारत के प्रतिनिधि रूप में सम्मिलित हुए।

जूलाजिकल सर्वे आफ इन्डिया के सञ्चालक होने के अतिरिक्त डा० होरा जंगली जंतुओं की भारतीय परिषद के अवैतनिक प्रधान मन्त्री थे। दामोदर घाटी कारपोरेशन के जंगली जन्तु और मत्स्य परामर्शदाता थे और एफ० ए० ओ० के उष्ण-कटिबन्धीय मत्स्य पालन के परामर्शदाता थे।

१९२० तक डा० होरा ने देशी-विदेशी पत्रों में ४०० मौलिक लेख छपवाए थे। जन्तु विज्ञान के सभी विभागों पर उनके लेख हैं। प्राचीन हिन्दुओं की मत्स्य विद्या के सम्बन्ध में उनका ज्ञान भारतीय-विज्ञान के इतिहास की जानकारी में महत्वपूर्ण योगदान है। मत्स्य विद्या और मत्स्य शरीरविज्ञान के सम्बन्ध में उनकी विस्तृत जानकारी ने देश में मत्स्य जीवन के अनुसंधान के लिए जूलाजिकल सर्वे आफ इन्डिया को महत्वपूर्ण केन्द्र बना दिया था।

मुद्रक—सरयू प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—श्रीरामदास गौड़ और प्रो० सालिगराम भार्गव ।=)
२ चुम्बक—प्रो० सालिगराम भार्गव ।।।=)
३—मनोरञ्जन रसायन—प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव २)
४—सूर्य सिद्धान्त—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव छः भाग मूल्य ८) । इस पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।
५—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी १)
६—समीकरण मीमांसा—पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)
७—निर्णायक डिटमिनैंटस—प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री ।।।)
८—बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)
९—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशंकर पचौली; ।=)
१०—व्यङ्ग-चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; २)
११—मिट्टी के बरतन—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; (अप्राप्य)
१२—वायुमंडल डाक्टर के० बी० माथुर, २)
१३—लकड़ी पर पालिश डा० गोरखप्रसाद और श्री रामरतन भटनागर, एम० ए०, २) (अप्राप्य)
१४—कलम पेवंद ले० श्री शंकरराव जोशी; २)
१५—जिल्दसाजी—श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० २)
१६—तैरना—डा० गोरखप्रसाद १)
१७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—(अप्राप्य)
१८—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएं—डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० ।।)
१९—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकारनाथ परती, मूल्य ।।।)
२०—फोटोग्राफी—लेखक श्री डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० (एडिन) ४),
२१—फल संरक्षण—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह २।।)
२२—शिशु पालन—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई । मूल्य ४)
२३—मधुमक्खी पालन—दयाराम जुगड़ान; ३)
२४—घरलू डाक्टर—डाक्टर जी० घोष, डा० उमाशङ्कर प्रसाद, डा० गोरखप्रसाद, ४)
२५—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, ३।।)
२६—फसल के शत्रु—श्री शङ्कर राव जोशी ३।।)
२७—साँपों की दुनिया—श्री रमेश वेदी ४)
२८—पोर्सलीन उद्योग—प्रो० हीरेन्द्र नाथ बोस ।।।)
२९—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ—२)
३०—गर्भस्थ शिशु की कहानी—प्रो० नरेन्द्र २।।)

अन्य पुस्तकें

१—विज्ञान जगत की झाँकी (डा० परिहार)		२)
२—खोज के पथ पर (शुकदेव दुबे)		।।)
३—विज्ञान के महारथी (जगपति चतुर्वेदी)		२)
४—पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ	(,,)	१।।)
५—हमारे गाय बैल	(,,)	।।)
६—मवेशियों के छूत के रोग	(,,)	।।)
७—मवेशियों के साधारण रोग	(,,)	।।)
८—मवेशियों के कृमि-रोग	(,,)	।।)
९—फसल-रक्षा की दवाएँ	(,,)	।।)
१०—देशी खाद	(,,)	।।)
११—वैज्ञानिक खाद	(,,)	।।)
१२—मवेशियों के विविध रोग	(,,)	।।)

पता—विज्ञान परिषद् (म्योर सेन्ट्रल कालेज भवन) प्रयाग

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि॰ या १९१३ ई॰ में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवा ी ोगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार गा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० *हीरालाल निगम*
सहायक संपादक--श्री *जगपति चतुर्वेदी*

मुद्रक—श्री सरयू प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग तथा प्रकाशक—डा॰ रामदास तिवारी प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मार्च १९५६
मीन २०१२

भाग ८२
अंक ६

वार्षिक मूल्य
चार रुपए

प्रति अंक
छः आने

विषय-सूची

स्वभाव से ही विचारशील और स्वतंत्र, प्रोफेसर साह ने बहुत समय से देश की उन्नति के लिये अनेक प्रोजेक्टों (Projects) का मनन किया और अपने में भी सत्य की खोज में लीन स्वतंत्रता के पुजारी को मानव समाज ने स्वतंत्र उम्मीदवार होते हुए भी लोक सभा में अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा। और

विचार प्रकट करते रहे। विदेशी सरकार की नीति का स्पष्ट विरोध किया। उस समय की नेशनल प्लानिंग कमेटी के भी आप सदस्य थे। इस समय जैसा सत्य के पथ पर अग्रसर सेनानी को शोभा देता है। अपने कार्य में संलग्न लोक सभा के समीप ही उसने अपनी यात्रा पूरी की।

विज्ञान के नये चरण-स्वयं चालित मशीनें

डा० सत्य प्रकाश

गत तीन सौ वर्षों की वैज्ञानिक गवेषणायें केवल दार्शनिक तत्त्वों का तर्क-वितर्क ही नहीं रहीं, उन्होंने हमारे व्यावहारिक जगत में नये युग का अवतरण किया। जब कभी भी किसी वैज्ञानिक को किसी नये तथ्य का पता चला, उसके किसी दूसरे सहयोगी ने यह पता लगाने का प्रयत्न किया, कि इस तथ्य का हम दैनिक जीवन में किस प्रकार उपयोग कर सकते हैं। इसका फल यह हुआ कि वैज्ञानिक युग के साथ-साथ मशीनों का युग भी चला। जार्ज स्टीफेन्सन के भाप और पतीले वाले प्रयोग ने हमारे सामने भाप से चलने वाले इंजन खड़े कर दिए। फैरेडे के विद्युत् आवेश सम्बन्धी छोटे से प्रयोग ने बिजली के विशालकाय डायनेमो को जन्म दिया। सन् १६०५ में आइन्सटाइन ने अपने आपेक्षता वाले सिद्धान्त के साथ-साथ द्रव्य और शक्ति का समीकरण दिया था, तो उस समय इस बात को लोगों ने दार्शनिक कल्पना ही समझा, पर इस विगत महायुद्ध के समय जब हमने परमाणु-विस्फोट देखा, तब हम उस दार्शनिक कल्पना के साक्षात् रूप का विराट एवं प्रचंड दर्शन कर पाये। मैक्सवेल के प्रकाश सम्बन्धी विद्युत् चुम्बकीयवाद ने हर्ट्ज के हाथों द्वारा नयी तरंगों की सम्भावना प्रकट की, जिससे बिना तार के हम संवाद भेजने में समर्थ हुए, और आज तो रेडियो के समान की अनेक मशीनों में इस शास्त्रीय कल्पना के विविध रूपों का हम साक्षात् कर रहे हैं।

विज्ञान से प्रेरणा प्राप्त करके हमने मशीनें बनाना आरम्भ किया। मैं इस वार्त्ता में स्वयं चालित मशीनों के विकास का उल्लेख करूँगा, जो इस मशीन युग की विशेषता है। ऐसी मशीनों को अंग्रेजी में औटोमेटिक मशीन कहते हैं। हमारा शरीर बहुत ही सुन्दर औटोमेटिक मशीन है। पैर में काँटा चुभा, और न जाने कितना शीघ्र उसका संकेत हाथों को हुआ, और हाथ अपने आप पैर तक पहुँच गए। बहुत से संकेत तो इतने शीघ्र होते हैं कि आपका ध्यान चाहे किसी दूसरी तरफ को क्यों न बटा हो, ये संकेत अपना काम पूरा कराके ही छोड़ेंगे। आँख के पास कोई चीज आयी नहीं कि पलक अपने आप नीचे आ गए। शरीर के भीतर होने वाले इस प्रकार के न जाने कितने रिफ्लेक्स एक्शन (reflex action) अर्थात् परावर्ती प्रतिक्रियायें हैं।

हमारी प्रत्येक मशीन कुछ न कुछ अर्थों में थोड़ा-बहुत औटोमेटिक या स्वयं चालित कार्य करती हैं। पुराने ढंग का चर्खा ही लीजिए। इसका तकुआ न केवल रुई या कपास से सूत निकालता है, यह अपने आप सूत को बटता भी है, और तकुए पर इसे लपेट भी देता है। इतने अंशों में यह स्वयं चालित है। ये (तीनों काम कुछ अंशों में ही स्वयं चालित हैं, वस्तुतः तीनों काम चर्खा चलाने वाले को अलग-अलग करने पड़ते हैं)। किसी मशीन से जब हम सिलाई करते हैं, तो मशीन न केवल टाँके ही लगाती है, वह प्रत्येक क्षण कपड़े को आगे भी बढ़ाती है। टाइपराइटर से जब हम कागज पर अक्षर छापते हैं, तो मशीन न केवल अक्षर अंकित ही करती है, यह स्याही के फीते या रिबन को भी एक ओर खिसकाती है और कागज को भी एक अक्षर आगे कर देती है, जिससे कि छापा हुआ अगला अक्षर पहले अक्षर पर न पड़े।

आजकल समाचार पत्र छापने वाली बड़ी-बड़ी

रोटिरी मशीनों को देखिए। यह जब चलती हैं, तो कागज स्वयं मशीनों के टाइप के नीचे आगे बढ़कर आ जाता है, इस पर छपायी होती है, फिर कटायी और मँजायी भी हो जाती है, आगे यह मशीन द्वारा मुड़ भी जाता है, और पूरी तैयारी की हालत में मशीन पर से उतरता है।

आपने स्टेशनों पर शरीर तौलने वाली मशीनें देखी होंगी। इन मशीनों के तख्ते पर खड़े होकर आपने निर्दिष्ट छेद में एक इकन्नी डाली, यह इकन्नी ही मशीन को चालित करेगी, और कई क्रियायें होने के बाद आपको छपी हुई टिकट मिलेगी जिस पर आपकी तौल अंकित होगी। इस प्रकार यह मशीन न केवल आपको तौलती ही है, यह तौल के इस अंक को टिकट पर छाप भी देती है, और आपसे इकन्नी वसूल कर लेती है।

अमरीका में निर्वाचन में काम आनेवाली स्वयं चालित मशीनें बड़ी सच्चाई से अपना कार्य करती हैं। यह केवल लोगों से शीघ्रता से वोट ही नहीं डलवातीं, प्रत्युत उन वोटों का हिसाब भी पूरा-पूरा अंकित कर देती हैं।

इन ऑटोमेटिक मशीनों में बुद्धि तो होती ही है, यह सतर्क रहना भी खूब जानती है। रेल के इंजन को ही लीजिए। जिस डेग में भाप बन रही है, वहाँ ऐसा भी प्रबन्ध है कि यदि आवश्यकता से अधिक भाप बन जाय, तो एक वाल्व अपने आप खुल जायगा, और निश्चित परिमाण से बनी अधिक भाप अपने आप बाहर निकल जायगी। पानी गरम करने वाली ऐसी बहुत सी मशीनें हैं, जिनमें नियमित डिगरी तक ही पानी गरम होगा, वहाँ तक पानी गरम हुआ कि अपने आप मशीन बन्द हो गयी; यदि फिर पानी ठंढा हुआ, तो मशीन फिर चलने लगी। आपको इनके निरीक्षण के लिए प्रत्येक क्षण सावधान होने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे यंत्र आते हैं, जो महीनों तक एक निश्चित तापक्रम किसी स्थान का बने बनाये रख सकते हैं। एयर कण्डिशनिंग रेल के डिब्बों में बाहर की जलवायु की उपेक्षा करते हुए भीतर गर्मी-सर्दी ही नहीं, बल्कि नमी भी संरक्षित रहती है। वहाँ कोई व्यक्ति प्रत्येक क्षण अपनी बुद्धि से काम नहीं करता है, मशीनों से ही सम्पूर्ण नियन्त्रण होता है। आप और हममें से कोई व्यक्ति यदि इस नियन्त्रण कार्य पर नियुक्त होता, तो वह तो असावधानी भी कर सकता था, रात को वह नींद के झोंके में अपने कार्य को भूल भी सकता था, पर मशीनें बड़ी सच्चाई और वफादारी से अपना काम बराबर करती रहती हैं।

आपने घरों में बर्फ जमाने वाली मशीनों को देखा होगा, जिन्हें रेफ्रिजरेटर कहते हैं। आपने अनुभव किया होगा कि ये मशीनें आवाज करती हुई कभी-कभी तो चलने लगती है और कभी-कभी ये अपने आप बन्द हो जाती हैं। वस्तुतः ये मशीनें अपना काम बड़ी चौकसी से करती हैं। ये जानती हैं कि इन्हें कब चलना चाहिए; और फिर कब बन्द हो जाना चाहिए। इनमें उतनी ही बिजली खर्च होगी, जितनी आवश्यक है। आवश्यकता पूरी होने पर बिजली की धारा इनमें अपने आप जाना बन्द हो जायगी। खाना पकाने के बहुत से यन्त्रों में भी इसी प्रकार का प्रबन्ध रहता है कि न तो खाना कच्चा ही रह पाता है, और न आवश्यकता से अधिक जल जाता है। आपके रसोइये का चौका भी रखने की कोई आवश्यकता न पड़ेगी।

बड़ी-बड़ी बैंकों और धनियों के मकानों की सुरक्षा के लिए ऐसे स्वयंचालित विधान बने हैं, कि रात के समय यदि चोर दर्वाजे पर आवे, और फाटक को छूवे, तो ये अपने आप झनझना उठते हैं, मालिक को जगा देते हैं। कहीं-कहीं तो चोर को बिजली का ऐसा धक्का लगता है कि वह दूर जा गिरता है। वैज्ञानिकों ने इस युग में ऐसे जादू की आँखें बनायी हैं जिनमें फोटो-इलेक्ट्रिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया है कि चोर सामने आया नहीं कि इसके बिम्ब को देखते ही दर्वाजा खुलेगा, चोर

उसके भीतर प्रविष्ट होगा, और फिर दर्वाजा अपने आप बन्द हो जायगा, और इस प्रकार चोर एक कमरे में अपने आप कैद हो जायगा। इस प्रकार भी वहाँ विधान होगा कि चोरी करने वाले व्यक्ति का चित्र भी वहाँ खिंच जाय, जिससे गवाही की जरूरत न रहे। यह याद रखिये कि ये सब काम अपने आप हो जायँगे और न किसी फोटोग्राफर की जरूरत होगी, न पहरेदार की और न चोर को पकड़ने के लिए पुलिस कान्स्टेबिल की।

आपने बिजली से तिमंजिले, चौमंजिले पर चढ़ने के लिए लिफ्ट देखे होंगे। इन लिफ्टों के संचालन के लिए आपने देखा होगा कि एक लिफ्टमैन होता है। आपने घंटी बजायी, और यह लिफ्टमैन लिफ्ट उतार कर या चढ़ा कर आपकी मंजिल तक लाया, उसने आपके लिए दर्वाजा खोला, आप लिफ्ट पर सवार हुए, उसने दर्वाजा बन्द किया, और जब आप अभीष्ट मंजिल पर पहुँच गये, तो लिफ्टमैन ने फिर दर्वाजा खोला और आपको बाहर निकाला अगर लिफ्टमैन गायब है, या सुस्त है, तो आपको कष्ट होगा। आज कल ऐसे ऑटोमेटिक लिफ्ट बने हैं, कि आपने लिफ्ट के पास पहुँच कर बटन दबाया, तो लिफ्ट जहाँ कहीं भी होगी, उसे खबर हो जायगी, और वह यथा समय आपके तल्ले पर, उतर कर आ जायगी, उसका फाटक अपने आप खुल जायगा, आप लिफ्ट पर सवार हो जायँ और फाटक अपने आप फिर बंद हो जायगा। यदि आप अपनी सुस्ती से फाटक के बीच में पिस गए, तो आपके बदन को छूते ही फाटक अपने आप थोड़ासा खुलेगा, जिससे कि आप लिफ्ट के भीतर चले जायँ। फिर फाटक बन्द होगा। आपको यथेष्ट मंजिल पर उतारने के समय भी ये सब बातें फिर होंगी। पर यह सब होगा, बिना किसी लिफ्टमैन के।

आपको जानकर कौतूहल होगा, कि विज्ञान के इस युग में जादूगर के से ये चमत्कार इतने बढ़ गए हैं कि आप आज ऐसे छोटे वायुयानों की कल्पना भी कर सकते हैं, जिनमें चलाने वाला ड्राइवर ही गायब हो। बिना ड्राइवर के ही ये वायुयान अभीष्ट स्थान की ओर उड़ना आरंभ कर देंगे। आप एयरोड्रोम में बैठे हुए ही इनकी गतिविधि का नियंत्रण कर सकते हैं। यदि आपके ये वायु-यान युद्ध के कार्य के हैं तो ये आपके निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर बम भी फेंक सकेंगे, और सुरक्षित वापस चले आवेंगे। यह सब काम हो जायगा, और यह आवश्यकता न होगी कि प्रत्येक काम का प्रवन्ध आप किसी जीते जागते पुरुष के हाथों करावें। निर्जीव मशीनें ही जीवधारी मनुष्यों की अपेक्षा अधिक सावधानी से ये कार्य कर देंगी।

स्वयंचालित मशीनों के विकास के इतिहास में रेडियो तरंगों ने और भी अधिक सुन्दरता ला दी है। आप दिल्ली में बैठे हैं, और आपको मद्रास के समुद्री तट पर किसी नए बने जहाज के प्रथम बार चलाने का उद्घाटन करना है। किसी कारण से आप मद्रास नहीं जाना चाहते, तो आप दिल्ली में बैठे-बैठे ही उस जहाज को पानी पर चलाने का उद्घाटन कर सकते हैं। निश्चित समय पर, दिल्ली में बैठ कर आप एक बटन दबावेंगे। हजारों की जमा भीड़ मद्रास में यह देखेगी कि ठीक इसी समय वह जहाज आगे चलने लगा। यह मत समझिए कि वहाँ किसी जीते जागते मनुष्य को आपने संकेत किया, और उसने जहाज चला दिया। वस्तुतः बात तो यह हुई कि दिल्ली में आपने जो बटन दबाया, उसी के प्रभाव से जहाज को पानी पर आगे ले जाने वाली मोटर स्वयं चलने लगी। निश्चय पूर्वक यह उद्घाटन आपके ही कर कमलों द्वारा हुआ है। इसी प्रकार आप कलकत्ते में बैठे हुए बम्बई के किसी सार्वजनिक भवन का उद्घाटन कर सकते हैं। आप वहाँ बैठकर हजारों मील की दूरी पर बने इस भवन के दर्वाजे को अपने संकेत पर खोल सकते हैं।

टेलिविजन और रेडियो के अविष्कार ने इस प्रकार इस युग में नयी औटोमेटिक या स्वयं चालित मशीनों को जन्म दिया है। आज तो बड़े-बड़े

[शेष पृष्ठ १७३ पर]

प्रयोगदेवी परखनली

नन्दलाल जैन

उस दिन मैं रसायनशास्त्र की प्रयोगशाला में था और अपना प्रयोग नित्य की भाँति कर रहा था। प्रयोग क्या था, वही रोज़मर्रा का—मिश्रित लवणों के अवयवों का परीक्षण, जहाँ यांत्रिक मस्तिष्क अधिक सफल होता है। मैं एक पर एक सभी सामान्य और विशेष परीक्षण करता जा रहा था, पर आज न जाने क्यों, सब असफलः कुछ पता ही नहीं कैसा लवण था यह झुंझुलाहट होना तो ऐसे अवसरों पर स्वाभाविक ही है। इसी स्थिति में 'बोरेट' मूलक के परीक्षण ने मेरा सारा प्रयोग चौपट (बोर) कर दिया।

बात यह हुई कि 'बोरेट' के परीक्षण के लिये ज्यों ही परखनली में लवण लेकर मैंने उसमें तीव्र गंधकाम्ल मिलाया, कि नली से सनसनाहट की आवाज के साथ तेजी से बुलबुले निकले और नली अचानक से मेरे हाथ से छूटकर फर्श पर जा गिरी फिर क्या था, मरता क्या न करता? परखनली ने चिटकने की ध्वनियों के साथ अपनी अंतिम साँसें भरना शुरू किया। और उसमें भरे हुए द्रव ने उचट-उचट कर मेरे पाजामे को क्षयग्रस्त बनाया। पाजामें की इस स्थिति को देख मुझे ऐसा लगा जैसे परखनली प्रसन्न-सी हुई हो, क्योंकि मैंने उसके कणों को किलक मारते और नाचते हुए देखा। इन कणों को मेरी मन की खीझ और पाजामे के टी० बी० पर बिलकुल भी रहम नहीं आया, और उन्होंने मुझे सहानुभूति दिखाने के बदले मेरे चारों ओर पड़ाव डाल दिया कि मैं यदि तनिक भी अपना पैर स्थानान्तरित करूँ तो वे उस पर धावा बोल दें। क्षण भर के लिये मैं और उद्विग्न हो गया और परखनली की शक्ति पर विचार करने लगा। कुछ ही क्षणों बाद मेरे कानों में परखनली की मूकवाणी सुनाई दी,"'मैं सहसा अवाक् रह गया, मुझे यह वाणी बड़ी मधुर-सी लगी, और उसे सुनने की तीव्र लालसा को मैं न रोक सका। फलतः मैंने परखनली और उसकी सेना को धीरे-धीरे एकत्रित किया और अपने सामने 'बेंच' पर रख दिया। कुछ ही क्षणों में मैंने अनुभव किया जैसे कोई मेरे कानों में यह कह रहा हो :—

"बालक, शायद तुम नहीं जानते हो, मैं कौन हूँ? तुम लोग मुझे निर्जीव समझते हो। मुझे एवं मेरे जाति भाइयों को प्रतिदिन इसी प्रकार अपनी असफलता की झुंझलाहट का शिकार बनाया करते हो एवं तहस-नहस किया करते हो। तुमने ही क्या, समस्त विज्ञान पढ़ने वाले वैज्ञानिक-नामधारी तीस-लाख मानवों ने मेरे वंश को नाश करने में क्या कोई कसर उठा रखी है? निरन्तर क्षयकारी पदार्थों की क्रिया एवं सदैव प्रचंड-ताप की विकरालता के आघातों से तुम लोगों ने प्रतिवर्ष, न जाने, मेरे कितने भाइयों की हत्या की है और कर रहे हो। मेरे छोटे भाई को तो तुम अग्नि में लाल करने के बाद शीतल जल में डालकर उसकी जीवन लीला समाप्त करने में ही आनन्द मानते हो!! पर क्या तुमने कभी सोचा है कि यदि मैं तुम्हारे इस हत्याकांड का प्रतीकार करने लगूँ, तो? शायद तुम सोचते होगे कि निर्जीवों में शक्ति कहाँ? पर हममें ब्रह्मा की अपार शक्ति भरी हुई है। मेरे एक-एक कण में तुम्हें लहू-लुहान करने की और तुम्हारे अन्तः शरीर तक को खरोंचने की शक्ति विद्यमान है। और मैं तो ऐसे

अगणित कणों की पुञ्जभूत-रूप ही हूँ। तुम सोचते होगे, "मैं पृथ्वी पर गिरने के बाद मर गई ?" नहीं, मैं अब नया जन्म धारण करूँगी, और सत्तर हजार रूपों में फिर से तुम्हारे पास आऊँगी। मैं इसी जन्म में तुम्हारे पास बार-बार आकर अपने वंश, कुटुम्ब और जाति भाइयों को एकत्रित व संगठित कर अपने इस हत्याकांड का बदला ले सकती हूँ। अपनी छोटी-सी चालबाजी से तुम्हारे एक वर्ष के अध्ययन में घोर शाबासी दिलाना तो मेरे बायें हाथ का खेल है। लेकिन मैं जानती हूँ कि बदला लेना बुरा होता है। यह कृतघ्नता को जन्म देता है। पर मैं यह अवश्य सोचती रहती हूँ कि क्या मानव ने मेरा निर्माण मेरी हत्या के लिये ही किया है ? उफ्, मानव, तुम कितने स्वार्थी हो, मुझसे अपने लिये सेवायें भी लेते हो, अपने ज्ञान और विज्ञान को प्रायोगिक रूप देकर मेरी सहायता से उसे पुष्ट और अभिवर्धित कर संसार का कल्याण करते हो, पर मेरा नाश करते समय क्या तुम्हारे मुख से कभी मेरे लिये 'उफ्' निकला ? क्या उस समय कभी मेरी सेवाओं के प्रति तुम्हारे मन में कोई भाव उदित हुआ ? मैं न केवल तुम्हारे ज्ञान की ही अभिवृद्धि करती हूँ, वरन् तुम्हारे लिये अपने अंदर से नये भौतिक संसार की रचना भी करती हूँ। आज के संसार की सारी प्रयोगशालायें तो मेरे रूपों से भरी ही पड़ी हैं, विभिन्न प्रकार के यंत्र और क्रियायें भी मेरे बिना संभव नहीं हो सकती हैं। ऐसे हितैषी सेवक से स्नेहपूर्ण और परिचित होकर अधिकाधिक लाभ उठाने की प्रक्रिया अपनाने के बदले तुमने उलटी ही धारा बहाई है। पर एक मैं ही हूँ जो तुम्हारे इस विपरीत प्रवर्तन के बावजूद भी तुम्हारा पिंड नहीं छोड़ती। जानते हो, क्यों ?

क्योंकि मुझ पर मानव का अनन्त उपकार है, उसने मुझे इस भूतल पर अवतरित जो किया है। उसकी बुद्धि और कला-कौशल के बिना मैं इस संसार में आ ही कैसे सकती थी। यदि मैं भी तुम्हारे समान निरपेक्ष हो जाऊँ और ऐसे ही सब होने लगें, तो क्या संसार कभी सुखमय बन सकेगा ? सजीवों की अपेक्षा निर्जीवों में यह कृतज्ञता ही विशेष होती है जिसके कारण वे अपने जन्मदाता के अत्याचारों के बावजूद भी वर्तमान रूढ़िग्रस्त भारतीय नारी की तरह अपनी सेवा और स्नेहार्पण द्वारा अपना आदर उसके प्रति अभिव्यक्त करते रहते हैं। तुम लोगों के इन विघातों का शिकार होने पर मुझे अपने प्रति, अपने जीवन के प्रति उतना आभास नहीं होता है जितना यह देखकर दुख होता है कि तुम बालकों की अभी मानसिक विकास की सर्वोत्तम अवस्था है, तुम्हें संसार और प्रकृति की वस्तुओं से परिचय प्राप्त कर अपने ज्ञान को पुष्ट एवं समृद्ध करना चाहिये। प्रकृति में विद्यमान खनिज और वनस्पति, सूक्ष्म जीवाणु और पशु-पक्षी, मिट्टी और काँच आदि महात्माओं के जीवन से तुम्हें प्रगाढ़ परिचय प्राप्त प्राप्त कर कष्टसहिष्णुता एवं सेवापरायणता की शिक्षा लेना चाहिये। पर क्या तुमने इस ओर कभी ध्यान भी दिया है। मैं तुम्हारे साथ रहकर तुम्हें प्रयोगों की कला में चतुर बनाती हूँ, पर सच बताओ, क्या कभी तुम्हारे मन में मुझसे ही परिचय पाने की बात आई है ? दिखाऊ दुनिया में कम से कम कभी अपने मुख से तो मुझसे पूछते ? मैं उस समय कितनी प्रसन्न होती। पर कहाँ, स्वार्थी संसार, 'काम सरा, दुख बिसरा।'

प्रतिध्वनि समाप्त हुई और अपनी ध्यानमग्न मुद्रा में ही मैंने अनुभव किया कि देवी परखनली के कथन में पर्याप्त सत्यांश है। मैंने देवी को उसकी सेवाओं के प्रति आदर व्यक्त करते हुए अपना मस्तक झुकाया और अपनी अज्ञानता के लिये क्षमा चाहते हुए मैंने उनका परिचय पाने के लिये अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

मेरी जिज्ञासा से परखनली कुछ मुस्कुराई-सी, शायद आनन्द से पुलकित होकर ही अधिक चिट-पिटाई हो। या फिर कौन कह सकता है, बुझते हुए दीपक की यह अन्तिम प्रकाशवान् लौ हो।

कहते हैं निर्जीवों के वाणी नहीं होती पर जब आज उक्त प्रतिध्वनि मैंने सुनी, तो यह बात मुझे कुछ असत्य-सी लगी। मैं उस समय से यही सोच रहा हूँ कि क्या उस वाणी को सब लोग सुन सकते हैं?

[२]

"मुझे तुम्हारी जिज्ञासा पर प्रसन्नता है", मेरे कान पुनः प्रतिध्वनित हुए, "पर मेरा परिचय क्या है, एक महाभारत ही समझो। यदि महाभारत के नायक गोपी-मन-रंजन, द्वारकाधीश और कर्मयोगी श्रीकृष्ण हैं तो आज के भौतिक जगत् में उनकी राधा तो अपने को मान ही लेती हूँ। तो फिर यह इस युग का राधा का महाभारत होगा। तुम जानते हो दुनिया में बहुत सी वस्तुओं के विषय में यह पता नहीं कि वे कब से इस दुनिया में आईं। दुनिया में इन वस्तुओं के प्रथम अवतार की कहानी बुद्धि-बलधारी मानव ने अब तक नहीं जान पाई है हम स्मृति शून्य निर्जीव तो फिर अपने बारे में कह ही क्या सकते हैं? वनस्पति, धातुयें, जल और चमड़ा आदि इसी कोटि में है। मैं भी कुछ समय तक इसी श्रेणी में रही हूँ, पर अब मेरे विषय में मानव ने गहरी छानबीन कर ली है। और उसने मुझसे मेरी कहानी संक्षेप में कही है। वही मैं तुम्हें बता रही हूँ।"

"साधारणतः मेरा जन्म कांच से होता है पर वर्तमान में मैं इसके अतिरिक्त धातु, रबर और प्लास्टिकों से भी बनने लगी हूँ। मेरे जन्म लेने में मानव की कला मूर्तरूप धारण करती है। पुराने समय में मैं इतनी उपयोगी नहीं थी, पर आज मैं सभ्यता की जन्मदात्री बन बैठी हूँ। यह कांच भी क्या पदार्थ है? इसमें चटक भी है, गरम करने पर लचक भी आ जाती है, आर-पार इसमें से देख लो। आग इसे जला नहीं सकती, क्षयकारी अम्ल और इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। इसे पिघला दो, फिर चाहें जैसी आकृति इससे बनालो, चौरस, मुड़ी हुई, गोल ठोस और खोखली। कहते हैं, भाप के इंजन का आविष्कार चावल पकाते समय हुआ था, ठीक इसी प्रकार लगभग पचास हजार वर्ष पहले समुद्र के रेतीले किनारे पर ईंटों से बनाये चूल्हे पर भोजन पकाते समय किसी फोनिक्स के व्यापारी ने कांच को जन्म लेते देखा था। उसे जितना मनोरंजक लगा, उसका रूप और गुण उससे भी अधिक आकर्षक। अतः कांच बनाने की जिज्ञासा स्वाभाविक थी। इसकी पूर्ति के लिये जब मानव ने अपनी बुद्धि दौड़ाई तब पता चला कि वह तो सोडा, चूना और रेत को आग में गरम करके गलाने पर बनता है। तब से यह प्रक्रिया बराबर प्रगति करती आ रही है और आज तो रसायन-शास्त्रियों ने कांच बनाने की कला में इतनी निपुणता प्राप्त कर ली है कि वे जैसे गुण कांच में चाहें, ला सकते हैं। मिश्र और वेनिस के लोग पुराने समय में कांच और उसकी बनी वस्तुओं के निर्माण की कला में प्रमुख रहे हैं। वर्तमान में हंगरी आदि देश प्रमुख हैं। आजकल एक ओर जहाँ केवल रेत का ही कांच बनता है, जो १५००° शतांश तक सभी प्रकार के क्षयकारी पदार्थों से तथा अग्नि से अप्रभावित रहता है, वहीं दूसरी ओर वह कांच भी है, जो केवल १००° शतांश पर पिघल जाता है और पानी तक में घुल जाता है। जिस कांच से मेरा जन्म होता है, वह सामान्य सोडा-चूना-रेत वाला कांच है, जिसमें ये तीनों चीजें निश्चित अनुपात में मिलाई जाती हैं। कभी-कभी भट्टी में पुराना कांच और रंजक या विरंजक द्रव भी डाल दिये जाते हैं। विभिन्न प्रकार के कांचों में सुहागा, सीस-यशद आदि के ऑक्साइड आदि मिलाये जाते हैं। इन मिली-जुली वस्तुओं को एक भट्टी में रखते हैं जो अग्निरक्षक-ईंटों की बनी होती है और जिसे कोयला, तैल या गैस जलाकर गर्म किया जाता है। भट्टी की प्रचंड अग्नि के ताप में ये सब चीजें गलकर एक हो जाती हैं। उस समय उनका यह एक पिघला हुआ एकीकृत रूप चिपचिपा और पारदर्शक होता है। इसी रूप को तुम लोग कांच कहते हो। इन भट्टियों में पिघलकर बने हुए कांच से ही साधारणतः मानव ने अपनी हस्तकला द्वारा मुझे इस संसार में पहले-पहल अवतरित किया था।

इन भट्टियों की प्रचंड ताप शक्ति को तुम लोग नहीं सह सकते। यही कारण है कि मानव में हम निर्जीवों की अपेक्षा सहिष्णुता कम पाई जाती है। मेरा निर्माण ताप शक्ति से होता है, मेरे कण-कण में वह भीषण ताप शक्ति भरी हुई है, पर हम अपनी इस शक्ति को क्षुद्र कार्यों में व्यर्थ नहीं खोती हैं, उसे तो हम अपने जन्मदाता के ज्ञान-संवर्धन की क्रिया में सहायता देकर सत्-प्रयुक्त करती हैं। हमारे इस अन्तरंग शक्तिरूप ने ही हमें सहिष्णु, धीर वीर और मानव के बुद्धि कौशल को मूर्तरूप दिलानेवाला बना दिया है। भट्टियों में पिघलकर बने हुए गोंद के समान कांच को फुँकनी की सहायता से निकालकर मानव, अपनी अभ्यस्त फूँकों द्वारा बढ़ाकर और साँचों में ढालकर मुझे जन्म दिलाता है। पूछा जावे, तो कांच की भट्टी साँचें और फुँकनी ही मेरे माँ-बाप हैं। मानव तो केवल मेरे लिये सृष्टिकर्ता परमेश्वर का काम देता है। सजीव सृष्टि के लिये जो ईश्वर की महिमा है, मुझ सरीखे निर्जीवों के लिये वही मानव की महिमा है।

अब मैं अपने लिये यह कह सकती हूँ कि मैं कांच की बनी एक आकृति हूँ, वैसे पिघला हुआ कांच यदि कोई रूप या आकार न धारण करे, तो वह सर्वाधिक निरुपयोगी पदार्थ ही होता है। पहले मैं मानव के हस्त-कौशल का प्रतिरूप बन कर संसार में जन्म लेती रही, पर मेरी सेवाओं ने मानव के इस कौशल को मेरी उपयोगिता की होड़ में हरा दिया और तब मानव ने यंत्रों की सहायता से भी मुझे जन्म देना प्रारंभ कर दिया। भट्टियों में से पिघला हुआ कांच निकलकर इन यंत्रों के दंडों पर जाकर वह एक ओर ताना जाता है और उसे दूसरी ओर से भी शरीर में खोखलापन लाने के लिये वायु प्रवाहित की जाती है। इस प्रकार काफी लम्बी खोखली नली को यथाकार काटकर और पुनः पिघला कर मेरा निर्माण किया जाता है। गलित कांच की अवस्था में जब मेरे ऊपर वायु प्रवाहित की जाती है, तो मुझे वैसा ही आनन्द आता है, जैसे तीव्र गर्मी में आपको पंखा झलने पर प्राप्त होता है। अपना रूप धारण करते-करते, प्राकृतिक रूप से कहिये या वायुवेग से, मैं ठोस और कठोर बन जाती हूँ। इस समय आप मेरे भीतर-बाहर देख सकते हैं। ठोस बनने के बाद भी मैं गरम तो काफी देर तक रहती हूँ, अतः मुझे अपने साथियों के साथ एक विशिष्ट प्रकार के ठंडे करने वाले कमरे में ले जाया जाता है, जहाँ या तो मैं विद्युत्-चालित बेल्ट पर चढ़कर कमरा पार होते-होते ठंडी हो जाती हूँ या कमरे में रखे-रखे ही स्वयं ठंडी हो जाती हूँ।

और तब मैं मानव की सेवा करने के लिए तैयार हो जाती हूँ।

[३]

मेरा केवल एक ही रूप नहीं होता ब्रह्म की माया के समान मैं बहुरूपिणी हूँ। कभी मोटी-ताजी, कभी कृशकाय, कभी एक ओर खुली, कभी दोनों ओर बन्द, कभी सीधी, कभी टेढ़ी-मेढ़ी न जाने मानव ने मेरे कैसे-कैसे रूप गढ़ डाले हैं। आप लोग मुझे जिस रूप में प्रतिदिन काम में लेते हैं, वह मेरा सर्वमान्य रूप है, वही खोखला-सा, एक ओर खुला बेलन सरीखा। इस दुनिया में मेरे अगणित भाई बहन हैं, बड़े और छोटे, पर वे मेरे बिना कहे आपकी सेवा नहीं कर सकते हैं। मैं अपने इन रूपों के नाम गिनाने में असमर्थ हूँ।

मेरा नाम भिन्न-भिन्न भाषाओं में केवल भिन्न-भिन्न ही नहीं है अपितु मेरा नामलिंग भी भिन्न है। भारतीय मुझे स्त्रीलिंग मानते हैं, लेटिन-प्रयोगी पुल्लिंग। ऐसा प्रतीत होता है जैसे भाषाविदों ने मुझे हिजड़ा-सा बनाने का उपक्रम रच रखा हो? पर इससे क्या मैं वैसी हो गयी? मैं तो जो हूँ और जैसी हूँ; वह या तो मैं जानती हूँ या फिर मेरा जन्मदाता मानव जिसके ज्ञान-प्राप्ति के दुर्गमपथ को मैं प्रशस्त करती हूँ। यदि भाषाविद माने, तो उन्हें मेरे क्रिया-कलापों व गुणों के कारण मेरे लिये ही एक विशेष लिंग का निरूपण करना चाहिये। नाम और लिंग की भिन्नता होते हुए भी मैं संसार के सभी देशों में अपने

गुणों के कारण एक रूप में ही सर्वत्र सेवा करती हूँ और आदर पाती हूँ। बाहरी भेदों के बावजूद भी मेरे गुणों की एकता की इस बात से मानव को भी मानव-एकता की प्रतीति करनी चाहिये, जिसमें देश, जाति व समाज के झंडे केवल बाहरी रूप प्रदर्शन करें।

नाम-रूप के बाद अब मेरा आकार लीजिये। वैसे तो मैं बेलनाकार गोलमटोल हूँ। मेरे बेजन का प्रायः एक फुट बन्द रहता है और एक खुला। यदि आप मुझे बन्द सिरे के बल जमीन पर रखें, तो मैं शीघ्र गिर पड़ूँगी। पर आप मुझे उलट कर रखिये अब आप बताइये, मेरा आकार कैसा है? ठीक आपके आराध्य महादेव की मूर्ति के समान; अन्तर केवल इतना है कि शिवपिंड सीधे ही शिव माना जाता है, और मैं अपने को उलटकर महादेव बनाती हूँ। इस प्रकार यदि मैं विज्ञान की भाषा में कहूँ, तो मैं कह सकती हूँ कि मेरा आकार उत्क्रान्त महादेव जैसा है। शास्त्रों के अनुसार संसार के दो प्रकट रूप हैं भौतिक, आध्यात्मिक। दोनों एक दूसरे को विपरीत राह की ओर संकेत देनेवाले। आध्यात्मिक जगत् के नेता हैं शंकर महादेव और इसलिये भौतिक जगत् की नेत्री हूँ मैं यानी उत्क्रान्त महादेव। मानव ने मेरा आकार गलत नहीं, सही ही बनाया है, क्योंकि मैं सचमुच अपने भीतर से संसार की भौतिक सभ्यता का साज संजोकर मानवहिताय प्रस्तुत करती हूँ। इस प्रकार तुम मुझे भौतिक-आधुनिक महादेव ही समझो।"

"आप कहेंगे महादेव जगत् के संहार-कर्ता माने गये हैं, पर मैं तो जगत्-स्रष्टा हूँ. यह कैसे।"

"सही तो है, मैं उत्क्रान्त महादेव जो हूँ शास्त्रोक्त महादेव जैसे हैं, ठीक उससे विपरीत। वे आध्यात्मिक, मैं भौतिक, वे नष्टा और मैं स्रष्टा……।"

(४)

संसार में चारों ओर अज्ञान का अथाह समुद्र है। ज्ञान की छोटी सी नैया लेकर मानव उसे पार करना चाहता है। एक समय था जब मानव सदा उपनिषदों की भाषा में बोलकर संसार से मुक्त होना चाहता था, पर अब समय बदल गया है; संसार को सुखमय बनाने की साधना में क्रियारत होने को ही सबसे बड़ा धर्म कहा जाता है। संसार को सुखी बनाने के लिये मानव की भौतिक आवश्यकतायें अन्न, वस्त्र, स्वास्थ्य आदि सन्तुष्ट होना चाहिये। जब मनुष्य भौतिक दृष्टया उन्नत बनेगा, तभी वह सच्चा परमार्थी हो सकेगा; "साउंड माइंड इन ए साउंड बोडी" फलतः मानव की प्रगति का मूल है—उसकी भौतिक आवश्यकताओं की संतृप्ति जो मेरे बिना नहीं हो सकती। बात यह है कि आज सभ्यता के विकास के साथ मानव का जीवन बहुत ही यान्त्रिक और पेचीदा हो गया है, उसकी आवश्यकतायें निरन्तर बढ़ती जाती हैं। पहले तो वह प्राकृतिक पदार्थों से थोड़े ही परिश्रम द्वारा अनुरूप वस्तुयें बनाकर काम चला लेता था, पर प्रकृति की गति मानव की वेगवान् गति के सामने मंद पड़ गई और मानव को अपने संश्लेषक व विश्लेषक मस्तिष्क का उपयोग करना पड़ा। लेकिन केवल विचार से ही तो कुछ होता नहीं है उसे अपने ज्ञान के प्रायोगिक रूप का फल जानना था। उसे नये प्रयोग करने थे; नयी-नयी वस्तुओं का निर्माण करना था। उसके सामने साधनों की समस्या थी; बस जैसे धर्म की तीव्र हानि के समय भगवान् अवतार लेते हैं, उसी प्रकार मानव की मानसिक समस्या को सुलझाने के लिये मैंने अवतार लेकर स्वयं को उसके हाथों सौंप दिया। फिर क्या था? मानव के हाथ अल्लादीन का चिराग आ गया।

उसने देखा, 'मैं पारदर्शक हूँ', इसलिये मेरे अन्दर रखी हुई किसी भी वस्तु को और उस पर होनेवाले गर्मी, व विभिन्न पदार्थों के प्रभाव को अच्छी तरह देखा जा सकता है; उनकी जांच भी की जा सकती है। धातुओं में यह गुण नहीं होता, रबर में भी नहीं यद्यपि ये चीजें मुझसे अच्छी हैं। हाँ आजकल प्लास्टिक नामक सज्जन अवश्य मेरे सहयोगी बनकर इस भूतल पर अवतीर्ण हो गये हैं। मेरे इस गुण के कारण मानव मुझे अपनी प्रयोग-

शालाओं में ले गया। उसने मेरी सहायता से रसायन विज्ञान, कृषि विज्ञान, औषध शास्त्र, कीटाणु विज्ञान तथा अन्य औद्योगिक क्षेत्रों में गत कुछ वर्षों में जो प्रगति की है, वह कल्पनातीत है। आप लोग जो प्रयोग करते हैं। उनमें आप पदार्थों के अवयवों की पहचान कर उनका विश्लेषण करते हैं। लेकिन मेरा काम केवल विश्लेषण करना नहीं है, वह तो नये पदार्थों के बनाने का पूर्ण रूप है। आज मेरे बिना कोई भी प्रयोगशाला ठीक वैसी ही प्रतीत होगी जैसी बिना दुलहे की बारात। मैं ही तो प्रयोगशालाओं की अधिसूत्री देवी हूँ। मेरी अनिवार्यता से तो आप लोग परिचित हैं ही।

मैं न केवल आप लोगों के यान्त्रिक प्रयोगों में ही काम आती हूँ। अपि तु बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के हाथों का खिलौना बनकर उनके मौलिक प्रयोगों को जनहितकारी रूप भी मैं ही देती हूँ। प्रयोगशाला में रबर की रासायनिक रचना का ज्ञान मानव को मैंने ही दिया। और तब से कृत्रिम रबर बनने का उपक्रम किया गया। नयी औषधियों को जन्म देने के लिये मैं ही जिम्मेदार हूँ। यदि मानव की बुद्धि की बात को मैंने अपने अन्दर मूर्तरूप में प्रस्तुत कर दिया तो आगे चलकर कारखानों में उनका निर्माण हो सकता है। विभिन्न सूक्ष्म जीवाणुओं की सहायता से बनाई जाने वाली औषधियाँ और पदार्थ बिना मेरी स्वीकृति के नहीं बन सकते हैं। किसानों की प्रत्यक्ष सेवा तो मैं नहीं करती, पर यह मैं ही हूँ जो उन्हें खाद और उसके उचित उपयोग और उससे उचित लाभ पाने की कुंजी बताती हूँ। मानव ने रंगबिरंगापन मुझसे ही सीखा है, विभिन्न रंग के रासायनिक द्रव्यों की निर्माण क्रिया मैं ही उसे बताती हूँ। मैंने ही उसे कोयले की गैसों और कोलतार का पता बताया है। मैंने ही उसे काले कोलतार से नयी सफेदीवाली सभ्यता को विकसित करना सिखाया है। श्री लुई पास्च्युर को मैंने ही सूक्ष्म जीवाणुओं की बात सुझाई थी। शक्तिदायी अलकोहल, एसीटोन और विभिन्न अम्ल तथा पैनिसिलीन जैसे उपयोगी पदार्थों को बनाने के लिये जिन एक-तन्तु-जीवाणुओं की आवश्यकता पड़ती है, उन्हें जन्म देने का प्राथमिक माध्यम मैं ही हूँ। सभी प्रकार के जीवाणुओं को मुझमें रखकर मानव उनके जीवन और कार्यों का अध्ययन करता है। इस प्रकार मनुष्य को जीवित रखने के लिये जैसे हवा और पानी आवश्यक है, उसी प्रकार मैं रसायनशास्त्री के लिये पुरातनकाल से अनिवार्य रही हूँ। वह तो मेरे बिना पग भर भी नहीं चल सकता। रसायनशास्त्रियों के उपकरण तक मेरे बिना नहीं बन सकते। मेरी ही आकृति में थोड़ा बहुत सुधार करके वे मुझसे इतना काम लेते हैं कि मैं तो दाब और ताप सहते थक जाती हूँ। श्री तॉफमान, श्री केवेंडिश आदि वैज्ञानिकों ने मेरे कभी लम्बे कभी चौड़े और कभी द्वि नलिक रूपों द्वारा पानी तथा अन्य गैसों की रचना ज्ञात की है, पदार्थों का अणुभार ज्ञात कर लिया है। T, U आदि आकार वाली नलियों के रूप में मैं ही तो तुम्हारे सामने आती हूँ। विभिन्न गैसों के निर्माण और उनके गुणों के परीक्षण मैं ही तो तुम्हें कराती हूँ? भौतिक शास्त्र का प्रयोगशाला के निरीक्षण बिना गीले-सूखे तापमापक के नहीं हो सकते। श्री रेगनाल्ट का आर्द्रतामापक उपकरण मेरे बिना नहीं बन सकता। दाबमापक तो मेरा ही एक पर्याप्त चौड़ा, मोटा-ताजा और एक सिरे पर U के समान मुड़ा हुआ रूप है। तापमापक की नली मेरा कृशकाय ही तो है, जो दोनों ओर से बन्द कर दी जाती है। जीवशास्त्रियों की टेबुलों पर भी मैं नमूनेवाली अपनी विशिष्ट नामवाली नालियों के रूप में विराजमान रहती हूँ। औद्योगिक शिक्षक का काम बिना तौल के नहीं चलता। और तौलक-नाली के रूप में मैं उसकी जेब में ही पड़ी रहती हूँ। कहाँ तक कहा जावे, समस्त विज्ञान-जगत् के मनन और चिन्तन की सभ्यता को प्रकट करने, उसे सत्यापित करने एवं उसे नई दिशाओं का भान कराने

में मैं अद्वितीय हूँ। आज के वैज्ञानिक युग में मैं इतनी क्रियाशील हो गई हूँ कि आप मुझे क्षण में गीत-गाते देखेंगे और क्षण में ही इंजेक्शन लेकर आपकी सेवा में, डाक्टर के हाथ में आते देखेंगे। रेडियो बिना 'वाल्व' के नहीं बन सकता: बस मैं ही तो 'वाल्व' हूँ। मेरे ही अंदर रेडियो की क्रिया प्रणाली छिपी हुई रहती है। आप रेडियो देखिये, आपको सब पता चल जावेगा, आकाश में उड़नेवाली लहरों को पकड़ कर अपने अंदर भर देती हूँ और वे उड़ न जावें, इसलिये रेडियो के पल्ले पर उलट कर अपनी स्थिति धारण कर बैठ जाती हूँ डाक्टरों के हाथ में दवाइयों के बर्तनों के रूप में सदा साथ रहती हूँ। शीशियां क्या हैं मानव ने थोड़ा मेरा गला दबोच दिया और धड़ फुला दिया बस मैं ही काग लगाने पर शीशी बन गई, लंबी-चौड़ी चाहे जैसी बनालो। मेरी क्रियाशीलता देखकर कला-प्रेमियों को मुझसे चिढ़-सी होती है—वे भी मुझे देख कर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। मैं प्रयोग साधित कला को जनहितकारी रूप देती हूँ। कभी-कभी यंत्रविद्या-विशारद भी मुझसे नफरत करने लगते हैं, हाँ कहाँ उनके विद्युत् चालित भीमकाय यंत्र और कहाँ अल्पकाय मैं? पर उन्हें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि सृष्टि का आविर्भाव हिरण्य-नाभ कमल से हुआ है, यदि मैं पदार्थों के बनने और उनके सफलता पूर्वक निर्माण होने की स्वीकृति न दूँ, तो वे अपने यंत्रों का कोई उपयोग भी कर सकेंगे? मेरे अल्पकाय शरीर की सहायता और स्वीकृति पाकर ही वे यंत्रधारी बने हैं, मेरे ही शरीर में संपादित विभिन्न जिज्ञासा-पूरक क्रियाओं से जगत् के समस्त प्राणियों के लिये अनंत लाभकारी साज-साधन प्राप्त होते हैं।

मानव ने भी मुझे यह सब सेवा करने के लिये अवसर दिया है; जानते हो क्यों? इसका एकमात्र कारण है—मेरे वे विशेष गुण जिनके कारण न तो आग मुझे जला सकती है और न तीव्र से तीव्र क्षयकारी पदार्थ ही मेरा कुछ न बिगाड़ सकते हैं; और हाँ—मैं पारदर्शक भी तो हूँ। मेरी सब से बड़ी विशेषता एक और है—मैं सदा इसी लोक में रहती हूँ। आप मुझे तोड़ते हैं, फोड़ते हैं, लेकिन मैं फिर कुछ ही समय में गुदड़ी पहुँचकर कारखाने में पहुँचा दी जाती हूँ और फिर से अपना नया जीवन प्रारंभ करती हूँ। मेरी क्रियाशीलता में कभी कमी नहीं होती; इस प्रकार अमर होने के साथ मैं सदा युवती ही बनी रहती हूँ। अपनी इस अमरता से मैं सजीव सृष्टि के समान निर्जीव सृष्टि की अमरता की उद्घोषणा करती हूँ। फलतः मैं मानव का बौद्धिक विकास करती हूँ, उसकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम बन उसको शारीरिक सुख प्रदान करती हूँ, और भौतिक सामग्री को बहुजन हितकारी रूप पाने की क्षमता प्रदान कर मानव को आर्थिक दृष्टया समृद्ध बना देती हूँ। इस प्रकार तन-मन-धन की समृद्धि द्वारा संपूर्ण जगत के मानवों का विकास करते हुए अपने जीवन को सार्थक बनाती रहती हूँ एवं उनसे स्रष्टा-मानव-से मुझे ऐसा ही जीवन बार-बार देते रहने और उसके सदुपयोग की दिशा धारण किये रहने की कामना किया करती हूँ।

यद्यपि मुझे अभीतक अपने नाम की चाह नहीं है: फिर भी इस प्रचार की दुनिया मेरी आवश्यकता जरूर है कि जैसे सभी राष्ट्रों की अपनी-अपनी ध्वजायें होती हैं, सभी राजनीतिक या अन्य दलों की अपनी पताकायें होती हैं, उसी प्रकार समस्त वैज्ञानिक जगत् भी अपनी एक विश्वमान्य पताका स्वीकार करे जिसमें मैं विराजमान रहूँ। मैं सोचती हूँ कि अपने अन्तिम क्षण में निकले हुए ये, उद्गार तुम्हारे द्वारा मूर्त रूप पा सकेंगे।"

इन शब्दों के साथ परखनली ने एक अन्तिम चिटपिट के साथ अपनी अन्तिम साँस छोड़ दी। और तब.........

मैंने अनुभव किया कि निर्जीव सृष्टि में सचमुच कितने उपकारी लोग हैं जो मानव के क्रूर आघात

सहकर भी मानव-हित-साधना में लगे हुए हैं। परखनली के उपर्युक्त उद्गारों ने मुझे वाग्देवी सरस्वती के समान प्रयोग-देवी के रूप में उसे मानने के लिये विवश सा कर दिया। ऐसी वर-दा और हितकारिणी देवी के प्रति मेरा मन अपना आदरभाव व्यक्त करना चाहता है।

इन्हीं विचारों में उलझा हुआ और सामने रखी देवी की ओर सिर झुकाये मैं न जाने कब तक प्रयोगशाला में खड़ा रहता, यदि चपरासी मुझे उसके बंद करने की सूचना न देता।

विज्ञान के नये चरण—स्वयं चालित मशीनें (पृष्ठ १६५ का शेषांश)

कारखानों में न जाने कितने काम इन विधियों से निकाले जा रहे हैं। अब हम एक और नये युग में हैं, और यह युग परमाणु शक्ति का युग है। इस युग में हमें एक नयी ही शक्ति मिल गयी है, जिसके चमत्कार अपने ढंग के निराले हैं। परमाणुओं के विभाजन के द्वारा हमें अनेक प्रकार की शृंखला बद्ध प्रतिक्रियायें मिल रही हैं, इञ्जीनियर इन प्रतिक्रियाओं के उपयोग का प्रयत्न कर रहे हैं। इनमें थोड़ा सा नियंत्रण और विकास होने पर हमारे समक्ष अनेक नयी औटोमेटिक या स्वयंचालित विधियों के सुझाव आ जावेंगे। इनके उपयोग से हम नयी स्वयंचालित मशीनें बना सकेंगे, जो आजकल की मशीनों से भी अधिक सूक्ष्म होंगी, और अपनी ठीक काम करने में बड़ी निपुण और बुद्धिमान सिद्ध होंगी। अगले दस-बीस वर्षों का इतिहास नयी स्वयंचालित मशीनों के विकास के लिए बड़े महत्व का होगा। ❀

❀ [१९ दिसम्बर १९५५ को प्रयाग रेडियो स्टेशन से प्रसारित वार्त्ता]

बुककीपिंग की परम्परा पर डा० सत्यप्रकाश

श्री कस्तूरमल बांठिया

डा० सत्य प्रकाश ने मेरी उठाई शंकाओं का निराकरण 'विज्ञान' फरवरी १६५६ के अंक में प्रकाशित अपने लेख 'बीजगणित और बुककीपिंग की परम्परा' में किया है, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हुँ। मुझे तो उनसे इसी प्रमाण की अपेक्षा थी, जिसके आधार पर उनने अपनी पुस्तक 'वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा' में लिखा था कि "यह पुस्तक (लूकास पेसिओलस की 'सूमा डेरारिथमेटिका, ज्योमेट्रिया, प्रोपोर्शनी ए प्रोपोर्शनलिटा') लेओनार्डो के आधार पर लिखी गई थी।", क्योंकि इसका आधार वहाँ नहीं दिया था। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के आधार पर ही यह बात लिखी गई थी और उसका उद्धरण भी उनने इस लेख में दे दिया, इसके लिए मैं आभारी हुँ। इससे मैं यह कहने की धृष्ठता नहीं करता कि ल्यूकास पेसिओलस ने जो "डबल एन्ट्री बुककीपिंग" पर पुस्तक लिखी, वह भारतीय अरबी अनुवादित पुस्तक के आधार पर हीं थी। क्योंकि जब तक बुक-कीपिंग पर लिखी किसी भारतीय पुस्तक का पता नहीं चलता, तब तक ऐसा कहना विश्वास नहीं किया जा सकता है। हाँ, इस प्रकार के आधार खोज-सूत्रों का काम देते हैं, जिन पर चलते हुए जिज्ञासु अन्वेषक एक दिन इस खोई कड़ी का पता निकाल ही लेगा, ऐसी आशा रक्खी जा सकती है।

लिओनार्डो निरा व्यापारी ही नहीं था

श्री जान० एस० मेके एल-एल० डी० अपने लेख 'गणना (Numeration)' में लिखता है कि 'नवीं शती के समाप्ति-पूर्व हिन्दू अंकों की अरबों को जानकारी हो गई थी और दसवीं सदी समाप्त होने के पूर्व ही इनका प्रयोग उनमें साधारण हो गया था। ग्यारहवीं शती तक मूरों ने इनका प्रवेश स्पेन में कर दिया था और तेरहवीं शती के प्रारम्भ में इटली में भी इनकी जानकारी हो गई थी। ऐसा खयाल किया जाता है कि इटली और पूर्व के बीच के व्यापार निबन्धों के कारण ही इन अंकों का वहाँ प्रचार हुआ और यह भी निश्चित है कि पहला इटालवी जिसने इनके विषय में १२०२ में लिखा, वह पीसा का लेओनार्डो, बोनाकी (फीबोनाकी) का पुत्र था और जिसने पूर्व में विस्तार से भ्रमण किया था।"[१]

यही सुप्रसिद्ध लेओनार्डो फिबोनिका सन् १२०२, १२२० व १२५० ई० के गणित ग्रन्थों का लेखक, पीसा में उस प्रांत के लेखा की जाँच और सुधार के लिए दीनारों के बीस पौंड तोल में रख लिया गया था, जैसा कि पीसा में अब तक सुरक्षित ऐसे पारित प्रस्ताव से प्रमाणित होता है।[२]

डा० सत्य प्रकाश जी कहते हैं कि "सम्भव है कि ल्यूकस पेसिओलस के उक्त ग्रन्थ में ही (Book-keeping) सम्बन्धी अध्याय भी हों और यदि ऐसे हैं तो ये अध्याय भी लेओनार्डो की पुस्तक में अवश्य होंगे। पर बुक-कीपिंग के इस अध्याय में (Double Entry) पद्धति होगी इसका मुझे सन्देह है।"

इस संदेह के प्रमाण में उनने इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका भाग २ पृ० ४४, १८७५ ई० का यह अंश उद्धृत किया है "Kelly, however who wrote on the subject in 1805, asserts, and it is not disputed, that a friar, named Lucas di Borgo, whose work on Algebra

---

१. Richard Brown—History of Accounting and Accountants पृष्ठ ११

२. वही पृष्ठ २

was first to appear in print, was the first to write a treatise upon Book-keeping and this was published at Venice in 1495." और यह निष्कर्ष निकाला है कि "इन शब्दों में यह व्यञ्जना निकलती है, कि लूकस ने बुककीपिंग पर एक स्वतन्त्र ही ग्रन्थ लिखा था, जो उसकी बीज गणित का अध्याय नहीं था। यह कहीं नहीं मिला कि इस बुक कीपिंग में डबल एण्ट्री पद्धति थी ही।"

सन् १८७५ के पश्चात् हुई शोध के आधार पर ही १९०५ में एडिनबरो की सोसाईटी आव अकाउँटेंट्स द्वारा शती महोत्सव पर प्रकाशित ग्रन्थ "History of Accounting and Accountants." में यह लिखा सत्य मानना होगा कि—In 1494, at Venice, the first treatise on the subject was given to the world. The author was one of the most celebrated mathematecians of his day, Luca Paciolo-Latinised Lucas Patiolus-and he had become familiar with the problems of commerce through acting as resident tutor to the sons of one of the merchant prince of the Repulic. Pacioli describes himself as "Brother Luke of the borough of San Sepolcro, of the Order of St. Francis, and of sacred theology a humble professor. The purpose of the work was not in the first place to give instructions in Book-keeping, but to summarise the existing knowledge of mathematics. It is, therefore, entitled "Everything about Arithmetic, Geometry and Proportion." (Summa de Arithmetica, Geometria, Proportionie et Proportionalita), and is divided into two parts, one dealing with Arithmetic, the other with Geometry. Having given directions for making numerical calculations and having devoted particular attention to the difficulties involved in counting house work by the chaotic state of the coinage of the period, Paciolo brings the arithmetical part of the work to a close by adding the treatise on book-keeping. It is introduced with the following apology : In order that the honourable subjects of the most gracious Duke of Urbino may have complele instructions in the working of business, I have decided to go beyond the proposed scope of the work and add this most necessary treatise. The dissertation on book-keeping is composed of thirtysix chapters, and is enititled "Of Reckonings and writings." (De Computis et Scripturis). Paciolo makes no claim to offer any original contribution to the art of book-keeping. He states explicitly that he will follow "the method of venice" which in his opinion is to be recommended in preference to others."[1]

विस्तार से उद्धरण देने का एक मात्र तात्पर्य यह है कि अद्यतन खोज यही प्रमाणित करती है कि लूकस पेसिओलो ने बुक-कीपिंग पर स्वतन्त्र ग्रन्थ कोई नहीं लिखा था, हालांकि उसको 'Treatise' नाम से सम्बोधित किया गया है। लंदन की इंस्टीट्यूट आफ बुक-कीपर्स लिमिटेड ने सन् १९२४ में पेसिओलो की इस ट्रीटाइज का इटाली से अङ्गरेजी

[1] वही पृष्ठ १०८-९

अनुवाद 'Pacioli's Treatise on Double Entry Book-keeping' शीर्षक से प्रकाशित किया है और अनुवादक ने भूमिका में पेसिओली का जीवन वृत्तान्त देते हुए लिखा है कि "From Assisi he went to Webino, but in November, 1494, he had returned to Venice to see the proofs of his, 'Suma de Arithmetica, Geometria, Proportionie, et Proportionolita" (this work included the treatise on book-keeping), which came to light on the 10th of November of the same year." इस पुस्तक के अर्द्धनाम-पृष्ठ पर इस प्रकार नाम दिया गया है—

Snma de Arithmetica, Geometria,
Proportionie et. Proportionalita
SectionIX—Treatise XI
Particulars of Accounting and
Recording.

हालांकि मुख्य नाम पृष्ठ पर 'Pacioli's Treatise on Double Entry Book-keeping." ही नाम दिया है। इस मत का समर्थन श्री एलाड्रेज, इनकारपोरेटेड अकाउँटेन्ट वम् आडिटर; ने अपनी १९३१ में प्रकाशित पुस्तक 'The Evolution of the Science of Book-keeping' में भी किया हैं।

डबल एण्ट्री बुक–कीपिंग

डबल एन्ट्री बुक-कीपिंग पहले-पहल सन् १३४० की इटली देश के जोनोआ नगर की नगरपालिका के भंडारियों की बहियों में मिलती है। उनकी खाता-बही में एक खाता 'Pepper (काली मिर्च) Account' है जिसकी प्रविष्ठियों से डबल एन्ट्री बुक-कीपिंग पद्धति पर पूरा-पूरा प्रकाश पड़ता है। खाते में खर्च उधारा गया है और आय जमा की गई है और शेष हानि-लाभ खाते में फिर स्थानान्तरण कर दिया गया है। सन् १४१० से १६ और १४०६ से ३४ तक के इटली देश के वेनिस नगर के डोनाडो सोरांजो एन्ड ब्रदर्स के दो खातों में भी इसी प्रकार की प्रविष्ठियाँ मिलती हैं। सन् १४१० से १६ तक के खाते में प्रत्येक जमा प्रविष्ठी की उधार प्रति प्रविष्ठी है और माल खाता हानि या लाभ निकाल कर डोढ़ा यानेबन्ध भी कर दिया गया है। हानि-लाभ की सभी मदों को एकत्रित करना और उन्हें इसके पश्चात पूँजी खाते में स्थानान्तरण इस खाते में नहीं किया गया है। परन्तु दूसरे १४०६ से १४३४ तक के खाते में हानि-लाभ खाता और पूँजी खाता दोनों ही हैं। पेसिओली की पुस्तक की इस दृष्टिकोण से परीक्षा करनेवाले को स्पष्ट हो ही जाता है कि उसमें 'डबल एन्ट्री बुक-कीपिंग' पद्धति ही विवेचित है। उसकी विषय-सूची उद्धृत कर देना यहाँ उपयोगी है:—

(१) प्रवेश, (२) सूची (इंवेंटरी), (३) सूची का आदर्श उदाहरण, (४) उपयोगी शिक्षाएँ और सहायक लेख पत्र, (५) तीन प्रधान पुस्तकों का वर्णन, (६) स्मरण पुस्तक (मेमोरेण्डम), (७) व्यापारी की बहियाँ कैसे प्रमाणित की जाती हैं, (८) स्मरण पुस्तक में प्रतिष्ठियाँ, (९) क्रयण की नों रीतियाँ, (१०) नकल बही (जरनल), (११) 'पर' और 'ए' (अर्थात् डेबिट व क्रेडिट) समझ, (१२) जरनल में जमा और नावें। रोक और पूँजी खाता, (१३) खाताबही, (१४) जरनल से खाता बही में खताना, (१५) खाता बही की खतौनी, (१६) माल सूची का खाता बही में लिखना, सरकारी संस्थानों से लेन-देन का लेखा, (१८) 'मेसीटेरिया' कार्यालय से लेख-व्यवहार, (१९) हुँडी द्वारा भुगतान का जमा खर्च, (२०) वाणिज्य, साझा, आदि के लेखा, (२१) साझे किस प्रकार से

Contents. Chap 1. Introduction. 2. The Inventory. 3. Examplary Form of Inventory. 4. Useful Exhortation and Helpful Documents. 5. Disposition. The Three Principal Books. 6. Thc Memorandum 7. How Mercantile Books are authenticated. 8. Entries in the memorandum. 9. Nine ways of purchasing. 10. The Journal. 11. 'Per' and 'A'. 12. Jour-

किये जाएँ, (२२) प्रत्येक प्रकार के व्यय का जमा खर्च, (२३) दूकान के बही-खाते, (२४) नकल बही और खाता बही में बैंक व्यवहार का जमा खर्च, विपत्र व्यवहार, (२५) आगम और निगम का लेखा (२६) यात्रा का लेखा (२७) लाभालाभ लेखा, (२८) खाता बही के लेखे किस प्रकार आगे लिये जाएँ, (२९) वर्ष कैसे बदला जाए, (३०), लेखा भेजना, (३१) भूलों का संशोधन, (३२) खाते शेष निकालना, (३३) शेष निकालते समय के व्यवहारों का जमा खर्च (३४) पुराने खातों को डोढ़ा करना और उठाना जमा और नावें का संकलीकरण, (३५) पत्रों का संरक्षण, चिट्ठीनोंध, (३६) नियमों का संक्षेप, (३७) व्यापारी की बहियों में लिखने योग्य बातें उदाहरण और संक्षेपों के लिखने की रीति।

व्यापार शब्दावली से अपरिचित अंगरेजी पढ़े-लिखों के लिए नीचे फुटनोट में अंगरेजी में विषय सूची उद्धृत कर दी गई है। इस सूची के पढ़ने वाले को स्पष्ट प्रतीत हो जाएगा कि पेसिओलो की पद्धति परिपूर्ण डबलएंट्री पद्धति उसी प्रकार की है जैसा कि आज कल विद्यालयों और शालाओं में अंगरेजी में सिखाई जा रही है। सुधार-समयानुसार उस पद्धति में अवश्य ही हुए हैं, परन्तु मूलभूत सिद्धान्त में जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ है।

जब तक हमें प्राचीन प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हम कैसे किसी को विश्वास दिला सकते हैं कि हमारे यहाँ ऐसी ही पद्धति चल रही थी? आज तक इस ओर किसी ने लक्ष्य किया ही नहीं। परन्तु अब यह खोज की जानी चाहिए। और मेरा विश्वास है कि खोज करते-करते इसके प्रमाण मिल ही जाएंगे। जिस देश के व्यापार को दो हजार वर्षों से भी पूर्व की ख्याति हो, जिसने अंक और दशमिक पद्धति से संख्या लिखने का आविष्कार किया हो, जिसके व्यापारियों की साख सुदूर पूर्व एवम् पश्चिम में प्रख्यात हो, जिसकी हुँडी स्वीकारी एवम सकारी जाती हो वे हिसाब लिखने की कला से कभी भी अनभिज्ञ नहीं हो सकते। खोज करते हुए मुझे अभी ही 'विदेह राज के व्यापार शास्त्र' का परिचय मिला जिसका शंकराचार्य ने कामंदक नीतिसार के भाष्य में नाम निर्देश किया है। इसकी खोज की जानी चाहिए। फिर 'जातक अट्ठकथा' में सुमेध को उसका खजानची बहीखाते खोल खोजकर बताता है कि 'इतना मातृधन है। इतना पितृधन है। इतना दादा परदादा को धन है...।' "इस प्रकार सात पीढ़ी तक के धन को कहकर बोलता है कि कुमार लो इसे संभालो।"

कौटिल्य अर्थशास्त्र सुप्रसिद्ध महामात्य-चाणक्य का लिखा है। उसके दूसरे अधिकार के सातवें

---

nal Debits and Credits. Ledger terms :—Cash and Capital. 13. The Ledger. 14. Transferring from the Journal to the Ledger. 15. Posting to the Ledger, 16. Noting Merchandise Entries in the Ledger. 17. Keeping Account with public offices. 18. Accounting with the offiee of the "MESSETARIA". 19. Recording payments. made by Draft. 20. Trading, Partnerships etc. 21. How a partnership should be mananged. 22. Entries of Each kind of Expense. 23. The Accounts of a shop. 24. Bank Entries in Journal and Ledger. Use of Exchange. 25. The Income and Expenditure Account. 26. Entries of Trips, 27. The profit and Loss Account. 28. How Ledger Accounts should be Brought Forward. 29. How to change the Year. 30. An Abstract of an Account. 31. Taking out or Deviating Mistakes. 32. Balancing the Ledger. 33. Recording Transactions during Balancing. 34. Closing old Ledger Accounts. Grand Totals of Debits and Credits. 35. How to keep Letters. The Register. 36. Summary of the Rules. 37. Things which should be placed in the Merchants Book. Abbreviations and Book-keeping Examples.

अध्याय 'अन्नपटल में गणविक्याधिकार' पढ़कर यह कल्पना ही अनुचित प्रतीत होती है कि हम भारतीय पूर्ण पद्धति से लेखा-जोखा रखना नहीं जानते थे।

शुक्रनीतिसार के संदर्भ डा० सत्यप्रकाश जी के मतानुसार इस लिए माननीय नहीं कि यह ग्रन्थ पाश्चात्य पंडितों के मत से अर्वाचीन है। क्योंकि उसमें बारूद का वर्णन है। पर बारूद का चीन में आविष्कार छठीं शताब्दी में होना जब पाश्चात्य विद्वान स्वीकार करते हैं तो फिर शुक्रनीतिसार को दसवीं शताब्दी का मानने में आपत्ति क्या हो सकती हैं ? इस प्रकार दसवीं शती में इस कला का भारतीयों का जानना प्रमाणित होता है।

जैसा कि मैं कह चुका हूँ इसकी खोज पर भारतीय विद्वानों का अभी तक ध्यान ही नहीं गया है। जब गणित की खोजों से यह मान लिया गया है कि "That mathematics in Ancient India was the highest in the world and was a true key to India's greatness India was the most leading country of the world uptil the beginning of the 17th century तो मेरा यही निवेदन है कि सत्तरहवीं सदी के प्रारम्भ तक बहीखाता काल में भी भारतवर्ष संसार का सिरमौर था। इस कला के पश्चिम में विकास पिछले डेढ़ सौ वर्ष में और वह भी लिमिटेड कम्पनियों का कानून बनने के अनन्तर हुआ, जब कि औद्योगिक विकास भी वहाँ पर्याप्त हो गया था, और हमारे देश में अंगरेजी राज्य दृढ़ता से जम गया था। अन्त में स्वर्गीय प्रो० खुशालचंद त० शाह (K. T. Shah) के शब्दों द्वारा इस लेख को यहीं समाप्त करता हूँ जो आशा से अधिक लंबा हो गया है—

Many of the ancient treatises directly dealing with वार्ता, or the science of Economics as a whole, seem to have been lost. At least they have not so far been discovered. A long list, however, is given in Shri Narendra Nath's Studies in INDIAN HISTORY and CULTURE (pp 485-402) of printed and manuscript works on specific subjects included in the main Science. In his commentary on Kamandaka's Nitisar नीतिसार, Shankaracharya mentions Gautam and Shalihotra's Treatise on Agriculture's Economics, Videhraja's Treatise on commerce, and Parashara's Krishi Sangraha. There are besides Shasyananda, a work on Botany, and Vriksha Ayurveda, another on Forestry; king Bhoja's Yukti Kalpataru and other like Kshetra Prakash's Mayamita Shilparatna Vastu Vidya, Samarangana Sutra. The chapters of Kautilya in Books II, III, IV relating to these specific arts, crafts, or industries provide ample evidence that very detailed technical works must have existed on all these several subjects on which the author of अर्थ-शास्त्र has given such clear injuntions.

समय की कहानी

[श्री अनिल कुमार]

समय अर्थात् मिनट, घण्टे, दिन और सप्ताह की कहानी, जिनसे लोग अपना दैनिक कार्य चलाते हैं, इतिहास के ज्ञात रेकर्ड से भी पुरानी है।

अब तक जो मालूम हुआ है, उससे यह पता चलता है कि मनुष्य द्वारा समय को मापने का सर्वप्रथम साधन सूर्य ही था। समय बताने वाली प्रचलित घड़ी से बहुत पहले धूप-घड़ी से काम लिया जाता था। यहाँ तक कि जब लोग गुफाओं में रहते थे, तब भी वे धूप और अन्धेरे से समय का अन्दाज लगा लेते थे।

धूपघड़ी के बाद जलघड़ी का आविष्कार

रात्रि और वर्षा के समय धूप-घड़ी समय नहीं बता सकती थी। इससे असन्तुष्ट होकर मिस्र के प्राचीन निवासियों ने समय को मापने के उन्नत साधनों का पता लगाया। उन्होंने जलघड़ी (क्लेपसिड्रा) का निर्माण किया। जलघड़ी समय बताने वाला ऐसा उपकरण था, जो छेद से निकलने वाले पानी के आधार पर समय की सूचनाएँ देता था।

जलघड़ियाँ दो किस्म की होती थीं। पहली किस्म की जलघड़ी में से पानी एक छेद से बाहर निकलता रहता था। दूसरी किस्म की जलघड़ी ऐसी होती थी, जिसमें पानी की सतह और उनका दबाव ताजा पानी डालकर एक जैसा रखा जाता था।

सादी किस्म की जलघड़ी एथेन्स की अदालतों में समय का पता लगाने के लिए इस्तेमाल की जाती थी। दूसरी किस्म की जलघड़ी इससे कहीं अधिक जटिल और पेचीदी थी। इसे प्लेटो ने या कुछ लोगों के कथनानुसार एलेग्जैण्ड्रिया के सेसीबस ने ईसा से दो शताब्दी पूर्व तैयार किया था। ईसा से लगभग १५६ वर्ष पूर्व इन दोनों किस्मों की जलघड़ियों का रोम में प्रचलन था।

उसी जमाने में घण्टे बताने वाली एक घड़ी भी इस्तेमाल में आई। कुछ बातों में यह जलघड़ी से अधिक अच्छी साबित हुई। लेकिन इस घड़ी को उलटने में गफलत कर देने पर समय का सही पता लगाना असम्भव था। १६ वीं और १७ वीं शताब्दी में इस घड़ी को आमतौर पर गिरजा-घरों में इस्तेमाल किया जाता था।

लगभग १ हजार वर्ष तक मनुष्य ने समय को मापने सम्बन्धी अपने यत्नों में कोई प्रगति नहीं की। अन्धकार-युग की समाप्ति के बाद गिरजाघरों ने आम जनता के लिए घड़ी का काम करना शुरू कर दिया। जलघड़ी से समय को माप कर तथा घण्टे बजा कर वे लोगों के दैनिक जीवन के क्रियाकलापों को सुव्यवस्थित करने लगे। इसीलिए यह विश्वास किया जाता है कि मध्य-काल के पादरियों ने सबसे पहले जलघड़ी में सुधार कर उसका विकास पूर्ण यान्त्रिक घड़ी के रूप में किया तथा उन्होंने अपनी घड़ियों को चलाने के लिए गुरुत्वाकर्षण शक्ति का इस्तेमाल किया।

मेनस्प्रिंग का इस्तेमाल

उसी समय शक्ति के स्रोत के रूप में 'मेनस्प्रिंग' का इस्तेमाल किया गया। वास्तव में यह 'मेनस्प्रिंग' कलाई पर बाँधी जाने वाली आधुनिक घड़ी के 'मेनस्प्रिंग' की तरह होता था। टाइमपीस घड़ी का सबसे महत्वपूर्ण पुर्जा वह होता है जो 'मेनस्प्रिंग' के खुलते समय उसकी गति को एक जैसा रखता है। इससे समय ठीक और सही रहता है। इसे 'एस्केपमैण्ट' कहते हैं। शुरू में तैयार होने वाली घड़ियों में स्प्रिंग की रफ्तार को ठीक रखने के लिए कई तरह की गरारियाँ लगी होती थीं, जो 'मेनस्प्रिंग' के साथ

लगी सुइयों को घुमाती थीं। आजकल की बड़ी और छोटी घड़ियों में इसी सिद्धान्त को प्रयुक्त किया जा रहा है। इन घड़ियों में वजन की अपेक्षा स्प्रिंग से चालन-शक्ति प्राप्त की जाती है। तथापि विभिन्न घड़ियों की गरारियों में अन्तर रहता है।

लगभग १३ वीं शताब्दी के अन्त में जब बड़ी घड़ियों का निर्माण शुरू हुआ, तब ये समस्त विकास-कार्य प्रारम्भ हुए। उस समय इन घड़ियों को चलाने के लिए १०० पौण्ड तक के वजन का प्रयोग किया गया। सबसे पहला घण्टाघर वेस्ट मिनिस्टर (इंगलैंड) में १२८८ ई० में बना। १३५२ ई० में स्ट्रेसबर्ग कैथेड्रल का घण्टाघर बना। १६ वीं शताब्दी में समय बताने वाले इसी तरह के कई और घण्टाघर बने।

प्रारम्भिक अनुसन्धानकर्त्ता और आविष्कार

१५८१ ई० में इटली के गैलिलो नामी एक युवक ने पीसा के एक बड़े गिरजाघर में लटके हुए एक लैम्प को इधर से उधर घूमते देखा। उसने अपनी नब्ज से उसके घूमने की चाल को मिलाया और यह देखा कि हर अवस्था में लैम्प के इधर-उधर आने जाने में एक समान समय लगता है। गैलिलो को इस खोज के बाद लटकनदार घण्टे का निर्माण हुआ। क्रिश्चियन हैगन्स (१६२६–१६६५) नामी डच गणितज्ञ, ज्योतिषी और भौतिक-शास्त्री ने १६५७ ई० में सबसे पहला लटकनदार घड़ी का निर्माण किया।

उसी समय जर्मनी के नूरेम्बर्ग नामी स्थान के पीटर हैननिन छोटे आकार की जेब घड़ी तैयार करने की फिक्र में लगे हुए थे। आपको अपने इस कार्य में सफलता मिली। उन्होंने वजन या लटकन के स्थान पर लिपटे हुए स्प्रिंग का इस्तेमाल किया। चालन-शक्ति इसी स्प्रिंग से आपने प्राप्त की।

वर्तमान युग और अमेरिका

कई शताब्दियों तक यद्यपि घड़ियों के निर्माण में निरन्तर सुधार जारी रहे, फिर भी घड़ियाँ श्रृंगार और खेलने की वस्तु ही बनी रहीं। केवल अमीर लोग ही इन्हें खरीद सकते थे।

यूरोप में घड़ियों का निर्माण-कार्य ललित कलाओं में गिना जाने लगा। इनमें नक्काशी की जाने लगी तथा इन्हें जवाहरातों से सजाया गया। कुछ पुर्जों को तैयार करने के लिए यद्यपि तब भी यूरोप में मशीनें लगाई गईं, लेकिन अधिकांश कार्य हाथों से ही किया गया। फलस्वरूप न तो इन घड़ियों के दाम कम हुए और न ये सही समय ही दे सकीं। १९ वीं शताब्दी के अन्त तक घड़ी-निर्माण का उद्योग यूरोप के कुछ देशों, खास तौर पर स्विटजरलैंड और इंगलैण्ड तक ही सीमित रहा।

सभी लोगों को समय जानने की सुविधा प्रदान कराने की शुरुआत १८४९ ई० में अमेरिका में की गई। कम दाम में अधिक सही घड़ियों को बनाने का विचार एडवर्ड हावर्ड और आरोन डैनिसन नामी दो अमेरिकी युवकों को सबसे पहले सूझा। इन्हें घड़ियाँ तैयार करने की प्रारम्भिक कार्यवाहियों में लगभग ४ वर्ष लगे और उन्होंने सैकड़ों घड़ियाँ तैयार कीं। ये घड़ियाँ पूर्णतया मशीनों द्वारा तैयार की गई थीं।

अमेरिका की 'वाटरबरी क्लाक कम्पनी' ने १८८० ई० में एक नए किस्म की घड़ी "क्लाक वाच" तैयार की। इसकी कीमत चार डालर अर्थात २० रु० से भी कम थी। इन्हीं दिनों मिचिगन राज्य का एक नवयुवक धन कमाने के उद्देश्य से न्यूयार्क पहुँचा। उसे यह यकीन था कि वह कीमती घड़ी की तरह सही समय बताने वाली सस्ती घड़ी तैयार करके एक डालर में बेच सकेगा।

राबर्ट हाले इंगरखोल (१८५९–१९२८) नामी इस युवक ने कुछ वाटरबरी घड़ियाँ खरीदीं और कुछ वर्ष तक तजुर्बा करने के बाद वह १८९२ ई० में १ डालर की घड़ी तैयार करने में सफल हो गया।

अमेरिका में बिजली, वायुमण्डल के दबाव, हवा के संकोचन तथा अन्य अकल्पित साधनों द्वारा चलने वाली घड़ियाँ आज तैयार की जा रही हैं। न्यूयार्क स्थित कोलम्बिया विश्वविद्यालय में हाल ही में जो आणविक घड़ी तैयार हुई है, वह इतनी सही समय बताती है कि उसमें ३०० वर्ष में एक सेकण्ड से अधिक समय का अन्तर नहीं पड़ता।

मुर्गी के लिये गोबर से तैय्यार खाना

[श्री० ओ० पी० अग्रवाल, नैनी अग्रिकल्चरल इंस्टिट्यूट]

प्रजनन के बाद कुक्कुट पालन में खिलाई की ओर ध्यान देना दूसरी आवश्यक सीढ़ी मानी गई है। एक अच्छी से अच्छी नस्ल की मुर्गी को अगर अच्छा खाना न दिया जाय तो वह कमजोर पड़ जायगी और उसकी अन्डा देने की शक्ति भी कम हो जायगी।

गाय बैलों के खिलाने और मुर्गियों के खिलाने में काफी अन्तर है। गाय बैलों के चार पेट होते हैं और हर एक पेट का अलग-अलग कार्य होता है इसलिये गाय और बैल काफी मात्रा में चारा खाकर शक्ति दायक और आवश्यक पदार्थ प्राप्त मात्रा में ग्रहण कर सकते हैं लेकिन मुर्गियों के एक पेट होने के कारण उन्हें आवश्यक पदार्थ थोड़े से खाने के द्वारा प्राप्त करना पड़ता है। मुर्गी के बच्चों को बढ़ने के लिए और मुर्गियों को अपनी तन्दुरुस्ती बनाए रखने के लिए और अन्डे देने के लिए खासतौर से जांतविक प्रोटीन की बड़ी आवश्यकता होती है। मुर्गियों को अपनी तन्दुरुस्ती बनाये रखने के लिए ११ माशा प्रोटीन रोज और इसके अलावा एक अन्डा देने के लिए १५ माशा प्रोटीन की आवश्यकता होती है। गाय और बैलों के पहले पेट में कुछ मात्रा में जान्तविक प्रोटीन जरासीन और B_{12} विटामिन द्वारा बनती है लेकिन मुर्गियों मे यह बात न होने के कारण इनके खाने से जान्तविक प्रोटीन पहुँचाने का काफी ख्याल रखना होता है। इस तरह की प्रोटीन मुर्गियों में मछली के पाउडर या सूखे खून या दूध या मांस के छिछड़ों द्वारा दी जा सकती है। मछली का पाउडर एक आने का आधापाव मिलता है और यह मुर्गी के खाने में ५ फी सदी मिलाया जाता है। आधा पाव मछली का पाउडर एक मुर्गी के लिए एक महीने तक चल सकता है। सूखा खून मुर्गियों के खाने में ६० फी सदी की मात्रा में मिलाया जाता है। एक पाव खून जिसकी कीमत एक आना होती है, एक मुर्गी के लिए एक महीने तक चल सकता है। एक सेर मक्खनिया दूध या एक सेर मांस के छिछड़े १० मुर्गियों के लिए एक दिन के लिए काफी होता है।

गाँव में जान्तविक प्रोटीन देने का एक और सस्ता जरिया है और वह है दीमक जिनके छत्ते बिना पैसा खर्च किए तैयार किए जा सकते हैं।

मुर्गी पालन में आमतौर से यह देखा गया है कि जो बच्चे जल्दी बढ़ते हैं वह जल्दी अन्डा देना भी शुरू कर देते हैं और अन्डा ज्यादा देते हैं। जो मुर्गी का बच्चा जल्दी अन्डा देना शुरू कर देता है उस पर कम खर्चा होता है और अधिक अन्डे देने पर उस पर काफी फायदा होता है। आजकल अपने देश के कुछ कुक्कुट फार्मों में बड़े जोर से यह खोज की जा रही है कि मुर्गी के बच्चों को किस तरह से और क्या खिलाकर सस्ते से सस्ते ढंग से जल्दी अन्डे देने योग्य तैयार किया जा सकता है।

कई फार्मों में इस बात को प्राप्त करने के लिए मुर्गी के बच्चों के खाने में विटामिन B_{12} और फफूंदियां जैसे पेनिसिलिन Penicillin टेरामाइसिन Terramycin, स्ट्रेप्टोमाइसिन streptomycin और औरोमाइसिन Auromycin का प्रयोग किया जा रहा है। इन दवाइयों को खिलाने से मुर्गी के बच्चों में १५ फी सदी तक वजन में बढ़ती पाई गई है। इसके अलावा ५० फी सदी तक बच्चों को मरने से बचाया जा सकता है।

फफूंदियों में अधिकतर औरोमाइसिन Auro-mycin का इस्तेमाल किया गया है। यह एक मन दाने में जो कि एक मुर्गी के लिए एक साल तक चल

आचार्य नरेन्द्रदेव का निधन

आचार्य नरेन्द्र देव का १६ फरवरी १६५६ को ६७ वर्ष की आयु में एरोड (मद्रास) स्वर्गवास हुआ ये अखिल भारतीय प्रजा समाजवादी दल के सभापति थे। विज्ञान परिषद ने गत वर्ष इनकी विद्वत्ता और देश की सेवाओं के फल स्वरूप इन्हें अपना सम्मानित सभ्य निर्वाचित किया था।

आचार्य नरेन्द्रदेव का जन्म १८८६ ई० में हुआ था। इनकी शिक्षा प्रयाग और काशी में हुई थी। इन्होंने वकालत छोड़कर १६२० के असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। ये काशी विद्यापीठ में १६२१ से १६२६ तक इतिहास के अध्यापक थे और १६२६ में उसके प्रधान आचार्य हुए। ये १६४७ से १६५१ तक लखनऊ विश्व विद्यालय के भी उपकुलपति थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भी उपकुलपति कुछ दिनों तक रहे।

आचार्य जी १६१६ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सम्मिलित हुए। ये १६३६ से १६३८ तक उत्तर प्रदेशीय कांग्रेस कमेटी के सभापति थे। उत्तर प्रदेशीय व्यवस्थापक सभा में १६३७-१६३६ और १६४६-४७ में सदस्य रहे। ये समाजवादी दल के संस्थापक सदस्य थे। इसके प्रथम और चतुर्थ अधिवेशन के सभापति थे। इनको चार बार कारावास का दंड मिला था। अंतिम बार १६४२ ई० में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में बंदी बनाए गए थे। उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालय आयोग और भारत सरकार के प्रेस आयोग के सदस्य बनाए गए थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इन्होंने कांग्रेस दल का परित्याग किया और १६४८ में दूसरे लोगों के साथ स्वतंत्र रूप से एक दल स्थापित किया। १६५१-५२ के चुनाव में इस दल ने भाग लिया। बाद में यह दल किसान मजदूर प्रजा दल में सम्मिलित हो गया और उसका नाम प्रजा समाजवादी दल हुआ। १६५४ में आचार्य जी इस दल के सभापति हुए। चार वर्षों पूर्व चीन में जो सांस्कृतिक मंडल गया था! उसके सदस्य ये भी थे। आचार्य जी ने बौद्ध धर्म और दर्शन का अपना ग्रंथ "बौद्ध धर्म दर्शन" अभी ही पूर्ण किया था और बैसाख पूर्णिमा को बौद्ध जयन्ती के दिन वह प्रकाशित होने वाला था।

सकता है, एक रत्ती इस्तेमाल किया जाता है। B_{12} विटामिन ऐसी दवाइयाँ बाजार में मिलने लगी हैं B_{12} विटामिन और (Auromycin) औरोमाइसिन दोनों मिले होते हैं। इनमें (Fortracin—6) फोरट्रेसिन ६ (Aurofae) औरोफै नाम की दवायें काफी प्रसिद्ध हैं। एक माशा (Fortracin—6) फोरट्रेसिन ६ एक सेर दाने में मिलाया जाता है और इस तरह मुर्गी के बच्चे को ६ हफ्ते तक (Fortracin—6) खिलाने में दो पैसा खर्च होता है। औरफै (Aurofae) भी इसी तरह इस्तेमाल करते हैं और इसके साथ इसका खर्चा उतना ही बैठता है।

गाय के गोबर में विटामिन B_{12} और फफूंदी दोनों पाए जाते हैं इसलिए अगर मुर्गियों के खाने में अगर उतना ही गोबरका पानी या कुछ अंश मिला दिया जाय तो इसका असर वही होगा जो Aurofae या Fortracin—6 के मिलाने से होता है।

एक हिस्सा गीला गोबर दस हिस्से पानी में मिला लीजिए और सारा पानी निचोड़ लीजिए। इस निचोड़े हुए पानी को मुर्गियों को पिलाइए। निचोड़ा हुआ गोबर अन्डा देने वाली या बड़ी मुर्गियों को खिलाया जा सकता है।*

* आकाशवाणी, इलाहाबाद के सौजन्य से।

विज्ञान-समाचार

सोयाबीन का दूध

गौ के दूध से भी अधिक स्वादिष्ट और हल्का

आजकल जकार्ता (इण्डोनेशिया) में एक ऐसा कारखाना स्थापित किया जा रहा है, जिससे सोयाबीन से दूध बनाया जायगा। यह कारखाना अन्य कारखानों के लिए नमूने का दाम देगा। इसके उत्पादन से उन लोगों को पर्याप्त मात्रा में सस्ता एवं प्रोटीन से भरपूर भोजन मिलने लगेगा, जो इस समय भोजन में पोषण तत्वों के अभाव के कारण पीड़ित हैं।

यह नया कारखाना इण्डोनेशिया के एक मुख्य केन्द्र में, संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन के साथ काम करने वाले अमेरकी विशेषज्ञ श्री हेनरी मिलर; जूनियर, की देखरेख में स्थापित किया जा रहा है।

यह योजना दक्षिणपूर्व एशिया सुदूरपूर्व के अनेक देशों की सरकारों के उच्च अधिकारियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही है। सोयाबीन का दूध, तरल एवं चूर्ण दोनों ही रूपों में, ऐसा भोजन है, जो पोषण सम्बन्धी समस्याओं को हल कर सकता है।

आशा है कि सोयाबीन से दूध तैयार करने का उक्त कारखाना अगले वर्ष के शुरू में कार्य कर देगा। कारखाने का वह भाग, जिसमें दुग्धचूर्ण बनाया जायगा, १९५६ के मध्य तक स्थानीय उपयोग के लिए माल तैयार करने लगेगा।

श्री मिलर को विश्वास है कि इण्डोनेशिया के लोग सोयाबीन के दूध का स्वागत करेंगे। उनका यह विश्वास वास्तविक परीक्षणों पर आधारित है। उन्होंने बताया कि परीक्षण के दिनों में माताओं ने अपने बच्चों को यह दूध पिलाकर यह अनुभव किया है कि वे इसको बड़े शौक से पीते हैं। यह पीने में केवल स्वादिष्ट ही नहीं है, बल्कि इसे अपुष्ट व्यक्ति, बच्चे अथवा प्रौढ़, गौ के दूध की अपेक्षा अधिक आसानी से हज्म कर सकते हैं। इसमें प्रोटीन की मात्रा भी गौ के दूध की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। एशियाई देशों के भोजन में प्रोटीन की कमी चिरकाल से अनुभव की जाती है।

अपने विशेष क्षेत्र के सम्बन्ध में श्री मिलर का ज्ञान बहुत पुराना है। उनके पिता चीन में चिकित्सक पादरी थे। २० वर्ष पूर्व उन्होंने अपने उन रोगियों के लिए सस्ता स्थानीय भोजन मालूम करने का निश्चय किया था, जो पौष्टिक आहार के अभाव के कारण पीड़ित थे। उन्होंने इस कार्य के लिए २० वर्ष तक अमेरिकी कृषि-विभाग के विशेषज्ञों के सहयोग से धैर्य-पूर्वक परीक्षण एवं अनुसन्धान किए। इसके परिणाम स्वरूप असंख्य व्यक्तियों के लिए सस्ता एवं पौष्टिक आहार मालूम करने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई।

श्री मिलर के पिता ने इस बात पर विशेष ध्यान दिया कि अधिकांश एशियाई देश चावल, गन्ने तथा सोयाबीन की बड़ी-बड़ी फसलें पैदा करते हैं। सोयाबीन में उन्होंने ऐसा दूध पाया, जिसमें पर्याप्त मात्रा में विटामिन मौजूद थे। किन्तु उसका स्वाद अच्छा नहीं था। अब उनके सामने सोयाबीन के दूध को स्वादिष्ट बनाने की समस्या थी।

इस सम्बन्ध में उन्होंने कष्टसाध्य अनुसन्धान कर तथा कुशल इंजिनियरों के साथ परामर्श करके सोयाबीन से स्वादिष्ट दूध तैयार करने की विधियाँ खोजी और उन्हीं के अनुरूप मशीनरी भी तैयार की गई। इसके बाद, १९३६

में, वे अपने परिवार के साथ शंघाई लौटे और वहाँ सोयाबीन का एक कारखाना लगाया। उस कारखाने से प्रतिदिन बोतलों में ३००० क्वार्ट सोयाबीन का दूध तैयार होने लगा। सोयाबीन के एक क्वार्ट दूध पर ७ सेण्ट खर्च आता था। उस समय गौ का दूध ३० सेण्ट प्रति क्वार्ट था।

युद्ध ने श्री मिलर के कार्य में बाधा उपस्थित की और १९३७ में जापानी सशस्त्र सेनाओं ने उनके कारखाने को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मिलर-परिवार १९३८ में अमेरिका लौट आया, किन्तु अपने कारखाने को फिर स्थापित करने के लिए १९४७ में पुनः चीन लौट गया। वहाँ साम्यवादी विजय के कारण अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए कोई सम्भावना न देखकर यह परिवार पुनः अपनी मातृभूमि को लौट आया।

अब, दक्षिणपूर्वी एशियाई देशों की पोषण सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिए खाद्य एवं कृषि संघटन ने श्री हैरी मिलर, जूनियर, की सहायता प्राप्त की है।

श्री मिलर को आशा है कि इण्डोनेशिया में लगने वाला सोयाबीन का कारखाना उनके पिता द्वारा मालूम की गई विधि का एक सफल उदाहरण सिद्ध हो सकेगा। उनका ख्याल है कि उक्त कारखाना उस विधि के महत्व को सिद्ध करने का एक साधन सिद्ध होगा। उनको यह भी आशा है कि जहाँ कहीं भी सोयाबीन उपलब्ध है, वहाँ इस कारखाने का अनुकरण किया जाएगा। उनकी धारणा है कि इण्डोनेशिया में इसके लिए पूर्ण रूप से अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान हैं।

जकार्ता के इस नए कारखाने का आधा वार्षिक उत्पादन, अर्थात् सोयाबीन का ६०० टन तरल अथवा चूर्ण दूध प्रथम तीन वर्ष में इण्डोनेशियाई बच्चों को मुफ्त बांटा जाएगा। यह अवस्था संयुक्तराष्ट्र-संघीय काल संकट कोष के साथ किए गए एक समझौते का अंग है। इस कारखाने के लिए मशीनें तथा अन्य सामान खरीदने के निमित्त ३ लाख ५० हजार डालर के कोष की व्यवस्था की गई है।

नाप तोल की समान प्रणाली

"देश भर में, हिमालय से कन्याकुमारी तक, नाप तोल की समान प्रणाली होने से देश में एकता पैदा होगी। आज हमारे देश में इतने विविध बाट और नाप चलते हैं जिनका कोई ठिकाना नहीं। जिले-जिले में ही नहीं एक ही जिले में कई तरह की नाप-तोल चलती है। इसका सबसे बड़ा कुफल किसानों को भोगना पड़ता है।" ये शब्द वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय के सचिव श्री आयंगर ने आकाशवाणी के अखिल भारतीय कार्यक्रम में एक वार्ता प्रसारित करते हुए कहे।

श्री आयंगर ने यह भी कहा कि नाप-तोल की व्यवस्था में सुधार होना आवश्यक है और इसके लिए यह उपयुक्त समय है। कई पीढ़ियों से इस सुधार की आवश्यकता अनुभव की जा रही है और अब, यदि हम इसे उपयोगी समझते हैं, तो आगे नहीं टाल सकते। उन्होंने कहा कि पौंड, फुट और इंचों को नाप-तोल की व्यवस्था से दाशमिक प्रणाली निस्संदेह बहुत अच्छी और सुविधाजनक है। यह सरल भी इतनी है कि बच्चे भी न केवल इसे समझ सकते हैं बल्कि उन्होंने इसे बहुत पसन्द किया है। इसके अलावा इससे बाजार-हाट का हिसाब किताब भी अत्यंत सरल और सुगम हो जायगा।

ऐक्यकारी प्रभाव

वाणिज्य सचिव ने अपने भाषण में इस बात पर भी जोर दिया कि यह केवल एक प्रशासनात्मक सुविधा मात्र नहीं। इसका राजनीतिक पहलू भी बहुत महत्व रखता है और नाप-तोल में सुधार होने से देश को राजनीतिक दृष्टि से भी लाभ होगा। ब्रिटिश राज में देश भर में सरकारी काम-काज में जो कुछ समानता और एक-से नियम आदि थे उनके कारण देश की एकता को

कितना बल मिला, इसको बहुत कम लोग समझते हैं। मेरे विचार में देश भर में हिमालय से कन्याकुमारी तक एक-से बाटों और माप का चलन, अन्य बातों के अलावा राजनीतिक एकता की दृष्टि से भी बहुत जरूरी है।

क्रमशः परिवर्तन वांछनीय

नाप-तोल में परिवर्तन कैसे व्यवहार में लाया जाय, इस बारे में श्री आयंगर ने कहा कि यह काम एक दम नहीं हो सकता। हमारे नित्य के जीवन से नाप-तोल का इतना निकट का सम्बन्ध है कि पूरी तरह से इसमें परिवर्तन करने में कई वर्ष लगेंगे। उदाहरण के लिए हमारी सड़कों पर आजकल मीलों और फर्लांगों के पत्थर लगे हुए हैं। हमें इन सबको बदलना होगा। रेल की लोहे की पटरी की लम्बाई फुट और इंचों में नापी जाती है। रेलवे की अन्य सब नाप-तोल भी ऐसी ही हैं। मशीनों और इमारतों आदि का आकार भी फुट और इंचों में नापा जाता है। इसलिए इस क्रांतिकारी परिवर्तन में समय लगेगा।

सबसे पहले हमने अपने सिक्कों में परिवर्तन करने का विचार किया है। संसद ने सिक्कों से संबद्ध अधिनियम में संशोधन किया है। इसके अनुसार सरकार को एक नियत तारीख से ऐसा रुपया चलाने का अधिकार दे दिया गया है जिसमें १०० पैसे होंगे। इससे बहुत सुधार होगा पर जनता को इसका अभ्यस्त होने में कुछ समय अवश्य लगेगा। इसके बाद धीरे-धीरे और परिवर्तन किये जायंगे और सारे परिवर्तन में १५ वर्ष लग जायेंगे। यह हो जाने पर हम कह सकेंगे कि हमने आश्चर्यजनक न सही पर एक महान कार्य अवश्य कर लिया है। इसकी गिनती भी देश में होने वाले महान कार्यों में होगी।

भारत अगिनघास के तेल का प्रमुख उत्पादक

भारत में प्रतिवर्ष प्रायः ८०० टन अगिनघास (लेमनग्रास) का तेल बनाया जाता है। इस तेल का निर्यात करने वाले देशों में भारत का प्रमुख स्थान है।

भारतीय अगिनघास के तेल में निबुआई तत्व ८० प्रतिशत से भी अधिक होता है और यह मद्य-सार में अधिक अच्छी तरह घुल सकता है। साबुन तथा प्रसाधन की कुछ वस्तुओं के बनाने में इस तेल की बहुत जरूरत होती है।

इधर इसका उपयोग विटामिन के बनाने में भी होने लगा है। कभी-कभी मच्छड़-निरोधन लेप (क्रीम) और दर्द का मलहम भी तैयार किया जाता है।

अगिनघास भारत में नैसर्गिक रूप से पैदा होती है। गर्म जलवायु के देशों में इस प्रकार की लगभग ८० घासें पायी जाती हैं। भारत में अगिनघास की खेती अधिकतर तिरुवांकुर-कोचीन के उत्तरी तालुकों में की जाती है। वहाँ इसे 'इंचीपुल' कहते हैं। हाल में, मालाबार जिले के वीनाद और कोझीकोड तालुकों में भी इसे उगाने में सफलता मिली है। इसकी ताजी पत्तियों का अर्क खींचकर तेल बनाया जाता है।

भारत में लगभग ४०,००० एकड़ जमीन में अगिनघास उपजाई जाती है, जिसका ९० प्रतिशत तिरुवांकुर-कोचीन में है। पश्चिमी तटवर्ती प्रदेशों की जमीन और जलवायु भी इसके अनुकूल है। इससे भविष्य में इसकी उपज बढ़ाने की आशा है।

अगिनघास दो तरह की होती है। एक लाल डंठल की और दूसरी उजली डंठल की। लेकिन लाल डंठल से ही अच्छी किस्म का तेल निकलता है। इसलिये, अच्छी किस्म को प्रोत्साहन देने के लिए उजली डंठल की घास को समूल नष्ट करने पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

अगिनघास का अर्क ८ से १८ घन फुट के तांबे के देशी भभकों में निकाला जाता है। इस समय अगिनघास के बागानों में करीब २,५०० भभके लगे हैं। देशी तरीके में कुछ दोष है और इसमें बहुत ज्यादा ईंधन

भी बेकार जाता है। भभकों को सुधारने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

इस नये वर्ष से अगिनघास के तेल के अनिवार्य वर्गीकरण करने तथा उन पर 'अंगमार्क' लगाने की व्यवस्था चालू कर दी गई है। अंगमार्क के अनुसार वर्गीकरण के प्रमाणपत्रों में तेल में निबुअई तत्व का प्रतिशत लिखा रहेगा, क्योंकि इसी के आधार पर तेल का मूल्य निश्चित किया जाता है। आजकल जो विक्रेता ७५ प्रतिशत निबुअई तत्व वाला तेल बेचते हैं, उन्हें अपने माल की शुद्धता का कोई लाभ नहीं मिलता। वर्गीकरण होने पर विदेशों में अच्छी किस्म के तेल का अच्छा मूल्य मिलेगा।

भारत का अगिनघास का सारा तेल मुख्यतः अमेरिका, इंगलैंड और फ्रांस भेजा जाता है। अब जर्मनी भी इसका आयात करने लगा है।

कुछ वर्षों से ग्वाटेमाला, हीडुरा, हेती और ट्रिनिडाड में भी अगिनघास की उपज बढ़ाई जाने लगी हैं। इससे भारतीय तेल को अधिक प्रतियोगिता का सामना करना होगा। अतः भारतीय उत्पादक को अपने व्यापार को बनाये रखने के लिये अपने तेल की किस्म का सुधार करना होगा।

तिरुवांकुर-कोचीन सरकार ने ओदाक्कली में एक गवेषणशाला की भी स्थापना की है, जहाँ अगिनघास के तेल की उपज और उसके तेल निकालने से संबंधित समस्याओं पर गवेषणा होगी। आशा की जाती है कि अब देश में "आयोनोन" का उत्पादन होने लगेगा जिसकी जरूरत गंध द्रव्यों और विटामिन 'ए' बनाने में पड़ती है। वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा परिषद की 'सत्त समिति' (एरोशल आयल) ने हाल में ही इसके लिए कदम उठाया है।

मंगल ग्रह में वनस्पतियाँ

अमेरिका की 'नेशनल ज्योग्राफिक सोसाइटी' ने हाल ही में यह घोषणा की है कि मंगल ग्रह के रक्तिम पृष्ठ पर हरियाला प्रदेश देखा गया है। यह क्षेत्रफल में लगभग फ्रांस के बराबर होगा। विश्वास किया जाता है कि उस क्षेत्र में वनस्पतियाँ उगी हुई हैं।

उक्त संस्था ने बताया कि मंगल ग्रह में वनस्पति-क्षेत्र होने की हमें कोई आशा नहीं थी। आज से १२५ वर्ष पहले ज्योतिषियों द्वारा नक्षत्र को मापे जाने के बाद से वहाँ अब तक ऐसा कोई हरियाला प्रदेश नहीं देखा गया था, सिर्फ वहाँ के अंधेरे प्रदेश को बढ़ते हुए पाया गया था। मंगल नक्षत्र का चित्र उतारने के लिये १६५४ में नेशनल ज्योग्राफिक सोसाइटी की ओर से जो दल दक्षिणी अफ्रीका गया था, उसके नेता डा० ई० सी० स्लीफर ने इस वनस्पति-क्षेत्र की सूचना दी है। मंगल नक्षत्र १६५४ की गर्मियों में पृथ्वी के जितना अधिक निकट था, उतना निकट १६४१ के बाद से कभी नहीं रहा है।

विश्वास किया जाता है कि मंगल ग्रह में पाई जाने वाली वनस्पति भूलोक में चट्टानों पर उगने वाली काई और पत्तियों की तरह की है। डा० स्लीफर ने मंगल ग्रह में नीले-सफेद बादलों, ध्रुव क्षेत्र की वर्फ से ढकी हुई चमकीली चट्टानों और उड़ती हुई धूल के विशाल 'पीले बादलों' को भी देखा है।

शक्तिशाली ध्वनि-तरंगों द्वारा मस्तिष्क का उपचार

अमेरिका में इलिनौय विश्वविद्यालय के डाक्टर शक्तिशाली ध्वनि-तरंगों (वे शक्तिशाली ध्वनि-तरंगें जिन्हें कान सुन भी नहीं सकता) द्वारा मस्तिष्क-रोगों के उपचार के परीक्षण कर रहे हैं। उन्होंने इन शक्तिशाली ध्वनि-तरंगों द्वारा मस्तिष्क के रोगग्रस्त तन्तुओं को एक इंच के २० वें हिस्से जितने क्षेत्र में, आसपास के तन्तु समूह को हानि पहुँचाये बिना, पूरी तरह नष्ट करने में सफलता प्राप्त की है।

शक्तिशाली ध्वनि-तरंगों का इतनी सूक्ष्मता के साथ उपयोग करना बड़ा अद्भुत है क्योंकि रोगी मस्तिष्क के तन्तुओं और ग्रन्थियों को हटाने में शल्यचिकित्सक का चाकू भी इतना सफल नहीं हो सकता। प्रयुक्त की गई इन ध्वनि-तरंगों की गति प्रति सेकिण्ड १० लाख चक्र है अर्थात् उच्चतम ध्वनि-तरंग से भी ५० गुना अधिक है।

जंग हटाने वाला चूर्ण

लौस-एन्जेलेस (कैलिफोर्निया) की बाई-बक कम्पनी ने एक नया चूर्ण तैयार किया है, जो लोहे तथा इस्पात और अलोह धातुओं पर लगे जंग को बड़ी आसानी से उतार देता है। इस चूर्ण को पानी में घोलकर जंग लगी धातु पर लगाया जाता है।

कम्पनी ने बताया है कि यह चूर्ण जंग को १० मिनट से लेकर २ घण्टे में साफ कर देता है। समय का अनुपात जंग की मात्रा पर निर्भर है। जब इस चूर्ण को गरम पानी में घोल कर इस्तेमाल किया जाये तब दो सेकिण्ड से १० मिनट तक समय लगता है।

अनावश्यक घास को नष्ट करने की नयी दवा

एम्बलर (पैन्सिलवेनिया) की अमेरिकन कैमिकल पेन्ट कम्पनी के रसायन शास्त्रियों ने अनावश्यक घास-फूस को नष्ट करने वाली एक नई दवा की खोज की है। इस दवा को बहुत कम लोग जानते हैं और इसे फोटोग्राफर अक्सर अपने अंधेरे कमरे में इस्तेमाल करते हैं। इसका नाम है अभिनोट्राएजोत।

इस दवा से जो परीक्षण किये गये हैं उनसे यह पता चला है कि इसमें कई तरह की अनावश्यक घास को नष्ट करने की क्षमता है। मनुष्यों और पशुओं पर इसका कोई विषैला प्रभाव नहीं पड़ता। अनावश्यक घास की क्लोरोफिल (हरियालेपन) पर इस दवा का असर पड़ता है और अन्त में अनावश्यक घास नष्ट हो जाती है।

अमेरिकी वैज्ञानिकों की अभूतपूर्व सफलता

अमेरिका के चीनी अनुसन्धान प्रतिष्ठान के कथनानुसार साधारण चीनी में अन्य पदार्थ मिला कर उनसे कपड़े, साबुन और अन्य बहुत सी वस्तुएं शीघ्र ही तैयार की जाने लगेंगी।

इस प्रतिष्ठान के अध्यक्ष डा० एच० बी० हैस का कथन है कि यदि हमें अपने प्रयोगों में पूर्ण सफलता प्राप्त हो गई, तो वह दिन दूर नहीं जब आप चीनी के बने कपड़े पहनेंगे, अपने शरीर और वस्त्रों की सफाई चीनी से तैयार किए गए साबुनों से करेंगे, रंग-रोगन तैयार करने या प्लास्टिक के निर्माण में भी चीनी का प्रयोग करेंगे तथा स्वयं चीनी खाने के अतिरिक्त पशुओं को भी चीनी खिलाएंगे और पौधों पर भी चीनी का छिड़काव करेंगे।

चर्बी के मिश्रण से नये पदार्थ का निर्माण

चीनी में चर्बी मिला कर एक ऐसे नए रासायनिक पदार्थ का निर्माण किया गया है जो साबुन बनाने के काम में इस्तेमाल किया जा सकता है। साधारण चीनी से सफाई करने वाली ऐसी विविध प्रकार की वस्तुएं तैयार की गई हैं, जो गन्धहीन होने के अतिरिक्त कोमल और कठोर दोनों प्रकार के जलों में सफलतापूर्वक कार्य में लाई जा सकती हैं।

चीनी के बने ये साबुन अथवा सफाई के काम में लाई जाने वाली वस्तुएं प्रयोगशाला में तैयार हो चुकी हैं। आशा की जाती है कि इनमें से कुछ १९५५ की समाप्ति से पूर्व ही बाजार में बिक्री के लिए प्रस्तुत की जा सकेंगी।

यह भी भविष्यवाणी की गयी है कि चीनी-विज्ञान में इनके फलस्वरूप नये अध्याय का श्रीगणेश हो जाएगा।

चीनी से बने पदार्थों से जो नए पदार्थ तैयार किए जाएंगे, उनसे अनेक प्रकार की वस्तुओं के निर्माण की सम्भावनाएं प्रकट की गई हैं। इस सूची में शैम्पू, दन्त-मंजन, सुगन्धियां शृङ्गार की वस्तुएं तथा अनेक किस्म के साबुन सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त अनेक खाद्य पदार्थों की तैयारी में भी इन पदार्थों का उपयोग किया जा सकेगा। इनसे चाकलेट की विभिन्न किस्मों की शराबें, सूखे भोजन, मुलायम रोटियां और भांति-भांति के केक आदि भी तैयार हो सकेंगे। साथ ही तेल-कूपों से और अधिक तेल प्राप्त करने में भी इनसे सहायता मिलेगी तथा पशुओं और पक्षियों के लिए नाना प्रकार के चारे और भोजन प्राप्त किए जा सकेंगे।

निर्माण की जटिल प्रक्रिया

चीनी से नए पदार्थ तैयार करने के लिए वैज्ञानिक लोग चीनी को साधारण रूप में अन्य पदार्थों से नहीं मिलाते। एक जटिल रासायनिक प्रक्रिया को काम में लाकर चीनी अन्य पदार्थों में मिलाई जाती है और इससे चीनी मिश्रित पदार्थ तैयार किए जाते हैं।

अमेरिका के अनेक भागों में विश्वविद्यालय और अन्य अनुसन्धान करने वाली संस्थाएँ चीनी के सम्बन्ध में व्यापक अनुसन्धान कार्यक्रमों का संचालन कर रही हैं तथा इसके अनेक नए उपयोगों की खोज के कार्य में संलग्न हैं। पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फिलिप स्कैंज़ ने चीनी से तैयार एक पदार्थ का उपयोग मोजे और बनियान के निर्माण के काम में लाए जाने वाले एक नए रेशे या धागे के निर्माण के लिए किया है। कनाडा के ब्रिटिश कोलम्बिया विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर एल० डी० हेवार्ड प्लास्टिक की बनी बरसातियों और वर्षा से बचाव करने वाले अन्य पदार्थों के निर्माण के लिए चीनी से तैयार किए गए कुछ पदार्थों का अध्ययन कर रहे हैं।

चीनी से विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक तैयार करने की सम्भावनाएं इतनी अधिक हैं कि चीनी अनुसन्धान प्रतिष्ठान ने इस दिशा में और भी अधिक खोज करने के लिए विस्कोन्सिन के मेडिसन नामी स्थान में स्थित जोर्कस्तेन अनुसन्धान प्रयोगशालाओं को एक अनुदान भी प्रदान किया है।

प्रकाश स्तम्भों का विकास

समुद्र-यात्रा में प्रकाश-स्तम्भ बहुत सहायक होते हैं। प्रकाश स्तम्भ न हों तो समुद्र-यात्रा में बहुत बाधा और खतरे उपस्थित हो जायँ।

यदि समुद्र में जहाज मार्ग भूल जाय और यात्रा में एक दिन भी अधिक लग जाय, तो जहाज मालिक का कितना घाटा हो? और यदि जहाज कहीं नष्ट हो जाय, तो कितनी भयंकर दुर्घटना हो?

यदि प्रकाश स्तम्भ न हों, तो जहाज चालकों की मुसीबत आ जाय। वे समुद्र में अपना मार्ग भी न खोज सकें। तब सामान और जहाज के बीमे की दरें बेहद बढ़ जायँ, और जहाज मालिक किराया तथा भाड़ा भी कई गुना बढ़ा दें।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश में जहाजरानी तथा आधुनिक प्रकाश स्तम्भों का विकास बड़ी द्रुत गति से हुआ है। इनका उद्देश्य समुद्री यात्रा की गति को बढ़ाना और उसे अधिक सुरक्षित बनाना है। प्रकाश स्तम्भों की योजना को पूरा करने में अनुमान है ७४२ लाख ७५ हजार रु० खर्च होगा।

इस रकम में से अनुमान है कि ८० लाख रु० पहली पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में खर्च होगा। केन्द्रीय सर-कार के प्रकाश स्तम्भ विभाग ने अब तक २५ नये प्रकाश स्तम्भों का निर्माण किया है। दस वर्तमान प्रकाश स्तम्भों को सुधारा है।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में जो योजनाएँ पूरी नहीं हो सकीं, उन्हें दूसरी आयोजना में पूरा किया

जायगा। इन योजनाओं में प्रकाश स्तम्भ और समुद्री जहाजों के बीच रेडियो संचार तथा सहायता पहुँचाने की व्यवस्था करना शामिल है।

पोत-चालन में सहायता के लिए भारत के विस्तृत समुद्र-तट पर १,८०० सहायता केन्द्र स्थापित हैं। इनमें प्रकाश स्तम्भ और तैरते हुए सहायता उपकरण शामिल हैं।

आज विज्ञान की सहायता से पोत-चालन के लिए अनेक सहायक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। प्रकाश स्तम्भ की तेज रोशनी समुद्र के अन्दर की चट्टानों और खतरों से ही आगाह नहीं करती, बल्कि सही सुरक्षित रास्ता बताती है।

बम्बई और कलकत्ता के बन्दरगाहों के पास अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी के निकट पोत चालन में सहायक, रेडियो स्तम्भों को खड़ा करने के लिये संवेक्षण किये जा रहे हैं। प्रत्येक रेडियो स्तम्भ ३५० फुट से ५५० फुट तक ऊँचा होगा। दूर-दूर तक काम देने वाला रेडियो का साज-सामान इनमें रहेगा।

इस समय दो प्रकाश स्तम्भों का निर्माण हो रहा है। विशाखापत्तनम के आगे डोलफिंस नासी पर जो प्रकाश स्तम्भ बन रहा है—वह पूर्व का एक महान शक्तिशाली प्रकाश स्तम्भ होगा। इसकी तेज रोशनी ७० लाख मोम-बत्तियों का प्रकाश देगी और ३०-४० मील दूर तक जा सकेगी। बम्बई के समुद्रतट के पास वेंनगुरु के वर्तमान प्रकाश स्तम्भ की तेज रोशनी २० दूर तक काम देती है और एक लाख बीस हजार बत्ती की शक्ति की है।

कच्छ खाड़ी के मुहाने पर ओखा से २५ मील दूर, लशिगंटन शील पर बनने वाला प्रकाश स्तम्भ बनावट और यन्त्र कारीगरी में अनोखा होगा।

प्रकाश स्तम्भों के निर्माण और शिल्प के अनेक अंगों में आज भारत अग्रणी है। अनेक वर्षों के प्रयोग के बाद केन्द्रीय सरकार के प्रकाश स्तम्भ विभाग ने नये प्रकार के रोशनी फेंकने के यन्त्र, और लट्टू का आविष्कार किया है।

अनेक राष्ट्रों के वैज्ञानिक भूमण्डल के रहस्यों का पता लगायेंगे

वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया है कि लगभग १९०० ई० से भूमण्डल के मौसम में गर्मी धीरे-धीरे बढ़ रही है। ५० वर्षों में तापमान में २.२ डिग्री फारनहाइट की वृद्धि हुई है। लेकिन तापमान में हुई इस वृद्धि के कारण का रहस्य अभी तक पता नहीं चल सका है।

उक्त रहस्य और पृथ्वी सम्बन्धी अन्य बहुत से मौलिक प्रश्नों तथा इसके विचारों के ओर के वायुमण्डल से सम्बन्धित समस्याओं को हल करने का एक प्रयत्न १९५७-५८ में किया जायेगा। उस अवसर पर जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होगा, वह अपने ढंग का अनूठा होगा। २५ वर्षों के बाद इस तरह के सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। इसमें राष्ट्रों के वैज्ञानिक भाग लेंगे।

संसार के विभिन्न भागों में एक साथ ही मौसम और ऋतुओं सम्बन्धी जांच-पड़ताल का काम शुरू कर तथा इनके परिणामों की सावधानी से तुलना और विश्लेषण करने के उपरान्त आशा यह की जाती है कि मौसम और ऋतुओं पर असर डालने वाली बहुत सी बातों का पता लगाया जा सकेगा, जिससे मनुष्य के ज्ञान-भंडार में काफी वृद्धि होगी। जिन बातों का इस जांच-पड़ताल से पता चलने की उम्मीद है, उनमें उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों में प्रवाहित होने वाली महान् विद्युत-लहरियाँ और उच्च आकाश में प्रवाहित होने वाले हवा के झकोरे भी शामिल हैं।

सांस लेने वाली समस्या

अन्य मौलिक प्रश्न, जिनके उत्तरों की वैज्ञानिक उत्सुकता से खोज कर रहे हैं, निम्न हैं—जिस हवा को हम सांस लेने में प्रयुक्त करते हैं, क्या वह वायुमन्डल से बाहर अनन्त आकाश में तो नहीं जा रही? ब्रह्माण्ड किरणें कहाँ से निकलती हैं और वे किस विधि द्वारा उत्पन्न होती हैं? क्या सूखा पड़ने के सम्बन्ध में कुछ मास पूर्व ही भविष्यवाणी की जा सकती है, जिससे किसान सूखे को

ध्यान में रखते हुये उसके अनुसार अपनी भविष्य की व्यवस्था बना सकें ?

वैज्ञानिक संगठनों की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् के तत्वावधान में यह कार्यक्रम क्रियान्वित किया जायेगा। इस परिषद् का मुख्य कार्यालय लन्दन में है। इस परिषद के सदस्यों में यूरोप, उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका, और अफ्रीका के ४० देशों के वैज्ञानिक संगठन शामिल हैं। संयुक्तराष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक संगठन भी आंशिक रूप में उक्त कार्यक्रम के संचालन में योग दे रहा है तथा इस व्यवस्था के लिए कुछ चन्दा भी उसने दिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम की जोरों से तैयारी

उक्त अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम, अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष मनाने की तैयारियाँ शुरू हो चुकी हैं। संसार भर में हजारों वैज्ञानिक इसमें भाग लेने के लिये इस समय तैयारी में लगे हुए हैं।

उक्त वर्ष के मनाने की तैयारी में प्रथम वास्तविक हलचल अमेरिकी वैज्ञानिकों के दल की दक्षिणी ध्रुव की यात्रा थी। १६५५ के प्रारम्भिक दिनों में यह यात्रा इन वैज्ञानिकों ने की। नवम्बर में दक्षिणी ध्रुव की यात्रा पर एक अन्य वैज्ञानिक दल जा रहा है।

इन यात्राओं का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के शिविर के लिये स्थान का चुनाव करना तथा इस सम्बन्ध में प्रारम्भिक वैज्ञानिक निरीक्षण करना है, जिससे १६५७ में दक्षिणी ध्रुव पहुँचने वाले आठ या अधिक राष्ट्रों के वैज्ञानिकों को इस सम्बन्ध में सहायता मिल सके।

दक्षिणी ध्रुव की इन यात्राओं का महत्वपूर्ण कार्य यह भी था कि वह तट पर एक ऐसे अड्डे की तलाश करे जिससे दक्षिणी ध्रुव के अन्य स्थानों को सामान पहुँचाया जा सके। दक्षिणी ध्रुव में जो वेधशाला स्थापित की जा रही है, उसकी एक साल से भी अधिक देखरेख के लिए प्रबन्ध किये गये हैं। इसमें ६ मास तक चलने वाली दक्षिणी ध्रुव की रात भी आ जायेगी।

भूतकालिक प्रयास

१८८२-१८८३ और १६३२-१६३३ में विश्व व्यापक निरीक्षण के सीमित प्रयास किये गये थे, लेकिन लम्बे फासलों और संख्या में बहुत कम वेधशालाओं के कारण ये प्रयास पूर्णतया सफल नहीं हो सके। भूमण्डल के दक्षिणी भाग में उस काल में लगभग किसी प्रकार का निरीक्षण नहीं किया गया था। अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष मनाने का एक उद्देश्य दक्षिणी ध्रुव के सम्बन्ध में वैज्ञानिक जानकारी का जो अभाव आज विद्यमान है, उसे दूर करना है। पृथ्वी के इस दक्षिणतम भाग तथा उससे सम्बन्धित क्षेत्र के बारे में बहुत कम ही जानकारी आज हमें है।

हजारों वेधशालाओं का प्रयोग

१६५७-५८ के भू-भौतिक वर्ष में हजारों वेधशालाएँ संसार भर में उपयोग में लायी जायेंगी। इन वेधशालाओं में जो सूचना सामग्री संग्रहित की जायेगी, वह इतनी अधिक होगी की उसके विश्लेषण तथा लाखों रिपोर्टों को क्रमबद्ध करने के लिए तेज चाल वाली हिसाब लगाने की मशीनों को उपयोग में लाना आवश्यक होगा।

आधुनिक अनुसन्धान की इन पद्धतियों के प्रयोग से बड़े पैमाने पर संग्रहीत आँकड़ों से अनेक तथ्यों का पता चल सकेगा। इनमें सूर्य के धब्बे, ध्रुव की प्रकाशधारा, ब्रह्माण्ड किरणें और चुम्बकीय तूफान इत्यादि शामिल हैं। वैज्ञानिकों का बहुत काल से ऐसा विश्वास है कि ये सब वस्तुएँ किसी न किसी रूप में एक दूसरे से सम्बन्धित हैं, लेकिन वे उनके आपसी सम्बन्धों को ठीक तौर पर अभी तक खोज नहीं कर पाये हैं।

अगले २० वर्षों में चन्द्रलोक तक यान पहुँचने लगेंगे

सं० रा० अमेरिका के वैज्ञानिकों ने यह भविष्य-वाणी की है बिना चालकों के अन्तरिक्ष में ऊपर उड़ने वाले यान अगले २० वर्षों में चन्द्रलोक तक पहुँचने लगेंगे और चालकों वाले वायुयान वहाँ इस शताब्दी के अन्त तक पहुँचने में सफल हो जायेंगे।

स्पेरी गायरोस्कोप कम्पनी के वैज्ञानिक नौर्मन वी०

पैटरसन ने यह मत प्रकट किया है कि बिना बालकों वाले अन्तरिक्ष-यान "२० वर्षों के भीतर" चन्द्रमा में पहुँच जायेंगे ।

१९९० के बाद मनुष्य के चन्द्रलोक में पहुँचने की संभावना

सैन डिएगो (केलिफोर्निया) की कन्वेयर एयरक्राफ्ट कम्पनी के उड्डयन-इंजीनियर क्रैफ्ट एह्‌रिका ने यह मत प्रकट किया कि "१८९० ई० के बाद किसी समय ऐसे अन्तरिक्ष यान भी चन्द्रमा में पहुँचने की संभावना है, जिनमें मनुष्य बैठे हों।"

आपने कहा—चन्द्रमा तक की उड़ान तो शायद राकेट चलाने की वर्तमान रासायनिक चालन विधि द्वारा की जा सकेगी, पर नयी किस्म की संचालन-प्रणालियों की खोज किये जाने की आवश्यकता है। यह खोज चन्द्रलोक से आगे की यात्राओं की दृष्टि से आवश्यक है।

नयी चालन-विधियों के सम्बन्ध में सुझाव

श्री एहारिका ने रासायनिक चालन विधि के विकल्पों के रूपों में कुछ कल्पनात्मक सुझाव प्रस्तुत किये हैं, जिन में से दो का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

(१ एक ऐसा वैद्युतिक राकेट, जिसमें विद्यमान रेडियोक्रिय सामग्री विद्युताविष्ट अणुओं अथवा 'आयोन' को बाहर की ओर फेकेंगी। इन विद्युताविष्ट अणुओं या "आयन" को साइक्लोट्रोन यन्त्र के सिद्धान्त का प्रयोग करने वाली किसी प्रक्रिया से राकेट के अन्तर्हित गर्भ में गतिमान् कर दिया जायेगा और इस प्रकार उनमें इतनी शक्ति उत्पन्न हो जायेगी कि वे राकेट को गति दे सकेंगे।

(२) इस प्रकार की चालनशक्ति, जिसमें कोई शीशा लगाकर सूर्य किरणों को किसी ठोस वस्तु पर केन्द्रित किया जाये। उससे वह पदार्थ इतना गरम हो जायेगा कि वह गरम गैसों में परिणत हो जाये। तब ये गैसें बाहर की ओर फेंकने पर उनसे चालन-क्रिया हो सकेगी ।

मनुष्य के निवास योग्य उपग्रह का निर्माण आवश्यक

लेकिन श्री एह्‌रिका ने कहा—चन्द्रलोक की यात्रा करने से पूर्व यह आवश्यक होगा कि भूमण्डल की बाह्य परिधि के क्षेत्र में कोई ऐसा उपग्रह स्थापित कर लिया जाये जहां मनुष्य ठहर सकें, ताकि चन्द्रलोक की यात्रा करने वाला अन्तरिक्ष-यान उस उपग्रह से उड़ान भर सके ।

संसार में सबसे अधिक तेज से वायुयान की उड़ान भरने वाले व्यक्ति चार्ल्स ई० यीगर (जो अमेरिकी वायु-सेना के मेजर हैं) ने यह विचार व्यक्त किया है कि १५-२० वर्षों में मनुष्य द्वारा अन्तरिक्षमण्डल की यात्रा करना सम्भव हो जायेगा ।

श्रीयीगर शब्द की गति से २॥ गुना अधिक तेजी से बैल् एक्स—१ ए राकेट वायुयान को कैलिफोर्निया के ऊपर दिसम्बर, १९५३ में उड़ा चुके हैं। उनके वायुयान की रफ्तार १६५० मील प्रतिघण्टा थी। उनका कथन है—

"अभी बहुत सा योजना व विकास-कार्य करना शेष है और बहुत से लक्ष्यगामी अस्त्र आकाश में छोड़कर देखने होंगे, क्योंकि मनुष्य को अन्तरिक्ष में जीवित रखने के लिए बहुत से यन्त्रों व उपकरणों की आवश्यकता होगी और उनको लगाकर भी देखना होगा।'

समालोचना

गणितीय कोष

लेखक –डा० ब्रजमोहन; प्रकाशक—चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, बनारस; पृष्ठ संख्या ६८६; मूल्य ६);

सन् १६३१ में नागरी प्रचारिणी सभा ने संशोधित वैज्ञानिक शब्दावली प्रकाशित की थी। तब से डा० रघुवीर के 'आँग्ल भारतीय महाकोष' को छोड़कर और कोई उल्लेखनीय पारिभाषिक शब्दावली तैयार नहीं हुई। केन्द्रीय सरकार ने थोड़े दिन हुए विषयों की पारिभाषिक शब्दावली प्रकाशित की है परन्तु वह केवल हाई स्कूल के विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति करती है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने इन्टर तथा बी० ए० तक के समस्त गणितीय शब्दों का समावेश करके प्रशंसनीय कार्य किया है।

लगभग ६ वर्ष के परिश्रम के बाद लेखक ने यह संकलन प्रकाशित किया है, जिसमें संस्कृत के प्रामाणिक कोषों तथा आधुनिक संस्कृतज्ञों की शब्दावलियों से लेकर ही शब्द एकत्रित किये गए हैं; नए शब्दों का निर्माण न्यूनतम मात्रा में किया है। पुस्तक दो भागों में विभाजित है—प्रथम भाग में मासिक 'विज्ञान' में प्रकाशित लेखक के विभिन्न लेखों का संग्रह है तथा दूसरे भाग में गणितीय कोष है। उक्त लेखों में गणितीय परिभाषा पर सुचारु रूप से प्रकाश डाला गया है तथा गणितीय शब्दावली की समस्याओं पर अनेक विचारपूर्ण सुझाव दिये गए हैं। फिर भी लेखक द्वारा प्रस्तुत पारिभाषिक शब्दों को अभी प्रस्तावित रूप में ही लेना ठीक होगा।

हर स्थान पर अंग्रेजी शब्द का अक्षरशः अनुवाद न करके कहीं-कहीं उसके आशय का उपयुक्त पर्याय लेना श्रेष्ठ रहेगा। उदाहरण के लिये समान्तर श्रेणी (Arithmetic Progression) के सम्बन्ध में (Common difference) का प्रयोग होता है, जिसका अनुवाद सार्व अन्तर है। परन्तु सार्व अन्तर या सार्वान्तर के बजाय पदान्तर शब्द का प्रयोग किया जाए तो अधिक उपयुक्त रहेगा और समान्तर श्रेणी के सम्बन्ध में उपयुक्त होने पर इसके अर्थ में कोई द्विविधा भी न होगी। इसी प्रकार गुणोत्तर श्रेणी के सम्बन्ध में (Common ratio) के लिये पदानुपात का प्रयोग किया जा सकता है।

कोष की छपाई के सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक है कि यदि हर पृष्ठ पर यौगिक शब्द के ऊपर मूल शब्द दे दिया गया होता तो देखने में सुविधा होती। कहीं-कहीं तो यौगिक शब्द कई-कई पन्नों तक चलते रहते हैं और मूल शब्द को ढूँढ़ने में अनावश्यक परिश्रम करना पड़ता है। शब्दों का वर्णानुक्रम भी कहीं-कहीं अशुद्ध है—जैसे पृष्ठ २३४ के दो शब्द (Coulomb और (Coulomb's law) पृष्ठ २३३ पर (Count) के ऊपर होने चाहिये। पुस्तक का मूल्य यदि कुछ कम होता तो उसके प्रचार में विशेष सहायता मिलती।

—निर्विकार सरन, एम० एस-सी०

मुद्रक :—सरयू प्रसाद पाण्डेय, नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—श्रीरामदास गौड़ और प्रो० सालिगराम भार्गव ।=)
२—चुम्बक—प्रो० सालिगराम भार्गव ।।।=)
३—मनोरञ्जन रसायन—प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव २)
४—सूर्य सिद्धान्त—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव छः भाग मूल्य ८) । इस पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।
५—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी १)
६—समीकरण मीमांसा—पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)
७—निर्णायक डिटर्मिनेंटस—प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री ।।।)
८—बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)
६—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशंकर पचौली; ।=)
१०—व्यङ्ग-चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; २)
११—मिट्टी के बरतन—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; (अप्राप्य)
१२—वायुमंडल डाक्टर के० बी० माथुर, २)
१३—लकड़ी पर पालिश डा० गोरखप्रसाद और श्री रामरतन भटनागर, एम० ए०, २) (अप्राप्य)
१४—कलम पेवंद ले० श्री शंकरराव जोशी; २)
१५—जिल्दसाजी—श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० २)
१६—तैरना—डा० गोरखप्रसाद १)
१७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—(अप्राप्य)
१८—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएं—डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० ।।)
१६—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकारनाथ परती, मूल्य ।।।)
२०—फोटोग्राफी—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन) ४),
२१—फल संरक्षण—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह २।।)
२२—शिशु पालन—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई । मूल्य ४)
२३—मधुमक्खी पालन—दयाराम जुगड़ान; ३)
२४—घरेलू डाक्टर—डाक्टर जी० घोष, डा० उमाशङ्कर प्रसाद, डा० गोरखप्रसाद, ४)
२५—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, ३।।)
२६—फसल के शत्रु—श्री शङ्कर राव जोशी ३।।)
२७—साँपों की दुनिया—श्री रमेश वेदी ४)
२८—पोर्सलीन उद्योग—प्रो० हीरेन्द्र नाथ बोस ।।।)
२६—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ—२)
३०—गर्भस्थ शिशु की कहानी—प्रो० नरेन्द्र २।।)

अन्य पुस्तकें

१—विज्ञान जगत की झाँकी (डा० परिहार)		२)
२—खोज के पथ पर (शुकदेव दुबे)		।।)
३—विज्ञान के महारथी (जगपति चतुर्वेदी)		२)
४—पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ	(,,)	१।।)
५—हमारे गाय बैल	(,,)	।।)
६—मवेशियों के छूत के रोग	(,,)	।।)
७—मवेशियों के साधारण रोग	(,,)	।।)
८—मवेशियों के कृमि-रोग	(,,)	।।)
६—फसल-रक्षा की दवाएँ	(,,)	।।)
१०—देशी खाद	(,,)	।।)
११—वैज्ञानिक खाद	(,,)	।।)
१२—मवेशियों के विविध रोग	(,,)	।।)

पता—विज्ञान परिषद् (म्योर सेन्ट्रल कालेज भवन) प्रयाग

Reg. No. A 612

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools;
Colleges and Libraries

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन या जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति दो प-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे नके द्वारा परिषद् की कार्यवा ोगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३, होगा जो सभ्य बनते समय केवल बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के धारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार गा। पूर्व प्रकाशित पुस्तक नको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम
सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

मुद्रक—श्री सरयू प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग तथा प्रकाशक—डा० रामदास तिवारी प्रधान मंत्री विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

विज्ञान

अप्रैल १९५६ भाग ८३
मेष २०१३ अंक १

वार्षिक मूल्य प्रति अंक
चार रुपए छः आने

विषय-सूची

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तति । तै० उ० ।३।५।

भाग ८३ | मेष २०१३; अप्रैल १९५६ | संख्या १

विज्ञान परिषद् भवन का शिलान्यास

विज्ञान परिषद भवन का शिलान्यास श्री जवाहर लाल जी नेहरू द्वारा ४ अप्रैल १९५६ को हुआ। विज्ञान परिषद के इस शुभ कार्य को सम्पन्न करने के लिए नेहरू जी प्रयाग पधारे थे। इस अवसर से बढ़ कर विज्ञान परिषद के लिए हर्ष का कोई दूसरा समय नहीं हो सकता। इस समारोह का समाचार संवाद-पत्रों में प्रकाशित हो चुका है। हम विज्ञान का एक विशेषांक इस अवसर की स्मृति के लिए निकाल रहे हैं जो मई जून का सम्मिलित अंक होगा। भवन-निर्माण का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। हमें आशा है कि हमारे सभापति श्री हीरा लाल जी खन्ना के अटूट उत्साह और प्रयास तथा अन्य विज्ञान-प्रेमियों की सहायता से भवन भली भाँति पूर्ण हो सकेगा।

प्रधान मन्त्री
विज्ञान परिषद
प्रयाग।

सम्पादकीय

लेख-दान

श्रमदान, भूदान, सम्पत्तिदान आदि की तरह जनोपयोगी वैज्ञानिक या अन्य विषयों के सम्बन्ध में लेखदान भी हो सकता है। बैठे-बैठे ही सोचने लगा, कितना अधिक काम है इन प्रयोगशालाओं में! नाना प्रकार के नए से नए बने यंत्र, तरह-तरह के रसायन, परीक्षण की विचित्र-विचित्र विधियाँ, सिद्धान्तों के घटाटोप, जंतु, वनस्पति, कीटाणु, परमकीटाणु, फफूँदी आदि के अतिरिक्त निर्जीव पार्थिव पदार्थों की बहुसंख्यक अगणित विविध किस्मों की छानबीन, विविध निर्माण और विश्लेषण-कौशल आदि अनन्त वैज्ञानिक समस्यायें हमारे विज्ञान-कर्मियों के सामने रह सकती हैं। दुर्दैव की अनुकम्पा से किसी वर्ष किन्हीं व्यवस्थागत समस्याओं, विचार-विभिन्नताओं, या अन्य गुत्थियों को लेकर कोई छात्र-हड़ताल नहीं हुई, निरन्तर बहुदिवसीय आन्दोलन-प्रदर्शन आदि न हुए तो साल भर तक एक ही गति से, एक ही विधि से अबाध वैज्ञानिक शिक्षण-क्रम भी क्या कम उबाने वाल बात हो सकती है! परीक्षाओं का तांता, परीक्षा-पुस्तक की सशुल्क परीक्षा, प्राप्तांकों की सारिणी-सृष्टि आदि की व्यवस्थाएँ तो अवकाश का समय भी कुछ रुपहले टुकड़ों के बदले में खा जाती हैं। अवकाश का फिर नाम ही कहाँ रह जाता है। वहाँ जले पर लवण मर्दन की भाँति पुष्कल पुरस्कार-राशि प्रदान कर पुस्तक प्रणयन करने की हमारे राज्य की नवीन योजना तो विद्वानों, वैज्ञानिकों को सेवावृत्ति से च्युत कर अर्जनवृत्ति से ही लेखन करने के लिए बलात् आकृष्ट करने वाली एक असंदिग्ध घटना ही है। फिर विज्ञान का निश्शुल्क सेवा-कार्य कैसे अग्रसर हो!

सेवा करने के ढंग भी तो पृथक-पृथक हो सकते है। धार्मिक निष्ठावान व्यक्ति अपनी अटूट श्रद्धा के कारण कभी एक बार किसी पुनीत सरिता-सरोवर में स्नान कर अपना सारा जीवन अकल्मष होते मानते हैं। कुछ श्रद्धालु एक बार के पुनीत जल में निमज्जन करने से जीवन का बोझिल कल्मष कदाचित एकबारगी ही छूमंतर हो जाने में भारी संदेह कर किश्तों रूप में प्रतिवर्ष ही किसी धार्मिक प्रधान पर्व के मेले में जाकर पावन सरिता में कल्मषमय शरीर अवगाहित कर वर्ष के शेष भाग की अवधि में पुण्य का पलड़ा भारी ही रहने का निस्संदेह विश्वास करते हैं परंतु कुछ धार्मिक जन ऐसे भी हैं जो प्रति दिन ही दैनिक जीवन का कलुष मार्जन करने की व्यवस्था रख नित्य गंगोदक या अन्य पवित्र जलाशय में स्नान ध्यान करने की अक्षुण्ण व्यवस्था रखते हैं। किन्तु ये सब कोटियों के श्रद्धालु धर्मनिष्ठ वर्ग के ही हैं। क्या हमारे विज्ञान-सेवियों या राष्ट्रसेवियों की भी ऐसी ही श्रेणियाँ नहीं हो सकतीं? कभी जाने या अनजाने साहित्य, विज्ञान या देश-सेवा की घड़ी या छोटी मोटी अवधि उनके जीवन में आई, बस उनका नाम विज्ञान-सेवियों, साहित्य-सेवियों किंवा देश-सेवियों में लिख गया। "दरस-परस मज्जन अरु पाना, हरे पाप कह वेद पुराना।" क्या यह उक्ति धर्म क्षेत्र की ही सीमित

सूक्ति मानी जानी चाहिए ? साहित्य या विज्ञान या राष्ट्र सेवा क्षेत्र में भी इसे चरितार्थ क्यों न माना जाय ?

एक बार ही नहीं, कुछ अधिक समय तक सही, परंतु आजीवन विज्ञान या साहित्य सेवा का व्रत न उठा सकने वाले सेवक जन भी वार्षिक या गाहे बगाहे कुम्भ या वार्षिक पर्व के मेलों में धर्माजन करने की वृत्ति समान ही सेवक वर्ग की ही गिनती में हो सकते हैं। जीवन की अन्य कठिनाइयों, प्रलोभनों, असुविधाओं, अशक्तताओं, कार्यकर्ताओं के पारस्परिक राग-द्वेषों या किंहीं अन्य कारणों से सेवा से अरुचि या कुरुचि हो जाने के कारण ही इनकी वैज्ञानिक साहित्यिक या देश-सेवा आगे नहीं बढ़ पाती। उन्हें हम जीवन के किसी भाग में सेवा से अरुचि-वृत्ति या आज की उदासीनता के लिए उपालंग भी क्यों दें ! किन्तु क्या सतत असुविधाओं, अशक्तताओं, सामाजिक अवहेलनाओं या किन्हीं भी अन्य दुष्कर परिस्थितियों का भी मर्दनकर विज्ञान या साहित्य की सेवा का व्रत अक्षुण्ण, अखंड रखने वाले कर्मी हमारे युग की दुर्लभताएँ, असंभवताएं ही हैं ? इसका कौन उत्तर दे ? दिन के स्वप्न रूप में सोचते सोचते, कल्पना करते करते हृदय की क्रिया प्रसुप्त होती सी जान पड़ने लगती है, श्वास-प्रश्वास लेता हुआ कलेवर भी जड़ पाषाण मूर्ति सा बनता जान पड़ता है। स्वप्न अवश्य ही स्वप्न है। वह रात का हो या दिन का, जाग्रत अवस्था का हो या विनिद्रित अवस्था का हो। किन्तु क्या विपक्ष पहलू का निशास्वप्न या दिवा स्वप्न नहीं हो सकता ? एक पल विचारों की प्रवाह-दिशा, भावनाओं का गमन-पथ परिवर्तित करते ही कोई दूसरा दृश्य दिखाई पड़ने लगता है। यह क्या है भावनाओं या मानसिक वृत्ति का कीटाणु या फफूंद विज्ञान ! क्या इस नाम की कोई विज्ञान-शाखा कल्पना में भी आई है, यह कह नहीं सकते। किन्तु व्यवहार में तो कुछ इंगित होता प्रतीत होता है। अलस-वृत्ति में चार छः, दस बीस, सौ पचास के पड़े रहने पर दूसरे सैकड़ों व्यक्ति भी उत्साह वृत्ति सर्वथा त्याज्य करने में तनिक भी हिंचक नहीं करते। भौतिक या अभौतिक कारण क्या है, इसे अध्यात्म या भौतिक के विज्ञजन जाने, हमारे दिवा स्वप्न में तो यह बात आती है कि ऐसी घटनाएँ कल्पित या इक्के दुक्के नहीं हैं। यह नहीं है कि आलस्य या दोष या किसी प्रकार की दुर्बलता ही देखा-देखी दूसरे बहुसंख्यक लोगों में फैलती है। उत्साह, स्फूर्ति, जोश, कर्मठता, साहसिकता, रणरंग आदि वृत्तियाँ भी अवश्य ही अन्यों के अनुकरण से स्फुटित हो पड़ती हैं। रण-वाद्य के वादित होते, रण-सज्जाओं की खड़खड़ाहट होते देख आलसी, कापुरुष, शय्यागत कृशकाय व्यक्ति भी मोर्चे पर कूद चलने के लिए उतारू दिखाई पड़ने लगते हैं, अस्तु।

स्वप्न की शृंखला तो बढ़ती ही जा सकती है। सत्य तथ्य का ठेस लगने पर ही वह टूटती है। विज्ञान-सेवा की अवरुद्ध गति में स्वप्नों की शृंखला हमें पता नहीं कहा पहुंचा ले जाय, परन्तु एक कल्पना पर आकर कुछ विचार शक्ति अथाह कठिनाइयों के समुद्र में एक चट्टान् सी मिलती जान पड़ती है। कौन जाने वह भी मृगमरीचिका, कोरी कल्पना ही हो, किन्तु स्वप्न की बहुपक्षीय चर्चाओं में उसकी भी चर्चा कम से कम असंगत तो नहीं जान पड़ सकती। हम दिवा स्वप्न को भग्न करने वाली ठोकर लग कर जग जाने समान कल्पना को भी कह ही डालते हैं। आप चाहें तो इसे "दस रविवार" का शीर्षक देकर ही स्मरण रख सकते हैं। हम सब जीवन-व्यापार में पूर्ण व्यस्त, अलस भावना ग्रस्त व्यक्ति इस अलक्षित कल्पना को मूर्त मान कर चलने का प्रयास करें। इस शीर्षक को "वार्षिक दस रविवार" भी कह सकते हैं। अत्यंत अस्त-व्यस्त् या दैनिक कार्यों के घटाटोप वाले जीवन में भी आलस्य की पूर्ण अभिभूति होते हुए भी हम व्रत करें कि वर्ष भर में

पाँच या दस रविवारों को अन्य निरर्थक या अर्थकर कार्यों में न लगा कर हिन्दी में कुछ विज्ञान-सेवा के लिए ही लगावेंगे। प्रातः से सायं तक इन रविवारों को जितना भी आप की कार्य करने की क्षमता हो, हिन्दी की अपनी ज्ञात शब्दावली और भाषा में ही आप किन्हीं भी वैज्ञानिक विषयों पर लिखने में लगावें। उनके लिए ही लिखना है जो वैज्ञानिक परम्परा से अछूते हैं, वैज्ञानिक ज्ञान से कोरे हैं। आप दुरूहता को बचाने भर का ध्यान रक्खें। इन दिनों को लिखने में ही लगावें, पढ़ने या मनन करने में नहीं। उसकी आवश्यकता हो तो आप अपने व्यस्त जीवन का दूसरा समय निकालें। क्या विषय लिया जाय, क्या न लिया जाय, यह आप की रुचि की बात ही है, कोई केन्द्रीय प्रेरणा-स्रोत नहीं है। आप कतिपय विज्ञान-कर्मी परस्पर परामर्श, वार्तालाप, पत्रव्यवहार कर ही ऐसी लेखन-श्रृंखला परिचालित करें। दो तीन फार्म (डवलक्राउन सोलहपेजी के ३२ या ४८ पृष्ठ) की छोटी-छोटी इकाइयों में आप दस पाँच विज्ञान-कर्मी हिन्दी-जगत को सुन्दर जनोपयोगी वैज्ञानिक पुस्तकें १००, ५० की संख्या में दे सकते हैं। प्रकाशन की व्यवस्था तो हो ही जायगी। आपमें से हीं कोई व्यवसाय-बुद्धि रखने वाला हो तो आप की स्थानीय या विभिन्न स्थानीय व्यक्तियों, विज्ञान-कर्मियों की मंडली भर को वह प्रकाशन-भार से मुक्त कर सकता है। स्मरण रखिए कि इक्के दुक्के प्रयत्नों में न तो वैसी उत्साह-लहरी उत्पन्न हो सकती है और न उतना कार्य ही हो सकता है। संक्रामक रूप में ही आप उल्लेखनीय प्रयास कर सकते हैं, वैज्ञानिक पुस्तक-प्रणयन का बोझिल आयोजन प्रस्तुत कर सकते हैं। आप तो जानते ही है संघ में ही शक्ति हैं (संघौ शक्तिः कलियुगे)। यह दिवा-स्वप्न ठोस सत्य रूप में परिणत करना आपकी कार्य करने की वृत्ति के संक्रामक रूप में प्रचार कर सकने पर ही निर्भर है। कतिपय उद्योग-शील, उत्साही विज्ञान सेवियों का सामूहिक प्रयास कदाचित कभी विज्ञान परिषद या विज्ञान के ही आयोजन का भाग बन जाय! क्या कर्मठ सेवकों और अलसाए स्वप्न-दर्शियों के बीच होड़ में अभी या कभी आप का भी कहीं स्थान हमें देखने को मिल सकेगा? क्या रैडर के इस युग में आप सरीखे बुद्धि-जीवियों के लिए किसी कुंठित उपकरण की भाँति शब्दों की ललकार को ही विचारों की ललकार का स्थानापन्न बनाना पड़ सकता है?

अन्धविश्वास

४ अप्रैल १९५६ को विज्ञान परिषद भवन के शिलान्यास समारोह में श्री जवाहर लाल जी नेहरू ने किसी बात के प्रसंग में कहा था, कि "ज्योतिषी बड़े खतरनाक होते हैं। उनसे किसी बात की सलाह लेना तो और भी खतरनाक है।" इस पर प्रयाग विश्वविद्यालय के उप कुलपति श्री भैरवनाथ झा ने भी हँसकर अपनी बात जोड़ी कि उत्तर-प्रदेश में ज्योतिषियों की सख्या अधिक है।

उपर्युक्त भाषण की चर्चा और आलोचना हिन्दी "अमृत पत्रिका" के "वैज्ञानिक उन्नति की समस्या" शीर्षक सम्पादकीय में निम्न रूप में की गई थी:—

"प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा है कि विज्ञान के इस आणविक युग में तो विज्ञान की साधारण बातें भी समय से बहुत पिछड़ गई हैं। युग की इस रफ्तार में भारत को कदम मिलाकर चलना चाहिए।...... .. निरन्तर वादानुवाद से ही मस्तिष्क खुलता है, अभिनव समस्याओं का सामना करना पड़ता है और उनका समाधान भी निकाला जाता है। इसलिए पहली आवश्यकता यह है कि सारे देश में एक वैज्ञानिक आबोहवा उत्पन्न हो और विज्ञान का कम से कम एक साधारण ज्ञान सारे देश में व्याप्त हो। इस वैज्ञानिक मनोवृत्ति के मार्ग में रूढ़िवाद और अंधविश्वास जितना घातक है पक्षपात पूर्ण विचार भी उससे कम घातक नहीं। **इस दृष्टि से स्वयं प्रधान मंत्री के विचारों को भी हम पक्षपात-हीन नहीं पाते। प्रयाग विश्व विद्यालय में दिए गए अपने भाषण में पंडित जी ने कहा है कि ज्योतिष-शास्त्रविद् भी खतरनाक हैं और जो ज्योतिषियों के पास जाते हैं वे भी खतरनाक हैं। वास्तव में किसी सत्य की उपेक्षा न करना ही वैज्ञानिक मनोवृत्ति है। केवल पूर्ण पर सम्बन्ध के अभाव के कारण ही किसी वास्तविकता का अस्तित्व लुप्त नहीं हो जाता। ज्योतिष-शास्त्र के सम्बन्ध में भी यह लागू है। श्री सम्पूर्णानन्द जी को हम अवैज्ञानिक नहीं कह सकते, केवल इसलिए कि उन्होंने ज्योतिष को सत्य की कसौटी पर परखने की माँग की है। वैज्ञानिक मनोवृत्ति का अभाव तो यह है कि परखने के पहले ही निर्णय कर लिया जाय।"**

उपर्युक्त रेखांकित वाक्य अमृत पत्रिका-सम्पादक के हैं। उन्होंने आगे लिखा है कि "खैर यह चर्चा तो हमने प्रसंगवश कर दी।"

जब कोई सम्पादकीय लिखा जाता है तो उसका विवेच्य विषय इतना गम्भीर होता है कि सम्पादक अन्य सब विषयों को थोड़ी देर के लिए बिलकुल ही दूर कर उस प्रसंग पर ही अपना विचार केन्द्रित कर लेखनी उठाता है। यह उद्धरण हमारे उत्तर भारत के एक प्रमुख राष्ट्रीय संवाद पत्र के सम्पादकीय रूप में इस युग में लिखा गया है। उपर्युक्त सम्पादकीय का शीर्षक कुछ अन्य होते हुए भी फलित ज्योतिष की बात सम्पादक महोदय के मस्तिष्क में इतना स्थान रक्खे हुए है कि वह अपने प्रबल उद्गार प्रकट किए बिना नहीं रह सके। श्री नेहरू जी का समर्थन करने के लिए हमारी सहायता अपेक्षित नहीं है परन्तु सम्पादक महोदय ने तर्क की जो भयानक शैली प्रस्तुत की है, उसके कारण हमें विवश होकर इसकी छान-बीन करनी पड़ रही है।

कोई भी विचारवान पाठक, यदि पहले से ही अपनी तर्क-बुद्धि को पक्षपात के कर्दम में ढक न लिए हो, ऊपर के तर्कों की असम्बद्धता स्वयं ही समझ सकता है। यह एक तथ्य है कि संवादपत्रों में इधर कुछ दिनों से प्रतिदिन कालम के कालम राशिफल प्रकाशित होने लगे हैं। यह फलित ज्योतिष ही है। यदि आप एक बार ध्यान पूर्वक सम्पादकीय के उद्धृत अंशों को पढ़ जायँ तो आप सहज ही देखेंगे कि अमृत पत्रिका के सम्पादक की बोझिल राय में यह फलित ज्योतिष निर्विवाद "सत्य" है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती; यह एक "वास्तविकता" है जिसका अस्तित्व लुप्त नहीं हो सकता।

दूसरी स्पष्ट बात अधिक असंयत और झगड़े की है। उक्त संपादकीय में व्यक्ति पूजा की पृष्ठभूमि में इस विषय को देखने की जो कुतर्कपूर्ण पद्धति उपस्थित की गई है, वह सर्वथा अमान्य है। विज्ञान तो बाबा वाक्यं प्रमाणं में विश्वास ही नहीं करता स्पष्ट है कि ज्योतिष का गणित पक्ष अध्ययन का सब से गहन विषय है किन्तु प्रयोगात्मक अध्ययन की कठिन कसौटी पर फलित ज्योतिष आज तक किसी देश में यथार्थ विज्ञान नहीं सिद्ध हुआ है जिसका इतिहास साक्षी है। अतः यह निर्विवाद ही है कि फलित ज्योतिष में विश्वास हमारी वैज्ञानिक बुद्धि का भाग कदापि नहीं है।

सबसे लचड़ दलील यह है कि "परखने के पहले कोई निर्णय कर लेना वैज्ञानिक मनोवृत्ति का अभाव है।" इसका यह साफ मतलब है कि फलित ज्योतिष की परख करने के बाद किसी भावी युग में श्री नेहरू जी को इसके विरोध का झन्डा खड़ा करना चाहिए। यह तर्क तो बूमरैंग सा है। आपने फलित ज्योतिष को परखने का अवसर तो प्राप्त नहीं किया अर्थात् उसके विज्ञान-सम्मत होने का कोई प्रमाण आपको मिला ही नहीं, फिर उस पर विश्वास करने का ढिंढोरा क्यों पीटते है, नित्य राशिफल छाप कर अपने राष्ट्रीय पत्र का कलेवर क्यों भरते हैं। हजारों पाठकों को इस अप्रमाणित बात में क्यों फंसने का अवसर देते हैं ?

किन्तु अंध विश्वास के समर्थकों की कमी नहीं। हमारे उत्तर प्रदेश में तो सरकार ही शुभअशुभ मुहूर्त्तों का धार्मिक पंचांग छाप कर वितरित करने में पुष्कल देश-सेवा करने का गर्व करती है।

फलित ज्योतिष ने हमारे राष्ट्र का कितना अहित किया है, यह छिपी बात नहीं है। नित्य ही इसके दुष्परिणाम हमें संवाद-पत्रों में पढ़ने या दैनिक जीवन में देखने को मिलते हैं। "सरिता" के अप्रैल अंक में फलित ज्योतिष शीर्षक श्री आनन्द प्रकाश जैन लिखित लेख हमें इसी अवसर पर पढ़ने का अवसर मिला। उसके कुछ उदाहरण नीचे हैं।

किसी परिवार के सब सदस्यों का अंत फलित ज्योतिष के कारण हुआ। उसका संवाद पत्रों में जैसा छपा था उसे उद्धृत कर लिखा है :—

"परिवार के कातिल मदनमोहनलाल द्वारा आत्म-हत्याः दुखांत नाटक की जड़ ज्योतिषी की भविष्यवाणी'—इस शीर्षक से २१ जून, '५५ के 'हिंदुस्तान' दैनिक के मुख पृष्ठ पर एक समाचार मोटे-मोटे अक्षरों में प्रकाशित हुआ इस व्यक्ति को किसी ज्योतिषी ने यह बता दिया था कि ३० जून से पहले-पहले वह अवश्यमेव आत्महत्या कर लेगा। फलित ज्योतिष में अत्यधिक विश्वास होने के कारण यह बात उस के दिमाग में जड़ जमा कर बैठ गई और उस की तैयारी करने के लिए उस ने इस लोक के अपने निकट संबंधियों—पत्नी तथा तीन बच्चों—की ऐसी व्यवस्था कर दी, जिस से परलोक में वह जाते ही उन्हें पा सके! २० जून को इस आदमी ने गाजियाबाद से आठ मील दूर साहिबाबाद स्टेशन के पास रेलगाड़ी के सामने कूद कर आत्महत्या कर ली। इस प्रकार ज्योतिषीजी ने स्वयं ही उस भविष्यवाणी के सत्य होने की व्यवस्था भी कर दी ताकि यदि किसी कारण ऐसा न हो, तो लोग उनके ज्योतिष शास्त्र पर ईमान लाना न छोड़ें।"

फलित ज्योतिष के साधारण दुष्परिणामों का कुछ उल्लेख लेखक ने निम्न रूप में किया है :—

"देशविदेश में सैकड़ों पुस्तकें, प्राचीन और अर्वाचीन फलित ज्योतिष पर निकली हैं और निकलती रहती हैं। सैकड़ों मासिक पत्रिकाएँ इस कुविद्या के सहारे चल रही हैं, और हमारे देश के लाखों नर नारी इसका थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त कर के उन लोगों के विश्वासों के साथ घृणित खेल खेल रहे हैं, जो आत्म-विश्वास से हीन हैं और होते जा रहे हैं और जिनका आत्मविश्वास यदि इन आक्रमणकारियों की करतूतों से बचा रहता, तो देश के रचनात्मक कार्य को दोगुनी गति मिलती! इस सर्वोच्च अंधविश्वास के चक्कर में न केवल अशिक्षित जनता ही आती है, बल्कि करोड़ों शिक्षित नर नारी इस पर विश्वास कर के अपने भविष्य को अंधकारमय बना लेते हैं"

"हमारे देश के अधिकांश समाचार-पत्रों में साप्ताहिक भविष्यवाणियां तथा राशिफल आदि प्रकाशित होते हैं, जिस से अंधविश्वासी लोगों में उन की बिक्री अधिक हो सके। अनेक पत्र, जो अच्छी पूँजी से चल रहे हैं, उन विज्ञापनों को प्रकाशित करते हैं, जिन में कोई ज्योतिषी

महाराज माथे पर लम्बा-चौड़ा तिलक लगाए अंधविश्वासी और मूढ़ धनपतियों तथा राजाओं आदि के प्रमाणपत्र लिए, साधारण लोगों को उन का भविष्य बताने के लिए बेचैन दिखाई देते हैं। लाखों ज्योतिषी भृगु संहिता के श्लोक रट रट कर, उलटे सीधे हिसाब लगा लगा कर संसार को उस का भविष्य बता चुके हैं। मगर शोक कि संसार को अब भी अपने आगे का रास्ता दिखाई नहीं दिया। तब इन ज्योतिषियों का और इनके उस लम्बे चौड़े हिसाब किताब का क्या मूल्य है, क्या रहस्य है और किन जटिल और सबल तर्कों के आधार पर ये वस्तुएं, ये मूढ़ विश्वास सदियों से टिके हुए हैं—यह सब पता लगाना आवश्यक है।"

ईसाई धर्म के अनुयायी भी अंधविश्वास के चंगुल में किस प्रकार हैं, इसका भी उल्लेख लेखक ने किया है:—

"आत्मा तथा भाग्यवाद का पृष्ठ पोषण करने के लिए ईसाई धर्म भी कम सहायक सिद्ध नहीं होता। यही बात अन्य धर्मों के बारे में कही जा सकती है, क्योंकि यदि मनुष्य अपनी गतिविधि को किसी अलौकिक और अदृश्य शक्ति के द्वारा संचालित न मानने लगता, तो आज से बहुत समय पहले गणित विद्या के इस सबसे बड़े कलंक—फलित ज्योतिष—का खातमा हो चुकता।"

संयोग वश पचीसों भविष्य वाणियों में दो एक के सही हो जाने पर किस प्रकार ज्योतिषी पाठकों की आँख में धूल झोंकते है इसका उल्लेख लेखक ने निम्न रूप में किया है :—

"जिस विश्व में अरबों व्यक्ति अपने दैनिक कारबार में इधर से उधर गतिशील रहते हैं, उसमें बड़े बड़े विचित्र संयोग प्रति दिन घटित होते हैं। कुछ प्रकांड ज्योतिषी अपने साथ ऐसे सच्चे प्रमाणपत्र भी रखते हैं, जिन में ईमानदार लोगों के द्वारा यह स्वीकारोक्ति रहती है कि उन्होंने अमुक अमुक अवसरों पर उस ज्योतिषी की सच्ची भविष्यवाणी से लाभ उठाया। काश कि उन ज्योतिषी महाराज में इतनी ईमानदारी भी होती कि वह उन लोगों के भी प्रमाणपत्र साथ रखते, जिनके बारे में की गई भविष्यवाणियाँ असत्य सिद्ध हुई हों। उस समय हाथी और चींटी के वजन की तुलना साकार हो जाती और वे अपनी असफलताओं में ही डूब जाते।

"मगर ऐसा नहीं किया जाता, क्योंकि ईमानदारी ही सब कुछ नहीं है, व्यापार भी अपना महत्व रखता है। संयोगों को सुन्दर अक्षरों में टाँक कर, हस्ताक्षर करवा कर फ्रेमों में जड़ कर झूठ के डंके बजाए जाते हैं, और निश्चित असफलताओं को यत्न कर के दबाया जाता है। गोल-मोल बातों को कह कर संयोगों को भी अपने पक्ष में कर लिया जाता है, जैसे 'राजपुरुष की मृत्यु' की भविष्यवाणी ले लीजिए वह यदि संयोग से घटित ही न हो, तो सैंकड़ों झूठे ज्योतिषियों में एक की वृद्धि कोई असाधारण बात नहीं समझी जायगी।"

फलित ज्योतिष के दुष्परिणाम क्या-क्या है और उनसे कैसे बचे रहना चाहिए इसकी चर्चा लेखक ने निम्न रूप में की है :—

"इस अधूरी कुविद्या पर विश्वास करके जो हानियाँ हो सकती हैं, उनकी एक संक्षिप्त सूची हम नीचे दे रहे हैं :

मदनमोहन की तरह मनुष्य आत्महत्या के लिए प्रेरित हो सकता है।

कर्मफल भाग्य के अधीन मान लेने से मनुष्य कर्म से विरक्त हो सकता है।

कठिनाइयों को भाग्य के अधीन मान लेने से उन्हें दूर करने के साधनों पर से विश्वास उठ जाता है।

मनुष्य स्वयं अपने पर विश्वास खो बैठता है और इस प्रकार राष्ट्र तथा समाज के प्रति उस के लेन देन में भारी कमी आ जाती है।

दुर्भाग्यरूपी कल्पित शत्रु सामने दिखाई न देने से मनुष्य विपत्तियों के रूप में बराबर चपत खा खाकर कायर और दीन हो जाता है।

व्यर्थ भय का उपचार करने और कल्पित देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए किए जाने वाले आडंबर पूर्ण कार्यों में व्यक्ति राष्ट्रीय समय और शक्ति नष्ट करता है।

साधारण बातचीत में भाग्य और दुर्भाग्य की चर्चा न कीजिए। यदि कोई चर्चा करे, तो उसे टोकिए।

अपने घर में प्रयोग किए जाने वाले गंडेतावीजों का सख्त विरोध कीजिए और अपने तर्कों को आग्रह के साथ बार बार परिवारजनों के सम्मुख रखिए।"

हम बेतार तरंगें

श्री ब० सोबती एम० एस-सी

हम बेतार तरंगें सहस्रों केन्द्रों से चल कर प्रकाश के वेग से पृथ्वी को इस प्रकार घेर लेती हैं कि उसके इर्द-गिर्द एक उलझा सा जाल बन जाता है। बड़े-बड़े तूफानों का भी हम पर कुप्रभाव नहीं पड़ता। उच्चतम पर्वत शिखाओं से रगड़ खाते हुए और चौड़ी २ खाइयां फांदते हुए, पैने किनारों से वक्रित होते हुए, हम हर वातावरण में घस जाती हैं और ऐसे अविश्वासनीय प्रान्त में, जहाँ हिसाब से हमारा प्रवेश निषिद्ध हो, आ पहुँचती हैं। हम संतत या संचलित, नीच, उच्च या अतिउच्च बारंबारता वाली दशा में, दूर देशों में संदेश ले जाती हैं। बहुधा कई तो हमारी ज्ञान के योग्य भी नहीं होते (उन्हें इतनी उदारता से इतनी दूर पहुँचाने का तो कहना ही क्या) कभी हम संसार भर के भूकम्प, बाढ युद्ध और ऐसे ही दूसरे कई अभाग्यों के समाचार दूर देशों में ले जाती हैं तो कभी मनुष्य के शासकों के संदेश उनके दुर्बल जनों तक पहुँचाती है। मौलिक बिजली की चमक से हमारी उत्पत्ति का ज्ञान तो बहुत पुराना है, परन्तु अभी अभी मैक्सवेल ने सूचित किया और हर्ज ने बताया कि किस प्रकार साधारण जन हमारी उत्पत्ति करके, हमें अपनी कार्य-सिद्धि के लिये प्रयोग कर सकते हैं। हम दत्तु तरंगों के लिये ये प्रयोग उचित भी हैं। और इसीलिये ही हम सहर्ष, सातों सागर पार अयन-मण्डल में से होती हुई दूर-दूर अपनी मूक संज्ञप्तियाँ विकिरण किया करती हैं। मारकोनी ने हमें मोर्स के लघु व दीर्घ संकेतों में ढाला; फेसेन्डैन और डी फरिस्ट ने हमें उच्चरित शब्दों का रूप दिया कि हम अपने पंख, संगीत से लाद कर मानव जनों को हर्षित करें और किसी दूर देश के श्रोता को यह विदित करें कि पृथ्वी पर भी देवलोक जैसी ध्वनियां उत्पन्न हो सकती हैं।

इन्हीं दिनों कुछ वैज्ञानिकों ने मिलकर हमें तेजोवह-तत्वी होने पर भी दृश्यमान चित्र उत्पन्न करने में प्रयोग किया कि नये-नये चमत्कारों के बनावटी दृश्य लाखों जनों तक पहुँचाए जायँ। अनगिनित घरों के शिखरों पर लगी हुई विचित्र उंगलियाँ सी रात्रि के अंधकार में हमारी खोज में टटोला करती है। इन्हीं उंगलियों के रास्ते हमारी ऊर्जा का एक बहुत ही छोटा सा भाग, अन्दर बैठे कुटुम्ब के सामने एक जादुई से पट पर, कई मील दूर वाले दृश्य दर्शित करने के लिये प्रयोग किया जाता है।

हम ऐसी बेतार तरंगे हैं, जिनके भाग्य में ऐसे-ऐसे उच्च कोटि के कार्य करना बदा है जो अभी तक हमने नहीं किये। ऐसा तो तभी होगा, जब मनुष्य हमें केवल अपने अति उत्तम ज्ञान, संगीत, राग, शिक्षा योजनाएं और अति सुन्दर दृश्य सौंपना सीखेगा; जिससे कि मानव संसार को हम ऐसे भविष्य की ओर ले जावें जिस पर हम बेतार तरंगों को गर्व हो।

———

द्रव्य, अणु और परमाणु

[डा० सत्य प्रकाश, प्रयाग विश्वविद्यालय]

'छिति जल पावक गगन समीरा'—इन पाँच तत्त्वों से मिलकर शरीर बना है—ऐसा गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है। ये पाँच तत्व छिति (पृथ्वी), जल, पावक (अग्नि), समीर (वायु) और गगन (आकाश) हैं। पुराने समय में हमारे देश में ही नहीं, मिश्र यूनान, और अरब देशों में लोगों का यह विश्वास था कि दुनिया की सभी चीजें इन पाँच तत्त्वों से मिल कर बनी हैं। मनुष्य के पाँच इन्द्रियाँ हैं—नाक, जिह्वा, नेत्र, त्वचा और कान। इन पाँच इन्द्रियों से पाँच प्रकार के गुणों का परिचय होता है—गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, और शब्द। जिस तत्व के कारण पदार्थों में गन्ध होती है, उसे पृथ्वी कहते हैं। जिसके कारण रस या स्वाद होता है उसे जल कहते हैं। जिस तत्व के कारण रूप की उत्पत्ति होती है उसे अग्नि या तेज कहते हैं, जिस तत्व के कारण पदार्थों में स्पर्श का गुण आता है उसे वायु कहते हैं, और जो तत्व शब्द या ध्वनि का गुण व्यक्त करता है वह आकाश कहलाता है।

हमारे देश में सृष्टि के विकास और तत्वों के गुणों के सम्बन्ध में कपिल और कणाद नामक दो ऋषियों ने ज्ञान दिया। कपिल ने सांख्य दर्शन में प्रकृति की व्याख्या की, और कणाद ने वैशेषिक दर्शन में द्रव्य और परमाणुओं की व्याख्या की। जैन आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में इन बातों की मीमांसा की।

द्रव्य अविनाशी परन्तु परिणामी है—कपिल ने सांख्य दर्शन में स्पष्ट कहा कि प्रकृति अविनाशी है। इसका न कभी जन्म होता है, और न मृत्यु। इसी प्रकार वैशेषिक दर्शन में कणाद ने कहा कि द्रव्य अविनाशी है। आज कल अंग्रेजी में प्रकृति या द्रव्य को हम "मैटर" matter कह सकते हैं। कपिल और कणाद दोनों इस प्रकृति या द्रव्य को परिणामी भी मानते हैं। परिणामी का अर्थ यह कि द्रव्य में परिवर्त्तन या विकार तो होता है, पर द्रव्य नष्ट नहीं होता। दूध से दही बनता है। शक्कर और पानी (अर्थात् गन्ने के रस) से सिरका या शराब बनती है। शोरे से शोरे का तेजा बनता है। भोजन से हमारे शरीर में रुधिर, मांस और हड्डी बनती है। खाद और हवा लेकर पौधे अपना शरीर बनाते हैं। जो चीजें एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्त्तित हो जाती हैं, उन्हें परिणामी कहते हैं प्रकृति या द्रव्य इसी अर्थ में परिणामी हैं। अगर प्रकृति में परिणाम या परिवर्त्तन न होते, तो हमारा जीवन चल ही नहीं सकता था।

राबर्ट बॉयल (१६२७-६१) नामक एक वैज्ञानिक ने प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट किया कि द्रव्य नष्ट नहीं होता है। यह अविनाशी है। उसने द्रव्य के नित्यत्व Conservation of matter का नियम दिया। हम देखते हैं कि मोमबत्ती जलकर नष्ट हो जाती है। चूल्हे में लकड़ी और कोयला जलकर भस्म हो जाता है, हम लोग समझते हैं कि ये चीजें नष्ट हो गयीं। पर बॉयल ने यह स्पष्ट दिखाया कि जलने पर चीजें नष्ट नहीं होतीं, ये केवल अपना रूप बदल देती हैं।

बॉयल ने यह कहा कि चीजों का या द्रव्य का असली गुण इसकी तौल, भार या मात्रा (mass) है। तराजू से तौल कर हम मात्रा का अनुमान कर सकते हैं। मोमबत्ती को तौलिये, इसे जलाइये। जितना हवा जलने में लगी, उसे भी तौलिये, और जलने पर जितना धुआँ, पानी और कार्बन द्विऑक्साइड बना उसे भी तौलिये। तो आप देखेंगे कि जलने से पूर्व हवा और मोमबत्ती की उतनी ही तौल जलने के बाद सब चीजों की है। इससे स्पष्ट है कि जलने पर चीजें नष्ट नहीं होतीं, केवल

अपना रूप बदल देती हैं, इस प्रकार के अनेक प्रयोग किये जा सकते हैं, जिनसे स्पष्ट है कि परिवर्त्तन होते समय द्रव्य नष्ट नहीं होता। गन्धक के तेजाब में ताँबा घोलिये। ताँबा तूतिया बन जायगा। अगर आप चाहें, तो तूतिया से ताँबा फिर प्राप्त कर सकते हैं।

कोयले या लकड़ी का कार्बन जलने पर कार्बोनिकऐसिड गैस बनकर हवा में चला जाता है। हवा से यह गैस पौधों को मिलती है। पौधे इस गैस से अपना शरीर बनाते हैं। तुम्हारे सामने जो इतने बड़े-बड़े वृक्ष नीम, पीपल, आम या इमली के हैं, इनके शरीर में कोयला कहाँ से आया? जमीन में तो कोयला नहीं है। पेड़ों ने अपने शरीर को लकड़ी या कोयला हवा के कार्बोनिकऐसिड गैस (जिसे कार्बन द्विऑक्साइड भी कहते हैं) से बनाया है। कोयला जलने पर नष्ट नहीं हुआ। यह हवा में मिल गया है। प्रकृति में कोई चीज नष्ट नहीं होती। इसमें परिवर्त्तन के चक्र चलते रहते हैं।

जैसा बॉयल ने बताया, यह याद रखना चाहिये कि द्रव्य की सबसे अच्छी पहिचान तौल से होती है। द्रव्य नष्ट नहीं होता। यह तुम चीजों को सावधानी से तौल कर जान सकते हो।

परमाणुवाद (Atomic theory)—हमारे देश मे आज से कई हजार वर्ष पूर्व वैशेषिक दर्शन के रचयिता कणाद ऋषि ने यह बात बताई कि प्रत्येक पदार्थ छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर बने हुए हैं। ये परमाणु इतने छोटे हैं कि हम इन्हें आँखों से नहीं देख सकते। कणाद ने बताया कि परमाणुओं के और टुकड़े नहीं किये जा सकते। पृथ्वी के परमाणु जल के परमाणु से भिन्न हैं, जल के परमाणु वायु के परमाणु से भिन्न हैं। एक तत्व के परमाणु दूसरे तत्व के परमाणु से संयुक्त होकर भिन्न-भिन्न पदार्थ बनाते हैं।

यूनान में डिमोक्रिटस (Democritus) नामक एक दार्शनिक ४६० वर्ष ई० से पूर्व हुआ था। उसने भी कणाद के परमाणुवाद के समान परमाणुओं की कल्पना प्रदर्शित की। उसने कहा कि एक ही चीज के सब परमाणु एक से होते हैं। सोने के सब परमाणु एक तरह के हैं, चाँदी के सब परमाणु एक तरह के हैं, ताँबे के सब परमाणु एक तरह के हैं, गंधक के सब परमाणु एक तरह के हैं। पर गंधक के परमाणु चाँदी, सोने, पारे आदि के परमाणुओं से भिन्न हैं।

१८ वीं शताब्दी में मैंचेस्टर के एक स्कूल में जॉन डाल्टन (John Dalton) एक अध्यापक था। उसका जीवन काल १७६६-१८४४ है। डाल्टन को आधुनिक परमाणुवाद का जन्मदाता कहा जाता है। बॉयल नामक रसायनज्ञ ने तत्वों की परिभाषा दी थी। तत्व वे मूल पदार्थ हैं, जिनसे मिलकर भिन्न-भिन्न पदार्थ बनते हैं। बॉयल ने यह भी कहा कि एक तत्व दूसरे तत्व में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। गंधक से ताँबा नहीं बन सकता, तांबे से चाँदी या सोना नहीं बना सकते। बॉयल ने यह कहा कि पृथ्वी, जल, अग्नि या वायु तत्व नहीं हैं। ये चीजें तो कई तत्वों से मिलकर बनी हैं। बॉयल और डाल्टन के समय पानी को तत्व मानते थे, पर बाद को कैवेन्डिश ने प्रयोग द्वारा यह दिखा दिया कि जल हाइड्रोजन और आक्सीजन दो भिन्न गैसों से मिलकर बना. एक यौगिक (Compound) है।

डाल्टन ने बताया कि किसी तत्व को लेकर यदि हम उसके बहुत छोटे-छोटे टुकड़े करते जायँ, तो अन्त में एक ऐसा सूक्ष्म कण मिलेगा, जिसके हम फिर और टुकड़े न कर सकेंगे। तत्व के इस अन्तिम कण को डाल्टन ने परमाणु (atom) नाम दिया, जैसे मकान बनाने के लिये ईंटों की आवश्यकता हैं, और ईंटों को जोड़ कर तरह-तरह के भवन बनाये जा सकते हैं, उसी प्रकार प्रकृति ने अपनी समस्त चीजों को बनाने के लिये परमाणुओं से सहायता ली, परमाणु प्रकृति की ईंटें हैं।

डाल्टन ने यह बताया कि प्रत्येक तत्व के परमाणु आपस में एक से होते हैं, पर एक तत्व के परमाणु दूसरे तत्व के परमाणु से भिन्न होते हैं। इन परमाणुओं के भार को परमाणु भार (atomic weight) कहते हैं। गन्धक का परमाणु भार हाइड्रोजन के परमाणु भार से भिन्न है। हाइड्रोजन का परमाणु सबसे हलका होता है। इसके भार को अगर इकाई १) मानें, तो ऑक्सीजन का परमाणु भार १६ माना हो जायगा, कार्बन का परमाणु भार १२, चाँदी का १०८, गन्धक का ३२, लोहे का ५६,

ताँबे का ६४, पारे का २०१, सोने का १६७ होगा, यूरेनियम तत्व का परमाणु भार सबसे अधिक २३८ है।

सन् १९३४ तक केवल ९२ तत्व ज्ञात थे। हाइड्रोजन पहला और सबसे हलका तत्व है। यूरेनियम ९२ वाँ और सबसे भारी तत्व माना जाता था। १९३४ में इटली के वैज्ञानिक फर्मी (Fermi) ने ९३ वें तत्व की घोषणा की। तीन चार तत्व और भी बने। जब से परमाणु बम बना तब से प्लूटोनियम तत्व को भी ख्याति मिली।

परमाणु कितने छोटे हैं, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि एक इंच लम्बी जगह में पास-पास मिलकर इतने परमाणु रक्खे जा सकते हैं जितना कि १६०० मील में इंचें होती हैं। अर्थात् १६००× १७६०×३६ परमाणु अर्थात् १० करोड़ १३ लाख ७६ हजार परमाणु पास-पास रक्खें तो १ इंच लंबी पंक्ति बनेगी। एक घन इंच जगह में १०१३७६०००×१०-१३७६०००×१०१३७६००० हाइड्रोजन परमाणु ठसा-ठस भरे जा सकेंगे।

अणु (molicules)—तत्वों के कई परमाणुओं से मिल कर अणु बनते हैं। नमक का छोटे से छोटा कण जिसमें नमक के गुण हों, नमक का अणु कहलाता है। अगर इसे और विभक्त करें तो यह अणु सोडियम और क्लोरीन के परमाणुओं में अलग-अलग हो जाता है। पानी का छोटे से छोटा कण जिसमें पानी के गुण हों, पानी का अणु कहलाता है। यदि इसे और विभक्त करने का प्रयत्न करें, तो यह हाइड्रोजन और आक्सीजन के परमाणुओं में अलग-अलग हो जायगा। इसी प्रकार १६ परमाणु कार्बन के, २२ परमाणु हाइड्रोजन के और ११ परमाणु आक्सीजन के मिलकर गन्ने से निकली शक्कर का एक अणु बनता है। प्रकृति में कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन इन चार तत्वों से मिलकर हजारों यौगिकों के अणु बने हैं। समस्त वनस्पति और जान्तव पदार्थों के अणु बहुधा इन चार तत्वों के परमाणुओं से मिलकर बने हैं! इन यौगिकों को कार्बनिक यौगिक या (organic Compounds) कहते हैं। रसायनज्ञों ने प्राकृतिक पदार्थों में से सहस्रों यौगिकों को शुद्ध रूप में पृथक किया है और रासायनिक विधि से सहस्रों नवीन यौगिक भी बनाये हैं। प्रकृति अपनी प्रयोगशाला में नित्य नये यौगिकों के अणु बड़ी सरलता से बनाती रहती है।

परमाणुओं की अन्तःसृष्टि—एलेक्ट्रोन—हमने अभी कहा है कि बॉयल और डाल्टन के समान रसायनज्ञ यह मानते रहे कि परमाणुओं का और छोटा खंड करना असम्भव है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक लोगों की ऐसी ही धारणा रही। परमाणु या atom शब्द का अर्थ ही "अखण्डनीय" है क्लार्क मैक्सवेल (maxwell) (जीवन काल १८३१-७९) ने यह बताया कि ये परमाणु सृष्टि के आरम्भ से अब तक अखण्ड चले आ रहे हैं। पर यह बात सच न रही।

सर विलियम क्रूक्स (१८३२-१९१९) Sir William Crookes ने ऐसी नली में विद्युत्विसर्ग (electric discharge) प्रवाहित किया जिसके भीतर से पम्प द्वारा सब हवा निकाल दी गयी थी। इन प्रयोगों से ही बाद में एक्सकिरणों की खोज रौञ्जन (Rontgen) ने की थी। क्रूक्स के इन प्रयोगों ने वैज्ञानिक जगत् में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। क्रूक्स ने देखा कि शून्य नली में (जिसमें से हवा निकाल दी गयी थी) विद्युत्धारा प्रवाहित होने पर कुछ किरणें एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक चलने लगीं। ये किरणें वस्तुतः किरणें नहीं बल्कि अति सूक्ष्म विद्युत् कण की प्रवाह थीं। इन कणों पर ऋणात्मक (negative) विद्युत् थी, इसलिए इन्हें एलेक्ट्रोन (electron) या ऋणाणु कहा गया, सर जे, जे, थॉमसन (Thomson) ने यह बताया कि इन नये कणों का भार हाइड्रोजन परमाणु के भार का $\frac{1}{1836}$ वाँ भाग है। अर्थात् १८३६ एलेक्ट्रोनों की तौल उतनी है जितनी कि हाइड्रोजन के एक परमाणु की। क्रूक्स के पूर्व हाइड्रोजन के परमाणु को प्रकृति का सब में हलका कण माना जाता था, पर अब एक ऐसा नया कण मिला जो हाइड्रोजन से कहीं हलका निकला। अब वैज्ञानिक इस नये कण एलेक्ट्रोन को प्रकृति का सब से छोटा कण मानते हैं।

प्रोटोन (Proton)—सर विलियम क्रूक्स ने जब एलेक्ट्रोन का आविष्कार किया, तो प्रश्न यह उठा कि ये एलेक्ट्रोन कहाँ से आये। शीघ्र इस प्रश्न का उत्तर मिल

मानव-कीट संघर्ष

(हरिमोहन कृष्ण सक्सेना एम० एस-सी०)

जब से पृथ्वी की सृष्टि हुई, प्राणी अपने जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आपस में संघर्ष करते आये हैं। इस संघर्ष में बहुत से प्राणी समाप्त हो जाते हैं और वही थोड़े से प्राणी जो युद्ध के लिए भली प्रकार से सुसज्जित होते हैं विजय प्राप्त कर पाते हैं और जीवित रहते हैं। यह सिद्धान्त जो कि "जीवन संघर्ष (Struggle for Existence) और योग्यतम की चिरजीविम (Survival of the Fittest) के नाम से प्रसिद्ध हैं सभी प्राणियों पर लागू है और हर समय चलते रहते हैं! भिन्न भिन्न वर्ग से प्राणियों (animals) में भी यह युद्ध चलता रहता है क्योंकि एक वर्ग के कारण दूसरे वर्ग को स्पष्ट या अस्पष्ट हानि पहुँचती है। कुछ वर्ग के प्राणी अपने भोजन के लिए दूसरे वर्ग के प्राणियों पर आश्रित रहते हैं। ऐसे वर्गों के प्राणियों में भयानक शत्रुता रहती है।

प्राणियों का कीट वर्ग मनुष्य का सबसे भयानक शत्रु है। बराबर तथा एक सी आवश्यकताएँ होने के कारण तथा दोनो पक्षों की बराबर शक्ति होने के कारण इनमें सदा से युद्ध होता आया है। यद्यपि मनुष्य वर्तमान युग के अनेकों वैज्ञानिक आविष्कारों से सुसज्जित है परन्तु कीट की अधिक जन-संख्या, तीव्र प्रजनन शक्ति तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में कठोर अवरोध शक्ति होने के कारण बहुत से शस्त्र निरर्थक हो जाते है।

कीट के द्वारा मनुष्य को कितनी हानि पहुँची है इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि केवल कीट के ही कारण मनुष्य को बहुत से साहसिक कार्यों को छोड़ना पड़ा है। कीट प्रतवर्ष फसल तथा बगीचों को नष्ट कर के मनुष्य को अत्यधिक हानि पहुँचाते हैं। परन्तु मनुष्य को सबसे अधिक दुख उनके द्वारा फैलने वाली मलेरिया आदि बीमारियों से होता है।

कीट से युद्ध करने में प्रकृति को भी मनुष्य की सहायता करनी पड़ी है। प्रकृति ने कीट के तीव्र प्रजनन पर नियंत्रण लगा रक्खा है तथा ऐसे उपायों को निकाला है जिनके कारण कीट नियत संख्या से अधिक नहीं बढ़ने पाते हैं। इस प्रकार 'जीव का सन्तुलन' (Balance of Nature) बना रहता है। वह उपाय जिनके कारण यह सन्तुलन बना रहता है भोजन की आवश्यकता, जलवायु तथा परिस्थिति और शत्रुओं की शक्ति से सम्बन्धित है। बहुत से कीट उपयुक्त भोजन के अभाव के कारण तथा अनुकूल परिस्थिति न मिलने के कारण लुप्त हो जाते हैं। कुछ मांसाहारी प्राणी जैसे छिपकली, मेढक इत्यादि कीटों को ही खाते हैं और उनकी असाधारण वृद्धि के नियंत्रण में सहायता करते हैं।

कीट द्वारा पौधों को हानि

अनुमान किया जाता है प्रतिवर्ष लगभग दस प्रतिशत फसल कीटों के द्वारा नष्ट हो जाती है। जड़ से लेकर तने व फल तक पौधों का कोई भी भाग कीट के आक्रमण से सुरक्षित नहीं है। वयस्क कीट के अतिरिक्त उनकी डिम्ब (Larval) अवस्थायें भी पौधों को हानि पहुचाने से नहीं हिचकती हैं। निम्नलिखित कुछ उदाहरणों से कीटों की अति हानिकारक क्रियाओं पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

वयस्क पौधों की जड़ें तथा नवोद्भिज (seedlings) को ग्रब (grub), दीमक (termites), बग (bug) भुनगे (Beetle), झींगुर तथा चीटियाँ हानि पहुँचाती हैं। विशेष फसलों को विशेष कीटों के द्वारा भी हानि पहुँचती है। अंगूर तथा गन्ने की दीमक और आलू तथा तम्बाकू के भुनगे के घोर आक्रमण से तो सारी फसल ही नष्ट हो जाती है। टिड्डियों (Locust) के आक्रमण से तो सारी फसल कुछ मिनटों में ही साफ हो जाती है और बहादुर से बहादुर किसान भी इनसे टक्कर लेने में अपने

को असमर्थ पाते हैं। मोटे तने वाले पेड़ भी इनके आक्रमण से नहीं बचने पाते। आम के पेड़ में तना-छेदी कीट (Stemborer) के द्वारा बनाई गई सुरंगें इसका स्पष्ट उदाहरण हैं।

मनुष्य को सबसे अधिक क्षति, प्ररोह (shoot) पत्तियों तथा फूलों पर आक्रमण करने वाले कीटों से होती है। धान की टिड्डियाँ, भुनगे, इल्लियाँ (Caterpillars) आदि इसके मुख्य उदाहरण हैं। यहाँ तक कि फल तथा बीज भी इसके आक्रमण से सुरक्षित नही हैं। आम, कद्दू फलों की मक्खियाँ (Fruit flies) नींबू का पतंगा Citrus moth), इत्यादि इसके मुख्य उदाहरण हैं।

मनुष्य के भण्डार तथा संचित अन्न भी कीट की पहुँच के बाहर नहीं हैं और यह मनुष्य की बहुत बड़ी पराजय है कि कीटों की रोकथाम के अनेक साधनों के बावजूद भी संचित अन्न सुरक्षित नहीं रह पाते। चावल का घुन (साइटोफाइल्स ओराइजा), अन्नछेदक (राइजोपर्था डामिनिका), खपरा भृंग (ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरिया), आटे की गेरुई भृग (ट्राइबोलियन केस्टेनियम), मटर का घुन (कैलोसोब्रूकस काइनेनसिस) तथा अन्ननाशक पलंग (साइटोट्रोगा सिरिगलेला) संचित अन्न के भीषण शत्रु हैं।

स्पष्ट हानि के अतिरिक्त कीट बहुत सी गुप्त हानि पहुँचाते हैं। क्योंकि ऐसे कीटों को ढूढ़ना कठिन है इस कारण उनकी रोकथाम के उपाय करने से पहिले ही वे पेड़ पौधों को नष्ट कर देते हैं। इनके द्वारा पहुँचाई गई हानि का पता तुरन्त नहीं लग पाता और इस कारण उनकी रोकथाम के उपायों का भी प्रयोग नहीं हो सकता। ऐसे गुप्त हानि पहुचाने वाले कीट की क्रियाओं में कोशिकारस का चूषण, जड़ तथा भूमिगत भागों पर आक्रमण ऊतक में अण्डजनन (egg laying), मुख्य हैं।

रोगों के वाहक कीट

कुछ कीट दूसरे हानिकारक कीट (Pest) तथा कीटाणुओं कों एक स्थान से दूसरे स्थानों पर ले जाते हैं जहाँ पर वे अपनी हानिकारक क्रियाओं को आरम्भ कर देते हैं जिससे कि पौधों को बहुत हानि पहुंचती है। रोग के कीटाणु ले जाने के अतिरिक्त उनके प्रवेश के लिये मार्ग बनाने की जिम्मेदारी भी कीटों पर ही है। बहुत से जीवाणु (bacteria) तथा फफूंद (Fungi) के बीजाणु spore) कीटों के मुख, लार ग्रंथि (salivary gland) और अन्न नाल (digestive tract) में रहते हैं जब कीट कोष रस को चूसने के लिये पत्तियों में छेद करते हैं तो यह उनमें पहुँच जाते हैं। इस प्रकार पौधे की कोढ़ (mosaic) और कुछ अन्य वाइरस (Virus) बीमारियाँ भी कीटों के ही द्वारा फैलती है।

अपनी घातक क्रियाओं को पेड़ पौधों तक सीमित रखने में सन्तुष्ट न होकर कीट मनुष्य तथा उसके पशुधल (livestock) पर भी आक्रमण करते हैं। कीटों के द्वारा ही एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य तक मलेरिया, पीतज्वर (yellow fever) प्लेग (plague), एलीफैनटाईसिस (elephantiasis), आंत्र ज्वर (typhoid), काला आजार (Kalaazar) तथा निद्रालु रोग (sleeping sickness) आदि रोग फैलते हैं! मनुष्य के पशु भी कीटों की तीव्र दृष्टि से नहीं बचे हैं। घोड़े, गाय, बैल, बकरी, भेड़, कुत्ता और चिड़ियाँ, खेती या भारवहन में सहायक होने के अतिरिक्त भोजन व कपड़े की वस्तुएं उत्पन्न करते हैं। कीट या तो इन पर सीधे आक्रमण करते हैं या इनके शरीर में घातक रोगों के कीटाणु पहुँचा कर बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं। किलनी (Tick) के कारण पशुओं को टेक्सास ज्वर (Texas Fever) होता है वरुथी (mite) कुत्ते तथा भेड़ों में खज उत्पन्न करती है। जूँ (Louse), पिस्सू (Fleas), किलनी (Tick और वरुथी (mite, पशुओं की खाल में रहने वाले कीट हैं। इन बाह्य पराश्रयी कीटों (Ectoparasites) से पशुओं को बहुत शारीरिक कष्ट होते हैं।

कीटों से लाभ

पूर्व वृतान्त से हमें कीटों की लाभकारी क्रियाओं को नहीं भूलना चाहिए। फूलों का परागण (Pollination) करके कीट मनुष्य जाति की सबसे बड़ी सेवा करते हैं। कीटों के फूलों पर पहुँचे बिना फल तथा बीज का बनना कठिन है। कीट मनुष्यों के उपयोग मे आने वाले बहुत से पदार्थों

का निर्माण करते हैं रेशम के कीटों की लार से उत्पन्न रेशम, मधुमक्खी द्वारा उत्पन्न मोम, लाख के कीटों (lac insect) के द्वारा उत्पन्न लाख कीट के द्वारा उत्पादित लाभकारी पदार्थों के कुछ उदाहरण हैं। मधुमक्खियाँ फूलों के मकरन्द कोष (Nectary) से शहद ईकट्ठा करती हैं। कीट बहुत से प्रणियों का आहार हैं। मछली, मुर्गियाँ तथा शिकार की चिड़ियाँ और कई उपयोगी जन्तु कीटों को खाते हैं कीट चुपके चुपके सड़े गले कार्बनिक पदार्थों को खा डालते हैं और मल तथा निरर्थक पदार्थों को हटा कर मनुष्य के रहने के स्थान को स्वच्छ रखने में सहायता देते हैं।

मनुष्य ने हानिकारक कीटों को नष्ट करके और लाभदायक कीटों की सँख्या बढ़ाकर कीट समस्या को हल करने का प्रयत्न किया है। कीटों की वृद्धि को रोकने के लिये तथा उसको नष्ट करने के लिये बहुत से साधनों की खोज की जा चुकी है परन्तु फिर भी कीट समस्या पूर्ण रूप से हल नहीं हो सकी है क्योंकि कीट का अद्भुत संघटन, विकसित शरीर क्रिया, तीव्र प्रजनन तथा अधिक जनसंख्या, प्रतिकूल परिस्थिति में कठोर अवरोध शक्ति तथा मूल आवश्यकताओं की पूर्ति ही जीवन का सरल उद्देश्य ऐसे कारण हैं जो कि कीटों की भयानक से भयानक युद्ध में सहायता करते हैं।

द्रव्य, अणु और परमाणु—[पृष्ठ ११ का शेषांश]

गया। जिन परमाणुओं को अब तक अटूट और अखण्ड नीच समझा जाता था, उनके ही खंड खंड होने पर ये एलेक्ट्रोन मिले। बाद को वैज्ञानिकों को यह पता चला कि परमाणु दो प्रकार के विद्युत् कणों से मिलकर बने हैं। एक प्रकार के सूक्ष्म कणों पर ऋण (negative) विद्युत् है और इन्हें एलेक्ट्रोन (electron कहते है। और दूसरे कणों पर धन विद्युद् है प्रोटोन (Proton) कहते हैं। प्रोटोनों का भार हाइड्रोजन परमाणु के भार के लगभग बराबर ही हैं। किस तत्व के परमाणु में कितने प्रोटोन हैं, इस बात पर परमाणुओं का भार निर्भर है।

परमाणुओं का सौर चक्र हम अपने सौर परिवार (Solar System) से परिचित हैं। इस परिवार में सूर्य केन्द्र पर है और मंगल, बुध, शुक्र, पृथ्वी, आदि ग्रह (Planets) इस सूर्य्य की परिक्रमा करते हैं। लगभग इस प्रकार की सृष्टि हमारे परमाणुओं के भीतर भी है। प्रत्येक परमाणु के भीतर एक धन केन्द्र (Positive-nucleus) है जो प्रोटोनों से मिलकर बना है। इस धन केन्द्र के चारो ओर कई ऋणाणु या एलेक्ट्रोन भिन्न-भिन्न परिधियों पर परिक्रमा कर रहे हैं। हाइड्रोजन के परमाणु में धन केन्द्र १ प्रोटोन से मिलकर बना है, और इसके चारों ओर केवल १ एलेक्ट्रोन चक्कर लगाता है, हीलियम के धन केन्द्र पर २ इकाई धन विद्युत् है, और २ एलेक्ट्रोन इस केन्द्र की परिक्रमा कर रहे हैं! सबसे भारी यूरेनियम तत्व के परमाणु में केन्द्र पर ९२ इकाई धन विद्युत है, और इसके चारों ओर भिन्न-भिन्न परिधियों पर ९२ एलेक्ट्रोन चक्कर लगा रहे हैं।

परमाणुओं के अन्य खंड—गत २० वर्ष से वैज्ञानिक जगत में परमाणुओं को खंडित करने के अनेक प्रयत्न हुए हैं। इन प्रयोगों से पता चला है कि परमाणुओं से कई प्रकार के सूक्ष्म कण प्राप्त हो सकते हैं। चैडविक (Chadwick) ने १९३२ में इन परमाणुओं के विच्छेद से न्यूट्रोन neutron) नामक कण प्राप्त किया, और कुछ समय बाद ही प्रो० एण्डरसन (Anderson) ने पोज़ीट्रोन (positron) या धनाणु कणों का अविष्कार किया।

संसार के आगामी ग्रहण

बीस वर्षों के पूर्ण सूर्यग्रहण

समय **दिखाई पड़ने के स्थान**

८ जून सन् १९५६ ई०—दक्षिणी प्रशान्त (पैसिफिक) महासागर

१२ अक्टूबर १९५८—दक्षिणी प्रशान्त महासागर से प्रारम्भ होकर दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी भाग तक।

२ अक्टूबर १९५९—अमेरिका के न्यू इंगलैंड से प्रारम्भ होकर उत्तरी अटलांटिक और उत्तरी अफ्रिका होकर उत्तरी भारत महासागर तक।

१५ फरवरी १९६१—अटलांटिक महासागर की बिस्के की खाड़ी से लेकर फ्रांस, उत्तरी इटली, दक्षिणी पश्चिमी योरप, उत्तरी पश्चिमी और उत्तरी एशिया होकर उत्तरी ध्रुव प्रदेश तक।

५ फरवरी १९६२—बोर्नियो, न्यू गिनी, मध्य और उत्तरी प्रशान्त महासागर

२० जुलाई १९६३—जापान, बेरिंग सागर, अलास्का, कनाडा और अटलांटिक महासागर के उत्तर का मध्य भाग।

३० मई १९६५—दक्षिणी प्रशान्त महासागर, न्यूज़ीलैंड मार्क्विसस द्वीप और पेरू।

२० मई १९६६—अटलांटिक महासागर, उत्तरी पूर्वी अफ्रिका, भूमध्य सागर और मध्य एशिया तक।

१२ नवम्बर १९६६—प्रशान्त महासागर, गालापागो द्वीप के पश्चिम, दक्षिणी-अमेरिका के दक्षिणी भाग, दक्षिणी अटलांटिक और भारत महासागर तक।

२ नवम्बर १९६७—दक्षिणी ध्रुवीय महासागर और महाद्वीप (अंटारकटिका)

२२ सितम्बर १९६८—उत्तरी ध्रुव सागर, उत्तरी रूस और मध्य एशिया तक।

७ मार्च १९७०—मध्य प्रशान्त महासागर, मेक्सिको, फ्लोरिडा, और अटलांटिक महासागर के उत्तर के मध्य भाग तक।

१० जुलाई १९७२—उत्तरी पूर्वी एशिया, अलास्का, उत्तरी कनाडा, और मध्य अटलांटिक महासागर तक।

३० जून १९७३—दक्षिणी अमेरिका का उत्तरी भाग, अटलांटिक महासागर, उत्तरी अफ्रीका और मध्य भारत महासाग तक।

२० जून १९७४—दक्षिणी भारत महासागर, दक्षिण ध्रुवीय महासागर और आस्ट्रेलिया के दक्षिण तक।

२३ अक्टूबर १९७६—पूर्वी अफ्रीका, भारत महासागर, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड के पास तक।

दस वर्षों के पूर्ण चन्द्रग्रहण

समय	प्रारम्भ होने का समय	ग्रहण रहने का समय	स्थान
	घं०—मि०		
१८ नवम्बर १९५६	१—४७ रात को	१ घंटा १८ मिनट तक	उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका
१३ मई १९५७	५—३२ शाम को	१ घं० २० मिनट तक	अफ्रीका, योरप और उत्तरी, दक्षिणी अमेरिका तथा पश्चिमी एशिया के कुछ भाग
७ नवम्बर १९५७	६—२८ सबेरे	३२ मिनट तक	एशिया, आस्ट्रेलिया, पश्चिमी और मध्य प्रशान्त महासागर
१३ मार्च १९६०	३—३० रात को	१ घंटा ३६ मि० तक	उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका तक
५ सितम्बर १९६०	६—२३ सबेरे	१ घंटा ३० मि०	मध्य प्रशान्त महासागर तक और उत्तरी अमेरिका के कुछ भाग
२५ अगस्त १९६१	१०—८ रात को	१४ मि० तक	उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका, पश्चिमी अफ्रीका और योरप।
३० दिसम्बर १९६३	६—७ सबेरे	१ घंटा २४ मि० तक	मध्य प्रशान्त महासागर और उत्तरी अमेरिका के कुछ भाग
२४ जून १९६४	८—७ रात को	१ घंटा ३८ मि० तक	अफ्रीका, योरप, दक्षिणी अमेरिका और पूर्वी उत्तरी अमेरिका।
१८ दिसम्बर १९६४	६—३५ रात को	१ घंटा ४ मि० तक	दक्षिणी अमेरिका, उत्तरी अमेरिका का अधिकांश भाग, उत्तरी अफ्रीका और योरप।
१९६५ ई०—	—	[इस साल पूर्ण चन्द्रग्रहण कहीं नहीं लगेगा।]	

जगपति चतुर्वेदी

भारत सरकार की वैज्ञानिक शब्दावली

[ओंकारनाथ शर्मा]

भारत की केन्द्रीय सरकार ने सन् १९५० में जो पारिभाषिक शब्दावली मंडल स्थापित किया था, उसकी विशेषज्ञ समितियों द्वारा व्यवहारिक विज्ञानों की जो प्रस्तावित शब्दावलियाँ पिछले वर्ष प्रकाशित हुई थीं उनमें से यातायात (मार्ग इंजीनियरिंग), इंजीनियरिंग (भवन निर्माण कला), अर्थशास्त्र और रेलवे (भाग १ देखने का अवसर हमें प्राप्त हुआ । मेरी सम्मति में शब्दावली समिति ने अथक परिश्रम कर अनेक समीचीन सिद्धान्तों और दृष्टि कोणों का समन्वय करते हुए कोरे आदर्शवाद की परवाह न कर यथार्थवादिता का काफी ध्यान रखा है। प्रत्येक शब्दावली की प्रस्तावना में समिति के संयोजकों ने शब्द निर्माण सम्बन्धी जिन-जिन सिद्धान्तों का प्रसंगवश उल्लेख किया है, वे सब समीचीन हैं और कोई भी वैज्ञानिक साहित्यकार उनसे असहमत नहीं हो सकता और इन सिद्धान्तों के आगे कुछ और कहने को शेष भी नहीं रहा है।

अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि उक्त सब सिद्धान्तों को मानते हुए, और प्रयोगकर्त्ताओं के दृष्टि कोण से उक्त शब्दावलियों का आलोचनात्मक निरीक्षण करते हुए हमें यह देखना है कि शब्द रचना, तथा उपयुक्त शब्दों के चयन में उक्त सिद्धान्तों का कहाँ तक पालन किया गया है और करना चाहिये था और साथ ही यह भी देखना है कि इन शब्दों की सहायता से व्यवहारिक विज्ञानों को साधारण कार्यकर्त्ताओं के लिये कहाँ तक बोधगम्य बनाया जा सकता है।

हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण तथा शब्दों के गढ़ने का काम नया नहीं है। भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत में ज्योतिष, गणित, अर्थशास्त्र, और आयुर्वेद पर बहुत प्राचीन काल से ही वैज्ञानिक साहित्य बनता चला आ रहा है, उसका अपना शब्द भंडार भी है। इधर पाश्चात्य विज्ञानों पर साहित्य-सृजन को प्रोत्साहन देने के लिये नागरी प्रचारिणी काशी ने सर्वप्रथम एक वैज्ञानिक कोष सन् १९०६ में कई वर्षों के अथक परिश्रम से तैयार किया, जिसका जनता में सर्वत्र ही बड़ा स्वागत हुआ और जिसकी सहायता से अनेकों विद्वानों ने विभिन्न विषयों पर हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य लिखने की चेष्टा की। इसके अतिरिक्त १९१४ से प्रयाग की विज्ञान परिषद् ने विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर "विज्ञान" मासिक पत्र के माध्यम से वैज्ञानिक साहित्य तैयार किया और उसका प्रचार भी हुआ, जिसके कारण हजारों ही वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द बने, भाषा के मुहाविरों में मँजे और जनता ने उन्हें ग्रहण कर लिया। इस परिस्थिति में केन्द्रीय सरकार ने जो शब्दावली समितियाँ बनाई हैं उन्हें अब इस कार्य को आगे बढ़ाते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिये :—

१—जिन विषयों का सम्बन्ध स्कूली पढ़ाई से अधिक है, उनके शब्दों का चयन तथा निर्माण करते समय, शब्दों की वैज्ञानिक संकल्पना को सही-सही व्यक्त करने के लिये चाहे कैसे भी क्लिष्ट शब्द बन जावें, ऐसा सदैव होना तो नहीं चाहिये, वह सब सहनीय होगा, क्योंकि उनका सही उपयोग अध्यापक गण समझावेंगे ही और नई पीढ़ी के विद्यार्थी लोग उन्हें सहर्ष सीखकर आजन्म व्यवहार करेंगे। लेकिन जिन शब्दों का सम्बन्ध व्यवहारिक क्षेत्र से है जहाँ आवश्यक हो वहाँ सही अभिव्यक्ति के सिद्धान्त को कुछ ढीला कर, ऐसे सरल पर्याय बनाने चाहिये जिन्हें मौजूदा कार्यकर्त्ता भी थोड़ा ध्यान देने पर समझ सकें और याद रख सकें। ऐसे शब्द अनावश्यक रूप से लम्बे

और जबडातोड भी न हों। उदाहरण के लिये जब :—

crystallisatiou के लिये "मणिभीकरण" शब्द से काम चल सकता है।

तो उसके लिये "स्फटिकी करण" शब्द का क्यों उपयोग किया जाय ? इसी प्रकार Vertical के लिये जब "उर्ध" शब्द प्रयुक्त हो सकता है तब "उर्ध्वाधर" जैसा कठिन और लम्बा शब्द क्यों प्रयोग किया जाय। इसी प्रकार जब Friction और Fusion के लिये क्रमशः "घर्षण" और "गलन" शब्द इस समय भी प्रयुक्त हो रहे है तब उनमें "सं" प्रत्यय जोड़कर व्यर्थ ही उन्हें क्यों क्लिष्ट बनाया जाय।

इस सम्बन्ध में श्री बृजमोहनलाल जी ने "इंजीनियरिंग शब्दावली के प्राक्कथन में, पृष्ठ ५ पर एक बड़ा अच्छा सिद्धान्त बताया है, उसके अनुसार जहां पारिभाषिक शब्द की इंजीनियरिंग संकल्पना क्लिष्ट हो और उसे ठीक-ठीक व्यक्त करने की आवश्यकता हो वहाँ प्रौढ़ शिक्षितों के लिये तो संस्कृत भाषा की सहायता से सही-सही नये शब्द बना लिये जावें, और साधारण कार्यकर्त्ताओं के प्रयोग में उन शब्दों के आने की सम्भावना हो, वहाँ उन सही शब्दों के साथ-साथ ही सरल पर्याय भी बना दिये जावें, चाहे उनका अर्थ अपेक्षाकृत उतना ठीक न हो, जैसे

Ores अयस्क, कच्ची धातु

Smelting प्रद्रावण, गलाना

इस सिद्धान्त का हम स्वागत करते हैं, और इसे ही ध्यान में रखते हुए, इस लेख से संलग्न शब्द सूचियों में ऐसे शब्दों के लिये भी अपने सुझाव दिये हैं। इनमें से अधिक शब्द अपेक्षाकृत सरल है, बहुत से तो कार्यकर्त्ताओं में प्रचलित भी हो गये हैं, कई वैज्ञानिक पुस्तकों में प्रयुक्त हो रहे हैं, तथा मुहाविरों में मँज भी चुके हैं।

२—वर्त्तमान समय में जितने भी औद्योगिक कार्यालय, कारखाने और संस्थायें हैं, उनके कार्यकर्त्ता अबतक विदेशी निरीक्षकों और व्यवस्थापकों के आधीन रहकर ही काम करते रहे हैं, अतः उनके संसर्ग से भारतीय कार्यकर्त्ताओं की व्यवहारिक भाषा में बहुत से विदेशी भाषाओं के शब्द इतने घुल-मिल गये हैं कि यदि उन शब्दों को एकदम निकाल दिया जाय तो कार्य व्यवहार चलाना कठिन हो जायगा, इसलिये उन शब्दों को जहाँ तक हो कुछ समय के लिये अछूता ही छोड़ दिया जाय। जैसे कि—

मिलिंग मशीन, पुली, स्लॉटिंग मशीन, पम्प, प्रेस, वैक्युम, लुबरीकेटर, ब्रेक, सिगनल, पाइंट, डायमंडकासिंग, सिलिंडर और हेन्डिल आदि। वैसे तो इनमें से अधिकांश शब्दों के पर्याय हैं भी और बनाये भी जा सकते हैं।

३—प्रयोग में आने वाले बहुत से ऐसे भी विदेशी शब्द हैं जिनको भारतीय कार्यकर्त्ताओं ने अपनी उच्चरण क्षमता के अनुसार, तत्सम ध्वनि में सरल बनाकर व्यवहार में लाना आरम्भ कर दिया है, अतः उनको फिर दुबारा से शुद्ध विदेशी उच्चारण देने के फेर में न पड़ा जाय तो अच्छा है यथा : - Boiler = बैलर, Box = बकस, Line = लैन, Tap = टप, Spanner = पाना, Die = डई, Bar = बाडी, Angle ron = हिंगलेन आदि।

४—यह तो सब मानते हैं कि हिन्दी का वर्ण विन्यास और वर्त्तनी के नियम संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार ही होने चाहिये लेकिन कुछ समय के लिये इन्हें थोड़ा ढीला कर देना होगा जिससे साधारण शिक्षित लोगों को हिन्दी कठिन न लगे। उदाहरण के लिये झंकार या झङ्कार, मंच या मञ्च, मंडल या मण्डल, पंप या पम्प, तन्तु या तंतु. किसी भी प्रकार से लिखें सही समझा जाय। साधारण लोगों को सानुनासिक ध्वनि व्यक्त करने के लिये ङ, ञ, और ण का प्रयोग करने के बजाय अनुस्वार अथवा नकार का प्रयोग करना सरल जान पड़ता है।

५—अंग्रेजी भाषा की वैज्ञानिक शब्दावली में कुछ ऐसे भी शब्द-समूह आते हैं जिनके अर्थों में थोड़े थोड़े तथा सूक्ष्म अन्तर हैं अतः किसी भी विषय की शब्दावली बनाने के पहिले उन शब्द-समूहों को छाँटकर, उन प्रत्येक शब्दों के समानार्थी शब्द खूब सोच विचार कर निश्चय कर लेने चाहिये, फिर बाद में अन्य शब्दों पर विचार किया जाय। उक्त शब्दावलियों में इस प्रकार की विषमता कई स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी एक बेर एक किसी विशेष अर्थ में प्रयुक्त हो चुके, तो वे सदैव उसी अर्थ में प्रयुक्त होते रहने चाहिये।

हां, अंग्रेजी भाषा में भी ऐसे कई शब्द मिलते हैं जो कई अर्थों में प्रयुक्त होते हैं जैसे कि Lead और Leader। देखिये चेम्बर्स टेक्नीकल डिक्शनरी। लेकिन ऐसा एक ही विषय में नहीं होता बल्कि भिन्न-भिन्न शास्त्रों में यह अर्थ-भिन्नता हो जाती है।

कुछ विचारणीय शब्द

शब्दावली और शब्द-समूह		अंग्रेजी शब्द	समिति के पर्याय	हमारा सुझाव
इंजीनियरिंग	(क)	Auger	बरमा	शूलिका, शूलबरमा औधड़
		Drill	बरमा	बरमा
	(ख)	Block	पिंडक	गुटका
		Block	खंड	रोक (रेलवे में)
		Section	खंड	खंड (रेलवे में)
		Lump	पिंड, पिंडक	ढेला
		Body	पिंड, वस्तु	वस्तु, पिंड भौ० विज्ञान)
	(ग)	Revolving	परिभ्रमण	परिक्रमण, चक्कर
		Rotating	परिक्रमण, परिभ्रमण	भ्रमण, परिभ्रमण
		Turning		घूर्णन, घेरा
		Rolling		लुंठन, लुढ़कना
परिवाहन	(घ)	Bypass *Road*	सड़क	सड़क
		Bridle *Path*	पथ	पथ
		Carriage *Way*	पथ	मार्ग
		Cart track	पथ	लोक
		Avenue	तरुवीथि	रास्ता
रेल्वे और अर्थशास्त्र	(ङ)	Suprintendent	अधीक्षक	अधीक्षक
		Controller	नियंत्रक	नियंत्रक
		Inspector	नियंत्रक	निरीक्षक
		Director	संचालक	निर्देशक
		Operator	संचालक	संचालक
		Foreman	फोरमैन	व्यवस्थापक
		Manager	व्यवस्थापक, मैनेजर	प्रबंधक
अर्थशास्त्र	(च)	Trade	व्यापार	व्यवसाय
		Industry	उद्योग	उद्योग, उद्यम
		Commerce	व्यापार	व्यापार, वाणिज्य
		Business	व्यवसाय	व्यवहार, कारबार
		Transaction.	सौदा, व्यवहार	सौदा, लेनदेन
		Vocation	व्यवसाय, वृत्ति	वृत्ति

६—सन् १९३५ में का० हि० वि० वि० के रामनाथ सिंह जी ने विद्युत शास्त्र की एक छोटी सी पारिभाषिक शब्दावली बनाई थी जिसे नागरी प्रचारणी सभा ने प्रकाशित किया था। उसमें उन्हों ने कई अंग्रेजी शब्दों के तत्सम उच्चारण वाले ऐसे पर्याय भी बनाये जिनका सही अर्थ भी संस्कृत की धातुओं से सिद्ध होता था, उन शब्दों को औद्योगिकक्षेत्र में लगे हुए कार्यकर्त्ताओं ने भी बहुत पसंद किया। मेरा सुझाव है कि जहाँ सम्भव हो, पारिभाषिक समिति इस विधि का भी प्रयोग करे तो बड़ा अच्छा हो। उदाहरण के लिये उनकी शब्दावली में से कुछ शब्द नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

Armature	उरमेंचर
Astatic	आसक्त
Battery	बलकरी
Booster	बहुकर
Cable	कईबल
Circuit	सरकित
Coil	कुण्डली
Core	क्रोड
Rheostat	रयस्थाप
Shunt	शान्त
Solinoid	सोर्मिलायत
Dynamo	द्युम्नाम
Engine	इंजन, अञ्जन
Energy	ऊर्ज
Generater	जनक
Graph	ग्राह
Harmonic	हारमणिक
Hunting	हिण्डन
Hysteresis	ह्रतशेष
Spiral	सर्पिल
Socket	सकोटर
Torque	तारक

७—यह हम मानते हैं कि वैज्ञानिक शब्द प्रयोगों में आजकल कुछ अराजकता सी दिखाई देती है क्योंकि भारत के औद्योगिक उत्थान का यह आरम्भ काल ही है। जैसाकि पातञ्जली ने महाभाष्य में एक जगह कहा है कि किसी वैयाकरण के घर पर लोग जा कर नहीं कहते कि तुम व्याकरण के नियम और शब्द बनाओ, और हम उनका उपयोग करेंगे। वास्तव में शब्द और भाषा पहिले बनती है और वैयाकरण लोग उसका सूक्ष्म अध्ययन कर उसी से नियम आदि निकाल और बना लेते हैं। लेकिन हमारे देश के अंग्रेजी अन्य पाश्चात्य भाषाओं के विद्वानों ने अपनी राष्ट्र भाषा के प्रति अपना कर्तव्य नहीं निवाहा और सरकारी उच्चपदों पर आसीन होने में ही अपना गौरव समझा। अतः स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने पर भी हमें यह दिन देखना पड़ा, अतः हमारी शब्दावली समितियों का अब दोहरा कर्त्तव्य हो जाता है; पहिला तो यह कि वे हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं के वर्त्तमान वैज्ञानिक साहित्य का अध्ययन कर उसकी शब्दावली का सही मूल्यांकन करें और इस क्षेत्र में आने वाले नये साहित्यकारों का, शब्दावली बनाकर मार्ग प्रदर्शन करें। यह भी असम्भव है कि किसी एक ही लेखक या समिति के गढ़े हुए अथवा प्रयुक्त शब्द ज्यों के त्यों सब लोग स्वीकार कर लें। कुछ ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये कि इन बातों में दिलचस्पी रखने वाले सब प्रान्तों के लोगों की एक वृहत संस्था हो, जिसकी ओर से वैज्ञानिक शब्दावली और प्रयोगों पर एक छोटा सा मासिक पत्र निकले, जिनमें सब लोग अपने-अपने प्रयोग किए हुए वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द प्रकाशनार्थ भेजें और समिति इस प्रकार से आये हुए अच्छे-अच्छे शब्दों का चयन कर उस पत्रिका में प्रकाशित करे जो सब के पास विचारार्थ पहुँचे। इस प्रकार से लेखकों का एक संघ बन जायगा, विचारों का आदान-प्रदान चालू होगा और हमें अधिक सुन्दर शब्द प्राप्त हो सकेंगे। उपयुक्त और सुन्दर शब्दों में एक स्वाभाविक आकर्षण होता है और क्षेत्रीय जनता के सामने आते ही, वह सब आकृष्ट होकर उनका एक दम प्रयोग करने

लगती है। किसी भी शब्दावली के शब्दों की यथार्थ उपकता तो इस बात में है कि वे साहित्य की मुहाविरेदार सरल भाषा में मँजकर बैठ जावें। विशेष कर वैज्ञानिक और औद्योगिक साहित्य की सार्थकता तो इस बात में है कि उस क्षेत्र में काम करने वाले, साधारण शिक्षित लोग भी थोड़े ही प्रयास से सरलता पूर्वक समझ कर उसका प्रयोग कर सकें। शब्दावली निर्माण करने वालों को शब्द गढ़कर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं मान लेनी चाहिये, लेकिन साथ ही प्रयत्न भी करना चाहिये कि वे स्वयं अपने कार्यक्षेत्र में जाकर उनका प्रयोग दैनिक व्यवहार में करें, उक्त विषय का साहित्य सृजन करें और करवावें और फिर जन साधारण को उसे देकर उसकी सुबोधता और भावगम्यता की अग्नि परीक्षा करें। यह शब्दावलियाँ वे बीज हैं जिनसे हमारे औद्योगिक साहित्योद्यान की फुलवारियाँ लगेंगी। जहाँ पर हमारी साधारण जनता में से ही तितली और भ्रमर रूपी ऐडिसन, जेम्सवाट और न्यूटन जैसे आविष्कारक पैदा होकर वैज्ञानिक मधु का आदान-प्रदान करते दिखाई देंगे।

ENGINEERING—इंजीनियरिंग (इमारती)

अंग्रेजी शब्द	समिति का पर्याय +	हमारा सुझाव +	संक्षिप्त कारण आदि
Auger	बरमा +	शूल बरमा, शूलिका	+ Drill के अर्थ में प्रयुक्त
Abrasion	घर्षण +	छिलन	+ friction के अर्थ में प्रयुक्त
Block	पिंडक	गुटका ÷	÷ प्रचलित
Case hardening	पृष्ठ कठोरता, बाहरी कड़ापन	{ खोल आबदारी ÷ पृष्ठ कठोरण	÷ प्रचलित
Concrete	कंक्रीट	कंक्रीट, कंकर	
Casein	केसीन	— छेना (दूध का) ÷	”
Cast iron	ढल लोहा, कान्तिलोह	देगसार, बीड ÷	÷ प्रचलित
Cast moulding	सांचा ढलाई	सांचे की ढलाई, संचकारिता	÷ प्रचलित
Cast stone	सांचे ढला पत्थर	ढला पत्थर ÷	÷ मुहाविरा
Condensation	संघनन	गाढ़ीकरण ÷	÷ मुहाविरा
Conduit pipe	वाहिनी	वाहक नल ÷	सरल तथा प्रयुक्त
Crucible	कुठाली, मूषा	घड़िया ÷	÷ सरल
Damp proof	सीलसह	सीलजित ÷	÷ भी प्रचलित है
Deliterious	क्षतिकर	क्षतिप्रद ÷	÷ अधिक मुहाविरेदार
Distillation	आसवन	स्रवण ÷	÷ ” ” ”
			÷ प्रचलित
Dressing	गढ़ाई, + सज्जीकरण	छांटना, छीलना	+ forging के लिए उपयुक्त
Elevation (view)	—	ऊँचाई (का दृश्य) ÷	÷ प्रयुक्त
Elevate	ऊपर चढ़ना	उठाना ÷	÷ प्रयुक्त
Fabrication	घड़ाई +	घड़ाई, जुड़ाई, बुनाई ÷ सुघटन	÷ प्रयुक्त। + शब्द-सागर के अनुसार घड़ाई और गढ़ाई का अर्थ एक ही है।

अंग्रेजी शब्द	समिति का पर्याय +	हमारा सुझाव ÷	संक्षिप्त कारण आदि
Final setting time	अन्तिम पकड़ने की अवधि	जमने की चरम अवधि ÷	÷ अधिक मुहाविरेदार
Fire brick	हायरी ईंट, आगरोक ईंट	हायरी ईंट, अग्निजित ईंट ÷	÷ ,, ,, ,,
Fire clay	आगरोक मिट्टी	अग्निजित मिट्टी	,, ,, ,,
Firing	आग लगना	ईंधन झोंकना, भट्टी झोंकना	÷ मुहाविरा
Fuse	बत्ती +	संगलक	+ अप्रयुक्त
Geological	भूवृत्तीय	भूगर्भीय ÷	÷ प्रयुक्त
Hardening	कठोर करना, कड़ा करना	पानी चढ़ाना, आबदारी चढ़ाना	÷ प्रयुक्त
Insoluble residue	अविलेय अवशेष	अघुलित तलछट ÷	÷ प्रयुक्त
Intercepter	अटका	अटका, बिचोला ÷	÷ प्रयुक्त
Interlocked	अन्तर्ग्रथित	अन्तर्तालित ÷	÷ सुबोध
Iron filing	लोहे का चूरा	लोह चूर्ण, लोहे का बुरादा	÷ प्रयुक्त
Key	पकड़	चाभी, पाना +	÷ प्रयुक्त
Kneading	गूँदना	गूँदना, मीड़ना ÷	÷ प्रयुक्त
Line of Least Resistance	न्यूनतम प्रतिरोध पथ	न्यूनतम प्रतिरोध रेखा	÷ सुबोध
Mortar Mill	मसाला चक्की	चूना चक्की, गरठ ÷	÷ प्रयुक्त
Pattern making	प्रतिरूप बना, नमूना बनाना	फरमा बनाना ÷	÷ प्रयुक्त
Pressing	पीडना	दबाना ÷	÷ प्रयुक्त
Puddling furnace	बिलोनी भट्टी	रंधन भट्टी, पंकन भट्टी ÷	÷ प्रयुक्त
Refractories	उष्म सह	तापजित ÷	÷ प्रयुक्त
Refractory Crucible	गलन रोधी कुठाली	तापजित कुठारी (घडिया ÷	÷ सुबोध तथा प्रयुक्त
Retorder	विलम्बक	मंदकारी ÷	÷ सुबोध
Revolving	परिक्रमणी, चक्कर लगाती	भ्रमणी, घूमने वाली चक्कर लगाना, फेरे करना	÷ सुबोध तथा प्रयुक्त
Ridding	हटाना	हटाना, फटकना, पिछोरना	÷ प्रयुक्त
Ring mill	बेलन चक्की	आडी चक्की, या चक्की	÷ प्रभुक्त
Roller mill	बेलन चक्की	बेलन चक्की ÷	÷ प्रयुक्त
Rotary klin	परिभ्रमी भट्टी	घूमने वाली भट्टी ÷	÷ सुबोध
Shear	प्रतिवर्त्तन	कतरना, कर्त्तन, कैंची ÷	÷ प्रयुक्त
Shingling stage	निपीडन अवस्था	निचुड़न अवस्था ÷	÷ सुबोध
Shattering	तख्तावंदी	परदाबन्दी ÷	÷ प्रयुक्त
Slab	शिला पट्टी	पट्टी, पटिया, कतरना	÷ प्रयुक्त
Strength	सामर्थ +	मजबूती	÷ Power के लिये प्रयुक्त
Stripping	निष्कासन	उतारना, खोलना	÷ प्रयुक्त
Structural work	रचना कार्य +	ढाँचा बनाना +	+ Design के अर्थ में ÷ प्रयुक्त
Water tight	पानी बंद	जलाभेद्य ÷	÷ सुबोध

TRANSPORT—परिवहन

अंग्रेजी शब्द	समिति का पर्याय +	हमारा सुझाव ÷	संक्षिप्त कारण
Alignment	रेखन, रेखांकन	समरेखण	÷ रेलवे शब्दावली में भी यही है।
Avenue	तरुवीथि	रास्ता ÷	सुबोध
Bore hole	बरमाछेद +	नलकूप, छेदा हुआ कुआ	+ अनुपयुक्त
Base coat	निचली तह	आधार लेप ÷	÷ सुबोध
Base course	आधार की तह	आधार पटल (तह)	÷ सुबोध
Bottom coat	निचली तह	निचला लेप ÷	÷ Caot के लिये लेप उपयुक्त
Ballast	रोडी	रोडी, गिट्टी ÷	÷ प्रयुक्त
By pass Road	बाहरी सड़क	बाहरी सड़क, छोटी सड़क संक्षिप्त सड़क ÷	÷ विचारणीय
Bridle *Path*	अश्व *पथ*		
Carriage *way*	यान पथ	यान *मार्ग*	Path के लिये "पथ", तो way के लिये मार्ग उपयुक्त होगा।
Cart *track*	गाड़ी का रास्ता, छकड़ा पथ	गाड़ी की *लीक*	रास्ता और पथ Avenue और Path के लिये हों तो track के लिये *लीक* उपयुक्त होगा।
Cause way (Irish-bridge)	१ *काज़वे*, *रपटा*, २ *पुलिया काजवे*	एक ही विषय की दो सूचियों में एक ही शब्द के पर्यायों में भिन्नता नहीं चाहिये।	
Cause way Raised	१ ऊँचा *रपटा*, २ ऊँचा *काज़वे*		
Catchment Basin	श्रवण क्षेत्र	श्रवण *तल*	Catchment area का पर्याय बनाते समय Area के लिये क्षेत्र शब्द प्रयुक्त हो चुका है अतः Basin के लिये '*तल*' शब्द ठीक रहेगा।
Chipping	जीरा	जीरा, *छीलन* ÷	÷ भी प्रयुक्त होता है
Cautionary sign	चेतावनी संकेत	चेतक, सचेतक ÷	÷ विचारणीय
Deviation	अदल-बदल +	विचलन, भटकाव, विभिन्नता	+ Interchange के अर्थ में प्रयुक्त होता है।
Diversion	परावर्त्तन, *फेरबदल* +	परावर्त्तन, फिराव मोड	+ Alteration के अर्थ में प्रयुक्त होता है।
Elastic Arch	एलास्टिक डाट	लचीली डाट (महराब) ÷	÷ प्रयुक्त

Gradient-limiting	अधिकतम ढाल	ढाल की इष्ट सीमा	विचारणीय
Gradient-raling	ढाल की इष्ट सीमा	अधिकतम ढाल	
Generator	जनित्र	जनित्र, जनक ÷	÷ सुबोध
Hard core	कड़ीतह	कड़ागूदा, कठोर गूदा गर्भ)	÷ प्रयुक्त
Hand rail	हथ पट्टी	जंगला, कटघरा, हथबाँस	÷ प्रयुक्त
Lane	गली	गली, गैल ÷	÷ प्रयुक्त
Leading drain	बड़ी नाली	मुख्यनाली, बड़ीनाली	÷ प्रयुक्त
Penetration	बेधन +	प्रवेषण	+ Punching के अर्थ में प्रयुक्त
Planer	मशीनी रंदा	रंदा मशीन ÷	प्रयुक्त
Pneumatic hammer	वायवी हथौड़ा	हवाई हथौड़ा ÷	÷ प्रयुक्त
Ring Road	वलय मार्ग	गोल सडक ÷	÷ प्रयुक्ता मार्ग शब्द way के लिए
Rigid frame Bridge	अनम्य ढांचे का पुल	मजबूत ढांचे का पुल ÷	सुबोध
Roller bearing	बेलन धारुक	बेलनीय धारुक ÷	सुबोध
Reconditioning	दुरुस्ती, सुधार	कायाकल्प, संजीवन ÷	सुबोध
Repair	मरम्मत	मरम्मत, दुरुस्ती, सुधार ÷	सुबोध
Rebuilding	—	पुनःनिर्माण ÷	÷ सुबोध
Overhaul	पूरी मरम्मत	जीर्णोद्धार ÷	÷ सुबोध
Rake	पंजा	पंजा, कांटा ÷	÷ प्रयक्त
Stump	अवपात परीक्षण	संस्थापन परीक्षा ÷ बिठान की जांच +	÷ सुबोध + प्रयुक्त
Sedimentation test	कल्कन परीक्षण	अवक्षेप परीक्षण ÷ तलछट की जांच +	÷ सुबोध + प्रयुक्त
Skewback	तिरछी डाट	कमान टेक	इनमें थोड़ा थोड़ा भेद है
Shew arc k	तिरछी डाट	तिरछी डाट, तिरछा	
Skew bridge or culvert	कमान टेक	महराब तिरछा पुल	
Skew culvert	तिरछा पुल, तिरछी पुलिया	तिरछी पुलिया	
Track ways	लोकपटरी	लीक ÷ अथवा लीक मार्ग ÷	प्रयुक्त
Template	फरमा +	आकृतिपट	फरमा शब्द Pattern के लिये
Tractor	ट्रेक्टर	ट्रेक्टर, कर्षक	

RAILWAYS रेलवे

अंग्रेजी शब्द	+ समिति का पर्याय	÷ हमारा सुझाव	संक्षिप्त कारण
Above mentioned	उपरि उल्लिखित +	ऊपर लिखित	प्रयोग में क्लिष्टता
Accounts desk	लेखा करणिक +	हिसाब बाबू, हिसाब मुँशी	बाबू की अपेक्षा करणिक लम्बा तथा क्लिष्ट है
Absolute Block system	विशुद्ध रोक	विशुद्ध रोक प्रणाली ÷	÷ सुबोध
Acquisition	प्राप्त करना, हस्तगत करना	प्राप्तीकरण	संज्ञा और क्रिया में भेद
Adjusting	समंजन करना +	समायोजन करना	+ क्लिष्ट है
Adjusting screw		समायोजन पेंच ÷	÷ प्रयुक्त है
Adjustable lever		समायोज्य तुला	
Administration	प्रशासन, प्रबन्ध +	प्रशासन	+ प्रबन्ध Management के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है
Admitance	प्रवेश	प्रवेश-आज्ञा, स्वीकृति ÷	प्रयुक्त
Entrance	प्रवेश	(प्रवेश) द्वार, दरवाजा ÷	प्रयुक्त
Admission	प्रवेश, दाखिला, स्वीकार	....	
Aligament	समरेखण	समरेखण, सीध ÷	प्रयुक्त
Allright signal	कुशल संकेत	ठीक सिगनल ÷	प्रयुक्त
Anticorruption	भ्रष्टाचरण विरोधी भ्रष्टाचार निरोध	भ्रष्टाचार विरोधी ÷ भ्रष्टाचार निरोध	प्रयुक्त
Antifriction	घर्षरोध	उद्घर्षण, घर्षणावरोधी ÷	प्रयुक्त
Antifriction metal	घर्षरोधक धातु	उद्घर्षक धातु, घर्षणावरोधी धातु ÷	प्रयुक्त
Arbitration	विवाचन, पंच बिठाना	पंचायत ÷	÷ विचारणीय
Arch-arc	चाप	चाप, महराब, तोरण ÷	÷ प्रयुक्त
Ash pit	राख का गड्ढा	अंगार गोदी ÷	÷ प्रयुक्त
Asst. Traffic Manager	सहायक यातायात मैनेजर	सहायक यातायात प्रबन्धक	
Asst. Foreman	सहायक फोरमैन	सहायक व्यवस्थापक ÷	सुबोध
Asst. Low. Foreman	सहायक लोको फोरमैन	सहायक (रेल) इंजन व्यवस्थापक ÷	सुबोध
Bolt	काबला, चिटकनी	काबला, चिटखनी, बोल्ट ÷	प्रयुक्त
Bolts & nuts	काबले और ढिबरी	काबले और ढिबरी बोल्ट और नट +	÷ प्रयुक्त
Baggage car	सामान यात	असबाब गाड़ी ÷	÷ प्रयुक्त
Balance sheet	वित्तस्थिति पत्र	आय व्यय लेखा ÷	÷ प्रयुक्त
Ballast	गिट्टी	गिट्टी, रोडी	÷ प्रयुक्त
Block	खंड	रोक ÷	÷ सुबोध
Block system	—	रोक प्रणाली ÷	÷ सुबोध

अंग्रेजी शब्द	समिति का पर्याय +	हमारा सुझाव +	संक्षिप्त कारण
Block section	—	रोक खंड	Section के लिये खंड और Block के लिये रोक उपयुक्त है
Book	बुक करना,	दर्जकरना टीपना ÷	प्रयुक्त
Brake	रोधक, ब्रेक	ब्रेक, गतिरोधक अवरोधक } ÷	सुबोध
Brake block	रोधक ब्लाक, ब्रेक ब्लाक	{ रोधक, रोधक गुटका ÷ ब्रेक ब्लाक ब्रेकगुटका	÷ सुबोध तथा प्रयुक्त
Brake distance	रोधन दूरी	अवरोधन दूरी ÷	प्रयुक्त
Brake drum	ब्रेकड्रम	अवरोधक ढोल ÷	प्रयुक्त
Brake gear	ब्रेकतंत्र	अवरोधन तंत्र ÷	प्रयुक्त
Brake handle	ब्रेकहत्था, ब्रेक हेन्डिल	ब्रेक होन्डिल, ब्रेकहत्था ब्रेक मुठिया, रोधनमुठ	÷ प्रयुक्त तथा सुबोध
Brake pipe	ब्रेकनली	रोधन नालिका या नल	
Brake power	ब्रेकशक्ति	अवरोधन क्षमता	
Brak shoe	अटक	रोधक तला	
Branch line	शाखालाइन	रेल शाखा ÷	÷ प्रयुक्त
Bulky	आकारी	स्थूल, विशाल, महाकाय	÷ प्रयुक्त
Bull headed	वृषभ सिरा	वृषमौलि	
Bumper	बम्पर	आघातक संघट्टक	
Cab	चालक कोष्ट, सायबान	बग्घी	÷ प्रयुक्त
Cabin	केबिन	केबिन, कोठरी ÷	÷ प्रयुक्त
Capacity	समावेशन	पात्रता ÷	÷ सुबोध
Caution order	सावधानता आदेश	चेतावनी ÷	÷ प्रयुक्त
Caution Indicater	सावधानता सूचक	चेतक, सचेतक	÷ प्रयुक्त
Caution	सावधान	चितावन, अवधान	÷ प्रयुक्त और सुबोध
Centralised	केन्द्रीकृत	केन्द्रित ÷	÷ प्रयुक्त
Chargeman	चार्ज मैन	मिस्त्री ÷	÷ प्रयुक्त
Cheque	चैक	चैक, दर्शनी हुँडी	÷ प्रयुक्त
Clamp	संघर	संघर, शिकंजा	÷ प्रयुक्त
Coal bunker	कोयलाघर	कोयले की कोठी कोल दान	÷ प्रयुक्त
Competency	क्षमता	योग्यता	÷ प्रयुक्त
Competent	सक्षम, समर्थ	योग्य	÷ प्रयुक्त

अंग्रेजी शब्द	समिति का पर्याय +	हमारा सुझाव —	संक्षिप्त कारण
Connecting train	संयोजक गाडी	सम्बन्धित गाड़ी	
Coupled wheel	जुड़वाँ पहिये	जुड़वाँपहिये, जुडवां चक्के संगठित चक्के	
Cow catcher	इंजन का पंखा	पशु रक्षक, छाज, सूप	
Crane	क्रेन	क्रेन, बकोट यंत्र, बकयंत्र, ऊँटडो	
Dead end	बन्द	ठोकर	
Dead engine	बेकाम इंजन	बेकार इंजन, ठंडाइंजन	
Dead end siding	बन्द पार्श्विका	ठोकर लैन (Line)	
Delivery tube	दाति नली	निकास नालिका (नली)	
Detonator	स्फोटन यंत्र	स्फोटक, पटाखा	
Derailment	पटरी से उतरना	रेलच्युति, मार्गपतन	
Dy. Chief Operating Superintendent	उप मुख्य *संचालक* + अधीक्षक	— —	ठीक
Dy. Chief Transportation Superintendent	उप मुख्य *संचालक* + अधीक्षक	उप मुख्य *परिवहन* अधीक्षक	+ संचालक काप्रयोग Operating के लिये हो चुका है -
Dy. Chief Superindent	उप मुख्य *वाणिज्य* + अधीक्षक	उप मुख्य *यातायात* अधीक्षक	+ वाणिज्य का प्रयोग Operating के लिये हो चुका है
Dy. Chief Commercial Superintendent	उप मुख्य *वाणिज्य* + अधीक्षक +		ठीक
Dy. Controller Stationery & Supply	लेखन सामग्री संभरण *उपनियंत्रक* +		ठीक
Dy. Inspector of Stores & Clothing	भंडार और वस्त्रों का *उपनियंत्रक* +	भंडार और वस्त्र उपनिरीक्षक	+ नियंत्रक का प्रयोग Controllerके लिये होचुका है
Deputy Director	उप *संचालक* +	उपनिदेशक	+ संचालक Operating के लिये प्रयुक्त हो चुका है
Deputy Station Master	डिप्टी स्टेशन मास्टर	उपस्टेशनाध्यक्ष	÷ प्रयुक्त
Deputy Station Suprintendent	स्टेशन उप अधीक्षक		
Detention	रोक लेना, निरोध आदि	विलम्ब	
Device	कलयंत्र, तदबीर, युक्ति	प्रयुक्ति	
Distance	अन्तर खंड, अन्तर ब्लाक	अन्तर ,दूरी, फासला	
Distance block	अन्तर, दूरी, फासला	अन्तर खंड, अन्तर ब्लाक	

अंग्रेजी शब्द	समिति का पर्याय	हमारा सुझाव	संक्षिप्त कारण
Distant signal	दूर संकेत	बाहरी सिगनल	
Diversion (Track)	विशाखन	परावर्त्तन, फिराव, मोड़	
Divisional	मंडल, डिवीजन	मांडलिक,	
Dog (crane)	कुत्ता	ग्राह, पकड़	
Dog spike	कुत्ता कील	कीला, ग्राह कील, कीलक	
Double expansion	दोहरा विस्तार	दोहरा प्रसार	
Engine shed	इंजनशाला	इंजनशाला, इंजन गोदाम	
Equalizer	समकार	संतोलक	
Examination pit	परीक्षण गर्त्त	परीक्षा गोदी, जांच गोदी	
Fire proof	अग्निसह	अग्निजित	
Fixed signal	स्थावर सिगनल	स्थायी सिगनल	
Fly shunting	उजन शंटिंग	टोकर का शंटिंग	
Foreman	फोरमैन	व्यावस्थापक	
Fouling mark	उल्लंघन चिन्ह	जाल स्लीपर, जाम चिन्ह	
Gauge glass	प्रमाप नली	गेज ग्लास.	
Hand wheel	हथ पहिया	चकरी, हथचकरी	
Hump yard	ढाल यार्ड	ढलवां या ढालू यार्ड	

ECONOMICS—अर्थशास्त्र

Compensation	हानिपूर्ति	क्षतिपूर्ति, मुआविजा
Density	सघनता	सघनता, घनत्व
Diagram	रेखाकृति	{ मर्म चित्र, रेखालेख रेखाकृति
Equalibrium	समभार	समभार, संतुलन
Factory	फैक्टरी	निर्माणशाला
Workshop	कारखाना	कारखाना, कार्यालय
Office	दफ्तर, कार्यालय	दफ्तर
Labour saving Device	मेहनत बचाने के साधन	श्रमत्राणक
Managing Director	प्रबन्ध संचालक	प्रबन्ध निदेशक
Mass production	बड़े पैमाने पर उत्पादन	बृहत् निर्माण
Quantity production	— — —	सामूहिक निर्माण
Batch production	— — —	संघ निर्माण

अंग्रेजी शब्द	समिति का पर्याय +	हमारा सुझाव ÷	संक्षिप्त कारण
Small scale prod-	छोटे पैमाने पर उत्पादन	अल्प निर्माण	
Management	व्यवस्था	प्रबन्ध	
Supervision		व्यवस्था	
Manager	व्यवस्थापक, मैनेजर	प्रबन्धक	
Manfacture	विनिर्माण	निर्माण	
Superintenden		अधीक्षक	
Supervisor Foreman		व्यवस्थापक	
Power	शक्ति	सामर्थ्य	
Energy		ऊर्जा, शक्ति	
Force		बल	
Stress		चाप	
Promissary note	रुक्का	इकरारी रुक्का, तमस्सुक	
Reward	फल	इनाम, पुरस्कार, पारितोषक	
Royalty	रौयल्टी	लाभाधिकार, राजत्व	
Share	शेयर	हिस्सा, भाग	
Technique of production	उत्पादन की टेक्नीक	उत्पादन कौशल या कला	
Technical	टेक्नीकल	कला, कौशल, तकनीकी	
Trade dispute	व्यापार विवाद	व्यवसायिक विवाद	
Trade	व्यापार	व्यवसाय	
Industry		उद्यम	
Commerce	व्यापार	व्यापार, वाणिज्य	
Business	व्यवसाय	व्यवहार, कारबार	
Transaction	सौदा, व्यवहार	लेनदेन, सौदा	
Vacation	व्यवसाय, वृत्ति	वृत्ति	
Trust	न्यास	न्यास, परक्षण संघ	
Trust	न्यासधारी	न्यासधारी, परक्षणाधिकारी	
Trade Union	व्यापार संघ	व्यवसायिक संघ	
Tender	निविदा	निविदा, पूर्वनिरूपण, उपक्षेप	
Trial Balance	शेष परीक्षण	परीक्षण शेष	
Transfer	स्थानान्तरण	स्थानान्तर	
Transference	स्थानान्तर	स्थानान्तरण	
Turn ovel	पर्यावर्त्त	पर्यावर्त्त, बिक्री, आयलाभ	
Insolvent	परिक्षीण	दिवालिया	
Vou cher	वाउचर	प्रमाण पत्रिका	

विज्ञान-समाचार

तम्बाकू

इतिहास से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि सर्व प्रथम मध्य अमेरिका की मायेन जाति के रैड-इण्डियनों ने पीने के लिये तम्बाकू पैदा किया था। उस समय तम्बाकू का पत्ता आकार में घास-फूस की पत्तियों से बड़ा नहीं होता था। ये लोग खोखली नरकटों का इस्तैमाल 'पाइप' के रूप में करते थे। एक किनारे में थोड़ी सी पिसी हुई सूखी पत्तियाँ भर कर तथा चिनगारी से उसे सुलगा कर नली द्वारा धुआँ खींचते थे। मायेन लोगों से दक्षिणी अमेरिका तथा कैरिबियन द्वीपों में रहने वाली रैड-इण्डियन जातियों के लोगों को तम्बाकू का पता लगा और अन्त में उसकी जानकारी संयुक्त राज्य अमेरिका को भी हुई।

जब १४६२ ई० में क्रिस्टोफर कोलम्बस ने अतलांतक सागर को पार किया, तब उसने देखा कि वैस्ट एण्डीज के रैड-इण्डियन तम्बाकू के पौधे की पत्तियों का कश लगा रहे हैं। उसके पीछे जाने वाले अन्वेषक दल अपने साथ उस पौधे को ले आये और पुर्तकाल तथा स्पेन में तम्बाकू पीने का रिवाज चल पड़ा। १५०० ई० तक यूरोप, अफ्रीका तथा एशिया के लोगों ने भी तम्बाकू पीना प्रारम्भ कर दिया।

अत्यन्त शीतल क्षेत्रों को छोड़ कर संसार के प्रायः सभी देशों में तम्बाकू की खेती होती है। अमेरिका में यह व्यापार की दृष्टि से वर्जिनिया, टेनेसी, मेरिलैण्ड, केण्टकी, उत्तरी तथा दक्षिणी कैरोलाइना, फ्लोरिडा, जौर्जिया, मिसूरी, ओहायो, पेन्सिल्वेनिया, न्यूयार्क, विस्कोन्सिन, क्नैटिकट, और मेसाचूसेट्स राज्यों में बोया जाता है।

तम्बाकू की विभिन्न किस्में—

तम्बाकू की लगभग ४० या ५० मुख्य किस्में हैं। किन्तु वर्गीकरण को सुगम बनाने की दृष्टि से अमेरिकी कृषि-विभाग ने इनमें से १६ मुख्य किस्में अलग कर ली हैं। बोए जाने वाले क्षेत्रों, तम्बाकू तैयार करने के विशेष तरीकों उपयोग, स्वाद, आकार-प्रकार तथा पत्तियों की कोटि के अनुसार यह वर्गीकरण किया गया है। आमतौर पर उन क्षेत्रों की मिट्टी तथा जलवायु के अनुसार तम्बाकू की किस्में निश्चित की जाती हैं, जहाँ उनकी फसलें बोई जाती हैं।

तम्बाकू की अधिक महत्वपूर्ण किस्मों को ६ श्रेणियों में विभक्त किया गया है। ये श्रेणियाँ धूम्र-शोधित, अग्नि-शोधित, हवा-शोधित तथा सिगार-पूरक, सिगार-बन्धक तथा सिगार-आवेष्टक के नाम से प्रसिद्ध हैं। धुएँ से सुखाये गये तम्बाकू से सिगरटें बनती हैं तथा चबाने का तम्बाकू तैयार किया जाता है। इसका निर्यात भी होता है। आग से सुखाया गया अधिकांश तम्बाकू अमेरिका से बाहर विदेशों को भेजा जाता है। इसका उपयोग नसवार बनाने के लिये तथा चबाने वाले तम्बाकू को लपेटने के लिये भी किया जाता है। वायु से सुखाये गये तम्बाकू का उपयोग पाइप का तम्बाकू तैयार करने के लिये तथा चबाने वाला तम्बाकू बनाने के लिये किया जाता है। इससे सिगरेट भी तैयार किये जाते हैं।

तम्बाकू बोने तथा सुखाने की प्रक्रियाएँ

तम्बाकू को बोने तथा सुखाने आदि की प्रक्रियाओं ने अमेरिका में वैज्ञानिक रूप धारण कर लिया है। तम्बाकू-उत्पादकों ने अनेक अनुसंधनों द्वारा यह पता लगाया है कि तम्बाकू को बोने तथा सुखाने आदि की विधियों का तम्बाकू की पत्तियों की तैयारी में गहरा असर पड़ता है। इसी परिणाम स्वरूप अमेरिका के प्रत्येक तम्बाकू-प्रधान जिले में तम्बाकू से बनने वाली वस्तुएँ तैयार करने तथा तम्बाकू का निर्यात करने के लिये इच्छित खास-खास किस्में पैदा की जाती हैं।

उदाहरण के तौर पर, थोड़ी रेतीली मिट्टी या पीले अथवा लाल रंग की रेतीली भूमि में चमकीली पीली पत्तियों वाला तम्बाकू पैदा होता है। ऐसी मिट्टी वाली भूमि स्वभावतः अनुपजाऊ होती है। इसके लिये खूब रासायनिक खादों का प्रयोग किया जाता है। पक जाने पर तम्बाकू की पत्तियों को हाथों से तोड़ लिया जाता है। तोड़ी हुई पत्तियों को ४।। फुट लम्बी छड़ियों के साथ बांध कर छोटे-छोटे बन्डल बनाये जाते हैं। फिर उन्हें खलियान में लटका कर कृत्रिम ताप द्वारा सुखाया जाता है। पत्तियों को धुएँ से बचाने के लिये नलियों द्वारा ताप पहुँचाया जाता है।

ताप द्वारा तम्बाकू को सुखाने में बड़ी कुशलता की आवश्यकता होती है। तम्बाकू की पत्तियों को ठीक-ठीक सुखाने के लिये खलियान के तापमान को बारी-बारी से कम तथा अधिक करना पड़ता है। तम्बाकू को अधिक तेजी से अथवा धीमी गति से सुखाने पर पत्तियाँ खराब हो जाती हैं।

सिगार बनाने के लिये अमेरिका में जितना तम्बाकू पैदा किया जाता है, वह सब का सब वायु द्वारा सुखाया जाता है। केवल अत्यन्त नमीं के दिनों में अन्य तरीकों द्वारा तम्बाकू सुखाया जाता है।

बेकार लकड़ी के चमत्कारी उपयोग

आज से लगभग २२००० वर्ष पूर्व जिस अज्ञात चीनी कारीगर ने कागज बनाने की विधि मालूम की थी, वह भी यह देख कर चकित रह जायेगा कि अब कागज का गृह-निर्माण के कार्य में प्रयोग होने लगा है। घटिया दर्जे की लकड़ी पर पूरी तरह से एक विशेष प्रकार का कागज चढ़ाने से उसकी शक्ति, स्थिरता एवं खूबसूरती बढ़ जाती है और उस पर किया गया रोगन बड़ा सुन्दर लगता है। भीग जाने पर भी यह कागज लकड़ी की शक्ति को कायम रखता है। तथा इस पर अग्नि का देर में असर होता है।

ये बातें २० वीं सदी के लोगों को भी अद्भुत प्रतीत हो सकती हैं, क्योंकि आमतौर कागज का मुख्य रूप से प्रयोग लिखने अथवा वस्तुओं को लपेटने के कार्य में ही होता है। मेडिसन (विस्कोन्सिन) स्थित अमेरिकी वन-उत्पादन प्रयोग शाला में जाने वाले दर्शक देखेंगे कि लकड़ी के बुरादे से बहुत सी नई वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। उदाहरण के तौर पर, लकड़ी के बुरादे से बनाए जाने वाले कागज से गृह-निर्माण के लिए ऐसा स्थायी सामान तैयार किया जाता है, जो कई परिस्थितियों में धातु, ईंट एवं पत्थर के बने सामान की तरह टिकाऊ सिद्ध होता है। ऐसे राल तथा प्लास्टिक तैयार किए गए हैं जिनको इस कागज के साथ मिलाने से इस पर सील या नमी का असर नहीं होता।

लकड़ी के बुरादे से तैयार कागज तथा राल एवं प्लास्टिक आदि के मेल से तैयार किया गया ढांचा स्थायी भवन निर्माण सामग्री का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। मेडिसनि अनुसन्धानशाला में इस प्रकार के ढाँचे को 'सैन्डविच" कहते हैं। इस ढांचे को अंग्रेजी भाषा की 8 संख्या के समान या अन्य तरीके से कागज को मोड़ कर तैयार किया जाता है। रिक्त स्थानों को राल आदि वस्तुओं से भर दिया जाता है।

ऐसे ढाँचों की बाहरी परतें प्लाईवुड, कड़े पत्ते एलूमीनियम मैग्नेसियम, एनेमल्ड स्टील, एसबैस्टोस बोर्ड, जिप्सम तथा प्लास्टिक से बनायी जा सकती हैं। ये परतें हल्की मजबूत तथा टिकाऊ रहती हैं। इन पर अग्नि तथा नमी आदि का दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। इन्हें दीवारों, हट सकने वाले पर्दों, देहाती मकानों के निर्माण, ट्रकों, वाय-यानों तथा नावों के ढांचे तैयार करने तथा फर्नीचर बनाने के काम में लिया जा सकता है।

अनुसन्धानशाला में कार्य करने वाले लुगदी एवं कागज विशेषज्ञ रौबर्ट जे सीडल कभी-कभी यह कह कर दर्शकों को चकित कर देते हैं कि यदि मुझे लकड़ी के दो टुकड़ों का एक ट्रक तथा राल के कुछ पीपे दे दिये जायँ तो मैं उनसे अपना घर तैयार कर सकता हूँ। वह मकान मजबूती, ताप एवं शीत को रोकने आदि की दृष्टि से बिलकुल उन मकानों के समान होगा जो ईंट, पत्थर तथा लकड़ी आदि सामग्रियों से तैयार किए जाते

हैं। उन्होंने हाल में मिस्त्रियों तथा ठेकेदारों के एक दल के सामने निम्न विचार प्रकट किए।

"इन सैंडविच' नामक ढांचों से तैयार किए जाने वाले मकान पर सामान्य मकान के लिए आवश्यक लकड़ी की अपेक्षा केवल एक-तिहाई अथवा आधी लकड़ी दरकार होगी। यह मजबूती तथा शीत एवं ताप को रोकने आदि की दृष्टि से भी अन्य मकानों से किसी बात में कम न होगा। यदि गत्ते (कार्डबोर्ड) की परतें लगाई जायँ, तो समूचा ढाँचा लकड़ी का एक भी लट्ठा इस्तेमाल किये बिना ही तैयार किया जा सकता है।

यह कार्य लकड़ी के बेकार जाने वाले टुकड़ों के इस्तेमाल से भी किया जा सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि लगभग २००० फुट के ढांचे के लिए ६ टन लकड़ी के टुकड़े काफी रहते हैं। बेकार जाने वाली लकड़ी यदि एक ट्रक भर मिल जाए तथा राल के दो पीपे हाथ लग जाएँ तो यह मकान तैयार हो सकता है।

दोषपूर्ण लकड़ी पर कागज का प्रयोग

इस प्रयोगशाला का दूसरा कार्य गांठयुक्त, दोषपूर्ण अथवा घटिया दर्जे की लकड़ी पर कागज चढ़ाना है। इस प्रक्रिया द्वारा घटिया दर्जे की लकड़ी को अच्छी कोटि की लकड़ी बनाया जा सकता है। राल से तैयार किए गए कागज को लकड़ी पर चढ़ाने से लकड़ी की गाठें तथा लकीरें आदि छिप जाती हैं। अच्छा रोशन चढ़ाने के विचार से प्लाईवुड की सतह को समतल बनाने के लिए भी कागज का इस प्रकार का प्रयोग किया जा सकता है।

वैज्ञानिक पुस्तकों के पुरस्कार

उत्तर प्रदेश सरकार ने हिन्दी साहित्य कोष से इस वर्ष हिन्दी के लेखकों को हिन्दी परामर्शदात्री समिति के परामर्श से जो नकद पुरस्कार प्रदान किए हैं उनमें कुछ पुरस्कार वैज्ञानिक पुस्तकों पर मिले हैं। उत्तर प्रदेश की सरकार और इन वैज्ञानिक पुस्तकों के लेखक हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के संवर्द्धन के इस शुभ प्रयास के लिये बधाई के पात्र हैं। आशा है कि हिन्दी में अधिक से अधिक वैज्ञानिक पुस्तकों का सृजन कर विज्ञानसेवी साहित्य के इस अंग की भारी कमी पूरी करने का उद्योग करते रहेंगे तथा सरकार और हिन्दी-जगत द्वारा उन्हें प्रश्रय और प्रोत्साहन भी अधिकाधिक मिलता जायगा। पुरस्कृत रचनाओं और उनके रचयिताओं के नाम निम्न हैं:—

लेखक	पुस्तक का नाम	पुरस्कार की धनराशि
डा० निहालकरण सेठी	प्रकाश विज्ञान	१०००)
डा० गोरख प्रसाद	निहारिकायें	७००)
डा० व्रजमोहन	गणितीय कोष	८००)
श्री फूलदेव सहाय वर्मा	रबड़	७००)
डा० सत्य प्रकाश	कुछ आधुनिक आविष्कार	४००)
जगपति चतुर्वेदी	चींटी चींटों की दुनिया स्तनपोषी जंतु हिंसक पशु जन्तुओं का गृह-निर्माण खुर वाले जानवर जंतु बिल कैसे बनाते हैं	६००)
श्री द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल	भारतीय वास्तुशास्त्र	८००)

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

Reg. NO. A 372

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools;
Colleges and Libraries

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार था। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम
सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

मुद्रक—श्री सरयू प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग तथा प्रकाशक—डा० रामदास तिवारी [illegible]।
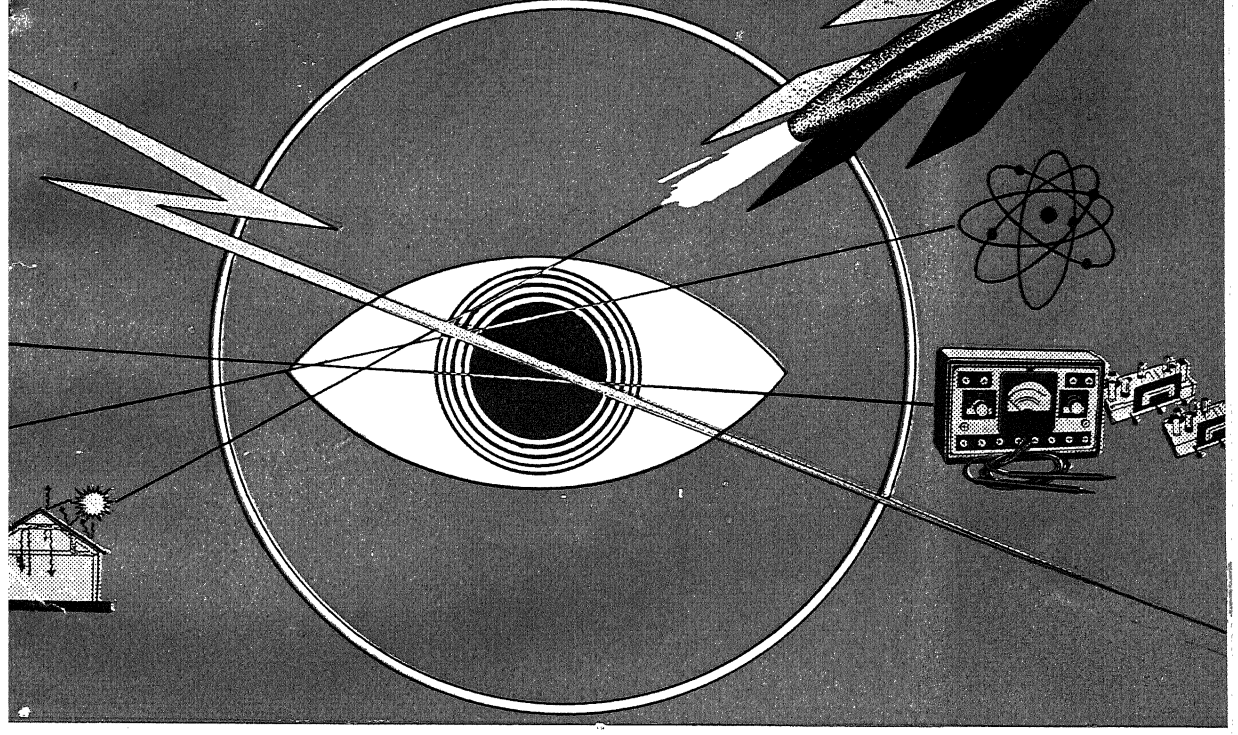
विज्ञान

प्रधान सम्पादक
डा. देवेन्द्र शर्मा

सहायक सम्पादक
जगपति चतुर्वेदी
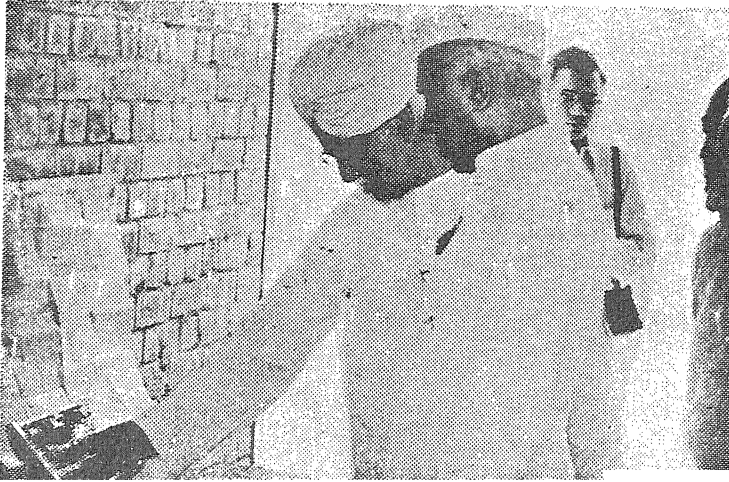
शिलान्यास अङ्क

भाग ८३

संख्या २,३,४

शिलान्यास अंक

मई जून जुलाई १९५६
वृष मिथुन कर्क सं० २०१३

भाग ८३ संख्या २, ३, ४

प्रधान सम्पादक
डा. देवेन्द्र शर्मा

सहायक सम्पादक
जगपति चतुर्वेदी

वार्षिक मूल्य
चार रुपए

प्रति अंक
छः आने

विषय-सूची

शिलान्यास अंक

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८३ | वृष, मिथुन, कर्क २०१३; मई, जून, जुलाई १९५६ | संख्या २, ३, ४

विज्ञान परिषद् भवन का शिलान्यास

वह दिन हमारे लिए अवश्य ही बड़ी ही प्रसन्नता और संतोष का था जब हमारे देश के गौरव, राजनीतिक कर्णधार प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल जी नेहरू ने विज्ञान भवन का शिलान्यास अपने हाथों करने की स्वीकृति दी। हमारे लिए वह दिन भी कम हर्ष का नहीं था जब आज से ४३ वर्षों पूर्व कुछ दूरदर्शी विद्वानों और विज्ञान-कर्मियों ने किसी भी प्रकार का साधन और साहाय्य अपने सम्मुख प्रस्तुत न देख कर भी केवल अपनी उत्साह-भावना और अंतः प्रेरणा के बल पर देश-बन्धुओं में वैज्ञानिकता का प्रचार करने का संकल्प मूर्त रूप में परिणत करने के लिए अपने देश की बोली हिन्दी, उर्दू में वैज्ञानिक मासिक पत्र और साहित्य प्रस्तुत करने एवं भाषण द्वारा प्रचार कार्य अग्रसर करने के लिए एक संगठित संस्था स्थापित करने का निर्णय किया था। वही संस्था हिन्दी में विज्ञान परिषद् नाम से प्रसिद्ध हुई। उर्दू और अंगरेजी में भी समानार्थी शब्दों में कुछ नाम रक्खे गये किन्तु समय की गति से थोड़े दिनों में ही उन नामों का अस्तित्व विलुप्त हो चला। केवल विज्ञान परिषद् नाम ही प्रचलित रह गया जो आज हिन्दी के राष्ट्र भाषा घोषित होने की घड़ी में भी सजीव विद्यमान है।

जिन स्वनाम धन्य नररत्नों ने इस संस्था की इतने दिनों पूर्व कल्पना कर देश में वैज्ञानिकता के प्रचार का साधन बनाने में भारतीय भाषाओं की सहायता लेने और उसे ही माध्यम रखने का प्रयत्न कार्य रूप में परिणत करने का श्रीगणेश किया था, उनमें से आज हमारे बीच कदाचित कोई भी विद्यमान नहीं है। कदाचित् लिखने की विवशता हमें इसलिए हो रही है कि इस पुनीत संस्था के संस्थापन में जहाँ एक ओर कोई भौतिक विज्ञानविद् था, कोई रसायन विज्ञान प्रेमी था वहाँ दूसरी ओर संस्कृत के साहित्य के मर्मज्ञ और अरबी फारसी के भी आलिम फाजिल थे। इन आदरणीय मूर्तियों में से भौतिकशास्त्री प्रो० सालिगराम जी भार्गव का आज के कुछ वर्षों पूर्व ही स्वर्गवास हुआ है। रसायनशास्त्री प्रो० रामदास जी गौड़ उसके पहले दिवंगत हो चुके थे। संस्कृत साहित्य मर्मज्ञ महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ जी झा को परलोक वासी हुए उससे भी अधिक अवधि व्यतीत हो चुकी है

परन्तु अरबी फारसी के ज्ञाता श्री मौलवी हमीद उद्दीन साहब के सम्बन्ध में हमें आज कुछ भी जानकारी नहीं। आज से बहुत पहले उन्होंने अपना कार्य क्षेत्र अन्यत्र बना लिया था और क्रियात्मक रूप में परिषद् से दीर्घ काल से सर्वथा पृथक हो गये थे। फिर भी वे हमारी संस्था के मान्य संस्थापक थे।

जिन मान्य पुरुषों ने इस परिषद् की स्थापना किन्हीं उच्च भावनाओं और भावी कल्पनाओं से प्रेरित होकर की वे यदि आज परिषद् के इस विशाल भवन की नीव पड़ने की घड़ी देखने के लिए पार्थिव रूप से सन्निकट रह सके होते तो उनको जितना अपार हर्ष हुआ होता, वह कल्पनातीत है। परन्तु इन अग्रणी देशसेवकों की सेवा-भावना के फल स्वरूप हम अनुवर्तियों को जो हर्ष का यह स्वर्ण अवसर प्राप्त हो सका है, वह हमारे लिए एक ऐसी अपूर्व स्फूर्ति और प्रेरणा का स्रोत है जिसमें किसी भी क्षेत्र के समाज-सेवकों को यह संतोष करना समीचीन हो सकता है कि किसी भी समाज-कल्याण के कार्य का प्रारंभ कर हमें आजीवन उसके कोई फलप्रद, विशाल रूप देखने का अवसर न मिल सकता हो, तब भी हमें हतोत्साह नहीं होना चाहिए। संकीर्ण काल या सीमित अवधि में ही, अपने कार्य काल में ही, फलवती होने वाली सफलता ही सफलता नहीं है। मानव समाज की दीर्घ आयु के सम्मुख तो व्यक्ति की आयु बिल्कुल ही नगण्य है। वस्तुतः मानवता तो अमर है। हम उसके कल्याण का जो भी विशद मार्ग प्रस्तुत करने में अपने जीवन, श्रम, धन, प्रयास, बुद्धि आदि का जो कुछ भी योगदान करें, उसके प्रतिफल पाने की तो आशा का प्रश्न ही नहीं उठता, दूसरों के लिए भी तुरन्त लाभकारी होने में तत्क्षण ही पूर्ण उल्लेखनीय या संतोष जनक सफलता न मिलने पर भी यथार्थ सेवक को केवल अपनी सेवा की निर्भ्रांत सत्यता, सेवा भावना की अमिट सच्चाई पर ही विश्वास कर सतत् यातनाओं, असुविधाओं, सामाजिक या व्यक्तिगत मानापमान, अवहेलनाओं आदि की सर्वदा उपेक्षा कर सेवा कार्य अक्षुण्ण रूप से आगे ही बढ़ाते रहना चाहिए। हमारे दिवंगत संस्थापकों के उदाहरण से ऐसी पुनीत प्रेरणा प्राप्त करने का आज कैसा सुन्दर अवसर है!

प्रथम संस्थापकों की अनुपस्थिति आज हमें जहाँ परिषद् के भवन निर्माण की शुभ घड़ी में बहुत खटकती है, वहाँ हमें अपनी अनवरत सेवा के ज्वलंत उदाहरण रखने वाले वे विज्ञान-कर्मी या परिषद् के सेवक भी सम्मुख दिखाई पड़ रहे हैं जिन्होंने प्रथम संस्थापकों द्वारा परिषद् की स्थापना होने के बाद परिषद् की महत्वाकांक्षा पूर्ण करने में सक्रिय सहयोग करने के लिए सब से पहले अपना कंधा परिषद् के कामों में पुष्ट सहारा देने के लिए बढ़ाया ही नहीं, प्रत्युत सेवा के भार से अपने कंधे को सदा श्रमित रखने का ही संकल्प आजीवन रखने का प्रयास किया। ऐसे प्राथमिक प्रमुख सहायकों में प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव, प्रो० ब्रजराज और प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना के नाम परिषद् के इतिहास में चिरस्थायी रहने वाले हैं। इनमें प्रो० ब्रजराज जी का तो बहुत दिनों पूर्व स्वर्गवास हो गया था। परन्तु प्रो० गोपालस्वरूप जी भार्गव और प्रिंसिपल हीरालाल जी खन्ना आज भी स्फूर्तिमान क्रियात्मक जीवन परिषद को समर्पित कर रहे हैं।

इन वयोवृद्ध विज्ञानकर्मियों के हृदय में परिषद् के विशाल भवन के शिलान्यास की घटना जितना असीम आनंद अनुभव कराती होगी. वह किसी भी समाज-सेवी के लिए अपनी निश्छल सेवा समाज के लिए फलवती देख कर अनुभव करने की ही बात है। परन्तु परिषद् की दृढ़भित्ति के स्थापन को देखकर प्रसन्नता का अनुभव करने वालों की संख्या सीमित नहीं हो सकती। परिषद् के जीवन के ४३ वर्ष की लम्बी अवधि में सक्रिय सहयोग करने वाले सभी विद्वानों, विज्ञान-कर्मियों के साथ ही साथ इसके कार्यों से पूर्ण सहानुभूति रखने वाले, विज्ञान और वैज्ञानिक साहित्य रूप में परिषद् के प्रकाशनों से प्रचुर लाभ उठाने वाले अगणित पाठकों को भी ऐसे अवसर से जो अपार हर्ष हो सकता है, वह लिखने की वस्तु नहीं है।

परिषद् के वर्तमान सभापति प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना के सतत प्रयत्न से विज्ञान भवन के निर्माण का विचार जिस समय मूर्त रूप धारण करना प्रारंभ करने लगा, उस समय परिषद् के संस्थापक प्रो० सालिगराम जी भार्गव भी सक्रिय रूप से सहयोग प्रदान करने के लिए

जीवित थे। उनके साथ ही खन्ना जी के उद्योग करने से प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा कुछ भूमि विज्ञान परिषद् को दिए जाने का प्रस्ताव हुआ। परिषद् के आजीवन सदस्य डा० सत्यप्रकाश जी ने इसी अवसर पर १०००) का दान प्रयाग विश्वविद्यालय को इस शर्त पर दिया कि वह अपनी भूमि में विज्ञान परिषद् को अपना भवन बनाने की अनुमति दे। निदान यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर हमें म्योर सेन्ट्रल कालेज भवन के अहाते में मुस्लिम बोर्डिंग हाउस के दक्षिण की भूमि भवन बनाने के लिए निश्शुल्क मिल गई। वहीं पर भवन निर्माण का कार्य प्रारंभ हुआ। उसके शिलान्यास का कार्य श्री जवाहर लाल जी नेहरू के हाथों सम्पन्न कराने की दृढ़ इच्छा होने से खन्ना जी को इस कार्य में भी सफलता प्राप्त हो सकी।

गत वर्ष श्री जवाहर लाल जी नेहरू के प्रयाग आगमन पर जब हमारी परिषद् के कार्य-कर्त्ताओं का शिष्ट मंडल मिला तो उन्होंने जिस प्रकार हमें प्रोत्साहन प्रदान किया, वह हमें साधनों के सर्वथा अभाव में भी भवन निर्माण कार्य में बढ़ने के लिये यथेष्ट उत्तेजक सिद्ध हुआ।

नाम मात्र को कुछ निधि परिषद् के पास जो थी उसी से हम लोगों ने भवन निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया। निदान भवन की नींव ही नहीं पड़ गई बल्कि तहखाने का यथेष्ट बड़ा भाग पूरी तरह तैयार हो गया और ऊपर के भवन में भी कुछ कार्य समाप्त हो सका। ऐसी स्थिति में श्री जवाहर लाल जी नेहरू के प्रयाग आने का अवसर हुआ और उन्होंने ४ अप्रैल को भवन का शिलान्यास सम्पन्न करने का भार लेना सहर्ष स्वीकार किया।

४ अप्रैल १९५६ बुधवार को प्रयाग विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान विभाग वाले भवन के चौकोर प्रांगण में भवन शिलान्यास समारोह सम्पन्न होना निश्चय हुआ। साथ ही "जे० के० इन्सटीट्यूट" नाम की नव निर्मित संस्था का भी उद्घाटन होना निश्चित किया गया। ठीक ग्यारह बजे दिन को निश्चित समय पर श्री नेहरू जी समारोह स्थल पर पधारे। पंडाल सम्मानित अतिथियों और परिषद् के सदस्यों तथा निमंत्रित व्यक्तियों से भरा हुआ था। श्री नेहरू जी के आते ही हर्ष और उत्साह की लहर उमड़ पड़ी और सब लोगों ने खड़े होकर श्री नेहरू जी का स्वागत किया। मंच पर एक ओर जे० के० ट्रस्ट की ओर से श्री पद्मपत सिंहानिया थे दूसरी ओर विज्ञान परिषद के सभापति की हैसियत से प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना आसीन थे। बीच में श्री नेहरू जी और प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री भैरव नाथ झा थे।

समारोह प्रारंम्भ होते ही परिषद् के सभापति श्री खन्ना जी की आठ वर्षीय दौहित्री ने मंच पर श्री नेहरू जी को पुष्पहार पहनाया। इसके साथ अन्य दो बालिकाओं ने मधुर स्वर में "जन गन मन अधिनायक जय हे" का राष्ट्रगान प्रारम्भ किया। सब लोग खड़े होकर राष्ट्रगान सुनते रहे।

राष्ट्रगान समाप्त होते ही प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री भैरवनाथ झा ने श्री नेहरू जी का स्वागत करते हुए भाषण दिया तथा जे० के० इंस्टीट्यूट की प्रगति और उसके विकास से अवगत कराया। इसके बाद श्री हीरालाल जी खन्ना ने विज्ञान परिषद भवन के सम्बन्ध में स्वागत भाषण पढ़ा और बतलाया कि किस प्रकार उनके साथ ही स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने भवन के शिलान्यास के लिये श्री नेहरू जी से वचन लिया था और शिलान्यास समारोह के समय वे स्वयं भी उपस्थित रहने के इच्छुक थे परन्तु दुर्दैव के प्रकोप से वे इस समारोह में सम्मिलित होने के पहले ही स्वर्गवासी हो गये।

सम्मिलित समारोह के कारण कुछ बातें श्री नेहरू जी ने जे० के० इंस्टीट्यूट के बारे में भी कहीं।

विज्ञान परिषद भवन के शिलान्यास की चर्चा करते हुये श्री नेहरू जी ने श्री नरेन्द्र देव जी की आदर-पूर्वक स्मृति की और खन्ना जी को उनके उत्साह के लिये साधुवाद दिया। उन्होंने कहा कि विज्ञान परिषद भवन का शिलान्यास करने का वचन पूरा करने के लिये ही वे वास्तव में समारोह में आ सके हैं। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता और महत्व को भी उन्होंने बतलाया। भाषण के पश्चात् श्री नेहरू जी ने जे० के० इंस्टीट्यूट का निरीक्षण किया। फिर विज्ञान परिषद

के नये भवन तक आये। परिषद के सभ्यों और अधिकारियों, प्रिंसिपल हीरा लाल खन्ना, डा० सत्य प्रकाश, डा० गोरख प्रसाद, प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव, डा० रामदास तिवारी, डा० हीरालाल निगम, डा० रामचरण मेहरोत्रा, श्री भैरव नाथ झा आदि ने उनका हार्दिक स्वागत किया। इसके बाद श्री नेहरू जी ने भवन की दीवाल में लगे संगमरमर पर लगा खद्दर का पर्दा हटा दिया और भवन के शिलान्यास का कार्य सम्पन्न किया। फिर वे तहखाना देखने के लिये स्वयं गये। उन्होंने उसके विस्तृत अधो कक्ष (तहखाना) को देखकर प्रसन्नता प्रकट की और उसे वाचनालय बनाने के अत्यंत उपयुक्त बतलाया। भवन निरीक्षण के पश्चात उन्होंने सभ्यों तथा परिषद के अधिकारियों से विदाई ली।

हमारी परिषद के भवन का श्रीगणेश तो बड़ी दृढ़ता और उत्साह के साथ हो सका है परन्तु हमारी अधिक कठिनाइयाँ अभी बाकी ही हैं। अभी केवल कार्यालय वाले भवन के भाग का नीचे का तहखाना बन सका है। ऊपर की एक मंजिल की दीवाल बनकर खड़ी है। लोहे और सीमेंट के अभाव में उसकी छत नहीं बन सकी है। दूसरी मंजिल भी बननी है। मुख्य भवन या व्याख्यान शाला (हाल) की केवल नींव पड़ सकी है। उसके लिए धन और सामग्री सब कुछ ही अभी जुटाने का प्रयास जारी रखना है। अन्य देशों में उदार सम्पन्न पुरुषों की प्रचुर सहायता से उपयोगी एवं ज्ञानवर्द्धक कार्यों की संस्थायें किस तरह बड़ी होती हैं, उसका उदाहरण हमारी विज्ञान परिषद को भी सहायता कर रखने वाले कब मिलेंगे, इसकी कल्पना हमारे मस्तिष्क में अभी तक नहीं आती है। खाली भवन भी बनना ही तो यथेष्ट नहीं है। प्रेस, प्रकाशन, हिन्दी और अंग्रेजी या अन्य विदेशी या देशी भाषाओं में सुलभ लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य का विशाल पुस्तकालय, मासिक पत्र का उत्कृष्ट रोचक रूप लोकप्रिय वैज्ञानिक भाषण आदि कार्यक्रम तो दूर की ही बात अभी तक बने हैं। हम नहीं कह सकते कि हमारी यह सब कल्पनायें पूर्ण होकर परिषद की योजनायें कहाँ तक अग्रसर कर सकेंगी। विज्ञान-प्रेमी और महत्वाकांक्षी उदार दाताओं और कर्मठ कार्यकर्त्ताओं को हमारा समाज किसी दिन अवश्य पैदा करेगा, इसी आशा पर हम चल रहे हैं।

भविष्य की कल्पना को मूर्त रूप में देखने के लिए आज हमारे पास साधनों का सर्वथा अभाव दिखाई पड़ता है फिर भी उसको पूर्ण करने की बलवती आशा हृदय में बनी हुई है। परिषद के जीवन में वह दिन अवश्य ही गौरव का होगा जब हम अपने कार्यालय की सुव्यवस्था के लिए स्थायी कर्मचारी मंडल रख सकेंगे। हमारा विशाल वैज्ञानिक वाचनालय, पुस्तकालय, पुस्तक-विक्रय और प्रकाशन विभाग भलीभाँति संचालित होगा, जहाँ विज्ञान के अनकानेक अंगों पर हम अपनी प्रकाशित और कहीं से भी हिन्दी में प्रकाशित संग्रह योग्य पठनीय रोचक और प्रामाणिक वैज्ञानिक पुस्तकें जनता को पढ़ने और सुगमतया क्रय कर सकने के लिए एक स्थान पर ही सुलभ कर सकेंगे। विज्ञान-कर्मियों के लिए उपयोगी लेखन और पठन सामग्री का विशाल भंडार रख सकेंगे जिनका मनन और अनुशीलन कर सुन्दर वैज्ञानिक साहित्य प्रस्तुत करने की सब तरह की सुविधा होगी। वैज्ञानिक पत्रों के मंगाने और संग्रह रखने की सुविधा होगी, जिनकी सहायता से "विज्ञान" तथा अन्य पत्रों के लिए रोचक वैज्ञानिक लेख प्रस्तुत करने में हमारे लेखकों को अड़चन न होगी। पारिभाषिक शब्दावली निर्माण के उपयुक्त सामग्री और कोशों का सुन्दर संग्रह होगा, लेखों की रोचकता के लिए चित्र निर्माण विभाग होगा। इनके अतिरिक्त किसी दिन हमारे पास आधुनिकतम मुद्रण कला की उत्कृष्ट कलों का भी जमघट होगा जहाँ से अनवरत वैज्ञानिक साहित्य ललित रूप में छप छपकर हिन्दी क्षेत्र में पट सा जायगा।

स्वागत-भाषण

नेहरू जी के स्वागत में प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना द्वारा स्वागत भाषण
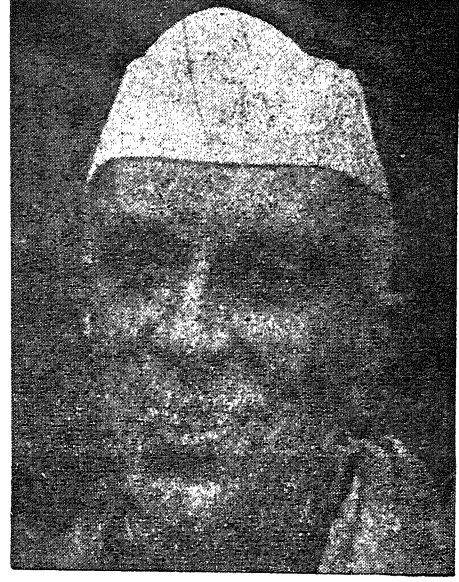
श्री जवाहरलाल नेहरू

पंडित जवाहरलाल जी नेहरू

पंडित जी,

विज्ञान-परिषद् के लिए यह खुशी का दिन है कि आपने आज इस भवन के शिलान्यास करने की कृपा की। आरम्भ से ही हमारा यह विचार था कि इस कार्य के लिए हम आप से कहते। इस सम्बन्ध में हमने जब आचार्य श्री नरेन्द्रदेव जी से सलाह ली तो उन्होंने हमारा उत्साह और भी अधिक बढ़ाया। कितना अच्छा होता यदि वे आज इस समारोह में सम्मिलित हो पाते। जहाँ हमें आपका स्वागत करते हुए बहुत खुशी हो रही है, वहाँ उनकी याद नहीं भूलती। उन्होंने कहा था कि जिस दिन आप इस काम के लिए आयेंगे अगर वह स्वस्थ रह सके, तो वे भी अवश्य आयेंगे। पर ईश्वर की इच्छा कुछ और ही थी।

हमारा विचार इस भवन का बुनियादी पत्थर आप से रखवाने का था। पर जैसी आप ने सलाह दी हमने भवन का काम आरम्भ कर दिया और, जैसा कि आप देख रहे हैं, इमारत बहुत कुछ बन कर खड़ी हो गई है। इस

समय तक हमारा "अन्डर-ग्राउड सेलार" तैयार हो गया है, उसके ऊपर के दो बड़े कमरे खड़े हो गये हैं, पीछे हाल की बुनियाद भी भरी जा चुकी है और सागरपेशा भी तैयार हो गया है। अगर हमें लोहा और सीमेन्ट ठीक से मिल गया होता तो हमारी यह इमारत और भी आगे बढ़ गई होती।

विज्ञान-परिषद् सन् १९१३ में इसी म्योर कालेज के कुछ अध्यापकों द्वारा स्थापित हुआ था। इसके संस्थापकों में श्री महामहोपाध्याय पंडित गंगानाथ झा, प्रोफेसर रामदास गौड़, प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव और प्रोफेसर हमीदुद्दीन थे। आज इनमें से कोई भी जीवित नहीं है। मेरा भी सम्बन्ध इस परिषद् से आरंभ से ही रहा है और मुझे बड़ा संतोष है कि मैं आज भवन के उत्सव में आपको आमन्त्रित कर सका। परिषद् के सभापतियों और उप सभापतियों में पंडित मदनमोहन मालवीय, श्रीमती एनी-बीसेन्ट, सर सी० वाई० चिन्तामणि, सर सुन्दरलाल, डा० गंगानाथ झा, डा० गणेशप्रसाद आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सर जगदीशचन्द्र बोस, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, डा० मेघनाथ साहा, डाक्टर के० एस० कृष्णन् इस परिषद् के सदस्य रह चुके हैं। सन् १९३९ में बाबू सम्पूर्णानन्द के सभापतित्व में इसकी रजत जयन्ती मनाई गई थी।

यह परिषद् अखिल भारतीय संस्था है और लगभग सभी प्रदेशों में हमारे सदस्य हैं। परिषद् ने सन् १९१३ से ही वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकें हिन्दी में निकालना प्रारंभ किया। इन पुस्तकों में से कुछ के उर्दू अनुवाद भी करवाये। इन उर्दू अनुवादों के प्रकाशन में इसी प्रयाग के प्रमुख प्रकाशक लाला रामनरायणलाल का हमें सहयोग मिला। परिषद् ने अब तक पैंसठ छोटी और बड़ी किताबें वैज्ञानिक विषयों की प्रकाशित की हैं। पिछले बयालीस वर्षों से यह एक मासिक पत्रिका 'विज्ञान' भी निकालती रही है जिसने बीस हजार पृष्ठों का वैज्ञानिक साहित्य हिन्दी भाषा को दिया है। परिषद् ने यह सब काम उस समय आरम्भ किया था जब स्कूलों में छोटे दर्जों की पढ़ाई भी अँगरेजी द्वारा होती थी। आज तो देश स्वतन्त्र हो गया है और आपके नेतृत्व में देश का नये ढङ्ग पर निर्माण हो रहा है। आपने देश को बहुत सी "रिसर्च लेबोरेटरीज" दीं। और बहुत से कारखाने और कारोबारों को प्रोत्साहन दिया। यह ठीक ही है कि अब देशी भाषाओं में ऊँचे दर्जे के वैज्ञानिक साहित्य की भी हमें जरूरत होगी और आम जनता के पढ़ने लायक साहित्य भी हमें तैयार करना होगा। हमें विश्वास है कि आपके आदेशानुसार विज्ञान परिषद् भी देश की कुछ न कुछ सेवा कर सकेगी।

विज्ञान परिषद का भवन आपके आनन्द भवन के पड़ोस में ही है और पड़ोसी के नाते हमें और भी अधिक प्रसन्नता है कि आज हम यह शिलान्यास आपके कर कमलों से करवा रहे हैं। हम प्रयाग विश्वविद्यालय के अधिकारियों के अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने "म्योर कालेज" भूमि में ही हमें यह स्थान दिया है।

हीरालाल खन्ना
सभापति
विज्ञान परिषद्

इलाहाबाद
४-४-५६

पंडित जवाहर लाल नेहरू के भाषण का सारांश

भारत के प्रधान मन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने प्रयाग विश्व विद्यालय प्रांगण में नवनिर्मित जे० के० इंस्टीट्यूट भवन का उद्घाटन एवं 'विज्ञान परिषद' का शिलान्यास करते हुए निम्न विचार प्रकट किये :—

मुझे विज्ञान परिषद् से दिलचस्पी है जैसा कि मैंने आचार्य नरेन्द्रदेव से कहा था, मैं उसके शिलान्यास के लिये आज यहाँ आया हूँ। इस सम्बन्ध में मैंने श्री हीरालाल खन्ना से वचन दिया था कि आगामीबार मैं इलाहाबाद जाऊँगा, उसका पत्थर ठीक करूँगा। आज मैं यहाँ आया हूँ और यह चाहता हूँ कि विज्ञान परिषद ऊपर हो और अपने उन उद्देश्यों को पूरा करें।

जब मैं कुछ दिन पहले दो-एक बार यहाँ आया था तो इस इन्स्टीट्यूट में न फर्नीचर था और न उसमें पढ़ने या पढ़ाने वाले ही थे। बड़ी खुशी की बात है कि अब उसमें कुछ फर्नीचर हो गया है और उस पर कुछ लोग बैटने भी लगे हैं।

आज का जमाना बहुत तेजी से आगे बढ़ने का है। जब कहीं हम किसी बात में ढिलाई करेंगे तो काम न तेजी से होगा और न मजबूती से। हमें समझना है कि जमाना क्या है, किस दुनिया से हम गुजर रहे हैं। दुनिया की खबरें आप अखबारों में पढ़ते हैं। उसमें एटम बम का नाम सुना है। वह ऐटम बम दुनिया के बदलने की एक निशानी है। यह छिपी हुई ताकत दुनिया के हाथों में आ गयी है, इससे इन्सान के रहन-सहन पर गहरा असर पड़ा है।

आप सब कुछ पाठ्य पुस्तकों एवं अन्य पुस्तकों में पढ़ते हैं, वह सब इस काल की वस्तु नहीं है। यह सब पुरानी बातें हैं। सारी चीजें बदल गयी हैं, अब एक नये ढङ्ग से सोचना और समझना है।

यह एक ऐसा जमाना है जिसमें राजनीति एवं आर्थिक बातों पर बड़ा असर पड़ा है। हमें समय के अनुसार बहुत सी बातें बदलनी पड़ेंगी। पिछले सौ-सवा सौ वर्षों में बहुत सी बातों की चर्चा हुई है, उसमें कम्युनिज्म, सोशलिज्म, गांधीज्म कई इज्म (वाद) आये और कुछ इधर झुके कुछ उधर झुके। लोगों ने विभिन्न रास्ते अपनाए।

पुराने जमाने के साथ साथ नये जमाने को समझें तभी हम उचित ढङ्ग से कार्य कर सकेंगे। कल की बहुत-सी बातें आज की दुनियाँ में बदली हैं, पिछले सौ दो सौ वर्षों में विज्ञान और टेक्नालाजी ने बड़ी उन्नति की है। औद्योगिक क्रान्ति हुई है, जिससे दुनिया का सब नक्शा बदल गया।

हमारे भारत का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है इसने बहुत ऊँच-नीच देखें हैं, किन्तु पिछले डेढ़ सौ वर्षों से बुनियादी परिवर्त्तन हुआ है। इन्सान की जिन्दगी काफी बदल गयी है और अभी काफी बदलेगी। आज ऐटम और उद्जन जैसी भयानक शक्ति की उत्पत्ति हुई है। जिसमें दुनिया के खत्म कर देने की क्षमता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने दिमाग से तेजी से समझें कि यह कौन सी ताकत है जो तेजी से परिवर्त्तन लाती जा रही है।

आज सबसे बड़ा सवाल यह है कि दुनिया में इन्सान मालिक है या मशीन? आज मशीन इन्सान पर हावी होती जा रही है, जितने 'वाद' (इज्म) हैं वे पुराने पड़ते जा रहे हैं, उन वादों में कुछ नई ऐसी बात नहीं, किन्तु उन्हें हमें नये ढङ्ग से सोचना होगा।

पञ्च वर्षीय योजना के संबंध में हम दुनिया के विभिन्न विचारों एवं दृष्टिकोणों के लोगों से मिले। उनके अनुभवों को जाना और समझा। जितने लोगों से मिले उससे यही पता चला कि दूसरों की नकल करके हम आगे नहीं बढ़ सकते। भारत को अपने ढङ्ग से आर्थिक ढाँचे को बनाना है।

प्राचीन काल में विचार शक्ति पर्याप्त थी। किन्तु अब सृजनात्मक विचारों की बड़ी कमी हो गयी है। किसी राष्ट्र की ताकत उसको सृजनात्मक शक्ति एवं विचारों से जानी जा सकती है। उसकी उन्नति अवनति उसके इतिहास एवं प्राचीन संस्कृति से जान सकते हैं। वेदों के तीन-चार शब्दों के लिये मोटी पोथी लिखनी पड़ती है। कालिदास आदि अनेक संस्कृत के विद्वानों की कृतियों को देखने से पता चलता है कि प्राचीनकाल में भारत में सृजनात्मक शक्ति कितनी प्रबल थी। आज कल वह शक्ति ढीली पड़ गयी है।

आपने कहा कि युग केवल विज्ञान और टेक्नालाजी का ही नहीं वरन चरित्र एवं क्षमता का भी युग है। यदि हममें चरित्रबल नहीं है और हम मूलभूत बातों पर नहीं चलते तो अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकते और न जाने कहाँ बह जायँ ?

पुराना सबक याद करने से हम उन्नति नहीं कर सकते किसी की नकल करके हम शक्ति शाली नहीं हो सकते, अखबारों द्वारा मालूम ही हुआ है कि रूस ने एक नया करवट लिया है, उसने अपने सारे ढङ्गों को बदल दिया है, वह एक जानदार मुल्क है। किन्तु जो सदा उसकी नकल करते रहे, उसके इस करवट से उनके पैर के नीचे जमीन खिसक गयी है !

आज दुनिया में जो सवाल है, उसका जवाब किसी किताब में नहीं मिलेगा, उसके लिए हमें अपनी बुद्धि से ढूढ़ना होगा।

विज्ञान को आम जनता को समझाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि उसे अपनी भाषा में समझाया जाय, तथा इस दिशा में अपनी भाषा का प्रयोग किया जाय। हम किसी दूसरे की बुद्धि के बल पर आगे नहीं बढ़ सकते।

भारत को अपने ढङ्ग के आर्थिक ढाँचे का निर्माण करना होगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम बदलते हुए नये जमाने को समझें और अपनी बुद्धि को तलवार की धार के समान तेज बनायें जिससे कठिन से कठिन सवालों की गाँठ को सरलता पूर्वक काट सकें।

राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टंडन

विज्ञान परिषद् की गतिविधियों पर आपका अनुग्रह सदैव रहा है।
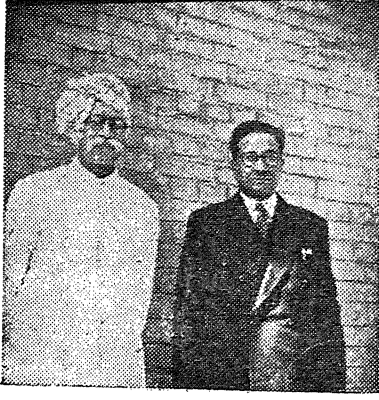
प्रो० सालिगराम भार्गव डा० कृष्णन के साथ
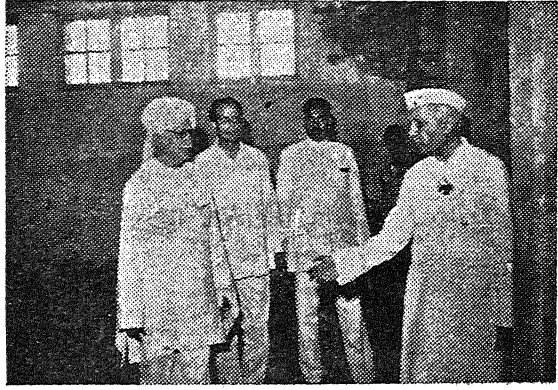
परिषद् भवन के तहखाने का श्री नेहरू जी द्वारा निरीक्षण

प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना, सभापति, विज्ञान परिषद
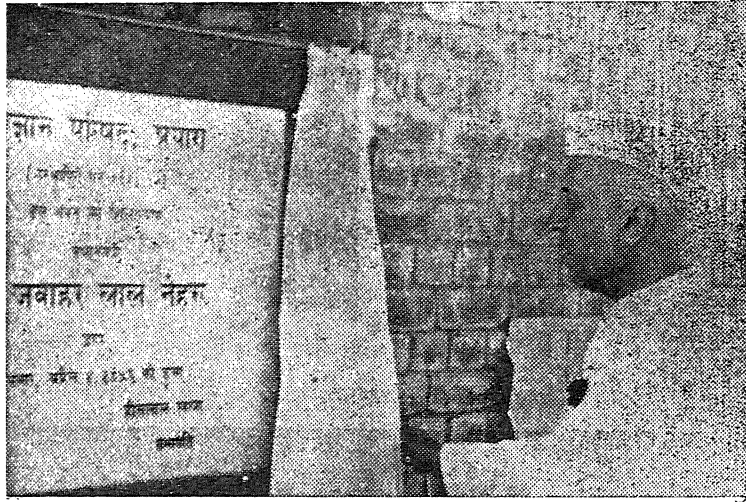
परिषद भवन का श्री नेहरू जी द्वारा शिलान्यास
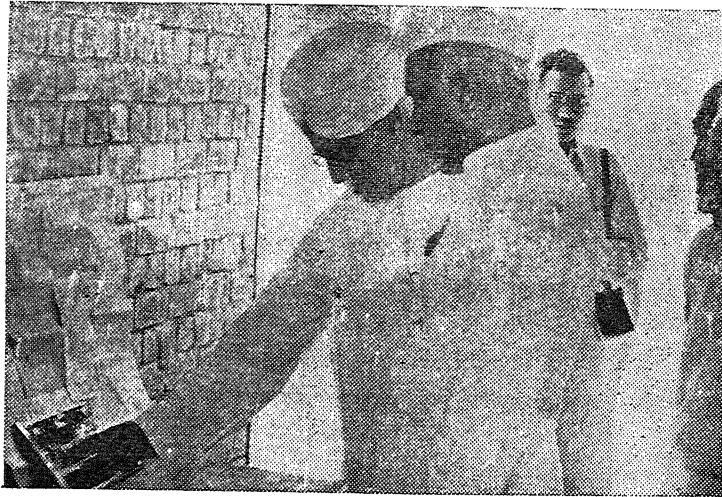
भवन के मानचित्र का नेहरू जी द्वारा निरीक्षण

विज्ञान परिषद् और उसका भविष्य

प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना, सभापति, विज्ञान परिषद

यह वैज्ञानिक युग है। इससे हमारे दैनिक जीवन में विज्ञान की साधारण जानकारी एक बहुत आवश्यक वस्तु है। संसार के उन्नत देशों में विज्ञान की उन्नति और खोज में बड़े-बड़े वैज्ञानिक रात दिन लगे हुए हैं जिनकी जन साधारण को भी जानकारी कराने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। वास्तव में विज्ञान् की शिक्षा तो देश के प्रत्येक युवक के लिए आवश्यक मानी जानी चाहिए। सर रिचर्ड ग्रिगेरी का यह कथन सब देशों के लिए सत्य माना जाता है :—

'यह आज समझने का समय है कि कोई भी व्यक्ति उस समय तक पूर्ण शिक्षित नहीं माना जा सकता जब तक कि उसे विज्ञान के सिद्धान्तों से कुछ परिचय न प्राप्त हो चुका हो। जो शिक्षण केवल साहित्यिक संसार में विज्ञान के बिना ही समाप्त होता है, वह उसी प्रकार अधूरा होता है जिस प्रकार वह कोरा वैज्ञानिक है, जिसमें स्पष्ट अभिव्यक्ति की शक्ति न हो।'

विज्ञान के इस सार्वभौम प्रभाव को जहाँ अन्य देशों के विद्वानों ने समझा है वहाँ हमारे देश के विद्वानों, साहित्यिकों और महान् राजनीतिक नेताओं ने भी इसकी महत्ता कम नहीं समझी। इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर एक ओर जहाँ हम विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को 'विश्व परिचय' की रचना कर युवकों और साधारण जनता में विज्ञान के प्रचार के लिए उत्सुक देखते हैं, वहाँ अपने देश के महान् राजनीतिक नेता श्री नेहरू जी को अपनी पुत्री के बहाने लिखे गए भारत के सभी युवकों और भावी नागरिकों के लिए भूगर्भ विज्ञान सरीखा दुरूह विषय अत्यन्त ही मनोरंजक और सरल रूप में 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' में लिखा देखते हैं।

महात्मा गाँधी ने भी राजनीतिक गुत्थियों के सुलझाने में निरन्तर संलग्न रहते हुए भी स्वास्थ्य के वैज्ञानिक सिद्धान्तों को अपने 'आरोग्य-साधन' नामक पुस्तक में लिखकर प्रचारित किया था।

प्रयाग की विज्ञान परिषद् भी गत ४३ वर्षों से देश के भावी नागरिकों तथा जनता को विज्ञान के सिद्धान्तों का सरल रूप में ज्ञान कराने के उद्देश्य से वही काम करती आ रही है।

आज हम यह कहने की आवश्यकता नहीं समझते कि आज से ४३ वर्ष पूर्व किस प्रकार की कठिनाइयों में साधनों का बिल्कुल अभाव होते हुए भी हम लोगों ने देशी भाषा में विज्ञान का साहित्य प्रचारित करने के लिए यह संस्था स्थापित की। उन दिनों अंग्रेजी की शिक्षा थोड़े लोग ही प्राप्त करते थे। उनमें भी विज्ञान का शिक्षण पाने वालों की संख्या और भी थोड़ी होती थी। शासन के ऊँचे पदों पर विदेशी शासक तो थे ही, शिक्षण संस्थाओं में भी ऊँचे पदों पर अंग्रेज लोग ही रहते थे। फिर भी हममें से कुछ लोगों ने हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य निकालने और भाषण दिलाने के लिए यह संस्था खड़ी की। 'विज्ञान' पत्र निकालने का विचार करने वाली समिति में मैं भी एक सदस्य था। कितनी हिचकिचाहट से हम लोगों ने इसके निकालने का निश्चय किया, उसका आज के समय से अनुमान नहीं लगाया जा सकता। तब से अब तक अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए किसी प्रकार हमारा 'विज्ञान' पत्र जीवित है और संस्था भी खड़ी है, यह हम सब के लिए बड़े संतोष की बात है। इतने समय जो विज्ञान सम्बन्धी साहित्य 'विज्ञान' पत्र ने अपनी संस्था द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है, वह सबके सामने है। हमने तो उर्दू में भी मासिक पत्र निकालने का साहस किया था, परन्तु ग्राहकों का बहुत अधिक

अभाव मिला। फिर भी उर्दू में दो या तीन पुस्तकें अनुवादित कर प्रकाशित कराई गयीं।

हमारी परिषद् ने वैज्ञानिक विषयों पर सरल रूप में जनता के सम्मुख अनेक विद्वानों के भाषण कराने का क्रम भी बहुत दिनों तक जारी रक्खा। जनता को याद होगा कि माननीय मालवीय जी के सभापतित्व में प्रोफेसर शालिग्राम भार्गव ने अर्कमीदिस के सिद्धान्त पर भाषण किया। एक बार लार्ड मेस्टीन ने डा० गणेशप्रसाद का भाषण 'गणित की खोज' विषयक को सुन कर यह कहा कि उन्हें आशा नहीं थी कि हिन्दी में इतना सुन्दर लेख हो सकता है। इसी प्रकार बहुत से लोग भाषण किया करते थे।

हमको भी रायल इंस्टिट्यूशन के अनुसार काम करना है। समय-समय पर हमारे यहाँ के कार्य-कर्त्ताओं को सरकार के साथ सहयोग करना चाहिए और वैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रचार करना चाहिए। सब को यह मालूम है कि डा० कोठारी, डा० निहालकरण सेठी, डा० गोरखप्रसाद, डा० ब्रजमोहन, डा० सत्यप्रकाश आदि विद्वान् सरकार से सहयोग करते हैं। लेकिन हम लोगों की धारणा है कि वे कार्याधिकारी के रूप में आगे आयें। हम लोग यह निश्चय करें कि हमारी शाखायें हर एक युनिवर्सिटी टाउन में हों। नगर में भाषण हों और वैज्ञानिक सिद्धान्तों के लिए जनता में रुचि उत्पन्न की जाय। प्रत्येक बड़े महाविद्यालय, विश्वविद्यालय या विज्ञानपीठ में हम स्वतन्त्र रूप की विज्ञान परिषद् स्थापित करें। हम केन्द्रीय रूप में संगठन कर एक स्थान के किसी विषय के विशेषज्ञ और उत्साही वैज्ञानिक को दूसरी संस्थाओं में भाषण देने के लिए निमंत्रित कर विज्ञान का प्रचार करने में विशेष सफल हो सकते हैं। अनेक विज्ञान-प्रेमी जहाँ विषयों का सरल रूप में प्रतिपादन करने वाले लेख, भाषण या ग्रंथ पढ़ने अथवा सुनने के लिए उत्सुक हो सकते हैं, वहाँ बहुत से वैज्ञानिक जनता में विज्ञान प्रचार की उत्सुकता रखते हुए भी हिचक के मारे निष्क्रिय रह सकते हैं। उन सब को हम विज्ञान-सेवा का प्रचुर अवसर दे सकते हैं।

इस प्रकार सरल वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण और प्रकाशन भी सब के सहयोग से संभव हो सकता है। हम विज्ञान के अधिकारी विद्वानों को जहाँ साहित्य-निर्माण के लिए प्रेरित कर सकते हैं, वहाँ अन्य प्रकाशकों को भी ऐसा साहित्य प्रकाशन के लिए सहज में तैयार कर सकते हैं।

[विज्ञान परिषद् के ४४ वर्ष—पृष्ठ १४ का शेषांश]

एक दूसरी आयोजना हमने एक वैज्ञानिक ज्ञान कोष (इनसाइक्लोपीडिया) के प्रकाशन की बनायी थी, जिसे १०-१२ भागों में छपने में लगभग ३ लाख रुपये का व्यय होगा। इस सम्बन्ध में सारे प्रार्थना पत्र उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा केन्द्रीय सरकार को भेज दिये गये हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना में यदि इस प्रकाशन के लिये प्रतिवर्ष कुछ न कुछ रुपया मिलता रहा तो इस महान कार्य को हम सम्पन्न कर सकेंगे।

विज्ञान परिषद का कार्य अब तक और अधिक सुचारु रूप से न चल सकने का कारण हमारा अपना विज्ञान भवन का न होना था। हमारे सभापति श्री हीरा लाल जी खन्ना के प्रयत्न से भवन निर्माण का कार्य भी अच्छी प्रगति से हो रहा है। हमारे भारतवर्ष के प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू इस भवन का शिलान्यास कर रहे है। आशा है कि पण्डित जी का अशीर्वाद प्राप्त होने से भवन निर्माण कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा तथा परिषद के द्वारा वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन तथा प्रसारण में दिन पर दिन वृद्धि होगी।

विज्ञान के ४१ वर्ष

श्री जगपति चतुर्वेदी

प्रयाग के विज्ञान परिषद् की स्थापना १६१३ ई० में हुई थी। स्थापना के दो वर्षों पश्चात् अप्रैल १६१५ में विज्ञान मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। संपादकों में वैज्ञानिकों की जगत् दो साहित्यिक ही थे। एक तो थे पं० श्रीधर जी पाठक जो गोल्डस्मिथ की कविताएँ मधुर व्रजभाषा में अनुवादित करने के लिए यश प्राप्त कर चुके थे, दूसरे थे लाला सीताराम बी० ए० जिनकी साहित्य सेवाओं को हिन्दी जगत अच्छी तरह जानता है। किन्तु ये दोनों ही विद्वान विज्ञान की जानकारी से प्रायः कोरे ही थे। मालूम पड़ता है उन दिनों के विज्ञान-वेत्ता विद्वानों को हिन्दी के पाठकों को अपनी बात सुगम रूप में सुना या समझा सकने की क्षमता में यथेष्ट हिचक और सन्देह था, इसी कारण इन साहित्यिकों के सम्पादन में "विज्ञान" निकालने का निश्चय किया गया।

"विज्ञान" के प्रथम साहित्यिक सम्पादकों को भाषा के सम्बन्ध में जहाँ बल प्राप्त था, वहाँ विषय की जानकारी के अभाव का पूर्ण ज्ञान था। किन्तु, कर्त्तव्य निभाने के भार को उन्होंने अपने दुर्बल कंधों पर लादने से मुख नहीं मोड़ा। विज्ञान के हिन्दी या अन्य देशी भावनाओं में प्रचार की आवश्यकता और कार्य की कठिनाइयों का वर्णन सम्पादकों ने निम्न-शब्दों में किया था :—

"जैसे मनुष्य अपने शरीर के अंग-अंग को व्यायाम से पुष्ट करता और बली बनाता है वैसे ही भाषा के अंग-अंग को भी बलवान और पुष्ट रखने की आवश्यकता है.........खेद की बात है कि और अंगों की अपेक्षा हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक अंग अत्यन्त बलहीन और अपूर्ण है। इस अपूर्णता की पूर्ति के लिए इस पत्र का जन्म हुआ है।"

कठिनाइयाँ

अपनी कठिनाइयों का पूर्ण अनुभव करते हुए सम्पादकों ने पुनः लिखा थाः—

"अधिकांश वैज्ञानिक विषय हमारी भाषा के लिए नवीन हैं उनको पाठकों के सामने उपस्थित करने में हमें अनेक गढ़े हुए शब्दों का आश्रय लेना पड़ेगा जिनसे लेख की रोचकता घट जानी सम्भव है। साथ ही साथ विषय भी सरल नहीं हैं। कठिन विषयों को सरल भाषा में मनोरंजक रीति पर वर्णन करना साधारण लेखकों का काम नहीं है। साहित्य के गम्भीर विद्वान, रसिक और मर्मज्ञ ही दुरूह विषयों को रोचक बना सकते हैं सो दुर्भाग्यवश विज्ञान सेवी साहित्य की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं पाते और साहित्य-सेवियों ने बहुधा विज्ञान का अध्ययन नहीं किया है। ऐसी दशा में पाठकों का मनोरंजन जितना साधारण मासिक पत्र करते हैं वा कर सकते हैं, उतनी क्षमता हम में होना कठिन है। तब भी आशा है कि कुछ दिनों में हम पाठकों के लिए इस पत्र को कुछ रोचक बना सकेंगे और यह भी आशा है कि विद्याव्यसनी पाठक इस पत्र की उपयोगिता समझ कर पूरी मनोरंजकता न होने पर भी इसके लेखों को हृदयंगम करने तथा विज्ञान के प्रचार का प्रयत्न करेंगे।"

विज्ञान के प्रचार और साहित्य-निर्माण की आवश्यकता विज्ञान-सेवियों ने अच्छी तरह अनुभव की थी। यही कारण है कि साहित्यिक लालित्य और शब्द-सौष्ठव की कला का अभ्यास न होने पर भी विज्ञान-सेवियों ने विज्ञान के कलेवर को अपनी सुन्दर मनोरंजक वैज्ञानिक रचनाओं से भरना प्रारंभ किया। विज्ञान के सभी लेख विज्ञान के स्नातक और अध्यापक ही प्रारम्भ से लिखते रहे।

प्रो० रामदास गौड़

स्वर्गीय प्रो० रामदास जी गौड़ ने विज्ञान-सेवियों की ओर से हिन्दी पाठकों को विज्ञान प्रचार के लिए विज्ञान के

प्रथम अंक में ही जो लेख लिखा था उसके एक उद्धरण को हम देते हैं:—

"इस बात को प्रत्येक भारतीय याद रक्खे कि संसार के रगड़े में वही जाति बची रहती है जिसमें सबसे अधिक योग्यता है। भारतीयों को यदि संसार में बना रहना, बचा रहना है तो उनमें सबसे अधिक योग्यता का आना आवश्यक है।..........सबसे उत्तम देश-सेवा इस समय विज्ञान का प्रकाश फैलाना है, प्रत्येक भारतीय में जो योग्यता की मुंह-बंधी कली मुरझा रही है, उसे खिला देना है, जो विज्ञान धन उनके शरीर में भरा हुआ है, उसे देखने के लिए विद्या की आँखें खोल देनी हैं, जो हनुमान अपना बुद्धिबल भूलकर भोला भाला लाचार बन बैठा है, उसे उस बल की याद दिलाना है, जिससे अविद्या के महासागर को सहज ही फांद कर अपनी हरी हुई महारानी शिल्पकला की सुध लेवे, बल्कि उसको विज्ञान के बल से फिर अपने देश में लाकर प्रतिष्ठित करे।

"..........हमारी प्रार्थना हमारी अपील देश के ऊपर तन-मन-धन वारने वाले अपनी मातृभाषा पर प्राण निछावर करने वाले उत्साहियों से है कि देश की वर्तमान आवश्यकताओं पर विचार करके अपना एक मात्र ध्येय, अपना परम उद्देश्य, अपना अकेला लक्ष्य विज्ञान का प्रचार, शिक्षा का प्रसार रक्खें।"

ऊपर के वाक्यों में एक विज्ञान-सेवी की कितनी गंभीर विज्ञान-प्रचार और सेवा भावना निहित है। इन उत्कट भावनाओं से प्रेरित हुए उत्साही कार्यकर्त्ताओं, विद्वानों और विज्ञान-सेवियों से ही राष्ट्र-निर्माण के बड़े कार्य सम्पन्न होते हैं।

विज्ञान की बहुमुखी सेवायें

इन उदात्त तथा प्रबल प्रेरक भावनाओं ने ही विज्ञान-सेवियों को विज्ञान-प्रचार में अग्रसर होते रहने के लिए, शक्ति प्रदान की जिसके बल पर संसार के सब देशों के विज्ञान-कर्मी आगे बढ़ते रहते हैं। निरंतर भारी कठिनाइयाँ उठाते रहकर हमारे हिन्दी-प्रेमी विज्ञान-सेवियों ने वैज्ञानिक साहित्य सृजन की जो अटूट शृंखला निर्मित करना जारी रक्खा उसके ही फल स्वरूप आज विज्ञान ४१ वर्षों तक निकलता रह कर जीवित है और विज्ञान की बहुमुखी सेवाएँ कर सका है। जिन विद्वान् सम्पादकों, लेखकों, आलोचकों तथा प्रबन्धकों ने इस विज्ञान सेवा में हाथ बंटाया है उनकी सूची लम्बी है।

जब विज्ञान परिषद् ने वैज्ञानिक पुस्तिकाएँ और विज्ञान मासिक पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया, उस समय हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य नहीं ही के बराबर था। चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस, विज्ञान हुनर माला आफिस, बनारस, गुरुकुल, कांगड़ी और अन्य छोटे-मोटे प्रकाशकों की कुछ छोटी-मोटी वैज्ञानिक पुस्तकें ही प्रकाशित हो सकी थीं। इनमें भी स्कूली उपयोग की ही मामूली वैज्ञानिक सामग्री थी। चन्द्र प्रभा प्रेस से लिथों की छपी कुछ छोटी पुस्तकें नार्मल स्कूलों में विज्ञान गणित आदि की शिक्षा के लिए छपी थीं। पं० लक्ष्मी शंकर मिश्र एम० ए० शिक्षा विभाग में इन्स्पेक्टर थे। कदाचित् चन्द्रप्रभा प्रेस उनका अपना निजी प्रेस था। गुरुकुल कांगड़ी की पुस्तकें वहाँ के छात्रों को विज्ञान की शिक्षा हिन्दी भाषा के द्वारा देने से लिए निकली थी। इस कारण हिन्दी में जन साधारण के लिए वैज्ञानिक साहित्य प्रस्तुत करने का प्रथम कार्य विज्ञान और परिषद् का ही था।

विज्ञान परिषद् के ४४ वर्ष

डाक्टर रामदास तिवारी, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद

आज से ४४ वर्ष पूर्व इस बात को कौन सोच सकता था कि इस देश में विज्ञान की उच्च शिक्षा हिन्दी के माध्यम से संभव हो सकेगी। विश्वविद्यालयों की तो बात ही क्या हाई स्कूल तथा मिडिल कक्षाओं में भी विज्ञान ही नहीं बल्कि भूगोल, इतिहास व गणित ऐसे विषय भी अंग्रेजी में पढ़ाये जाते थे। अनेक विश्वविद्यालयों में तो हिन्दी, उर्दू, संस्कृत तथा फारसी की भी पढ़ाई अंग्रेजी में होती थी।

स्पष्ट है कि हिन्दी माध्यम से उच्चतर शिक्षा एक स्वप्न ही थी। परन्तु इस स्वप्न को सत्य करने का पहला कदम महमना पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने उठाया था, जब कि उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना प्रयाग में की जिसका मुख्य उद्देश्य यह था कि अनेक विषयों के पठन पाठन का माध्यम हिन्दी हो। इसके परिणाम स्वरूप म्योर सेन्ट्रल कालेज इलाहाबाद के कुछ अध्यापकों व छात्रों में इस बात की चर्चा होने लगी कि क्या वैज्ञानिक साहित्य देशी भाषाओं में नहीं हो सकता। अतः १० मार्च १९१३ को महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, प्रोफेसर हमीदउद्दीन, बाबू रामदास गौड़ और प्रोफेसर सालिगराम भार्गव ने एक मीटिंग करके यह निश्चय किया कि देशी भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य की रचना और प्रचार का काम संगठित रूप से चलाने के उद्देश्य से वर्नाक्यूलर साइन्टिफिक लिटरेचर सोसाइटी" की स्थापना की जाय, जिसका नाम डाक्टर गंगानाथ जी झा ने विज्ञान परिषद्, तथा मौलवी हमीदउद्दीन ने 'अंजुमन सनाअव फनून' रक्खा।

आज अपने देश में वैज्ञानिक शिक्षा का पठन पाठन हिन्दी में देखकर प्रसन्नता होती है, परन्तु इस कार्य के आरम्भ का पहला श्रेय विज्ञान परिषद् ही को है, और जब हिन्दी भाषा में विज्ञान की शिक्षा का इतिहास लिखा जायेगा तो इन दिवंगत आत्माओं का नाम जिन्होंने सबसे पहले इस कार्य का बीड़ा उठाया था, स्वर्ण अक्षरों से लिखा जायगा।

स्थापना के बाद

विज्ञान परिषद् की संस्थापना हो जाने के बाद इसके संचालन कार्य में म्योर सेन्ट्रल कालेज के प्रिन्सिपल जे० जी० जेनिंग्स तथा प्रोफेसर ई० जी० हिल तथा जे० जे० ड्यूरेक से भी बहुत सहायता मिली। कालेज के अन्य हिन्दुस्तानी अध्यापकों की तो पूरी सहानुभूति थी ही। अतः इसका पहला अधिवेशन तथा पदाधिकारियों का चुनाव ३१ मार्च १९१३ को हुआ। इसके पश्चात् दिन पर दिन उत्साह बढ़ता गया तथा कार्य की वृद्धि होती गयी।

उस समय से अब तक विज्ञान परिषद् का मासिक पत्र विज्ञान लगातार निकलता रहा है। और इसके द्वारा विज्ञान के नये-नये चमत्कार तथा अन्वेषण हिन्दी भाषा में जन साधारण को प्राप्त होते रहे हैं। यह गौरव की बात है कि इस पत्रिका का प्रकाशन हम लगातार करते आये हैं। भारतवर्ष के इस नव निर्माण युग में हमें इस पत्रिका को और भी रोचक तथा लाभप्रद बनाना है। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की पत्रिकायें स्वावलम्बी नहीं हो सकतीं। इस का प्रकाशन राज्य सहायता पर निर्भर रहता है। हमें उत्तर प्रदेश सरकार से २००० रुपये प्रतिवर्ष अनुदान प्राप्त होता है। और इसका श्रेय स्वर्गीय सी० वाई० चिन्तामणि जी को है जो हमारे परिषद् के सभापति भी थे, और जिन्होंने अपने शिक्षा-मंत्री काल में इस अनुवाद देना प्रारम्भ किया था। विज्ञान तथा विज्ञान परिषद् की वृद्धि के साथ अब यह अनुदान पर्याप्त नहीं

होता है। इसलिये हमारा कार्य सुचारु रूप से चलने के लिये ५,००० रुपये प्रतिवर्ष अनुदान की आवश्यकता है।

पुस्तकों का प्रकाशन

विज्ञान के प्रकाशन के साथ-साथ कुछ वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाशन की ओर भी ध्यान दिया गया। सबसे पहली पुस्तक विज्ञान प्रवेशिका प्रोफेसर सालिगराम जी भार्गव और प्रोफेसर रामदास जी गौड़ ने लिखी जिसके प्रकाशन पर विज्ञान परिषद् के उद्देश्यों तथा कार्यों की समालोचना करते हुये अनेक पत्र पत्रिकाओं ने इसकी प्रशंसा की और प्रोत्साहन दिया। कार्य में सबसे बड़ी कठिनाई पारिभाषिक शब्दों की थी। अतः भिन्न भिन्न विषयों की समितियाँ बना दी गयीं जिन्होंने पारिभाषिक शब्द-निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। प्रोफेसर सैयद मोहम्मद अली नामी के प्रयत्न से विज्ञान प्रवेशिका भाग १ का उर्दू अनुवाद भी तैयार किया गया जिसका प्रकाशन लाला रामनारायण जी को दिया गया। यह हमारी पहली पुस्तक थी। इसके बाद हमारे आज तक के प्रकाशनों की संख्या ७० के लगभग है। इसमें से सूर्य सिद्धान्त, समीकरण मीमांसा, सरल विज्ञान सागर, फोटोग्राफी' फसल के शत्रु, शिशु पालन, मधुमक्खी पालन, घरेलू डाक्टर' उपयोगी नुस्खे, सांपों की दुनिया, राष्ट्रीय अनुसन्धान शालायें, गर्भस्थ शिशु की कहानी तथा रेलइंजन परिचय विशेष उल्लेखनीय हैं।

विज्ञान परिषद का साहित्य क्षेत्र में यह नया प्रयोग था और इसने सामान्य लोगों की इस धारणा को कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक विषयों के प्रतिपादन की क्षमता नहीं है, निर्मूल सिद्ध कर दिया। परिषद् में अनेक उदीयमान लेखकों को यह अवसर दिया कि वे वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखें और पुस्तकों की रचना करें। परिषद के तत्वावधान में लेखकों ने लेखन कला की शिक्षा प्राप्त की और परिषद से ही नहीं अन्य स्थलों से भी हिन्दी संसार को अच्छा साहित्य भेंट किया। हमारी पुस्तकों के अनेक लेखकों की अपनी पुस्तकों पर विभिन्न सरकारों तथा संस्थाओं से अनेक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। इस प्रयोग के फलस्वरूप अब यह स्पष्ट हो गया है कि हम विश्वविद्यालयों की उच्च शिक्षा भी हिन्दी माध्यम द्वारा दे सकते हैं।

आज तो प्रयाग, लखनऊ, काशी, सागर, नागपुर आदि के विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक शिक्षा हिन्दी माध्यम द्वारा दी जाने लगी है, तथा प्रश्न पत्र भी हिन्दी में आने लगे हैं और उचित सहित्य की रचना का कार्य भी प्रारम्भ हो गया है। परिषद् के कार्य और अनुभव से प्रेरणा लेकर वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली में एकरूपता लाने का भी प्रयास कई स्थानों पर आरम्भ हो गया है। केन्द्रीय सरकार की ओर से इस दिशा में जो कार्य हो रहा है उसे भी परिषद् के तैयार किये गये क्षेत्र से समुचित सहायता मिली है और हमारे परिषद के अनेक प्रतिष्ठित सदस्य इन पारिभाषिक शब्दावली निर्माण समितियों के सदस्य हैं। हमारे पास प्रकाशन के लिये बहुत सी सामग्री है। परन्तु धनाभाव के कारण हम इस कार्य को और आगे बढ़ाने में असमर्थ रहे हैं।

परिषद् बहुत दिनों से इस बात का विचार करती रही है कि एक चतुर्मासिक अनुसन्धान पत्रिका निकाली जाय, जिसमें गवेषणात्मक लेख छपें। हमारे देश में अभी इस प्रकार की कोई पत्रिका नहीं है। इसमें अनुसन्धान सम्बन्धी लेख तो हिन्दी में छपेंगे, परन्तु लेखों का सारांश हिन्दी तथा अंग्रेजी और यदि सम्भव हुआ तो फ्रेन्च व जर्मन में भी छपेंगे जिससे सारांश बनाने वालों को सरलता हो और हमारे अनुसन्धान संसार के वैज्ञानिक क्षेत्र में स्थान पा सकें। अनेक देशों में इस प्रकार की पत्रिकायें छपा करती हैं। इतने थोड़े काल में चीन ने अपनी भाषा में अनुसन्धान पत्रिका निकालना प्रारम्भ कर दिया। स्वतन्त्र भारत में इस प्रकार की वैज्ञानिकपत्रिका का निकालना परम आवश्यक है, जिसके द्वारा हमारे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध अधिक प्रौढ़ होंगे। इस प्रकार की पत्रिका निकालने के लिये हमने उत्तर प्रदेश की वैज्ञानिक अनुसन्धान समिति से ५,००० रुपया प्रतिवर्ष का अनुदान मांगा था, जिसे कमेटी ने अपनी सिफारिश के साथ उत्तर प्रदेश सरकार को भेजा है। यदि हमें यह अनुदान मिल गया तो हम इस पत्रिका को शीघ्र ही प्रकाशित कर सकेंगे।

[(शेष पृष्ठ १० पर)]

परिषद और उसका प्रकाशन कार्य

प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव

अब से प्रायः आधी शताब्दी पूर्व महामना पं० मदन मोहन मालवीय ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना की। उस समय हिन्दी की सेवा और उन्नति करने के उत्साह की लहर साधारणतः सर्वत्र भारत में और विशेषतः प्रयाग में बड़े वेग से उठी। प्रयाग में विद्यार्थियों में हिन्दी को सभी कामों में प्रथम स्थान देने की चेष्टा जागृत हो गई। यहाँ के अध्यापकों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा और वे भी हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने की योजनाएँ बनाने लगे।

अध्यापक स्वर्गीय बा० रामदास गौड़
[विज्ञान परिषद के जन्मदाता]

पहले से जो सज्जन इस कार्य में लगे हुये थे उनको बड़ा प्रोत्साहन मिला। इनमें स्वर्गीय रामदास गौड़ का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। गौड़ जी जब स्थानीय कायस्थ पाठशाला में रसायन के अध्यापक थे, तभी उन्होंने 'भारी भ्रम' नाम के ग्रंथ का हिन्दी में अनुवाद किया था। १९१२ में उन्होंने और गोपाल स्वरूप भार्गव ने सरस्वती में उज्जन और रासायनिक नियमों पर लेख दिये। स्वर्गीय पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इनके प्रयत्नों की सराहना की। द्विवेदी जी कई वर्ष पहले से ही प्रकृति निरीक्षण पर अपनी सरस्वती में टिप्पणियाँ देते रहे थे। गौड़ जी का साथ प्रो० सालिग्राम जी से म्योर कालिज में आकर
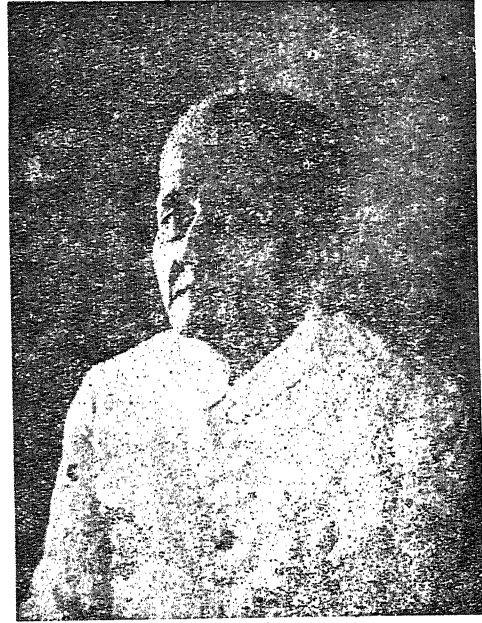
महामहोपाध्याय स्वर्गीय डा० गंगानाथ झा
[सभापति १९२७-१९३०
विज्ञान परिषद के जन्मदाता]

हुआ। गौड़ जी स्वयं हिन्दी के अच्छे लेखक और विद्वान थे। उनका प्रभाव सालिग्राम जी पर भी पड़ा।

सं० १६१३ में सालिग्राम जी ने भारतीय भवन के हाल में स्व० पं० मदन मोहन मालवीय के सभापतित्व में आपेक्षिक घनत्त्व पर व्याख्यान दिया, जिसकी जनता ने सराहना की। तभी गौड़ जी तथा भार्गव जी में यह परामर्श हुआ कि इस काम को सुचारु रूप से चलाने का

स्व० महामना पं० मदनमोहन मालवीय

प्रयत्न किया जाय। यह दोनों सज्जन महामहोपाध्याय गंगानाथ जी से मिले। प० झा का हिन्दी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था। उन्होंने इस काम में पूर्ण सहयोग देने का वचन दिया और प्रो० हमीदुद्दीन को भी सहमत कर लिया।

इन चारों सज्जनों की समिति अद्भुत थी। संस्कृत अरबी तथा रसायन और भौतिक शास्त्रों के अध्यापकों का यह अद्भुत सम्मेलन था। उन्होंने एकत्रित होकर निश्चय किया कि संगठित और व्यवस्थित काम शुरू किया जाय। ये सज्जन स्व० सर सुन्दर लाल जी से मिले और उनको भी एक सभा में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया। पं० सुन्दर लाल जी को भी हिन्दी के लिए अथाह प्रेम था। उन्होंने भी इस काम में पूर्ण सहयोग और सहायता देने का वचन दिया। यद्यपि पंडित जी को वकालत और हिन्दू विश्व विद्यालय के काम से ही फुर्सत नहीं मिलती थी, तथापि उन्होंने परिषद् के संगठन में पूर्ण सहायता दी।

१० मार्च १६१३ के दिन यह निश्चय हुआ कि एक संस्था बनायी जाय। इसका नाम 'वर्नेक्युलर साइन्टिफिक लिटरेचर सोसाइटी' रखा गया। पं० गंगानाथ झा ने इसका नाम हिन्दी में 'विज्ञान परिषद्' और मौलवी हमीदुद्दीन जी ने उर्दू में अनजुमन् सनाअव फनून रखा। १६ अप्रैल, १६१३ को मौलाना साहब ने परिषद् की आज्ञा, से गण्यमान्य सज्जनों से पत्र व्यवहार आरम्भ किया। सर सुन्दर लाल जी ने पं० गंगानाथ झा के प्रभाव से यूनिवर्सिटी के फेलोज, कालिजों के अध्यापकों और भारतीय विश्वविद्यालयों के प्रमुख विद्वानों ने इस संस्था के सदस्य होने की अनुमति दी।

३० जुलाई, ३१ तक लगभग ४५ सदस्य बन गये। म्योर कालिज के रसायन विभाग के अध्यक्ष श्री ई० जी ई० जी हिल और भौतिक विभाग के अध्यक्ष श्री जे० जे० डयूरेक को भी इस संस्था से बड़ी सहानुभूति हो गई। उन दोनों ने अपनी प्रयोगशालाओं में इस कार्य के लिए सब प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। श्री दक्षिण रंजन भट्टाचार्य (अध्यक्ष प्राणि शास्त्र विभाग) तथा टीचर्स ट्रेनिङ्ग कालिज के प्रोफेसर श्री मुकर्जी भी इस में सम्मिलित हो गये।

३१ मार्च, १६१३ को पहला अधिवेशन हुआ और नियम बनाये गये और वैज्ञानिक साहित्य की रचना में पहला प्रयास हुआ। स्व० रामदास गौड़ और स्व० सालिग्राम जी ने ग्रीष्म के अवकाश में विज्ञान प्रवेशिका भाग १ लिख डाली। लीडर आदि समाचार पत्रों और सरस्वती आदि पत्रिकाओं ने इस पुस्तक की प्रशंसा की और परिषद् के कार्यों की समालोचना करते हुए इस काम में अपनी पूर्ण सहानुभूति दिखाई।

परिषद् का पहिला व्याख्यान स्व० महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव विशारद, बी० एस-सी०, एल० टी० का हुआ। इस व्याख्यान में प्रिंसिपल जे. जी. जेनिङ्ग ने सभापतित्व

किया और इस काम में पूरी-पूरी सहायता का वचन दिया।

विज्ञान प्रवेशिका भाग १ थी तो छोटी सी पुस्तक, परन्तु, सरस्वती, पाटलिपुत्र, लक्ष्मी, शारदा, प्रताप, माडर्न रिव्यू, मर्यादा आदि पत्रों ने इसकी प्रशंसा की और पहला एडीशन शीघ्र ही बिक गया। आगे चल कर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में यह पाठ्य क्रम में रख दी गयी और इसके कई एडीशन छपे।

नये नियम बना कर फिर पत्र-व्यवहार किया गया। यह नियम २६ अगस्त, ४ को बनाये गये थे। शीघ्र ही ७८ फेलो और ४५ एसोशियेट ३१ अक्तूबर १४ तक बन गये।

अपना उद्देश्य पूरा करने के लिये परिषद् द्वारा सर्व प्रिय व्याख्यानों का प्रयोजन भी होता रहा। सभी तरह के विषयों पर व्याख्यान हुए और श्रोतागण सन्तुष्ट रहे। कुछ व्याख्यानों के वक्ता और व्यक्तियों के नाम नीचे दिये है :—

स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव विशारद, बी० एस० सी०, एल० टी०	आर्कमीदिस का सिद्धान्त
प्रोफेसर एस० सी० देव	१. कम्बश्चन २. क्लोरीन,
श्री शारदा प्रसाद	अणु और सौर जगत में समानता
पं० दुर्गादत्त जोशी	१. कार्बन और उसका उपयोग २. वायु और वायव्य
डा० ए० पी० सर्कार	रंगीन फोटोग्राफी
डा० श्रीरंजन	घर-घर बाग
डा० ब्रजराज किशोर	रोगों से छुटकारा
स्व० डा० मूलचन्द टण्डन	भोजन और खाद्य
स्व० डा० एस० पी० राय	भोजन और स्वास्थ्य
डा० गोरख प्रसाद	आकाश गमन
स्व० डा० गङ्गा नाथ झा	प्राचीन भारत में स्वास्थ्य विधान
स्व० रामदास गौड़	पौराणिक सृष्टि और विकास वाद
प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा	कृत्रिम रेशम
स्व० डा० गणेश प्रसाद	यूरोपीय देशों में गणित संबंधी खोजों में देशी भाषा का प्रयोग
स्व० डा० बाहल	जीवन के रहस्य
डा० सत्य प्रकाश	आजकल के पारस
गोपाल स्वरूप भार्गव	कर्ता और संहारक मनुष्य
श्री रामसरन निगम	प्राचीन युग के देव दानव
प्रो० डी० एन० पाल	बिजली की रोशनी
स्व० आचार्य नरेन्द्र देव	विज्ञान की उपयोगिता

मासिक पत्र

अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह स्वाभाविक था कि परिषद् किसी मासिक पत्र का प्रकाशन करे। इसी लिए अपने जीवन के दूसरे ही वर्ष में परिषद् इस विषय में प्रयत्न करने लगी। धनाभाव के कारण इस भार को उठाना असम्भव था। परिषद् ने प्रकाशक को खोजना शुरू किया। उर्दू का कोई प्रकाशक न मिल सका, परन्तु हिन्दी पत्र का प्रकाशन करने के लिए के० सी० भल्ला जी

आगे आये। उनकी दो शर्तें थीं, एक यह कि सम्पादन काम परिषद् अवैतनिक करे, दूसरे यह कि कम से कम २५० ग्राहक परिषद् दे।

परिषद् ने यह शर्तें मंजूर करलीं और स्व० रामदास के कठिन परिश्रम और अध्यवसाय. से विज्ञान निकलने लगा। वैज्ञानिक विद्वत्ता और भाषा की योग्यता का किसी एक व्यक्ति में मिलना मुश्किल था। गौड़ जी ने प्रयत्न किया, दो एक संख्याओं के लिए सामग्री एकत्रित की। हिन्दी संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए उन्होंने लाला सीताराम, बी० ए० तथा पं० श्रीधर पाठक को सम्पादकत्व के लिए राजी कर लिया। श्री लाला सीताराम गणित पर कई पुस्तकें लिख चुके थे और साहित्यिक क्षेत्र में काम कर चुके थे और कर रहे थे। उनकी धाक जमी हुई थी। पं० श्रीधर पाठक हिन्दी के अच्छे कवि थे और उनकी ख्याति सर्वत्र फैल चुकी थी। इन दोनों के नाम के सहारे विज्ञान का महान् स्वागत हुआ। उस समय हिन्दी लेखक कठिनाई से मिलते थे और वह भी वैज्ञानिक विषयों को उस समय विद्वान् लोग हिन्दी लिखना एक ओछा काम समझते थे परन्तु विज्ञान परिषद् के कार्यकर्ताओं के आग्रह और प्रोत्साहन से हिन्दी की ओर उनकी रुचि होने लगी। इस समय स्व० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने गौड़ जी को लिखा था कि क्या आपने हिन्दी लेखकों की कोई टकसाल खोल दी है।

विज्ञान का पहला अंक निकलने के बाद गौड़ जी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा तो उन्होंने कलकत्ते से श्री राधा मोहन गोकुल जी को सहायक सम्पादक के पद पर नियुक्त किया। यह भी कुछ दिन काम करके घबरा गये और कलकत्ता वापस चले गये। उस समय पं० गंगा प्रसाद वाजपेयी प्रयाग में पढ़ रहे थे। उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर काम संभाला। लगभग दो वर्ष तक किसी प्रकार काम चलता रहा। इसके बाद संपादक द्वय को कुछ असुविधा होने लगी। तब कुछ दिन विज्ञान बिना सम्पादकों के चलता रहा। तीसरे वर्ष प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव ने यह काम अपने हाथ में लिया। उनको प्रो० व्रजराज, जो मंत्री भी थे, कुछ दिनों तक सहायता देते रहे, बाद में प्रो० भार्गव ने सम्पादन अपने ऊपर ले लिया और लगभग ६ वर्ष वह काम करते रहे। उनके कार्य-काल में विज्ञान सजधज से निकलता रहा और लोकप्रिय सामग्री से भरा रहता था।

१६२५ में फुरसत न मिलने से प्रो० भार्गव ने काम छोड़ा। उनके सम्पादन काल में 'विज्ञान' में कई पुस्तकें क्रमशः छपती रहीं और वह पुस्तक रूप में भी अलग छपा ली जाती थीं। इनमें से कुछ पुस्तकों के नाम ये हैं :—

(१) गुरुदेव के साथ यात्रा (२) वर्षा और वनस्पति (३) पैमाइश (४) मनुष्य का आहार (५) चुम्बक (६) मनोरंजक रसायन (७) सूर्य सिद्धान्त (८) समीकरण-मीमांसा (९) फसल के शत्रु (१०) निर्णायक इत्यादि १६२६ तथा २७ में प्रो० व्रजराज ने सम्पादन किया। २७-३० तक प्रो० व्रजराज तथा सत्यप्रकाश जी ने सम्पादन किया।

३०-३२ तक इनके साथ पं० युधिष्ठिर भार्गव ने भी सहयोग दिया।

३३-३७ रामदास गौड़ ने सम्पादन किया इसके बाद डा० गोरख प्रसाद ने कुछ काम किया और तदनन्तर सत्यप्रकाश जी ने। इनकी सहायता करने के लिये श्री जगत नरायण जी तथा पं० रामदास तिवारी भी थे।

डा० गोरख प्रसाद जी ने जगदीश प्रसाद जी की सहायता से तीन चार वर्ष काम किया। लगभग २ वर्ष ४६ तथा ४७ में डा० सन्त प्रसाद टंडन ने सम्पादन किया, तदनन्तर श्री रामचरण मेहरोत्रा ने। इधर पाँच-छः वर्ष से श्री हीरालाल निगम विज्ञान चला रहे हैं। गत तीन वर्ष से जगपति चतुर्वेदी सहायक सम्पादक का काम कर रहे हैं।

डा० सत्य प्रकाश तथा डा० गोरख प्रसाद के सम्पादकत्व में विज्ञान का औद्योगिक अंग पुष्ट रहा। चीनी के बर्तन, फल संरक्षण, व्यंग चित्रण, उपयोगी नुसखे, विज्ञान विश्व कोष भाग १—बड़े उपयोगी ग्रंथ आप लोगों के परिश्रम से निकले। आंजकल विज्ञान में शुद्ध वैज्ञानिक लेखों का समावेश रहता है।

विज्ञान को जनता की सेवा करते हुए प्रायः ४१ वर्ष

स्व० गणेश प्रसाद
[सभापति १९३३-१९३५]

स्वर्गीय डा० एनी बीसेंट
[सभापति १९२०-१९२१]

माननीय डा० सी० वाई० चिन्तामणि
[सभापति १९२२-१९२५]
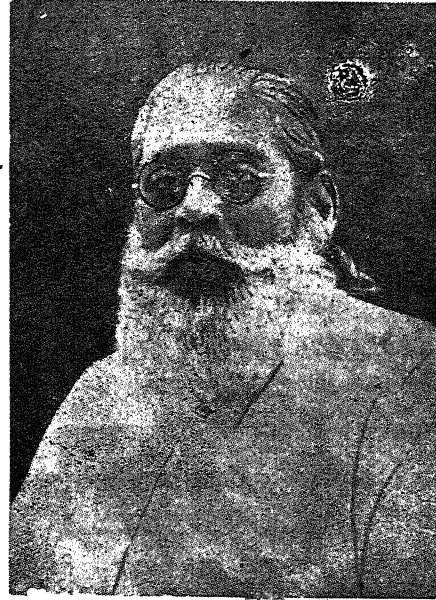
स्व० बा० शिव प्रसाद गुप्त
[सभापति १९२५-१९२७]

हुए हैं। इस लम्बी अवधि में सैकड़ों लेखकों के हजारों लेख विविध विषयों पर यह पत्र प्रस्तुत कर चुका है। विज्ञान सम्भवतः यह प्रमाणित कर चुका है कि विज्ञान के अत्यन्त दुरूह विषयों पर भी हिन्दी में लेख लिखे जा सकते हैं। जिस समय विज्ञान प्रकाशित करने का विचार पहले पहल हो रहा था, तब बहुत लोग जिनमें कुछ विद्वान भी थे यह मजाक उड़ाते थे कि यह पागलों का प्रलाप मात्र है कि इस प्रकार का पत्र प्रकाशित किया जाय—न तो लेखक मिलेंगे और न पर्याप्त लेख और न पढ़ने वाले ही, परन्तु परमेश्वर की कृपा से यह दुस्साध्य काम ४१ वर्ष चल चुका है और अब जब कि राष्ट्र भाषा के पद पर हिन्दी आसीन हो चुकी है इस काम के चलते रहने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

विज्ञान के प्रकाशन में प्रान्तीय गवर्नमेंट भी बहुत सहाय देती रही है। इस सहायता का आरम्भ डा० गणेश प्रसाद तथा श्री सी० वाइ० चिन्तामणि के प्रयत्नों से हुआ था। आजकल तो इस प्रान्त के प्रधान मंत्री विज्ञान के प्रेमी और वैज्ञानिक पुस्तकों के निर्माता श्री सम्पूर्णानन्द हैं जो सरस्वती के परम भक्त हैं। उनकी सहायता से विज्ञान बड़ी उन्नति करेगा यह अमोघ आशा है।

वर्तमान सहायक सम्पादक पहले विज्ञान कार्यालय में अवैतनिक काम करते थे। उन पर विज्ञान प्रेम का अद्भुत रस चढ़ा। उन्होंने बहुत सी पुस्तकें लिख डाली हैं। अब आप विज्ञान में अच्छा काम कर रहे हैं।

डा० नील रत्नधर

[सभापति १८३०-१८२७]

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—**विज्ञान प्रवेशिका, भाग १**—श्री रामदास गौड़ और प्रो० सालिगराम भार्गव ।=)

२—**चुम्बक**—प्रो० सालिगराम भार्गव ।।।=)

३—**मनोरञ्जन रसायन**—प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव २)

४—**सूर्य सिद्धान्त**—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव छः भाग मूल्य ८)। इस पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—**वैज्ञानिक परिमाण**—डा० निहालकरण सेठी १)

६—**समीकरण मीमांसा**—पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)

७—**निर्णायक डिटमिनैंट्स**—प्रो० गोपालकृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री ।।।)

८—**बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखगणित**—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)

९—**सुवर्णकारी**—ले० श्री० गङ्गाशंकर पचौली; ।=)

१०—**व्यंग-चित्रण**—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; २)

११—**मिट्टी के बरतन**—प्रो० फूलदेव० सहाय वर्मा; (अप्राप्य)

१२—**वायु मंडल**—डाक्टर के० बी० माथुर,(१

१३—**लकड़ी पर पालिश**—डा॰ गोरखप्रसाद और श्री रामरतन भटनागर, एम॰ ए॰, २) (अप्राप्य)
१४—**कलम पेवन्द**—ले॰ श्री शंकरराव जोशी; २)
१६—**जिल्दसाजी**—श्री सत्यजीवन वर्मा, एम॰ ए॰ २)
१६—**तैरना**—डा॰ गोरखप्रसाद १)
१७—**सरलविज्ञानसागर प्रथम भाग**—(अप्राय)
१८—**वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ**—डा॰ सन्तप्रसाद टंडन, डी॰ फिल॰ ।।)
१६—**खाद्य और स्वास्थ्य**—डा॰ ओंकारनाथ परती, मूल्य ।।।)
२०—**फोटोग्राफी**—लेखक श्री डा॰ गोरख प्रसाद
२१—**फल संरक्षण**—डा॰ गोरखप्रसाद डी॰ एस-सी॰ और श्री वीरेन्द्रनारायणसिंह
२२—**शिशु पालन**—लेखक श्रीमुरली धर बौड़ाई ।
२३—**मधुमक्खी पालन**—दयाराम जुगड़ान; ३)
२४—**घरलू डाक्टर**—डाक्टर जी॰ घोष, डा॰ उमाशंकर प्रसाद, डा॰ गोरखप्रसाद, ४)
२५—**उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर**—डा॰ गोरख प्रसाद और डा॰ सत्यप्रकाश, ३।।)
२६—**फसल के शत्रु**—श्री शङ्कर राव जोशी ३।।)
२७—**साँपों की दुनिया**—श्री रमेश वेदी ४)
२८—**पोर्सलीन उद्योग**—प्रो॰ हीरेन्द्र नाथ बोस ।।।)
२६—**राष्ट्रीय अनुसन्धानशालाएँ**—२)
३०—**गर्भस्थ शिशु की कहानी**—प्रो॰ नरेन्द्र २।।)
३१—**विज्ञान प्रवेशिका भाग २** (अप्राप्य) ले॰ श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव बी॰ एस-सी॰, एल॰ टी॰ विशारद
३२—**ताप**—ले॰ प्रेम बल्लभ जोशी
३३—**पशु पक्षियों का शृङ्गार रहस्य**
३४—**केला**—पं॰ गंगा शंकर पचोली
३५—**गुरुदेव के साथ यात्रा**—अनु॰ महावीर प्रसाद श्रीवास्तव
३६—**क्षयरोग**—डा॰ बी॰ के मित्र
३७—**दियासलाई और फास्फोरस**—ले॰ रामदास गौड़
३८—**शिक्षितों का स्वास्थ्य व्यातिक्रम**—ले॰ गोपाल नारायण सेन सिंह बी॰ ए॰ एल॰ टी॰
३६—**पैमाइस**—ले॰ श्री मुरलीधर नन्दलाल
४०—**कपास**—ले॰ तेज शंकर कोचक
४१—**कृत्रिम काष्ट**—ले॰ पं॰ गंगा शंकर पचौली
४२—**आलू**— ,, ,, ,, ,,
४३—**हमारे शरीर की रचना**—डा॰ बी॰ के मित्र
४४—**ज्वर निदान और सुश्रूषा**—,, ,,
४५—**मनुष्य का आहार**—गोपी नाथ गुप्त वैद्य
४६—**वर्षा और वनस्पति**—शंकर राव जोशी
४७—**सुन्दरीमनोरमा की करुण कथा**—नवनिद्धिराय
४८—**साधारण रसायन**—ले॰ डा॰ सत्यप्रकाश
४६—**कार्बनिक** ,, ,, ,, ,,
५०—**सर चन्द्र शेखर वेंकट रमन**—श्री युधिष्ठिर भार्गव
५१—**वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द**—ले॰ डा॰ सत्यप्रकाश
५२—**उद्भिज का आहार**—ले॰ एम॰ के॰ चटर्जी
५३—**रासायमिक इतिहास**—ले॰ आत्माराम
५४—**प्रकाश रसायन**—वा॰ वि॰ भागवत १।।)
५५—**डा॰ गणेशप्रसाद अंक**
५६—**रामदास गौड़ अंक**
५७—**उद्योग व्यवसाय अंक**

[पृष्ठ २२ का शेषांक]

विज्ञान परिषद और उसके कार्य

नहीं था। यह कमी अब पूरी होने जा रही है। विज्ञान परिषद् का अपना भवन बन रहा है। इस भवन के बनाने में केन्द्रीय सरकार ने धन के रूप में परिषद् को थोड़ी सहायता दी है। आशा है कि उत्तर प्रदेशीय सरकार भी परिषद् को भवन निर्माण कार्य पूरा कराने में उपयुक्त धन देकर सहायता करेगी। परिषद् का अपना भवन हो जाने के बाद उसके कार्य की प्रगति अधिक तीव्र हो सकेगी, ऐसी आशा है।

विज्ञान परिषद् और उसके कार्य

ले०—डा० सन्त प्रसाद टंडन, एम० एस-सी०, डी० फिल०

ऊँचे विचारक तथा मनीषी लोग अपनी कल्पनाओं को मूर्त रूप देने के लिए संस्थाओं की स्थापना किया करते हैं। आज से लगभग ४३ वर्ष पूर्व प्रयाग के कुछ इसी प्रकार के उच्च विचारकों ने, जिनमें स्वर्गीय डा० गंगानाथ झा, प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव तथा प्रोफेसर रामदास गौड़ के नाम उल्लेखनीय हैं, अपनी पैनी दृष्टि से विज्ञान के भविष्य को देखा और साथ ही यह अनुभव किया कि यदि हम अपने देश की उन्नति इस क्षेत्र में चाहते हैं तो हमें अपने बच्चों को विज्ञान की शिक्षा अपनी भाषा द्वारा देनी होगी। विज्ञान परिषद् इन्हीं मनीषियों की कल्पनाओं का साकार रूप है।

अच्छी शिक्षा के लिए शिक्षा का माध्यम शिक्षार्थी की अपनी भाषा हो, यह आज निर्विवाद मान्य है। अपनी भाषा द्वारा शिक्षा देने के महत्व को आज किसी व्यक्ति को समझाने में विशेष कठिनाई अनुभव नहीं होती, किन्तु, जिस समय विज्ञान परिषद् की स्थापना हुई थी उस समय यह बात कि विज्ञान की शिक्षा अपनी भाषा द्वारा हो सकती और होनी चाहिए, अधिकांश विद्वानों की कल्पना के परे थी। अतः विज्ञान परिषद् के सम्मुख उस समय अपने कार्य को प्रगति देने में कितनी कठिनाइयाँ थी इसका पूरा अनुमान लगाना इस समय कठिन है।

विज्ञान-परिषद् का आरम्भ में एक मात्र उद्देश्य यह था कि हिन्दी भाषा-भाषी प्रांतों में वैज्ञानिक शिक्षा का क्रम हिन्दी में किया जाय। इस दिशा में परिषद् ने मार्ग प्रदर्शन का कार्य किया। हिन्दी में सबसे पहली पुस्तक प्रो० रामदास गौड़ तथा प्रो० सालिग्राम भार्गव द्वारा लिखी गई थी। इसके बाद शीघ्र ही परिषद् ने विज्ञान के विभिन्न विषयों पर कई अन्य पुस्तकें भी हिन्दी भाषा में निकालीं इन सब पुस्तकों ने यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दी भाषा द्वारा विज्ञान की अच्छी पुस्तकें लिखना कोई कठिन कार्य नहीं है और इस प्रकार हिन्दी में विज्ञान साहित्य के सृजन में परिषद् ने पथ-प्रदर्शन किया। विज्ञान परिषद् के कार्यों के फलस्वरूप कुछ ही समय बाद स्कूलों में ८वीं कक्षाओं तक की शिक्षा में विज्ञान-विषय की शिक्षा का माध्यम हिन्दी कर दिया गया और तब इन कक्षाओं के लिए अनेक पुस्तकें हिन्दी भाषा में अन्य लोगों द्वारा लिखी हुई छपीं। प्रारम्भ के सभी वैज्ञानिक लेखकों ने पुस्तक लिखने में परिषद् के ग्रन्थों से ही सहायता और प्रेरणा प्राप्त की।

विशेष दायित्व

आज जब हिन्दी भाषा को राष्ट्र-भाषा स्वीकार कर लिया गया है, तब विज्ञान परिषद् के ऊपर एक विशेष दायित्व आ गया है। परिषद् को अब अपने कार्यक्षेत्र को अधिक विकसित करना होगा। सबसे बड़ा कार्य जो इस समय परिषद् को उठाना है, वह है, विज्ञान के विभिन्न विषयों के ऊँचे ग्रन्थों का हिन्दी भाषा में निर्माण। सब प्रकार का वैज्ञानिक साहित्य हिन्दी में शीघ्र ही उपलब्ध हो सके इसका प्रयत्न परिषद् को करना होगा। इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने के लिए परिषद् से अधिक उपयुक्त कोई दूसरी संस्था नहीं है। परिषद् के सदस्यों में विज्ञान के विभिन्न विषयों के विद्वान लोग तथा विशेषज्ञ हैं जिनके द्वारा परिषद् अच्छे ग्रन्थों का निर्माण करा सकती है। केवल एक ही कठिनाई जो परिषद् के सामने है और वह है आर्थिक। इन पुस्तकों के प्रकाशन के लिए पर्याप्त मात्रा में धन की आवश्यकता होगी। केन्द्रीय तथा उत्तर-प्रदेशीय सरकार को इस कार्य के लिए परिषद् की पूरी सहायता धन से करनी चाहिए।

विज्ञान परिषद् का अब तक कोई अपना निजी भवन

(शेष पृष्ठ २१ पर)

परिषद की आयोजना

ले० स्व० महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट०, एल एल० डी०

विज्ञान परिषद् का आविर्भाव संसार के "अद्भुत" पदार्थों में गिना जा सकता है, क्योंकि इसके आविर्भावकों में एक पंडित और एक मौलवी थे। मूल सूत्रपात करने वाले चार आदमी थे—मौलवी हमीर उद्दीन (म्योर कालेज में अरबी के प्रधान अध्यापक), गंगानाथ झा उसी कालेज में संस्कृत के प्रधान अध्यापक), सालिग्राम भार्गव इस कालेज में Physics Laboratory के संचालक और श्री रामदास गौड़ (Chemical Laboratory के संचालक)। प्रथम सूत्रपात के अनन्तर गोपाल स्वरूप भार्गव, ब्रजराज तथा हीरालाल खन्ना भी सम्मिलित हुए। कार्यारम्भ कर दिया गया। द्रव्य का नितान्त अभाव था। पर उत्साह प्रशंसनीय था। बहुत शीघ्र पं० सुन्दर लाल जी (Sir Sunder Lal, Vice Chancellor) की सहायता मिली। उसी के बल पर उत्साह और बढ़ा। कार्य प्रणाली कई मार्गों में चली। ग्रन्थ निर्माण, मासिक पत्र, सभी प्रकार उत्साह गम्य थे। सो भी दोनों भाषाओं में हिन्दी और उर्दू में भी। लेक्चर हिन्दी उर्दू दोनों भाषाओं में होते रहे। दो तीन पुस्तकें भी दोनों भाषाओं में लिखी गईं। इस काम में म्योर कालेज के सहकारी अध्यापक मौलवी नासरी साहब ने बड़ी सहायता की। कुछ ही दिनों में इस कार्य से सभी श्रेणी की जनता प्रसन्न हुई। एक वार्षिकोत्सव में लाट साहब Sir James Meston सभापति के आसन पर बैठे। ठाकुर गणेश प्रसाद का लेक्चर हुआ—Mathematical Research विषय था—लेक्चर शुद्ध हिन्दी में हुआ। और लाट साहब ने भी जो कुछ कहा प्रायः उर्दू ही में कहा। इसी प्रकार काम चलता रहा।

पर मासिक पत्र जब तक सुचारु स्थायी रूप से नहीं चलने लगा तब तक हम लोग सन्तुष्ट नहीं हुये। द्रव्य की कठिनता रहते हुये भी केवल उत्साह के बल पर एक दो अंक प्रकाशित हुये। ग्राहकों की संख्या बढ़ने लगीं—परन्तु धीरे धीरे। दो एक साल तक पत्रिका का चलना सन्दिग्ध हो रहा। पर वृद्धों के आशीर्वाद तथा कार्य-कर्त्ताओं की युवक मंडली के अदम्य उत्साह से काम चलता ही गया। ग्राहकों की संख्या भी बढ़ी और तरह तरह की सहायता भी आने लगी। इसका यश रामदास गौड़, हीरालाल खन्ना, सालिग्राम भार्गव, ब्रजराज इन्ही को है। यदि एक आध और सज्जन इसके साथ रहे हों तो उसका नाम मुझे स्मरण नहीं है। यदि हों तो मुझे क्षमा करें।

म्योर कालेज ही के अध्यापक वर्ग में कुछ लोग ऐसे भी थे जो आरम्भ में हम लोगों की हँसी उड़ाया करते थे। पर किसी तरह कार्य चलता ही गया। और अब इतने दिनों पर परिषद तथा उसकी मुख पत्रिका किस श्रेणी का उपकार कर रही है सभी लोग जानते हैं।

खेद एक ही बात का है कि कई कारणों से जिसमें कार्य-कर्त्ताओं का और ग्राहकों का अभाव ही मुख्य था—हिन्दी के साथ साथ उर्दू में कार्य नहीं चल सका। पर मुझे कुछ ऐसा स्मरण हो रहा है कि इसी तरह का कार्य 'अन्जुमन तरक्की उर्दू या कोई ऐसी ही नाम वाली समिति करने लगी थी। यह भी एक कारण रहा हो। जो कुछ हो अपने जीवन में इस परिषद को ऐसी उपयोगितावस्था में देखकर हृदय में बड़ा सन्तोत होता है। पूर्ण आशा है कि मातृ भाषा की ओर लोगों की श्रद्धा बढ़ने से यह परिषद दिनानुदिन उन्नति करती जायगी।*

*यह लेख १९३९ ई० में विज्ञान परिषद की रजत जयंती के अवसर पर स्व० डा० झा ने लिखा था।

हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली

महामहोपाध्याय डाक्टर उमेश मिश्र एम० ए०, डी० लिट् प्रयाग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अपने देश और अपनी भाषा के प्रति हमारा अभिमान बढ़ने लगा और क्रमशः अँगरेजी भाषा के स्थान पर राष्ट्र भाषा हिन्दी को स्थापित करने की प्रबल इच्छा भारतीयों के मन में जाग्रत हुई। बोलचाल में और कला-विभाग के साहित्यिक ग्रन्थों के लिखने में तो हमें कोई ऐसी कठिनाई नहीं मालूम होती है। पहले भी हिन्दी भाषा का प्रचुर व्यवहार था और अब भी है। साहित्यिक विषयों के पढ़ने-लिखने में भारतीय भाषाओं का व्यवहार सदा से चला आया है फिर भी आवश्यकता पड़ने पर संस्कृत साहित्य का पर्याप्त भंडार हमारे लिये सदा खुला है।

कठिनाई मालूम होने लगी, वैज्ञानिक विषयों के अध्ययन और अध्यापन में तथा उस पर ग्रन्थों के निर्माण में।—यद्यपि यह कहना, कि भारतवर्ष में वैज्ञानिक विषयों के सम्बन्ध में संस्कृत भाषा में पूर्वकाल में ग्रन्थ ही नहीं लिखे गये तथा वैज्ञानिक शब्द संस्कृत साहित्य में मिल ही नहीं सकते, सर्वथा सत्य नहीं है। वैशेषिक दर्शन के अध्ययन से हमें पदार्थ-विज्ञान या भौतिक शास्त्र (Physics तथा रसायनशास्त्र (Chemistry) का पूर्ण परिचय मिलता है। ग्यारहवीं सदी के 'समरांगण नाम के ग्रन्थ से नगर योजना तथा इंजीनियरिंग के विभिन्न विभागों का' 'सुश्रुत' से शल्यचिकित्सा का परिचय हमें मिलता है। इनसे हम बहुत से शब्द आधुनिक वैज्ञानिक शास्त्रों के लिये ले सकते हैं।

परन्तु हमारे प्राचीन वैज्ञानिक शास्त्रों को पल्लवित होने का अवसर नहीं मिला। ज्ञान और विज्ञान आश्रय के बिना विकसित नहीं होते। इसलिये हमारे प्राचीन शास्त्रों में आधुनिक विकसित वैज्ञानिक शास्त्रों के अनुकूल शब्दावली पर्याप्त रूप में नहीं मिलती हैं। फिर भी संस्कृत भाषा में जो वैज्ञानिक शब्द मिलते हैं, वे किसी न किसी सिद्धान्त के आधार पर बने हुए हैं। उन सिद्धान्तों के आधार से आज हम लोग लाभ क्यों न उठावें? संस्कृत के शब्द तथा उनसे बने हुए तत्सम या तद्भव शब्द न केवल भारतीय भाषाओं से बहुत मिलते जुलते होते हैं किन्तु भारतीयों के लिये सरल और सुबोध भी हैं। इन शब्दों का तो पहले संग्रह होना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि लोकव्यवहार में भी बहुत से वैज्ञानिक शब्द प्रचलित हैं, उन्हें बिना किसी परिवर्तन के हम स्वीकार कर लें। आवश्यकता है ज्ञान बढ़ाने की। यदि व्यवहारिक शब्दों द्वारा हमें वैज्ञानिक तत्वों का ज्ञान हो सके तो उन्हें यथावत आवश्यक परिवर्तन के साथ स्वीकार करने में हमें कौन सी हानि है?

जैसे—क्षेत्रफल (Area) वायुमंडल (Atmosphere), धुरी (Axis), खाड़ी (Bay, दाहक (Caustic), धूमकेतु (Comet), फारखती (Acquittance), आढ़त (Agency) उम्मेदवार (Apprentice), **रोकड़ बाकी** (Balance in-hand), **बही खाते की विद्या** (Book Keeping), **पाकप्रक्रिया** (Chemical Action), खारा (Alkaline), **नमी** (Moisture) गाढीकरण या घनीकरण (Concentration) चालक आकाशवाणी (Radio), यान या विमान Aeroplane), शक्ति (Energy) आदि।

इन शब्दों में कुछ तो शुद्ध संस्कृत के हैं, कुछ जनता की भाषा के हैं और कुछ भाषा और संस्कृत के शब्दों के मिलावट से बने हुए हैं। संभव है कि कुछ शब्द अन्य अर्थ में भी प्रयुक्त होते हों जैसे 'आकाशवाणी', किन्तु जब जनता को इसी शब्द के द्वारा संगत अर्थ का भी बोध

हो जाय तो इसे स्वीकार करने में कोई भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

मेरा तो विचार है कि विदेशी शब्दों को भी हम यथावत् या कुछ हेरफेर कर भारतीय सांचे में ढाल कर व्यवहार करें तो कोई भी आपत्ति नहीं है। जैसे—रेल (Railway) टिकट (Ticket), लालटेन (Lantern), वोट (Vote), कमेटी (Committee), कंक्रीट (Concrete), पाइप (pipe) ये सब शब्द लोक व्यवहार में पूर्ण रूप से प्रचलित हैं। अतएव इनके शुद्ध अर्थ समझने में किसी को कठिनाई नहीं होती। यदि कोई इन शब्दों के लिये शुद्ध संस्कृत शब्द गढ़ें, जैसे—धूमशकट (Railway) तो यह प्रयास व्यर्थ है और व्यवहार में कठिनाई उपस्थित होगी। इसी सिद्धान्त के आधार पर केन्द्रीय शिक्षाविभाग के द्वारा गढ़े हुए बहुत से शब्दों को मैं उपयुक्त नहीं समझता। जैसे पराय (Magnitude), परायता परायायोग्यता (Marketability) आदि। ध्यान में तो यह रखना आवश्यक है कि सरलरीति से जनता को भी उन शब्दों के अर्थों का बोध हो जाय। अतएव प्रचलित शब्दों को तथा उन्हीं से गढ़े हुए शब्दों का व्यवहार करना उचित है और इस कार्य के लिये हमें जितनी भारतीय भाषायें हैं, उनका विधान में स्वीकृत १४ भाषाओं से अतिरिक्त मैथिली आदि भाषाओं के भी शब्दकोषों का संग्रह करना चाहिये।

डाक्टर रघुवीर ने भी वैज्ञानिक शब्दों के संबंध में यही भूल की है। उन्होंने प्रचलित और व्यवहृत शब्दों पर ध्यान न देकर एक तरफ से अप्रचलित संस्कृत तथा तत्सम शब्दों का संग्रह किया है तथा देशी शब्दों का एक प्रकार से बहिष्कार ही कर दिया है। इसके कारण उनके पारिभाषिक शब्द बहुत उपयुक्त नहीं मालूम होते हैं।

जितनी हमारी प्रान्तीय भाषायें तथा उपभाषायें हैं, उनमें भी बहुत दिनों से वैज्ञानिक शब्दों का व्यवहार होता आया है। उन्हें भी हम विचार में स्वीकार करें। संभव है उनसे बहुत से शब्द अनायास हमें मिल जायँ। ये शब्द सरल होंगे। पूर्वकाल में भी प्राकृत तथा लौकिक भाषाओं से यहाँ तक कि म्लेच्छ भाषाओं से भी, बहुत से शब्द संस्कृत भाषा में क्रमशः व्यवहृत होने लगे थे। जैसे "पिक (कोयल 'नेम' (आधा), 'तामरस' (कमल) आदि म्लेच्छ भाषा के तथा 'खर', 'घोटक' आदि देसी भाषा के शब्द मीमांसक तथा वैयाकरणों ने संस्कृत में निःसंकोच प्रयोग किए हैं।

किन्तु विज्ञान का क्षेत्र आजकल इतना विस्तृत हो गया है कि प्रान्तीय भाषाओं में तथा संस्कृत में भी प्रायः सभी वैज्ञानिक शब्दों के लिये पर्याय शब्द नहीं मिलेंगे। ये हमें गढ़ने पड़ेंगे। इसके लिये भी हमें उपर्युक्त सिद्धान्त का आश्रय लेना उचित है मुझे तो विश्वास है कि वेद के मंत्रों में तथा लौकिक संस्कृत के ग्रंथों में बहुत से शब्द हैं, जो प्रचलित हैं, और जिन्हें आसानी से अन्य लोग समझ भी सकते हैं, उनके आधार पर पहले हम नए शब्दों को गढ़ें, इसके पश्चात पाश्चात्य भाषाओं के शब्दों को जो पूर्ण रूप से वैज्ञानिक जगत में प्रसिद्ध हैं, उन्हें किसी तरह भारतीय रूप देकर हम स्वीकार कर लें। क्रमशः ये शब्द जब हिन्दी में कुछ दिन व्यवहृत होंगे तो अनायास प्रसिद्ध हो जायँगे। इनके समझने में विशेष कठिनाई नहीं होगी।

कहने का अभिप्राय यह है कि भारतीय भाषाओं से तथा उपभाषाओं से, वेद तथा लौकिक संस्कृत के ग्रंथों से विदेशीय भाषाओं से सरल, प्रसिद्ध तथा उपर्युक्त शब्दों के संग्रह से इनमें कुछ परिवर्तन करने से भारतीय सांचे में ढालने से भी हमें बहुत से वैज्ञानिक शब्द मिल सकते हैं। इनसे भी यदि हमारा काम न चले तब संस्कृत का अक्षय भंडार तो है ही। उससे सरल शब्द बनाये जायँ जिसे पारिभाषिक रूप में हम व्यवहार करें। ये शब्द कालान्तर में प्रसिद्ध हो जायँगे। परन्तु इन प्रयासों को पहले न कर एकमात्र संस्कृत भाषा के शब्दों के आधार पर ही कठिन शब्दावली बनाने से अधिक लाभ न होगा। प्रगति रुक जायगी। प्रान्तीय भाषा और उपभाषाओं के शब्दों के महत्व से हम अपरिचित ही रह जायँगे।

अन्त में एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इस कार्य में हमें अपने हृदय को संकुचित न रखना चाहिए। भावुकता तो काव्य की रचना के लिए उपयुक्त होती है। उदारचित से नवीन और प्राचीन देशीय तथा

[शेष पृ० २७ पर

हिंदी में अर्थशास्त्र के पारिभाषिक शब्द

ले०—श्री गंगाधर दुबे, बी० ए० एल-एल बी०

हिंदी में अर्थशास्त्र सम्बन्धी साहित्य की कमी का मुख्य कारण यथेष्ट परिभाषिक शब्दों का न होना है। जो लेखक हिंदी में अर्थशास्त्र सम्बंधी पुस्तक लिखने के लिये प्रस्तुत होते हैं उन्हें पद-पद पर शब्दों की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। तथा उनका निरुत्साह होना अस्वभाविक नहीं।

इस कमी के निवारणार्थ भिन्न-भिन्न संस्थाओं एवं लोगों ने प्रशंसनीय प्रयास भी किये। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा अलीगढ़ के पंडित ब्रजवल्लभ जी मित्र ने हिंदी वैज्ञानिक कोष तथा हिंदी व्यापारिक कोश क्रमशः प्रकाशित किये थे। प्रारम्भ में वे काफी सहायक सिद्ध हुये लेकिन ज्यों-ज्यों रचना कार्य बढ़ता गया वे अपर्याप्त प्रतीत होने लगे। सन् १६२६ में इंडियन इकनामिक एसोशियेशन ने पंडित दयाशंकर दुबे की अध्यक्षता में पारिभाषिक शब्द तैयार करने के लिये एक उपसमिति बनाई। इस उपसमिति ने ७०० शब्दों की सूची तैयार की। सन् १६२३ में भारतीय अर्थशास्त्र परिषद् की स्थापना हुई तथा उसने इस कार्य को अपने हाथ में लिया लेकिन वांछित सफलता न मिल सकी। हिंदी में अर्थशास्त्र संबंधी साहित्य के महान् लेखक श्री भगवानदास केला ने 'भारतीय अर्थशास्त्र' तथा 'भारतीय राजस्व' पुस्तकें तैयार कीं। उनके लिये उन्होंने पारिभाषिक शब्द-सूची भी प्रस्तुत की। सन् १६२७ में श्री दयाशंकर दुबे, श्री भगवान दास केला तथा श्री गदाधर प्रसाद जी अम्बस्ट ने अर्थशास्त्र के लगभग ढाई हजार अँग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्यायवाची शब्द तैयार किये। इन लेखकों की निर्मित्त "अर्थशास्त्र शब्दावली" ने हिन्दी अर्थशास्त्र संबंधी पुस्तक लिखने के इच्छुक लेखकों को काफी सहायता पहुँचाई।

"अर्थशास्त्र शब्दावली" के अलावा आचार्य रघुवीर, आचार्य भगवत शरण अधोलिया तथा पन्नालाल जी बल्दुआ ने सम्मिलित रूप से "अर्थशास्त्र शब्दकोष" की रचना की। आचार्य रघुबीर तथा अधोलिया का मत है कि पारिभाषिक शब्द कोई ऐसा न रहने पाये जो मूलतः संस्कृत को छोड़कर किसी अन्य भाषा का हो। इस प्रकार उन्होंने अनेक प्रचलित और सरल शब्दों को छोड़कर उनकी पूर्ति के लिये ठेठ संस्कृत शब्दों को खोजने या निर्मित करने में अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया है। इसके विपरीत श्री दुबे और केला ने अपनी "अर्थशास्त्र शब्दावली" में दूसरे सिद्धांत को अपनाया है उनके अनुसार शुद्ध संस्कृत शब्दों का प्रयोग करना या "हिन्दी जैसी जीवित वर्द्धमान या विकासशील भाषा के लिये बंधन के समान है" श्री दुबे तथा केला ने हिन्दी में प्रचलित शब्दों को ज्यादा अपनाया है और ऐसे प्रचलित शब्दों की जगह जिनका मूल स्रोत संस्कृत नहीं है हटाकर संस्कृत के कठिन शब्दों का प्रयोग करना वस्तुतः उनके अनुसार हिन्दी के साथ कुठाराघात है।

जो कुछ भी हो हमलोगों के सम्मुख आचार्य रघुबीर तथा श्री दुबे और केला के दो अर्थशास्त्र सम्बन्धी शब्द-कोष प्राप्त हैं जो कि भिन्न-भिन्न सिद्धांत पर निर्मित किये गये हैं। इन दोनों शब्द कोषों में अंतर का असर लेखकों के ऊपर अच्छा नहीं पड़ता। वे भली भांति निश्चित नहीं कर पाते कि किसके आधार पर वे हिन्दी में अर्थशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकें लिखें। इसके अलावा लेखकगण स्वयं अपने इच्छानुसार अंग्रेजी के शब्दों का हिन्दी में पर्यायवाची शब्द खोज निकालते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पुस्तकों में एक लेखक एक अंग्रेजी शब्द का पर्यायवाची शब्द कुछ लिखता तो दूसरा कुछ और ही लिखता है—बेचारे पाठकगण और विद्यार्थियों को इसके कारण बड़ी

कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं और उनमें एक प्रकार सी अनिश्चितता व्याप्त रहती है।

इसके लिये सन् १९५० में भारत सरकार ने देश भर के लिये समान वैज्ञानिक शब्दावली और समस्त भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दकोश बनाने के लिये भाषा-शास्त्रियों और वैज्ञानिकों के एक बोर्ड की स्थापना की थी। इस बोर्ड ने लगभग ग्यारह सौ वैज्ञानिक शब्द तैयार किये हैं। इस बोर्ड ने भी प्रचलित हिन्दी शब्दों को स्वीकार किया है। बोर्ड ने तो बहुत से अँग्रेजी शब्द 'शेअर' 'डिबेंचर' आदि को हिन्दी में स्वीकार कर लिया है क्योंकि अर्थशास्त्र सम्बन्धी विशेषज्ञ कमेटी के प्रधान श्री एल० सी० जैन के शब्दों में "इन दिनों अर्थशास्त्र और वाणिज्य के क्षेत्र में जो भाषा चलती है यह उसके अभिन्न अंग बन गये हैं" इसके अलावा अर्थशास्त्र विशेषज्ञ समिति ने प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों को भी स्वीकार करने में हिचक नहीं की है। श्री जैन के अनुसार "अगर प्रादेशिक भाषाओं में कहीं ऐसा शब्द मिला है जो किसी अर्थ को सही ढंग से व्यक्त करता है तो उसे सहज ही अपना कर हिन्दी को अधिक उदार और सम्पन्न बनाने की चेष्टा की है" इसी के आधर पर समिति ने Net के लिये कन्नड़ शब्द 'निकल' को स्वीकार किया है।

इस तरह से हिन्दी में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली बोर्ड द्वारा निर्धारित सिद्धांत निम्नांकित हैं :—

(१ अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली से अर्थ उन वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों से है जो कि समय-समय पर वैज्ञानिक सङ्घों की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद के कार्य करने में प्रकाशित किये जाते हैं।

(२) यह बोर्ड युनिवर्सिटी कमीशन और केन्द्रीय शिक्षा परामर्श बोर्ड के विचारों से सहमत है कि जहाँ तक हो सके हिन्दी और भारत की प्रमुख भाषाओं की पुस्तकों में अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जावे।

(३) वैज्ञानिक अर्थशास्त्र शब्दावली कोष तैयार करने में अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दों का नागरीकरण किया जावे।

हिन्दी में अर्थशास्त्र सम्बन्धी प्रचलित अंतराष्ट्रीय शब्द तो आंग्लभाषा के ही हो सकते हैं। अगर दूसरी भाषा के अन्तर्राष्ट्रीय शब्द ग्रहण किये गये तो उससे बड़ा अनर्थ हो जायेगा। इसके अलावा अँग्रेजी के शब्दों के बाहुल्य से हिन्दी का स्वरूप ही नष्ट हो जायेगा। हमारी समझ में तो केवल उन्हीं ही अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग हिन्दी में किया जाये जिसे थोड़ा पढ़ा लिखा भी व्यक्ति भी समझने में समर्थ हो सके।

इसके अलावा भारत सरकार जो कोष प्रस्तुत कर रही है वह इंटरमीडियट तक के छात्रों के लिये लिये लिखी जाने वाली पुस्तकों को सहायक होगा। उच्च कक्षाओं की पुस्तकें लिखने में तो अभी वह कठिनाई रही ही जायेगी। जो कुछ भी कोष सम्बन्धी कार्य हिन्दी में हो रही है उसकी गति बड़ी मन्द है। इस समय वृहद रूप में कोष सम्बन्धी कार्य की आवश्यकता है जिससे कि अर्थशास्त्र में हिन्दी में लिखी गई पुस्तकों का अभाव न रह जाये। यह तभी सम्भव हो सकता है जब भारत सरकार इस ओर सक्रिय कदम उठावे।

हिन्दी की वैज्ञानिक शब्दावली [पृष्ठ २५ का शेषांक]

विदेशीय शब्दों को लेकर समान रूप से अपने कार्य को संपादन करने के लिये, ज्ञान की प्रगति को आगे बढ़ाने के लिये हमें वैज्ञानिक शब्दावली बनानी चहिए। विज्ञान के सभी शब्द संस्कृत भाषा में नहीं मिल सकते हैं। कारण स्पष्ट है-पूर्वकाल में विज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत न था। हमें इसमें कोई ग्लानि भी नहीं माननी चाहिए कि ये सभी शब्द संस्कृत भाषा में नहीं हैं।

साधारण तौर पर मैंने सिद्धान्त का विश्लेषणमात्र यहाँ किया है। वास्तविक रूप देने के समय इसमें यथोचित परिवर्तन करना कोई अनुचित न होगा।

भास्कराचार्य द्वितीय--एक अध्ययन

श्री रामसिन्हा, अध्यापक, गणित विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

योग्य निर्णायकों द्वारा 'गणित के स्वर्णयुग' के नाम से पुकारी जाने वाली इस २० वीं शताब्दी पर संसार के विभिन्न भागों से होने वाली प्रशंसा की बौछारों में यदि हम भारतीय सहस्रों वर्ष पूर्व के अपने पूर्वजों द्वारा गणित के प्रेम में की हुई गवेषणाओं को भूल जायें तो आश्चर्य ही क्या ! जब कोई नवीन विचार हमारे सम्मुख प्रकट किया जाता है तो साधारणतया यह सोचने के लिये हम शायद ही कभी क्षण भर को भी रुकते हों कि 'क्या वस्तुतः यह विचार हमारे लिये सर्वथा नवीन है ?' गणित की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्ध रखने वाली भारतीयों की कृतियाँ मौलिकता, यथार्थता तथा प्राथमिकता की दृष्टि से सर्वथा प्रशंसनीय हैं।

ज्ञान की अन्य शाखाओं की भाँति गणित भी प्रारम्भिक महत्वपूर्ण रचनाओं के लिए भारतीयों के प्रति आभारी है। संस्कृत में रचे गये प्राचनीतम ग्रन्थ वेद हैं। इनके बाद प्रायः ई० पू० २००० के लगभग ब्राह्मण ग्रंथों की रचना हुई। इन्हीं ग्रन्थों में सर्व प्रथम गणित तथा ज्योतिष विज्ञानों का बीज मिलता है। पूर्व वैदिक काल में तो प्रत्येक विज्ञान की उन्नति धर्म की सहायक शाखा के रूप में हुई। किन्तु इस बात का पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है कि जैसे-जैसे समय बीतता गया इन विभिन्न विज्ञानों का क्षेत्र विस्तृत होता गया और धीरे-धीरे उनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व हो गया। ई० पू० ४०० से ४०० ई० तक का काल बड़ी महत्वपूर्ण रचनाओं, क्रियाशीलता तथा उन्नति का था क्योंकि इसी काल में अनेक प्रसिद्ध भारतीय गणितज्ञ तथा ज्योतिषवेत्ता उत्पन्न हुये। इसी काल में विख्यात ज्योतिष सिद्धान्तों की रचना हुई तथा दशमलव मान प्रणाली का आविष्कार हुआ।

प्राचीन भारतीय, गणित शास्त्र को बड़ा महत्व देते थे। वेदांग ज्योतिष में तो यहाँ तक कहा है कि :—

यथा शिखा मयूराणां, नगानां मणयो यथा।

तद्वद्वेदांग शास्त्राणां, गणितं मूर्धानि स्थितम्॥

अर्थात् जिस प्रकार मयूर की शिखा तथा सर्प की मणि उनके मस्तक पर होती हैं उसी प्रकार वेदांग शास्त्रों में गणित का स्थान सर्वोपरि है।

यहाँ हम प्राचीन भारत के गणितज्ञों में अन्तिम विख्यात गणितज्ञ भास्कराचार्य द्वितीय (१११४ ई०) के सम्बन्ध में बतायेंगे।

जहाँ तक गणित का सम्बन्ध है भास्कराचार्य अन्तिम भारतीय रत्न हैं। ५ वीं शताब्दी के अन्त में राष्ट्र के जीवन में आर्यभट से जिस युग का प्रारम्भ हुआ तथा जो शताब्दियों तक संसार का सबसे महत्वपूर्ण गणित युग समझा जाता रहा, इस युग का अन्त १२ वीं शताब्दी के अन्त में भास्कर के निधन के साथ ही हो गया। लीलावती, बीज गणित तथा सिद्धान्तशिरोमणि—इन तीन ग्रंथों के लिखने का श्रेय भास्कर को दिया जाता है। सिद्धान्त शिरोमणि से तो हमें उसके रचयिता के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचनायें प्राप्त होती हैं। उससे हमें ज्ञात होता है कि भास्कर का जन्म १०३६ शक संवत तदनुसार १११४ ई० में दक्षिण भारत के विज्जदविड़ (बीजापुर) नामक स्थान पर हुआ। उनके पिता का नाम महेश्वरोपाध्याय था। वे पक्के वैष्णव थे। भास्कर ने अपने योग्य पिता की ही देख रेख में शिक्षा प्राप्त की। उनकी बुद्धि की प्रखरता तथा उनकी बहुमुखी प्रतिभा का वर्णन तो देखिये।

अष्टौ व्याकरणानि षट् च भिषजां व्याचष्टताः संहिताः
षट् तर्कान् गणितानि पंच चतुरो वेदानधीते स्मयः ।
रत्नानां त्रितयं द्वयं च बुबुधे मीमांसयोरन्तरे
सद्ब्रह्मैकमगाध बोध महिमा सोऽस्याः कविर्भास्करः ।

अर्थात् आठो व्याकरण, छहो वैद्यक, शास्त्रसंहितायें तर्क शास्त्र की छहों शाखायें, गणित की पाँच शाखायें तथा चारों वेद उन्हें भली प्रकार ज्ञात थे। वे साथ ही विभिन्न मीमांसा शास्त्रों का भी एक दूसरे से अन्तर समझते थे। ऐसे थे वे कवि भास्कर।' इन सभी गुणों का पर्याप्त परिचय पाठक को उनके ग्रन्थों से मिल जाता है। अपनी प्रकांड विद्वत्ता के साथ-साथ इस कवि गणितज्ञ ने अपनी सभी रचनाओं, विशेषतया लीलावती को आकर्षक तथा सरल उदाहरणों द्वारा बच्चों के समझने योग्य बनाने का अथक प्रयत्न किया है जिससे वे गणित के अध्ययन के प्रति आकृष्ट हों तथा उनके मन में इस विषय के प्रति जो भय का भाव हो वह दूर हो जाय। यह सब होते हुए भी भास्कर का जीवन तथा उनके विचार आदर्श रूप से सरल तथा उच्च थे।

१६ वर्ष की अवस्था में भास्कर ने ज्योतिष के महान ग्रन्थ 'सिद्धान्त शिरोमणि' की रचना की। 'वासनाभाष्य' के नाम से इस ग्रन्थ की टीका स्वयं भास्कर ने लिखी है। ये दोनों ही ग्रन्थ भारतीय ज्योतिष के क्षेत्र में अपना विशेष स्थान रखते हैं। अनेक विचार धारायें, जो भास्कर से पहले लिखे गये आर्यभट तथा श्रीपति के ग्रन्थों में प्राप्य नहीं हैं उनका उल्लेख बड़ी सरल तथा परिमार्जित शैली में कर भास्कर ने अपने पूर्वकालीन गणितज्ञों की विचार धाराओं पर द्वेष रहित भाव से टीका टिप्पणी की और आवश्यकतानुसार जहाँ तहाँ अपने विचार भी व्याख्या सहित प्रस्तुत किये। इन सब कारणों से यह ग्रन्थ बड़ा लोकप्रिय रहा है। भास्कर के लिये यह कहा जाता है कि वह चलन कलन के सिद्धान्तों से, जिन्हे प्रायः उनके ४०० वर्ष बाद पाश्चात्य विद्वानों, न्यूटन तथा लाइबनिज ने जन्म दिया— पूर्णतया परिचित थे। निस्सन्देह अपनी प्रखर प्रतिभा से उन्होंने चलन कलन तथा अन्यान्य गणित की आधुनिकतम शाखाओं के मूलगत सिद्धान्तों को समझा था। उन्होंने स्वतन्त्र चर में होने वाले अल्प परिवर्तन के सापेक्ष उस स्वतन्त्र चर के किसी फलन में होने वाले परिवर्तनों की सीमा पर्याप्त सत्यता से निर्धारित की थी। इस दिशा में उनके अनुसंधान किसी भी प्रकार न्यूटन के अनुसंधानों से कम महत्वपूर्ण नहीं थे। किन्तु दुर्भाग्यवश उन्होंने अपने इन अनुसंधानों का महत्व ठीक नहीं समझा अन्यथा आज चलन कलन जन्म देने का श्रेय लाइबनिज के स्थान पर इन्हें ही प्राप्त होता और गणित अपनी प्रगति में ५०० वर्ष और आगे होती।

१८५६ में डाक्टर स्पॉटिस वुड ने रॉयल एस्ट्रोनोमिकल सोसायटी की पत्रिका में लिखा था, "भास्कर की प्रतिभा विलक्षण है। जिन सूत्रों का प्रतिपादन उन्होंने किया है वे तथा उनके प्रतिपादन करने की रीति दोनों ही आधुनिक ज्योतिष के सिद्धान्तों तथा रीतियों के इतना अनुरूप है कि अनेक विज्ञानाचार्य यह सोच कर आश्चर्य चकित हो जायेंगे कि इतने दूर के देश में तथा इतने प्राचीन समय में ऐसी रीतियाँ किस प्रकार ज्ञात हो सकी होंगी।"

सिद्धान्त शिरोमणि के उस अध्याय का जिसमें अनेक अंक गणित तथा रेखा गणित का समावेश है, भास्कर ने एक नया मनोहर नाम 'लीलावती' दिया है। इसकी रचना ११५० ई० में हुई। इसके नाम के बारे में मतभेद हैं। कुछ लोगों का कहना है भास्कर ने अपनी कन्या के नाम को सदैव जीवित रखने के लिये उसका नाम लीलावती रखा। कुछ का कहना है कि लीलावती उनकी पत्नी का नाम था। कुछ इन दोनों रायों को नहीं मानते। सत्य कुछ भी हो इतना तो निर्विवाद सत्य है कि भास्कर ने अपने ग्रन्थ को सरल और सुबोध बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। किन्तु साथ ही कुछ प्रश्न तो इतने विकट हैं कि आज भी अच्छे मस्तिष्क वालों को चुनौती दे सकें। किसी ने तो शायद खीझ कर यहाँ तक कह डाला है कि—

भास्करीय गिरां सारं भास्करो वा सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा वेत्ति विदुर्नान्ये तु मादृशाः ॥

अर्थात् भास्कर की वाणी का अर्थ भास्कर स्वयं या सरस्वती या फिर स्वयं ब्रह्मा ही समझ सकते हैं हम जैसे लोग नहीं।

लीलावती में गणित की कई शाखाओं का समावेश है। इसमें अंक गणित, बीज गणित, क्षेत्र मिति तथा थोड़ी सी त्रिकोण मिति पर प्रश्न लिखे गये हैं। इसके प्रश्न सरल सुललित संस्कृत छन्दों में लिखे गये हैं। गद्य में लिखे गये अन्य बहुत से ग्रन्थों से यह ग्रन्थ अधिक चित्ताकर्षक है।

भास्कर ने इस ग्रन्थ में शून्य पारिकर्म पर पर्याप्त समय व्यतीत किया। यह शून्य तो भारतीय संख्या पद्धति की जान है। इसी की सहायता से विभिन्न अंकों का स्थानीय मान बताना सम्भव हो पाता है। इस शून्य के चिन्ह के बिना भारतीय पद्धति भी शायद अत्यन्त उपयोग रहित होती। अमेरिका के प्रोफेसर हाल्सटेड ने तो कहा है कि शून्य के आविष्कार की उपयोगिता वर्णनातीत हैं। कोई भी अकेला गणित सम्बन्धी आविष्कार बुद्धि तथा शक्ति की उन्नति के लिये इससे अधिक उपयोगी नहीं सिद्ध हुआ है।

भास्कर का बीज गणित हमारे आधुनिक बीज गणित से बहुत मिलता जुलता है। उनके समय में अव्यक्त समीकरणों को हल करने की रीति को 'कुट्टक' नाम दिया गया है। अनेक वर्ण वर्ग समीकरणों को हल करने के लिए चक्रीय पद्धति का कुट्टक के साथ प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार इस महान गणितज्ञ ने भारतीय गणित को संसार के सम्मुख उच्चासन प्राप्त कराने में अपना सारा जीवन लगा दिया और सम्भवतः १२ वीं शताब्दी के अन्त में ही भास्कर की जीवन लीला समाप्त हुई। इसके साथ ही भारतीय गणित के क्षेत्र में आगे आने वाली कुछ शताब्दियों के लिये अन्धकार छा गया जो अभी हाल में इस बीसवीं शताब्दी में हटा है और अब एक बार फिर भारतीय गणितज्ञ संसार में अपना समुचित स्थान प्राप्त करने लगे हैं।

विज्ञान के आदिम प्रयोग [पृष्ठ ३१ का शेषांक]

आचार्य ने उपदेश दिया कि इसी प्रकार आत्मा सूक्ष्म और व्यापक है।

तत्व ज्ञान की प्राप्ति के लिए किए गए प्रयोगों में उपनिषद् में पाया गया यह प्रयोग प्राचीन होते हुए भी नित्य नवीन है।

आज अणु की शक्ति को विज्ञान-विदों ने समझ लिया है। पर कुछ समय पूर्व तक सूक्ष्म की परम शक्ति का बोध इतना व्यापक न था। उपनिषद् में सूक्ष्म की शक्ति का दिग्दर्शन आचार्य ने दूसरे प्रयोग से कराया था। सामने एक विशाल बड़गद का पेड़ खड़ा था, ऐसा जिसकी विशालता देखकर मनुष्य का मस्तक झुक जाय। आचार्य ने शिष्य को बताया कि यह वृक्ष सूक्ष्म रूप में हो सकता है। शिष्य ने पूछा "कैसे ?" आचार्य ने कहा कि "इसका एक पका फल (गदिया) तोड़ लाओ।" बालक ले आया। आचार्य ने उसको हाथ से मसला। बहुत से छोटे-छोटे बीज निकल आए। आचार्य ने एक बीज को लेकर आँख के पास ले जाकर कहा "इसमें मुझे पूरा वट वृक्ष दिखाई देता है। इसी प्रकार इन सब बीजों में एक एक वृक्ष है।" बालक चकित हुआ। पर वह विश्वास कैसे करता ?

आचार्य ने बालक द्वारा ही कई बीज अलग-अलग करा दिए। उसी के द्वारा उनकी देख भाल और सिंचाई करवाई। जब शिष्य ने उनसे निकले हुए पेड़ देख लिए तब उसे विश्वास हो गया।

भारत के प्राचीन काल के ये प्रयोग आज के विज्ञान-युग में अवश्य ही बचकाने प्रतीत होंगे, पर ऐसे ही प्रयोगों में विज्ञान की वास्तविक नींव है।

विज्ञान के आदिम प्रयोग

लेखक—डा० बाबूराम सक्सेना, एम्-ए०, डी० लिट्०

विज्ञान शब्द आज 'सायंस' के लिए इस्तेमाल किया जाता है पर प्राचीन भारत में इसका अर्थ विशेष कर आत्मा की जानकारी समझा जाता था। "जिसके जान लेने से सबका ज्ञान हो जाता है उसे विज्ञान कहते हैं।" ज्ञान आत्म स्वरूप है, शेष सब प्रकृति अथवा माया है। जिस प्रकार घड़े, सुराही, सकोरे, मटके आदि का अस्तित्व अपेक्षाकृत केवल शब्द रूप है, मिट्टी ही सच्ची सच्चाई है उसी प्रकार आत्मा ही सत्य है, उसी पर सारा आडम्बर आश्रित है। यह आत्मा का ज्ञान असली विज्ञान है, यह परा (श्रेष्ठ) विद्या है। शेष अपरा है। आजकल के सायंस को हम अपरा विद्या के नाम से पुकारते तो अधिक ठीक होता। पर पदार्थों का नामकरण सदा तार्किक ही करते नहीं बैठता। नाम इस्तेमाल से प्रचलित हो जाते हैं और उपयुक्त अर्थों को ग्रहण कर लेते हैं।

आज के विज्ञान का मुख्य साधन है प्रयोग (एक्सपेरिमेंट) उसी के द्वारा तत्वों तक पहुँच होती है। अभी तक योग की मदद से आत्मा द्वारा साक्षात्कार को विज्ञान मान्यता नहीं देता। शतियों पूर्व भारतीय विद्वानों ने जान लिया कि वृक्षों में जान होती है पर विज्ञान युग ने तब तक इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया जब तक स्वनाम धन्य जगदीशचन्द्र वसु ने :—

अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुख दुःख समन्विताः।

इस उक्ति को प्रयोग द्वारा सिद्ध नहीं कर दिया। श्रद्धा के अभाव में आज इन्द्रियजन्य ज्ञान की ही महत्ता है।

तत्त्व को समझाने के लिए प्रयोग रूपी साधन का सहारा भारत में पूर्वकाल में भी लिया जाता था, लेकिन अधिकतर यह दृष्टान्त स्वरूप होता था। उपनिषदों में आए हुए ऐसे दो प्रयोग प्रस्तुत किए जाते हैं।

ऋषि अपने शिष्य को आत्मा की व्यापकता और सूक्ष्मता समझा रहे थे और वह समझ नहीं रहा था। उन्होंने नमक की डली और एक घड़ा पानी मँगाया। बालक से पूछा कि "दोनों वस्तुओं पानी और नमक को देखते हो?" उसने कहा—"हाँ।" अब कहा कि "नमक पानी में डाल दो और खूब हिलाओ।" शिष्य ने वही किया। गुरु ने पूछा कि "क्या दीखता है, नमक या पानी।" लड़का बोला "केवल पानी।"

"नमक कहाँ गया?"

"इसी पानी में होगा। मैंने इसी में डाला था। पर दिखता नहीं।"

"होगा से काम नहीं चलेगा। कहो है या नहीं।"

ब्रह्मचारी चक्कर में पड़ गया। नमक उसने अपने आप डाला था। लेकिन जब दिखता नहीं था तब कैसे कहे कि है या नहीं।

गुरु ने फिर रास्ता दिखाया। कहा "पानी का एक बूँद लेकर चखो।" लड़के ने आज्ञा का पालन किया और तुरन्त बोला—"गुरुदेव, इसमें नमक है। पानी में नमक है।"

जहाँ नेत्रेन्द्रिय काम न कर सकी वहाँ रसना ने मदद की।

ऋषि ने एक बहुत बड़ा मटका मँगवाया और उसमें घड़े का पानी उलटवा दिया। अब उसमें दो घड़े पानी और उलटवा दिया। पानी अब भी नमकीन था पर नमकीन पने की मात्रा क्षीण हो गई थी। लड़के ने स्वीकार किया कि उस सारे पानी की बूँद-बूँद में नमक है। अन्त में सारा मटका पानी से भर दिया गया। अब नमक का अनुभव रसनेन्द्रिय से भी न हो सकता था। पर विद्यार्थी ने स्वीकार कर लिया कि नमक सूक्ष्म रूप से पानी की हर एक बूँद में व्याप्त है।

[शेष पृष्ठ ३० पर

गार्हस्थ्य जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण

श्रीमती रानी टंडन, एम० एड०, प्रधानाचार्या, राजकीय गृहविज्ञान महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद

गार्हस्थ्य जीवन आदि काल से मनुष्य जीवन की एक महत्वपूर्ण और आवश्यक संस्था रहा है। मनुष्य के जीवन का अधिकांश भाग गृहस्थ आश्रम में ही व्यतीत होता है। फिर भी इस आश्रम के उत्तरदायित्वों को निवाहने की, इस संस्था के संचालन की, कोई शिक्षा नहीं दी जाती है। गृहस्थी रूपी गाड़ी के स्त्री और पुरुष दोनों पहिये उसके चलाने के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, फिर भी सदैव से स्त्री पर ही उसके चलाने का भार अधिक रहा है। आदि काल से यही क्रम चलता आया है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। किन्तु आश्चर्य यह है कि नारी-जीवन के महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व के लिये उसकी शिक्षा की ओर सदैव से उदासीनता रही है। सदैव यह समझा जाता रहा है कि नारी अपनी प्रकृति प्रदत्त प्रवृत्तियों द्वारा ही गृहस्थी का संचालन करना स्वतः जान जाती है और उसे किसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं। कैसी विडम्बना है!

एक हलवाई अपनी कला का ज्ञान काफी समय के अभ्यास से अपनी सन्तान को कराता है। दर्जी का पुत्र बिना पिता के व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त किये दर्जी नहीं बन पाता। लोहार, सुनार, राजगीर, मोची, धोबी आदि सभी के कामों के लिए, चाहे वह छोटे काम हों चाहे बड़े—मनुष्य को शिक्षा लेनी पड़ती है। कार्य जितना कठिन या सरल होता है, उतनी ही अधिक या कम शिक्षा और उतना ही अभ्यास आवश्यक होते हैं। इंजीनियर और डाक्टर बनने में कितनी शिक्षा चाहिए यह सभी जानते हैं। फिर क्या कारण है कि स्त्री को उसके कार्यों और उत्तरदायित्वों की शिक्षा देने की ओर ऐसी घोर उदासीनता है? क्यों यह भ्रम है कि नारी सब आवश्यक ज्ञान अपने प्राकृतिक गुणों द्वारा ही प्राप्त कर लेती हैं? नारी में वात्सल्य, दया, सहानुभूति, सहनशक्ति आदि कोमल भावनायें अधिक होती हैं, अतः वह गृहस्थी के संचालन का भार वहन करने के लिये अधिक उपयुक्त है कहना तो ठीक है, किन्तु यह कहना कि वह गृहस्थी सम्बन्धी सब कार्यों का ज्ञान भी स्वतः ही प्राप्त कर लेगी, कितना हास्यास्पद है!!

गृहस्थी के संचालन के लिए स्त्री को कई विभिन्न प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं—घर की सफाई और सुसज्जा, भोजन बनाना, कपड़ा धोना, कपड़ा सीना, बच्चों का लालन-पालन आदि आदि। उसे ऋतु के अनुसार सामान खरीदने, अनाज की सुरक्षा, गृहस्थी की आय-व्यय का हिसाब रखने, तथा सभी सम्बन्धियों से उचित करने का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। यह सब ज्ञान प्राप्त करने और इन कार्यों को सुचारु रूप से कर सकने के लिये प्रत्येक स्त्री को इनकी शिक्षा प्राप्त कर इनसे दक्षता प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। अतः प्रत्येक बालिका को इन सभी कार्यों की शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए घर में माँ या अन्य महिला सम्बन्धियों द्वारा उनके कार्यों की नकल करके नहीं, वरन् शिक्षालयों में योग्य गुरुओं की अध्यक्षता में तथा वैज्ञानिक ढंग से।

आज के वैज्ञानिक युग में गृहस्थी के अनेक कार्यों के लिये विद्युत् चालित यंत्र प्राप्य हैं। वैज्ञानिक ढंग की शिक्षा से मेरा तात्पर्य इन यंत्रों के उपयोग की शिक्षा से नहीं है। इन यंत्रों के उपयोग का ज्ञान तो सुगमता से थोड़े से अभ्यास से कोई भी प्राप्त कर सकता है। मेरा तात्पर्य प्रत्येक कार्य के—वरन् सम्पूर्ण जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने से है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मेरा तात्पर्य उस चेतना से है जो मनुष्य को प्रत्येक वस्तु का कार्य—कारण सम्बन्ध, उसकी उपयोगिता-अनुपयोगिता तथा अच्छाई-बुराई जानने में सहायक होती है। उदाहरणार्थ, भोजन के प्रश्न को

ही ले लीजिये। भोजन चाहे लकड़ी या कोयले के चूल्हे पर बने अथवा विद्युत् स्टोव पर; इससे कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं पड़ता। हमें साधारण और प्राचीन उपकरण उपलब्ध हैं या नवीनतम उपकरण, इनका भी मेरी दृष्टि में कोई विशेष महत्व नहीं। किन्तु मेरी दृष्टि में यह अत्यन्त आवश्यक और महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक गृहिणी को भोजन की प्रत्येक वस्तु के गुण-दोष और उसे बनाने तथा उपयोग करने की विधि का ज्ञान हो। प्रत्येक वस्तु को किस ऋतु में और किस समय खाने से क्या उचित अथवा अनुचित प्रभाव पड़ता है, यह ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इस ज्ञान को प्राप्त करने पर प्रत्येक स्त्री ऐसा भोजन बनाकर अपने परिवार वालों को खिलायेगी कि उनका स्वास्थ्य ठीक रहे। विटामिनों की उपयोगिता और भोजन पकाने में उनके सुरक्षित रखने का ज्ञान इस युग के विज्ञान की एक महत्वपूर्ण देन है। किन्तु यदि यह ज्ञान प्रत्येक गृहिणी को प्राप्त न हो सके तो वैज्ञानिकों की इस खोज का क्या लाभ ? इसी प्रकार भोजन सम्बन्धी सभी वैज्ञानिक ज्ञान प्रत्येक गृहिणी के लिये प्राप्य होना चाहिए।

प्राचीन काल में रोग दैवी प्रकोप समझे जाते थे। लोग न तो उनके कारण जानते थे और न उनसे बचने के उपाय। रोगों से बचने का एकमात्र उपाय दैव कृपा की प्रार्थना और कामना करना था। किन्तु अब परिस्थिति बिल्कुल भिन्न है। विज्ञान ने प्रत्येक रोग के कारण, फैलने के ढंग और उससे बचने के उपाय भली प्रकार ज्ञात कर लिये हैं। ऐसी अवस्था में रोग अधिकांशतः लोगों की असावधानी से होता है—चाहे वह हमारी अपनी असावधानी हो अथवा दूसरे लोगों की। ऐसी स्थिति में प्रत्येक गृहिणी के लिए इस ज्ञान का क्या महत्व है, इसे बतलाने की आज के युग में कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। क्या वैज्ञानिक ढंग से बिना शिक्षा प्राप्त किये नारी यह सब ज्ञान अर्जित कर सकती है ?

कितने ही परिवार आर्थिक संकट से ग्रस्त रहते हैं। धन की चिन्ता और उसका अभाव उनके स्वास्थ्य को नष्ट कर देता है। यदि नारी को घर का बजट बनाना—आय और व्यय का समन्वय बैठाना - कम से कम धन में जीवन की अधिक से अधिक आवश्यकता पूरी करना—सिखलाया जाय, तो ऐसी परिस्थितियों में नारी परिवार की रक्षा का साधन बन सकती है। वह आय नहीं बढ़ा सकती, किन्तु उतनी ही आय में अधिक से अधिक स्वास्थ्यप्रद भोजन देकर और स्वच्छता तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्य नियमों का पालन कर वह पूरे परिवार का स्वास्थ्य ठीक रख सकती है। जो विटामिन-सी धनी मनुष्य सन्तरे खाकर प्राप्त करता है, गरीब मनुष्य उसे सरलता से आँवले द्वारा प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार बादाम के अधिकांश तत्व भिगो कर कच्ची मूँगफली खाकर प्राप्त किये जा सकते हैं। भिगा कर अंकुये निकला हुआ अनाज हमें जितना लाभ पहुँचाता है, वह धनी लोगों का गरिष्ट भोजन नहीं। फल के उपयोग का अर्थ सेब, अनार या सन्तरा खाना ही नहीं, ऋतु के अनुसार अमरूद, पपीता, खरबूजा, तरबूज, ककड़ी आदि ताजे फलों का सेवन भी है। क्या इन मौसमी फलों के सेवन में धन की कमी बाधा पहुँचा सकती है ? किन्तु इन बातों के ज्ञान के अभाव में हम अपने भोजन को स्वास्थ्यप्रद नहीं बना पाते हैं।

इस प्रकार गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने के लिये नारी को शिक्षित कर उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण सिखलाने की आवश्यकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रत्येक स्त्री को शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य रक्षा, पोषण विज्ञान, और पाक शास्त्र, मातृकला, बाल मनो विज्ञान, गृह प्रबन्ध, धुलाई कला व शिल्पकला की शिक्षा वैज्ञानिक ढंग से देना अत्यन्त आवश्यक है। इन विषयों का समुचित ज्ञान प्राप्त करने पर गार्हस्थ्य जीवन की प्रत्येक समस्या को नारी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सुलझायेगी, अन्ध विश्वसों और रूढ़िगत परम्पराओं के आधार पर नहीं। जिस दिन हम नारी को यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण देने में सफल हो सकेंगे उसी दिन हमारा गार्हस्थ्य जीवन सुखमय और गृहस्थ आश्रम स्वर्गमय बन सकेगा।

सर्वोदय और विज्ञान

ले०—श्री भगवानदास केला, सर्वोदय ग्रन्थ माला, दारागंज, प्रयाग

मैं ऐसी मशीन का स्वागत करूँगा जो झोपड़ों में रहने वाले करोड़ों मनुष्यों के बोझ को हल्का करती है। करोड़ों सजीव मशीनों के मुकाबले, जो भारत के सात लाख गांवों में हैं, निर्जीव मशीनों को स्थान नहीं दिया जा सकता।

—गांधी जी

यदि विज्ञान का नियंत्रण कुछ ही व्यक्तियों के हाथ में रहा तो संसार को एक बड़े संकट का सामना करना पड़ेगा। मैं तो इस क्षेत्र में भी विकेन्द्रीकरण का सुझाव दूंगा।

—विनोबा

विज्ञान का अर्थ बड़ी-बड़ी मशीनें नहीं, उसका अर्थ है प्रकृति के नियमों की जानकारी। अणु शक्ति की जानकारी विज्ञान है, ऐटम-बम नहीं। समाज का उद्देश्य जिस ओर होगा, विज्ञान का इस्तेमाल उसी दिशा में होगा।

—धीरेन्द्र मजूमदार

सर्वोदय की भावना और विज्ञान

सर्वोदय की मूल भावना बहुत पुरानी है। कौन कह सकता है कि भारत में अब से ठीक कितने वर्ष पहले 'सर्वे सुखिनः भवन्तु, 'सर्वभूत हितेरताः' और 'बसुधैव कुटुम्बकम्' आदि सर्व हितकारी वाक्य प्रथम बार कहे गये थे। भाषा और शब्दों का भेद होते हुए भी इस भावना का अन्य देशों में समय-समय पर परिचय मिलता रहा है। हाँ, आधुनिक युग में इस भावना का प्रचार करने वाले रस्किन, टालस्टाय और गाँधी जी आदि हैं। इनमें भी गाँधी जी ने इसे विशेष रूप से स्पष्ट और प्रचारित किया है। पहले इसका चिन्तन और मनन प्रायः व्यक्तिगत क्षेत्र में अथवा बहुत छोटे-छोटे क्षेत्रों में सीमित था अब यह सार्वजनिक और क्रियात्मक स्वरूप ले रही है। इसमें विज्ञान की बड़ी सहायता मिली है; वास्तव में विज्ञान की बदौलत ही सर्वोदय की भावना अधिकाधिक सार्थक हो रही है, और हो सकती है। प्राचीनकाल में आदमी सर्वोदय की बात कहता था तो वह अपने पास के, अपने गाँव खेड़े के थोड़े से व्यक्तियों को ही अपनी दुनिया समझता था। दूर-दूर के आदमियों से वह इच्छा रखते हुए भी सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता था। उस समय दुनिया जुद-जुदा अनेक भागों में विभक्त थी, और एक भाग के निवासियों को दूसरे भाग के आदमियों के सुख दुख का कुछ पता नहीं होता था। और जब पता भी लग जाता था तो हमें वह साधन सुलभ न थे कि हम अपने दूर रहते भाइयों के दुख-दर्द को कम करने में क्रियात्मक योग दे सकें। अब विज्ञान की सहायता से हम हजारों मील दूर रहने वालों का हाल सहज ही जान सकते हैं और अनावृष्टि, बाढ़, अग्निकांड, भूकम्प आदि के अवसर पर शीघ्र ही यथेष्ट सहायता पहुँचा सकते हैं।

विज्ञान की आवश्यकता—इससे स्पष्ट है कि सर्वोदय की भावना को अमल में लाने के लिए विज्ञान की कितनी आवश्यकता है। परन्तु प्रायः आदमी इस बात को भूल जाते हैं। कितने ही लोगों की यह धारणा है कि सर्वोदय व्यवस्था में विज्ञान को कुछ महत्व नहीं दिया जायगा। यह व्यवस्था तो मनुष्य की प्रगति को रोकने वाली, उसे पीछे की ओर ले जाने वाली है। वास्तव में ऐसी धारणा या शंका ठीक नहीं है। सर्वोदय व्यवस्था में हमें विज्ञान की आवश्यकता कम नहीं होगी वरन् इस समय की अपेक्षा अधिक ही होगी। और ज्यों-ज्यों हम सर्वोदय के कार्य क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहेंगे, हमारी विज्ञान की मांग अधिकाधिक होती जायगी। वर्तमान काल

में विज्ञान कुल मिल कर कुछ मोड़े से ही आदमियों का हित-साधन कर रहा है। हम चाहेंगे कि उससे सर्वसाधारण का कल्याण हो, वह घर-घर पहुँचे, वह मनुष्य के हाथ में एक हिंसा या मृगेषण का शस्त्र न हो, वरन् लोकसेवा का साधन बने; वह मनुष्य में दया, प्रेम, सहानुभूति आदि मानवीय गुणों को बढ़ाता हुआ उसके विकास में, उसमें मानवता की वृद्धि करने में सहायक हो।

यंत्रों की मर्यादा—विज्ञान के सम्बन्ध में एक व्यावहारिक प्रश्न यह होता है कि सर्वोदय व्यवस्था में यंत्रों का क्या स्थान होगा। संक्षेप में यंत्र तीन प्रकार के होते हैं (१) मारक, हिंसक या विध्वंसक—तोप, बंदूक या बम आदि; (२) समय की बचत करने वाले—मोटर, रेल, जहाज, हवाई जहाज आदि; (३) उत्पादक—कपड़े की मिल, ट्रेक्टर, आटा पीसने या तेल निकालने की मिल, साधारण चर्खा, अम्बर चर्खा आदि। इनमें से हिंसक या विध्वंसक यंत्रों के बारे में अब लोगों की समझ में यह आता जारहा है कि हिंसा से कोई मसला हल नहीं होता; और यदि कोई मसला कुछ हल होता नजर आता है, तो थोड़े समय के लिए ही ऐसा होता है। फिर इससे दूसरे मसले खड़े हो जाते है। इस प्रकार सर्वोदय समाज में हिंसक यंत्रों का कोई स्थान नहीं, ये मानवता को ही खत्म करने वाले हैं।

समय बचाने वालों यंत्रों से यह लाभ है कि बचाया हुआ समय और शक्ति लोकसेवा के काम में लगायी जा सकती है, उससे मानवता का विकास हो सकता है। इसलिए ऐसे यंत्रों का विरोध होने की कोई बात ही नहीं; हाँ इनके उपयोग के उद्देश्य का बराबर ध्यान रहना चाहिए अर्थात् इनका उपयोग ऐसे ही अवसरों पर किया जाना चाहिए, जहाँ वास्तव में समय या शक्ति की बचत करना अभीष्ट हैं। बहुत से आदमी घंटों अपना समय इधर-उधर काटते रहते हैं, पर कहीं थोड़ी सी दूर जाने का काम आता है तो अपनी शान दिखाने के लिए मोटर का उपयोग करते हैं। यह अनुचित है।

उत्पादक यंत्रों की उपयोगिता देश काल पर निर्भर है। प्रत्येक यंत्र के विषय में जुदा-जुदा विचार करना होगा कि उसका उपयोग किया जाय या नहीं। साधारण तौर से मनुष्य की रोजमर्रा की भोजन-वस्त्र आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हाथों से चलाए जाने वाले यंत्रों का ही उपयोग होना चाहिए; भाप, बिजली आदि शक्ति से चलने वाले यंत्रों का नहीं। खासकर भारत जैसे बड़ी आबादी वाले देशों में मुख्य प्रश्न श्रम बचाने का नहीं, लोगों को रोजगार देने का होता है। यहाँ सूत कातने, कपड़ा बुनने, आटा पीसने, तेल निकालने आदि की मिलें बनाना कतवारियों, बुनकरों, पिसनहारियों और तेलियों को भूखे मारना है। ग्रामोद्योगों और गृहोद्योगों को नष्ट करके बेकारी बढ़ाना और फिर बेकारी को दूर करने के उपायों का विचार करना कहाँ की बुद्धिमानी है! यह तो मानवता विरोधी दुष्कृत्य है।

विशेष वक्तव्य—इस समय यंत्रों के दुरुपयोग को देखकर आत्मा यह सोचने लगता है कि क्या विज्ञान मनुष्य के लिए अभिशाप तो नहीं हो रहा है। ऐसा प्रसंग न आये, और विज्ञान मनुष्य के लिए वरदान ही हो, इसके लिए आवश्यक है, कि हम कुछ मान्यताएँ स्वीकार करें—यंत्र मनुष्य के लिए है, मनुष्य यंत्र के लिए नहीं। मनुष्य यंत्र पर नियंत्रण रख सके, यंत्र मनुष्य पर हावी न हो; यंत्र को मनुष्य के शोषण का साधन न बनाया जाय; शरीर श्रम और बौद्धिक कार्य को समान प्रतिष्ठा तो मिले ही, यथा सम्भव प्रत्येक व्यक्ति के लिए कुछ उत्पादक शरीर-श्रम करना आवश्यक हो आत्म संयम के लिए सत्याग्रह और असहयोग आदि अहिंसक साधनों का उपयोग किया जाय। समाज में इन मान्यताओं का प्रचलन होने से विज्ञान उसका कल्याण करने वाला ही होगा।

विज्ञान के नए चरण

डा० रामचरण मेहरोत्रा, लखनऊ विश्वविद्यालय

गत कुछ मासों की वैज्ञानिक प्रगति के पर्य्यावलोकन पर विदित होता है कि इस काल में सब से प्रमुख तथा महत्वपूर्ण गवेषणा प्रयोग शक्ति में कृत्रिम रूप से 'वाइरसों' का निर्माण है। यह कार्य आज से ५-६ मास पूर्व अमरीका में कैलीफोर्नियाँ नामक विश्वविद्यालय के दो वैज्ञानिकों ने सम्पन्न किया है। इन वैज्ञानिकों के नाम हाइन्ज एल० फ्रैंङ्केल कॉनरैट तथा राबले विलियम्स हैं। इस गवेषणा से सर्व प्रथम यह सम्भव हो पाया है कि निर्जीव रसायनिक पदार्थों से एक सजीव प्राणी की दृष्टि प्रयोगशाला में की जा सके। इस प्रकार मानव को कृत्रिम जीवन दान देने में सफलता मिल गई है जिससे इस गवेषणा का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त इस गवेषणा के अन्य गम्भीर पहलू भी हैं जिनका उल्लेख मैं अभी आपसे करूँगा।

शायद आप पूछें कि यह 'वाइरस' किसको कहते हैं। इतना तो आपने अवश्य सुना होगा कि जुकाम, मीजिल्स चिकेन-पाक्स, मम्स, पोलिओ आदि वाइरसों के ही कारण होती है। सच पूछो तो हमारा शरीर विभिन्न प्रकार के वाइरसों का भण्डार बना रहता है। अधिकतर तो जब हम स्वस्थ रहते हैं तो हमें वाइरसों का पता भी नहीं चल पाता परन्तु जब हमारी शक्ति कुछ क्षीण पड़ जाती है तो ये वाइरस हम पर विजय पा जाते हैं और फलस्वरूप हमें नाना प्रकार के रोगों का दुःख भोगना पड़ता है। इधर कई वर्षों से वैज्ञानिक इन वाइरसों द्वारा होने वाले रोगों से हमें सुरक्षित रखने के उपाय ढूँढ़ने में दत्तचित्त हैं। अभी पिछले ही वर्ष पोलिओ रोग से सुरक्षा के लिए "साक वैक्सीन" का निर्माण हुआ, इसका विस्तृत विवरण आप दैनिक समाचार पत्रों में पढ़ चुके होंगे। शायद आपको सुन कर आश्चर्य हो कि आज से लगभग ५५ वर्ष पहले तक बैक्टीरिया नामक कीटाणु ही सबसे लघुतम प्राणी माने जाते थे। वैज्ञानिकों का विचार था कि इनसे छोटे प्राणधारी सृष्टि में नहीं होते। परन्तु सन् १८९२ में इवानो विस्की नामक वैज्ञानिक ने प्रदर्शित किया कि तम्बाकू के पौधे की "मोजेइक' नामक बीमारी बैक्टीरियों से छोटे कीटाणुओं के कारण होती होगी। साधारणतया द्रव से बैक्टीरियों को छान कर पृथक किया जा सकता है परन्तु सावधानी से छाने हुए द्रव से भी यह बीमारी एक बीमार पौधे से स्वस्थ पौधे में पहुँचाई जा सकती है। आरम्भ में तो 'वाइरस' केवल कल्पना की वस्तु थी। ये इतने छोटे हैं कि अच्छी से अच्छी माइक्रोस्कोप में इनका आभास तक नहीं मिलता। यदि २ करोड़ पोलिओ वाइरस एक पंक्ति में खड़े किए जाएँ तो वे मिल कर आलपीन के नोक के बराबर स्थान घेरेंगे। परन्तु अब "इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप" द्वारा इनका चित्र लिया जा सकता है। इनका मुख्य गुण यह है कि ये शारीरिक द्रवों के अतिरिक्त जीवित नहीं रह पाते। ये पौधों तथा पशुओं दोनों में अनेक बीमारियों के कारण होते हैं और इस आधार पर इनको दो विभागों में बाँटा जा सकता है—वनस्पति वाइरस तथा पशु वाइरस। सच पूछो तो अभी वैज्ञानिक इनके बारे में बहुत कम जानते हैं और प्रायः यह भी सन्देह उठाया जाता है कि वाइरस को निर्जीव रासायनिक पदार्थ माना जाए या सजीव प्राणी। निर्जीव (रसायनिक पदार्थों की ही भाँति डा० वेण्डर स्टैनली ने १९३५ में एक वनस्पति वाइरस का केलासन या Crystallisation करने में सफलता पाई। इस गवेषणा का महत्व इससे स्पष्ट हो जाता है कि डा० स्टैनली को मुख्यतः इसी कार्य्य के लिए नो बुल पुरस्कार से सुशोभित किया गया था। अभी दो तीन मास पूर्व कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में

डा० सी० इ० श्वेड्ट तथा डा एफ० येल० शेफर ने एक 'पशु वाइरस' के केलासन में सफलता पाई है। इस प्रकार प्रथम बार यह सम्भव हो पाया है कि एक पशु वाइरस के लिए बड़े Crystal या केलास प्राप्त किए जा सकते हैं कि उन्हें माइक्रोस्कोप में देखा जा सकता है। परन्तु अधिकांश वैज्ञानिकों का यही विश्वास है कि वाइरस सजीव प्राणी है। सजीवता का सबसे प्रमुख प्रमाण यह है कि प्राणी अपने समान अन्य प्राणियों की सृष्टि कर सकता है। अंग्रेजी में इस गुण को Self-duplica ion कहते हैं। वाइरसों में यह गुण उपस्थित है और इसलिए इन्हें सजीव प्राणी मानना ही पड़ता है।

वाइरसों के शरीर के दो मुख्य भाग होते हैं—एक भाग तो प्रोटीन नामक रासायनिक पदार्थ का बना होता है और दूसरा न्यूक्लिक ऐसिड का। डा० कॉनरैट ने तम्बाकू के मोजेइक नामक वाइरस को सोडियम लाराइल सलफेट की सहायता से प्रोटीन तथा न्यूक्लिक ऐसिड वाले भागों में बाँट लिया। प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि वाइरस स्वयं तो तम्बाकू के पौधों में बीमारी पैदा कर सकता है परन्तु उससे प्राप्त ये दोनों भाग इस ओर निष्क्रिय होते हैं। इसके पश्चात् डा० विलियम्स ने इन दोनों भागों को परस्पर मिला कर पुनः सक्रिय वाइरस प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त इलेक्ट्रोन माइक्रोस्कोप द्वारा यह स्पष्टतया सिद्ध कर दिया गया कि इस प्रकार संश्लेषित वाइरस और प्राकृतिक वाइरस में कुछ भी अन्तर नहीं है। इस प्रकार प्रोटीन तथा न्यूक्लिक ऐसिड ऐसे निर्जीव रासायनिक पदार्थों से एक सजीव वाइरस की सृष्टि ने प्रथम बार निर्जीव और सजीव सृष्टि को एक धरातल पर ला दिया है और इसी कारण सम्भवतः यह गवेषणा इस युग की सर्वप्रमुख गवेषणा सिद्ध होगी। इस गवेषणा के महत्व की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए नोबुल पुरस्कार विजेता डा० वेण्डेल स्टैनली ने यह आशा प्रकट की है कि भविष्य में वैज्ञानिक आवश्यकतानुसार वाइरस के रूप तथा रचना में परिवर्त्तन करके वाइरस द्वारा होने वाली बीमारियों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर सकेंगे।

अभी हमने देखा कि किस प्रकार वाइरस प्रोटीनों और न्यूक्लिक ऐसिड के परस्पर संयोग से प्राप्त किए जा सकते हैं। वाइरस ही नहीं, समस्त सजीव प्राणियों का प्रमुख अंग प्रोटीन होता है। दीर्घ काल से वैज्ञानिकों के लिए यह कल्पना की वस्तु रहा है कि सृष्टि का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ। स्पष्ट है कि इस दिशा में सर्वप्रथम प्रोटीनों का निर्माण हुआ होगा। प्रोटीन स्वयं विभिन्न एमीनों ऐसिड पदार्थों से मिल कर बने होते हैं। इस प्रकार सृष्टि के आदि काल में किसी प्रकार कार्बन, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन आदि के संयोग से एमीनो ऐसिड पदार्थों के कण बने होंगे। कई वर्ष हुए प्रसिद्ध अमरीकन वैज्ञानिक हैरोल्ड यूरे ने यह कल्पना की कि आज से दो-तीन सौ करोड़ वर्ष पहले पृथ्वी के वायुमण्डल में आक्सिजन का प्रभाव था और इसमें मुख्यतः मेथेन अमोनिया तथा जल वाष्प उपस्थित थे। जर्मन रसायनज्ञ लोब के कुछ प्रयोगों के आधार पर अमरीकन वैज्ञानिक स्टैनली मिलर ने १६५४ में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि सृष्टि के आरम्भ काल में प्रोटीन इसी वातावरण में बने। प्रश्न यह था कि इस कार्य के लिए आवश्यक रासायनिक क्रियाओं की प्रेरक शक्ति कहाँ से प्राप्त हुई होगी। मिलर की कल्पना के अनुसार यह शक्ति बादलों द्वारा उत्पादित विद्युत् से मिली होगी। अपनी कल्पना को सत्य सिद्ध करने के लिए उन्होंने एक ग्लोब में सृष्टि के प्रारम्भ का वायुमण्डल कृत्रिम रूप से इकट्ठा किया और फिर उसमें विद्युत धारा प्रवाहित की। इस प्रकार उन्होंने अनेकों एमीनो ऐसिड पदार्थों तथा अन्य रासायनिक पदार्थों का संश्लेषण किया। गत कुछ महीनों से इन्हीं प्रयोगों को जर्मनी में हैमबर्ग की एक प्रयोगशाला में प्रोफेसर हेन्ज (Heyns) की अध्यक्षता में दुहराया जा रहा है। हैम्बर्ग के वैज्ञानिकों ने एक अन्य बात की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है कि ज्वालामुखी पर्वत संसार के प्रारम्भिक काल से ही उपस्थित रहे हैं और उनसे निकलने वाली गन्धक या सलफर गैसें भी संसार के प्रारम्भिक वायुमण्डल का अंग रही होंगी। इस प्रकार प्रारम्भिक गैसों में मेथेन, अमोनिया, जल वाष्प आदि के साथ यदि हाइड्रोजन सलफाइड या कुछ और सलफर वाली गैसें ले ली जाएँ, तो विद्युत् प्रवाह द्वारा सलफर वाली प्रोटीनें भी संश्लेषित की जा सकती हैं। इस प्रकार की प्रोटीनों का सजीव प्राणियों के संगठन में विशेष महत्व

होता है। इस प्रकार मिलर तथा हेनूज की गवेषणाओं ने यूरे की कल्पना की पुष्टि की है और सृष्टि के विकास के बारे में हमारे ज्ञान में आश्चर्यजनक वृद्धि की है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वैज्ञानिक कल्पना तथा प्रयोगों के आधार पर यह पता लगाने में सफल हो रहा है कि सृष्टि के प्रारम्भिक काल में सूक्ष्मतम रसायनिक पदार्थों तथा सजीव प्राणियों की सृष्टि किस प्रकार हुई होगी। इसके अतिरिक्त गत वर्षों की ही भाँति जटिल रासायनिक पदार्थों से अधिक परिचय प्राप्त करने के सतत प्रयत्न भी जारी हैं। उदाहरण के लिए मधुमेह या डायबटीज बीमारी में केवल एक ही दवा इनस्यूलिन क्यों कार्य्य करती है इसका भेद जानने के लिए कैम्ब्रिज में दीर्घ काल से कार्य्य हो रहा है परन्तु पिछले कुछ मासों में ही डा० एफ० सैंगर के प्रयत्नों से इनस्यूलिन का सूक्ष्म संगठन स्पष्ट हो पाया है। इसी प्रकार हारमोन पदार्थों के संश्लेषण पर बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य्य हो रहा है और इस कार्य्य का महत्व इससे स्पष्ट है कि १९५५ में रसायन शास्त्र का नोबुल पुरस्कार प्रोफेसर विंसेएट डू विगनाउड (Vincent du Vignaud) को इसी कार्य के लिए दिया गया है।

वैज्ञानिक केवल सूक्ष्म पदार्थों के संगठन और सृष्टि की दिशा में कार्य्य नहीं कर रहे हैं। परमाणु शक्ति तथा शक्ति के अन्य आश्चर्यजनक स्रोतों की सहायता से वह अन्य ग्रहों में यात्रा करने के मंसूबे भी बाँध रहा है। इस कार्य्य के लिए पृथ्वी तथा इन ग्रहों के बीच के वातावरण तथा ग्रहों के वायुमण्डल के बारे में अधिक विस्तृत ज्ञान एकत्रित करना नितान्त आवश्यक हो गया है। कुछ दिन हुए अमरीका तथा रूस के वैज्ञानिक क्षेत्रों से यह घोषणा की गई है कि उपर्युक्त ज्ञान को अर्जित करने के लिए राकेट द्वारा प्रतिचालित यान भेजे जाएँगे जो पृथ्वी के धरातल से लगभग २५० मील ऊँचाई पर १८००० मील प्रति घण्टे की गति से एक उपग्रह की भाँति चक्कर लगाएँगे। यह कृत्रिम उपग्रह लगभग डेढ़ घंटे में हमारी पृथ्वी की परिक्रमा करेगा और इसमें रक्खे टेलीविजन तथा रेडियो के यंत्र पृथ्वी के वैज्ञानिकों को ब्रह्माण्ड के संबन्ध में बहुमूल्य सूचनाएँ भेजेंगे। ऐसा अनुमान है कि प्रथम यान तो लगभग दो फीट ही लम्बा होगा परन्तु क्रमशः बड़े ग्रह छोड़े जाएँगे और उनकी सफलता पर आकाशीय स्टेशन बनाया जाएगा जिस पर रुक कर मंगल, चन्द्रमा या शुक्र यात्रा के यान आगे बढ़ेंगे।

सारांश यह है कि आज का वैज्ञानिक क्या नहीं कर सकता—निर्जीव पदार्थों से सजीव प्राणियों की सृष्टि उसके द्वारा प्रयोग शाला में सम्भव है। कल्पना के आधार पर वह अरबों वर्ष पहले होने वाली प्रतिक्रियाओं को प्रयोगशाला में दुहरा रहा है और अन्तरग्रही यात्रा के प्रबन्ध में बहुत तेजी से आगे बढ़ रहा है।

फसलों के हानिकारक कीट और उनसे बचने के उपाय [पृष्ठ ४१ का शेषांक]

धान का टिड्डा

यह एक टिड्डा वर्गी कीट है। मादा जमीन में अन्डे देती है और अन्डे बहुत दिनों तक जमीन में पड़े रहते हैं। बरसात आते ही अन्डों से बच्चे निकल आते हैं। यह फसलों के लिये बड़ा भयानक कीट है। यह कोमल कली और पत्तियों को चट कर जाता है। फलतः पौधों के केवल तना ही बाकी रह जाता है। इस कीट के बच्चे और प्रौढ़ दोनों ही फसल को हानि पहुँचाते हैं।

इस कीट द्वारा धान के अतिरिक्त ईख, ज्वार, बाजरा, और दूसरी घासों को हानि पहुँचती है।

बचने के उपाय

इससे बचने के लिये आस-पास के घासपात नष्ट कर देने चाहिये।

ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हलों से जुताई करने से अन्डे ऊपर आजायेंगे और धूप से मर जायेंगे।

जाल द्वारा पकड़ कर भी कीट मारे जा सकते हैं।

यदि रात को खेत के पास आग जलाई जाय तो टिड्डे और बच्चे आग के पास आयेंगे और जल कर मर जायेंगे।

फसलों के हानिकारक कीट और उनसे बचने के उपाय

श्री त्रिपाल सिंह एम० एस-सी० (कृषि)

भारत वर्ष एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ के अधिकतर निवासी गाँवों में रहते हैं जिनका मुख्य व्यवसाय खेती करना है। करीब ७०२ प्रतिशत निवासी इसी व्यवसाय पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। अतः यहाँ के निवासी के लिये खेती के हर एक पहलू की जानकारी का होना अति आवश्यक है।

जिस दिन से किसान अपने घर से बीज लेकर खेत में बोने के लिये जाता है और जब तक फसल कट कर घर में आती है, बहुत से पशु, पक्षी कीट और व्याधियाँ हानि पहुँचाते हैं। इन सब में फसलों का सब से बड़ा शत्रु कीट है। कोई फसल इनके आक्रमण से नहीं बच सकती और पौधों का कोई भी भाग—जड़, प्ररोह, पत्री, फल और बीज—इन कीटों के आक्रमण से नहीं बच सकता।

कीट बड़े भयानक होते हैं, उनके आक्रमण से कभी-कभी तो पूरी की पूरी फसल भी नष्ट हो जाती है। यहाँ केवल कपास, चना और धान की फसलों के कीटों के बारे में लिखा गया है।

कीट फसलों को तरह-तरह से हानि पहुँचाते हैं। कुछ कीट ऐसे होते हैं जो पौधों के कोमल भागों का रस चूस लेते हैं, कुछ कोमल भागों को काट-काट कर खा जाते हैं, और उनके काटने से जो छेद हो जाते हैं, उनमें वे अपने अन्डे देते हैं। और इसके अतिरिक्त इन छेदों पर कवक का प्रकोप हो जाता है। कीट हर एक अवस्था में, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में हानि पहुँचाते हैं।'

कपास

कपास के हानिकारक कीटों में चार मुख्य कीट हैं :—

लालफूँगा (Red Cotton Bug)
चित्तीदार (Spotted Boll w rm)
गुलाबी सून्डी (Pink Boll worm)
पत्ती मोड़ सून्डी (Cotton Leaf roller)

कपास का लाल फूंगा Capsidae वर्ग क कीट है। यह कीट लाल रंग का होता है और पंख झिल्लीदार होते हैं जिनके सिरे काले होते हैं और उन पर काला बिन्दु होता है। मादा भूमि पर अन्डे देती है और अन्डों से डिम्भक (Nymph) निकलते हैं। डिम्भक और प्रौढ़ दोनों ही हरे और पक्के गूलरों (Bolls) से रस चूस लेते हैं जिसके कारण गूलर और बीज (बिनौले) सिकुड़ जाते हैं और उनकी अंकुरण-क्षमता कम हो जाती है।

यह कीट कपास के अतिरिक्त शकरकन्दी, तम्बाकू, भिन्डी जैसे पौधों को भी हानि पहुँचाते हैं।

बचने के उपाय

बीज बोने से पहले गोबर और मिट्टी के मिश्रण के साथ बिनौले मसल कर छाया में सुखा लेने चाहिये। सूख जाने के बाद पानी में डालने में कुछ बिनोले पानी पर तैर जाते हैं जिनको नहीं बोना चाहिये और बाकी जो नीचे बैठ जाते हैं उन को सुखाने के बाद बोना चाहिये।

हाथ से चुनकर मार देना भी कुछ रोक थाम कर सकता है लेकिन इसमें श्रम और समय अधिक लगता

हैं। इसके अन्डे मिट्टी में रहते हैं, इसलिये जुताई करने से अन्डे ऊपर आ जाते हैं और फिर धूप लगने से मर जाते हैं।

चित्तदार सून्डी

इस पतंगे की लम्बाई करीब 1/2 इंच की होती है। इसके ऊपरी परों पर हरे रंग की धारी सी होती है। मादा पत्तों, फूलों और पौदे कोमल भागों पर अन्डे देती है जिनमें से सून्डी निकल कर पौदे की पत्तियों को खाती है और गूलरों की छेद कर उनमें घुस जाती है और बीज को खाकर नष्ट कर देती है जिसके कारण कपास उत्पादन में ही कमी नहीं आती वरन कपास के गुणों में भी कमी हो जाती है, जिसका फल यह होता है कि बाजार में अच्छा मूल्य नहीं मिल पाता। कपास के अतिरिक्त इस कीट का आक्रमण भिन्डी, सांचल और दूसरे मालवेसी वर्गीय फसलों पर होता है।

बचने के उपाय

खेतों में से फसल काटने के बाद कपास और दूसरे मालवेसी वर्गीय पौधों को उखाड़ देना चाहिये और खेत को जोत कर खुला छोड़ देना चाहिये। ऐसा करने से अन्डे ऊपर आ जाने से उनमें से कुछ धूप से मर जाते हैं और कुछ को पक्षी खा जायेंगे।

जिन गूलरों और कोमल शाकों पर उनका आक्रमण दिखाई देता है, उनको तोड़ कर जला देना चाहिये।

पौधों को हिला देने से वह गूलर जिस पर कीट लगे हुए हैं नीचे झड़ जाते हैं और बाद में सिंचाई करने से सून्डी और प्यूपा सब मर जाते हैं।

कपास की फसल के साथ भिन्डी बोने से इस कीट का आक्रमण भिन्डी पर भी हो जाता है और फिर भिन्डी के पौधों को उखाड़ कर जलाकर नष्ट करने से इस कीट का आक्रमण कपास पर कम हो जाता है।

गुलाबी सून्डी

यह पतंग हलका सलेटी रंग का होता है। मादा गूलरों, पत्तियों और कलियों पर अन्डे देती है जिनमें गुलाबी रंग की सून्डी निकलती है जो कि शुरू में कोमल पत्तियों को खाती है और गूलरों में घुस कर बीज को खा जाती है। यह सून्डी दो बीजों को मिलाकर अपने रहने का स्थान बना लेती है। इस तरह बिनौले की पैदावार तो कम होती ही है इसके साथ-साथ रुई का गुण और पैदावार भी घट जाती है। इस कीट के आक्रमण से जो हानि १६३३-३४ में हुई थी उसका अनुमान साढ़े चार करोड़ रुपये का था।

यह कीट दूसरे मालवेसी वर्गीय फसलों का भी शत्रु है।

बचने के उपाय

इससे बचने की सबसे उत्तम रीति बीज को बोने से पहले धूप में सुखाना है।

जो पत्ती आदि खेत में झड़ जाती है, उनको बटोर कर जला देना चाहिये।

खेत की जुताई करने से शीतनिष्क्रिय (Hibernaing) सून्डी मर जाती है।

पत्तामोड़ सून्डा

यह पतंगा हलका पीला सफेद रंग का होता है और मादा पत्ती की निचली ओर अण्डे देती है। एक मादा करीब तीन सौ अन्डे देती है। अन्डों में से हलके सफेद रंग की सून्डी निकलती है। यह सून्डी पत्तों को मोड़ कर कीप जैसा बना लेती है और उनको खाती रहती है। धीरे धीरे पौधे पत्तीहीन हो जाते हैं।

बचने के उपाय

मुड़ी हुई पत्तियों को तोड़ कर जला देना चाहिये :—

लैड क्रोमेट और लैड आर्सेनेट छिड़कना चाहिये जिसकी मात्रा आक्रमण के अनुसार होनी चाहिये। इस विषय में हलके के कृषि अफसर से परामर्श ले लेनी चाहिये।

चना

चने पर प्रायः दो कीटों का आक्रमण होता है : –

कटुआ सून्डी (Gram cutworm)

चने की सून्डी (Gram caterpillar)

कटुआ सून्डी

इस कीट का आक्रमण भारतवर्ष और दूसरे गर्म

देशों में होता है। मादा अधिकतर पौधों के नीचे भूमि पर अन्डे देती है और एक मादा करीब तीन सौ पचास अन्डे देती है। जिनमें से सून्डी का निर्गमन होता है। यह सून्डी दिन के समय में मिट्टी में छुपी रहती है और रात में निकल कर पौधे, पत्तियाँ और कोमल भागों को काटती है और उनको अपने बिल में भी खींच ले जाती है जिनको वह दिन में खाती है। यह जितना खाकर नष्ट करती है उससे कहीं अधिक मात्रा में खेत में काट कर डाल देती है।

यह मसूर, बन्दगोभी, तम्बाकू, मटर, मूंगफली आदि पर भी आक्रमण करती है।

बचने के उपाय

जिस खेत में इसका आक्रमण हो उसकी सिंचाई कर देनी चाहिये। ऐसा करने से जो सून्डी मिट्टी के अन्दर है वह सब मर जायेगी।

जिस खेत में इसके द्वारा हानि हो रही हो उसमें जहाँ तहाँ पर विष-प्रलोभिका रख देने चाहिये जिसको खाने से सून्डी मर जायेगी। विष-प्रलोभिका तैयार करने के लिये एक मन भूसा, एक सेर आर्सेनिक, दो सेर गुड़, छः गेलन पानी चाहिये। और यह पाँच एकड़ के लिये पर्याप्त है।

चने की सुन्डी

मादा पौधों के पत्ती पर अन्डे देती हैं। इन अन्डों में सून्डी निकल कर शुरू में कोमल पत्ते खाती है और फिर फली में घुस जाती है। यह प्रायः देखा जाता है कि आधी सून्डी फली में रहती है और आधी बाहर फली पर लिपटी रहती है। सून्डी कभी-कभी पूरी अन्दर घुस जाती है। इस तरह सून्डी फली के अन्दर के दाने खा जाती है और कभी तो फली को पूर्णतया खाली कर देती है। इस तरह चने की पैदावार को बहुत हानि पहुँचाती है।

बचने के उपाय

शरद और शीत ऋतु में जुताई करने से सून्डी और प्यूपा नष्ट हो जाते हैं। लैड आर्सेनेट के छिड़कने से भी सून्डी मर जाती है। फसलों के हेर फेर भी रोकथाम के लिये लाभदायक हैं।

धान

धान की खड़ी फसल को और गोदाम में रखे हुए धान या चावल को भी कीटों द्वारा हानि पहुँचती है लेकिन यहाँ केवल फसलों के दो मुख्य कीटों का वर्णन किया जाता है।

गंधी (Rice gundhy)

धान का टिड्डा (Rice grasshopper)

गंधी इस कीट में से एक विशेष प्रकार की गंध आती है और इसलिये इसका नाम भी गंधी हो गया है। यह कीट इस गंध के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है। जब दाने बनने आरम्भ होते हैं तब इस कीट का आक्रमण तेजी के साथ होता है। कीट दाने का रस चूस लेता है और इसका फल यह होता है कि दाना नहीं बन पाता और पुष्प-क्रम (Inflorescence) सफेद पड़ जाता है और कभी-कभी तो पैदावार नहीं के बराबर होती है।

इस कीट के डिम्भक और प्रौढ़ पुष्पक्रम पर लिपटे हुए रहते हैं। इस कीट का आक्रमण मध्य अगस्त से अक्टूबर के प्रारंभ तक होता है।

बचने के उपाय

इसके बचाव के लिये उगती फसल बोनी चाहिये जिससे दाने की दूधिया अवस्था कीट के आक्रमण के पहले ही पूरी हो जाये अथवा ऐसी किस्म बोनी चाहिये जिनकी दूधिया अवस्था पुष्पक्रम के बाहर आने से पहले ही पूरी हो जाती हो।

कीट को जाल द्वारा पकड़ कर मिट्टी के तेल और पानी के मिश्रित घोल में डाल देना चाहिये जिससे कीट का नाश हो सके। बैनजीन हेक्सा क्लोराइड छिड़क कर गंधी का आक्रमण कम किया जा सकता है।

खेत के चारों तरफ बड़े-बड़े तसलों में पानी भर कर और उनमें मिट्टी का तेल डालकर रख देना चाहिये। रात को उनमें लैंप जलाने से कीट लैंप पर आयेंगे और उस पानी में, जिसमें मिट्टी का तेल है, गिर कर मर जायेंगे।

[शेष पृ० ३८ पर

भारत में बहीखाता परम्परा की खोज

लेखक– श्री कस्तूरमल बांठिया

यों तो सन् १६१८ से ही जब कि मेरी 'हिन्दी बही-खाता' पहले पहल प्रकाशित हुई थी, मुझे भारत में बही-खाता की परंपरा की खोज थी। परन्तु १६५० में जब हमारे संविधान में संघ की राज भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी स्वीकार कर ली गई और पंद्रह वर्ष की काला-वधि भी सब प्रयोजनों के लिए अंगरेजी भाषा प्रयोग किये जाते रहने की निश्चित कर दी गई तब मैंने हिन्दुस्थान दैनिक में 'स्वतन्त्र भारत की बहीखाता पद्धति पर विचार' शीर्षक से एक समस्या उपस्थित की। इसका स्वागत भी हुआ और जब उन लेखों को पुस्तिका रूप प्रकाशित कर आलोचना व सम्मति के अर्थ भेजा गया तो प्रायः सभी की आलोचना और सम्मति पक्ष में ही मिली। तभी मुझे यह प्रेरणा हुई कि क्यों न भारत में बहीखाता की परंपरा की ही खोज की जाए ? परन्तु मुझे वह सुविधा कोई भी प्राप्त नहीं थी कि जो महा विश्वविद्यालयों के अभ्यासियों अथवा अध्यापकों को प्राप्त होती है। अतः कोई प्रगति भी नहीं हुई। इसी काल में मेरे देखने में डा० सत्यप्रकाश का ग्रन्थ 'वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा' और डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल का 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि' आए। पहले ग्रंथ ने सुप्रसिद्ध गणितज्ञ ल्यूकास पेच्चिओलोके 'डबल एन्ट्री बुक-कीपिंग' ग्रंथ के संदर्भ सूत्रों के खोज की प्रेरणा दी, तो दूसरे ने टोडरमल की भारत को बही खाता की देन की खोज की, कि जिनके व्यापारी छंद उस ग्रंथ में 'कवि विनोद' ग्रंथ से उद्धृत किये गए थे।

राजा टोडरमल मुगल सम्राट अकबर के भूमिकर विभाग के प्रधान आमात्य ही नहीं थे, अपितु कवि भी थे, इसने मुझे पं० रामनरेश त्रिपाठी की कविता कौमुदी' के 'कवि विनोद' से उद्धृत व्यापारी छंदों का समर्थन खोजने की प्रेरणा दी। इनका कोई समर्थन नहीं पाकर मुझे निराशा जहाँ हुई, वहाँ 'कविता कौमुदी' में यह लिखा देखकर कि 'बहीखाते का सबसे पहले इन्होंने ही प्रचार किया था' यह चुनौती भी मिली कि इस भ्रांति का निरसन किया ही जाना चाहिए। क्योंकि भारत का व्यापार ही नहीं, अपितु राजतंत्र भी सुदूर प्राचीन काल में आदर्श रहा था, और जिसने गणित का इतना विकास कर दिया था कि ईसापश्चात की सत्तरहवीं शती के प्रारम्भ में वही संसार का नेता था, वही भारत १६ वीं शती तक बहीखाता के विज्ञान से अपरिचित था, यह अनहोनी सी बात थी। पं० त्रिपाठी जी से इस महत्वपूर्ण कथन के आधार की पूछताछ सीधे और अन्य सूत्रों से की परन्तु किसी का आज तक भी उत्तर नहीं मिला। राजा टोडरमल के कर्तृत्व का विस्तृत परिचय पाने के लिए 'आइन-ए-अकबरी' तो देखने को नहीं मिल सकी, परन्तु श्री पारसनाथ सिंह के 'जगत सेठ' में अवश्य ही पढ़ा कि "टोडरमल के समय से राजस्व विभाग में भी लिखा पढ़ी फारसी में होने लगी थी। पर यह परिवर्तन हिन्दुओं की नियुक्ति के मार्ग में किसी प्रकार का बाधक नहीं हुआ था। बल्कि हिन्दू समाज के कुछ खास स्तरों में फारसी का ऐसा प्रवाह हुआ था कि 'आइने अकबरी' के अंगरेजी अनुवादक और सम्पादक मि० ब्लाक-मैन के शब्दों में "अठाहरवीं सदी बीतते बीतते हिन्दू मुसलमानों के उस्ताद बन गये थे और उन्हें फारसी लिखाने पढ़ाने का काम प्रायः वही करने लगे थे (पृष्ठ ३२-३३)" और यह भी कि "औरङ्गजेब की बड़ी इच्छा होते हुए भी राजस्व विभाग का इस्लामीकरण न हो सका था। उसका अधिकारी एक हिन्दू था (पृष्ठ ३१)"। इसने स्वर्गीय मुंशी देवी प्रसाद जी (जोधपुर वाले) के एक प्राचीन लेख का स्मरण करा दिया कि जिसमें उन्होंने राजा टोडरमल के

राजस्व विभाग की संस्कृत-हिन्दी शब्दावली के फारसी करण का लिखा था। यह असम्भव था कि ये कोई भी लेखक राजा टोडरमल को मुगल सम्राटों के राजस्व विभाग को फारसी करण करने वाला कहते हुए यह कहना भूल ही जाते कि उसने बही खाता रखना भी पहले पहल भारतीयों को सिखाया था। अस्तु श्री त्रिपाठी जी के शब्दों से चुनौती पाकर जो कुछ भी मैं इस उपेक्षित विषय की खोज कर पाया हूँ, विद्वानों के समक्ष इसलिए प्रस्तुत करना आवश्यक समझता हूँ कि वे इसकी ओर प्रेरित हों। उन्हें मैं डा० डी० आर० भंडारकर के वे शब्द भी स्मरण करा देना चाहता हूँ कि जो उन्होंने १६२१ ई० में 'Ancient Indian Numismatics' की भूमिका में लिखे थे।

"As there was none else in the University at that time who was sufficiently conversant with this subject (Numismatics), there was no recourse left but for me to teach it. I was, therefore, compelled to devote my special attention to it. I was not, however, sorry for it. *For that convinced me, once again, that there was hardly any field connected with the Ancient Indian History and Culture, where research was not possible.*"

इस कथन से विद्वानों को अवश्य ही विश्वास हो सकेगा कि प्राचीन भारत के इतिहास और संस्कृति से संबन्धित इस विषय में भी खोज का क्षेत्र है और खोज हो सकती है।

खोज की कठिनाइयाँ

खोज की कठिनाइयों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। भारत का प्राचीन इतिहास आज शिलालेखों और प्राचीन सिक्कों से ही मुख्यतः खोजा जा रहा है। क्योंकि भारत की साहित्यिक स्थिति कितनी ही नष्ट हो चुकी है और कितनी ही विदेशों को गमन भी कर गई है। यूरोप में गई यह सम्पत्ति तो बहुत कुछ प्रकाश में आ चुकी है, परन्तु चीन, तिब्बत आदि को गई यह सम्पत्ति अभी प्रच्छन्न है। फिर वह अपने मूल रूप से नहीं अपितु चीनी आदि भाषाओं में अनुदित ही मिलती है। ऐसी कितनी ही सम्पत्ति पहले यहाँ पंडित राहुल सांकृत्यायन खोज कर लाए थे और अभी डा० रघुवीर लाए हैं। भारतीय शिलालेखों में बहीखाता सम्बन्धी उल्लेख ऐसे कोई नहीं मिले जैसे कि बेबीलोनियन सभ्यता के लगभग २५०० ईसापूर्व के प्राचीन ईंटों के लेख पाश्चात्य पंडितों को प्रचुर परिमाण में मिले हैं और जिनसे इस विज्ञान और उस संस्कृति का प्राचीन इतिहास संकलित किया जा चुका है। मिश्र के स्तूपों से भी इस प्रकार के चित्र व लेख मिले हैं। यूनान के एथन्स राज्य के भी शिलालेख मिले हैं। भारत में सुदूर अथवा निकट प्राचीन के कोई भी शिलालेख इस विषय पर प्रकाश डालने वाले नहीं मिले हैं। ईसापूर्व दूसरी या पहली शती की गणित सम्बन्धी पुस्तक 'बख्शाली की पोथी' में इस कला का शिक्षण नहीं है हालांकि तक्षशिला महाविश्वविद्यालय में इस विषय की शिक्षा दिये जाने का राधाकृष्ण विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग (१६४६) में इन शब्दों में स्पष्ट ही स्वीकार किया गया है कि "The curriculum at Takshila appears to have included the Vedas and the Vedangas, as also the Eighteen Arts which Comprised of Medicine and Surgery; Astronomy and Astrology, Agriculture and Accountancy, Archery and Snake-Charming." (Vol. 1, Chapter 1, page 7.)

दूसरी कठिनाई है हमारे प्राचीन ग्रंथों को सूत्र बद्ध एवम् संस्कृत में होना जिसे भली प्रकार समझना कठिन होता है, क्योंकि वे संक्षेप में लिखे हैं। पहले के लोगों में पुस्तकों का प्रचार नहीं था। सभी ज्ञान-विज्ञान स्मरण रखे जाते थे। गद्य की अपेक्षा सूत्र और श्लोक स्मरण रखना सरल होने से जो कुछ लिखा गया, वह सूत्रों और श्लोकों में ही लिखा हुआ मिलता है। इन सूत्रों और श्लोकों में क्रिया प्रक्रिया का सामान्य ज्ञान देकर

उसके व्यावहार की सूक्ष्मता प्रयोग करने कराने वालों पर छोड़ दी जाती थी। यही कारण है कि पहले गुरु को इतना महत्व प्राप्त था। और 'गुरु बिना ज्ञान होना' असंभव-सा माना जाता था।

भारत ने पिछले ५००० वर्षों में कितने ही उतार-चढ़ाव देखे हैं। संस्कृत का स्थान कम से कम बोल चाल में तो प्राकृत आदि भाषाओं ने २५०० वर्ष पहले ही ले लिया था और अब क्षेत्रीय भाषाओं ने व पिछले दो सौ वर्ष से अंगरेजी ने ले लिया है। इस काम में प्राचीन संस्कृत शब्दों के अर्थों में भी बहुत कुछ आधुनिकता घुस गई है। उनके टीकाकार अपने समय की स्थिति का प्रक्षेप किए बिना नहीं रह सके हैं।

इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी प्राचीन परम्परा की खोज करना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि उसी नींव पर खड़ा किया हुआ भवन हमारे लिये स्थायी हो सकता है। चाहे जितने विदेशी हमारे यहाँ आए हों और उनने अपनी संस्कृति एवम् ज्ञान-विज्ञान का यहाँ प्रचार किया हो परन्तु उसको परम्परा में आत्मसात कर हमने अपना ही बना लिया था। आज के ज्ञान-विज्ञान को भी हमें अपनी ही परम्परा में आत्मसात करना है। परन्तु हमारा शिक्षित वर्ग उस परम्परा से सम्पर्क नहीं रख पाया है क्योंकि उसकी शिक्षा बचपन से अंगरेजी में होती रही है। संस्कृत और क्षेत्रीय भाषाएँ तक उसने अंगरेजी के माध्यम से ही सीखी है। हम अब शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय और राष्ट्रभाषा हिन्दी कर रहे हैं। अतः प्राचीन परम्परा का जानना आज हमारे लिए और भी आवश्यक हो गया। चाहे बहीखाता कला की प्राचीन परम्परा आज उपयोगी नहीं भी हो, परन्तु उसी नींव पर आज के ज्ञान का प्रक्षेप करके ही हम उसे इस देश में नापने, फलने और फूलने का उपयुक्त अवसर दे सकेंगे, यह लेखक का विश्वास है।

खोज के सूत्र

बहीखाता विषय के खोज सूत्रों के लिए पुरातत्वज्ञों का कहना है कि सामाजिक जीवन के विकास और विशेष कर किसी भी रूप में कर लेने वाले राज अथवा प्रभुत्व सम्पन्न संस्थान के निर्माण ने संख्या के ज्ञान के साथ-साथ ही, संगणन करने और हिसाब लगाने का अधिकार भी आवश्यक कर दिया था। इसी में बहीखाता विज्ञान का मूल निहित है। आज जो बहीखाता कहा जाता है, उससे भी बहुत पहले का वह है। क्योंकि आज सा बहीखाता तो उस समय तक संभव ही नहीं था जब तक कि किसी प्रकार का ऐसा मौद्रिक (Monetary Standard) भी स्वीकार नहीं हो जाता कि जिससे लेखा बनाने वाले पद साम्य रूप में कहे जा सकते थे।[१]

आगे चलकर वे कहते हैं कि "यथार्थ रूप में देखा जाए तो बहीखाता कला लेखा रखने के ज्ञान का विशिष्ट रूप के सिवा कुछ नहीं है। यह न तो किसी विज्ञान का आविष्कार है और न किसी सुखद क्षण की स्फूर्ति ही। यह तो वाणिज्य व्यवसाय की उन आवश्यकताओं की पूर्ति के सतत् प्रयास का परिणाम मात्र है कि जो धीरे-धीरे उत्पन्न होती जा रही थी। बहियों (लेखा पुस्तकों) के विकास के एक-एक करके उत्तरोत्तर पद सम्पन्न होते रहे थे यहाँ तक कि अन्त में यह अनुभव किया जाने लगा

---

[१] "The development of social life and especially the formation of states or sovereignities levying any form of taxation necessitated, in addition to a knowledge of numbers, a power of holding count and reckoning. In this we find the origin of the science of accounitng. It antedated the stating of accounts as we understand them, since that could not take place until some monetary standard had been adopted in which items comprising an account could be expressed in terms of equality."

:. Richard Brown-The History or Accounting and Accountants, page 16.

कि व्यापार वाणिज्य के व्यवहार समष्टि में ऐसे समांग पूर्ण हैं कि जो एक पद्धति के ढांचे में क्रमबद्ध किए जा सकते हैं। जब यह खोज हो गई तो स्वतः ही जिसे "द्वि प्रावेष्ठी" (Doulle Entry)" कहा जाता है उद्भूत हो गई कि जो 'यथानामा तथा गुणा' वहीखाता की समस्त पद्धतियों का आधार कही जा सकती है।"[२]

भारतवर्ष में कर लेने वाले राज और प्रभुत्व संपन्न संस्थान की स्थापना का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। मोहन जोदड़ो और हरप्पा के उत्खननों ने भारतवर्ष के इतिहास को ५००० वर्ष ईसा पूर्व काल तक पहुँचा दिया है जब कि पहले वैदिक काल का प्रारंभ १५०० वर्ष ईसा पूर्व ही माना जाता था। मोहन जोदड़ो और हरप्पा की सभ्यता व संस्कृति का इतिहास अभी अनिश्चित सा है। परन्तु एक बात तो निश्चित हो गई है कि वह वैदिक आर्यों की कृषि और गोपालन संस्कृति ही नहीं थी अपितु विकसित व्यापारी संस्कृति भी थी। प्रो॰ खुशाल तलक चंदशाह लिखते हैं कि "जब वे पाँच नदियों के देश में पहले पहल आए, उन्हें वहाँ ऐसे लोग मिले, जो आर्यों की ही साची थे, इतने शक्तिशाली और सुसंस्कृत थे कि नवागन्तुकों का स्थायी विरोध उनसे चल पड़ा। ऋग्वेद की पहले पहले की ऋचाओं में उन्हें 'पणी' या वणिक कहा है। और आर्य लोग उन्हें इतनी ही घृणा से देखते थे कि जितनी से महारानी विक्टोरिया के अंगरेज श्रीमन्त (Peer) नार्मण्डी के बास्टर्ड के कतिपय लुटेरे शस्त्रधारी साथियों से अपनी वंश परम्परा खोजने वाले सेक्सन या ब्रिटिश रक्त जिनकी शिराओं में बहता था उन सीधे वणिकों या पौरजनों (Burghers) को देखते थे और जो भोले कर्मकरों की अज्ञात पीढ़ियों के उतराधिकारी थे। एक ऋषि तो 'उषा' वैदिकी देवी की (ऋग् १.१२४. १०) प्रार्थना में कहता है कि जो यज्ञ नहीं करते हैं और न भेट अर्चना करते हैं, उन पणियों को शाश्वत निद्रा में सोने दें।" तो दूसरा यह आश्चर्य करता है कि परम शक्तिवान आश्विन यमज पणियों के पास क्यों ठहरते या रुकते हैं। "क्यों नहीं उनकी उपेक्षा करते हैं व उन्हें नाश कर देते हैं?" (ऋग् २ ८३. ३) श्री राम प्रसाद चंदा आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया की विवरण संख्या ३१ में लिखते हुए कहते हैं कि "मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आदिवासी नागरिक जिनसे सिंधुघाटी में आर्यों का सम्पर्क हुआ था, ही ऋग्वेद के मंडपों की ऋचाओं में 'पणि' कहे गए हैं। भाष्यकार यास्क के अनुसार ये वणिक हैं; और चूंकि वैदिक आर्यों की समाज व्यवस्था में वाणिज्य और वणिकों के लिए कोई स्थान नहीं था। (देखे ऋक् ६. ११२), यह परिणाम कठिन नहीं कि अति घृण्य 'पणि' एक प्राचीन वणिक से संस्कृति के ही प्रतिनिधि थे।'

(Shendour that was I N D अध्याय २ पृष्ठ १८)

ये द्रविड़ थे जो आर्यों के उत्तर में बढ़ते हुए दबाव से दक्षिण की ओर बढ़ते गए थे, जिनके विषय में यह सभी इतिहासज्ञ स्वीकार करते हैं कि वे नाविक और जल स्थल दोनों के व्यापारी थे। द्रविड़ों के विषय में एक स्थल पर श्री कैनेडी (Kennedy) ने स्पष्ट ही लिखा है कि "लेनिन दक्षिण भारत के द्रविड़ समुद्र से परिचित थे, और पीछे इन्हीं से भारत सागर के अधिकांश जहाजों और नाविक प्राप्त होते थे, हालांकि सामुद्रिक तट लंबा, खतरनाक और अनाकर्षक था फिर भी ऐसा प्रत्यक्ष भौतिक या जातिगत कारण कोई नहीं है कि जिससे भारत और पश्चिम में सामुद्रिक आवजाव प्राचीन काल से नहीं स्थापित हो सकता था। मैं यही कह सकता हूँ कि यथार्थतः इसका कोई मान्य प्रमाण नहीं है।" (J. R. A. S. 1897 11. 241-288)

कौटल्य अर्थशास्त्र में दिए मौर्यकालीन नाविक नियमों को ध्यान में रखते हुए और उपर्युक्त पृष्ठभूमि में यही कहा जा सकता है कि ३०००-४००० वर्ष पुराने वैदिक काल में भारत के वैदेशिक सामुद्रिक व्यापार का अस्तित्व असम्भव प्रतीत नहीं होता है।

टंक मुद्रा की प्राचीनता

व्यापार की इस अत्यन्त प्राचीनता को टंक मुद्रा

---

[२] वही पृष्ठ ६३.

(Punch-marked coins) के चलने से भी समर्थन मिलता है। सुव्यवस्थित राजतंत्र और विकसित व्यापार वाणिज्य मुद्रा (धात्विक) से ही संभव हो सकता है, इस सिद्धान्त से सभी सहमत हैं। परन्तु पश्चिम के किसी भी देश में धातुई मुद्रा के प्रयोग के इतने प्राचीन प्रमाण नहीं मिले हैं कि जितने भारत के मिले हैं। बेबीलोन और मिश्र में तो ५ वीं ४ थी शती ईसा पूर्व तक राज कर वस्तु रूप में ही प्राप्त होता है। उन देशों में अंक और संख्या लिखने की प्रणाली तो आठवीं शती ईसा पश्चात् तक भी अविकसित थी जब कि भारत ने पाश्चात्य पुरातत्वज्ञों के मत से ईसा पश्चात की पहली शती में संख्या लिखने की वह अनोखी प्रणाली आविष्कार कर ली थी जिसके विना संसार के ज्ञान-विज्ञान की आज सी प्रगति एकदम असम्भव थी यदि बहीखाता कला के विकास का मुद्रा पद्धति से निकट सम्बन्ध है तो हमारे लिए धातुई मुद्रा के भारतवर्ष में प्रचार के इतिहास का संक्षेप में जान लेना भी आवश्यक है।

इस सम्बन्ध में यूरोपीय पुरातत्वज्ञों के दो मत हैं। प्रिंसेप, विल्सन, कैनेडी और विन्सेंट स्मिथ सब यह कहते हैं कि "भारत में टंक मुद्रा अर्थात् निश्चित तोल के धातु के ऐसे टुकड़े, कि जिनका मूल्य विश्वस्त चिन्हों द्वारा चलन के लिये अभिप्रमाणित हो, के उपयोग का प्रचार बहुत संभव है कि सातवीं सदी ईसा पूर्व से हुआ कहा जा सकता है, जब कि भारत का विदेशी सामुद्रिक व्यापार प्रारंभ हुआ प्रतीत होता है। यह विश्वास करने का कारण है कि विदेशी वणिकों के साथ वाणिज्य की आवश्यकतायें ही भारतीयों द्वारा धार्मिक मुद्रा चलन और अक्षर लेखन स्वीकरण का तात्कालिक कारण था।"[1]

परंतु यह मत इसी बात से भ्रमपूर्ण है कि धात्विक मुद्रा और अक्षर लेखन विदेशी सामुद्रिक वाणिज्य के लिए ही आवश्यक रहते हैं और अन्तरदेशीय एवम् सीमापार के वैदेशिक वाणिज्य के लिये नहीं। फिर भारत का सामुद्रिक वाणिज्य ईसा पूर्व सातवीं सदी के आसपास ही प्रारंभ हुआ था, यह भी सत्य नहीं है। भारतीय और यूरोपीय पुरातत्वज्ञों की खोजों से यह प्रमाणित है कि तीन से चार हजार वर्ष के वैदिक युग में भी भारत को वैदेशिक व्यापार का होना या पाया जाना असंभव नहीं है।

इसी प्रकार प्रिंसेप आदि विद्वानों का टंक मुद्रा संबंधी मत भी टंक मुद्रा विशेषज्ञों ने (न्यूमिस्मेटिक्स) भ्रमपूर्ण प्रमाणित कर दिया है। यही नहीं अपितु यह भी सिद्ध कर दिया है कि भारत में टंकमुद्रा (Punch-marked Coins) प्रागैतिहासिक काल से ही चल रही थी। उत्खननों में प्राप्त टंक मुद्राओं के परीक्षण और शास्त्रों के संदर्भों से श्री डी० आर० भंडारकर ने यह प्रमाणित किया है कि "वैदिक काल में पाँच प्रकार की टंक मुद्राएँ प्रचलित थीं और वे सब सोने की थीं। वे थीं, निश्क,शतमान, सुवर्ण, पाद और कृष्णल। उत्तरवैदिक काल में कार्षापण नाम की टंकमुद्रा भी चलती थी।"[2]

प्रो० विंटरनिट्ज के निर्णयानुसार सभी पुरातत्वज्ञ २५०० वर्ष ईसा पूर्व से वैदिक काल का प्रारंभ होना स्वीकार कर चुके हैं।

स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए भी जो पक्षपाती हैं और जो भारत की अच्छी या मौलिक सभी बातें विदेशियों की प्रभावित मानते हैं और ऐसे ही यूरोपीय पुरातत्वज्ञ एक समय अधिक थे वे आसानी से अपना मत नहीं बदलते। ऐसे मताग्रही में से एक थे श्री पिंसेप कि जो यह कहते थे कि 'टंक मुद्रा कला भारतीयों ने बेक्टीरिया के यवनों से सीखी।' और दूसरे श्री जेम्स कैनेडी जो यह कहते थे कि "ठप्पे वाली टंक मुद्रा (Punch-marked coins) जिन्हें प्राचीन भारतीय कार्षापण कहते थे और जो देश की प्राचीनतम टंकमुद्रा है, ईसा पूर्व छठी शती में समुद्री

---

१. डी० आर० भंडारकर के 'Ancient Indian Numismatics पृष्ठ ३ ए और के० टी० शाह के 'Ancient Foundations of Economics in India' पृष्ठ १२१ में 'Imperial Gazetteer भाग २ पृष्ठ १३५ से उद्धृत।

२. डी० आर० भंडारकार Ancient Indian Numismatics पृष्ठ १७६.

वाणिज्य के खुलने पर बेबीलोनी मुद्रा से नकल की गई थी।" डा० विंसेंट स्मिथ भी इसी मत के थे, यह तो ऊपर बताया ही जा चुका है।

श्री अलेक्जेंडर कनिंघम और एडवर्ड टामस ने यह मत स्वीकार नहीं किया, यही नहीं, अपितु उनने स्वदेशी भारतीय टंकमुद्रा का अस्तित्व भी सप्रमाण सिद्ध किया, परन्तु पक्षपातियों द्वारा यह मत मान्य पहले पहल नहीं हुआ। सौभाग्य से सन् १६१२-१३ में सरजान मार्शल को-तक्षशिला के उत्खननों में १७५ ठप्पांकित मुद्राएँ मिलीं जिनने सदा के लिए प्रिंसेप आदि पुरातत्वज्ञों की भ्रान्ति का निरसन कर दिया और यह भी तब मान्य हो गया कि ऐसी टंकमुद्रा का ज्ञान भारत को प्राग्वैदिक काल से ही था।

ऐसी दशा में बहीखाता का ज्ञान भारत में वैदिक काल से तो चला आ ही रहा होगा, यह निःसंकोच कहा जा सकता है हालाँकि इसके अस्तित्व को सिद्ध करने के प्रमाण अवश्य ही कोई आज भी प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। यह अनुसंधान का अवश्य ही रोचक विषय है और इसे हमारे विश्वविद्यालयों के अनुसंधान विभाग को अब हाथ में लेना ही चाहिये।

लेख, गणना और रूप

वैदिक आचार्यों ने जहाँ मनुष्य के लिये चौदह विद्याओं का विधान किया है वहाँ जैनों और बौद्धों में पुरुष के लिये ७२ और स्त्री के लिये ६४ कलाएँ बताई गई हैं। स्त्री की ६४ कला का समर्थन वात्स्यायन के काम-सूत्र से भी प्राप्त है। इन्हीं कलाओं में से तीन कला है लेख, गणना और रूप। ब्हूलर और श्रीमती रिजडेविस ने इन्हें आजकल के तीन आर्ट (Reading, Writing and Arithme ic) माना है। परन्तु यह उनका भ्रम है। ये पृथक पृथक व्यवसाय की परिचायक हैं, जिन्हें हम आजकल के वकील, अकाउन्टेन्ट और मनीचेन्जर व्यवसाय भी एक दृष्टि से कह सकते हैं। इसके समर्थन में भंडारकार ने बौद्ध ग्रंथ 'महावग्ग' से उपाली का दृष्टांत उद्धृत किया है जो इस प्रकार है :—

राजगृह नगरी में उपाली नाम का एक युवक अपने १७ मित्रों के साथ रहता था। वे सभी अवस्था में २० वर्ष से कम थे। उपाली के माता पिताओं को उसके भविष्य की बड़ी चिंता थी। उनके मर जाने के पीछे भी वह सुखी रहे, यही वे रात दिन सोचते रहते थे। वे सोचते कि यदि उपाली 'लेख' सीखता है तो लिखते-लिखते उसकी उंगलियों में घाव पड़ जाएँगे। यदि गणना सीखता है तो उसे छाती के रोग हो जाएँगे। और यदि 'रूप' तो उसकी आँखों को कष्ट होगा। इधर देखते हैं तो शाक्यपुत्र का श्रमण कुछ नहीं करते हुए भी खूब सुखी जीवन बिता रहे हैं। इसलिए शाक्य पुत्र का श्रमण बना दिया जाए तो वह हमारे मरजाने के पीछे भी खूब सुखी और कष्ट रहित जीवन बिता सकेगा। बस यह निश्चय कर लेने पर एक दिन उपाली अपने १७ मित्रों सहित श्रमण हो गया या बना दिया गया। रात्रि की समाप्ति पर भोर होते ही सबके सब भोजन के लिए हंगामा मचाने लगे। इस हंगामे का कारण जान कर भगवान बुद्ध को भविष्य में २० वर्ष से कम आयु वायु वाले को श्रमणत्व नहीं देने का प्रतिबंध ही कर देना पड़ा।"

इस आख्यान से यह स्पष्ट हो जाता है कि आराम से जीवन बिता सकने वाले व्यवसाय की खोज में उपाली के माता पिताओं ने लेख, गणना और रूप में से किसी भी व्यवसाय को उसके लिए इसलिये नहीं चुना कि वे सब परिश्रमी और कष्टसाध्य थे। अतः उनसे सामान्य लिखना पढ़ना और गणित तब अभिप्रेत नहीं हो सकता था। इसकी पुष्टि कौटल्य के अर्थशास्त्र से भी होती है जो मौर्य कालीन समाज व्यवस्था को स्पष्ट करने वाला प्राचीनतम ग्रंथ ऐतिहासज्ञों द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

लेखक के विषय में आचार्य कौटल्य कहते हैं कि

तस्मादमात्य संपदोपेतः सर्वसमय विदासु ग्रंथश्चार्वक्षरो लेखवाचना समर्थो लेखकः स्यात् ॥२।१०।४॥

आमात्य के गुणों से युक्त, हर तरह के आचार विचार को जानने वाला, शीघ्रता के साथ सुंदर वाक्य योजना करने वाला, सुन्दर अक्षर लिखने वाला, सब तरह

के लेख लिखने और पढ़ने में समर्थ हो, वही लेखक है ॥[1]

शासनाधिकार नाम से कौटल्य ने ६५ सूत्रों का यह अध्याय द्वितीय अधिकरण में दिया है और प्रशस्ति में लिखा है कि

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगामुपलम्य च ।
कौटल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिःकृतः ॥६५॥

कौटल्य ने सब शास्त्रों को अच्छी तरह जान कर और उनके प्रयोगों को अच्छी तरह समझ कर ही राजा के लिए इस शासनाविधि का उपदेश किया है ।

शुक्रनीतिकार ने निम्नगुणों वाले को लेखक कहा है । कदाचित् इसके कालतक लेखक और गाणनिक्य दोनों ही व्यवसायों का एकीकरण होने लग गया था ।

गणनाकुशलोयस्तु देशभाषाप्रभेदवित् ॥७१॥
असंदिग्धमगूढार्थं विलिखेत्स च लेखकः ।७२।

अर्थात् गणना में कुशल हो, देश भाषा के भेद को जानता हो; संदेह रहित गूढ़ार्थ जो लिखे, वही लेखक है ।[2] 'लेख पद्धति' से भी प्रमाणित होता है कि 'लेखन से तब लेखक का व्यवसाय ही समझा जाता था और वह विशेषज्ञ व्यवसाय भी था ।

गणना

इसी प्रकार 'गणना' साधारण गणित नहीं कही जाती थी । उससे 'गाणनिक्य' 'गणनापति' 'सांख्यिक' जिसे आज की भाषा में अकाउंटेंट या लेखानीस कहा जाता है, समझा जाता था । श्री डी० आर० भंडारकार का मत ही यहाँ उद्धत कर देना श्रेष्ट है—

The word GANANA for similar reasons cannot mean 'arithmetic' but rather 'accounts' corresponding to GANANIKYA of kautelya. Even in later times this word had this meaning, and we thus find the term GANANAPATI used by kalhana in his RAJATARANGINI and understood correctly by Sir Aurel Stein to denote "Head of Account Office' Study of GANANA would thus make a candidate qualified to hold a post in the Akshapatala Department.

अक्षपटल से संबंध रखने वाले दो अध्याय कौटल्य अर्थशास्त्र के द्वितीय अधिकरण में दिए हैं । पहला तो है "अक्षपटल में गाणनिक्याधिकार' का और दूसरा है "समुदयस्थ युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनम्" अर्थात् 'अध्यक्षों के द्वारा अपहृत धन का प्रत्यानयन' । यहाँ पर इस कार्यालय का कार्य निरूपण करने वाला सूत्र ही उद्धृत करना पर्याप्त होगा :—

तंत्राधिकरणानां संस्था प्रचार संजाताग्रं कर्मान्तानां द्रव्य प्रयोगे वृद्धिक्षय व्यय प्रयाम व्याजी योग स्थान वेतन विष्टि प्रमाणं रत्नसार फल्गु कुप्यानामर्घ प्रतिवर्णक प्रतिमानमानोन्मानावमान भाण्डं देशग्राम जातिकुल

---

१. उदयवीर शास्त्री अनुवादित कौटलीय अर्थशास्त्र पृष्ठ १४६ । सर्वत्र इसी हिन्दी अनुवाद का प्रयोग किया गया है । शामशास्त्री के अंगरेजी के अनुवाद से इस अनुवाद की तुलना का इस लेखक को अवसर नहीं मिला । और न यही जानने का कि उदयपवीर जी का हिन्दी अनुवाद विद्वानों में कितना मान्य है ।

२. पं० मिहिरचंद्र अनुवादित, वैंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित 'शुक्र-नीति' संस्करण ११५२ ई० (१८६५) ई० पृष्ट ५३ । इसमें चार ही अध्याय हैं । जीवानंद के सन् १८९० ई० के संस्करण में पांच अध्याय हैं । दोनों संस्करणों के श्लोकों की संख्याओं में अन्तर है । जीवानंद संस्करण की श्लोक संख्या २५६७ है । ब्रेकेट में वैंकटेश्वर संस्करण की श्लोक संख्या दी गई है । दोनों ही में शुक्रनीति श्लोक १२४२ अध्याय ४ में निर्दिष्ट २२०० श्लोक संख्या से अधिक श्लोक हैं । पहला अध्याय-३८७ (३८५); दूसरा-४३३ (४४३) तीसरा-३२४ (३१२), चौथा १३१२ (१३३०), पाँचवा-४१ कुल २५६७ (२४७०) ।

संज्ञातनां धर्म व्यवहार चरित्रं संस्थानं राजोपजीविनाप्रग्रह प्रदेश भोग परिहार भक्त वेतन लाभं राज्ञश्च पत्नी पुत्राणां रत्न भूमिलाभं निर्देशोत्पातिक प्रतिकार लाभं मित्रमित्राणां च संधि विक्रम प्रदानादानि निबंध पुस्तकस्थं कारयेत ॥ २।७।२॥

उस अक्षपटल में क्या क्या कार्य होना चाहिए; यह बताते हैं :—द्रव्यों के उत्पति स्थानों का नाम निर्देश पूर्वक संख्या, जनपद तथा वहाँ की हर तरह की उपज को रजिस्टरों में लिखा जाए, अर्थात् अमुक जनपद में इतने इतने स्थानों से इतना-इतना धन प्राप्त हुआ। खान तथा हर प्रकार के कारखानों के आय व्यय के संबंध में वृद्धि- (व्याज), अक्ष (पुरुषों को नियुक्त करना), व्यय (धान्य हिरण्य आदि को कार्य में लगाना), प्रयाम (तैयार हुआ अन्न आदि का समूह), व्याजी (व्यापारियों से तुला, मान, आदि के न्यून होने पर, फिर न्यून न हों, इसलिए दण्ड रूप में लिया आमदनी का बीसवाँ हिस्सा), योग (अच्छे और बुरे द्रव्य की मिलावट), स्थान (ग्राम आदि), वेतन, विष्टि बेगार) आदि सब कार्यों का उल्लेख रजिस्टर में किया जाए। रत्नसार फल्गु और कुप्यपदार्थों के मूल्य, प्रत्येक वस्तु का गुण, तोल, लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई तथा असली मूलधन का उल्लेख रजिस्टरों में किया जाए। देश ग्राम जाति कुल तथा संघ (सभा सोसाइटी) के धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा विशेष परिस्थितियों का भी उल्लेख किया जाए। राजोपजीवि पुरुषों के प्रग्रह (पूजा, मंत्री, पुरोहित आदि के प्रति किया हुआ विशेष सत्कार), निवासस्थान, भोग (भेटआदि), परिहार (कर आदि क्षान लेना), भक्त (उनके घोड़े हाथी आदि का खर्च देना), तथा वेतन आदिका भी उल्लेख किया जाए। महारानी तथा राजपुत्रों के रत्न और भूमिकादि की प्राप्तिका भी उल्लेख किया जाए। राजा, महारानी, और राजपुत्रों के नित्य दिए जाने वाले धन से अतिरिक्त दिया हुआ धन, विशेष उत्सव से प्राप्त हुआ धन, तथा रोगों को शांत करने के लिए जनता से प्राप्त हुआ धन, इनको भी पुस्तक में लिखा जाए। मित्र तथा शत्रुओं के संधि-विग्रह और उनके दिए हुए तथा उनसे लिये हुए धन आदिका भी पुस्तकों में उल्लेख किया जाए। ये ही सब कार्य हैं जो कि अक्षपटल अर्थात् राजकीय कार्यालय में होना चाहिए। ॥२॥[1]

इस संबंध में महा मेघवाहन महाराजा खारवेल का हाथी गुम्फा का शिलालेख भी उत्तम प्रमाण उपस्थित करता है। उस शिलालेख में महाराजा खारवेल के राज्य काल की अनेक घटनाएँ उत्खनित हैं। लेख की दूसरी पंक्ति में यह कहा गया है कि आयु के पहले १५ वर्ष में खारवेल कुमार थे और बाल क्रीड़ाएँ करते थे। १६ से २४ वर्ष की आयु तक वे युवराज या पाटवी कुँवर थे। इस काल में वे लेख, रूप, गणना, और व्यवहार में पारंगत हुए।

पहले तीन तो वे ही हैं जिनका उपाली के आख्यान में ऊपर वर्णन हो चुका है। अतः यहाँ भी उनका अभिप्राय वही होना चाहिए। यह बात सत्य है कि किसी पाठवीं राजकुमार के लिए लेख, रूप और गणना आदि कोई भी जीवन निर्वाह के साधन रूप व्यवसाय नहीं हो सकते हैं। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसके शिक्षण में भी इनका अत्यन्त महत्व है। राजकुमार का सिर्फ अक्षर लेखन ही नहीं अपितु सुन्दर सुलेख के साथ-साथ भिन्न भिन्न प्रकार के राजाज्ञाओं का लिखना सीखना और आना चाहिए। इसी प्रकार न्यूनतम व्यय से अधिकतम आय करने में पटु होने के लिए उसे गणना अर्थात् बहीखाता विज्ञान का भी कुशल ज्ञान होना चाहिए।[2]

वात्स्यायन ने कामसूत्र के भार्याधिकारण में भार्या के कर्तव्यों में लिखा है कि :—

सांवत्सरिक मायं संख्याय तदनुरूपं व्ययं कुर्यात् ॥ ३२ ॥

वर्ष की आय का हिसाब करके उसके अनुरूप ही व्यय करें ॥

---

१. वही पृष्ठ. १२४.

२. वही पृष्ठ. १२८.

दैवसिकाय व्यय पिण्डीकरणमिति च विद्यात् ॥३३॥[1]

दैनिक आय व्यय का लेखा करें।

सुरा कुम्भीनामासव कुम्भीनांच स्थापनं तदुपयोगः क्रयविक्रयाय व्यय विक्षणम् ॥३५॥

गृह में सुरा आसव, आदि का संग्रह करें और उनको बेचकर आय व्यय का निरीक्षण करती रहे।

परिचारिकैः शुचिभिराज्ञाऽधिष्ठितैरनुमतेन क्रयविक्रय कर्मणासारस्था पूरणं तनुकरणं चशक्त्या व्यायानाम् ॥५२॥

सदाचारी सेवकों के साथ या उनकी सम्पत्ति से या आज्ञा से वस्तु का क्रय विक्रय करे। आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करें और यथाशक्ति कम व्यय करें।

जिस देश की स्त्रियों के कर्तव्यों में बही खाता सम्बन्धी ऐसा विधान हों, उस देश में बही खाता कला का अभाव तो क्या, अविकसित होना भी कल्पित नहीं किया जा सकता है!

बही खाता विषय गणित के अन्तर्गत ही सीखा और सिखाया जाता था, यह 'गणना' के उपर्युक्त विवेचन से प्रमाणित हो जाता है। चाहे आज बही खाता एक स्वतंत्र विज्ञान माना जाता हो, परंतु इसका विकास स्वतंत्र विज्ञान के रूप से नहीं हुआ था, यह भी पाश्चात्य विद्वानों को मान्य है, यह हम पहले ही कह चुके हैं।

'रूप' व्यवसाय क्या था ?

लेख और गणना से हमारे पूर्वज क्या समझते थे यह हमने संक्षेप में जान लिया। अब 'रूप' का व्यवसाय कौन सा था, यह भी जान लेना आवश्यक है। श्रीमती रिज डेविस 'रूप' का अर्थ 'रुपया-परिवर्तक' करती हैं जब कि श्री ब्हूलर उसे 'वाणिज्य और कृषक गणित' का द्योतक मानते हैं। श्री भांडारकार कहते हैं कि "यह अर्थ बिलकुल यथार्थ तो नहीं हैं, परन्तु दोनों ही विद्वान लक्ष्य से इतने अधिक दूर भी नहीं है क्योंकि उनने बुद्धघोष के भाष्य का आधार लिया है जहाँ यह कहा गया है कि जो कोई 'रूप सूत्त' सीखेगा, उसे अनेक कार्षापण देखने और हाथ से निकालने होंगे।"

कौटल्य अर्थशास्त्र के द्वितीय अधिकरण के १२ वें अध्याय के सूत्र २७ में 'रूपारूपं' और सूत्र २८ में 'ताम्र रूपं' दोनों ही शब्द चांदी और तांबे के सिक्के के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। सूत्र २४ में 'रूपदर्शक' सिक्कों का परीक्षक कहा गया है और उसका कर्तव्य यह कहा गया है कि

रूपदर्शकः पणयात्रां व्यवहारिकीं कोश प्रवेश्यां च स्थापयेत् ॥२५॥

रूपदर्शक यह व्यवस्था करे कि कौन सा सिक्का व्यवहार योग्य है और कौन सा कोश में जमा करा देने योग्य है।

'रूप' से हमारे पूर्वजों को क्या अभिप्रेत था, इसमें किंचिन्मात्र भी संशय नहीं रह सकता है। उपाली के माता पिता ने अपने पुत्र के लिए 'रूप' का व्यवसाय आँखें रोगी हो जाने के भय से नहीं चुना, यह भी स्पष्ट हो जाता है। महामेघवाहन महाराज खारवेल के हाथी गुम्फा के शिल लेख में जो युवराज खारवेल के 'रूप' में निपुणता-प्राप्ति का लिखा है, वह भी स्पष्ट हो जाता है।

---

१. यह ३३ वें सूत्र का एक अंश ही है। पूरा सूत्र इस प्रकार है—

भोजनावशिष्टा द्गोरसात् सार ग्रहणं तथा तैल गुडयोः कर्पासस्य च सूत्रकर्तनं, सूत्रस्थवानं, शिक्यरज्जू पाशवल्कल संग्रहणं, कुट्टन कण्डनावेक्षणम्. आस्वाम मण्ड तुषकण कुट्यङ्गाराणामुपयोजनम्, भृत्यवेतन भरणज्ञान, कृषि पशुपालन चिन्तावाहन विधान योगः मेष- कुक्कुट लावक शारिका परभृत मयूरवानर मृगाणामवेक्षणं, दैवसिकाय व्यय पिण्डीकरणमिति च विद्यात् ॥३२॥

खाने पीने से बचे हुए दूध का घी, तिल का तैल तथा गन्नो का गुड़, कपास का सूत, सूत का खद्दर, बनवाये। छींके, रस्सी और वल्कल का संग्रह करें। अनाज कूटने, आटा छानने के स्थानों का निरीक्षण करें। चावलों का मांड, तुषकण, कोयला आदि का संग्रह करें तथा उनको उपयोग में लावें। नौकरों का तनख्वाह, खाना आदि का ज्ञान रखे। खेती, पशुपालन, वाहन आदि की भी ठीक-ठीक व्यवस्था रखे, मेष कुक्कुट लावक, मैना, कोयल, मयूर, बानर, मृगों का निरीक्षण करे। दैनिक आय-व्यय का लेखा रखें।

मुद्रा शास्त्र की बारीकियों से अनभिज्ञ राजा कैसे हो सकता है क्योंकि राज की आय वृद्धि और अर्थ संकट से रक्षा करने में यह ज्ञान बड़ा सहायक होता है।

व्यापारी के लिए भी यह ज्ञान नितान्त आवश्यक है। न केवल वैदेशिक व्यापार में ही उसे भिन्न २ प्रकार की मुद्रा से काम पड़ता है, अपितु देश की खोटी खरी, हलकी भारी मुद्रा उसके पास आती रहती हैं। यदि वह उन्हें पहचान कर उचित मूल्य में नहीं स्वीकार करे तो व्यापार का सारा लाभ ही नष्ट हो जाए। फिर यह स्वयं ही एक स्वतंत्र व्यापार है। आज तो नोटों के प्रचार और धात्विक प्रमापी मुद्रा के अप्रचार से यह व्यापार प्रायः स्थगित ही हो गया है। फिर विनिमय बैंक (Exchange Bank) प्रत्येक देश की चलन बेचते और खरीदते हैं और उनका अर्थ भी प्रायः स्थिर रहता है। इसलिए हम 'मुद्रा परिवर्तन' व्यवसाय का महत्त्व अच्छी तरह नहीं समझ सकेंगे। परन्तु प्राचीन भारत में इस प्रकार का व्यवसाय था, यह तो समझ ही सकते हैं।

पुराण में बहीखाता

यम के लेखक चित्रगुप्त का पुराणों में वर्णन आता है कि जो प्रत्येक व्यक्ति के पाप पुण्य का लेखा रखता था। इसी चित्रगुप्त की संतान कायस्थ अपने को बतलाती हैं। कायस्थों में लेखक और गाणनिक्य की परंपरा अभी तक भी चली आती है। कानूनी लिखा-पढ़ी के मुन्शी तो कायस्थ हैं। कायस्थों को शुक्र नीतिकार ने भी लेखक का काम देने का 'कायस्थो लेखकस्तथा' कहकर समर्थन किया है।

ग्रामयोब्राह्मणोयोज्यः कायस्थो लेखकस्तथा।
शुल्कग्राहीतुवैश्योहि प्रतिहारश्चपादजः ॥४२०॥अध्याय २॥

विद्वान चित्रगुप्त और उसके वंशज कायस्थों में बही-खाता परंपरा की खोज करेंगे तो अवश्य उन्हें कुछ तथ्य प्राप्त होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

बहीखाते प्राचीन भारत में कैसे रखे जाते थे? कौटल्य-अर्थशास्त्र और शुक्रनीति से इस पर कितना प्रकाश मिलता है यह फिर कभी प्रस्तुत करूँगा।

विज्ञान और समाज [पृष्ठ ५२ का शेषांश]

विज्ञान की सबसे बड़ी देन है वैज्ञानिक दृष्टिकोण—प्रत्येक वस्तु को निस्पृहता से देखना, शांतिपूर्वक विचार करना और उतनी ही शांति से विचार के निष्कर्षों को मान्यता देना। इस दृष्टि से गणित विज्ञान में सर्वोपरि है। प्रश्न का उत्तर एक ही होगा चाहे उसमें निजी लाभ हो या हानि—निष्कर्ष मान्य है।

नर-संहार उचित नहीं

यह सत्य है कि वैज्ञानिक उन्नति ने अणुयंत्रों की भयानकता और संहार की वीभत्सता को निकट ला दिया है। परन्तु आदि मानव ने भी अपने विज्ञान के आधार पर काठ या पत्थर के हथियार संहार के लिये गढ़े थे। यहाँ केवल परिमाण का अन्तर है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण को केवल पार्थिव वस्तुओं तक ही सीमित नहीं रखना चाहिये। विज्ञान का मुख्य कार्य विचार शक्ति की उन्नति करना है, और किसी भी विचार से नर-संहार को उचित नहीं कहा जा सकता- युद्ध समाप्त हो जायँगे और मानवता विश्व बन्धुत्व के सूत्र में बंध जायगी।

विज्ञान और समाज

डा० देवेन्द्र शर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय

इस युग को विज्ञान का युग कहना अतिशयोक्ति न होगी। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि विज्ञान इस युग की ही देन है। यथार्थ इसके विपरीत है। वास्तव में यह युग ही विज्ञान की देन है। यह बात नहीं कि विज्ञान इसके पूर्व था ही नहीं। सृष्टि के प्रारम्भ से ही विज्ञान का प्रारम्भ हुआ है। हाँ इतना कहा जा सकता है कि संभवतः आजकल हम विज्ञान का अपने लिये सबसे अधिक उपयोग कर रहे हैं। मानव की स्वाभाविक जिज्ञासा ने ही विज्ञान का जन्म दिया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण अधिकाधिक जानने की इच्छा और प्राप्त ज्ञान को तर्क द्वारा संवंधित करने पर निर्भर है। इस प्रकार मनुष्य अनादि काल से अपने ज्ञान की परिधि को परिमार्जित करने और इस ज्ञान को थोड़े से मौलिक तत्वों की सहायता से व्यक्त करने में लगा हुआ है। उदाहरणार्थ एक समय प्रत्येक वस्तु को केवल पाँच मूल तत्वों का ही समन्वय माना जाता था, यहाँ तक कि :—

'छिति जल पावक गगन समीरा,
पंच रचित यह अधम सरीरा।'

ये पाँच तत्व रसायन के प्रायः सौ तत्वों से भिन्न हैं, किन्तु उनका माना जाना गलत नहीं; यदि हम पृथ्वी, जल, समीर, पावक और गगन को ठोस, द्रव, गैस, शक्ति और शून्य का द्योतक मान लें। और वास्तव में प्रत्येक वस्तु इन पाँच भूतों में से एक या अधिक का समन्वय है—कम से कम मोटे तौर से देखने पर। जैसे जैसे हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है हमको अपने विचारों में परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ती है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

यह विचार-परिवर्तन विज्ञान की आत्मा कहा जा सकता है जो विना किसी भावावेश के निस्पृह भावना से विश्व को देखता और केवल विचार और तर्क से निष्कर्ष निकालता है, उसे हम वास्तविक वैज्ञानिक कह सकते हैं। इस संसार में, जहाँ भावनाओं को काफी ऊँचा स्थान प्राप्त है, यह अत्यन्त नीरस बात लगती है। किन्तु यह नहीं भूला जा सकता कि संसार की अनेक कठिनाइयाँ और कटुता केवल संतुलित वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव के कारण हैं! बहुत लोग इससे मतैक्य न रखें, किन्तु वह समाज, जो मस्तिष्क की पुकार और विचारशीलता पर अवलम्बित है, भावनाओं पर आधारित समाज की अपेक्षा अधिक स्थायी होगा।

प्रायः धर्म सामाजिक व्यवस्थाओं को बनाता या बिगाड़ता रहा है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सब महान धर्मों के मूल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण रहा है। ऋषियों या पैगम्बरों ने अपने समय के वातावरण को भली प्रकार देख और परखकर समाज को व्यवस्थित तथा धार्मिक तत्वों को प्रतिपादन किया है। परन्तु धर्म और मानवता दोनों के लिये ही दुर्भाग्य की बात है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण का स्थान रूढ़िवाद और अनुदारता ने ले लिया है। फलस्वरूप कभी-कभी धर्म शान्ति देने के स्थान पर कलह और अशांति का कारण बन जाता है।

विज्ञान की सबसे बड़ी देन

इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे जब ईश्वर और धर्म के नाम पर अनावश्यक रक्त-प्रवाह हुआ है! वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण जो ऋषियों या पैगम्बरों में था भुलाया जा चुका है तथा त्याग दिया गया है। विज्ञान का समाज पर प्रभाव गर्मी में पंखे चलाने या द्रुतगामी वायु-यान बनाने, या रेडियो द्वारा समाचार ले जाने आदि सुगमताएँ उपलब्ध करने तक ही सीमित नहीं है। यद्यपि ये सब चीजें हमारे जीवन पर प्रभाव डालती हैं, परन्तु

[शेष पृष्ठ ५१ पर

रोगाणु-नाशक औषधियाँ

डा० ब्रह्मस्वरूप, मेहरोत्रा लेक्चरर, वनस्पति विज्ञान, प्र० वि० वि०

अधिकांश व्यक्ति ऐसे होंगे जिन्होंने पेनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, क्लोरोमाइसिटन और अन्य इसी भाँति की औषधियों की अनुपम और अभूतपूर्व आरोग्यकरण शक्ति का अनुभव किया होगा। फिर भी कुछ ही ऐसे हैं जिन्हें यह ज्ञात है कि ये "आश्चर्यजनक औषधियाँ" क्या हैं और इनकी उत्पत्ति कहां से हुई है। इसीलिए यहां इन प्रकृति के रासायनिक पदार्थों का वर्णन करने का प्रयत्न किया गया है।

एक चुटकी भर मिट्टी जो देखने में एक निर्जीव धूलि प्रतीत होती है, वास्तव में जीवित पदार्थों का एक जीता जागता संसार है—उसमें उतने ही संभवतः अणु-जीव होते हैं, जितने संसार के मनुष्य मात्र हैं। अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखने से यह ज्ञात हुआ है कि खाद्ययुक्त चुटकी भर मिट्टी में करोड़ों की संख्या में अणुजीव होते हैं जिन्हें पादप तथा प्राणी वर्ग में सम्मिलित किया जाता है। यह मिट्टी का जगत एक ऐसा समाज है जिसमें सहयोग और संस्पर्धा दोनों ही देखने में आते हैं। कुछ अणुजीव मृत आंगारिक पदार्थों के जटिल संयोगों को साधारण पदार्थों में परिवर्त्तित कर अपने भोजन के प्रयोग में लाते हैं। ये अणुजीव पारस्परिक निर्भरता, श्रम-भाजन, और लाभ में भागी होकर जीवन-निर्वाह करते हैं। यही अणुजीव भिन्न परिस्थिति में या भिन्न अणुजीव भोजन या अन्य लाभों की प्राप्ति के लिये आपस में झगड़ भी पड़ते हैं। वास्तव में मिट्टी भी विश्वव्यापी जीवन-संघर्ष का एक क्षेत्र है। प्रकृति के इस संग्राम क्षेत्र में अत्यंत प्राचीन रासायनिक युद्ध-कर्म प्रयोग में आते हैं। कुछ अणुजीव सभी प्राप्य खाद्य-पदार्थों को समपहरण कर शत्रु पर विजय प्राप्त करते हैं; कुछ अपने व्यर्थ पदार्थों को उत्सर्जित कर वातावरण दूषित करते हैं और कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थों को निर्मित करना जानते हैं, जिनसे अन्य अणुजीव विषकृत हो जाते हैं। यह संभव है कि ये रासायनिक पदार्थ उसी भांति उत्सर्जित होते हों, जिस प्रकार मनुष्य के शरीर से पसीना निकलता है और कुछ अन्य अणुजीवों का उन पदार्थों द्वारा प्रभावित होना केवल आकस्मिक ही हो। कोई भी कारण या विधि हो पर यह तथ्य है कि अनेक अणुजीव मिट्टी में बीसियों रासायनिक पदार्थ उत्पन्न तथा विमुक्त करते हैं, जिन्हें अब कुछ अणुजीवों से पृथक कर लिया गया है। और अन्य अणुजीवों से पृथक करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इन्हीं रासायनिक पदार्थों को 'एन्टीबायोटिक्स' या रोगाणुनाशक औषधियाँ कहते हैं। इनमें से कुछ ऐसी हैं जिनके द्वारा कुछ भयंकर मानव व्याधियों का निवारण संभव हो सका है। साधारणतः एक रोगाणुनाशक औषधि की परिभाषा इस प्रकार की जाती है "अणुजीवों द्वारा निर्मित्त एक रासायनिक पदार्थ जो शाकाणु (बेक्टीरिया) और अन्य अणुजीवों की वृद्धि का निरोध करने की शक्ति रखता है।"

रोगाणुनाशक औषधियों का ज्ञान सर्व प्रथम हमें १८८७ में फ्रांसीसी वैज्ञानिक और शाकाणुशास्त्री लुई पास्तुर द्वारा हुआ। उन्होंने यह अनुभव किया कि कुछ ऐसे शाकाणु हैं जिनसे अणुजीवों का संवर्द्धन रुक जाता है। उन्होंने ही वैज्ञानिक जगत को यह बताया कि यह नवीन खोज औषधिविज्ञान की दृष्टि से अति उपयोगी है। सभी रोगाणुनाशक औषधियों को सैद्धांतिक रूप से एक ही प्रकार से उत्पन्न किया जाता है। मिट्टी से या किसी अन्य प्रभाव से पृथक किये गये अणुजीव को उसकी रुचि के अनुकूल तरल खाद्य पदार्थ में इस प्रकार प्रवर्धित किया जाता है कि उसमें कोई अन्य अणुजीव न वृद्धि कर सकें। फिर कुछ दिनों पश्चात् उस तरल खाद्य-पदार्थ को

छान कर अणुजीव को पृथक् कर लिया जाता है। अब छने हुए तरल पदार्थ से अणुजीव द्वारा उत्सर्जित रोगाणुनाशक औषधि रासायनिक क्रियाओं द्वारा पृथक् कर ली जाती है। वास्तव में रोगाणुनाशक औषधियों द्वारा चिकित्सा का सिद्धान्त प्राचीन काल से मनुष्य द्वारा असंस्कृत रूप से प्रयोग में लाया जा रहा है। रोपड़ में मिट्टी के प्रयोग से हम भली प्रकार से परिचित हैं। आयुर्वेद में इसे एक महान् रोपक कहा गया है। फोड़े, फुन्सी गलके आदि में अभी भी मिट्टी का लेप अधिकांश प्रयोग में आता है। १७६० में लिखे एक अंग्रेजी शाकीय शास्त्र में एक चिकित्सक ने लिखा है कि फफूंद के प्रकट होने के कुछ दिन बाद ही उन्हें छान कर प्रयोग में लाया जाता है। संभवतः आसव-अरिष्ट में उन फफूंदियों द्वारा उत्सर्जित पदार्थ भी मिश्रित हो जाते हैं। इस प्रकार आयुर्वेदिक औषधियों के साथ मिश्रित फफूंद द्वारा उत्सर्जित पदार्थों का रूप क्या है—वे रोगाणुनाशक औषधियां हैं कि नहीं—यह तो इस संबंध में खोज करने पर ही कहा जा सकता है।

१८६६ में प्रथम रोगाणुनाशक औषधि, पायोसाइनेज, का आविष्कार हुआ। यह औषधि एक शाकाणु (बेक्टीरिया) द्वारा उत्पन्न हुई। प्रयोगशाला में यह डिपथीरिया के रोगाणुओं की वृद्धि का निरोध करती देखी गई पर मनुष्य पर प्रयोग करने पर यह व्यर्थ सिद्ध हुई। उस समय से आज तक सैकड़ों रोगाणुनाशक औषधियों का आविष्कार हो चुका है; जिनमें से अधिकतर आन्तर प्रयोग के लिये व्यर्थ सिद्ध हुई हैं। चार सर्वोत्तम रोगाणुनाशक औषधियाँ जो सबसे अधिक मानव-व्याधियों के उपचार में सफल सिद्ध हुई हैं वे हैं—पेनीसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, क्लोरोमाइसिटिन और ओरियोमाइसिन।

पेनिसिलिन

पेनिसिलिन की खोज की कहानी अब अधिक पुरानी हो चुकी है और अधिकांश व्यक्ति उससे परिचित हैं, इसलिए यहाँ उसका संक्षेप में ही उल्लेख करना उचित होगा। इसका आविष्कार १९२८ में सर अलैक्जेंडर फ्लेमिंग ने किया। पेनिसिलिन एक फफूंदी (फंजाई) वर्ग के अणुजीव से प्राप्त हुई है जिसे वनस्पतिशास्त्री पेनीसीलम कहते हैं। यह फफूंदी उसी प्रकार की फफूंदियों में से एक है, जो रोटी, पनीर आदि खाद्य-पदार्थों पर तथा मिट्टी में अधिकांश उपस्थित रहती है। अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखने से इस फफूंद के रेशों के अग्र भाग झाड़ू के सदृश प्रतीत होते हैं। इन्हीं अग्रभागों पर बीजाणु स्थित होते हैं जो फफूंद के वर्धि प्रजनन का कार्य करते हैं। अब खोज द्वारा पेनीसिलिन की एक ऐसी किस्म मिली है जो फ्लेमिंग के पेनीसिलियम से विभिन्न है और उससे कहीं अधिक पेनीसिलिन उत्सर्जित होती है। आजकल यह नवीन किस्म ही पेनीसिलिन उत्पादन में प्रयोग की जा रही है।

पेनीसिलिन कई रोगों के उपचार की सर्वोत्तम औषधि है। इस औषधि का महत्व इस तथ्य से प्रकट होता है। कि जहां १९१४-१८ के विश्वव्यापी महायुद्ध में युद्धगत आहतों में से ८ प्रतिशत की मृत्यु हुई, वहां पिछले महायुद्ध में, पेनीसिलिन प्राप्य होने के फलस्वरूप, यह संख्या ४ प्रतिशत से भी ऊपर नहीं गई। पहले महायुद्ध के समय चिकित्सक जहां विकृत व्रण (सेप्टिक वुण्ड्स) के उपचार में असहाय और असमर्थ थे, वहां आधुनिक युग के मोर्चे के चिकित्सक को पेनीसिलिन सुलभ थी जिससे घायल सिपाहियों की उचित्त सेवा संभव हुई और वे शीघ्र ही स्वास्थ्य प्राप्त कर कार्यरत हो सके। आज पैनीसिलिन कण्टशालक (टॉनसलाइटिस) सेप्टिक सोर थ्रोट, एरीसाइप्लस, एण्डोकारडाइटिस, घाव-सम्सर्ग, फोड़े, मैनिन्जाइटिस (पाकलक सन्निपात) निमोनिया आदि ऐसे भयंकर रोगों के आरोग्यकरण का प्रमुख साधन है। इसके अतिरिक्त यह औषधि गोनोकोकस नामक शाकाणु की एकमात्र शत्रु है, जिससे गोनोरिया, मूत्रमार्ग के संसर्ग जन्य आदि रोग उत्पन्न होते हैं। वास्तव में रासायनिक चिकित्सा के इतिहास की सर्वोत्तम आश्चर्यजनक सफलता पेनीसिलिन के केवल एक इंजेक्सन से गोनोरिया का आरोग्यकरण है। यही नहीं, पेनीसिलिन सिफलिस ऐसे भयंकर रोग के उपचार में भी सहायक होती है।

स्ट्रेप्टोमाइसिन

यद्यपि पेनीसिलिन से अनेकों रोग के उपचार में

सहायता मिली, फिर भी कुछ ऐसे रोग शेष रह गए जिनके रोगाणुओं पर उस औषधि का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जैसे क्षय, टायफाइड आदि। पेनीसिलिन के साथ अपने अनुमान से भी अधिक सफलता मिलने के फलस्वरूप अणुजीव शास्त्रियों का ध्यान अन्य अति उत्तम रोगाणु-नाशक औषधियों की खोज की ओर गया। दुर्भाग्यवश इस खोज में वैज्ञानिकों को अधिक पथप्रदर्शक तथ्य नहीं प्राप्त रहते हैं। इनकी खोज एक ऐसे रासायनिक पदार्थ की खोज है, जिनकी संरचना का हमें पहले से कोई ज्ञान नहीं रहता। अणुजीव शास्त्री अधिक से अधिक मिट्टी के नमूने भिन्न स्थानों से एकत्रित करते हैं केवल इसी आशा में कि यदि भाग्य ने साथ दिया तो १००० के लगभग नमूनों में से एक तो लाभप्रद सिद्ध होगा। इसी प्रकार के कठिन परिश्रम के फलस्वरूप १९४४ में अमरीका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० वाक्समैन ने एक अद्भुत औषधि स्ट्रेप्टोमाइसिन की खोज की। स्ट्रेप्टोमाइसिन ऐसे वर्ग के अणुजीवों में से एक अणुजीव से प्राप्त हुई जो शाकाणु और फफूंद दोनों से ही विपरीत है। इस वर्ग को एक्टनोमाइसीट कहते हैं। ये जीव शलाकों की भांति वृद्धि करते हैं और पेनीसिलियम के सूत्रों से छोटे और पतले होते हैं इसी वर्ग के अणुजीवों से अब अधिकांश रोगाणु-नाशक औषधियों का आविष्कार हो रहा है। पेनी-सिलिन की भांति स्ट्रेप्टोमाइसिन का नाम भी उसको उत्सर्जित करने वाले अणुजीव स्ट्रेप्टोमाइसीज पर ही पड़ा। इसके आविष्कार से मानवता को एक ऐसी औषधि प्राप्त हुई जो क्षय रोग ऐसे भयंकर रोग के रोगाणुओं को संवेदन तथा प्रभावित करने में सफल है। यद्यपि स्ट्रेप्टोमाइसिन अन्य भी कई रोगों के उपचार के प्रयोग में की जा सकती है पर इसको अधिकांश क्षय रोग में ही प्रयोग किया जाता है क्योंकि उसके लिये यह एकमात्र औषधि है।

स्ट्रेप्टोमाइसिन चिकित्सा में एक भारी कमी है वह यह कि अधिक समय तक रोगी द्वारा प्रयोग करने से रोगाणु उसके प्रभाव के प्रति प्रतिकारिता विकसित कर लेते हैं। कभी-कभी यह प्रतिकारिता इतनी अधिक विकसित हो जाती है कि चिकित्सा संतनन व्यर्थ हो जाती है।

स्ट्रेप्टोमाइसिन की खोज के ठीक तीन वर्ष पश्चात् १९४७ में डा० बर्कहोल्डल ने एक दूसरी स्ट्रेप्टोमाइसीज की किस्म से क्लोरोमाइसिटिन की खोज की। इस औषधि का सबसे बड़ा चमत्कार इसमें था कि यह शाकाणुओं के अतिरिक्त ऐसे अणुजीवों को भी नष्ट करने में सफल सिद्ध हुई जिनके लिये अभी तक सभी औषधियाँ व्यर्थ सिद्ध हुई थीं। इन अणुजीवों को रिकैट्सी कहते हैं। इनसे एक भयंकर रोग होता है जिसे टाइफस ज्वर (शाकाणु द्वारा उत्पन्न टाइफाइड ज्वर से यह भिन्न है) कहते हैं जिसने मध्य युग में यूरोप के हजारों व्यक्तियों को मौत के घाट उतारा था और जिसके कारण संपूर्ण सेना का ही सफाया हो जाया करता था। इसके अतिरिक्त क्लोरोमाइसिटिन का चमत्कार टाइफाइड ज्वर में तो अधिकतर व्यक्तियों ने अनुभव किया होगा। इसके प्रयोग से महीनों चलने वाला ज्वर ८-१० दिन में ही अन्त हो जाता है और शरीर में पुनः शक्ति भी शीघ्र आती है।

क्लोरोमाइसिटिन की खोज के कुछ ही समय पश्चात् एक और अद्भुत रोगाणुनाशक औषधि का पता लगा। इस औषधि की खोज में भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० चलिप्रकट सुब्बाराव ने योग दिया। उन्होंने अमरीका की लैडरली लैबोरेटरीज के वनस्पति विज्ञानशास्त्री डा० बैंजामिन एम. डुगर के साथ मिल कर स्ट्रेप्टोमाइसीज की तरह ही दूसरी किस्म से एक सुनहरा तत्त्व निकाला जिसका नाम उन्होंने ओरियोमाइसिन रखा। यह औषधि कई व्याधियों में उपयोगी पाई गई।

कृत्रिम उत्पादन

क्लोरोमाइसिटिन के प्रयोग में भारी रुकावट यह थी कि अणुजीव द्वारा यह अति मन्द मात्रा में उत्पन्न होती थी इसलिये इसके अधिक मात्रा में उत्पादन के लिये खर्च अधिक बैठता था। १९४९ में एक औषधि-निर्माता कम्पनी ने इस समस्या को सम्मुख रखते हुए प्रथम बार इस औषधि को कृत्रिम रूप से तैयार करने में सफलता प्राप्त की। अब कृत्रिम विधि से तैयार की गई क्लोरो माइसिटिन ही चिकित्सा में प्रयोग की जाती है। आजकल इसके उत्पादन में उस अणुजीव से सहायता नहीं ली जाती जिसने प्रारम्भ में इसे जन्म दिया था।

अन्य रोगाणुनाशक औषधियाँ

उपरोक्त औषधियों के अतिरिक्त अन्य रोगाणुनाशक औषधियों को भी आजकल प्रयोग में लाया जा रहा है। इनमें से कुछ में जान बचाने की शक्ति है और कुछ लाभप्रद वैकल्पिक औषधि की भाँति काम करती हैं। ये हैं टेरामाइसिन, एरिथ्रोमाइसिन, मैगनैमाइसिन, वैसीट्रेसिन आदि।

रोगाणुनाशक औषधियों द्वारा पादप-रक्षण

इसमें कोई संदेह नहीं कि अभी तक रोगाणुनाशक औषधियों ने करोड़ों जीवों की रक्षा की है और संभव है कि इनकी सहायता से किसी दिन हम जन्म जन्मांतर से चले आये रोगों से सदा के लिये छुटकारा पाने में सफल हो सकेंगे। मनुष्य मात्र की भांति पादप भी शाकाणु द्वारा पीड़ित होते हैं। हाल ही में रोगाणुनाशक औषधियों को शाकाणु (बेक्टीरिया) द्वारा उत्पन्न पादपों की व्याधियों के उपचार में सफलतापूर्वक प्रयोग में लाया गया है। टैरामाइसिन और स्ट्रेप्टोमाइसिन की थोड़ी मात्रा पानी में मिश्रित कर सेब या नाशपाती के पेड़ों पर छिड़कने से 'फायर ब्लाइट' ऐसी भयंकर व्याधि के ऊपर नियंत्रण रखा जा सकता है। 'फायर ब्लाइट' फल वाले पेड़ों की सभी व्याधियों में से अधिक क्षति पहुँचाने वाली व्याधि है। इसके आक्रमण से पेड़ ऐसा प्रतीत होता है मानों उसमें आग लग गई हो। काण्ड, मूल, फूल, फल आदि सभी काले पड़ कर मृत पड़ जाते हैं। अभी तक इस व्याधि का कोई उपचार ज्ञात न होने के कारण इस खोज का अधिक आर्थिक महत्व है और इसी प्रकार अब पादप व्याधिविद् अन्य शाकाणु द्वारा उत्पन्न पादप व्याधियों में रोगाणुनाशक औषधियों के प्रयोग पर ध्यान दे रहे हैं।

मांश पशुओं की वृद्धि का उभड़ना

अभी तक हमने रोगाणुनाशक औषधियों के रोग औपचारिक चमत्कारों को देखा। पर एक दूसरा घिलवे में ही प्राप्त हुआ चमत्कार है, मुर्गियों, पेरू, सुअर के मांस आदि को सस्ते में ही उत्पन्न करना। औषधि को निस्सारित करने के पश्चात् जो फफूंद शेष बचती थी, उसका अपवहन कई वर्षों से निर्माताओं के लिए एक समस्या थी। उसको नदियों में डाल नहीं सकते थे क्योंकि उसके सड़ने से पानी में मिश्रित ऑक्सीजन का अन्त हो जाता जिसके फलस्वरूप मछलियों का दम घुट जाता। उसको जला भी नहीं सकते थे क्योंकि वह अधिक गीली होती है। पर आज यही समस्या एक संपत्ति में परिवर्त्तित हो गई है। यह ज्ञात हुआ है कि ओरियोमाइसिन के निस्सारण के पश्चात् शेष बची हुई फफूंदी में दो वृद्धि को उभाड़ने वाले कारक होते हैं। एक तो फफूंदी में छानने बाद भी शेष बची हुई न्यून मात्रा में ओरियोमाइसिन ही और दूसरा विटामिन बी. १२। यह दो कारक हैं जो कुछ पशुओं को युवावस्था में अधिक वृद्धि के लिये उद्दीपित करने में सफल हैं। इतना ही नहीं, इस शेष फफूंदी को खिलाने पर पशु चारा भी कम खाते हैं और उनकी वृद्धि भी अधिक तीव्र होती है। इस खोज के फलस्वरूप आज अमरीका में ऐसे चारे की जिसमें ओरियोमाइसिन युक्त फफूंद मिली होती है, अधिक मांग है। अब तो अधिक मात्रा में छानन (अवशेष) के लिये ही ओरियोमाइसिन उत्पन्न करने वाली फफूंद की वृद्धि की जाती है।

रोगाणुनाशक औषधियों की इस अत्यंत उपयोगिता से अणुजीव जिन्हें मनुष्य अभी तक घृणा की दृष्टि से देखता रहा, आज उसके आदर के पात्र हो गए हैं। सच तो यह है कि आज मानवता इन्हीं अणुजीवों के सम्मुख नत होकर उनसे उनके ऐसे उत्सर्जित पदार्थों की भीख मांग रही है जिनके द्वारा अधिक से अधिक मानव-कल्याण संभव हो सके। वास्तव से हम बिना किसी संकोच के "रोगाणुनाशक औषधि युग" को मानव कल्याण में क्रांति उत्पन्न करने वाला युग कह सकते हैं।

—"समाज कल्याण" के सौजन्य से

संदेश और शुभ-कामनायें

(१)

राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टंडन

विज्ञान परिषद् के शिलान्यास के अवसर पर स्वभावतः मुझे प्रसन्नता है। इस भवन को रूप देने में आपने जो विशेष रुचि ली है उसी का यह परिणाम है कि उसके शिलान्यास का सम्पादन हो रहा है। आपको तथा विज्ञान परिषद् के सहयोगियों को इस शुभ अवसर पर बहुत बधाई देता हूँ।

(२)

माननीय श्री गोविन्द वल्लभ पंत, गृह-मंत्री, भारत सरकार, दिल्ली—

आपका पत्र मिला। मुझे खुशी है जवाहर लाल जी, ४ अप्रैल को विज्ञान परिषद् भवन के की-स्टोन को रक्खेंगे मैं इस अवसर पर शुभ कामनाएँ भेजता हूँ।

(३)

श्री फूलदेव सहाय वर्मा, भूतपूर्व सभापति, विज्ञान परिषद, शक्ति निवास, बोरिंग रोड, पटना १

विज्ञान परिषद् भवन के शिलान्यास का निमन्त्रण मुझे मिला। खेद है कि गरदन में कुछ दर्द (लम्बैगो) के कारण मैं परिषद के उत्सव में सम्मिलित न हो सका।

आशा है कि आप आनन्द से होंगे। समाचार पत्रों में पढ़ा कि श्री जवाहर लाल नेहरू जी ने भवन का शिलान्यस कर दिया है और भवन के निर्माण का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है।

(४)

सेठ गोविन्द दास, सदस्य, लोक सभा, ३ केनिंग लेन, नई दिल्ली

आपका ता० २७ मार्च का पत्र मिला।

आपके पत्र से यह जान कर प्रसन्नता हुई कि विज्ञान परिषद इलाहाबाद के भवन का शिलान्यास ४ अप्रैल को पं० जवाहर लाल जी नेहरू के कर-कमलों द्वारा होने जा रहा है। इस अवसर पर मैं स्वयं उपस्थित होने में असमर्थ हूँ। मेरी हार्दिक शुभकामनायें स्वीकार कीजिये।

(५)

श्री हरगोविन्द पन्त बी० ए०, एल-एल० बी० उपाध्यक्ष विधान सभा, उत्तर प्रदेश

आपका कृपा पत्र विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के विषय पर मिला। अनेक धन्यवाद। आजकल असेम्बली चालू है। अतः मेरा तारीख ४ को इलाहाबाद पहुँचना कठिन होगा। इच्छा तो होती है कि ऐसे महत्व के समारोह में उपस्थित हो सकूँ पर समय मिलना कठिन है। आपके श्लाघ्य प्रयोग की सफलता हृदय से अवश्य चाहता हूँ।

आशा है कि समारोह सर्वथा सफल होगा।

(६)

हरकृष्ण अग्रवाल, पर्सनल असिस्टेन्ट, शिक्षा मंत्री, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

आपका २८-३-५६ का पत्र मन्त्री जी को प्राप्त हुआ। धन्यवाद।

शिक्षा मन्त्री जी को विज्ञान परिषद के भवन के शिलान्यास के अवसर पर प्रयाग पधारने में बड़ी प्रसन्नता होती किन्तु खेद है कि कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण उनके लिये यह सम्भव न हो सकेगा कि वह पधार सकें। सूचनार्थ—आपको यह पत्र प्रेरित कर भेज रहा हूँ।

(७)

Sri Humayun Kabir, Ministry of Education Govt. of India, New Delhi

Will you please refer to your letter of 28th March 1956?

I am glad to hear that Panditji has agreed

to lay the foundation stone of the building of the Vigyan Parishad, Allahabad. I hope that the Vigyan Parishad will contribute to develop in the country the scientific attitude which Pandit Nehru has always tried to inculcate among our people.

(८)

Sri K. G. Saiyidain., Education Secretary,
Govt. of India, New Delhi

Please accept my sincerest felicitations on the occasion of the foundation stone laying ceremony of the Vigyan Parishad at the hands of Pandit Jawaharlal Nehru. I regret very much that on account of my unavoidable engagements it will not be possible for me to have the pleasure of participation,. My thoughts and good wishes will however be with your auspicious occasion.

(९)

LT. Col. K. P, Bhatnagar, M. A. LL. D.
Vice-Chancellar, Agra University, Agra

Many thanks for your kind invitation to attend the Shilanayas ceremony of the Vigyan-Parishad Bhavan on April 4,1956, at Allahabad. On account of the fact that a number of meetings are taking place these days at Agra, I am not in position to be present. I wish the Vigyan Parishad all success

(१०)

Sri A. N. Jha, Chief Secretary, Uttar Pradesh
Lucknow

Many thanks for your letter at the 27 th March. Unfortunately having just returned from Allahabad and having to be there in another connexion again on the 9th, I am afraid I cannot make it possifle to attend the function much as I should have liked to do so.

(११)

Sri Govind Narain, I. C. S.,
Development Commissioner U. P.
Council House, Lucknow

I have just received your kind letter of the 27th of March, 1956. It is very kind of you to have asked me to be present at allahabad at the time of Panditji's visit there. I am glad to know that he is laying the foundation stone of the Vigyan Parishad Building. I should certainly have liked to be there, but I have convened a Development Seminar in Lucknow on the 5th and 7th of April, 1956, and I have to remain here for making the necessary p.eparations. Please do forgive me for my inability to join you at this occasion.

(१२)

माननीय जुगल किशोर, श्रम तथा समाज कल्याण मंत्री,
उत्तर प्रदेशीय सरकार, लखनऊ

Many thanks for your letter of 22nd March asking me to attend the function of the Vigyan Parishad at Allahabad on 4th April. I am sorry I will not be able to go there on 4th as I have to attend an important meeting the same day at Delhi.

(१३)

श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, काशी विश्वविद्यालय

विज्ञान परिषद् प्रयाग का प्रथम परिचय मुझे स्कूल कक्षा में श्री लक्ष्मी चन्द्र जी से प्राप्त हुआ था जब वे हमारे यहाँ १९१६ के लगभग व्याख्यान देने आये थे। तब से उस बीज को महाविटप में परिणत होते हुये हम देख सके हैं। यह अति हर्ष की बात है। सच तो यह है कि हिन्दी के माध्यम से कार्य करने वाली आपकी परिषद

के वास्तविक अभ्युदय का समय तो अब आया है। उसके निजी भवन का शिलान्यास सामयिक आवश्यकता की पूर्ति है। आशा है शीघ्र ही भवन निर्माण पूरा होकर परिषद् अपने कार्य क्षेत्र का विस्तार करने में सफल होगी।

(१४)

नागरी प्रचारिणी सभा काशी

शिलान्यास के समारोह पर हार्दिक शुभकामना, परिषद् का भविष्य मंगलमय लोक-कल्याणकारी हो।

(१५)

श्री श्रीराम भारतीय, अखिल भारतीय सेवा समिति, सेवा निकुंज, रामबाग, इलाहाबाद

निमन्त्रण के लिये धन्यवाद, मैं हरिद्वार जा रहा हूँ इससे आपके उत्सव में सम्मिलित न हो पाऊँगा। विज्ञान परिषद् की हर प्रकार उन्नति चाहता हूँ।

(१६)

रायबहादुर व्रजमोहन लाल, एम० आई० ई०, आई० एस० ई०, रिटायर्ड चीफ इंजीनियर, ई—३। १७, ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली १२

विज्ञान परिषद् भवन के शिलान्यास का निमन्त्रण पत्र मिला। बहुत हर्ष हुआ कि विज्ञान परिषद् का अपना भवन बन रहा है और प्रधान मन्त्री उसकी आधार शिला रख रहे हैं। उसकी सफल पूर्ति के लिये मेरी शुभकामना स्वीकार करें।

(१७)

श्री देवेन्द्र वैद्य एम० काम०, वैद्य विशारद सदस्य नगर पालिका, कौटिल्य कौमर्शियल कार्पोरेशन, चौक बाजार, मथुरा

आपका निमन्त्रण पत्र प्राप्त हुआ। धन्यवाद। यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि आप विज्ञान परिषद् के भवन का शिलान्यास माननीय प्रधान मन्त्री जी के कर कमलों द्वारा करा रहे हैं।

ईश्वरीय सृष्टि में धर्म है। इस तथ्य को समझने के लिये आज विज्ञान की अधिक आवश्यकता है। आपका यह प्रयत्न सराहनीय है। इस सुअवसर पर कृपया मेरी हार्दिक शुभ कामनाएँ स्वीकार करें।

(१८)

Sri J. K. Srivastava., Sir J. P. Group,
14-1 Civil Lines, Kanpur

I thank you for your kind invitation to attend the foundation stone laying ceremony. I regret that owing to a previous engagement it will not be possible for me to attend this on the 4th prox.

(१९)

Sri N. C. Chaturvedi M. L. C., Advocate,
Lok Niwas, Lokmanganj, Lucknow

Many thanks for your letter of March 28, I am grateful for your kind invitation to attend the key-stone laying ceremony of the Vigyan Parishad, Allahabad on Aprill 4. Much though I would have wished to attend it, I regret I shall not be able to do so on account of some important previous engagements.

Of course all my sympathies and good wishes will be for this institution which I am sure will prosper under your able guidance.

नक्षत्रों का दर्शन

[जगपति चतुर्वेदी]

किसी मनुष्य का नक्षत्र खराब होना बड़ा दुर्भाग्य समझा जाता है। जब किसी को अपने थोड़े बहुत प्रयत्नों का बहुत बड़ी आशा से भी अधिक फल नहीं मिलता, जब वह सावधानी न रखने पर किसी मुसीबत में पड़ जाता है, कुछ घाटा लग जाता है, स्वास्थ्य का ठीक नियम न जानने, बीमार होने पर दवा ठीक न करने पर जब कोई परिवार का कमाने वाला आदमी मर जाता है तो नक्षत्र को खराब बताया जाने लगता है। जब कोई किसान घुन लगे बीज बो देता है, सिंचाई का, खाद देने का, चिड़ियों और जंगली जानवरों से खेती की रक्षा का प्रबंध नहीं करता है, खेत में कीड़े लगने पर कोई उपाय नहीं करता है, रोग लगे हुए बीजों को बोने से फसल में रोग होने की रुकावट के उपाय पहले से ही नहीं सोच रखता है तो फसल मारी जाने पर सारा दोष अपने नक्षत्रों पर ही थोप देता है। कहीं दफ्तर में नौकरी ठीक तरह न कर सकने पर कोई निकाल दिया जाता है, किसी व्यवसाय का आगा-पीछा सोचे बिना ही, देखा-देखी ही खतरा मोल लेकर कुछ धन उसमें फँसा दिया गया होता है तो उसमें भारी घाटा होने पर नक्षत्रों को कोसने में मनुष्य कुछ उठा नहीं रखता। बेचारे नक्षत्र तो आकाश में रहते हैं। उनमें सोचने या किसी का बिगाड़ बनाव करने की शक्ति कहाँ से हो सकती है! यदि होती भी तो जंगल के जानवरों, पेड़ पौधों आदि का वे कुछ बिगाड़ क्यों नहीं करते? दुनियाँ के जो लोग उनके द्वारा कुछ बिगाड़ होने का विश्वास नहीं करते, उनका भी काम चल ही जाता है किन्तु हम लोग अपनी अज्ञानता से इस चक्कर में फँसे पड़े रहते हैं। गनीमत यही है कि बेचारे ग्रह हमारे जीवन की दशा बिगाड़ते हैं। नक्षत्र हमारा भाग्य बिगाड़ते हैं लेकिन राशियों को हम लोग इस बखेड़े में अधिक नहीं डालते। शायद वे कुछ बड़े फैलाव में होने, कई ताराओं के झुंड होने, अपने फैलाव की जगह में महीने भर तक सूर्य को दिखा सकने के कारण ही मनुष्य को अपने नित्य के भाग्य बिगाड़ने वाले पदार्थ नहीं जंचे, इसलिए उनका नाम दुर्भाग्य के कारणों में बराबर नहीं लेते।

नक्षत्रों की बात हमारे विश्वास, भाग्य, दुर्भाग्य के संबंध में एक कोरी कल्पना ही है। विज्ञान उसमें रत्ती भर भी सच्चाई नहीं देखता। किन्तु जो लोग उनके फलों, शकुनों में विश्वास करना ही चाहते हैं, उनसे हमारा कोई भी झगड़ा नहीं। अपनी इच्छा के अनुसार कोई भी विश्वास रखने की उनको स्वतंत्रता ही है। हम तो यहाँ पर नक्षत्रों के संबंध में विज्ञान द्वारा जानी हुई कुछ बातें ही बताने के लिए ऊपर की बातें कुछ भूमिका रूप में छेड़ सके हैं जिससे यह मालूम पड़े कि नक्षत्र कोई बहुत अनजानी वस्तुएँ नहीं हैं। उनका नाम हम बराबर सुनते हैं किन्तु दूसरे रूपों में और दूसरे मतलबों से।

नक्षत्रों की चर्चा करने से पहले हम यह बता देना चाहते हैं कि ये आकाश के उसी प्रकार तारे हैं जैसे दूसरे तारे हो सकते हैं किन्तु चन्द्रमा, सूर्य या ग्रहों की चाल समझने में ये साल के विशेष विशेष समयों में आकाश के भाग की पहचान करने में सहायता करते होंगे। इसी कारण इनको नक्षत्र नाम दिया गया। फलित ज्योतिष मानने वाले लोग हर नक्षत्र के साथ चार अक्षर ऐसे मानते हैं जिनमें कुछ मात्रा सहित हों या सब बिना मात्रा के हों। उन सादे अक्षरों या मात्रा वाले अक्षरों से प्रारंभ होने वाले नामों को उस विशेष नक्षत्र से संबंध रखनेवाला बतलाते हैं। जन्म दिन की विशेष घड़ी में जो नक्षत्र चन्द्र-यात्रा के स्थान पर रहा हो उस नक्षत्र के साथ मनुष्य का सम्बन्ध जोड़ने के लिए उन चार अक्षरों में

से किसी से नाम बनाया जाता है। यह राशि का नाम कहा जाता है।

एक मामूली बात यह सोच लीजिए कि २७ नक्षत्र हैं। प्रत्येक के लिए चार अक्षर माने गए तो १०८ हो गए। उनको बारह से भाग दें तो नौ आता है। अब नौ अक्षर एक एक राशि के लिए मान लें तो बारह राशियों में उन्हें पूरा-पूरा बँटा पाया जा सकता है। अब आप पूरे आकाश में फैले राशि चक्र या क्रान्ति वृत्त (सूर्य ता चंद्र के आकाश में घूमने के मार्ग) को २७ भाग में बँटा मान लें तो एक एक भाग एक एक नक्षत्र का क्षेत्र होगा।

चन्द्रमा अपनी परिक्रमा लगभग २७-२८ दिन में पूरा करता है। (पृथ्वी के भी अपनी कक्षा में आगे बढ़ने के कारण इसमें दो एक दिन बढ़ जाते हैं जो महीना बनाते हैं) इसलिए आप को यह जानने में कोई परेशानी न होनी चाहिए कि २७ या २८ दिनों में सारे आकाश का भाग चन्द्रमा की परिक्रमा द्वारा पार होता होगा। इसलिए आकाश में प्रतिदिन चन्द्रमा जितने स्थान तक हटता होगा उतने भाग को बताने के लिए पूरे क्रान्ति वृत्त को २७ या २८ भागों में बाँट लेने की आवश्यकता थी। सूर्य की चाल बताने के लिए इसी को राशि रूपों में बारह भागों में बाँटा जाता है। चन्द्रमा की प्रतिदिन की चाल के लिए उसी एक वृत्त या आकाश की गोलाई को जब बारह की जगह २७ भाग में बांटना है तो राशियों को ठीक तरह टुकड़े-टुकड़े मान कर बटवारा नहीं हो सकता। इसके लिए पुराने लोगों ने यह उपाय किए कि २७ वें भाग के अन्दर कोई भी चमकीला तारा ढूँढ़ा जो उस समय चन्द्रमा के दिखाई पड़ने वाले आकाश के खंड में हो। इसके लिए उन्होंने बहुत से तारे तो राशियों से लिए हैं जिनमें अधिक से अधिक चमकीले तारे हैं उनके अतिरिक्त कुछ धुँधले तारे भी राशियों में से लिए हैं। किन्तु राशि नाम से प्रसिद्ध तारामंडलों से काम न बनता देख कर कहीं-कहीं दूसरे तारामंडलों से भी कुछ चमकीले तारे नक्षत्र नाम से प्रसिद्ध किए गए हैं।

इतनी बातों को बताने के बाद यदि हम यह बात कहें कि आकाश में तारों को पहचानने वाले नवसिखुए आदमी के लिए सारे नक्षत्रों को एक ओर से पहचानने और जानने की कोशिश करना एक तरह की कठिनाई ही मोल लेना है तो आप इस बात की बारीकी अवश्य समझ जावेंगे। हमें तो आसान रास्ता पकड़ कर ही आसमान के तारों की कुछ जानकारी करनी चाहिए। इसलिए हम विशेष कर उन नक्षत्रों की ही चर्चा करेंगे जो बहुत अधिक चमकते हैं और आसानी से आसमान में देखे जा सकते हैं। लेकिन हमें पहले कुछ बातें तारों के सम्बन्ध में जाननी चाहिए।

आकाश के तारों में कोई अधिक चमकता है, कोई कुछ कम चमकता है। कोई उससे भी कम चमकता है, इन चमकों को छः दर्जों में लोगों ने बाँटने की कोशिश की थी। इनको चमक-दर्जे या चमक-सीढ़ियाँ कह सकते हैं। आज के वैज्ञानिकों ने भी छः चमक-दर्जों को उन तारों के सम्बन्ध में मान लिया है, जो नंगी आँखों से दिखाई पड़ते हैं। लेकिन इन दर्जों की बारीकी जानने योग्य है। पहले चमक दर्जे या चमक सीढ़ी में जो तारा गिना जाता है उसमें दूसरे चमक दर्जे या चमक सीढ़ी के तारे की अपेक्षा ढाई गुना अधिक प्रकाश दिखाई पड़ता है। इसी तरह दूसरी चमक सीढ़ी या दर्जे के तारे में तीसरी चमक सीढ़ी के तारे से ढाई गुना अधिक प्रकाश होता है। यदि हिसाब लगाकर देखा जाय तो मालूम पड़ेगा कि छठी चमक सीढ़ी का तारा जितना प्रकाश दे सकता है उसकी अपेक्षा पहली चमक-सीढ़ी का तारा सौ गुना अधिक प्रकाश देगा। इसी तरह पहली चमक सीढ़ी से भी अधिक प्रकाश देने के दर्जे बनाए गए हैं। पहली चमक-सीढ़ी से ढाई गुना प्रकाश देने वाले दर्जे या सीढ़ी को शून्य चमक-सीढ़ी या शून्य चमक-दर्जा कहा जाता है। इसके ऊपर के दर्जे ऋण के साथ एक, दो, तीन अंक के साथ बनाए जाते हैं। जैसे—१ प्रकाश दर्जे के तारे में शून्य प्रकाश दर्जे के तारे का ढाई गुना प्रकाश होगा। हमारे शुक्र ग्रह का चमक-दर्जा—४ है। यह छठी चमक सीढ़ी या चमक-दर्जे के तारे की अपेक्षा १०००० गुना अधिक प्रकाश देता है। हमारे सूर्य का चमक-दर्जा—२७ है। इसलिए हमें मालूम पड़ सकता है कि तारों की छोटी चमक सीढ़ी से यह कितना अधिक प्रकाश देता है। नंगी आँखों से दिखाई पड़ सकने वाले धुँधले से धुँधले तारों से भी कम

प्रकाश वाले तारों को भारी से भारी दूरबीनों से देखने का प्रयत्न किया गया है। उनसे भी नीचे की चमक-सीढ़ी छायाचित्र से मालूम की जा सकी है जो करोड़ों गुना धुँधली होती है। इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि तारों की चमक के ये दर्जे हम उनकी दिखाई पड़ने वाली रोशनी के हिसाब से करते हैं। उन्हीं में कोई बहुत दूर हो सकता और कोई कुछ कम दूर का हो सकता है। इसलिए उनकी असली चमक का मुकाबला तो बराबर दूरी होने से ही हो सकता है।

तारों की दूरी बताने के लिए कुछ आसान पैमाने बनाए गए हैं। हमारा सूर्य पृथ्वी से इतनी दूर है कि बहुत तेजी से सनसनाती हुई कोई गोली लगातार चलती जाय तो उसकी चाल फी सेकेंड २५०० फ़ुठ (फी घंटे लगभग १७०० मील) होने पर सूर्य तक पहुँचने में सवा छः साल लग जाएंगे। किन्तु इस दूरी को सूर्य की किरणें लगभग ८३ मिनट में पार कर लेती हैं। यह दूरी ६ करोड़ ३० लाख मील है। प्रकाश की चाल फी सेकेंड १८६००० मील है लेकिन उसे भी सूर्य से पृथ्वी तक आने
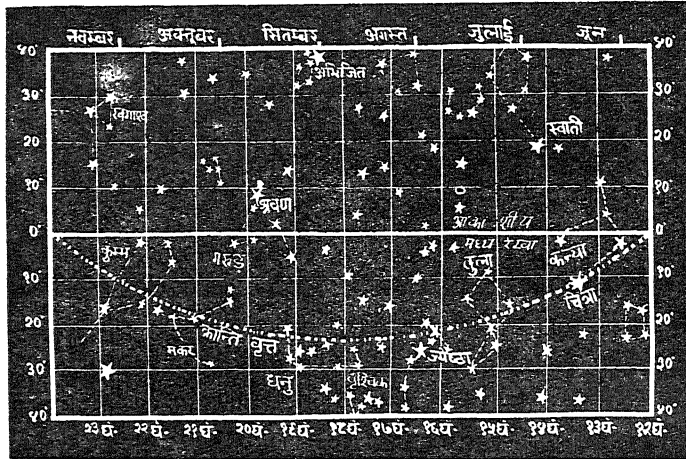
आकाश का नकशा [ब्लाक आदर्श पुस्तक मंदिर, चौक, इलाहाबाद के सौजन्य से]

में ५०० सेकेंड (साढ़े आठ मिनट) लग जाते हैं। यदि इसी चाल से प्रकाश की किरण साल भर चलती रहे तो कितनी दूर पहुँचेगी, इसका हिसाब हम आप लगा सकते हैं। इसकी दूरी को मीलों में न बताकर एक प्रकाश वर्ष दूरी कहते हैं। हमारी पृथ्वी के नजदीक जो तारा है वहाँ से हम तक प्रकाश पहुँचने में चार वर्ष से अधिक लगते हैं।

[दोनों नकशे पूर्व पश्चिम दिशा के बिचले आसमान के हैं। नकशे को सिर के ऊपर उलटा कर इस तरह रक्खा जाय कि महीनों के नाम दिखाने वाला सिरा उत्तर की ओर रहे। जिस महीने में इसे देखना हो उस महीने के सामने वाली रेखा या ठीक उत्तर से दक्षिण की ओर सिरे के उपर से जाने वाली (याम्योत्तर) रेखा होगी। रात के आठ बजे यह दशा होगी। जो घंटा रेखा उस समय याम्योतर रेखा की जगह होगी उसकी जगह बादवाली घंटा रेखा नौ बजे रात को सिर के ऊपर होगी। प्रति घंटे बाद देखने के लिए एक एक घंटा की रेखा हट कर आकाश देखना चाहिए।]

तारों को ध्यान से देखने पर उनके रंगों का भी भेद पाया जा सकता है। उनके रंग नीले-सफेद से लेकर धुँधले लाल तक हो सकते हैं। ये रंग तारा की गर्मी के अनुसार होते हैं। इन्हें बड़े ध्यान से ही परखा जा सकता है। इन रंगों के कारण उनके भेद माने जाते हैं। धुँधले लाल से अधिक गर्मी का तारा नारंगी रंग का दिखाई पड़ेगा। उस से गर्म तारा पीला रंग दिखाएगा। उससे भी गर्म तारा हल्के नीलापन और सफेद नीले रंग को प्रकट करेगा।

कुछ नक्षत्रों की मामूली पहचान आकाश में देखने के समय और गर्मी आदि का ब्यौरा यहाँ पर दिया जा रहा है। उनको ठीक महीने या तारीख पर आकाश में जब उत्तर से दक्षिण जानेवाली सिर की ऊपरी रेखा या याम्योत्तर रेखा होने पर इशारा दिया जाता है तो दूसरे समय या महीनों में उसके हिसाब से आसमान में पूरब या
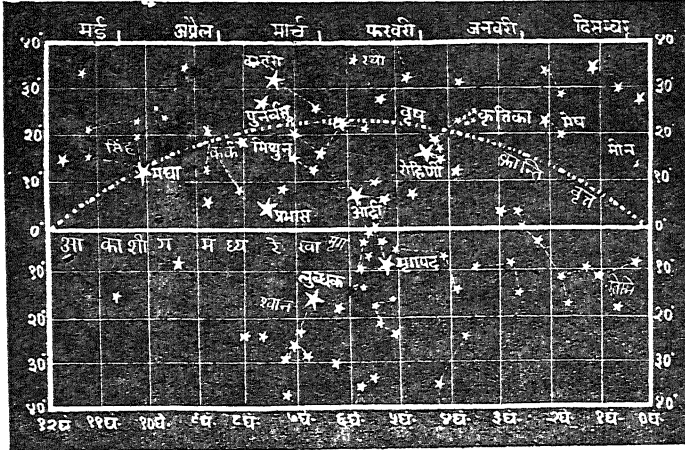
आकाश का नकशा [ब्लाक-आदर्श पुस्तक मंदिर, चौक, इलाहाबाद के सौजन्य से]

पश्चिम के हिस्से में उन्हें देखने का प्रयत्न किया जा सकता है। किसी समय आकाश के सारे चमकीले तारों पर एक बार दृष्टि डाल कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कौन सा चमकीला तारा किस नाम का होगा। एक का पता चलने पर दूसरे भी पहचाने जा सकते हैं।

नक्षत्र या तारा (राशि या तारामंडल)	चमक-सीढ़ी	पृथ्वी से दूरी (प्रकाश वर्षों में)	रंग	याम्योत्तर रेखा* पर नौ बजे रात को देखने का समय
रोहिणी (वृष)	एक (१·०५)	५४ प्र० वर्ष	नारंगी	१४ जनवरी
आर्द्रा (मृग तारामंडल)	एक (०·६२)	३०० प्र० वर्ष	हल्का लाल	३ फरवरी
पुनर्वसु (मिथुन)	एक (१·२१)	३१ प्र० वर्ष	पीला	३ मार्च
मघा (सिंह)	एक (१·३४)	७० प्र० वर्ष	नीला सफेद	२८ मई
स्वाती (भूतेश तारामंडल)	शून्य (०·२४)	३२ प्र० वर्ष	नारंगी पीला	१० जून
ज्येष्ठा वृश्चिक)	एक (१·२२)	१७० प्र० वर्ष	लाल	१४ जुलाई

अभिजित वीणा	शून्य (०·१४)	२३ प्र० वर्ष	नीला सफेद	१५	अगस्त
श्रवण (गरुड़ तारामंडल)	एक (०·८९)	१८ प्र० वर्ष	पीला सफेद	३	सितम्बर

※(उत्तरी ध्रुव से दक्षिण तक सिर के ऊपर जाने वाली रेखा)

ऊपर के नक्षत्रों या तारों की चमक-सीढ़ी (चमक श्रेणी) शब्दों में दी गई है लेकिन कोष्ठ में दशमलव भिन्नों में उनकी ठीक चमक-सीढ़ी भी लिख दी गई है जिस से एक दूसरे से कम या अधिक चमकीले होने का कुछ अनुमान हो सके। नक्षत्रों के आगे कोष्ठ में राशि या तारामंडल का नाम भी दिया गया है जिसमें वे पाए जाते हैं।

नक्षत्रों की दूरी प्रकाश वर्षों में जानकर हम यह देख सकते हैं कि वे हमसे कितनी अधिक दूरी पर हैं। केवल बहुत दूर होने के ही कारण वे प्रकाश की बिन्दी सी जान पड़ते हैं। इनके आकार की कुछ बात हमें बेतुकी या असंभव भले ही जान पड़े लेकिन वैज्ञानिक बतलाते हैं कि स्वाती का व्यास सूर्य के व्यास से ३० गुना है। ज्येष्ठा का व्यास तो सूर्य के व्यास से ३६० गुना बड़ा है यह इतना बड़ा है कि हमारी पृथ्वी अपनी पूरी कक्षा और सूर्य के साथ इनके अन्दर ही समा जाय।

रोहिणी नक्षत्र वृष राशि में है। एक साँड़ की सींगें सी बनी हुई दो पंक्तियाँ खड़ी जान पड़ती हैं जिन में रोहिणी सबसे चमकीला तारा है। यह सांड़ (वृष) की आँखें बनाता जान पड़ता है। इसके पास ही सांड़ की गर्दन के भाग की जगह घेरे हुए एक तारों का गहरा झुंड सा है। यह धुधँले प्रकाश की चकत्ती सा जान पड़ता है जिसे एक बार देखकर कोई पहचानने में भूल नहीं कर सकता। थोड़ा सा ध्यान देने पर, इसमें छः या सात तारे बिलकुल सटे सटे से दिखाई पड़ते हैं और शेष भाग धुंधला उजला जान पड़ता है। भारी दूरबीन से देखने पर इस झुंड में २५० तारे गिन कर बताए जा सकते हैं। यही तारा-झुन्ड कृत्तिका नक्षत्र है। गाँव के लोग इसी को किचपिचिया तारा भी कहते हैं क्योंकि बहुत से तारे किचपिच रूप में मिले या सटे मिलते हैं। नवम्बर के मास में यह पूर्व के आकाश में निकला दिखाई पड़ता है। जनवरी फरवरी में इसे ऊपर के आकाश में देखा जा सकता है।

आर्द्रा नक्षत्र राशियों में नहीं पाया जा सकता। यह चन्द्र-सूर्य या ग्रहों के मार्ग से दक्षिण हटा होता है। रोहिणी के बाद आकाश के भाग का खंड बताने के लिए कोई चमकीला तारा राशियों में नहीं मिलता। इस लिए दक्षिण के आकाश में इस चमकीले तारे को ही उस भाग के आकाश की पहचान के लिए नक्षत्र माना गया है। एक प्रसिद्ध तारामंडल मृग नाम से पुकारा जाता है। इसमें बीच के भाग में एक तीन तारा की लड़ी दिखाई पड़ती है मानो किसी ने पेटी बाँधी हो। हमारे देश में इसे मृग का कोई भाग माना जाता है। इन सटे सटे तारों के बीच बहुत कम दूरी रहती है। डेढ़ अंश की दूरी पर उन्हें मान सकते हैं। इनके ऊपर और नीचे कुछ दूरी पर चौखटे की तरह पायों की जगह पर चार तारे हैं। ऊपर के भाग में जो सबसे चमकीला तारा है वही आर्द्रा है। नीचे भी दूसरे कोने एक चमकीला तारा मृगपद नाम से मशहूर है लेकिन आर्द्रा और उसके पास के दूसरे कोने पर के चौखट वाले तारे के साथ छोटा त्रिभुज सा बनाने की कल्पना की जाय तो मृगशिरा तारा उसमें ऊपरी भाग की नोक बनाने वाला एक धुंधला सा तारा दिखाई पड़ेगा। उसे भी किसी तरह काम चलाने के लिए नक्षत्र नाम दिया गया है। यदि आर्द्रा और रोहिणी तक कोई रेखा खींची जाय तो वह मृगशिरा होकर जाती जान पड़ेगी। उस समय के आकाश में ही उत्तर की ओर एक पहली चमक-श्रेणी का तारा भी दिखाई पड़ता है जो ब्रह्महृदय नाम से मशहूर है। वह रथी नाम के तारामंडल में माना जाता है।

मिथुन राशि में दो तारे पास पास दिखाई पड़ते हैं। इनमें अधिक चमकीला तारा पुनर्वसु है जो प्रथम चमकसीढ़ी का है लेकिन दूसरा तारा कस्तूरी है जो दूसरी चमकसीढ़ी का है। ये दोनो दो खड़ी मूरतें बनाते जान पड़ते हैं जिनके सिर की जगह पर ये हैं और नीचे सीध में दूसरे तारे हैं। मघा नक्षत्र पहली चमकसीढ़ी के तारों में सबसे धुँधला है। यदि पुनर्वसु और मघा को त्रिभुज के दो बिन्दु मान लें तो दक्षिण में एक पहली चमकसीढ़ी का तारा तीसरे-बिन्दु की जगह मिल सकता है। यह प्रभास तारा कहलाता है। उत्तर आकाश के ब्रह्महृदय नाम के पहली चमकसीढ़ी के तारे को आर्द्रा के साथ मिलाकर एक रेखा दक्षिण तक खींची मानी जाय तो दक्षिण में लुब्धक नाम का तारा दिखाई देगा जो आकाश का सबसे चमकीला तारा है।

चित्रा नक्षत्र जिस राशि या तारा मंडल में है उसमें कुछ धुंधले तारे दो ठूंठ शाखों वाला तना सा बनाते हैं। उसकी जड़ में यह नक्षत्र चमकीला दिखाई पड़ता है। यह १९२ प्रकाश वर्ष होने पर जब इतना चमकता है तो हमारे सूर्य से अवश्य ही बहुत चमकीला होगा। यदि यह सूर्य के बराबर दूर हो तो इससे हजार सूर्यों का प्रकाश मिल सके। इस राशि में कुछ और भाग भी लम्बा चौखटा सा बना पाया जाता है जिसकी एक भुजा न हो। तारों की पंक्तियां इसकी तीन भुजाएँ बनती जान पड़ती हैं। इस राशि या तारामंडल में एक तारापुंज ऐसा पाया जाता है जिसमें सैकड़ों ऐसे तारालोक हैं जिस प्रकार हमारा आकाश गंगा रूप दिखाई पड़ने वाला तारालोक है। हमारे तारालोक का इतना फैलाव है कि उस की लंबाई एक लाख प्रकाश वर्ष और चौड़ाई १०००० प्रकाश वर्ष की दूरी है। इस तरह के कई तारा-लोक इस राशि में धुंधले प्रकाश रूप में हैं जिन्हें भारी दूरबीन में भी कठिनाई से ही पहचाना जाता है। ये ७० लाख प्रकाश की दूरी पर हैं।

स्वाती नक्षत्र राशियों में नहीं है। यह भूतेश तारा मंडल में है। इसे १ मार्च को आठ बजे रात को निकलते देखा जा सकता है। उस दिन से प्रति दिन यह चार मिनट पहले उठना शुरू करता है। इसलिए मार्च के अंत में यह सूर्य डूबते ही उग आता है और रात भर दिखाई पड़ सकता है। चंद्रमा निकले होने पर भी यह चमकता दिखाई पड़ता है। १० जून को यह सिर के ऊपर वाली रेखा पर ९ बजे रात को दिखाई पड़ता है। इसमें हमारे सूर्य से १०० गुना अधिक प्रकाश होगा लेकिन बहुत दूर होने के कारण प्रकाश की चमकती बिन्दी ही बना रहता है।

उत्तर के आकाश में सात तारों का एक मंडल है जो सप्तर्षि कहलाता है। इसमें चार तारे चौखटा सा बनाते हैं। और उसी में लगे तीन तारों का लंबा दस्ता जान पड़ता है। चौखटे को भालू की धड़ और तीन तारों की साथ में लगी पंक्ति को लोग भालू की पूँछ मानते थे। इसी को कुछ लोग कड़छी भी कहते हैं जिसमें चार तारों का चौखटा तो कड़छी का आगे का भाग हुआ। और तीन तारों की पंक्ति उनमें लगा दस्ता हुआ इसमें सबसे किनारे के दो तारे चौखटे की बाहरी भुजा मिल कर जो रेखा खींचते हैं वह ध्रुव तारा की ओर पहुँचती है।

सप्तर्षि के तारों को पहचानना आसान है। उनको पहचान कर दूसरे तारे पहचाने जाते हैं। यदि इस तारा मंडल की तीन तारों की पंक्तियाँ कुछ मुड़े हुए दस्ते की सीध में देखते जाँय तो उनमें स्वाती नक्षत्र चमकता दिखाई पड़ जायेगा। यदि यह रेखा आगे तक सीध में बढ़ाई जाँय तो बाद में चित्रा दिखाई पड़ेगा। स्वाती और चित्रा दोनों ही बहुत चमकते तारे हैं। सप्तर्षि के दस्ते की सीध में दोनों को देखने से तुरंत पहचाना जा सकता है।

नक्षत्रों के कहने से हम साधारणतया कुछ खास तारों को समझते हैं। लेकिन उनके वर्णन को ठीक तरह समझने से हमें यह मालूम पड़ सकता है कि ग्रहों की यात्रा वाले आकाश के पूरे मार्ग का २७ भागों में बट-वारा करने के लिए ही उनके नाम प्रसिद्ध हुए। वे कहीं तो एक बड़े चमकीले तारा के नाम से मशहूर हुए जो राशि नाम के तारा मंडलों में मिल सके। कहीं बाहर के भी तारामंडल से लिए गए। यही नहीं, कहीं पर धुँधले दो-एक तारा या कई ताराओं को मिला कर नक्षत्र नाम दिया गया। इसलिए तारा पहचानने में हम उनका वैज्ञानिक ठीक वर्णन नहीं पा सकते। हमें इन

कठिनाइयों में समस्त ताराओं को ही नक्षत्र नाम देना अधिक उचित जान पड़ता है।

जब सब ताराओं को नक्षत्र कहा जाय तो केवल बड़े चमकीले ताराओं का ही वर्णन उचित नहीं है। कुछ धुँधले या बहुत अधिक धुँधले तारा या आँखों की जगह सिर्फ दूरबीन से ही दिखाई पड़ने वाले तारा भी नक्षत्र कहे जा सकते हैं।

नाम के लिए कम चमक वाले कुछ ताराओं या तारा मंडलों की चर्चा हम कर रहे हैं। ध्रुवतारा के पास उसे छोड़ कर शेष छः तारा मिलते हैं जो बड़े ध्यान से ही देखने पर पहचाने जा सकते हैं। इस तारा मंडल को छोटा सप्तर्षि या छोटा रीछ कहते हैं। बड़े सप्तर्षि की तरह इसमें भी चार ताराओं से एक चौखटा सा बना होता है। उसमें दस्ते की तरह तीन तारा होता है। उन्हीं में अंतिम छोर का ध्रुवतारा होता है। इसका चौखटा बनाने वाले तारे बड़े सप्तर्षि के दस्ते की दशा में होते हैं और दस्ते वाले तारे बड़े सप्तर्षि के चौखटे की दिशा में होते हैं।

एक धुँधले ताराओं का लंबा तारामंडल दोनों सप्तर्षियों के बीच में होता है। उसे अजगर कहते हैं। अभिजित और स्वाती तारा के बीच वाले आकाश में केवल धुँधले तारों का एक बड़ा तारा मंडल है जिस में एक बड़े वीर की मूर्ति बनती मानी गई है। यह हरकुलिश तारामंडल है जो इस तारामंडल को पहचान सकता है उसे अन्य तारामंडलों को भी पहचानने का अवश्य अभ्यास हो सकता है।*

[* "ग्रह, राशि, नक्षत्र" से। प्रकाशक—आदर्श पुस्तक मंदिर, चौक, इलाहाबाद ३]

विज्ञान और स्वास्थ्य [पृष्ठ ६७ का शेषांक]

वह जान सकेगा कि ताजी हवा का सेवन हमारे फेफड़ों को स्वस्थ रखने के लिए कितना आवश्यक है।

औसत आयु

स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद से अपनी कमजोरियों की जिम्मेदारी हम विदेशी शासकों के ऊपर नहीं डाल सकते। हमारे नागरिकों के स्वास्थ्य का जो पतन हो रहा है वह किसी से छिपा नहीं है। युवावस्था में ही हमारे बहुत से भाई बूढ़े दिखाई देने लगते हैं। यूरोपीय देशों के नागरिकों की औसत आयु ५० वर्ष से भी ऊपर है, किन्तु भारतवासियों की औसत आयु केवल २७ वर्ष के लगभग है। क्या यह हमारे लिए लज्जा की बात नहीं है? मुझे आशा है कि हमारे वैज्ञानिक भाई जनता को स्वास्थ्य के उन नियमों का दिग्दर्शन करायेंगे जिनसे अनुप्राणित होकर वह राष्ट्र के माथे से कलंक का टीका सदा के लिए मिटा सकें।

बड़े हर्ष की बात है कि श्रद्धेय हीरालाल खन्ना, डा० गोरख प्रसाद और उनके साथियों की प्रेरणा से हमारे नगर में एक विज्ञानशाला स्थापित होने जा रही है जिसको हमारे प्रधान मंत्री का आशीर्वाद आज ही प्राप्त होने वाला है। देश की आँखें वैज्ञानिक की ओर लगी हुई हैं। देश की उन्नति उन्हीं के परिश्रम पर निर्भर करती है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस वैज्ञानिक प्रयोगशाला में लाभ-दायक कार्य होगा और हमारे वैज्ञानिक स्वास्थ्य के उन नियमों का वैज्ञानिक अवलोकन करेंगे जिनका अवलंबन लेकर देश का प्रत्येक नागरिक देश की सेवा करने के लिए कम से कम सौ वर्ष पूर्ण स्वास्थ्य के साथ जीवित रह सके।

विज्ञान और स्वास्थ्य

प्रिन्सपल केदारनाथ गुप्त

वर्तमान शताब्दी वैज्ञानिक चमत्कारों से इतनी प्रभावित है कि जीवन के हर क्षेत्र में विज्ञान के साथ हम गहरा संबन्ध पाते हैं। पूर्व वैज्ञानिक युग की तो कल्पना करना ही कठिन है। वास्तव में हमारे दैनिक जीवन में विज्ञान और वैज्ञानिक सुविधाओं ने अपूर्व आधिपत्य जमा लिया है और उसके हम इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि विज्ञान से अपने को पृथक करना हमारे लिए असंभव सा है।

स्वतन्त्रता मिलने के बाद हमारे देश ने हर क्षेत्र में आश्चर्यजनक उन्नति की है। विदेशियों ने भी मुक्त कंठ से हमारे राष्ट्र के क्रियात्मक प्रयासों की प्रशंसा की है और इसलिए अपने देश के कर्णधारों पर हमें गर्व करना स्वाभाविक ही है। परन्तु मेरे विचार से सब से महत्वपूर्ण क्षेत्र जिसमें हमें अभी बहुत कुछ प्रयास करना है, वैज्ञानिक क्षेत्र है। हमारे प्रधान मन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू विज्ञान के महत्व से भली भाँति परिचित हैं और उनकी प्रेरणा से देश में नई प्रयोगशालायें स्थापित हो रही हैं और वैज्ञानिक को प्रोत्साहित करने के लिए बहुत सी योजनायें भी बनाई गई हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि शीघ्र ही हम संसार को दिखा देंगे कि जिस प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में हमारा देश नेता रहा है, उसी प्रकार वैज्ञानिक क्षेत्र में समुचित स्थान ग्रहण करने की वह क्षमता रखता है।

स्वास्थ्य के नियमों से वैज्ञानिक प्रभाव

वैज्ञानिक सुविधाओं से तो हम भली-भाँति परिचित ही हैं। परन्तु विज्ञान और स्वास्थ्य का जो गहरा संबंध है उसकी ओर बहुतों का ध्यान नहीं जाता। स्वास्थ्य के नियमों में विज्ञान का प्रभाव प्रत्यक्ष है। उदाहरण के लिए व्यायाम को ही लीजिये। सब जानते हैं कि अच्छे स्वास्थ्य के लिए व्यायाम आवश्यक है। परन्तु व्यायाम विज्ञान के ऊपर निर्भर है। व्यायाम इसीलिए स्वास्थ्यप्रद है कि उसके द्वारा हमारे शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है जिससे शरीर की नसों में खून का प्रवाह अधिक तेजी से होता है। शरीर की गर्मी से पाचन क्रिया को सुगमता मिलती है। परिणाम यह होता है कि व्यायाम की ओर ध्यान देने वाला व्यक्ति कभी बदहजमी से पीड़ित नहीं होता। उसके शरीर में स्फूर्ति रहती है और वह जीवन के वास्तविक आनन्द का अनुभव करता है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य के नियम भी विज्ञान पर अवलंबित हैं। शरीर की वास्तविक शक्ति ब्रह्मचर्य ही है, जैसा कि वैज्ञानिकों ने सिद्ध करके दिखाया है।

जिन देशों ने वैज्ञानिक उन्नति की है उनके नागरिकों का स्वास्थ्य भी अवश्य ही उत्तम होता है। यह तो सत्य ही है कि विज्ञान के द्वारा बीमारियों को दूर करने के अनेक साधनों की खोज की गई है किन्तु मैं तो उन वैज्ञानिक साधनों को अधिक पसन्द करता हूँ जिनके पालन करने से बीमारी कभी हो ही नहीं सकती। स्वास्थ्य ठीक रखने के नियम किसी व्यक्ति विशेष की सूझ के परिणाम नहीं हैं, किन्तु उनकी आधार-शिला केवल विज्ञान है। पौष्टिक भोजन हम इसलिए करते हैं जिससे हमें उचित मात्रा में भोजन के सब तत्व मिल सकें। भोजन संतुलित तभी होता है जब विटेमिन का अनुपात बिगड़ने न पाये। यह सब जानने के लिये प्रत्येक नागरिक को विज्ञान की शरण लेनी पड़ेगी जिससे प्रेरित होकर वह जीवित रहने के लिए संतुलित भोजन करेगा। केवल भोजन करने के लिए जीवित न रहेगा। उसी प्रकार विज्ञान के द्वारा ही

[शेष पृ० ६६ पर

मिट्टी और उसे उर्वरा बनाना

ले०—श्री शम्भू दयाल वर्मा

मिट्टी एक प्रकार का प्राकृतिक पदार्थ है जो भिन्न भिन्न कार्वनिक और अकार्वनिक पदार्थों के भिन्न-भिन्न अनुपात में मिलने के कारण बना है। इस भिन्न-भिन्न अनुपात में मिलने के कारण ही भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टी पृथ्वी पर सम्भव हो सकी है। यह मुख्यतः चार प्रकार के अवयवों से मिलकर बनी है। (१) कार्वनिक पदार्थ, (२) अकार्वनिक पदार्थ (३) जल व (४) वायु यह सब बहुत सूक्ष्मता से बटे हुये होते हैं और एक दूसरे से भली भाँति मिश्रित होते हैं। कार्वनिक पदार्थों में जानवरों के सड़ने से बने हुये पदार्थ सम्मिलित हैं। जल मिट्टी के छिद्रों में सतह के खिंचाव के कारण रुका रहता है। गैसों में मुख्यतः आक्सीजन, नाइट्रोजन और कार्वन डाइआक्साइड इत्यादि हैं। नाइट्रोजन बहुत ही अक्रियाशील दशा में होता है। यह रासायनिक परिवर्तनों में कुछ निश्चित दशाओं में ही भाग लेता है। इन तत्वों के मिलने से चार प्रकार की मिट्टी बन सकती है। (१) चिकनी मिट्टी, (२) बलुई मिट्टी (३) लोमी मिट्टी, (४) पहाड़ी मिट्टी। सबसे अच्छी मिट्टी लोमी मिट्टी होती है। उसका अनुपात यह है।

सिलिका या बालू ६०%
चिकनी मिट्टी या क्ले २५%
कार्वनिक पदार्थ ७%
अकार्वनिक पदार्थ ७%

किसी भी मिट्टी में सिलिका का होना हवा की उपस्थिति के लिये अनिवार्य है क्योंकि इनके कड़ों के बीच में काफी स्थान रहता है जिनमें हवा बन्द रहती है। क्ले का काम मिट्टी में पानी को रोकना है। कार्वनिक और अकार्बनिक पदार्थों का काम पौधों को भोजन पहुँचाना है। यदि कोई भी एक अवयव अधिक मात्रा में हो जाता है तो पौधों का उगना सन्तोषप्रद नहीं होता। यदि सिलिका की मात्रा बढ़ जाय तो मिट्टी छिद्रयुक्त हो जायेगी और नमी का रहना असम्भव हो जायेगा। इन दोनों प्रकार की मिट्टी में कृषि करना एक विकट समस्या है जो विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये हैं। इन्हीं दो अवस्थाओं की सीमा जब बहुत अधिक हो जाती है तो मिट्टी बंजर या ऊसर के रूप में परिणत हो जाती है।

पौधों के उगने एवं बढ़ने के लिये भूमि में रासायनिक परिवर्तन आवश्यक हैं। इसके लिये यह आवश्यक है कि उनके अवयव अत्यन्त छोटे-छोटे कड़ों में जिन्हें कलायड (Colloid) कहते हैं विभाजित हो।

किसी पौधे के उगने के लिये चौदह तत्वों की आवश्यकता पड़ती है। वे हैं :—कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, फासफोरस, तांबा, जस्ता, लोहा, मैनगनीज, मैगनीशियम, गन्धक, पौटैशियम, कैलशियम और बिसमथ। यह तत्वभूमि के अवयव होने चाहिये। इनमें से ६ के बारे में वैज्ञानिकों ने बहुत खोज की है। वे हैं :—नाइट्रोजन, फासफोरस, पौटैशियम, कैलशियम, मैगनीशियम और गन्धक। यदि यह भूमि में नहीं है या अस्वास्थप्रद मात्रा में है तो पौधे का उगना कठिन हो जाता है। इसलिये इनको उवर्रा करने वाले तत्व (Fertilizing elements) कहते हैं।

जब मिट्टी में ये कम हो जाते हैं तो इन्हें खादों के रूप में पहुँचाते हैं। खाद देने का ध्येय पौधे को खुराक पहुँचाना और मिट्टी में इन तत्त्वों को लाभप्रद मात्रा में करना होता है। इस सिद्धांत के ऊपर वैज्ञानिक रीति से बनाया हुआ खाद तीन प्रकार का हो सकता है :

(१) वे जो नाइट्रोजन पहुँचाते हैं।

(२) वे जो फासफोरिक एसिड पहुँचाते हैं।

(३) जो घुलनशील पौटैशियम पहुँचाते हैं।

नाइट्रोजन पहुँचाने वाले खादों को साधारणतः अमोनियेट्स कहते हैं। इनके दो भाग हो सकते हैं। (१) कार्बनिक (२) अकार्बनिक, कार्बनिक खाद तम्बाकू के तने से और सड़ी मछलियों से अच्छा मिलती है। कार्बनिक प्रकार की खाद ज्यादा लाभप्रद होती है क्योंकि इसमें से नाइट्रोजन धीरे-धीरे निकलता है और पौधे को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में निरन्तर मिलता रहता है।

सोडियम नाइट्रेट खाद जिसे साधारणतः शोरा कहते है अकार्बनिक पदार्थ है जो नाइट्रोजन पहुँचाने के काम में लाया जाता है। अमोनियम नाइट्रेट भी इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन किस समय कौन सा यौगिक प्रयोग में लाना चाहिये, एक सोचनीय समस्या हो जाती है।

सोडियम नाइट्रेट से निकला हुआ नाइट्रोजन पौधे को तुरन्त उत्तेजना पहुँचाता है और उसका उगना प्रारंभ हो जाता है। लेकिन अधिक शोरे के प्रयोग से मिट्टी खराब हो जाती है। पहले तो मिट्टी अम्लीय हो जाती है जो पौधे के लिये अत्यन्त हानिकारक है। फिर सोडियम कार्बोनेट बनने के कारण जमीन क्षारी हो जाती है जो पौधे के लिये हानिकारक है क्योंकि जड़ों के रेशे गल जाते हैं। इसलिये साधारण खेती में शोरे का प्रयोग कम करना चाहिये। दूसरा नाइट्रोजन का जरिया अमोनियम सल्फेट है। इसको मिट्टी में डालने से गन्धक के अम्ल का उत्पादन हो जाता है। ये भी जड़ों के रेशों को घुला देता है। लेकिन यदि अमोनियम सल्फेट और सोडियम नाइट्रेट को मिला कर डाला जाय तो एक का बनाया हुआ अम्ल दूसरे के बनाये हुए क्षार से प्रतिक्रिया करेगा और पौधे को विशेष हानि नहीं होगी।

यूरिया जो पेशाब के साथ निकलता है नाइट्रोजन का एक अच्छा जरिया है। यह शोरे से तिगुना नाइट्रोजन पहुँचाता है। जब मिट्टी में नाइट्रोजन और फासफोरस दोनों की साथ आवश्यकता पड़ती है तो अमोनियम फासफेट का प्रयोग करते हैं।

मिट्टी में चूने का होना अम्ल को लवण में परिवर्तित करने में सहायता देता है। दूसरी तरह से भी इसकी उपस्थिति लाभप्रद है। वायुमंडल में बरसात के दिनों बिजली बहुत शोरे का अम्ल बनाती है जो पानी के साथ जमीन पर आता है। यदि जमीन में चूना या कोई भी क्षार मौजूद है तो यह अम्ल लवण बना देगा जो पौधों के उगने में सहायता देगा। ऐसी जमीन में केवल सोडियम नाइट्रेट का अकेले प्रयोग भी कर सकते हैं। इसलिये जमीन में चूने का होना भी आवश्यक है और यह भी खाद के रूप में पहुँचाया जा सकता है।

मिट्टी में फासफोरस पहुँचाने के लिये मुख्यतः कैल्सियम सुपरफासफेट का प्रयोग करते हैं। लेकिन यह कुछ ही दशाओं में पौधों के लिये उपयुक्त हो सकता है। इसको पौधों द्वारा सोखे जाने के लिये एक निश्चित माध्यम होना चाहिये। अधिक अम्लीय और थोड़ा भी क्षारीय माध्यम में यह अघुलनशील हो जाता है और ऐसी अवस्था में पौधे इसे नहीं सोख सकते। इसके सोखने के लिये मिट्टी की फास० मूल्य ६.६ ५.५ होनी चाहिये।

मिट्टी में पौटैशियम पहुँचाने के लिये मुख्यतः पोटेशियम क्लोराइड और सलफाइड का प्रयोग करते हैं। प्राचीन काल से यह भी विदित है कि कुछ पौधे जैसे सेम और फली किसी तरह अपने अन्दर वायुमंडल के नाइट्रोजन को बन्द कर लेते हैं। ये पौधे जब काट दिये जाते हैं और उन्हीं खेतों में जब अनाज (Cereals) बोये जाते हैं तो पैदावार अच्छी होती है। प्रश्न यह उठता है कि इनमें नाइट्रोजन आया कहाँ से? इसके कारण से वैज्ञानिक भलीभाँति परिचित हैं। इन पौधों की जड़ों में कुछ बैक्टीरिया होते हैं जो वायुमंडल के नाइट्रोजन को लेते हैं और उसे अकार्बनिक रूप में बदल देते हैं। यह इनकी जड़ों में रहता है और फिर मिट्टी में मिल जाता है। ये जड़ें जब सड़ने लगती हैं तो नाइट्रोजन कार्बनिक दशा में ही निकलता है। ऐसे पौधों को जो इस प्रकार नाइट्रोजन हवा से लेकर दूसरे पौधों के लिये उपलब्ध करते हैं लेग्यूम या दाल वाले कहते हैं।

जो बैक्टीरिया इस क्रिया को करते हैं वे ऐजेटोबैक्टर जाति के होते हैं।

साधारणतः देहातों में लोग खेत खाली छोड़ देते हैं। यह भी मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाने की एक सही विधि है लेकिन यह आर्थिक दृष्टि से हानिकारक है। इतने दिन तक उस जमीन की उपयोगिता कृषक को बिलकुल नहीं मिलती। उस समय उसमें कोई लेग्यूम पौधा लगा देना चाहिये जैसे चकवड़।

चकवड़ भारतवर्ष में बहुत ही अधिक मात्रा में पाया जाता है।

चकवड़ का प्रयोग उसे सड़ाकर खाद देने के काम में भी लाया जा सकता है क्योंकि इसमें बहुत से खाद्य पदार्थ जैसे प्रोटीन, वस इत्यादि रहते हैं जो पौधों को बने बनाये रूप में मिल सकता है परन्तु आदमी के लिये यह किसी काम का नहीं है।

लेकिन नाइट्रोजन केवल इन बैक्टीरिया की सहायता से ही नहीं पहुँचता है जो कि लोगों की प्राचीन धारणा थी। लेकिन हाल ही में प्रोफेसर नीलरतनधर और उनके सहवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि मिट्टी में नाइट्रोजन का आबद्ध होना एक प्रकाश संबंधित क्रिया है।

प्रोफेसर धर ने भूमि में नाइट्रोजन बढ़ाने की एक नयी विधि बतायी है। इनके अनुसार भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा चोटे को डालने से बढ़ जाती है। इसका कारण निम्न प्रकार है। चोटे में कार्बनिक पदार्थों को जलने के (oxidation) कारण शक्ति पैदा होती है। यह जलना प्रकाश की उपस्थिति में ही होता है। यह शक्ति हवा से नाइट्रोजन लेने में खर्च हो जाती है। ऐसे सैकरीन पदार्थ जिनमें कार्बोहाइड्रेटस की मात्रा अधिक हो मिट्टी में नाइट्रोजन वृद्धि के काम में लायी जा सकती है। लेकिन चोटा सबसे अच्छा है।

मिट्टी की उर्वरा शक्ति (Farm manuring) से भी बढ़ाई जा सकती है। इस विधि में जानवरों के मल मूत्र का प्रयोग करते हैं। इसके ठोस भाग में $\frac{1}{3}$ से अधिक नाइट्रोजन, पूरा फासफोरस और २/५ पोटाश पाया जाता है। इनका साधारण प्रयोग अधिक लाभप्रद नहीं होता क्योंकि सड़ने की क्रिया में बहुत भाग Co_2, N_2, और पानी बेकार चला जाता है। लेकिन विधि पूर्वक यदि इसका प्रयोग किया जाय तो रासायनिक खादों से यह अधिक उपयुक्त सिद्ध होगा। एक लगभग चौकोर गढ़ा खोद देते हैं। इसमें पानी द्वारा नमी काफी पहुँचा देते हैं। फिर इसके ऊपर गीली मिट्टी की एक पतली तह बिछा देते हैं। इसके ऊपर मलमूत्र का एक तह बिछा देते हैं। फिर इसे पत्ते इत्यादि से ढक देते हैं। फिर इसके ऊपर वही क्रिया बराबर करते जाते हैं। जब गढ़ा भर जाय तो उसे ढक देते हैं। रोज का कूड़ा करकट इत्यादि भी इसी गड्ढे के ऊपर दबाव बढ़ाने के लिये डालते जाते हैं। दूसरे साल तक पूरे गड्ढे का सामान एक अच्छे खाद के रूप में परिणत हो जाता है। यह सबसे अच्छी खाद होती है क्योंकि यह एक कार्बनिक पदार्थ होता है जो धीरे-धीरे नाइट्रोजन निकालता है।

हमारे देश में बहुत से ऐसे बंजर प्रदेश है जहाँ जमीन सज्जी मिट्टी जिससे सोडियम कार्बोनेट जिसे साधारणतः सोडा कहते हैं, से ढकी रहती है। ऐसी भूमि में भी कृषि साधारणतः असम्भव रहा है। ऐसी जमीनों की आर्थिक उपयोगिता भी बहुत कम है।

यदि ऐसी जमीन में कोई पौधा बोया जाता है तो उनकी जड़ों के चारों तरफ लवणों का एक संपृक्त घोल इकट्ठा हो जता है जिसके जड़ों के रेशों के चारों तरफ Osmotic Pressure बढ़ जाता है। प्रोटोप्लास्म बाहर निकलने का प्रयत्न करता है। इसी दशा में प्रोटोप्लास्म मर जाता है और पौधा सूख जाता है। सोडा दूसरे प्रकार से भी पौधे को जल्दी मारने में मदद पहुँचाता है। यह जड़ों के रेशों को काटता है। लेकिन ऐसी दशा में भी खेती हो सकती है और उसके लिये दो विधियों का उपयोग हो सकता है।

(१) सोडा को पानी से धोकर निकाल लेना

(२) सोडा को दूसरे लवणों में बदलना जो कि कम हानिकारक होता है।

पहली विधि में नलकूप की सहायता ले सकते हैं। एक क्षेत्र में खूब पानी गिराना चाहिये और उसे

[शेष पृष्ठ ७२ पर

सूर्य की तापन शक्ति का उपयोग

लेखक—श्री गौरीशंकर दुबे

सृष्टि के आदि काल से ही मनुष्य अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिये प्रकृति के रहस्यों का उदघाटन करने में लगा हुआ है। इसी प्रकृति के कारण वह पशुओं की श्रेणी से बाहर निकल कर आज विकास की चरम सीमा पर पहुँच गया है।

संभवतः मनुष्य की सबसे पहली विजय जो उसने प्रकृति के शक्ति-स्रोतों पर प्राप्त की वह अग्नि ही था। हजारों वर्षों के पश्चात् हम आज उस अग्नि का उपयोग मानव सेवा में कर चुके हैं। अग्नि को शक्ति का साधन बनाने के लिए हमें कोयले की आवश्यकता पड़ती है। इसके पश्चात् हमने विद्युत् का प्रयोग मानव सेवा में प्रारम्भ किया और आज यह विद्युत् ही सबसे उपयोगी साधन हो रहा है। किसी भी शक्ति के साधन से प्राप्त शक्ति का परिवर्तन हमें पहले विद्युत्-शक्ति में करना पड़ता है और फिर इसे तो मन चाहे स्थानों में ले जाकर इससे विभिन्न कार्य कर सकते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में मनुष्य ने परमाणु जगत के रहस्य का उदघाटन कर उससे शक्ति प्राप्त करने का जो रहस्य ज्ञान कर लिया है, इस शक्ति का उपयोग शान्तिपूर्ण कार्यों में भी अब होने लगा है।

यह परमाणु शक्ति शक्ति का सबसे अच्छा साधन है। किन्तु इसमें कुछ त्रुटियाँ हैं। पहली त्रुटि तो यह है कि यह एक बहुत ही कीमती यूरेनियम धातु के व्यय से प्राप्त होती है। दूसरी त्रुटि यह है कि इससे उत्पन्न रेडियो-सक्रिय कण यदि बाहर आ जाय तो वे बहुत अनिष्ट कर सकते हैं। इसलिये इसके यंत्रों के निर्माण के समय इस बात की बहुत ही सावधानी रखनी पड़ती है। तीसरी बात यह है अन्य शक्ति के साधन के यंत्रों की अपेक्षा इसके निर्माण केन्द्र में बड़ी-बड़ी मशीनों को लगाने की आवश्यकता पड़ती है।

आज के युग में सूर्य भी एक शक्ति का साधन बनाया जा रहा है। सूर्य से शक्ति प्राप्त करने के साधनों का यदि पूर्णरूप से विकास कर लिया जाय तो संभवतः यही सबसे सस्ता और सुगम शक्ति का साधन हो जाय। इसकी विशेषता यही है कि इससे प्राप्त शक्ति के लिये हमें बदले में कुछ खर्च नहीं करना पड़ता केवल एक बार यंत्रों के निर्माण की आवश्यकता पड़ती है। दूसरी विशेषता यह है कि इसका उपयोग हम छोटे से छोटे पैमाने पर निर्माण करके कर सकते हैं। यंत्र की शक्ति के ऊपर यह निर्भर करता है। इसलिए यदि हम चाहें तो बड़े-बड़े शक्ति केन्द्र स्थापित करें या छोटी-छोटी इकाइयों में इसका उपयोग विश्व के कोने-कोने में कर सकते हैं।

सौर्य यंत्रों के कार्य करने का सिद्धान्त यह है कि सूर्य की विस्तृत क्षेत्र पर पड़ने वाली किरणों को एक बिन्दु पर केन्द्रित किया जाता है। जितने ही अधिक क्षेत्रफल की सूर्य-रश्मियों का केन्द्रीकरण किया जायेगा उतनी ही अधिक तापीय शक्ति हमें उस बिन्दु पर प्राप्त होगी। पुनः इस प्राप्त तापीय शक्ति का उपयोग हम चाहे जिस कार्य के लिए कर सकते हैं। सूर्य हमेशा एक ही बिन्दु पर स्थित नहीं रहता इसलिये उससे आने वाली किरणों की दिशा बदलती रहती है। यदि किरणों को केन्द्रित करने वाले दर्पण स्थिर रहेंगे तो किरणों के केन्द्रीकरण का बिन्दु बदलता रहेगा और हमें केवल एक ही स्थान पर उच्च तापक्रमीय बिन्दु प्राप्त नहीं होगा। इसके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि ये दर्पण स्थिर न रह कर घूमने वाले होने चाहिये।

पुनः इस प्रकार प्राप्त स्थिर उच्च तापीय बिन्दु की

सहायता से हम या तो छोटे-छोटे विद्युत् उत्पादक मशीनें चला सकते हैं जिनके चलाने का तरीका या तो वाष्प इंज्जन की भाँति हो या गैसटरबाइन की भाँति। ये विद्युत् उत्पादक उन क्षेत्रों के लिये बहुत ही उपयोगी हो सकते हैं जहाँ पर आसानी से अन्य विद्युत् उत्पादक मशीनें नहीं चलाई जा सकतीं। और यदि वहाँ ये मशीनें काम करें भी तो उनसे सस्ती विद्युत् नहीं प्राप्त हो सकती। इसलिये सूर्य-विद्युत् उत्पादक द्वारा छोटे-छोटे ग्रामोद्योगों को भी काफी सहायता मिल सकती है।

भारत में भी धूप-चूल्हे का सफल निर्माण हो चुका है। इसके कार्य करने का सिद्धान्त भी वही है जो ऊपर बताया गया है। इसके नीचे एक दर्पण होता है जिसके नीचे एक स्टैण्ड की सहायता से कोई भी बर्तन रखा जा सकता है। दर्पण के ठीक अनुकूलन करने पर सूर्य की राशियाँ बर्तन पर केन्द्रित हो जाती हैं और दर्पण के पूरे क्षेत्र को सूर्य से मिलने वाली गर्मी अब बर्तन को मिलने लगती है और उसमें रखा पानी खौलने लगता है। एक बार अनुकूलन करने के पंद्रह बीस मिनट पर पुनः दर्पण का अनुकूलन करना पड़ता है। इस चूल्हे से इतना ही ताप प्राप्त होता है जितना साधारण चूल्हों में खाना पकाने के लिये आवश्यक होता है।

फ्रान्स में माउंट लुइस पर १९५० में एक प्रयोग शाला स्थापित की गई है जहाँ पर एक वृहत् यंत्र द्वारा सूर्य के सामान्य विकिरण को महान तापीय शक्ति में परिणत किया जाता है। इस ताप को एक भट्ठी में केन्द्रित किया जाता है जहाँ का तापक्रम ३०००° सें० के लगभग हो जाता है। इसमें ७० किलोग्राम प्रति घण्टे की दर से लोहा गलाया जा सकता है। यह प्रयोगशाला सूर्य की शक्ति को केन्द्रित और उसका प्रयोग करने की नई-नई विधियों को जन्म देगी, ऐसी आशा की जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर्य की तापीय शक्ति के उपयोग के लिये व्यापक क्षेत्र है और इससे अधिक सस्ता अन्य कोई भी साधन नहीं। किन्तु इसके व्यापक प्रसार और उन्नति में कई बातें बाधक हैं। प्रमुख बात तो यह है कि यह शक्ति हमें सूर्य से प्राप्त होती है इसलिये उसकी अनुपस्थिति में ये यन्त्र अपना कार्य स्थगित कर देते हैं। सूर्य केवल दिन ही में रहता है और वह भी जब आकाश स्वच्छ रहे। इसलिये इन यन्त्रों का उपयोग वहाँ पर नहीं किया जा सकता जहाँ दिन-रात विद्युत् शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। तथा इसके लिये वे क्षेत्र भी अनुपयुक्त होंगे जहाँ पर वर्ष के अधिकांश महीनों में वर्षा होती ही रहती है।

किन्तु हमारे देश की स्थिति बहुत कुछ अनुकूल है। यहाँ पर केवल चार महीने वर्षा होती है और शेष दिन यहाँ पर चमकते हुये सूर्य की प्रखर रश्मियाँ प्राप्त हो सकती हैं। छोटे छोटे उद्योगों में जहाँ दिन भर ही विद्युत प्राप्त होना पर्याप्त होता है ऐसे उद्योगों में भी उसका व्यापक उपयोग हो सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वृहत् उद्योगों के लिये इसका उपयोग नहीं हो सकता किन्तु छोटे-छोटे उद्योगों के लिये यह बहुत ही लाभदायक है। इसलिये इसकी सफलता तभी हो सकती है जब इन यन्त्रों का निर्माण प्रचुरता से हो ताकि वे सस्ते पड़ सकें और उनका उपयोग आसानी से किया जा सके।

मिट्टी और उसे उर्वरा बनाना [पृ० ७० का शेषांश

दूसरे क्षेत्र में बहा देते हैं। कई दिन यह क्रिया जारी रखते हैं। लेकिन उसमें पहले दूसरे लवण जैसे तूतिया या जिपसम डाल देते हैं जिससे कि कुछ सोडा कम हानिकारक रूप में बदल जाता है।

कभी-कभी ऐसी भूमि में गन्धक छिड़क कर भी उपजाऊ बना सकते हैं। गन्धक पहले हवा की आक्सीजन और पानी से मिलकर गन्धक का अम्ल बनाता है। यह सोडा से क्रिया कर उसे दूसरे सलफेट में बदल देते हैं। इस क्रिया में भी कुछ दिनों बाद खूब पानी देना चाहिये ताकि पूरा सोडियम आयन घुल जाय।

राजाधिराज परमाणु

[ले०—श्री नन्द लाल जैन]

तुम लोगों ने बहुत सी ऐसी वस्तुयें देखी होंगी जो भयावह हों, हानिकारक हों और विनाशक हों। बहुत से पशु-पक्षी, शेर-चीता, साँप-बिच्छू, मक्खी-मच्छर, चूहे और कीटाणु आदि उदाहरण के रूप में कहे जा सकते हैं। पर ये सभी सजीव सृष्टि के अंतर्गत हैं। निर्जीव सृष्टि में ऐसी वस्तुयें कम ही पाई जाती हैं। डायनामाइट, बारूद, बम आदि। आओ, आज हम तुम्हें एक ऐसे ही महाविनाशक और ताण्डव मचाने वाले, अपने ध्वनि क्रियाकलाप से हाहाकार और प्रलय मचा देने वाले मानव की जिज्ञासा और उत्सुकता की पूर्ति के रौद्र रूप की कहानी सुनावें।

पहले से ही जगत् में दो प्रकार की सृष्टि सजीव-निर्जीव-मानी जाती रही हैं। यद्यपि वैज्ञानिक आज अमीबा और अन्य सूक्ष्म तंतुओं के ज्ञान और अध्ययन से हमें यह नहीं बता सकते हैं कि सजीव और निर्जीव में क्या भेद है और एक दूसरे की सीमा कहाँ मिलती हैं? वैज्ञानिकों की निरीक्षण और परीक्षण-प्रियता उन्हें ही बलिहारी रहे। हमारे सामने तो दोनों सृष्टियां स्पष्ट हैं—प्राकृतिक और आध्यात्मिक। मानव अपनी विद्या, बल, बुद्धि के वैभव से आदि काल से प्राकृतिक सृष्टि पर नियंत्रण करता चला आ रहा है और अपने को प्रकृति का अनन्य भक्त और पुजारी मानता आ रहा है। मानव का सारा कार्य व्यापार प्रकृत्यधीन ही तो है। मानव ने अपने विकास के साथ अपनी भौतिक आवश्यकतायें और सुख-साधन बढ़ाने का उपक्रम प्रारंभ किया और प्रकृति से अपने खाद्य, वस्त्र, और अन्य आवरण, विचार-प्रसार के साधन और शक्ति के स्रोत प्राप्त किये। मानव ने प्रकृति के इन वरदानों से अपने को उसका कृतज्ञ मानकर उसके अध्ययन द्वारा अपने ज्ञानभंडार में वृद्धि की।

मानव का जिज्ञासु मस्तिष्क जब कुछ सभ्य और संस्कृत हो गया, तब उसे एक मनोरंजन सूझा—क्या मैं प्रकृति से स्वतंत्र नहीं हो सकता ?" इस प्रश्न का उत्तर मानव की एकान्त और कठोर साधना चाहता था। अभी तक वह प्रकृतिप्रदत्त सामग्री का उपयोग कर मगनमस्त था। अभी तक उसके सामने बनी बनाई सामग्री रहती थी। अब उसे बनाने का तरीका खोजने और अपनाने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। इस जिज्ञासा ने उसे विश्लेषक बना डाला,-निर्माण तो गया ताक में, तोड़-फोड़ और चीर-फाड़ ही उसका पेशा हो गया। उसने प्रकृति के पदार्थों की मानसिक तोड़-फोड़ तो ईसापूर्व सदियों में कर डाली थी। मिस्र व भारत में कई दार्शनिकों ने बताया था कि संसार के सभी दृश्यमान पदार्थ छोटे-छोटे अविभागी और अविनाशी-परमाणु-कणों से बने हैं, परन्तु इस तथ्य पर मानव ने अपनी सही मुहर तो सोलहवीं सदी में लगाई है। और इसी के आधार पर अपनी प्रयोग विद्या को आगे बढ़ाता रहा है। अपने भौतिक सुख-साधनों की नित नयी सर्जना करता रहा है।

अपने मन और शरीर के विलास के अगणित साधनों के निर्माता के बावजूद भी मानव ने अनुभव किया कि उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये शक्ति चाहिये और शक्ति के स्रोत चाहिये, जो उसके यंत्र चला सकें। उसकी सभ्यता की भारी गाड़ी का बोझ ले चल सकें, जो निरंतर बढ़ता जा रहा है। प्रकृति से जितने साधन प्राप्त हुए, उनके पृथ्वीतल पर इकट्ठा करने और उनके

शक्तिदायी बनने तक जो व्यय होता है, इन साधनों को कार्यक्षम बनाने के लिये जिस परिभाषा में यंत्रों और तजन्य पेचीदगी का सामना करना पड़ता है, इतने व्यय और परिश्रम के बाद मानव को जो उनसे शक्ति प्राप्ति होती रही है उससे भी, मानव को संतोष नहीं था। साथ ही प्रकृति का भाण्डार सीमित और मंदगति से बढ़ता है। पर मानव की अभिलाषायें निःसीम। कहाँ इनका मेल हो सकता है? अतः उसे और भी चिंता लगी कि मेरी यांत्रिक आवश्यकतायें इतनी बढ़ गई हैं कि मैं स्वयं यंत्रसम बना जा रहा हूँ और इन यंत्रों को चलाने के लिए शक्ति-शक्ति चाहिये। आज की गति से प्रकृति का स्रोत तो कुछ ही समय में समाप्त होने वाला है। तब? उसने प्रयोगशाला में पानी से शक्ति प्राप्त की, और उसे औद्योगिक रूप दिया। उसने कोयले से द्रव और गैसीय ईंधन बनाकर उससे और भी अधिक शक्ति प्राप्त करने का उपक्रम किया, जिसे भी वह औद्योगिक रूप देने में लग गया है। उसने हवाओं की अपार शक्ति के नियंत्रण का बीड़ा उठाया है। पर उसे अब भी संतोष नहीं है क्योंकि वह अपने अत्युन्नत भविष्य की शक्ति की असीम आवश्यकताओं की कल्पना में शक्ति-स्रोतों के अभाव का अनुभव कर रहा है। उसने अब सूर्य की ओर टकटकी लगाकर उससे रसोई बनाने की ताप शक्ति तो प्राप्त कर ही ली है। अब सुना जाता है कि सूर्य की गर्मी से विद्युत्-शक्ति प्राप्त करने का उपक्रम होने लगा है। ईधर कुछ दिनों से मानव ने युद्ध की विभीषिकाओं द्वारा विभिन्न विस्फोटकों और विनाशक द्रव्यों का भी निर्माण करने में दक्षता प्राप्त करली है। अब परमाणु बम-जो हाइड्रोजन, निकल, कोबल्ट बमों के रूप में आने लगे हैं, की प्रक्रिया ने प्राचीन युद्धकला को ध्वस्तकर मानव जाति की बुद्धि पर एक प्रकार का घटाटोप लगा दिया है जिससे सिवा विनाशलीला के और कुछ नहीं दिख रहा है। पर विवेकशील मानव जानता है कि विनाश में विकास का बीज निहित है। इन विस्फोटकों के विनाश-कारी रूप के कुछ प्रत्यक्ष उदाहरण देखकर मानव जाति का दिल दहल उठा है। उसका हृदय काँप चुका है और अब वह इन विनाशकों में से विकासक शक्ति का स्रोत प्रवाहित करने के लिये कदम बढ़ा रही है। बड़े-बड़े अन्ताराष्ट्रीय संमेलन और संस्थायें जन्म ले रही हैं। और विनाशकों की अपार शक्ति को विकास और निर्माण के रूप में परिवर्तितकरने की प्रक्रियाओं को खोजने के कार्य में शीघ्रता करने की दिशा अपना रहे हैं। आइये, इसी दिशा में चलकर हम लोग परमाणु-राज की सेवा में चलें और उनकी शक्ति के रूप का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

[२]

"आइये, आइये, आप सबका स्वागत है।" कहते हुए परमाणु राज ने हमारा अभिनंदन किया और हमारे आने का उद्देश्य पूछा।

"हम लोगों ने गीता में पढ़ा था कि जब कृष्ण अपनी अपार लीला अर्जुन को सुनाने लगे, तो उसे सहसा विश्वास न हुआ और अपनी शंका प्रकट की तब कृष्ण ने उसका समाधान करने के लिये प्रत्यक्ष ही अपना अनंतरूप, अर्जुन को दिव्यचक्षु का वरदान देकर प्रकटित कर दिया था। परन्तु वे कृष्ण तो हमारे आध्यात्मिक जगत् के अधिष्ठाता थे, और वर्तमान में आप भौतिक जगत के कृष्ण हैं। आपने बिना सुनाये और दिव्यवरदान दिये ही अपनी लीला हमें हिरोशिमा और नागासाकी में दिखाई है। इससे क्या आपने हमारा संहार करने की ही सोच ली है? हम आज आपकी सेवा में इसलिए उपस्थित हुए हैं कि आप हमें अभयदान दें, और अपने विनाश के ही रूप को कल्याणकारी दिशा में परिणत कर हमारे भौतिक जीवन को सुखी बनावें।"

तो क्या आपने यह समझ रखा है कि मेरा काम हाहाकर उत्पन्न करना है? मैं तो केवल मानव के ज्ञान की अपूर्णता का डंका पीट रहा हूँ। एक समय था, उसने मुझे एक ऐसा किला मान लिया था, जिसका न तो खंडन ही हो सकता था और न भेदन ही। समय बदला, श्री कॉकक्राफ्ट और वाल्टन, श्री रॉबर्ट क्रुक्स, श्री जे० जे० टामसन, श्री लार्ड रदरफोर्ड आदि ने अपने प्रयोगों द्वारा बताया कि मेरा भेदन भी हो सकता है। मेरा दुर्ग इलेक्ट्रान प्रोटान ईंटों से बना हुआ है और कुछ समय बाद ही श्री चेडविक और श्री सोडी ने संसार को बताया कि

मेरे दुर्ग में कई प्रकार की अन्य ईंटें भी हैं, जिनके अपने अलग अलग काम भी हैं। वे ईंटें विभिन्न रीति से जुड़ी हुई हैं और उन्हें एक दूसरे से विभिन्न करने के लिये मानव को बहुत शक्ति खर्च करनी पड़ती है। लेकिन मेरी ईंटें भी बड़ी शक्ति संजोये हुए हैं, वे विलग होते-होते भी इतनी शक्ति उत्पन्न करती हैं, जो उन्हें विलग करने के लिए लगी शक्ति से हजारों गुनी अधिक होती है। मेरी ये ईंटें जिस प्राकृतिक अनंत और गुप्त शक्ति से परस्पर में मिलीं हुई हैं, उसका पूरा पता तो मानव ने अब तक भी नहीं लगा पाया है। हाँ श्री नीलबोर आदि लोगों ने इतना अवश्य मालूम कर लिया है कि मेरा दुर्ग सौरमंडल के समान है, जहाँ की बाहरी दीवार पर वृत्ताकार-पथ में चक्कर लगाते हुए इलेक्ट्रान-सैनिक अपनी तेज संगीनें लिए हुए प्रोटान आदि की रक्षा कर रहे हैं। पहले तो मेरे इन इलेक्ट्रानों से ही लोहा लेना पड़ता है, तब कहीं मेरा अंतरंग कोई देख सकेगा।

"हाँ, तो मैं अपने अंदर एक पूरा सैन्यमंडल संजोये हुए हूँ। मेरे इस मंडल में वैज्ञानिकों ने जब तक २१ जाति के सैनिकों का पता लगा पाया है। उसके प्रत्येक मौलिक प्रयोग में एक नयी जाति का सैनिक मिलता जा रहा है। मानव परेशान है कि मैं इतना तो छोटा हूँ कि मेरा विस्तार एक सेन्टीमीटर का नीलवां हिस्सा है, और भार तो और भी कम [१०-२८ ग्राम] है और उसमें भी अगणित रहस्य छिपाये हुए हूँ। रहस्य ही होता तो कोई बात नहीं, अन्दर उतनी ही शक्ति है, जितनी ब्रह्म की सम्पूर्ण माया शक्ति। ब्रह्म की सारी माया का आधार मैं ही तो हूँ। नित नये संयोग-वियोगों द्वारा अपने रूप बदलकर मानव के समक्ष प्रस्तुत होता रहता हूँ। जहाँ बनता है, उसकी सेवा करता हूँ और जहाँ मानव मेरा हृदय तोड़ता है, वहाँ उसे अपना विकराल रूप दिखा कर भौंचक्का कर देता हूँ।

"तो, मैं अपने अगणित विभिन्न जातियों के सैनिकों का समूह हूँ और इलेक्ट्रन मेरे बाहरी रक्षक हैं। मानव ने मेरे रक्षकों को मुझसे दूर करने की बहुत चेष्टा की और अन्त में वह सफल भी हो गया। फिर क्या था ? आपके देश पर कोई आक्रमण करे, तो आप क्या करेंगे ? जो आप इस स्थिति में करते, वही मैंने किया। मैंने अपना शक्तिशाली रूप दिखाकर अपने एक एक सैनिक छोड़े और मानव को चकित कर दिया। आश्चर्यकारी किरणें छोड़ीं, मानव उनके प्रहार से मुझसे दूर जा खड़ा हुआ।

"मानव भी मेरे इन सैनिकों और प्रखर किरणों से चकित तो अवश्य हुआ, पर भयभीत नहीं हुआ, क्योंकि इनका भान तो उन प्रकृति में होने वाले विकिरण-धर्मी परिवर्तनों के समझने के कारण पहले ही हो गया था। विकिरण-धर्मिता और एक्स-किरणों की खोज ने मानव को मेरा अंतः रूप जानने में बड़ी मदद की है। मनुष्य प्रारम्भ से ही पारस-पत्थर की खोज में रहा है, जो छोटी धातुओं को सोने में बदल दे। पर उसे प्रकृति में निरंतर घटित होने वाली धातुओं के बदलने की क्रिया का ज्ञान न होने से अब तक इसमें सफलता नहीं मिली थी। प्रकृति में यूरेनियम अन्ततोगत्वा सीसे में बदल जाता है। वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में लिथियम को हीलियम में बदलने का प्रयत्न किया और तत्वान्तरण की प्रक्रिया खोज निकाली। इसी प्रक्रिया में उसे पता चला कि इसे घटित करने में पर्याप्त ताप उत्पन्न होता है और मेरे बहुत से सैनिकों-जिनमें इलेक्ट्रान, प्रोटान तथा न्यूट्रान प्रमुख हैं - द्वारा तीव्र और वेगवान् आक्रमण कराया जाता है। मानव ने अभी तक समझ रखा था कि मैं एक ही प्रकार का हूँ, सदा स्थायी, परन्तु विकिरणक्रिया से उसकी यह मान्यता समाप्त हो गई है। अब उसने समझा है कि मेरी कम से कम दो जातियाँ हैं स्थायी और अस्थायी। अस्थायी जातियों का भार अधिक होता है और वे विकिरणधर्मी होती हैं। अब तो प्रत्येक तत्व को विभिन्न विधियों द्वारा विकिरणधर्मी बनाया जा सकता है।

"मेरे नाम-रूपों के विषय में मानव की प्रायः सभी प्राचीन मान्यतायें बदल चुकी हैं और उससे मानव पर्याप्त लाभान्वित भी हुआ है। परन्तु मुझे शक्ति-स्रोत मानकर मुझसे शक्ति प्राप्त करने की कला को प्रयोगात्मक रूप देने में एक नवीन मान्यता की ओर तुम्हारा ध्यान और आकर्षित करना चाहता हूँ। बीसवीं सदी के पूर्व शक्ति और भार दो अलग वस्तुयें मानी जाती रहीं हैं। शक्ति और भार का कुछ संबंध तो माना ही जाता था, पर

वे परस्पर परिवर्तनीय नहीं माने जाते थे। इतने पर भी दोनों को अविनाशी कहा जाता था। परन्तु प्रयोगों और सैद्धान्तिक निरूपणों के आधार पर श्री अलबर्ट आइंस्टाइन ने इस विचारधारा को गलत बनाया और इनकी परस्पर परिवर्तनीयता सिद्धकर अविनाशिता का सही अर्थ बताया। उन्होंने अपने इस मंतव्य को $E = mc^2$ समीकरण द्वारा गणितीय रूप दिया और उस समय बहुत सी न समझ में आने वाली बातों की सही व्याख्या प्रस्तुत की। शक्ति-भार की इस अदला-बदली की बात ने विकिरणधर्मिल में होनेवाले तत्वान्तरण और भार की कमी की व्याख्या की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और तब समझ में आया कि प्रक्रिया के समय धीरे-धीरे प्रभूत शक्ति के विसर्जन होते रहने के कारण ही भार में कमी होती है। प्राकृतिक परिवर्तनों का वेग, लोहे पर जंग लगने की क्रिया के समान बहुत ही कम होता है, वर्षों चलता है। यही कारण है कि धीरे-धीरे निकलने वाली शक्ति का न तो पता ही चलता है और न उसका कोई लाभ ही हो पाता है। फलतः बुद्धि प्रयोग और जिज्ञासु मानव ने उपर्युक्त प्रक्रिया को प्रयोगशाला में करने और उसे नियंत्रित कर उससे प्राप्त होने वाली शक्ति की गणना प्रारंभ की। अपने प्रयोगों में मानव ने देखा कि मेरे प्रखर सैनिक ही बाहरी शक्ति पाकर तीव्र आक्रामक बन जाते हैं, और मुझ पर ही आक्रमण कर मेरे पिंड में दो प्रकार के परिवर्तन कर देते हैं जिसमें उपर्युक्त सिद्धांत के अनुरूप असीम शक्ति उत्पन्न होती है। कभी-कभी मेरे अस्थायी रूप अधिक स्थायी रूपों में बदल कर शक्ति विमोचित करते हैं, जैसे मेरे परमाणु-बम नामक रूप को ही ले लीजिये जिसमें यू^{२३८}पर न्यूट्रान-सैनिकों की बौछारें उसे नेपच्यूनियम व प्लूटोनियम में बदल कर अन्त में सीसे आदि में बदल देती है, जिनका भार २३८ के बदले २०७ के आस-पास हो जाता है। इस प्रकार भारी भार वाले मेरे अस्थाई रूप कम भार वाले स्थायी रूपों में बदल जाते हैं और शक्ति दान करते हैं। दूसरी ओर सूर्य में घटित होने वाली प्रक्रिया है, जहाँ हाइड्रोजन सरीखा छोटा तत्व हीलियम नामक चौगुने भार वाले तत्व में निरंतर परिवर्तित होकर अपार शक्ति का उद्गिरण करता है यह प्रक्रिया मेरे बम-वाली क्रिया से बिल्कुल उलटी है पर इसमें अधिक शक्ति-विसर्जन होता है। हाइड्रोजन बम इसीलिये तो अधिक शक्तिदायी और विनाशक होगा, क्योंकि वर्तमान में अपने बम में केवल ·०८ प्रतिशत भार शक्ति में बदलता है, जब कि हाइड्रोजन बम में इससे चौगुना भार (.२३ प्रतिशत) शक्ति में परिवर्तित होकर कई गुनी अधिक शक्ति प्रदान करेगा। इस प्रकार मेरे ही अन्तः सैनिक मुझे ही अपनी प्रखर व वेगवान् बौछारों द्वारा विभाजित करते हैं नये तत्वों में, कभी पहले से भारी और कभी पहले से हलके.........।

"मेरे विभंजन की इस प्रक्रिया का ज्ञान सर्वप्रथम जर्मनी में श्री हान व श्री स्ट्रासमेन ने किया था। श्री रानरिको फर्मी भी इस काम को समझते थे और कुशल थे। श्री फर्मी ने ही यह बात श्री आइंस्टाइन को बताई और उन्होंने अपने उक्त समीकरण के आधार पर इस प्रक्रिया की अपार शक्ति-दानक्षमता और प्रयोगिक संभावनीयता की गणना कर इस नवीन शक्ति स्रोत की ओर तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति को संकेत किया। यही संकेत मेरे विनाशक रूप का प्रमुख कारण बना। यह बात सन् १९४२ की है।

इस प्रक्रिया में एक बात महत्वपूर्ण है—वह यह कि जैसे अंगीठी में कोयले की एक चिनगारी समस्त कोयले में आग देती है, उसी प्रकार एक कण के विभंजन की क्रिया समस्त कणों में विभंजन प्रारंभ कर देती है। एक कण से कण-कण में प्रस्फुटित होनेवाली क्रिया श्रृंखला-बद्ध प्रक्रिया कहलाती है। वृत्ताकार पथ में घूमती हुई वृत्ताकार मोमबत्तियों के लौ का समय तो हम अनुभव कर सकते हैं, पर मेरे विभंजन की श्रृंखला के प्रारंभ होने में समय का हम अनुमान नहीं लगा सकते हैं।

इस प्रकार आज वैज्ञानिक मानव अपनी जिज्ञासावृत्ति को शांत करने के लिये अपने ही मंतव्यों को खंडित कर नये तथ्यों की स्थापना करता जा रहा है एवं अज्ञान-समुद्र में से ज्ञान की छोटी तख्ती द्वारा पार उतरने का प्रयास कर रहा है। आज स्पष्ट ही वह मुझे अपने

नियंत्रण में रखकर शक्ति प्राप्त करना चाहता है, पर मेरे सैनिक इतने छोटे कि प्रयत्न करने पर भी समुचित रूप से उसकी पकड़ में नहीं आते। प्रोटान, न्यूट्रान आदि की सहायता से मानव ने तत्वान्तरण की विधि पा ही ली है—जो सदियों से कीमियागरों के लिये स्वप्न था, वह आज सबके लिये एक मनोरंजक प्रयोग और कला हो गई है। उन ही सैनिकों ने मेरे अंतःदुर्ग के विभंजन की क्रिया प्रारंभ की है, और इस प्रक्रिया में नये सैनिकों ने मेरे दुर्ग की रक्षा में अपना अस्तित्व प्रकट किया है जिनमें पोजिट्रान और विभिन्न प्रकार के मीसॉन प्रमुख हैं। विश्वकिरणों ने मेरे इन नये सैनिकों के बारे में जानकारी देने में बहुत सहायता पहुँचाई है। उपर्युक्त तत्वान्तरण की विधि में ही अपार शक्ति प्रस्फुटित होती है। आइये, हम आपको अपने शक्तिदायी रूप की एक झांकी दिखावें।

....

[३]

"मैंने अभी अभी आपको बताया कि वैसे मेरी अस्थायी जाति शक्ति तो सदा विमोचित करती रहती है, पर वह मानव के लिये अनुपयोगी है, क्योंकि एक साथ अधिक मात्रा में स्फुरित नहीं हो पाती है। एक साथ ही प्रभूत-शक्ति प्राप्त करने के लिये न्यूट्रानों की बौछारों से मेरे अंतःदुर्ग का विभंजन करना बहुत आवश्यक है। साधारणतः विभंजन के लिये यूरेनियम या थोरियम काम आते हैं जिनके भार क्रमशः २३८ और २३२ हैं। इन पर न्यूट्रानों की बौछार करने पर ये नये तत्वों में बदल जाते हैं और इसी प्रक्रिया में कुछ अत्यंत वेगशील न्यूट्रानों को जन्म देकर शृंखलाबद्ध प्रक्रिया प्रारंभ कर देते हैं जिससे पर्याप्त तापशक्ति, किरणें और हानिकारक प्रभाव उत्पन्न होते हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि तापशक्ति के उद्गिरण का मूल्य है शक्ति-भार की परस्पर-परिवर्तनीयता। यू-तत्व के विभंजन से जो नये तत्व बनते हैं, उनका भार यू-से ०८ प्रतिशत कम होता है और यह भार ही शक्ति का रूप ग्रहण कर विकास या विनाश करता है। तात्पर्य यह है कि यदि आप मुझसे अमोघ शक्ति पाना चाहते हैं तो मुझ पर वेगशील न्यूट्रानों की बौछार मारिये और मेरे अन्तःदुर्ग में शृंखलाबद्ध प्रक्रिया प्रारंभ करा दीजिये, इस लिये यू-सदृश तत्वों के शुद्ध रूपों की महती आवश्यकता है। इन तत्वों के बिना तो मैं आपको शक्ति दे ही नहीं सकता।

वर्तमान में यूरेनियम धातु के खनिज प्रकृति में पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। अमेरिका, कनाडा, रूस आदि देश इस दृष्टि से सौभाग्यशाली हैं। आजकल तो सभी देशों में इसके खनिजों की खोज जोरों से की जा रही है और आये दिन इसके नये स्रोतों का पता चलता जा रहा है। इसका मुख्य खनिज कार्नोटाइट कहलाता है। भारत देश में थोरियम का खनिज बहुतायत से पाया जाता है जिसका नाम मोनेजाइट है। विभिन्न भौतिक और रासायनिक विधियों से शुद्ध यू-या थो-प्राप्त किया जा सकता है। यू-का खनिज पीला-सा होता है। उसे पीस कर नमक के साथ गलाते हैं, और गलित पदार्थ को विभिन्न तीव्र अम्लों में बार-बार घोलकर और गरम कर सुखाते हैं जिससे खनिज काला पड़ जाता है। एक टन खनिज से लगभग दो पौंड काली वस्तु मिलती है, इसे पुनः अम्लों में बार-बार घोलते और गरम करते हैं, जिससे वह हरी हो जाती है। इस हरे तत्व को फ्लोरिन नामक क्षयकारी तत्व से प्रतिकृतकर पुनः कार्बन से अपचित कर भूरे-पीले रंग की सामान्य यूरेनियम धातु प्राप्त की जाती है जिसका भार २३८ होता है। पर यह शक्तिदायी नहीं है। इस धातु के मूल में मेरी दो जातियाँ पाई जाती हैं, कुछ का भार २३५ होता है और कुछ का २३८। लगभग १४० भाग सामान्य धातु में १ भाग २३५ वाली जाति होती है। और यही शक्ति-स्रोत है। इसे प्राप्त करने के लिये यू २३८ को फ्लोरिन के साथ प्रतिकृत कर प्रसरण-वेग के आधार पर प्रसरण-उपकरणों द्वारा पतली से पतली चलनियों में, जिनके छिद्रों का व्यास एक इञ्च के बीस लाखवें $१०^{-६}$ हिस्से के बराबर होता है, प्रवाहित करते हैं। $यू_{२३५}$ हल्का होने से पांच हजार चलनियों में से पार होकर आगे आ जाता है और $यू_{२३८}$ पीछे रह जाता है। यही $यू_{२३५}$ काम में लिया जाता है।

लेकिन $यू_{२३५}$ के काम में लेने का अर्थ है केवल $\frac{१}{१०}$ % यूरेनियम का उपयोग करना। किसी भी दृष्टि से इसे उचित नहीं कहा जा सकता। अतः $यू_{२३८}$ पर न्यूट्रान

की बौछार डालकर उसे प्लूटोनियम में तत्वान्तरित कर शक्तिदायी रूप में परिणत कर लेते हैं। इस प्रकार यू२३८ से यू२३५ या प्लूटोनियम के माध्यम से श्रृंखलाबद्ध प्रक्रिया प्रारम्भ कर अपार शक्तिपुंज प्राप्त किया जा सकता है। शक्तिविकिरण की प्राकृतिक क्रिया को न्यूट्रानों की तीव्र बौछारों से शीघ्रगामी और श्रृंखलाबद्ध किया जा रहा है।

अभी तक थोरियम को शुद्ध रूप में प्राप्त करने में कठिनाई प्रतीत हो रही थी, पर उसमें पर्याप्त सफलता प्राप्त हो चुकी है। थोरियम पर न्यूट्रानों की तीव्र बौछार से इसका कुछ भाग विभंजनीय यूरेनियम में बदल जाता है जिसे थोरियम से विभिन्न पालिकों द्वारा पृथक् किया जा सकता है और शक्ति-स्रोत बनाया जा सकता है।

साधारणतः न्यूट्रान प्रोटान एवं इलेक्ट्रान के गलने से बनता है। ये न्यूट्रान मेरे अंतः दुर्ग के जासूसी सैनिक हैं। इनकी गतिविधि पहिचानना बड़ा कठिन है। विद्युत प्रवाह और चुंबक शक्ति इनका मार्ग नहीं बता सकते। प्रोटान प्राप्त करना तो बड़ा सरल है। हाइड्रोजन-परमाणुओं को कुछ तप्तधातुओं की सतह पर प्रवाहित करने पर उनके इलेक्ट्रान धातु सतहों द्वारा शोषित हो जाते हैं एवं प्रोटान मुक्त रूप में मिल जाते हैं। इन प्रोटोनों पर या गैसीय परमाणुओं पर तीव्र वेगवान हीलियम या अल्फा-कणों की बौछार करने पर न्यूट्रान प्राप्त होते हैं। इस प्रकार प्राप्त न्यूट्रानों की तेज बौछार यू२३८ या थो२३२ में अन्य परिवर्तनों के साथ कुछ तेज और नये न्यूट्रानों को भी जन्म देती है, जिनसे तत्वांतरण एवं ताप-उग्दिरण की श्रृंखलाबद्ध प्रक्रिया आगे चलती है। साधारणतः एक एक न्यूट्रान की बौछार २-३ नये न्यूट्रानों को जन्म देती है, जो मेरे अंतः दुर्ग में से रक्षक के रूप में निकलते हैं।

अतः मुझसे शक्तिपुंज प्राप्त करने के लिए आपके पास (१) शुद्ध अस्थायी धातुयें एवं (२) शुद्धन्यूट्रानों को वेगवान बनाकर बौछार कराने वाले यंत्र होना चाहिये। श्रृंखलाबद्ध प्रक्रिया भी न्यूट्रानों की पारस्परिक बौछारों से उत्पन्न होती हैं और न्यूट्रान अपने विशेष प्रकार के शून्यावेश के कारण ५ इंच मोटे धातु-तल में प्रवेश करने के बाद ही बौछार प्रारम्भ करते हैं व नये न्यूट्रानों को जन्म देते हैं। अतः श्रृंखलाबद्ध प्रक्रिया के लिये पाँच इंच से कुछ अधिक मोटा यू२३८ का टुकड़ा होना आवश्यक है। फिर उसमें एक बार प्रक्रिया प्रारंभ हुई कि जब तक समाप्त न होगी जब तक पूरा यू-तत्वान्तरित न हो। यह क्रिया अत्यंत शीघ्रगामी होती हैं और इसमें भयानक विस्फोट, ताप व अगणित किरणें उत्पन्न होती हैं।

साधारणतः मेरे विनाशकारी रूप की आकृति गुप्त रखी जा रही है। पर उसका अनुमान न्यूट्रानों की सक्रियता के पथ के आधार पर लगाया जा सकता है। पाँच इंच से कुछ अधिक मोटे यूरेनियम के दो गोले यदि सटा कर रखे जावें, तो विस्फोट तुरंत हो जावेगा, क्योंकि दोनों ओर से निकलने वाले न्यूट्रान अपने बौछार क्षेत्र में बौछारें मारकर श्रृंखलाबद्ध प्रक्रिया उत्पन्न कर देंगे। अतः इन गोलों को कम से कम एक फुट दूर रखना चाहिए। इनके न्यूट्रानों को परस्पर संयुक्त होने देने एवं बौछार मारने योग्य बनने के लिये इन गोलों के चारों ओर कोई विस्फोटक पदार्थ रखना चाहिये, जिससे विस्फोटकी में विस्फोट होते ही उससे शक्ति पाकर न्यूट्रान अपनी बौछारें मार सकें और श्रृंखलाबद्ध प्रक्रिया प्रारम्भ कर शक्ति का तामस रूप प्रकट कर सकें। अनुमानतः मेरे एक विनाशकारी रूप के लिये ४½ मन यू २३८की आवश्यकता होगी। मेरे शक्तिदायी रूप की आकृति मनुष्य के बराबर लम्बी हो सकती है, पर वह इतनी वजनदार न होनी चाहिये कि मानव उसे उठा ही न सके।

इस प्रकार के विभंजनीय पदार्थ के एक पौंड भार के विभंजन से १० लाख किलोवाट बिजली पैदा हो सकती हैं और १२०० टन कोयले के बराबर ताप शक्ति मिल सकती है। विनाशक शक्ति के रूप में १ पौंड विभंजनीय पदार्थ १०-२० हजार टन टी० एन० टी० विस्फोटक के बराबर होता है।

[४]

वर्तमान में मेरा यह रूप यू से ही बनाया जाता है। थो-के विषय में अभी प्रयोग किये जा रहे हैं। जिस समय यू को यू२३५ या प्लूटोनियम में परिवर्तित करते हैं, उस समय भीषण ताप और भयंकर हानिकारक तीव्र किरणें निकलती हैं। इस ताप का अन्तःतापक्रम सूर्यपिंड के

बराबर कहा जाता है। अतः इस प्रक्रिया में ताप के सदुपयोग एवं किरणों से कर्मचारियों की सुरक्षा के प्रबंध की ओर ध्यान अवश्य होना चाहिये। इस ताप के सदुपयोग द्वारा ही विद्युत् उत्पादित की जा सकती है। यह तत्वांतरणकारी शक्तिदायी उपकरण तीव्र किरणशोषक धातु का बनाया जाता है जिसके ऊपर कंक्रीट की मोटी सतह भी बिछा दी जाती है जिससे किरणें उस तह में से पार न हो सकें। ताप को शोषित करने के लिए उपकरण में शीतल जल को प्रवाहित करने का भी प्रबन्ध किया जाता है। इस ताप-शोषण से जल भाप में परिणत हो तो जाती है जिसे एकत्रित कर टरबाइन और डायनमो चला कर विद्युत उत्पादित की जा सकती है। आपको ज्ञान होगा कि पिछले दिनों जेनेवा में एक सम्मेलन हुआ था जिसमें मेरे द्वारा उद्भूत ताप शक्ति से विद्युत् उत्पन्न करने के साधन और आंकड़ों के सम्बन्ध में विश्लेषण किया गया था जिसके निष्कर्ष में इस प्रक्रिया के वर्तमान में मँहगी होने की बात कही गई। इसे उपयोगी बनाने के लिये आर्थिक दृष्टि से परिवर्तन और परिवर्धन करने की इस प्रक्रिया में नितान्त आवश्यकता है। श्रृंखलाबद्ध प्रक्रिया जन्य ताप तो इतना अधिक होता है कि उसके सूर्यपिंड-सम ताप से वर्तमान में छोटे तत्वों को बड़े तत्वों में तत्वांतरित किया जाता है। सूर्य के भीषण ताप में हाइड्रोजन हीलियम में परिवर्तित होकर सारे संसार को उसके निवासी जल-थल,-नभोगामियों, पौधों और वनस्पतियों को जीवन दान देता है। इस नवीन प्रक्रिया के ज्ञान और उसके लिये आवश्यक ताप प्राप्त होने से हाइड्रोजन बमों की निर्माण क्रिया और प्रयोग प्रारम्भ हो गये हैं; इन प्रयोगों का विकराल रूप तो आये दिन समाचार-पत्रों में प्रकाशित होता ही रहता है जिससे आप भली भाँति परिचित होंगे।

मेरा यह बल-वाला रूप केवल विनाशक ही नहीं है। यह अगणित निर्मायक शक्तियों का जन्मदाता है। प्रलय में से ही तो नवीन सृष्टि होती है। मेरे प्रलय-कारी रूप ने आपको और भी अधिक सावधान होने और नयी पद्धति अपनाने के लिये विवश किया है और मानव की एकता की भावना की सरकार बनाने में एक बड़ा कदम उठाया है। अभी तक तापशक्ति व्यक्तिगत उत्पादन और उपयोग की वस्तु रही है, अब मेरे द्वारा उक्त प्रकार से मिलने वाली असीम तापशक्ति सार्वजनिक उत्पादन के रूप में आपको सुलभ हो सकेगी। मैं अपने विनाशक रूप में अनियंत्रित तापशक्ति का उद्गिरण करता हूँ। भारतवर्ष में शिवजी को 'बम-भोला कहा जाता है। त्रिमूर्तियों में शिव संहारक देव माने जाते हैं। शायद मेरी प्राथमिक संहार क्रिया देख कर ही मानव ने मुझे यह प्राचीन देवता का नाम दे दिया हो पर मानव में इतनी सामर्थ्य भी विद्यमान है कि वह इस शक्ति को नियंत्रित कर कल्याणकारी कार्यों में उपयोग कर सके।

[५]

तत्वांतरण की क्रिया में ताप तो उद्भूत होता ही है। नये तत्व व विभिन्न प्रकार की किरणें और कण भी बनते बिगड़ते हैं। ये किरणें सामान्य रूप से हानिकारक होती हैं, पर इन्होंने मानव के ज्ञान को बढ़ाने में बड़ी सहायता पहुँचाई है। इन किरणों का सबसे बड़ा प्रभाव तो यह है कि ये किरणें जिन वस्तुओं पर भी पड़ती है उन्हें विकिरणधर्मी बना देती हैं। इसीलिये तत्वान्तरण क्रिया में उपकरण में विद्यमान सभी पदार्थ और तत्व विकिरणधर्मी हो जाते हैं। एक समय था जब इन पदार्थों का कोई उपयोग नहीं था लेकिन आजकल इनकी सहायता से मानव अपने सुरक्षित आहार, औषध और स्वास्थ्य तथा दीर्घायु की प्रक्रिया की ओर अग्रसर हो रहा है। ये विकिरणधर्मी तत्व 'सम-स्थानिक' कहलाते हैं। इनका ज्ञान तो यद्यपि विकिरणधर्मिता के परिज्ञान के साथ ही होने लगा था, पर इनके उपयोगों की विधि नयी है। मेरे विभंजन की क्रिया में लगभग ३० समस्थानिक तत्व बनते हैं जिनमें अधिकांश उपयोगी होते हैं। आयोडीन-फास्फोरस, कारबन आदि के विकिरणधर्मी समस्थानिक वनस्पति-जगत् में होने वाले परिवर्तनों का ज्ञान करने में मानव को बड़े सहायक हुए हैं।

विकिरणधर्मी तत्वों से तत्वान्तरण की क्रिया बड़ी साधारण सी लगती है। एक सीस-बंध में विकिरणधर्मी बेरिलियम एन्टीमनी रखने पर न्यूट्रान उत्पन्न होते हैं जो बंधक में ही रखे हुए रजत को विकिरणधर्मी रजत में बदल देते हैं। चाँदी का यह रूप बड़ा ही अस्थायी है।

अतः यह केडानियम में बदलता रहता है। चाँदी के केड-नियम में परिणत होने के समान ही नाइट्रोजन से कार्बन और गंधक से फास्फोरस प्राप्त किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि विकिरणधर्मी तत्व तत्वान्तरण की पेचीदी प्रक्रिया में तो प्राप्त होते हैं, उपर्युक्त प्रकार के मनोरंजक प्रयोगों द्वारा भी प्राप्त किये जा सकते हैं।

इन विकिरणधर्मी रूपों ने औषध विज्ञान को एक्स किरणों से भी अधिक उपयोगी सेवक प्रस्तुत किया है। विकिरणधर्मी कोवल्ट कैंसर-चिकित्सा के लिये बड़ा लाभदायी सिद्ध है। ऐसे ही फास्फोरस रक्तनिर्माण की क्रिया को संतुलित बनाये रखने के लिये प्रस्तुत हो गया है। रोगों के निदान में तो ये तत्व अनिवार्य से प्रतीत होने लगे हैं। शरीर की सम्पूर्ण कार्यप्रणाली के सूक्ष्म ज्ञान के लिये इन तत्वों ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

कृषि व पशु-सेवा विज्ञान के क्षेत्र में इन विकिरणधर्मी तत्वों ने मानव की ज्ञान वृद्धि द्वारा बड़ी सेवा की है। इनकी सहायता से अब यह पता चल सकता है कि पौधे खाद को कहाँ तक और किस रूप में सोखते हैं। भूमि की उर्वर शक्ति का मापदंड क्या हो? फसल के कीड़ों को मारने वाली क्रिया किस प्रकार होती है? मिट्टी, जल और हवा से पेड़ पौधों का निर्माण कैसे होता है? पशुओं की पाचन-प्रणाली में क्या क्रियायें होती हैं? दूध कैसे बनता है? आदि विषय जो अब तक गूढ़ रहस्य के समान थे, सूचक परमाणुओं की मिलावट और पश्चात् उनकी जाँच के आधार पर अच्छी तरह सरल बन गये हैं।

औद्योगिक क्षेत्र में भी विकिरणधर्मी तत्वों ने एकरूपता और प्रगति का बीज बोया है। विकिरणकला के अंतर्गत पदार्थों, यंत्रों और अन्य अवयवों की सही स्थिति जानने में बड़ी मदद मिली है। इन तत्वों की सहायता से धातु और उनके यंत्रों की आंतरिक स्थिति का एक्सकिरणों के समान ही, चित्र लिया जा सकता है जिससे उनकी सुरक्षा वा कमजोरी को दूर करने का उचित प्रबन्ध किया जा सकता है। इन तत्वों के द्वारा कारखानों में उत्पादित वस्तुओं की एकरूपता व समगुणकता को नियंत्रित करने के साधन भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं। कागज की नियमित मोटाई बनाये रखने, पेट्रोल व तत्वसंबन्धी क्रियाओं में विभिन्न अवयवों को व उनके तत्वों को पृथक् पृथक् पहचानने में जीगर-गणक के साथ ये तत्व बड़े उपयोगी हैं। सूचक परमाणुओं की सहायता से अनुसंधान कार्य में और भी पूर्णता तथा विश्वासनीय परिणामदेयता आती जा रही है।

इस प्रकार उपर्युक्त रूप से विभिन्न क्षेत्रों में अध्ययन करने के लिये विकिरणधर्मी तत्वों ने नयी दिशा प्रदान की है। पहले यह कहा जाता था कि यह गुण केवल कुछ ही तत्वों में पाया जाता है, पर अब प्रत्येक तत्व को विकिरणधर्मी बनाया जा सकता है और उसका तत्वान्तरण भी किया जा सकता है।

विभंजन में निकलने वाली किरणें जहाँ तत्वान्तरण और विकिरणधार्मिकता को जन्म देती हैं वहाँ सड़ने-गलने वाले पदार्थों को सुरक्षित रखने में भी सहायक होती हैं। इस प्रकार खाद्य-पदार्थों को विशेषरूप से सुरक्षित रखकर देश-देशान्तरों में पहुँचाया जाता है।

मैं सोचता हूँ मैंने अपने विषय में आपसे बहुत लंबी चर्चा की है जिससे कम से कम यह तो भली भांति स्पष्ट है कि मानव को मेरे नाम और रूप से भय नहीं खाना चाहिये। मैंने अपने प्रलयकारी रूप द्वारा मानव को एक बड़ी भारी कला सिखाई है, तत्वांतरण की, जिसे सीखने में न्यूट्रान सरीखे साधनों के ज्ञान न होने के कारण पुराने समय में लोग असफल रहे थे; न तो उस समय न्यूट्रान का ज्ञान था और न न्यूट्रानों की तीव्र बौछारों को गति देने वाले यंत्र ही थे। आज साइक्लोट्रोन, बीटाट्रोन और उससे भी अधिक शक्तिशाली यंत्र हैं जो कणों को प्रकाश-गति की तीव्रता प्रदान कर सकते हैं। तत्वान्तरण की इस प्रक्रिया में प्राप्त होने वाली अमोघशक्ति और उसके सदुपयोग की कला का कार्य भी मैंने मानव को सौंपा है। कहते हैं, मानव बड़ा कलानिपुण है। मैंने उसे शक्ति का अपारपुंज सौंपा है। उसे वह कल्याणकारी बनावे या विनाशकारी? मैंने उसके जिज्ञासु मस्तिष्क को सन्तुष्ट करने वाले विकिरणधर्मी तत्व भी भेंट में दिये हैं। अब मेरे द्वारा प्रदत्त कला, शक्ति और सेवकों का उचित प्ररूपण, नियमन और नियंत्रण करना मानव का ही कर्त्तव्य है।

मुद्रक—सरयू प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज प्रयाग।

परिशिष्ट

उत्तर प्रदेश के छिद्रोजीय साधनों की संभाव्य औद्योगिक उपयोगिता

[ले० — श्री बी० विस्वास और श्री जे० बी० लाल, एच० बी० टेकनालाजिकल इंस्टिट्यूट, कानपुर]

उत्तर प्रदेश की भौतिक स्थिति तथा जलवायवीय दशाओं ने इसे वानस्पतिक रेशों और छिद्रोजीय (सेल्यूलोज वाले) कच्चे पदार्थों के विकास के लिए प्रमुखतः उपयुक्त बनाया है। यद्यपि उत्तर प्रदेश भारत में उपज का सब से बड़ा और सर्वाधिक समुन्नत राज्य है किन्तु स्थलखंड का आभ्यंतर राज्य होने के कारण कोई बंदरगाह नहीं रखता, इस कारण समुद्र तटीय उद्योगधंधा विकसित नहीं कर सकता। राज्य में खनिज कच्चे पदार्थों की बहुत न्यूनता भी उन्नति में भारी रोड़ा है। अतएव इस राज्य को अपनी उन्नति के लिए सस्ती पनबिजली और सिंचाई के लिए जल-स्रोतों के नियंत्रण की उन्नति पर निर्भर रहना पड़ेगा। राज्य को वन-सम्पत्ति पर भी अधिकाधिक निर्भर रहना चाहिए। राज्य की उन्नति के लिए वन-सम्पत्ति के विकास पर पूर्व समय में ध्यान नहीं दिया गया। इधर कुछ वर्षों से वन-सम्पत्ति का औद्योगिक महत्व अधिक स्पष्ट हो चला है। निस्संदेह वन को धन का असीम साधन समझना चाहिए और व्यवस्थित एवं नियोजित रूप में उसका पूर्णतः उपयोग करना चाहिए। यह ठीक है कि उत्तर प्रदेश के जंगल राल और तारपीन समान कुछ उद्योग धंधों की आवश्यकता पूरी कर रहे हैं जिसके लिए चीड़ की कुछ जातियाँ बहुत उपयुक्त हैं। "कत्था" उद्योग के लिए खैर, पेड़ के काठ का उपयोग होता है। कुछ काठ की किस्में "प्लाई वूड" और दियासलाई के काम भी आती हैं किन्तु जंगल के अधिकांश वृक्षों का उचित रूप से उपयोग नहीं होता। उत्तर प्रदेश का क्षेत्रफल ११३४०६ वर्ग मील है इसमें जंगल का विस्तार १३०० वर्ग मील में है। इस तरह सारे क्षेत्रफल के ८·७२ प्रतिशत में जंगल है। किसी राज्य की कृष्य भूमि और जंगल की वर्तमान धारणाओं के अनुसार जंगल रूप में अधिक फैलाव की भूमि होनी चाहिए। इसलिए यह अच्छे लक्षण हैं कि वृक्षारोपण अधिक हो रहा है। इस प्रकार १९४६ में जंगल के वृक्षारोपण वाले २४७·५ एकड़ क्षेत्र की जगह १९५५ में २०,००० एकड़ हो गया।

औसत रूप में उत्तर प्रदेश के जंगल प्रति वर्ष लगभग १,५०,००,००० घन फुट शहतीर, ५,८४,००,००० घनफुट जलाने वाली लकड़ी, ३,००,००० मन राल, ३०,००० मन कत्था और १,२५,००,००० बाँस तथा कागज और दफ्ती बनाने के काम आ सकने वाली अन्य बहुत सी जंगली घासें प्राप्त होती हैं।

राज्य के जंगलों में चौड़ी पत्तियों वाले मुख्य पेड़ों में साल, शीसम, तून, हल्दू असुआ कंजू, गूतल, और जामुन हैं। पतली पत्तियों वाले शहतीर के पेड़ों में चीड़, कैल, देवदार, फर, स्प्रूस और साइप्रस हैं। चौड़ी पत्तियों वाले पेड़ों के जंगल का क्षेत्रफल ११६०० वर्गमील है जिस से प्रतिवर्ष लगभग ८०,००,००० घनफुट साल, ५,००,००० घनफुट असना, १,५०,००० घनफुट शीसम, ३,००,००० घनफुट सेमल और ५,००,००० घनफुट अन्य शहतीर मिलते हैं। बारीक पत्तियों वाले पेड़ों के जंगल का क्षेत्रफल १७५६ वर्ग मील है जिससे प्रतिवर्ष लगभग ५५,००,००० घनफुट चीड़, ४,००,००० घनफुट देवदार और ८,००,००० घनफुट अन्य पेड़ों फर, स्प्रूस, साइप्रस, कैल आदि से मिलता है।

उत्तर प्रदेश में विभिन्न जलवायवीय दशायें होने, उत्तर में शीत और शीतोष्ण पार्वत्य क्षेत्रों से लेकर पूर्व में उष्ण और आर्द्र क्षेत्रों से लेकर पश्चिम के अपेक्षाकृत शुष्क क्षेत्रों तक के होने से केवल समुद्रतटीय भूमि के पेड़ पौधों को छोड़कर प्रायः सब तरह के पेड़ पौधे यहाँ पाये जाते हैं या सहज ही उत्पन्न किए जा सकते हैं। उत्तर प्रदेश के जंगल इतने विभिन्न जलवायवीय क्षेत्रों में फैले हुए हैं कि उसमें विभिन्न वनस्पति अल्पस् समान पर्वतीय क्षेत्रों से लेकर मरुक्षेत्र तक में उत्पन्न होने वाले पाए जाते हैं।

जंगल के पेड़-पौधों के अतिरिक्त इस राज्य के छिद्रोजीय पदार्थों के साधन विशाल और विभिन्न रूपीय हैं। इनमें कपास, पटसन (जूट) और अन्य लंबे रेशों की गिनती है। छिद्रोजीय पदार्थों पर निर्भर रहने वाले उद्योग धंधे निम्न है :—

(क) वस्त्र उद्योग जैसे सूती वस्त्र, पटसन (जूट), रस्सियाँ, वटे धागे आदि।

(ख) कागज और दफ्ती (बोर्ड)

(ग) रेअन (नकली रेशम)

(घ) प्लाई वूड

वस्त्र व्यवसाय ऐसे पदार्थों का उपयोग करता है जो बुने जा सके हैं उसमें ऊन और रेशम जान्तव रेशे तथा कपास और जूट वनस्पति जन्य रेशे सम्मिलित हैं किन्तु हम इस बात का अनुभव नहीं करते कि ऐसे अनेक वनस्पति-जन्य रेशे हैं जिनमें विशद औद्योगिक सम्भावनाएँ हैं। निस्संदेह ही सभी वनस्पति-जन्य रेशों में कपास और सन ही ऐसे दो रेशे हैं जिनको उचित प्रचार प्राप्त हुआ है तथा अन्य वनस्पति-जन्य रेशे प्रायः उपेक्षित ही रहे हैं। वनस्पतिजन्य रेशे में हमारी रुचि समय समय पर जाग्रत और सुप्त होती रहती है। फलतः युद्ध काल की आकस्मिक स्थिति में सभी वनस्पति-जन्य रेशों का उपयोग प्रत्येक प्रकार के कार्य में होने लग जाता है, उपयुक्तता का ध्यान छोड़कर भी इन रेशों को काम में लाया जाता है किन्तु साधारण अवस्था आते ही इनमें हमारी रुचि ठंडी पड़ जाती है और कभी-कभी बिल्कुल समाप्त ही हो जाती है। युद्ध और शान्ति काल में वनस्पति-जन्य रेशों का महत्व पूरी और ठीक तरह स्वीकृत किया जाता नहीं प्रतीत होता और इस बात का तनिक भी अनुभव नहीं किया जाता कि यह ग्राम अर्थनीति के निर्धारण तथा अगणित देशवासियों विशेषतया ग्रामवासियों के लिए पूर्ण या अर्द्ध सामयिक जीविका का साधन उस अवधि के लिए बन सकता है जब वे बेकार पड़े रहने के लिए विवश होते हैं।

उत्तर प्रदेश की सनई—यद्यपि उत्तर प्रदेश में पटसन के कृषि-क्षेत्र का फैलाव दृढ़ता से बढ़ता जा रहा है और हमारा प्रदेश जहाँ पहले जूट उत्पादन का एक गौण क्षेत्र था वहाँ अब उसके उत्पादन का प्रमुख क्षेत्र बनता जा रहा है, तथापि तथ्य यह है कि यह भारत में सर्वाधिक सनई उत्पन्न करने वाला राज्य ही है। यहाँ भारत भर में सनई के कुल उत्पादन का २५ से ३० प्रतिशत-तक उत्पन्न किया जाता है। निर्यात जूट व्यापार में सनई का स्थान केवल जूट के बाद ही द्वितीय है और सनई को उत्तर प्रदेश में उतने ही आर्थिक महत्व का समझना चाहिए जितना पश्चिमी बंगाल में पटसन (जूट) को माना जाता है, केवल यह अंतर है कि जूट जहाँ कच्चे माल और तैयार माल दोनों रूपों में निर्यात किया जाता है, वहाँ सनई केवल कच्चे माल रूप में बाहर जाती है।

यह दुर्भाग्य की ही बात है कि जहाँ आयात करने वाले देश ४५ प्रतिशत सनई कागज के लिए और ५० प्रतिशत रस्सी के लिए उपयोग में लाते हैं, वहाँ हमारे राज्य में इन धंधों के विकास के लिए कुछ भी नहीं किया गया है। हम लोग केवल उसका निर्यात कर ही संतोष करते हैं (जो सम्पूर्ण उत्पादन का लगभग ७० प्रतिशत होता है।) राज्य में रस्सी कातने का एक भी बड़ा कारखाना नहीं, यद्यपि ऐसी कोई बाधा नहीं है जिससे सनई के रेशे या अन्य रेशों को राज्य के अंतर्गत ही कातने वाला कोई कारखाना न खोला जा सके। सनई का रेशा अकेले ही या अन्य रेशों के साथ मिला कर (जिससे व्यय कम पड़े) उच्चकोटि के कागज के लिए बहुत अच्छा कच्चा माल हो सकता है। बनारस के निकट सनई के रेशे को पुराने जूट की रस्सी के टुकड़ों के साथ मिलाकर उच्चकोटि का लिखने वाला कागज का कारखाना सनई के रेशे और पुराने जूट की रस्सी के टुकड़ों से सिगरेट के

लिए कागज तैयार करने में लगा है। वह केवल भारत के सिगरेट बनानेवाले कारखानों की आवश्यकता पूर्ति ही नहीं कर रहा है बल्कि अन्य देशों के कारखानों के लिए भी कर रहा है, यद्यपि यह कारखाना अभी अपनी पूर्ण उत्पादन क्षमता का उपयोग नहीं कर रहा है। इसलिए सिगरेट का कागज बनानेवाला दूसरा कारखाना खोला जाना उचित नहीं हो सकता, जिससे देश के अंदर ही होड़ हो और आवश्यकता से बहुत अधिक उत्पादन होने लगे। फिर भी रस्सी और कागज (सिगरेट को छोड़ कर अन्य कार्यों के लिए) सनई के रेशे का उपयोग करने के औचित्य और सम्भावना पर अवश्य ही उचित विचार करना चाहिए।

यह एक कौतूहल की बात है कि साधारण अवस्था में सनई के रेशे का मूल्य जूट से अधिक होता है। उदाहरण के लिए इस समय बनारस की सनई का मूल्य ३०) मन है। किन्तु जूट का बाजार भाव २५) मन ही है। सनई को व्यापारिक शब्दावली में "नर्म जूट" कहा जाता है और ठीक ढंग से तैयार किया हुआ रेशा योरोपीय जूट के बहुतेरे नमूनों से अच्छा ठहराया जा सकता है। यह विश्वास कि योरोपीय जूट की अपेक्षा सनई का बना रस्सा समुद्र के पानी में जल्दी सड़ जा सकता है, ब्रिटिश समुद्री सेना परिषद द्वारा सचालित प्रयोगों द्वारा सर्वथा मिथ्या प्रकट हो चुका है और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि समुद्री पानी में दोनों में सड़ान से बचे रहने की एक सी क्षमता ही होती है।

सनई दाल वर्ग की फसलों में है। रबी की कई फसलों के स्थान पर फसलों के हेर फेर रूप में यह बोया जाता है। यह खेत की मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाने वाला भी है और दालवर्ग का होने के कारण मिट्टी में नाइट्रोजन भी जुटा सकता है।

यह उल्लेखनीय बात है कि बनारस सनई के पुराने रस्सी रस्सों के गूदड़ (कबाड़) को जुटाने, कलों में दबाने गट्ठर बनाने और बाहर रवाना करने का भी एक केन्द्र है। १६४० ई० के पूर्व इस उद्योग का नाम भी नहीं था। सनई के रस्सों के कबाड़ पहले ग्रामवासियों द्वारा फेंक दिये जाते थे, वे फेरी करने वालों द्वारा नाम मात्र के मूल्य या गुड़, चीन, नमक, मिट्टी के तेल आदि वस्तुओं के बदले में लेकर इकट्ठे किये जाते हैं। ये शिवपुर (बनारस) लाये जाते हैं और दबा कर गट्ठर बना लिये जाते हैं और किसी भारतीय कागज बनाने के कारखाने या कभी विदेशों को भेज दिए जाते हैं। सनई के पुराने रस्सों के कबाड़ की प्रायः १८ हजार गाठें भारतीय कागज के कारखानों द्वारा प्रयुक्त होती हैं और लगभग इतना ही या इससे कुछ ज्यादा ही विदेशों को भेजी जाती है।

बनारस के सनई श्रेणी निर्धारण के मुख्य निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत सनई की पुरानी रस्सियों के कबाड़ों की गाँठ बनाने के संबंध में आँकड़े निम्न प्रकार हैं :—

साल	सनई की पुरानी रस्सियों के कबाड़ की गाँठें (१ गाँठ = ४५० पौंड)
१६४६	१५,८६७
१६४७	२२,८५१
१६४८	२४,४८३
१६४६	२७,६१२
१६५०	२३,६४३
१६५१	३५,४६२
१६५२	१७,२०३
१६५३	१५,४०६
१६५४	१८,४६८
१६५५	४०,७६५

१६४२-४३ में जहाँ सनई की पुरानी रस्सियों के कबाड़ का मूल्य कुछ रुपए ही होता था, वहाँ आज का दाम फी गाँठ ७५) है।

भिंडी वर्ग के पौधों के रेशे—भिंडी वर्गीय पौधों (हिबिस्कस) से लंबे, सफेद रंग से लेकर मटमैले सफेद रंग तक के मजबूत रेशे पैदा होते हैं। इनमें सबसे महत्व-पूर्ण पटसन या मेस्टा है जो सनकुकरा (हिबिस्कस केने-बिनस) पौधे के तने से पैदा होता है। यह राज्य में यथेष्ट मात्रा में पैदा होता है। पहले तो इसे जूट के साथ मिला-वट कर बेचने के लिए ही इस्तेमाल किया जाता था लेकिन अब जूट के कारखानों में जूट की तरह ही आसानी

से काता जाता है। यद्यपि यह जूट से कुछ कमजोर होता है लेकिन कताई में एक समान ही काम देता है।

भिंडी (हिबिस्कस एस्कुलेंटस) भी, जिसका हरा फल सब्जी के काम आता है, सफेद, मजबूत रेशमी रेशा पैदाकर सकती है। आजकल इसके डंठल फसल के बाद फेंक कर बर्बाद कर दिए जाते हैं। किसान भिंडी की फसल समाप्त हो जाने पर उसके डंठलों से यथेष्ट मात्रा में रेशे प्राप्त कर सकता है जो जूट के साथ मिलाकर कातने या रस्सी बनाने योग्य हो। भिंडी को दोहरे उपयोग की फसल बनाने की सम्भावना लेखक द्वय में से एक ने (बी० विस्वास) और दूसरे सहकर्मियों ने इंडियन टेक्स्टाइल जर्नल में प्रकाशित की है।

इस वर्ग की अन्य जातियाँ मेस्टा (हिबिस्कस सब्डारिफिया) बनकपास (हिबिस्कस विटिफोलियस तथा हिबिस्कस फिकुलनिअन्स) आदि हैं जिनको जूट की जगह रेशा उत्पन्न करने के काम लाए जाने की प्रचुर संभावना है। इनमें से कुछ पौधे इस राज्य में जंगली रूप में पैदा होते हैं और दूसरे पौधे आसानी से पैदा किए जा सकते हैं। विशेषतया हिबिस्कस सैब्डारिफा महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे उतने रेशे की उपज होती है जितनी जूट से।

कुछ अन्य मालवेसी पौधों, जैसे साइडा रोम्बिफोलिया, यूटेना लोबटा, यूरेना सेनुआटा (बन ओकरा), मलाचरा कैपिटाला ककही आदि से रेशे उत्पन्न होते हैं जो जूट के कारखानों में काते जा सकते हैं। ककही नाम से ज्ञात पौधे विशेष उल्लेखनीय हैं। ऊसर और परती खेतों में यह जंगली घास रूप में वर्षा के आगमन पर पैदा होता है तथा मध्य जाड़े तक इनका लोप हो जाता है। इस पौधे से बहुत अच्छी किस्म के दृढ़ सफेद रेशमी रेशे पैदा होते हैं। प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि इन रेशों के ७०% से भी अधिक भाग को जूट के साथ मिला कर औसत रूप के टाट तैयार किए जा सकते हैं। निस्संदेह ही यह अनुभव किया जा रहा है कि जूट पर जितना ध्यान दिया जाता है उसका आधा भी इन रेशों पर ध्यान दिया जा सके तो इन रेशों में अधिकांश की बाजार में खपत हो सकेगी।

अगावे के रेशे

भारत में कड़े सन की सदा कमी रहती है। साधारण समयों में फिलीपाइन के मनीला सन के अतिरिक्त पूर्वी अफ्रिका, मेक्सिको और अन्य देशों से सीसल सरीखा कड़ा सन अपने देश में यथेष्ट मात्रा में आयात किया जाता है। प्रयोगों से ज्ञात किया जा सका है कि चाहे जो भी कारण रहे हों, मनीला के सन का पौधा भारत में सफलता पूर्वक नहीं उगाया जा सकता। इसलिए हमें कड़े सन के रेशों के लिए उत्तर प्रदेश तथा अन्य राज्यों में जंगली रूप में उगने वाले अगावे पौधों पर निर्भर रहना पड़ेगा। कड़े सन के रेशे की माँग पूर्ति करने वाले थोड़े ही बगान हमारे देश में हैं। रेशे निकालने के उपयुक्त प्रयोगों के बिना इस रेशे के उद्योग की उन्नति में भारी रुकावट हो रही है।

"रामबाँस" नाम से मशहूर रेशा अगावे जाति के एक पौधे के पत्ते से उत्पन्न होता है। बोए हुए खेतों की ढोरों या जंगली पशुओं से रक्षा करने के लिए यह पौदा मेड़ों पर रुकावट के लिए भी लगाया जाता है। पत्तियों में एक तेज रस होता है जो चमड़े से छू जाने पर जलन, खुजली और फोड़े भी पैदा करता है। जेलों में सजा पाए हुए कैदियों के ही उपयुक्त यह काम पहले समझा जाता था और रामबाँस कूटना सब से बड़ी सजा मानी जाती थी। वर्तमान सरकार की कृपा है कि उसने जेलों में राम बाँस कूटना बंद करा दिया है। कुछ मध्यभारत और दक्षिण के राज्यों में मामूली पानी में सड़ाने से रेशे तैयार किए जाते हैं। ऐसा करने का यह कारण है कि रेशे निकालने की इंजिन-चलित कलें बहुत मँहगी पड़ती हैं और उन्हें विदेशों से आयात करना पड़ता है। पानी में सड़ाने से रेशे कमजोर अवश्य पड़ जाते हैं। लेखक द्वय में से एक (बी० विस्वास) और अन्य सहकर्मियों द्वारा यह प्रदर्शित किया गया है कि पानी में सड़ने से ६६ प्रतिशत तक मजबूती कम हो जाती है। यह रेशे रस्सी, रस्सों आदि के पचीसों काम आता है इसलिए इसकी मजबूती ही खास बात होनी चाहिए और वह अधिक से अधिक होनी चाहिए। कानपुर में जंगली पैदा हुए रामबांस

के पत्तों से कलों से निकाले रेशे मजबूती, रंग और लंबाई में विदेशों से आयात किए हुए सीसल रेशों के मुकाबले के पाए गए हैं। हाथ से चल सकने वाली कल से रेशे पैदा कर सकने की संभावना पर हार्टकोर्ट बटलर टेकनालाजिकल इंस्टिट्यूट, कानपुर के कार्यकर्ताओं का ध्यान जा रहा है। रामबांस का रेशा निकालने वाली हाथ से चलनेवाली कल बहुत बढ़िया बनाई जा सकती है। दो आदमी लगते हैं। कल में सुधार किया जा रहा है।

बारीक वस्त्रों के क्षेत्र में केवल कपास ही 'वनस्पति-जन्य रेशा है जिसका भारत में उपयोग होता है। कुछ योरोपीय देशों में छालटीन और तून सन के रेशे का इस्तेमाल बारीक वस्त्रों के लिए होता है।

रेशे के लिए रेशे वाली अलसी पैदा करने का प्रयत्न भारत में असफल सिद्ध हुआ है। भारत में रेशे वाली अलसी पैदा करने के प्रयत्न हुए हैं। विदेश से बीज माँग कर बोने के पहले प्रयोग डुरिया (बिहार में) हुए थे। उसके बाद रेशे वाली अलसी पैदा करने के प्रयोग विभिन्न स्थानों में हुए किन्तु सब निष्फल हुए।

इस राज्य में तिलहन वाली अलसी तिलहन के लिए बहुत अधिक मात्रा में पैदा की जाती है। अलसी के पौधों में कई शाखें, डंठल होते हैं और वह झब्बेदार होता है। यह पौधा बहुत अधिक तिलहन के लिए तो बिल्कुल उपयुक्त होता है, लेकिन पौधे में शाखें अधिक होने से रेशे के उपयुक्त नहीं होता। इस कठिनाई को मिटाने के लिए, तत्कालीन आर्थिक वनस्पतिशास्त्री डा० टी० एस० सैबनिस ने विदेशी रेशे वाली अलसी और देसी अलसी का इस्तेमाल कर पौधे उत्पन्न करने के अनेक प्रयोग किए थे। और वे अलसी के ऐसी जातियाँ उत्पन्न करने में सफल हो सके थे जिनमें पर्याप्त लंबे और पतले तने पैदा होते और शाखें केवल सिर पर निकलतीं। ऐसी अलसी की जातियों से भी उतनी ही अलसी पैदा होती है जितनी पुरानी देशी अलसी की जातियों से, लेकिन इसके तने से रेशे भी फसल काटने के बाद निकाले जा सकते हैं।

योरोपीय देशों का असली सन हमारे देश के भांग या गांजा पौधे से भिन्न पौधा नहीं है। विदेशों में जहाँ वस्त्र व्यवसाय के अनेक कारखानों में इस्तेमाल करने के लिए ही इस पौधे की काश्त की जाती है, वहाँ हमारे देश में यह पौधा केवल, नशे के लिए पैदा किया जाने के लिए प्रसिद्ध है।

उत्तर प्रदेश में पैदा की जाने वाली भाँग पर किए गए प्रयोगों द्वारा प्रकट हो सका है कि ठीक तरह तैयार करने पर विदेश से आयात किए हुए रेशे के मुकाबले का रेशा उससे पैदा हो सकता है। इससे यह अनुभव किया गया है कि पौधे के रेशे में कोई खराबी नहीं है और पहाड़ी इलाकों में पैदा की जाने वाली भाँग के रेशे में दिखाई पड़ने वाली खराबी उसके तैयार करने में दोष का ही परिणाम है।

कागज के लिए कच्चा माल—कागज के लिए छिद्रोज (सेल्यूलोज) एक महत्वपूर्ण अवयव है। इस राज्य में कागज के लिए उपयोगी सामग्री भरी पड़ी है किन्तु उनके उपयोग का कुछ भी प्रयास नहीं किया गया है।

इस राज्य में इस समय कागज बनाने के दो बड़े कारखाने ही काम कर रहे हैं। इसमें से एक अपेक्षाकृत पुराने और कुछ आदिम उपकरणों से ही काम कर रहा है। शिक्षा और जीवन स्तर की वृद्धि से प्रति मनुष्य कागज की खपत का औसत बढ़ा रहा है। और १९५३ में १२४६१३ कागज और कागज की बनी वस्तुएँ निम्न रूप में मँगाई गईं। इसके विपक्ष उसका उत्पादन १,३७,७३२ टन था।

प्रभेद	टन
१—पैकिंग और रैपिंग कागज (बंडल बाँधने के उपयोग का कागज)	१३,३६८.८०
२—छपाई का कागज	८२,०६१.७५
३—न्यूज प्रिंट	६८,२६८.०५
४—लिखने का कागज और लिफाफा	८,७०६.९०
५—पेस्ट बोर्ड, मिल्स बोर्ड, कार्ड बोर्ड सब तरह का	३,६४६.७०
६—कागज और दफ्ती (बोर्ड) की बनी चीजें	४०,४८८.२०
	१,२४,६१३.३६

("इंडियन पल्प और पेपर" से)

उत्तर प्रदेश के जंगलों और सस्ती पनबिजली के कारण अखबारी कागज (न्यूज पेपर) के कारखाने खोले जाने के लिए यथेष्ट संभावना है। उदाहरण के लिए बाँस और सलई लकड़ी (बसवेलिया सेराटा) मिरजापुर के जंगलों में रिहंद बाँध के पास सुलभ है जिस से क्राफ्ट कागज (बंडल बाँधने या पैकिंग के कागज) का कारखाना खोलने पर गंभीरता पूर्वक विचार करना आवश्यक है। पीलीभीत जिले में उल्ला सबई और बड़ी घासें होती हैं और जिले में ही पनबिजली है। खातिमा पनबिजली स्टेशन ४१४००किलोवाट बिजली पैदा कर रहा है।) ये बातें लिखने के कागज बनाने का कारखाना खोलने के लिए बहुत गंभीरता से सोचने की हैं। तराई भर में धान और गेहूँ के सस्ते और फालतू पुआल और डंठल उस क्षेत्र में यान्त्रिक कृषि होने के कारण स्ट्रा बोर्ड का कारखाना खोलने के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। हिमालय के अंचल की पहाड़ियों में फर (बादर या राई स्प्रूस काछल) तथा अन्य कोणीय प्रकार की नर्म घासों की बहुलता का लाभप्रद उपयोग ऐसे स्थान पर अखबारी कागज (न्यूजप्रिंट) का कारखाना खोलने के लिए किया जा सकता है जहाँ प्रचुर मात्रा में पानी और पनबिजली सुलभ हो। देहरादून की घाटी या अन्य उपयुक्त स्थलों में ऐसे स्थान को ढूंढ़ना कठिन नहीं हो सकता।

लुगदी (पल्प) गलाने के उद्योग की संभावना—फर (बादर या राई) और स्प्रूस (काछल) वृक्षों का पल्प (लुगदी) गलाने के उद्योग में विशेष ध्यान रखना होगा। अभी तक भारत लुगदी के लिए विदेशी आयात पर ही पूर्णतया निर्भर है। यद्यपि देश में चिपचिपे रेअन के कई कारखाने खुले हैं और बहुत से खोले जाने वाले भी हैं, तथापि लुगदी गलाने का कारखाना खोलने के लिए प्रायः कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया है। यह बुद्धिमानी की बात है कि सल्फाइट विधि से स्प्रूस (काछल) से केवल चिपचिपे रेअन ग्रेड पल्प के पैदा करने के लिए ही इस राज्य में एक कारखाना खोलने की संभावना पर विचार किया जाय। प्रायः यह तर्क किया जाता है कि हिमालय क्षेत्र के भीतरी भाग में सड़क तथा यातायात के अन्य साधनों का उचित रूप से विकास नहीं किया जा सका है। इसलिए स्वेडन, फिनलैंड, और कनाडा आदि विदेशों से आयात लुगदी हिमालय में उत्पन्न होने वाले काछल वृक्षों से पैदा की हुई लुगदी की अपेक्षा सस्ती होती है। अतएव स्वभावतया प्रश्न उठता है कि अछूते प्राकृतिक साधनों के उपयोग के लिए, जो आधुनिक समय में उपेक्षित हैं, यातायात की सुविधाओं का विकास किया जाय या न किया जाय और इस कोटि की लुगदी सदा विदेशों से ही आयात करने के लिए ही आश्रित रहा जाय।

इस प्रदेश में प्रचुर मात्रा में पावर अलकोहल की सुलभता से इंगित होता है कि एसेटेट रेशम धागा उत्पन्न करने के लिए कपास के लिंटर उपयोग करने की सम्भावना हो सकती है। सभी आवश्यक रसायनिक पदार्थ जैसे एसेटिक एसिड, एसेटिक ऐनहाइड्राइड एसेटोन, एथिल एसिटेट आदि पावर अलकोहल से ही पैदा किए जा सकते हैं जिसे एसेटेल डी हाइड द्वारा अप्राकृतिक बनाया जा सकता है। यथार्थ में भारत में एक मात्र एसेटेट रेआन का कारखाना पावर अल्कोहल से सभी आवश्यक रासायनिक पदार्थ तैयार करता है और अभी तक ही संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से आयात कपास के लिंटर का ही उपयोग करता रहा है किन्तु अभी थोड़े समय से ही भारतीय कपास का लिंटर उपयोग में लाने लगा है।

गन्ने की सीठी का उपयोग—गन्ने की सीठी या चेफुए का आज एक मात्र उपयोग ईंधन की तरह इस्तेमाल करना है। गन्ने की सीठी ईंधन की तरह उपयोग के लिए पत्थरकोयले से निम्न-श्रेणी की होती है। यथार्थ में औसत दर्जे के पत्थरकोयले के एक टन की जगह ईख की सीठी तीन टन आवश्यक हो सकती है। कागज के लिए ईख की सीठी के उपयोग की संभावना ने अधिक समय से कागज निर्माण-शिल्पियों का ध्यान आकर्षित कर रक्खा है। फिर भी सभी आरंभिक प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए हैं। सीठी के रेशे से मज्जा (बीच की गूदी) पृथक करने के लिए उपयुक्त साधन

और मज्जा के उचित रूप से उपयोग कर सकने के ज्ञान का अभाव इसमें अटकाव पैदा करते हैं।

मज्जा को पृथक करने में आज शिल्पीय कठिनाई नहीं है। अनेक पेटेंट विधियाँ सुलभ हैं। देहरादून में भी एक साधन ढूंढ़ निकाला गया है। इस लेख के लेखकों ने भी ईख की सीठी से मज्जा पृथक करने की विधियाँ विकसित कर ली हैं। भीगी पिसाई और चालना इस विधि का आधार है। मज्जा रेशे से पृथक होकर ईधन की तरह काम आ सकती है या रेशों के साथ मिला कर ढोरों का चारा बन सकती है।

मज्जा निकाली हुई सीठी या ईख की सीठी का रेशा कागज की लुगदी का अच्छा क्षेत्र माना जा सकता है और किसी भी चालू या सुधारे ढंग से लुगदी रूप में बनाया जा सकता है या पूरी सीठी ही धान के पुआल के साथ मिल कर कार्ड बोर्ड बनाने के काम आ सकती है। बिहार में कागज का एक कारखाना मज्जा निकाली हुई सीठी से बहुत उच्च कोटि का कागज ऐसे विधि से बना रहा है जो सेलुलोज डेवेलपमेंट कारपोरेशन से एक पेटेंट कराया ढंग है और जिसे साधारण लोग केल्डेसर पोसिली विधि कहते हैं। हमारे राज्य में चीनी के कुछ बड़े कारखाने मज्जा निकाली हुई सीठी से कागज तैयार करने की योजना को चला सकते हैं। जब बिहार में एक ऐसी योजना सफलता पूर्वक संचालित है तो यह मानने का कोई कारण नहीं कि यह उत्तर प्रदेश में संचालित नहीं हो सकती। इस राज्य के छिद्रोजीय (सेल्यूलोजिक) कच्चे माल की विस्तृत क्षमता, तथा देश और राज्य को समृद्ध करने के लिए विकसित हो सकने वाले संभाव्य कुछ उद्योग-धंधे, तथा जनता की प्रति व्यक्ति औसत आय में वृद्धि का कुछ वर्णन इस लेख में किया गया है। किन्तु इस क्षेत्र को पूर्ण वर्णित नहीं माना जा सकता क्योंकि केवल कुछ महत्वपूर्ण उद्योगों की ही चर्चा की गई है।
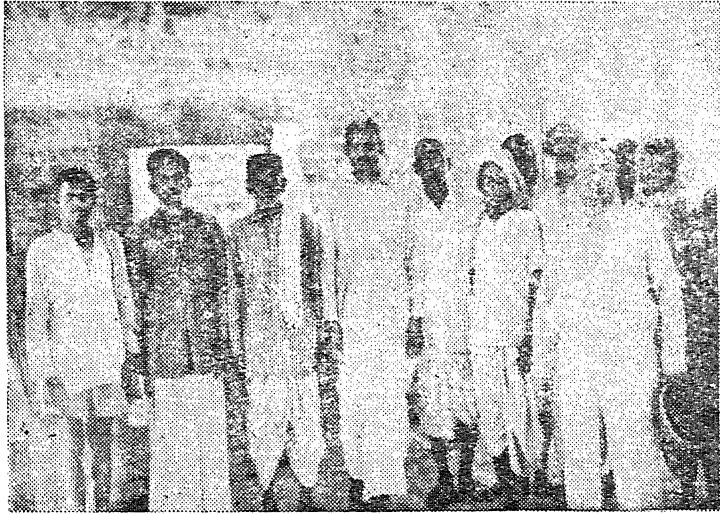
विज्ञान-परिषद भवन-निर्माण में संलग्न कर्मचारी गण

हिन्दी—कुछ तथ्य और सुझाव

श्री आर० एस० फिराक़, प्राध्यापक, अंग्रेजी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

हिन्दी लगभग बारह करोड़ भारतीयों की मातृभाषा है। हिन्दी के विषय में सबसे प्रबल तथ्य अधिकांश हिन्दी प्रेमियों द्वारा उपेक्षित कर दिया जाता है। सर्वोपरि तथ्य यह है कि हिन्दी जन साधारण द्वारा बोली ज ती है जिसमें चार हजार "तद्भव" शब्द, लगभग पाँच हजार फारसी अरबी शब्द, लगभग बारह सौ योरोपीय या विदेशी स्रोतों के शब्द, पाए जाते हैं और शुद्ध संस्कृत के "तत्सम" शब्द केवल नौ सौ के लगभग हैं। मैं इस तथ्य को स्वागत और अंगीकार करता हूँ कि हिन्दी को अधिक साधन-सम्पन्न बनाने के लिए हमें नए शब्द अनेक भाषाओं से ग्रहण करने चाहिए जिनमें संस्कृत से भी बहुत से शब्द लिये जायें।

संस्कृत से शब्द ग्रहण करने में हमें दो बातें करनी चाहिए। जो संस्कृत शब्द हिन्दी की ध्वनि-रचना से मेल खाते हों उन्हें ग्रहण करना और शुद्ध तत्सम रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए। नए संस्कृत शब्द जो हिन्दी की ध्वनि-रचना से ठीक मेल न खाते हों, उन्हें देशी भाषा या तद्भव रूप का बना लेना चाहिए अर्थात् उनके रूप और ध्वनि को सुगम और हल्का बना लेना चाहिए जो बहुसंख्यक जनता द्वारा बोले जाने में सुविधाजनक हों। हमारे देश ने पहले चालीस हजार संस्कृत के शुद्ध शब्दों को हिंदी में परिवर्तित कर दिखाया है जैसे "क्षेत्र" का "खेत", "वार्ता" का "बात" "वनमानुष" का "वन-मानुस" बना है। हम भी सैकड़ों संस्कृत के अन्य तत्सम शब्दों को उसी तरह क्यों नहीं बदल सकते ?

हमारे देश के जन-साधारण और मध्यवर्ग तथा उच्च वर्ग या यथेष्ट शिक्षित वर्ग के अधिकांश लोग, मेरे पुष्ट विचार से वह हिन्दी शुद्ध या धारावाहिक रूप में कभी नहीं बोल सकते जो ऐसे शब्दों से भारग्रस्त होती है जो हिन्दी की ध्वनि-रचना या हमारी जनता की वाणी के स्वभाव के प्रतिकूल होते हैं। हम में संस्कृत के प्रति अनुराग भावना विद्यमान होने या होने की आशा की जाने पर भी सत्य यही है। हमें यह विस्मृत नहीं करना चाहिए कि संस्कृत भाषा की शब्दावली भारत के किसी भाग के जन-साधारण द्वारा विकसित नहीं की गई। इसका विकास इंडो आर्य जाति ने किया जो बहुत प्राचीन युग में भारतीय जनता के एक अंश को निर्मित करती थी। भाषाओं के आर्य वंश में सभी तत्सम संस्कृत शब्दों का कायापलट हुआ। भारत में यह बात हुई। जो लोग हिन्दी को नए और शुद्ध संस्कृत शब्दों से भाराक्रान्त करने के लिए इतने व्यग्र और उत्सुक हैं, उनसे मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या हम लोगों ने रचनात्मक परिवर्तन, परिवर्धन की पूर्ण क्षमता को ही खो दिया है। हमारे पूर्वजों ने चार हजार संस्कृत तत्सम शब्दों को परिवर्तित, सरलीकृत, और सुविधाजनक बनाकर नया रूप दिया। क्या हम भी आज या भविष्य में पाँच या छः हजार संस्कृत शब्दों के साथ वैसा ही नहीं कर सकते और उनके नए हिन्दी शब्द नहीं बना सकते ? क्या मैं एक दो शब्दों का उदाहरण दे सकता हूँ। उदाहरणार्थ 'राष्ट्रपति भवन" शब्द ले लीजिए। उसे "रासपति भवन" क्यों न कहा जाय ? इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय को "अन्तर रार्स" या "अंतर राष्ट्री" में बदला जा सकता है। नए हिन्दी कोशों को इन नए शब्दों तथा इसी प्रकार नए शब्दों के मूल संस्कृत शब्द ढूँढ़ने का काम छोड़ दीजिए। "नगरपालिका" सरीखा विचित्र ध्वनि का शब्द बदल कर "नगर परिषद" और महात्मा गाँधी मार्ग बदल कर महात्मा गाँधी सड़क नाम से पुकारा जाय।

अरबी फारसी के हजारों शब्दों को प्रत्येक जन-साधा-

रण की बोली के स्वाभाविक भाग हो गए हैं, हिन्दी से वहिष्कृत करने की उन्मत्तता का आधार घोर द्वेष भावना है। यह जर्मनी से यहूदियों को निकाल फेंकने के हिटलर के उद्योग समान हैं। अरबी फारसी शब्दों के बहिष्कार की यह भावना तुरन्त समाप्त होनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि जनता में अधिक से अधिक प्रचलित अरबी फारसी शब्दों के लिए पर्यायवाची संस्कृत शब्द विद्यमान हैं। हमें दोनों को ही प्रचलित रखना चाहिए और शुद्ध हिन्दी बनाने की उत्तेजना में हमें प्रवाहित नहीं हो जाना चाहिए। उदाहरणार्थ "सत" शब्द के संस्कृत में यथार्थ या कल्पित पर्याय निम्न शब्द हैं :- पवित्र, निर्मल, शुद्ध, स्वच्छ, धवल, इनमें से किसी भी शब्द को हम उन अर्थों में प्रयुक्त नहीं कर सकते जब यह कहना है कि "साफ माफी माँग ली", "साफ इनकार," "साफ बात", "साफ लिखावट", "साफ झूठ", "खाना साफ कर गया", "साफ साफ बात', और इसी तरह के अन्य वाक्यांश। "खबर" शब्द का संस्कृत पर्यायवाची शब्द "समाचार" है। "बे खबर", "खबर लेना" और ऐसे अन्य अवसरों पर समाचार शब्द से हमारा काम नहीं चल सकता। बहुत से शब्दों के संस्कृत पर्याय शब्द होने की आशा हो सकती है। ऐसे अरबी फारसी शब्दों से मिले हजारों वाक्यांश कुछ निश्चित विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने के अवसर पर हटाये नहीं जा सकते। हमें शब्द-चेता नहीं होना चाहिए बल्कि हमें वाक्यांश-चेता या वाक्यांश-प्रेमी और वाक्य-प्रेमी होना चाहिए। हमें देशी भाषा-प्रेमी होना चाहिए। हमें यथार्थ में हिन्दी या लोक भाषा-प्रेमी होना चाहिए।

दूसरी अत्याधिक जघन्य वृत्ति हजारों प्रचलित और भावोत्पादक तद्भव हिन्दी शब्दों की जगह उनके मूल तत्सम शब्दों का प्रयोग करना है। हिन्दी के उन्मत्त प्रेमियों की यह वृत्ति उनके हिन्दी-प्रेम को प्रमाणित नहीं करती। पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ का वहिष्कार प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, और पञ्चम शब्दों के पक्ष में नहीं करना चाहिए। दोनों शब्दावलियाँ क्यों न प्रचलित रक्खी जायँ। अधिकतर लौकिक हिन्दी शब्दावली का ही अधिक उपयोग हो और इनके संस्कृत पर्याय शब्दों का कभी-कभी ही उपयोग किया जाय।

केवल शब्दावली महत्वपूर्ण बात नहीं है, बल्कि शब्द-विन्यास सब से अधिक महत्व की बात है। आज के हिन्दी गद्य और पद्य के ९० प्रतिशत के प्रति करोड़ों हिन्दी पाठकों में उच्च आदर भावना या अनुराग वृत्ति नहीं पाई जाती, वे खुले रूप में उनका उपहास करते हैं। सूर, तुलसी, कबीर और मीरा के पद लाखों करोड़ों पाठकों की जिह्वा पर थे और आज भी हैं। उर्दू कवियों की शायरी में याद रखने और उद्धरण दे सकने का गुण होता है, और हजारों नागरिकों के मुँह से जो केवल हिन्दी ही जानते हैं, और जिन्हें कभी उर्दू पढ़ने का अवसर नहीं मिला, वह सुनी जाती है किन्तु पिछले पचास वर्षों के हिन्दी काव्य के प्रति क्या कहा जा सकता है!

अंत में ज्ञान के सब विभागों के संबंध में हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों की चर्चा करनी है। मुझे यह कहने में हिचक नहीं है कि हमें अंग्रेजी और अन्य योरोपीय पारिभाषिक शब्दों का देशीकरण करना चाहिए। जहाँ आवश्यक हो उन्हें इस तरह बदल दिया जाय कि वे हिन्दी शब्दों की तरह उच्चारित किए जा सकें। हिन्दी में नए पारिभाषिक शब्द गढ़ने के लिए तत्सम संस्कृत शब्दों से हमारा काम अच्छी तरह नहीं चल सकता। हमें पारिभाषिक शब्दों के बहुभाषागत कोश सुलभ होने चाहिए। ईरान और अरब देशों में तैयार किए हुए पारिभाषिक शब्दों के कोश बहुत ही उपयोगी हो सकते हैं। मैं समझता हूँ कि इन देशों ने योरोपीय पारिभाषिक शब्दों को प्रायः ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है और उनके उच्चारण तथा अक्षर रचना को अपने देशवासियों की बोली के स्वभाव के अनुरूप करने के लिए बदल दिया है। हिन्दी के उपयोग के लिए संस्कृत के शाब्दिक अनुवाद वाले पारिभाषिक शब्द बनाने के प्रयत्न में एक पैशाचिक दुर्बोध शब्दावली खड़ी हो गई है जिससे केवल अव्यवस्था ही बढ़ी है। हमें संस्कृत के प्रति अनुराग रखना चाहिए परन्तु एक सीमा तक ही। हिन्दी की उन्नति करने की उत्सुकता में हमें शुद्ध, यथार्थ और भावोत्पादक प्रतीत होने वाले सस्कृत शब्दों और

वाक्यांशों से सुन्दर हिन्दी भाषा को भाराकान्त और अवरुद्धकंठ नहीं कर देना चाहिए। उन्मत हिन्दी सेवकों की यह कृपा है कि आज हिन्दी भाषाहीन भाषा है या लावारिस भाषा बन रही है। हमारे राष्ट्रीय जीवन में इसने एक विषादपूर्ण सांस्कृतिक संकटकाल उपस्थित कर दिया है।

किसी भी जीवित योरोपीय भाषा में एक प्रतिशत से अधिक ग्रीक या लैटिन शब्द उनके तत्सम या मूल रूप में नहीं हैं। प्रत्येक जीवित योरोपीय भाषा में अस्सी से नब्बे प्रतिशत तक ग्रीक या लैटिन शब्द हैं, किन्तु उनके विविध तद्भव या परिवर्तित या अपभ्रंश रूप में ही हैं। यदि आज की जीवित योरोपीय भाषाओं के शैली के आचार्यों ने ऐसे गद्य और काव्य की रचना की है जो एक प्रतिशत से अधिक तत्सम ग्रीक या तत्सम लैटिन शब्दों का उपयोग किए बिना ही हृदयग्राही और श्रुतिमधुर है तो हिन्दी-लेखक भी ऐसा क्यों नहीं कर सकते? प्रेम चन्द तथा कुछ अन्य लेखकों ने मार्ग-प्रदर्शन किया है। हमें भी उस पथ का अनुसरण करना चाहिए। इस तथ्य से हमें सीख लेनी चाहिए कि अधिकांश आधुनिक हिन्दी गद्य तथा काव्य जन-साधारण में अवहेलना और उपेक्षा का भाव उत्पन्न कर रहे हैं। जन-साधारण ही हिन्दी के भावी भाग्यविधाता है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति जन-साधारण में से है। हमें इससे भी सीख लेनी चाहिए कि संस्कृत के विद्वानों, विख्यात पंडितों में संस्कृत शब्द प्रचुर हिन्दी काव्य या गत पचास वर्षों के मान्य हिन्दी काव्य के प्रति उपेक्षा की ही भावना है। वे कालिदास, भवभूति और अन्य प्राचीन काव्यों को आनंद से अध्ययन और गायन करते हैं। किन्तु वे संस्कृत शब्द-प्रचुर हिन्दी काव्य के वर्तमान यशप्राप्त रचयिताओं की कविता हृदयंगम नहीं कर सकते। अपेक्षाकृत सरल आधुनिक काव्य में भी सौष्ठव, माधुर्य और हृदयाग्राहिकता का अभाव है। जन-साधारण की तो बात जाने दीजिए, हिन्दी के उच्च उपाधिकारियों और साहित्य-रत्नों में भी किसी आधुनिक हिन्दी कवि का नाम घर नहीं कर गया है। प्रसिद्ध उर्दू कवियों की शायरी पाठकों या श्रोताओं को मुग्ध कर देती हैं। यह उचित समय है हिन्दी के लेखक अपनी व्यवस्था ठीक करें। हिन्दी की ऐतिहासिक उत्पत्ति ही संस्कृत के विरुद्ध विद्रोह कर हुई। हिन्दी में एक अपना जीवन, व्यक्तित्व भाव भंगिमा है। यह संस्कृत से बनी है कठपुतली नहीं है। इसमें एक स्वतंत्र भावना और आचार है जो संस्कृत के आँचल में बँधा नहीं रह सकता। हिन्दी में स्थिति के करुणात्मक दर्शी व्यक्ति की तत्काल ही आवश्यकता है।ॐ

वैज्ञानिक शिक्षण का आरम्भ [पृ० ६७ का शेषांश

(६) दिसम्बर, १८६४ में गणित, भौतिक, विज्ञान, और रसायन विज्ञान के साथ बी० एस-सी० उपाधि की स्थापना हुई। कला में "ख" वर्ग भी रहने दिया गया।

(७) महाविद्यालयों में विज्ञान के शिक्षण की स्वीकृति देने के लिए निश्चित नियम निर्धारित किए गए।

(८) स्कूल फाइनल परीक्षा में वाणिज्य की शिक्षा प्रारंभ की गई (१६०४-०५) और इलाहाबाद विश्व विद्यालय ने इंटर मीडिएट परीक्षा स्तर पर वाणिज्य प्रमाण पत्र परीक्षा संचालित की—देखें अध्याय ३ पृष्ठ १४२

(६) "ख" वर्ग से जिस में गणित, भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान था, प्राचीन भाषाएँ निकाल दी गईं मेट्रिकुलेशन परीक्षा में प्राचीन भाषाएँ वैकल्पिक बना दी गईं और आधुनिक देशी भाषाओं के साथ विकल्प रूप में रक्खी गईं (इलाहाबाद विश्व विद्यालय अधिनियम अध्याय १२, परिशिष्ट क, कार्य-विवरण १६०४-०५)

पौधों का जीवन-दर्शन

डा० अमरसिंह, प्राध्यापक, वनस्पति विज्ञान विभाग, प्रयाग वि० वि०

जीव जगत व जगत-नियंता की समष्टि में जीवन की धारा सतत प्रवाहित होती रहती है। वस्तुतः यह गतिमयता ही सृष्टि की आधार-शिला है। क्या मनुष्य क्या पशु और क्या पौधे सभी का जीवन विभु की सर्वोत्कृष्ट विभूति, स्रष्टा की श्रेष्ठतम रचना और सृष्टि की एक मात्र सूत्र धारिणी प्रकृति पर आश्रित है। इसी निःस्वार्थ सूर्य-रश्मियों, निर्बाध सुरभित मलयानिल और निर्मोल सजल जल द्वारा ही सृष्टि के संतप्त और तृषित कणों में जीवन का संचार होता है।

पेड़-पौधों का सूक्ष्म बीज जब भूमि में डाल दिया जाता है तो सर्वप्रथम प्रकृति से जल कण को ग्रहण कर फूलता है। इससे उसके शरीर का कण कण, अणु अणु, क्रियाशील हो जाता है। उसमें छिपा हुआ गर्भस्थ भ्रूण सुसुप्तावस्था का परित्याग कर जाग्रतावस्था में आ जाता है। उसके अंग अंग में स्फूर्ति का संचार हो जाता और वह विकास की ओर उन्मुख होने के लिये आतुर हो उठता है। जीवन के उद्बोधन में आते ही बीज में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, फैट, विटैमिन्स आदि का उपयोग कर भ्रूण शिशु तरु बनने के लिये अग्रसर हो जाता है। इसकी प्रारम्भिक जड़ बीज से बाहर निकल भूमि में अंधकार और जल स्रोत की खोज में आगे बढ़ने लगती हैं, अब प्रारम्भिक तना भी बीज से बाह्यावरण को भेद कर भूमि के बाहर निकल आता और बढ़ने लगता है।

इस प्रकार सूक्ष्म बीज से एक शिशु तरु उत्पन्न हो जाता है जिसमें जीवन के प्रत्येक आवश्यक अंग जैसे जड़ तना और पत्तियाँ सभी पाये जाते हैं! अब इसे आत्म-निर्भर हो अपना पोषण स्वयं करना पड़ता है। विभिन्न अंगों के क्रमिक विकास, निर्बाध वृद्धि और नियमित कार्य-संचालन के लिये आहार की आवश्यकता पड़ती है जिसका निर्माण स्वतः अपने पत्तियों की छोटी रसायनिक निर्माणशाला में करता है। आहार निर्मित करने के लिये इसे कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नत्रजन, फास्फोरस, पोटेशियम, कैलशियम, सोडियम, मैगेनीशियम, मैंगेनीज, जिंक, कापर, वीरन, मालीवडिनम आदि की आवश्यकता होती है। इसे वह वायु, जल और भूमि के द्वारा ग्रहण करता है।

वायु से पत्तियाँ कार्बन-डाईआक्साइड को ग्रहण करती है। पत्तियाँ के आंतरिक शरीर में कोष्ठों के अति-रिक्त-रिक्त स्थान बने होते हैं जिनमें वायु भरी रहती है। ये ऐसे रिक्त स्थान Stomatae से जुड़े हुये रहते हैं जो वायु मंडल की ओर खुलता है। आहार निर्माण के समय इन रिक्त स्थानों में उपस्थित कार्बन-डाईआक्साइड से कार्बन का उपयोग जब पत्तियाँ कर लेती है तब वहाँ आक्सीजन शेष बच जाती है जो हल्की होने के कारण वायुमंडल की सघन वायु की ओर Stomata से होते हुये चली जाती है और वायुमंडल की भारी वायु भीतर पत्तियों में घुस जाती है! इस प्रकार वायुमंडल से कार्बन-डाइआक्साइड का लेना और आक्सीजन का छोड़ना पत्तियों में आहार-निर्माण के समय सदैव चलता रहता है।

आहार-निर्माण के लिये अन्य उपरोक्त वर्णित वस्तुयें प्रायः भूमि और जल से प्राप्त होती हैं। पौधों की जड़ें घोल के रूप में इन्हें भूमि से ग्रहण करती हैं। जड़ों के सिरों के निकट बाल सदृश सूक्ष्म और छोटी जड़ें निकली होती हैं जो जल-शोषण का कार्य करती हैं। अन्य जड़ें प्रायः इसके लिये निरर्थक होती हैं। जैसे जैसे जड़ें बढ़ती जाती हैं वैसे वैसे ये पुरानी शोषण करने वाली सूक्ष्म जड़ें भी

नष्ट होती जाती हैं और नई जड़ें निकली रहती हैं। इस प्रकार जल-शोषण का कार्य निरंतर समान रूप से होता रहता है। भूमि से शोषित जल और उसमें घुले हुए अन्य तत्व धीरे-धीरे ऊपर की बढ़ते हैं और तनों द्वारा होते हुये पत्तियों तक पहुँच जाते हैं। आवश्यकता से अधिक जल पत्तियों द्वारा बाहर निकल जाता है और शेष आहार में परिणत होता है।

बुद्धिहीन, विवेकशून्य और अज्ञानमय शिशु तरु की छोटी पत्तियाँ सूर्य के सुधोपम स्निग्ध किरणों की शक्ति का उपयोग कर स्वयं ग्रहण किये गये कार्बन-डाईआक्साइड और जड़ों द्वारा लिये गये जल तथा अन्य तत्वों के संयोग से विभिन्न पदार्थों का निर्माण करती हैं जिससे न केवल शिशु तरु का क्रमिक विकास और नियमित जीवन-संचालन होता है वरन् अन्य प्राणियों का भी पोषण होता है। सभी प्राणियों के लिये आवश्यक कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन, फैट, विटैमिन्स तथा अन्य अनेक पदार्थ इन्हीं पत्तियों द्वारा निर्मित होता है।

वायु जल, और भूमि से प्राप्त होने वाले तत्वों के पर्याप्त मात्रा में निरंतर मिलते रहने पर शिशुतरु के विकास में बाधा नहीं पड़ती। पर जब भी किसी आवश्यक तत्व का अभाव हो जाता है, उनकी बाढ़ रुक जाती है तब उन्हें पहुँचाना आवश्यक हो जाता है।

वायु का भण्डार अपार है। साथ ही उसे प्रकृति का ऐसा सहयोग प्राप्त है कि चाहे कितना ही कार्बन-डाइ आक्साइड वायुमण्डल से पौधे क्यों न ग्रहण कर लें उससे कमी नहीं हो सकती।

सभी प्राणियों में श्वसन क्रिया होती है। वे वायु मंडल से आक्सीजन और बदले में कार्बन डाइआक्साइड निरंतर छोड़ते रहते हैं। इससे वायुमंडल में पर्याप्त कार्बन डाइआक्साइड पहुँचती रहती है। इतना ही वस्तुओं के सड़ने गलने और जलने पर भी कार्बन-डाइआक्साइड निकलती है जो वायुमंडल में पहुँच जाती है। बड़ी बड़ी निर्माणशालाओं की चिमनियों से निकलती हुई धूमिल वायु, सभी रसोई घरों का काला धूम और रेल के इंजन से निकलते हुये धुयें से कार्बन डाइआक्साइड का भण्डार वायुमंडल में बढ़ता रहता है। इस प्रकार प्रकृति में कार्बन डाइआक्साइड का यह चक्र निरंतर चलता रहता है। और पौधों के लिए कभी कमी नहीं पड़ती।

इस प्रकार आक्सीजन भी वायुमंडल में सदैव बना रहता है जिसे पौधे ग्रहण करते हैं।

हाइड्रोजन प्रायः भूमि के पानी से पौधों को प्राप्त होता है। इसी पानी के साथ घुलकर भूमि के अन्य आवश्यक तत्व भी पौधों के शरीर में पहुँचते हैं। अनेक भूमि में पर्याप्त पानी का रहना नितांत आवश्यकता है। प्रकृति ने उसकी व्यवस्था भी कर रखी है। सभी भूमियों में पानी रोक रखने की क्षमता होती है। यदि हम वर्षा के समस्त जल को खेत में ही सुखा सकें तो वर्ष के अधिकांश भागों में बिना सिंचाई के पौधों को जीवित रखा जा सकता है। पर भूमि में पानी की न्यूनता होने पर कृत्रिम विधियों द्वारा पानी पहुँचाने की आवश्यकता पड़ती है ताकि पौधे हरे भरे बने रहें और उनकी वृद्धि निर्वाध गति से होती रहे। सिंचाई करने का यही उद्देश्य है।

पानी के साथ घुल कर अनेक तत्व भी पौधे के शरीर में पहुँचते और उनके जीवन संचालन में सहायक होते हैं। पौधे की तीव्र बाढ़ तभी हो सकती है जब उसे समुचित रूप में जल तथा खाद्य तत्व उपलब्ध हों। अतएव भूमि में पर्याप्त नमी तथा उपलब्धशील रूप में खाद्य तत्वों की उपस्थिति नितांत आवश्यक है। किसी की भी न्यूनता पौधे के विकास में बाधक होगी।

प्रायः तरुणावस्था में पौधों को विभिन्न तत्वों की सब से अधिक आवश्यकता होती है क्यों कि इसी समय उनकी वृद्धि तेजी के साथ होती है। पूर्ण विकसित हो जाने पर उन्हें बहुत ही कम खाद्य तत्वों की आवश्यकता रह जाती है फिर भी भूमि में उपस्थित रहने पर उनका शोषण होता रहता है।

आवश्यक खाद्यांशों को ग्रहण कर शिशु तरु बढ़ता और शैशव के आंगन को पार कर यौवन के द्वार की ओर उन्मुख हो जाता है जहाँ पहुँचने पर उसमें स्नेह और सौरभ से भरे अनेक मुकुल प्रस्फुटित होते हैं। उनकी पंखुड़ियाँ तरु को इस प्रकार आच्छादित कर लेती हैं कि उसकी रूक्षता और नीरसता भी सरसता का रूप धारण कर लेती है। यहीं से सुमधुर अस्तित्व वाली कलिका अनेक रूपों में

विभक्त हो नवीन संज्ञाओं को धारण करती है जिससे वंश परंपरा के अखंड और अबाध विकास के लिये पुनरुत्पादन हो सके।

अधिकांश पौधों की परिपूर्ण प्रस्फुटित कलियों में प्रायः अंखड़ी, पंखड़ी पुंकेसर और स्त्रीकेसर सभी अंग पाये जाते हैं। पर कुछ पौधों में पुंकेसर स्त्रीकेसर अलग-अलग फूलों में रहते हैं। दोनो ही प्रकार के फूल एक ही वृक्ष अथवा अलग-अलग वृक्षों में होते हैं। जब पुंकेसर स्त्रीकेसर एक दूसरे से विलग रहते हैं तो सेचन क्रिया छोटे छोटे कीड़े मकोड़े अथवा तितलियाँ आदि के द्वारा होती है। जब वे एक ही में साथ होते हैं तो प्रायः यह क्रिया स्वयं हो जाती है। सेचन क्रिया में पुंकेसर के लिंग क्षेत्र से स्त्रीकेसर के योनि क्षत्र पर पड़ता है जहाँ नलिका का रूप धारण कर कुक्ष वृन्त से होता हुआ गर्भाशय में पहुँचता है। यहीं वह गर्भांड से संयुक्त होता और बीज निर्माण करता है। इस प्रकार उर्वरण के उपरान्त बीज और फल बनता है।

कली के स्नेहांचल से रिक्त इसी लघुबीज द्वारा ही उसके परिवार की धारा शतशत रूपों में विभक्त हो आगे बढ़ती और अपनी असंख्य शाखाओं प्राशाखाओं से समस्त जीव जगत में नवजीवन, नवप्राण का संचार करती है।

शिलान्यास के अवसर पर विज्ञान परिषद भवन के सामने उपस्थित सभ्य तथा आमंत्रित व्यक्ति

वैज्ञानिक शिक्षण का आरम्भ

डा० एम० एल० भार्गव

इस दिशा में सर्वप्रथम उद्योग उच्च कक्षाओं में भौतिक विज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ कर हुआ था लेकिन उसके पहले १८५७ की क्रान्ति के पश्चात् काल में जनता द्वारा यथेष्ट अभिरुचि प्रदर्शित करना आरम्भ हो गया था।

१८७४-७५ में अनेक साहित्यिक और वैज्ञानिक समितियाँ विद्यमान थीं जैसे साइंटिफिक सोसाइटी, अलीगढ़, रुहेलखंड लिटररी सोसाइटी, बरेली, ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन मुरादाबाद और सरसैयद अहमद की गाजीपुर की साइंटिफिक सोसाइटी।

मिले कलकत्ता ने पहली कला परीक्षा के लिए तर्क शास्त्र के साथ मनोविज्ञान के विकल्प रूप में रसायन (केमिस्ट्री आफ मेटेलार्ड्स) के अध्ययन की व्यवस्था कर दी थी। १८७१ में वर्नाक्युलर मिडिल परीक्षा स्थापित करने के समय इसने वर्नाक्युलर मिडिल स्कूलों के लिए भी वैकल्पिक-विषय रूप में आरम्भिक स्टेटिस्टिक्स, हाइड्रो स्टेटिस्टिक्स और फोर मेडिक्स की व्यवस्था की।

बी० ए० स्तर पर दो प्रकार के पाठ्यक्रम थे—'क' और 'ख'। १८७५ में २१७ परीक्षार्थियों में से ७६ ने कलकत्ता विश्वविद्यालय परीक्षा में 'ख' पाठ्यक्रम लिया था। म्योर सेन्ट्रल कालेज में विज्ञान के अध्यापक की व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं थी। इसलिए शिक्षा-संचालक ने विज्ञान लेकर प्राप्त बी० ए० उपाधि को एक उपहासास्पद बात तक कह डाला। किन्तु सरकार ने १८७५ के दिनांक ४ दिसम्बर के प्रस्ताव ३६२ ए द्वारा इसकी निम्न शब्दों में आलोचना की :—

"ज्ञान की सब शाखाओं में भौतिक विज्ञान, जो प्रयोग और पर्यवेक्षण का विज्ञान है, लेफ्टिनेंट गवर्नर की दृष्टि में स्वयं ही सबसे से अधिक महत्वपूर्ण है और देशी लोगों के मस्तिष्क को सबसे अधिक पुष्टिदायक हो सकता है।"

कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रथम कला (इन्टर) और बी० ए० परीक्षा के पाठ्यक्रम के सुधार का प्रश्न १८७५-७६ में उठाया गया। फेकल्टी आफ आर्ट्स के ४ दिसम्बर १८७६ के प्रस्ताव के अनुसार एक उपसमिति नियुक्त हुई। उपसमिति ने निम्न सुधार का सुझाव रक्खा :—

कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रथम कला (इन्टर) परीक्षा

आधुनिक पाठ्यक्रम	प्रस्तावित पाठ्यक्रम
१—अंग्रेजी	१—अंग्रेजी, } दोनों पाठ्यक्रमों के लिए
२—प्राचीन भाषा	२—शुद्ध गणित } दोनों पाठ्यक्रमों के लिए
३—प्राचीन इतिहास	३—इतिहास } दोनों पाठ्यक्रमों के लिए
४—गणित अर्थात बीजगणित, रेखा गणित, त्रिकोणमिति और सांख्यिकी	(क) पाठ्यक्रम
५—तर्क शास्त्र और (क) मनोविज्ञान या (ख) रसायन (केमिस्ट्री आफ मेटेलार्ड्स)	४- एक प्राचीन भाषा
	५—तर्क शास्त्र
	या
	६—अकार्बनिक रसायन
	७—विश्लेषणात्मक ज्यामिति

समिति ने इतिहास को वैकल्पिक विषय बनाने की सम्मति नहीं दी किन्तु संस्कृत को एक वैकल्पिक विषय बनाने का परामर्श दिया। पाठ्यक्रम को "क" और "ख" दो भागों में विभाजित करने की सलाह दी। इन परामर्शों को १० फरवरी १८७८ को स्वीकृत किया। एम० ए० परीक्षा के लिए छात्राओं को द्वितीय भाषा की जगह फ्रेंच, जर्मन, इटालियन या कोई भारतीय आधुनिक भाषा लेने और गणित के द्वितीय प्रश्न पत्र के लिए वनस्पति विज्ञान लेने के लिए विकल्प दिया गया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा पाठ्यक्रम के आधुनिकीकरण के लिए यही प्रारम्भिक कार्य था जिससे विज्ञान की उन्नति और अध्ययन के लिए विदेशों के समकक्ष स्थिति हो सके। किन्तु इतना ही यथेष्ट नहीं था। बम्बई, मद्रास तथा पंजाब विश्वविद्यालय ने भी एक पग आगे बढ़ाया और साधारण ज्ञान या गणित के एक भाग रूप में आरम्भिक विज्ञान चालू किया। पंजाब विश्वविद्यालय के वर्नाक्युलर इन्ट्रेंस परीक्षा के लिए गणित के साथ प्रारम्भिक विज्ञान भी सम्मिलित कर लिया।

१८८२-८३ में भारतीय शिक्षा आयोग ने पाठ्यक्रम में "आधुनिक पक्ष" प्रचारित करने की सम्मति दी।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के १५ नवम्बर १८७७ के कार्य विवरण पृ० ४० पैरा ८–१५ में बी० ए० के लिए निम्नलिखित पाठ्यक्रम अनुमोदित किए गए थे :—

वर्तमान पाठ्यक्रम		प्रस्तावित पाठ्यक्रम	
क	ख	क	ख
१—अंग्रेजी	१—अंग्रेजी } 'क' के	१—अंग्रेजी	१—अंग्रेजी
२—मिश्रित गणित	२—मिश्रित गणित } अनुरूप	२—एक प्राचीन भाषा	२—३—निम्न वर्गों में से एक
३—एक द्वितीय भाषा (प्राचीन)	३—अकार्बनिक रसायन	३—निम्न में से एक	(क) मिश्रित गणित, शुद्ध गणित
४—५—निम्न में से दो :—	४—प्राकृतिक भूगोल	(क) शुद्ध गणित	(ख) मिश्रित गणित, भौतिक विज्ञान और अनुमानात्मक तर्क विज्ञान
(क दर्शन	५—भौतिक विज्ञान या वनस्पति विज्ञान या जन्तु विज्ञान या भूगर्भ विज्ञान	(ख) मिश्रित गणित	(ग) मिश्रित गणित, रसायन और भूमिति
(ख) इतिहास		(ग दर्शन	(घ) रसायन और भूमिति या वनस्पति विज्ञान या जन्तु विज्ञान या भूगर्भ विज्ञान
(ग) शुद्ध गणित		(घ) इतिहास और राजनैतिक अर्थशास्त्र	
		४—प्राकृतिक भूगोल	

आयोग ने हाई स्कूल स्तर पर विषयों का पृथक्करण का सुझाव दिया—जिसमें एक पक्ष विश्वविद्यालयों की ओर निर्देशित हो और दूसरा पक्ष अधिक व्यावहारिक रूप का हो जो व्यावसायिक या असाहित्यिक धन्धों के उपयुक्त होने के लिए निर्दिष्ट हो। इसके पश्चात ही १८६८ में मद्रास में उच्च माध्यमिक परीक्षा की स्थापना हुई; बम्बई में युनिवर्सिटी स्कूल फाइनल परीक्षा बनी और पश्चिमोत्तर प्रदेश (उत्तर प्रदेश) और अवध में स्कूल फाइनल परीक्षा की स्थापना प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा हुई। संशोधित पाठ्यक्रम की निम्न विशेषताएँ थीं:—

(क) अधिक व्यावहारिक रूप देने के लिए अंग्रेजी में मौखिक परीक्षा का समावेश किया गया।

(ख) द्वितीय भाषा (जैसे आधुनिक भारतीय या योरोपीय भाषा या कोई भारतीय या योरोपीय प्राचीन भाषा की पाठ्य क्रम में स्वीकृति जिससे छात्र विभिन्न जीवन क्षेत्रों के लिए तैयार हो सकें।

(ग) वैकल्पिक विषयों की वृद्धि की गई जिससे निर्वाचन के लिए अधिक से अधिक व्यापक क्षेत्र हो। मद्रास ने २६ वैकल्पिक विषयों की स्वीकृति की। बम्बई और पश्चिमोत्तर प्रदेश में से प्रत्येक ने ६ की स्वीकृति की।

पाठ्यक्रमों में विविधता थी और इसके परिणाम स्वरूप स्कूल फाइनल परीक्षा बहुत ही लोकप्रिय हुई और एन्ट्रेंस या मेट्रिकुलेशन परीक्षा में बैठने वाले छात्रों (बालकों) की अपेक्षा उस परीक्षा में बैठने वाले छात्रों की संख्या यथेष्ट अधिक थी। तथापि कलकत्ता विश्वविद्यालय ने विकल्प रूप में इन्ट्रेंस परीक्षा स्थापित नहीं की किन्तु विद्यमान एन्ट्रेंस परीक्षा में "व्यावहारिक" विषय प्रचलित करने का निश्चय किया।

इंगलैंड तथा योरोपीय देशों में पाठ्य-क्रम के सुधार का आन्दोलन मध्य शताब्दी के बाद प्रारम्भ हुआ और १६०० तक पूर्णरूप में प्रचलित था। १८५१ ई० की महान प्रदर्शिनी के पश्चात ही इंगलैण्ड में प्राचीन भाषाओं का तीव्र विरोध संचालित हुआ। फ्रांस में विज्ञान एक अतिरिक्त विषय की भाँति स्थान पा सका; जर्मनी में एक राष्ट्रीय आन्दोलन ने पाठ्य-क्रम को विस्तृत करने का मार्ग निकाला और अमेरिका में प्राचीनेतर भाषा की माध्यमिक शिक्षा स्थान पा रही थी।

आधुनिक पाठ्य-क्रम के पक्ष में निम्न तर्क उपस्थित किए जाते थे (क) प्राचीन भाषाओं के अध्ययन की आवश्यकता नहीं रह गई थी क्योंकि इसके अध्ययन से प्राप्त ज्ञान "निरर्थक" था। पहले मध्य युग एवं सुधार युग में माध्यमिक शिक्षा का आधार और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पत्र व्यवहार की भाषा लैटिन थी, किन्तु वह स्थिति नहीं रह गई थी। (ख) आधुनिक मनुष्य को उसके व्यावहारिक जीवन के संचालन की आवश्यकता के लिए प्राकृतिक विज्ञान, गणित, भूगोल और कदाचित विदेशी भाषाएँ और इतिहास का भी ज्ञान आवश्यक था (ग शुद्ध प्राचीन भाषाओं अर्थात् मृत भाषाओं के पाठ्य-क्रम की अपेक्षा विज्ञान के अध्ययन से मस्तिष्क के प्रशिक्षण वृत्तियों को अधिक सम्पादित किया जा सकता था और (घ) शोध और उन्नति की भावना जो उन्नीसवीं सदी को अभिभूत किए थी, उन अध्ययनों के माध्यम से अर्जित की जा सकती थी जो स्वयं ही प्रयोगात्मक थे।

फ्रांस में माध्यमिक शिक्षा में पाठ्यक्रम के छिन्न-भिन्न होना प्रारम्भ होने का अद्भुत इतिहास है। १८५२ में दो पाठ्यक्रम, एक साहित्यिक और दूसरा वैज्ञानिक संचालित हुए। उन दोनों में कुछ उभयनिष्ठ विषय आधार रूप में थे। एक साहित्य और कानून विभाग की ओर निर्देशित था और दूसरा विज्ञान और चिकित्सा तथा औद्योगिक एवं व्यावसायिक पक्षों के विशेष विभागों की ओर निर्देशित था।

१८६५ ई० में विक्टर बरी ने छात्रों पर भार अधिक होने, लैटिन के अध्ययन की उपेक्षा होने और आधुनिक विदेशी भाषाओं के अध्यापकों के अभाव में इस सुधार को पलट दिया। १८८५ में आर० फ्रैरी ने प्राचीन भाषाओं के विरोध का झंडा फिर से खड़ा किया। फलतः १८६८ में शिक्षा पर एक लोक सभा आयोग नियुक्त किया गया। इसके परामर्शों ने मध्य मार्ग निकाला। इसमें आधुनिक पाठ्यक्रम के विस्तार की सलाह दी गई किन्तु प्राचीन भाषा की परम्परा को प्रचलित रखने और दृढ़ करने की इच्छा प्रकट की गई। १६०२ में व्यवस्था में सुधार किया गया और प्राचीन भाषा एवं आधुनिक पाठ्यक्रमों को साथ-साथ ही एक विभाग में स्थापित किया गया।

जर्मनी में १८५६ में आधुनिक शिक्षणालयों को सुव्यवस्थित किया गया जिनके दो प्रकार थे। एक नौ वर्ष का था जिसमें धर्म, जर्मन, लैटिन, फ्रांसीसी, अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल, गणित और विज्ञान की शिक्षा के पश्चात् सबसे अन्त में एक अन्तिम परीक्षा होती। दूसरा छः वर्ष का था जिसमें लैटिन की शिक्षा नहीं होती। इन आधुनिक शिक्षणालयों का विकास फ्रांस-जर्मन युद्ध के पश्चात् हुआ और १८६२ तथा १६०१ में एक सम्यक रूप का सुधार किया गया। नवीन शिक्षण-पाठ्यक्रम प्रकाशित हुए जिनका लक्ष्य पुरानी और नवीन संस्कृतियों का संयुजन तथा लौकिक राष्ट्रीय जीवन के उद्देश्य की अभिवृद्धि थी। वे प्राचीन, अर्द्ध प्राचीन

आधुनिक भाषायें, वैज्ञानिक, जर्मन, इतिहास और धर्म सबके मुख्य आधार थे।

इङ्गलैंड में १८६१ से १६०२ तक जाँच-पड़ताल और आयोगों की अवधि थी जिसके शिक्षा विषयक विधेयक स्वीकृत हुए। १८६१ के क्लेरेंडन आयोग, १८६४ टांटन या शिक्षणालय जाँच-पड़ताल आयोग, और १८८४ के ब्रायको आयोग से बहुत कुछ कार्य सम्पन्न हुआ। १८६८ के सार्वजनिक पाठशाला विधेयक, १८०० और १८७४ के संचालित पाठशाला विधेयक, १८६६ के शिल्पीय शिक्षण विधेयक और १६०२ के शिक्षण विधेयक ने सुधारों को कार्य रूप में परिणत किया।

इस अवधि में प्राचीन भाषाओं के शिक्षण के पोषकों ने पुनः शक्ति संचित की। उनका यह तर्क था कि "शिक्षण का अभिप्राय किसी निर्दिष्ट ज्ञान या कला की प्राप्ति नहीं है बल्कि मस्तिष्क की वृत्तियों का परिष्कार है और प्राचीन भाषायें ऐसे शिक्षण के माध्यम रूप में अत्यन्त ही उपयुक्त थीं। उन्होंने प्राचीन भाषाओं को मस्तिष्क के परिष्कार का सर्वोत्तम माध्यम माना था किन्तु विज्ञान के अध्ययन और वैज्ञानिक विधि में उत्पन्न लौकिक रुचि ने प्राचीन भाषाओं के प्रचार कार्य को पीछे ढकेल दिया।

इस रक्षानीति को अन्तिम धक्का शताब्दी के समाप्त होने के समय "वृत्ति" और स्थानान्तरण" सिद्धान्तों को निर्मूल करने से लगा। यदि मस्तिष्क की पृथक "वृत्तियाँ" नहीं होतीं और "प्रशिक्षण" ऐसी वस्तु नहीं जो स्थानान्तरित की जा सके तो यह तर्क देना कठिन हो गया कि लैटिन व्याकरण के ठीक-ठीक ज्ञान का प्रशिक्षण दूसरे विषयों के लिए यथार्थता का स्वभाव उत्पन्न करने के लिए आवश्यक होता है और यह धारणा कि बच्चों को अपनी मातृभाषा सिखाने के अध्यापन का सर्वोत्तम उपाय प्राचीन भाषाओं का अध्ययन है अब वैज्ञानिक रूप में निराधार बात प्रकट होने लगी।

इसके फलस्वरूप १६०० से १६४० तक पाठ्यक्रम में से प्राचीन भाषायें अपने स्थान से निरन्तर पीछे हटती रहीं। सार्वजनिक पाठशालाओं में प्राचीन भाषाओं के विशेष अध्ययन के इच्छुक छात्रों की संख्या न्यून होने लगी। व्याकरण की अध्ययनशालाओं में मृत भाषाओं का अध्ययन अनेक छात्रों द्वारा नए विषयों के अध्ययन की अभिलाषा से त्याज्य होने लगा जिन्हें विशेषज्ञ पढ़ाते थे। अनेक विषयों में पुराने गुरुओं का स्थान विशेषज्ञों ने ले लिया और शिष्यों के स्थान पर विषय सामग्री पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। शिष्यों के प्रति उपेक्षा के विरुद्ध एवं पाठ्यक्रम के छिन्न-भिन्न करने की प्रतिक्रिया इधर थोड़े समय से पुनः प्रारम्भ हुई है। प्राचीन भाषा को शिक्षा का आधार बनाने के स्थान पर कोई आधार विषय निकालने की ओर प्रयत्न जारी है और १६४६ से इङ्गलैंड में प्राचीन भाषाओं के अध्ययन का कुछ पुनरुद्धार आरम्भ हुआ है।

उत्तर प्रदेश में पाठ्यक्रम निर्धारण

विदेशों में इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों का प्रभाव उत्तर प्रदेश की शिक्षा-नीतियों पर बहुत अधिक पड़ा। प्रशासकों और नीति-निर्धारकों ने जो अधिकांश विदेशी थे, योरोपीय देशों से प्रेरणा प्राप्त की। १८८२-८५ के भारतीय शिक्षा आयोग और १६०२ के भारतीय विश्वविद्यालय आयोग दोनों की ही सिफारिशें ऐसे ही झुकावों की अनुवर्तिनी थीं। प्रयाग विश्वविद्यालय ने, जिस पर माध्यमिक शिक्षा के निर्देशन और सुधार का भार था, ऊपर की सिफारिशों के पालन के लिए निम्न उपयोगों का सूत्रपात किया:—

(१) १८६४ में स्कूल फाइनल परीक्षा स्थापित की।

(२) १८६२ से इंटरमीडिएट परीक्षा (कला) दो विभागों (क) और (ख) में खंडित हुई (१३ जनवरी १८१० के प्रस्ताव सं० १३ को देखें)

(३) १८६० में इंटर परीक्षा स्तर पर भौतिकी का अध्ययन सञ्चालित हुआ।

(४) पृथक विज्ञान विभाग स्थापित हुआ (देखें पत्र संख्या ३१५ दिनांक २५ अक्तूबर १८६४ जो सचिव भारत सरकार गृह विभाग द्वारा पश्चिमोत्तर और अवध प्रदेश सरकार शिक्षा विभाग के सचिव को भेजा गया।)

(५) भौतिकी (१८६८) की जगह भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान करने के लिए कला संशोधन करने के लिये अधिनियम ३६ स्वीकृत हुआ है।

[शेष पृष्ठ ६० पर]

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—श्रीरामदास गौड़ और प्रो० सालिगराम भार्गव ।=)
२—चुम्बक—प्रो० सालिगराम भार्गव ।।।=)
३—मनोरञ्जन रसायन—प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव २)
४—सूर्य सिद्धान्त—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव छः भाग मूल्य ८) । इस पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।
५—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी १)
६—समीकरण मीमांसा—पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)
७—निर्णायक डिटमिनैंटस—प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री ।।।)
८—बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस सी०, १।)
९—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशंकर पचौली; ।=)
१०—व्यङ्ग-चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; २)
११—मिट्टी के बरतन—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; (अप्राप्य)
१२—वायुमंडल डाक्टर के० बी० माथुर, २)
१३—लकड़ी पर पालिश डा० गोरखप्रसाद और श्री रामरतन भटनागर, एम० ए०, २) (अप्राप्य)
१४—कलम पेवंद ले० श्री शंकरराव जोशी; २)
१५—जिल्दसाजी—श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० २)
१६—तैरना—डा० गोरखप्रसाद १)
१७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—(अप्राप्य)
१८—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएं—डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० ।।)
१९—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकारनाथ परती; मूल्य ।।।)
२०—फोटोग्राफी—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन) ४),
२१—फल संरक्षण—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह २।।)
२२—शिशु पालन—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई । मूल्य ४)
२३—मधु मक्खी पालन—दयाराम जुगड़ान; ३)
२४—घरेलू डाक्टर—डाक्टर जी० घोष डा० उमाशङ्कर प्रसाद, डा० गोरखप्रसाद, ४)
२५—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, ३।।)
२६—फसल के शत्रु—श्री शङ्कर राव जोशी ३।)
२७—साँपों की दुनिया—श्री रमेश वेदी ४)
२८—पोर्सलीन उद्योग—प्रो० हीरेन्द्र नाथ बोस ।।।)
२९—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ—२)
३०—गर्भस्थ शिशु की कहानी—प्रो० नरेन्द्र २।।)

अन्य पुस्तकें

१—विज्ञान जगत की झाँकी (डा० परिहार)		२)
२—खोज के पथ पर (शुकदेव दुबे).		।।)
३—विज्ञान के महारथी (जगपति चतुर्वेदी)		२)
४—पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ	(,,)	१।।)
५—हमारे गाय बैल	(,,)	।।)
६—मवेशियों के छूत के रोग	(,,)	।।)
७—मवेशियों के साधारण रोग	(,,)	।।)
८—मवेशियों के कृमि-रोग	(,,)	।।)
९—फसल-रक्षा की दवाएँ	(,,)	।।)
१०—देशी खाद	(,,)	।।)
११—वैज्ञानिक खाद	(,,)	।।)
१२—मवेशियों के विविध रोग	(,,)	।।)

पता—विज्ञान परिषद् (म्योर सेन्ट्रल कालेज भवन) प्रयाग

Reg. No. A 372

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools;
Colleges and Libraries

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६ वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक वार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों की परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तक उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक डा० *देवेन्द्र शर्मा*
सहायक संपादक—*श्री जगपति चतुर्वेदी*

मुद्रक—श्री सरयू प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग तथा प्रकाशक—डा० रामदास तिवारी प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

विषय-सूची

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५।

प्रधान सम्पादक — डा. देवेन्द्र शर्मा
सहायक सम्पादक — जगपति चतुर्वेदी

भाग ८३ | सिंह, २०१३; अगस्त, १९५६ | संख्या ५

विज्ञान के नये चरण

आज सबसे कौतूहलवर्द्धक विषय यह दिखाई पड़ रहा है कि क्या हम सितारों पर जा रहे हैं ? धरती पर तो मनुष्य अपनी बुद्धि के भारी चमत्कार दिखाता ही था, अब वह क्या यहाँ पर्याप्त क्षेत्र न समझ कर सितारों की ओर बढ़ना चाहता है।

क्या मनुष्य सचमुच सितारों पर पहुँच रहा है या कभी पहुँच सकता है ? आज इतनी तेज सवारियाँ अवश्य बन सकी हैं जिनकी चाल प्रति घंटे मीलों में न बताकर प्रति सेकेंड मीलों में बताई जाने लगी है। आज का राकेट सबसे तेज चाल की सवारी है। वह प्रति सेकेंड डेढ़ मील की चाल से उड़ता है। आशा है कि वह प्रति सेकेंड ५ मील की चाल से शीघ्र ही उड़ने लगेगा लेकिन रसायन विद्या से ईंधन बनाने की अन्तिम रूप की उन्नति होने पर १० मील प्रति सेकेंड चाल भी कदाचित की जा सके। ऐसी चाल के राकेटों से चन्द्रमा तक की यात्रा ५ दिन से कुछ कम में पूरी हो सकती है। निकट के कुछ ग्रहों, मंगल, शुक्र आदि तक की यात्रा छः मास उड़ते रहने में पूरी हो सकती है किन्तु वृहस्पति, शनि आदि दूर के ग्रहों की यात्रा तो कई वर्षों तक लगातार उड़ते रहने में पूरी हो सकती है। इस चाल के राकेट से सबसे निकट के तारा तक जाने में एक लाख वर्ष तक उड़ान करनी पड़ेगी। परमाणु शक्ति से चलने वाले अधिक वेगशील राकेट बन जाने पर एक हजार वर्ष तक यात्रा करनी पड़ सकती है, तब कहीं निकटतम तारा प्रोक्सिमा सेंटौरी तक पहुँचा जा सकता है।

मनुष्य की आयु ही कितनी होती है ? एक हजार वर्षों में तो मनुष्य की ५० पीढ़ियाँ पैदा हो सकती हैं। फिर भी तारा तक पहुँचने की संभावनायें कल्पना से बाहर की बात नहीं हैं। मान लीजिये कि मीलों व्यास का कोई बड़ा राकेट बना जो पूर्ण आत्मनिर्भर होकर १००० वर्ष तक की उड़ान कर सके और उसमें ही एक मनुष्यों का उपनिवेश आत्म

निर्भर रूप में पड़ा रहे। पीढ़ियाँ जन्म धारण कर जीती रहें, उधर राकेट उड़ता ही चला जाय। अंत में जीवित पीढ़ी इस तरह लक्ष्य तक कदाचित पहुँच ही जाय।

जीव घोर शीत और उष्णता की ऋतु में बचे या जीवित रह सकने के लिये जीवन-क्रिया क्षीण-सी कर दीर्घ निद्रा में पड़े रह सकते हैं। हो सकता है कि मनुष्य को भी इस लम्बी यात्रा की अवधि के लिये दीर्घ निद्रा में रक्खा जा सके और लक्ष्य के निकट आने पर ही उसे जाग उठने का प्रबंध रक्खा जाय।

जनन-कण भी दीर्घ निद्रा में रक्खे जाने लगे हैं और उनको पुनः जागृत कर जीव उत्पन्न करते देखा जाता है। इस तरह आत्मसंभव जनन-कण ही राकेट में रक्खे जायँ तो यात्रा की अवधि में सुप्त ही रहें। अंतिम बीस वर्ष रह जाने पर उनसे मानव उत्पन्न हो। बिजली के अद्भुत यंत्रों से उनका पालन पोषण और शिक्षण भी हो। वे पृथ्वी लोक तक वहाँ का संवाद भी भेज सकें।

ऐसी संभावना ही क्यों न मानी जाय कि हम मरणधर्मा स्वभाव छुड़ाने की कोई औषधि या संजीवनी ही किसी दिन बना सकेंगे। यंत्रों के घिसने की तरह शरीर तो छीजता नहीं। कोष नये-नये ही बनते रहते हैं। इसलिये संभव है कि मरण का कारण ज्ञात कर मिटाया जा सके।

तारा तो सूर्य की तरह आग के गोले ही हैं। इसलिये उन पर किसी प्राणी का होना कठिन है परन्तु उनमें भी सूर्य लोक के ग्रह-उपग्रहों की तरह ग्रह-उपग्रह हो सकते हैं। संभव है उनमें किसी पर हमारे भूलोक से भी अधिक उन्नति किये हुये मानव विद्यमान हों।

प्रकाश की चाल प्रति सेकेंड १८६००० मील होती है। इससे तीव्र चाल किसी वस्तु की हो ही नहीं सकती। किन्तु इतनी शीघ्रता या वेग की सवारी पैदा करना तो बहुत ही कठिन या असंभव सी बात कही जा सकती है। उसके निकट के वेग की भी सवारी बनना भी कठिन है। यह कभी हो सकता है कि परमाणु को पूर्ण विध्वंस करने की युक्ति या शक्ति प्राप्त हो जाय तो प्रकाश के जोड़ की चाल वाली सवारी भी कभी ठोस सत्य बन सकती हो।

यह तो संभावनाओं या कल्पनाओं की बात हुई। अब आज की हस्तगत वैज्ञानिक सफलताओं की बात लीजिए। आज राकेट बनाने में अद्भुत सफलता मिल चुकी है। उसकी चाल बढ़ाने के लिये उसको कई कोठों या चरणों का बनाया जा सकता है। एक राकेट बड़ा बनाया जाता है जिसके सिर पर दूसरा राकेट लगा होता है। पहले राकेट की शक्ति समाप्त होने पर उसके ऊपर लगा हुआ राकेट अपने इंजिन से उड़ना प्रारम्भ करता है परन्तु उसकी चाल तो पहले से ही डेढ़ मील प्रति सेकेंड रहती है इसलिए अब तीन मील प्रति सेकेंड हो जाती है। उधर पहला राकेट भूमि पर गिर जाता है। इसी तरह तीन कोठों वाले राकेट की चाल ४½ मील प्रति सेकेंड हो सकती है।

राकेट क्या है, अब यह बात सब को ज्ञात हो गई है। आकाशबाण या सरगबान में बारूद जल कर नीचे के छेद से भागती है—लेकिन उसके उल्टे आकाश बाण ऊपर भाग उठता है। न्यूटन का यह सिद्धांत प्रसिद्ध है कि प्रत्येक क्रिया की कोई प्रतिक्रिया होती है। हवा भरे गुब्बारे में से एक ओर से हवा बाहर निकलने दी जाय तो वह दूसरी ओर भाग उठता है। उस सिद्धांत पर ही हमारे नये यान बन रहे हैं। जेट इंजिन के तेज हवाई जहाज उसके नमूने हैं। रासायनिक ईंधनों को उसके इंजिन में जलने का अवसर देकर ऐसी तेज गैस पैदा की जाती है जो किसी छेद से बहुत तेजी से बाहर निकल उठे। उसके ही कारण जेट वाला वायुयान बहुत तेजी से आगे या ऊपर बढ़ता है। गैसों के जल उठने के लिये हवा की आक्सिजन आवश्यक होती है। यदि यान के अन्दर ही आक्सिजन भी मौजूद रक्खी जाय तो ऐसे इंजिन उन जगहों में भी काम दे सकते हैं जहाँ हवा का नाम न हो। ऐसे ही इंजिनों को

राकेट नाम दिया जाता है। जेटइंजिन और राकेट में यही अन्तर होता है। अतएव आकाश की लम्बी यात्रा कर ग्रहों या चाँद तक जाने में राकेट ही सफल हो सकते हैं। पृथ्वी के आकर्षण और हवा की रगड़ की बाधाएँ ही राकेट की दूर तक उड़ान में भारी रुकावट है। इनके भी दूर करने के उपाय निकाले गये हैं।

राकेट को दो कोठों या दो चरणों की जगह यदि तीन चरणों या कोठों का बनाया जाय तो तीसरी मंजिल या चरण वाला राकेट अपनी चाल दूसरे चरण वाले राकेट से बढ़ा सकता है और उसकी चाल ४½ मील प्रति सेकेंड हो सकती है। कोई भी गोला या यान कम से कम ४½ मील प्रति सेकेंड की चाल पैदा कर सके तभी पृथ्वी के आकर्षण को दबाकर उसके चारों ओर परिक्रमा करता रह सकता है। हवा की पेटी भी २०० मील की ऊँचाई तक ही प्रायः होगी। इसके बाद बहुत ही पतली या नाम मात्र की ही हवा होगी। इसलिये २०० मील से ऊपर की ऊँचाई पर कोई राकेट यथेष्ट तेज चाल बना ले तो हवा की रुकावट से भी प्रायः छुटकारा मिल सकता है। इसलिये अगले वर्षों में ऐसे नकली चाँद उड़ाने की कोशिश हो रही है जो २०० और ३०० मील की ऊँचाइयों के निकट पहुँच कर पृथ्वी की परिक्रमा करने लगे। प्रति ९० मिनट पर इनकी एक परिक्रमा पूरी होगी। यदि सचमुच ऐसे नकली चाँद उड़ सकें जो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से कुछ छुटकारा सा पाकर अपनी तेज चाल के कारण परिक्रमा करते रह सकें तो भविष्य में बड़े चाँद अधिक ऊँचाई पर उड़ाये जा सकते हैं जो आसमानी स्टेशन का काम करें। पृथ्वी के चारों ओर घूम आने में उन्हें उतना ही समय लग सकता है जितने समय में पृथ्वी अपनी धुरी पर एक पूरा चक्कर लगाती है इसलिये ऐसा स्टेशन पृथ्वी पर से सदा एक जगह ही ठहरा जान पड़ सकता है। वहाँ से शत्रु देशों पर दृष्टि रखने या राकेट की मार करने का भी सुभीता रह सकता है। वहाँ से चंद्रमा तक भी पहुँचना संभव हो सकता है। फिर कौन कह सकता है कि वहाँ मनुष्य का उपनिवेश ही न बस जाये। नकली चंद्रमा की शक्ल कई तरह की हो सकती है। उनको अधिक दूरी पर देख सकने वाले यंत्र भी बन गये हैं। यदि एक गेंद के बराबर भी कोई नकली चाँद सफेद रङ्ग में पुता हो और १००० मील की ऊँचाई पर उड़ता हो तो वह विशेष यंत्रों से देखा जा सकता है। जर्मनी के "वी २" राकेटों के बराबर कोई सफेदी पुता राकेट चंद्रमा तक भी पहुँचा हो तो उसकी गतिविधि का पता पृथ्वी से चलाया जा सकता है। कोई काला रङ्ग का गोला या पदार्थ भी एक फुट व्यास का हो तो वह १००० मील की ऊँचाई तक देखा जा सकता है। इन युक्तियों से नकली चाँद बनाकर उड़ाने की परीक्षा की जा रही है।

राकेटों की उड़ान नकली चंद्रमाओं की उड़ान या चंद्र या मंगल की यात्रा से भी अधिक सनसनीदार बात परमाणुओं के संबंध में एक ऐसी भारी खोज है जिसका श्रीगणेश आज विज्ञान कर चुका है। अभी वह बात खोज-पत्रों तक ही है। परन्तु इसकी संभावनायें बहुत ही अधिक हैं। इसको ठीक तरह समझने के लिये परमाणुओं की आंतरिक रचना तथा उनके किनकों और उनकी बिजली शक्ति के भेदों को जानना चाहिये। थोड़े में यह जान लेना काफी है कि प्रत्येक परमाणु में केन्द्र के कण धनाणु होते हैं और उसके चारों ओर दूसरे कण ऋणाणु चक्कर लगाते हैं। भारी विषमता यह है कि केन्द्र का प्रत्येक किनका या कण किनारे वाले किनके से १८०० गुना भारी होता है।

एक विचित्र बात यह है कि केन्द्रकण में कुछ तो बिजली के आवेश या शक्ति वाले कण होते हैं जिन्हें धनाणु या प्रोटोन कहते हैं और कुछ नपुंसक या उदासीन होते हैं। बिजली की दो किस्में मानी जाती हैं, एक को ठंडी बिजली या धन बिजली और दूसरी को गर्म बिजली या ऋण बिजली कह सकते हैं। धन और ऋण बिजली के तारों को शहरों में साधारण लोग ठंडा और गर्म तार कहते

हैं। पहले तो यही मालूम हो सका था कि प्रोटोन केन्द्र के कणों में जिनमें बिजली हो सकती है उनमें धन बिजली ही होती है और पारिधि वाले कणों में ऋण बिजली होती है। परन्तु खोज जारी रहने पर यह भी मालूम हुआ कि छोटे कणों या पारिधि वाले कणों का ऐसा रूप भी हो सकता है जिसमें धन बिजली हो या वे नपुंसक हों। यही नहीं, ऋणाणु जहाँ धनाणु के १८०० वें भाग बराबर ही होता था वहाँ बीच की स्थिति के भी कण मिले जिन्हें मेसोन या दूसरे नाम दिये गये। इनमें भी धन और ऋण बिजली वाले और नपुंसक कण मिले। अब यह सवाल भी उठने लगा कि केन्द्र वाले भारी कणों की बराबरी वाले कण भी उसकी उलटी तरह की बिजली या ऋण बिजली वाले क्यों नहीं पाये जाते।

इन बातों की उधेड़-बुन जारी थी। इस का एक भारी महत्व था। जो कुछ भी शक्ति अब तक ऐटम बम, हाइड्रोजन बम आदि द्वारा मिल सकी है, वह परमाणु के बहुत छोटे हिस्से के बर्बाद होने से ही पैदा होती है। पदार्थ ही नष्ट होने पर शक्ति बनता है। इसलिये कुछ फीसदी अंग के बर्बाद होने पर परमाणु के किनके जब इतनी भारी शक्ति पैदा करते हैं तो परमाणु के सबसे भारी अंग धनाणु या केन्द्र के कणों को पूरी तरह विध्वंस करने पर कितनी अधिक शक्ति पैदा हो सकी है। उसका कुछ भी अनुमान उस समय तक नहीं हो सकता था जब तक हमें यह न मालूम होता कि धनाणु के विपरीत बिजली शक्ति वाले उतने ही भारी कण या प्रतिलोम धनाणु या ऐंटी-प्रोटोन भी होते हैं। अमेरिका की परमाणु संबंधी प्रयोगशाला में ऐसा कण बनावटी रूप में अभी पैदा किया जा सका है जो इस भारी कण के ऋण बिजली युक्त रूप का गुण दिखलाता है। हम आशा कर सकते हैं कि कभी भविष्य में इस खोज के बाद पूर्ण धनाणु (केन्द्र कण) को विध्वंस कर ऐसी शक्ति पैदा करने में सफलता मिलेगी जिसके आगे आज के परमाणु या उद्जन (हाइड्रोजन) बमों की शक्ति केवल खेल मात्र ही रह गई होगी। इस समय हम ग्रहों तथा, ताराओं तक पहुँचने वाले ऐसे यान बना सकते होंगे जो प्रकाश के लगभग तीव्र वेग से चल सकते हैं। सफलता की झांकी तो कुछ आज भी मिलने लगी है। धनाणु या प्रोटोन का प्रतिलोम धनाणु या ऐंटी प्रोटोन से टक्कर कराने पर उसके छोटे-छोटे खंड मेसोन या बीच मे उन कणों समान हो जाते हैं जिनका वजन धनाणु और ऋणाणु के बीच का होता है। शायद कभी धनाणु के पूर्ण विध्वंस का दृश्य भी देखा जा सके। जो शक्ति का अपार स्रोत ही सिद्ध होगा तब पत्थरकोयला, मिट्टी का तेल, पेट्रोल, रासायनिक ईंधन, बिजली आदि शक्तियाँ घूरे पर फेकने वाली बेकार वस्तुएँ ही हो जायँगी। परमाणु की ही पूर्ण और प्रबल शक्ति मनुष्य के वास्तविक अधिकार में रह कर सब सेवायें पूर्ण कर सकेगी।

—जगपति चतुर्वेदी

[आकाशवाणी, इलाहाबाद के सौजन्य से]

क्लोरेला

डा० ब्रह्मस्वरूप मेहरोत्रा, लेकचरर, वनस्पति विज्ञान विभाग, प्रयाग वि० वि०

यह सभी को ज्ञात है कि संसार की जनसंख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। इसके साथ ही साथ अत्यधिक भोजन सामग्री की भी पुकार होना आवश्यक ही है। पादप तथा कृषि विज्ञानाचार्य भरसक प्रयत्न तो कर रहे हैं पर कई ऐसे कारण हैं जो उनके आधिपत्य के बाहर है जिसके फलस्वरूप उतनी उन्नति नहीं हो पाती जितनी कि वे चाहते हैं। वे पादपों के रोगों के ऊपर नियन्त्रण रखने के कई साधन निकालते हैं पर उसके साथ ही साथ रोग भी नवीन रूप धारण कर रहे हैं इसीलिए हर वर्ष कृषि का बहुत भाग व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त खेतों में उच्च खेती का होना उचित मौसम तथा धरती पर निर्भर रहती है।

ऐसी परिस्थिति में हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपने भोजन के थोड़े भाग की उत्पत्ति अव्यावहारिक रीतियों द्वारा करें। फिर जहाँ मनुष्य अपने तन को ढकने का कपड़ा तथा अपने जीवन को सुखी बनाने के तमाम साधन उद्योग द्वारा मनचाहा उत्पन्न कर रहा है वहाँ उसको अपने लिए खाद्य पदार्थों को अपनी आवश्यकता के अनुसार उत्पन्न करने की चेष्टा करना स्वाभाविक ही है। वैज्ञानिकों ने हाल में एक ऐसे क्षुद्र पादप का पता लगाया है जिसे हम अपनी आवश्यकतानुसार मात्रा में उत्पन्न कर सकते हैं।

पुराने तालाबों तथा वर्षा ऋतु के पोखरों में एकत्रित जल के हरे रङ्ग से तो हम सभी परिचित हैं। जल का वह हरा रङ्ग ऐसे अणुजीवों के कारण होता है जिन्हें वैज्ञानिक पादप जगत के ऐल्गी वर्ग में सम्मिलित करते हैं और जिन्हें सामान्य मनुष्य काई कहता है। यह तो हमें ज्ञात ही है कि प्रत्येक जीव एक या एक से अधिक कोषों का बना हुआ है। कहा जाता है कि हमारा शरीर, २६,५००,०००,०००,००० कोषों से निर्मित है जिसमें से प्रत्येक कोष शरीर का एक जीवित अंग है पर सभी कोष मिल कर शरीर के अनेक कार्यों में संलग्न रहते हैं। ऐल्गी वर्ग के पादप एक कोषी से बहु कोषी होते हैं। एक कोषी ऐल्गी वर्ग के अनेक पादपों में से एक क्लोरेला है। वह क्षुद्र पादप अनेक वर्षों से पादप दैहिकी विज्ञानाचार्यों का वल्लभ रहा है। इसके कई कारण हैं। इसे सुगमता से प्रयोगशाला में बार-बार उत्पन्न किया जा सकता है। फिर उच्च कोटि के पादपों के विपरीत क्लोरेला में जड़, पत्तियाँ तथा प्ररोह की अनुपस्थिति के कारण उसकी दैहिकी विज्ञानाचार्यों ने इस पादप को उच्च कोटि के पादपों का एक प्रतिनिधि मान कर पादपों के भोजन उत्पन्न करने की क्रिया, श्वसन क्रिया तथा अन्य जीवनावश्यक क्रियाओं का अध्ययन किया। इसकी वृद्धि की द्रुत गति का तथा इसकी रासायनिक संरचना का ज्ञान होने पर स्पोर (Spoehre) तथा मिलनर (Milner), दो अमरीकी वैज्ञानिकों ने लगभग ७ वर्ष पहले इन क्षुद्र जीवों को भोजन के लिए महानुमाप से वृद्धि करने का प्रयत्न किया। यद्यपि ऐल्गी वर्ग के पादपों को महानुमाप से उपजाने का विचार नवीन है पर वे प्राचीन काल से ही भक्षण के एक प्रभाव समझे जाते हैं। समुद्र में अनेक प्रकार के ऐल्गी वर्ग के पादम होते है जिन्हें समुद्री घास (Seaweeds) कहते हैं। वे मछलियों के भोजन के मुख्य अंग है। मनुष्य द्वारा ये प्रायः ऐसे ही देशों में प्रयोग में लाई जाती हैं जहाँ अन्य प्रकार के भक्षणीय पदार्थों का सदैव मिलना कठिन होता है जैसे स्काटलैंड, आयरलैंड, जापान, चीन आदि। जापानी तो बहुत पहले

से ही समुद्री घास द्वारा अनेक स्वादिष्ट भोजन बनाने में जगत-प्रसिद्ध हैं। अब वे क्लोरेला को भी अपनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। जापान के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० हिरोशी टामिशी टामिया ने भिन्न प्रकार की ऐल्गी से स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ बनाये हैं। उनका कहना है कि क्लोरेला का चूर्ण (पाउडर) आइस क्रीम में मिश्रण करने पर आइस क्रीम का स्वाद अति उत्तम हो जाता है।

क्लोरेला कई प्रकार के प्राकृतिक वास में पाया जाता है पर प्रायः यह समुद्रों तथा झीलों में नहीं मिलता। यह तो नरम मिट्टी के ऊपर तथा तालाबों और पोखरों में प्रायः पाया जाता है। पेड़ों के तने तथा नम दीवारों पर जो हरी खोदमय उपज देखने में आती है वह भी अधिकांश क्लोरेला की ही होती है। आखिर क्लोरेला होता किस प्रकार का है तथा उसका हम अन्य अणु जीवों से किस प्रकार भेदीकरण कर सकते हैं? इसका पता लगाने के लिये हमें अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता लेनी होती है। यदि हम क्लोरेला युक्त उस हरे जल की बूंद को इस यन्त्र द्वारा देखते हैं तो हमें छोटे-छोटे गोलाकार अंग देखने में आते हैं। प्रत्येक अंग एक स्वतन्त्र क्लोरेला पादप है। वे परिमाण में प्रायः २ से १० माइक्रन तक के होते हैं (१ माइक्रन ०·००१ मिलीमीटर या ०·००००४ इंच के लगभग होता है); या यों कहिए कि यदि हम क्लोरेला पादप को ३००० गुना विशाल करें तो वह कहीं एक अक्षिगोल के बराबर होगा। इतने छोटे परिमाण के कारण इसकी संरचना का पूर्णतः ज्ञान अभी नहीं हो पाया है। अधिकतर तो हमें इतना ही ठीक पता है कि वस्तुतः इसके अन्दर दो वस्तुयें होती हैं, एक जिसे शादि-घटन (क्लोरोप्लास्ट) दूसरा प्रोभूजक (पारिनौयड़) कहते हैं। प्रोभूजक के ही अन्दर प्रोटीन एकत्रित रहता है।

अन्य हरे पादपों के ऊपर क्लोरेला के लाभ

यह देखा गया है कि क्लोरेला में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है—२५ से ५० प्रतिशत। इतना ही नहीं क्लोरेला की प्रोटीन अन्य शाक प्रोटीनों से अधिक उचित होती है। इसमें एक आवश्यक पदार्थ लाइसीन भी होता है। चूहों के बच्चों पर प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि क्लोरेला की प्रोटीन ईस्ट तथा मूंगफली की प्रोटीन से उच्च है पर दूध की प्रोटीन से यह आधी होता है। प्रोटीन के अतिरिक्त क्लोरेला में विटामिन भी अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। लगभग एक चौथाई पौंड सुखाए हुए क्लोरेला में केवल विटामिन 'सी' को छोड़ कर अन्य सभी मनुष्य के लिए आवश्यक विटामिन उचित मात्रा में उपस्थित रहती हैं। विटामिन 'सी' ताजे क्लोरेला में तो इतनी अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं जितना हम इस विटामिन के सर्वोत्तम प्रभव नींबू के रस में पाते हैं पर अभाग्यवश क्लोरेला के सूखने के साथ ही साथ इस विटामिन का भी नाश हो जाता है। १९५१ में मेरीलैण्ड विश्वविद्यालय में यह खोज द्वारा पता लगाया गया है कि मुर्गियों में कुछ विटामिनों, जैसे राइबोफ्लेबीन, 'बी १२' तथा 'ए' की कमी उनको क्लोरेला का सेवन कराने से पूरी की जा सकती है। इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया है कि क्लोरेला के शोरबे (सूप) का कुछ वर्षों तक सेवन करने से कोढ़ियों के सामान्य स्वास्थ्य में उन्नति हुई है। इसका कारण क्लोरेला के उच्च आहार होने अथवा उसके अन्दर किसी अज्ञात चिकित्सीय पदार्थ की उपस्थिति का होना हो सकता है।

क्लोरेला के उच्चत्तर खाद्य पदार्थ होने के अतिरिक्त इसके साथ अन्य लाभ भी हैं। यह तो हमें ज्ञात ही है कि हरे पादप की वृद्धि के लिए सूर्य प्रकाश अत्यावश्यक है। सूर्य प्रकाश से प्राप्त शक्ति की सहायता से ही पादप कार्बन-डाइऑक्साइड और पानी से उन पदार्थों को उत्पन्न करते हैं जिनके द्वारा पादप का निर्माण होता है। ऐसा सभी हरे पादपों में होता है चाहे वह गेहूँ का हो अथवा क्लोरेला का। फिर भी इनमें एक सार्थक अन्तर है। जहाँ गेहूँ तथा अन्य खेतों के पौधे प्राप्य सूर्य-प्रकाश का केवल ०·३ प्रतिशत भाग ही दक्षतया प्रयोग में लाते हैं वहाँ

क्लोरेला तथा अन्य ऐल्गी वर्ग के पादप खेत के पादपों से ७ गुना सूर्य-प्रकाश प्रयोग में लाते हैं अर्थात् प्राप्य सूर्य-प्रकाश का २ प्रतिशत भाग। उसका कारण यह है कि क्लोरेला की भाँति खेतों में पादपों को हम इतने समीप नहीं उगा सकते जितने समीप धरती या पानी पर क्लोरेला पाया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि प्रति एकड़ धरती में ४० टन क्लोरेला बड़ी आसानी से उपजाया जा सकता है। खेतों में सूर्य प्रकाश का अधिक भाग धरती पर ही गिरता है।

इसके अतिरिक्त सामान्य पादपों में वृद्धि तथा प्रजनन क्रिया बड़ी लम्बी तथा जटिल होती है। क्लोरेला में बड़े पादपों की भाँति पुष्पादि नहीं होते। इसमें वृद्धि तथा प्रजनन दोनों ही बड़े साधारण तथा सरल रूप से होते हैं। क्लोरेला विभाजन द्वारा एककोपी से बहुकोपी हो जाता है। इस प्रकार उत्पन्न क्लोरेला के नवीन पादप कुछ समय तक पितृ पादप के अन्दर ही रहते हैं अन्त में पितृ कोप की दीवार के फटने पर बाल पादप विमुक्त हो जाते हैं और अपना नव-जीवन प्रारम्भ करते हैं। वे भी प्रौढ़ होने पर पितृ पादप की भाँति विभाजन द्वारा नवीन पादपों का निर्माण करते हैं। क्लोरेला में प्रजनन तथा वृद्धि बड़ी तेजी से होती है। यहाँ तक कि एक दिन में ही अपनी परिमा (वन) से ७ गुना से भी अधिक बढ़ सकता है। इसके अतिरिक्त खेतों के पादपों के विपरीत क्लोरेला ऐसे पादपों की वृद्धि के लिए अनुचित अथवा उचित किसी प्रकार की मिट्टी की आवश्यकता नहीं पड़ती। इनकी वृद्धि के लिए तो केवल ऐसे पानी की आवश्यकता पड़ती है जिसमें वे रासायनिक पदार्थ घुले हों जो प्रायः मिट्टी में पाये जाते हैं। इस क्लोरेला को हम किसी भी स्थान पर इच्छानुसार उपजा सकते हैं। प्रयोगशाला में क्लोरेला की वृद्धि शीशे के पात्रों में ऐसे विलयन को भर कर की जाती है जिसमें उचित मात्रा में रासायनिक पदार्थ घोल दिए गए हैं।

क्लोरेला के उपरोक्त गुणों को देखते हुए तो ऐसा अनुभव होता है मानों विज्ञान ने एक ऐसा पादप खोज निकाला है जिसकी मानवता बाट-जोह रही थी। पर प्रयोगशाला में थोड़ा-सा क्लोरेला उत्पन्न करने से संसार की खाद्य स्थिति में तो अन्तर आ नहीं सकता। इसके लिए हमें टनों क्लोरेला उत्पन्न करने की आवश्यकता है। क्लोरेला की महानुमाप उत्पादन निर्माणशाला तो छोटे शीशे के पात्रों के प्रतिकूल बड़े-बड़े तालावों की होगी जिसमें उचित रासायनिक पदार्थों का विलयन भरा रहेगा और जिसके द्वारा कार्बनडाइऑक्साइड गैस छोड़ी जावेगी। उस निर्माणशाला को हम किसी ऐसे स्थान पर लगा सकेंगे जहाँ उचित सूर्य प्रकाश हो तथा ताप में वर्ष भर अधिक परिवर्तन न होता हो। कार्नेगी इंस्टीट्यूशन में एक कारखाना एक अधिक ऊँची इमारत की छत पर लगाया गया है। इस कारखाने में महानुमाप से क्लोरेला उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

यह तो भविष्य ही बतलावेगा कि जैसा हम वैज्ञानिक रूप से उचित समझते हैं वह आर्थिक तथा अन्य विचारों द्वारा भी व्यवहारिक हो सकेगा। अभी तो हम यही कह सकते हैं कि जो कुछ हमें क्लोरेला के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त है वह बड़ा आशाजनक है।

आकाशबाण या राकेट कैसे चलता है ?

जगपति चतुर्वेदी

मामूली तौर पर तो यही कहना चाहिए कि राकेट या आकाशबाण एक नली होता है जिसका एक मुंह बंद किया रहता है। भीतर नली में जल उठने वाली चीज, बारूद या ऐसी कोई दूसरी चीज रहती है। जब उस के पलीते में आग लगा दी जाती है तो भीतर की बारूद या भड़क उठने वाली चीज सुलग उठती है। उसके सुलगने से धड़ाका द्वारा बहुत फैलाव हो उठता है वह पिछले छेद से बाहर भाग निकलती है। दूसरे मुंह के बंद रहने से निकलने का रास्ता नहीं रहता। इस लिए खुले मुँह से ही जोर से बाहर निकल भागती है। इससे राकेट दौड़ या उड़ जाता है। जब धड़ाके की गैस सभी बाहर निकल आती है तो आकाशबाण जमीन पर गिर जाता है।

हम तो यही समझेंगे कि आकाशबाण या राकेट में धड़ाके के कारण जो गैस फैल कर बाहर भागने लगती है उसके कारण हवा पीछे दब पड़ती है। उसी का दबाव आगे की ओर पड़ता है जो आकाशबाण को दौड़ाता है। परन्तु यह समझना एक भारी भूल है। इसका मर्म ठीक तरह जानने की जरूरत है।

एक हवा भरा गुब्बारा ले लें और उसकी हवा अचानक बाहर निकल जाने दें। वह तुरन्त हवा निकलते ही उछल कर दूर जा पड़ेगा। आप कह सकते हैं कि गुब्बारे के भीतर दबी हवा ने बाहर निकल कर दबाव पैदा किया। इसलिए एक क्षण के लिए गुब्बारे के खाली रबड़ पर आगे की ओर दबाव पड़ा और वह उछल पड़ा। परन्तु तोप या बंदूक चलाने वाले भी गोली गोला दागते ही एक धक्का सा अनुभव करते है जो तोप या बंदूक से गोला-गोली दगने पर पीछे पैदा होता है।

आप आग बुझाने वाले इंजिन या पंप से नल द्वारा पानी की फुहार छूटता देखते हैं। फुहार छूटने वाले मुंह पर नली को पकड़ा जाय तो एक हल्का धक्का पीछे की ओर लगता मालूम पड़ेगा। इन सब अनुभवों में एक भारी सिद्धान्त या नियम काम करता है। न्यूटन ने सृष्टि के कामों को देख कर कुछ भारी नियम या सिद्धान्त ढूढ़ निकाले जिन में एक पृथ्वी या दूसरे ग्रह उपग्रहों आदि की आकर्षण या खिंचाव शक्ति है। इसी तरह का एक सिद्धान्त या भारी नियम न्यूटन का ही निकाला है कि कोई भी क्रिया होने पर उसके उलटे भी कोई क्रिया होती है। क्रिया शब्द में ही प्रति जोड़ देने से उलटी क्रिया का अर्थ बताने वाला शब्द "प्रतिक्रिया" बनता है। इसलिए न्यूटन का सिद्धान्त इन शब्दों में कहा जाता है कि "प्रत्येक क्रिया की कोई प्रतिक्रिया भी होती है।"

ऊपर के उदाहरणों में जो फुहार छूटने, गोली या गोला छूटने की क्रियाएँ हैं उनकी प्रतिक्रिया या उलटी क्रिया होना आवश्यक है। वही हमें पीछे की ओर धक्के रूप में मालूम पड़ती है। अब आप आकाशबाण की बात लीजिए। उसमें नली का अगला या ऊपर का मुँह बंद रहने से निचले या पिछले मुँह से ही धड़ाके वाली गैस फैल कर बाहर निकल भागती है। उसके उलटे क्रिया होनी ही चाहिए। वह है आकाशबाण का ऊपर या आगे की ओर भाग चलना। इस कारण हवा के दबाव से उस में चाल पैदा होने की विशेष आवश्यकता नहीं, वह तो स्वयं ही पैदा हो सकती है।

किसी भी चीज के जलने के लिए आक्सिजन गैस की जरूरत होती है जो हवा में मौजूद रहती है। इसी गैस को हम सांस से फेफड़े के अंदर पहुँचा

कर जिंदा रहते हैं। जब राकेट या आकाशबाण को भी चलाने की शक्ति कुछ वस्तुओं को जला कर भीतर से बाहर फेंकना है तो उसके लिए भी भीतर आक्सिजन किसी न किसी रूप में रख कर जलाने की जरूरत होती है। इसलिए उस के भीतर जलने वाली ऐसी चीजें ही रक्खी जाती हैं जिनमें आक्सिजन मौजूद हो या साथ में जलने वाली किसी एक चीज की जगह स्वयं आक्सिजन ही तरल या किसी रूप में बहुत दबाव के अंदर रक्खी गई हो।

ऊपर चढ़ने या आगे भागने की क्रिया जेट इंजिनों में भी जलकर फैली गैसों के बाहर फेंकने से होती है लेकिन उनके भीतर जलने वाली वस्तुओं को आक्सिजन अपने भीतर रखने की जरूरत नहीं होती। वह बाहर की हवा से ही मिल जाती है। इसलिए जेट इंजिन और राकेटों में चाल पैदा करने वाले एक ही कारण हैं, वे न्यूटन वाले सिद्धान्त पर ही काम करते हैं।

राकेट इसलिए राकेट है कि उसके लिए जलाने की क्रिया के लिए आक्सिजन हवा से नहीं लेनी पड़ती, भीतर ही किसी तरह वस्तुओं में मौजूद रखनी पड़ती है परन्तु जेट या फुहार इंजिन आक्सिजन की अवश्यकता हवा से पूरी कर लेते हैं। इसलिए मनुष्य को कभी भी आसमान में बहुत ऊपर ऐसी जगहों (अंतरिक्ष) में अपनी कोई सवारी या यंत्र भेजना है या स्वयं उसके साथ पहुँचना है जहाँ हवा नहीं है, तो उसके लिए केवल राकेट ही काम दे सकता है। मनुष्य को साँस लेने के लिए तो उसमें अपने साथ आक्सिजन का भंडार डब्बा में बंद शरीर के साथ बंधा रखना ही पड़ सकता है। राकेट की पूरी यात्रा के ईंधन के लिए भी आक्सिजन भीतर रखना आवश्यक है।

राकेट की चाल तेज करने की तरकीबें सोची गई हैं। एक चित्र में राकेट का एक नमूना बनाया गया है। उसमें एक सिरा बन्द है। उसके बाद जलने वाली चीज रखने का खाना है। उसके बाद उसे दूसरे खाने में पहुँचा कर जलने का प्रबन्ध है। वहाँ से जली गैस एक छेद से बाहर पहुँचती है। यह छेद छोटा सा ही बनाया गया है। जो भी गैस भीतर जलने वाले खाने में बनकर फैल जाती है, वह इस छेद से ही भागने का प्रयत्न करती है। छेद छोटा होने से उस जलती गैस के बाहर निकलने में रुकावट पैदा होगी और उससे भीतर के खाने की गैस में ज्यादा दबाव पैदा होगा। इस तरह के सादे छेद से जब गैस बाहर निकलती है तो छेद में से बाहर होते ही उसके दबाव की शक्ति आधी पड़ जाती है। जब वह ऐसे दबाव पर बाहर निकलती है तो बाहर की वस्तु के दबाव के बराबर उसका दबाव उतर आता है। इस तरह उसके पूरे जोर से लाभ नहीं उठाया जा सकता।
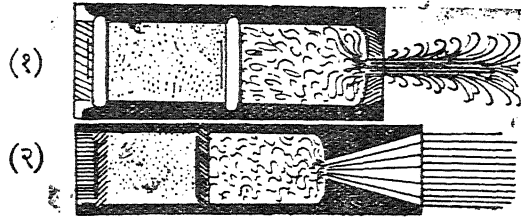
(१) हल्की चाल का राकेट
(२, तेज चाल का राकेट

एक दूसरा चित्र ऐसे राकेट का नमूना बतलाता है जिसमें गैस के बाहर निकलने का रास्ता पहले छोटा रह कर धीरे-धीरे चौड़ा बनता गया है। इस तरह के प्रबन्ध में बाहर निकलने वाली गैस तुरन्त ही बहुत अधिक न फैल सकेगी। जैसे-जैसे छेद का चौड़ान बढ़ता मिलेगा वैसे-वैसे ही धीरे-धीरे फैलेगी। इस कारण बाहर आते-आते उसका दबाव बहुत अधिक कम नहीं हुआ रहेगा। इस हालत में वह बड़ी तेजी से बाहर निकलेगी। इसकी तेज चाल का राकेट पर असर पड़ेगा। वह उतनी ही तेज चाल से इसके विरुद्ध प्राप्त क्रिया के कारण भागेगा। ऐसी तरकीब कर ही गोडर्ड नाम के एक वैज्ञानिक ने १९१६ में नए ढंग का राकेट बनाने में कामयाबी पाई।

रावर्ट गोडर्ड अमेरिका के एक विश्वविद्यालय में अध्यापक था। जब वह विद्यार्थी था, तभी उसे राकेट के बारे में खोज करने की धुन सवार रहती थी। उसे अपनी धुन के कारण बाद में मदद भी पूरी तरह मिल गई। एक खोज करने वाली मशहूर संस्था ने उसे धन दिया। उसने १९१९ ई० में अपनी खोज का व्योरा छपवाया। व्यौरे के सिद्धान्त पर राकेट की आज तक उन्नति होती आई है। उस व्यौरे में बताया गया था कि धरती से दूर जाने के लिए उसके आकर्षण की शक्ति पर विजय पाना होगा। उसके लिए राकेट में बहुत ही तेज चाल करनी पड़ेगी।
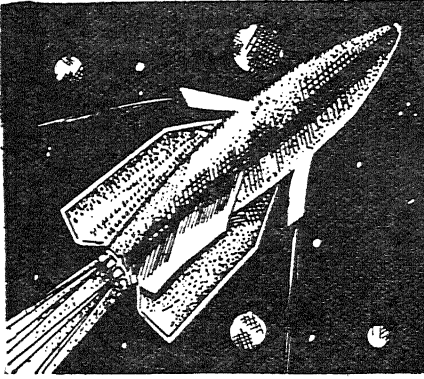
राकेट की उड़ान

धरती की खिंचाव शक्ति इतनी तेज है कि हमें उसके प्रभाव से बिल्कुल अलग हो सकने के लिए एक सेर का बोझ या सामान को उड़ा ले जाने के लिए ४०२ सेर या दस मन ईंधन की जरूरत पड़ेगी। यह कैसा टेढ़ा सवाल है कि कोई सवारी या बोझ जितना भारी हो, उसका ४०२ गुना भारी बोझ ईंधन का ही हो। इसका मतलब तो यही हुआ कि यह काम असम्भव ही है। लेकिन गोडर्ड ने एक तरकीब बता कर इस मसले को हल करने की बात कही। उस तरकीब को कोठों वाला या अनेक पादों वाला राकेट कह सकते हैं। मान लीजिए कि एक बहुत ही भारी राकेट बनाया गया। उसमें उड़ाने की सभी तरकीब स्वतन्त्र रूप से रक्खी गई। उसके साथ एक और राकेट दूसरे कोठे की तरह रक्खा गया जो हल्का हो लेकिन उसमें उड़ने की सब तरकीब ईंधन आदि तैयार हो। इस तरह के प्रबन्ध में पहला राकेट अपने ईंधन से उड़ेगा जिसके साथ दूसरा छोटा राकेट भी अनायास उड़ता जायगा। ज्योंही पहला राकेट ईंधन जला चुकता है, दूसरा राकेट अपना ईंधन जलाकर उड़ने लगेगा और पहला राकेट अलग होकर नीचे गिर जायगा। छतरी लगी होने पर वह बच कर धरती पर गिर सकता है। इस तरकीब में दूसरे राकेट को काफी दूर तक बिना ईंधन खर्च किए ही उड़ जाने का सुभीता मिला। अब वह और भी अधिक दूरी तक उस समय तक उड़ सकता है जब तक उसका ईंधन चले। इस दूसरे राकेट के ऊपर तीसरा राकेट भी रक्खा रह सकता है जो दूसरे राकेट के ईंधन चुक जाने पर उड़ना प्रारम्भ करे और दूसरे राकेट का ढांचा धरती पर गिर कर बोझ हल्का कर दें। इस तरह के प्रबन्ध से राकेट को तेज चाल से इतनी दूर उड़ाया जा सकता है कि धरती के खिंचाव से दूर जा पहुँचे। ऐसे प्रबन्ध वाले राकेट को कोठों वाला या कई पादों वाला राकेट कह सकते हैं। गोडर्ड की यह सोची बात आज कुछ अंश तक कर भी दिखाई गई है। एक कोठे वाले राकेट तो १५० मील तक उड़ाए ही जाने लगे हैं लेकिन दो कोठों वाला राकेट २५० मील ऊँचाई तक उड़ाने में काम-याबी मिल सकी है।

जो आक्सिजन हमारे साँस लेने के लिए और आग जलाने के लिए हवा या गैस रूप में रहती है, उसी को खोज करने वाले पानी समान या द्रव रूप का बना कर रख सकते हैं। डा० गोडर्ड ने अपने राकेट को चलाने वाले ईंधन की जगह द्रव आक्सिजन और गैसोलिन नाम का तेज जलने वाला तेल का इस्तेमाल किया इनको राकेट में रखने के लिए पीपे रक्खे गए। फिर इनको राकेट की भट्टी या जलने वाले खाने में पहुँचाने के लिए पंपों

का प्रवन्ध रक्खा गया। इन प्रबन्धों से प्रति घंटे ४०० से ७०० मील तक की चाल से राकेट उड़ाए जा सके। इतनी तेज चाल के राकेटों को सीध में उड़ने देने के लिए भी विशेष कलें लगानी पड़ीं।

राकेट चलाने के लिए ठोस ईंधन का इस्तेमाल चीन वालों ने शुरू किया था। बारूद ठोस ईंधन थी। उसके कहीं कम या ज्यादा जलने से कठिनाई होती थी। राकेट को सीधा उड़ाना कठिन था। आज नए तरह के ठोस ईंधन वाले राकेट भी मझोले दर्जे के ही कामों के लिए बनते हैं। भारी बोझ से लदे हवाई जहाजों को उड़ने के मामूली मैदान में ही ऊपर उठाने के लिए ठोस ईंधन वाले राकेट उनके पंखों के नीचे चलाए जाते हैं। ऐसे काम के लिए बहुत तरह के सूखे ईंधनों का इस्तेमाल किया जाता है। यहाँ तक कि सड़कों पर बिछाए जाने वाले एस्फाल्ट को भी ईंधन की तरह जला कर कुछ सेकेंड के लिए भारी हवाई जहाजों को उड़ने का सहारा देने वाले राकेट चलाए जाते हैं।

हवा की तरह बहने वाली चीज को ही गैस कहते हैं। गैस रूप में जो ईंधन होता है, उसके रखने के लिए जगह अधिक चाहिए। इसलिए गैस की तरह के ईंधन बहुत हल्के और मामूली खोज के काम वाले राकेटों को उड़ाने में ही इस्तेमाल किए जा सकते हैं। वास्तव में आकाश में बहुत दूर तक उड़ सकने वाले या चन्द्रमा या दूसरे ग्रहों तक कभी पहुँच सकने वाले राकेट द्रव या पानी की तरह रूप में रक्खे ईंधन से ही चलाए जा सकते हैं। उन पदार्थों को बड़े ही दबाव में रख कर ही, द्रव का रूप दिया गया होता है। इसलिए थोड़ी जगह में ही उनमें भारी शक्ति जुटाई पड़ी रहती है। उसके बल पर ही थोड़े से थोड़े बोझ के ईंधन के साथ राकेट दूर की उड़ान भर सकता है।

यदि हम आतिशबाजी वाले मामूली आकाश बाण की ओर ही ध्यान दें तो हमें मालूम होगा कि बारूद की कई किस्में इस्तेमाल होती हैं। एक किस्म की बारूद छोटे आकाशबाणों के लिए इस्तेमाल की जा सकती है। मान लीजिए कि कोई आकाशबाण चौथाई छटाँक का रखना है। उसके लिए जो बारूद इस्तेमाल होगी उसमें १३ भाग पोटैशियम नाइट्रेट या शोरा, ५ भाग कोयला और २ भाग गंधक होगा लेकिन चार पाँच सेर का आकाश बाण रखना है तो उसकी बारूद में १३ भाग शोरा, ४ भाग कोयला और ३ भाग गन्धक होगा। (इन चीजों को कभी खेल के लिए बिना जाने एक साथ पीसना नहीं चाहिए, नहीं तो तुरन्त भारी धड़ाका हो कर बदन जला सकता है।) यदि आकाशबाण की लूक वाली पूंछ बड़ी दिखाना हो तो उसमें कोयला कुछ ज्यादा कर देना चाहिए। यह सब बारूद तो आकाशबाण को सिर्फ उड़ाने के लिए ही होती है। उसके अगले भाग में कुछ रङ्गीन रोशनी करने वाले पड़ाके या गोले भी रक्खे जाते हैं। इनको बाद में आसमान में ऊँचाई पर जल उठने का अवसर होता है जो देखने वाले को बहुत सुन्दर लगता है।

मामूली बारूद जहाँ खेल के आकाशबाण को उड़ा सकती है, वहाँ आसमान में सैकड़ों मील ऊपर उठने के लिए राकेट का ईंधन बहुत रुपए लगा कर विचित्र-विचित्र ढङ्ग के जलने वाले पदार्थ द्रव बना कर रखना पड़ता है। गोडर्ड ने आसमान के ऊपरी भाग की खोज करने या ग्रहों की यात्रा करने की कल्पना पूरी करने के लिए जहाँ राकेटों के कुछ रूप सोच निकाले वहाँ जर्मनी में इनका दूसरा ही रूप रक्खा गया। वहाँ पर पहले तो कुछ लोगों ने आसमान की सैर करने वाले राकेटों की खोज के लिए संस्थाएँ बनायीं लेकिन उनमें कुछ खोज होने के बाद ही हिटलर का दूसरा महायुद्ध शत्रु की शक्ति मिटाने में सहायक राकेटों के बनाने का रास्ता खोल सका। उसी का नतीजा यह हुआ कि "वी २" नाम के राकेट ७० मील ऊपर तक जाकर १३० मील दूर की जगहों पर मार करने लगे।

["राकेट या आकाशबाण" से]

मानव की सेवा में-चलचित्र

डा० रामचरण मेहरोत्रा, रसायन-विभाग, लखनऊ वि० वि०

आज के मानव समाज की विचार-धारा पर चलचित्र एक गहरा प्रभाव डालते हैं; वे मानव की जिज्ञासा, मनोरञ्जन और विकास की पूर्त्ति के लिए एक शक्तिशाली साधन हैं। आजकल चलचित्रों का जन-साधारण पर इतना अधिक प्रभाव है, कि प्रायः उनके नायक व नायिकाओं के साथ-साथ दर्शकों को आँसू बहाते व खिल-खिलाते हुए देखा गया है। वर्तमान युग में चलचित्र मानव के मनोरञ्जन के सब से सरल व मितव्ययी साधन हैं और साथ ही साथ वे उसके जीवन में कला, संस्कृति और संगीत को भी प्रवेश कराते हैं।

यह एक मानवीय स्वभाव है कि जो भी हम अपनी आँखों से देखते हैं उस पर हमें कानों सुनी या किताबों में पढ़ी बात की अपेक्षा अधिक विश्वास होता है। इसलिए चलचित्रों का प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर अखबारों या किताबों से कहीं अधिक पड़ता है और इसी गुण के आधार पर चलचित्र शिक्षा व प्रचार के बड़े शक्तिशाली यंत्र बन सकते हैं।

चलचित्रों के द्वारा हमें दूसरे देशों की सभ्यता और अन्य विशेषताओं का ज्ञान बड़ी आसानी से होता है। आज का संसार काफी छोटा हो गया है और पहिले से कहीं अधिक लोग आजकल विदेश यात्रा करने लगे हैं—फिर भी सुन्दर देशों की यात्रा अब भी साधारण मनुष्य के लिए बहुत कठिन है; परन्तु चलचित्रों के द्वारा हम घर बैठे ही संसार के सब देखने योग्य स्थानों की सुन्दरता को देख सकते हैं और उनके निवासियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। आज हाली वूड के चित्रों द्वारा हमारे देश के प्रत्येक अँग्रेजी पढ़े व्यक्ति को अमरीकन रहन-सहन के ढंग का अच्छा ज्ञान प्राप्त है। इस प्रकार चलचित्र विभिन्न समाजों की संस्कृति व सभ्यता को एक दूसरे तक पहुँचाने में बहुत सहायक हो रहे हैं, परन्तु इस कार्य्य में भाषा की बड़ी कठिनाई पड़ती है और इस कठिनाई को हल करने के लिए प्रायः किसी भी भाषा के फिल्मों पर विदेशी भाषाओं का स्वर दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इधर कुछ वर्षों से 'सब टाइटिल' लगे हुए विदेशी भाषा के चित्रों को देखने का बड़ा रवाज हो रहा है और इस प्रकार हमें इटैलियन, जापानी, रूसी व जरमन फिल्म आजकल प्रायः देखने को मिलते हैं। लन्दन ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्रों में तो नारवे, स्वीडन, फिनलैण्ड, हालैण्ड, स्पेन आदि सब देशों के सब टाइटिल वाले फिल्म चलते रहते हैं। चलचित्रों के इस प्रकार के आदान-प्रदान से एक विशेष लाभ यह होता है कि विभिन्न देशों की संस्कृति का एक दूसरे पर गहरा प्रभाव पड़ता है जिससे आज हम एक 'अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति के ध्येय की ओर तेज़ी से अग्रसर हो रहे हैं। भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के बाद से तो विशेष प्रकार से अन्य देश के निवासियों को हमारे देश के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने की बड़ी इच्छा है और इस प्रकार के अच्छे चल-चित्र बाहर निर्यात करके हम धन भी कमा सकते हैं और अपनी सभ्यता व संस्कृति के संदेश को भी दूर-दूर भेज सकते हैं। अभी तक भारत से बहुत कम फिल्म विदेश जाते हैं, परन्तु इस ओर तेजी से प्रगति हो रही है। सरकार द्वारा बनाए documentary film विदेशों के भारतीय राजदूतावासों में प्रायः दिखलाए जाते हैं और इससे हमारी प्रगति व समस्याओं का विदेशियों को अच्छा ज्ञान मिलता है।

चल-चित्रों को बालकों की शिक्षा का साधन बनाने के लिए संसार में लगभग सभी देशों में प्रयोग हो रहा है। चल-चित्रों का वर्तमान रूप विज्ञान ही की देन है और इनके अन्वेषक टामस एडीसन आरम्भ ही से चल-चित्रों को विज्ञान की शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे। १९४७ में इसी ध्येय से अन्तर्राष्ट्रीय साइंटिफिक फिल्म एसोसियेशन की स्थापना हुई और तब से बहुत लगन से इस ओर कार्य्य हो रहा है। भारत सरकार भी इस ओर उदासीन नहीं है। सरकार की १६ मिलीमीटर फिल्मों की लाइब्रेरी में लगभग १५०० फिल्में हैं जो विभिन्न शिक्षालयों व सामाजिक केन्द्रों को मुफ्त उधार दिये जाते हैं।

केवल बच्चों ही के लिए नहीं, जन-साधारण के लिए भी मनोरञ्जन के अतिरिक्त चल-चित्र ज्ञान-वर्धन के बड़े अच्छे साधन हो सकते हैं। हमारे देश में जहाँ शिक्षा का इतना अभाव है फिल्म एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य्य कर सकते हैं। फिल्मों के द्वारा हम अपने देश-वासियों को नागरिक शास्त्र के मुख्य नियम सुगमता से समझा सकते हैं और साथ ही उनके प्रचार से अपने सामाजिक जीवन का स्तर शीघ्र ही ऊँचा कर सकते हैं। किसानों को चलचित्रों द्वारा नये-नये यंत्रों का उपयोग व उपज के नये तरीके आसानी से सिखाये जा सकते हैं, अज्ञानवश जो रूढ़िवादी बातें उनमें रह गयी हैं उनको आसानी से दूर किया जा सकता है। हमारी सरकार इस ओर भी ध्यान दे रही है और 'पञ्चवर्षीय योजना' को सफल बनाने में चल चित्रों की सहायाता लेने की योजना बनाई जा रही है।

आज कल तो फिल्म व्यवसायियों के विज्ञापन में बड़ा भाग ले रहे हैं। अमरीका, इङ्गलैण्ड व फ्राँस में 'टेली विजन' द्वारा चल-चित्र एक प्रकार से घर में ही देखे जा सकते हैं। अमरीका में टेलीविजन व चल-चित्र विज्ञापन का प्रमुख साधन हैं। टेलीविजन अभी बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में है; परन्तु निकट भविष्य में उसका बहुत महत्व हो जायेगा।

हमारे देश में भी फिल्म व्यवसाय ने बड़ी उन्नति की है; इस व्यवसाय में लगभग ४२ करोड़ पूँजी लगी है और इससे लगभग १२ करोड़ टैक्स प्रतिवर्ष सरकारी खजाने में जाता है। हमारे देश में ६० स्टूडियो हैं जिनमें प्रतिवर्ष लगभग ३०० फिल्म बनते हैं। तुलना के लिए अमरीका में केवल ८ स्टूडियो हैं जिनमें लगभग साढ़े तीन सौ फिल्म बनते हैं और ब्रिटेन में १३ स्टूडियो हैं जिनमें प्रतिवर्ष केवल ६० फिल्म बनाए जाते हैं। हमारे देश में फ़िल्म व्यवसाय लगभग ५ लाख व्यक्तियों की जीविका का साधन है और प्रतिदिन लगभग ३० लाख व्यक्ति इससे मनोरञ्जन प्राप्त करते हैं। इन आँकड़ों से हमें अपने देश के फिल्म व्यवसाय के महत्व का पता लग जाता है। हमारे यहाँ हिन्दी या हिन्दुस्तानी के अतिरिक्त ८ भाषाओं में चल-चित्र बनाए जाते हैं; बंगाली, तामिल, तेलगू, कन्नड़, मल्याळम पञ्जाबी, मराठी व गुजराती। परन्तु इनमें हिन्दी के ही फिल्म सबसे अधिक बनाए जा रहे हैं और देश के कोने-कोने में हिन्दी पहुँचाने में फिल्मों का विशेष हाथ रहा है। हमारे यहाँ काफी ऐतिहासिक फिल्म बनाए जाते हैं, जिनसे बच्चों को देश की पुरानी सभ्यता संस्कृति व कला की एक झलक मिल जाती है। सुन्दर ऐतिहासिक फिल्मों से बच्चों को बचपन से ही अपनी संस्कृति से परिचित करा कर उन्हें सुसंस्कृत व सभ्य नागरिक बनाया जा सकता है।

इधर कुछ वर्षों से रङ्गीन चित्रों के बनाने में बहुत प्रगति हो रही है। इन रङ्गीन या टेक्नीकलर चित्रों से फिल्मों की वास्तविकता बढ़ जाती है और प्राकृतिक सौन्दर्य का तो इनमें बड़ा ही मनोहर चित्रण होता है। इनके अतिरिक्त आज कल Three dimensional फिल्म बनाने की टेकनीक में बड़ी उन्नति हो रही है। इस नयी टेकनीक से चल चित्रों की वास्तविकता और साथ ही साथ लोकप्रियता और भी बढ़ेगी। और इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि इसके फलस्वरूप चलचित्र मानव समाज की और भी अधिक सेवा में सफल होंगे।

राशि-चक्र

आकाश के अनगिनत तारों पर पुराने समय में ही लोगों की दृष्टि पड़ी होगी। पुरानी सभ्य जातियाँ किसी तरह की भी पहचान ढूँढ़ने की कोशिश में रहती होंगी। कुछ तारों को निशाना बना कर अपने मकानों का ढाँचा बनाने की चलन भी कहीं पाई जाती है। कुछ जातियाँ तारागणों के देख सकने में सुभीते के लिए ऊँचे भवन बनाती थीं। कहीं पर पत्थरों को सजाकर तारा का कोई निशान बनाकर बाड़े बने पाए जाते हैं। इन बातोंसे यह मालूम पड़ता है कि हजारों बरस तक लोग तारागणों को देखते रहने की कोशिश करते रहे होंगे। पीढ़ी के बाद पीढ़ी ऐसी जातियों के आसमान पर दृष्टि लगाए रहने के कारण बहुत सी बातें मालूम हुई होंगी।

बहुत से तारों का जगह जगह जमघट पाकर उनके द्वारा किसी जानवर वा दूसरी वस्तु का चित्र बनने की कल्पना पाई जाती है। पुराने समय में बहुत से देशों में ऐसे चित्र कुछ पास-पास के चमकीले और और धुंधले तारों के मिलने से बनते माने गए। उनमें से कुछ तो बहुत से देशों में मशहूर हो गए। शायद एक जगह वैसी कल्पना करने पर वह बात दूसरी जगह फैलती गई हो या लोगों ने अलग-अलग देशों में अपने मन से कुछ चित्रों की कल्पनाएँ कर ली हों। ऐसे चित्रों में वेबिलोनिया के पत्थर पर बनाए चित्र मिलते हैं। मिस्र में लोगों ने पेपिरस (पुराने घास के बने टिकाऊ कागज) पर चित्र बनाए। यूनान में संगमर्मर पर चित्र उतारे गए। अमेरिका में पुरानी मूल जातियों द्वारा भैंसों के चमड़े पर नकशे रंगे गए। ताराओं के कुछ झुण्डों से बने दीखने वाले ... ज भी पहचाने जा सकते हैं क्योंकि वे अपने ... तारों के साथ सम्बन्ध रखने के विचार से बँधा हुआ स्थान प्रकट करते हैं वे मनुष्य को अपनी जिन्दगी भर या हजारों बरस तक दिखाई पड़ सकते हैं। वास्तव में तो आसमान के सभी तारे किसी न किसी ओर बहकते जाते हैं लेकिन वे हमसे इतनी अधिक दूरी पर हैं कि उनकी चाल आदमी की पूरी जिन्दगी भर नहीं मालूम पड़ सकती है। नंगी आँखों से देखने पर तो वे एक जगह स्थायी रूप से मढ़े हुए से जान पड़ते हैं।

तारा गण एक दूसरे के साथ सम्बन्ध की दृष्टि से एक जगह स्थिर जान पड़ते हैं लेकिन समूह रूप में सारा आकाश मण्डल अपने तारागणों को लेकर पृथ्वी के चारों ओर घूमता सा जान पड़ता है। किंतु वास्तव में पृथ्वी ही अपनी धुरी पर घूमती है इस कारण हमें सारा आसमान ही घूमता जान पड़ता है। उसी के साथ तारागण भी हटते किन्तु एक दूसरे से निश्चित दूरी पर बने रहते जान पड़ते हैं। सूर्य के सम्बन्ध में भी यही बात है। वह तो सब तारागणों की तरह आसमान में एक जगह ही ठहरा माना जा सकता है लेकिन पृथ्वी की दैनिक और वार्षिक चाल के कारण सूर्य भी चलता और आकाश में अपना स्थान बदलता दिखाई पड़ता है।

चन्द्रमा को हम आकाश में एक मार्ग से चलते समझते हैं। हर साल वह अपने बँधे रास्ते से ही तारागणों के बीच चलता मालूम पड़ता है। साल के जिन महीनों में वह जिन तारागणों के बीच होकर जाता दिखाई पड़ता है, उन्हीं महीनों में दूसरे साल भी वह उन तारागणों के बीच जाता दिखाई पड़ सकता है। अधिक दिनों तक देखते रहने वाले लोग उन सब तारागणों को बता सकते हैं जिनमें होकर चंद्रमा चला करता है। यदि तारागणों के अलग-अलग झुण्डों या दलों के चित्र मान लिए गए हों तो यह आसानी से कहा जा सकता है कि चन्द्रमा अमुक-

अमुक तारागणों के मण्डल से ही होकर जाया करता है। इन तारा-मण्डलों को ही राशियाँ कहते हैं। आकाश के जिस भाग में ये पाई जाती हैं उसे राशि-चक्र कहते हैं। सारे ग्रह, उपग्रह भी इसी भाग के आकाश में घूमते पाए जाते हैं। सूर्य का भी यही रास्ता कहा जा सकता है।

किसी वृत्त या गोले को लेकर आप ध्यान से सोचें तो उसमें ३६० अंश के कोण पाए जाएँगे। एक वृत्त बना कर आप उसमें दो व्यास खींचें जो बीच में एक दूसरे को समकोण पर काटते हों तो आप तुरन्त कह सकते हैं कि केन्द्र पर चार समकोण बने हैं। एक समकोण ९०° का होता है। एक सीधी लकीर खींचने पर उसके एक विन्दु पर से कोई भी रेखा खड़ी करने पर जैसे भी कोण बनेंगे उन दोनों का जोड़ १८०° होगा। इसी तरह रेखा के दूसरी ओर भी हो सकता है। मान लीजिए कि आपने कहीं पर खड़े होकर मन में आकाश के चँदोवे को रक्खा। यह भी एक गोला ही है। अब कोई रेखा उत्तर से दक्खिन खींचीं मान लीजिए। आपके खड़े होने की जगह से ठीक सिर से ऊपर तक उत्तर की ओर आकाश का जो भाग है वह ९० अंश का कोण बनाता कहा जायगा। ऐसा ही दो समकोण वह आसमान भी बनाता होगा जो हमारे पैर के नीचे पृथ्वी की आड़ में है। उत्तर दक्षिण की जगह पूरब पश्चिम की ओर भी हम इसी तरह एक बार दिखाई पड़ने वाले चँदोवे में अपने खड़े होने से लेकर ऊपर की चोटी से पूरब के आसमान को ९० अंश का कोण बनाते मानेंगे और पश्चिम के आकाश को भी ९०° का कोण बनाते मानेंगे। यह आसमान की नाप का एक आसान ढङ्ग है। यदि कोई गोला पृथ्वी के चारों ओर आसमान में ऊपर खींचा मानें तो उस गोले में कुल ३६० अंश के कोण होंगे। इस पूरे गोले के ३६० भाग कर अंशों की गिनती के हिसाब से आसमान के भाग बतावें तो यह हिसाब समझ में आ सकता है। पृथ्वी पर भी हम देशान्तर रेखाओं के रूप में गोलाई को बाँटते हैं, जिससे पृथ्वी की पूरी परिधि भूमध्य रेखा पर ३६० अंशों में बँटी मानी जाती है। इसी तरह ध्रुवों के बीच भी दोनों ओर मिलाकर ३६०अंश के अक्षांश माने जाते हैं। यह बात आसमान के बारे में मानी जा सकती है।

चन्द्रमा उसी मार्ग के द्वारा आकाश में चलता जान पड़ता है, जो राशि-चक्र कहलाता है। दूसरे ग्रह इस सीध में ही अपनी कक्षा रखते हैं और सात अंश चौड़े आकाश की पट्टी के अन्दर ही कुछ अगल बगल घूमते मिलते हैं। इस चौड़ी पट्टी को ही राशि-चक्र कह सकते हैं। यदि आकाश के चारों ओर की इस पूरी पट्टी को बारह भागों में बाँटा जाय तो एक-एक भाग (१२×३०=३६०) तीस अंश का होगा। पुराने लोगों ने इस पट्टी को बारह भागों में बँटा मान कर एक-एक भाग में एक-एक खास शक्ल का तारा-मण्डल ढूँढ़ निकाला। इन सब को अलग-अलग नाम दे दिए गये। ये बारह तारामण्डल बारह राशियों के नाम से मशहूर हुए। आप थोड़ी सी बुद्धि लगा कर सोच सकते हैं कि रात को पूरब से पश्चिम के आकाश पर दृष्टि डालने से हमें १८०° के अन्दर वाले राशि-चक्र दिखाई पड़ेंगे, अतएव हमें एक बार पूरे-पूरे छः तारामण्डल दिखाई पड़ सकेंगे जो राशियों के नाम से मशहूर हैं। इनमें किसी राशि-माला का भाग पूरा दृष्टि के सामने न हो तो उसकी जगह दूसरी ओर हमें सातवीं राशि का भी कुछ भाग आकाश में मौजूद दिखाई पड़ेगा। इस हिसाब से हमारे खड़े होने से पूरब के आकाश में ३०-३० अंश के तीन भाग होंगे जिनमें तीन पूरी राशियाँ हो सकती हैं। इसी तरह हमारे खड़े होने की जगह के पश्चिम में तीन राशियों वाले आकाश का भाग होगा। यह एक मोटे रूप का हिसाब है जिससे हमें राशियों के देखने और पह-चानने में अधिक आसानी हो सकती है।

यदि आप राशि-चक्र के नकशे पर थोड़ा ध्यान दें तो राशियों के साथ सूर्य का सम्बन्ध बहुत अच्छी तरह समझ में आ जायगा। पंचांगों में लिखा मिलता है कि इस समय सूर्य अमुक राशि में है। आप यह सोच सकते हैं कि सूर्य तो अपने तेज प्रकाश से सारे

तारागणों की ज्योति मार देता है। हम दिन को कुछ देख ही नहीं पाते। इस कारण हम को कैसे विश्वास हो सकता है कि सूर्य अमुक राशि में ही है। इस बात का तो बड़ा ही छोटा और आसान उत्तर है। यदि आपने उन बारहों राशियों को रात में अलग-अलग महीनों में देखते रह कर ठीक तरह पहचान लिया है या नकशे को देखकर ही उनका आसमान में स्थान समझ लिया है तो आपको यह जरूर मालूम होगा कि वे क्रम से ही एक के बाद दूसरे दिखाई पड़ेंगे। यदि आपने सूर्य उदय होने के पहले उषाकाल में आकाश की ओर ध्यान से देखा और क्षितिज के पास के उस तारामण्डल को पहचाना जो इस राशि चक्र का है तो आप को यह मालूम हो जायगा कि वह किस राशि के आकाश का भाग है। उसके ही पहले वाले आकाश में तो सूर्य होगा। फिर इस बात की ही दुबारा जाँच करने का शाम को मौका हो सकता है। ज्यों ही सूर्य डूब जाय, यह देखें कि पश्चिम के क्षितिज में राशिचक्र में कौन राशि अन्त में दिखाई पड़ रही है। वह ही सूर्य के निकट वाले आसमान की राशि है। सबेरे और शाम की दोनों राशियों का मिलान करने से यह जानने में कोई शक ही नहीं रह जायगा कि सूर्य किस राशि में है।

राशिचक्र के चित्र में सूर्य के सामने तुला राशि है। पृथ्वी सूर्य के पीछे है। इस कारण सूर्य को तुला राशि में कहा जायगा। जब रात होने लगेगी तो इसके पहले वाली कन्या राशि आसमान में पश्चिमी छोर पर क्षितिज के पास दिखाई पड़ सकती है। सबेरे उषाकाल के पहले तुला के बाद की वृश्चिक राशि को पूरब के आसमान में क्षितिज के पास देखा जायगा जहाँ से सूर्य निकलने ही वाला होगा। इन बातों को कितने ही सालों तक देखते रह कर ही लोगों ने राशियों की ठीक गणना कर लेने में कामयाबी पा ली होगी। इन गणित और आकाश के ठीक देखने की बारीकियों की जगह हम लोग केवल शुभ और अशुभ की बातें ही राशियों-नक्षत्रों आदि के नाम के साथ जोड़ते हैं।

सूर्य तो अपनी जगह में ही ठहरा माना जा सकता है लेकिन पृथ्वी उसके चारों ओर घूमती है। इसलिए जब पृथ्वी परिक्रमा करती हुई स्थान बदलती है तो सूर्य एक राशि की जगह पर दूसरी राशि में पहुँचा दिखाई पड़ता है। अपनी कक्षा पर साल भर घूमने के लिए पृथ्वी को प्रति घण्टे ७०,००० मील की चाल से दौड़ना पड़ता है। इतना होने पर भी आकाश का बारहवाँ भाग पार करने में उसे एक मास लगते हैं। इस तरह एक राशि की जगह दूसरी राशि वाले आसमान के सामने सूर्य प्रति मास हटता जान पड़ता है।

पृथ्वी सूर्य की ओर जो तल रखती है, वे भूमध्य रेखा के पास के या उष्ण कटिबंध के भाग हैं। यदि उसके ध्रुवों को मिलाने वाली बीच की धुरी कक्षा के रेखातल की सीध में यानी उससे समकोण बनाते हुए होती तो हमें पृथ्वी के सब भागों पर बारहों महीने एक तरह की गर्मी और धूप मिलती दिखाई पड़ती। भूमध्य रेखा के ऊपर सदा सीधी किरणें पड़तीं इसलिए वहाँ के समीप की जगहों में सूर्य सदा ठीक उपर की ओर आसमान में दिखाई देता रहता किन्तु भूमध्य रेखा से उत्तर या दक्खिन की ओर हटते जाने वाले स्थानों में किरणें तिरछी पड़ती दिखाई पड़तीं। लेकिन साल के एक भाग में जितनी तिरछी किरणें दिखाई पड़तीं उतनी ही दूसरे भागों या महीनों में भी दिखाई पड़ती रहतीं। ध्रुवों पर भी बारहों महीने एक सी सर्दी रहती और एक समान ही थोड़ी-बहुत किरणें पहुँचती रहतीं। परन्तु पृथ्वी की धुरी कक्षा के रेखातल की सीध में न होकर २३° अंश का कोण बनाती हुई झुकी रहती है। इसका यह नतीजा होता है कि साल के कुछ भाग में तो उत्तरी ध्रुव की ओर के भाग सूर्य की कुछ सीधी किरणें पाते हैं और साल के दूसरे भाग में दक्षिणी ध्रुव की ओर के भाग में सूर्य की किरणें अधिक सीधी पड़ने लगती हैं। यह कारण है कि हमें भूमध्य रेखा के उत्तर वाले देशों में उस समय गर्मी का मौसम मालूम पड़ता है जब

उत्तरी ध्रुव सूर्य के कुछ ज्यादा सामने होता है और उसके बाद जाड़े का मौसम आता है जब सूर्य भूमध्य रेखा के दक्षिण की ओर के भागों के ज्यादा सामने मालूम पड़ता है। यदि पृथ्वी की धुरी कक्षा के रेखातल की सीध में होती अर्थात् उससे समकोण बनाती रहती तो हमें मौसमों का हेर-फेर देखने को ही नहीं मिलता। धुरी के झुकने का यह नतीजा है कि सूर्य भूमध्य रेखा से २३॥ अंश अक्षांश तक उत्तर और दक्षिण दोनों भागों में जाता और सीधा किरण डालता दिखलाई पड़ता है। भूमध्य रेखा की जगह बारी-बारी से सूर्य के पहुँचने की सीमा बताने वाली इन रेखाओं को कर्क और मकर रेखाएँ कहते हैं।

राशियों के अनुसार सूर्य और पृथ्वी की स्थिति

जिस तरह पृथ्वी पर उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव हैं, उसी तरह आकाश को भी गोला माना जाय तो उसमें उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव होंगे। इन्हें आकाशीय ध्रुव कहते हैं। पृथ्वी के ध्रुवों के बीच भूमध्य रेखा मानी जाती है उसी तरह आकाशीय उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के बीच आकाश की मध्य रेखा मानी जा सकती है। ख का अर्थ आकाश होता है। इसलिए भूमध्य रेखा की तरह इसे ख-मध्य रेखा या आकाश-रेखा कह सकते हैं। चन्द्रमा और ग्रह आकाश के एक विशेष भाग में एक रेखातल पर परिक्रमा करते हैं। इस मार्ग को क्रांति वृत्त नाम देने की चर्चा पहले की जा चुकी है। किन्तु इस वृत्त का फैलाव आकाश के सात अंश की पट्टी में फैला पाया जाता है। इसमें सूर्य की आकाश में घूमने की जो रेखा या परिधि जान पड़ती है, उसको ठीक या असली क्रान्तिवृत्त कह सकते हैं। उस वृत्त से चन्द्रमा और ग्रहों की कक्षा कुछ अंशों तक के ही इर्द गिर्द हटी हो सकती है। चन्द्रमा की कक्षा जब ठीक क्रान्तिवृत्त को छूती है तो उस समय चन्द्र या सूर्य ग्रहण हो सकता है।

पृथ्वी की धुरी झुकी होने के कारण आकाशीय मध्यरेखा क्रान्तिवृत्त की ओर झुकी होती है और उसे काटती है। जिन विन्दुओं पर क्रान्तिवृत्त (सूर्य के चलने वाले मार्ग) को आकाशीय मध्य रेखा काटती है, वे दिन रात बराबर करने वाली तिथि को बनाने वाले कहलाते हैं। प्रति वर्ष ये विन्दु सूर्य का मार्ग जान पड़ने वाली परिधि या क्रान्तिवृत्त पर २१ मार्च और २३ सितम्बर को पड़ते हैं। इन तारीखों को सूर्य की किरणें भूमध्य रेखा पर सीधी पड़ती हैं। इसलिए सारे संसार में इन तारीखों को दिन और रात बराबर होते हैं। इन तारीखों के बाद हालत बदलती है। २१ मार्च के बाद सूर्य उत्तर की ओर चढ़ता मालूम पड़ता है। उसे उत्तरायण का सूर्य कहते हैं। भूमध्य रेखा के उत्तर के अक्षांशों में सूर्य की किरणें सीधी पड़ने लगती हैं। २१ या २२ जून को सूर्य सब से उत्तर के स्थान तक पहुँच गया रहता है। उत्तरी गोलार्द्ध में दिन सबसे बड़े होते हैं और रातें सब

से छोटी होती हैं। इसके बाद सूर्य दक्षिण जाने लगता है और २३ सितम्बर को भूमध्य रेखा तक पहुँचता है। उस दिन फिर दिन रात बराबर होते हैं। अब सूर्य दक्खिन जाने लगता है। २१ या २२ दिसम्बर को यह सबसे दक्खिन तक पहुँच गया होता है। उस दिन दक्षिणी गोलार्द्ध में सब से बड़ा दिन होता है, रात छोटी होती है लेकिन उत्तरी गोलार्द्ध में सब से बड़ी रात होती है। यह क्रम ही साल भर चलता रहता है।

पृथ्वी की धुरी झुकी होने के कारण हमें सूर्य, चंद्र और ग्रहों के चलने के मार्ग बदले दिखाई पड़ते हैं। मौसमों के हिसाब से हमें वे हटे दिखाई पड़ते हैं। इस कारण उनके उगने और डूबने की जगह और दिशा भी कुछ हटी मालूम पड़ती है और जब दिन और रात बराबर होने की तिथियाँ आती हैं तो उन दिनों सूर्य को ठीक पूर्व उदय होते और ठीक पश्चिम डूबते देखा जाता है। उन दिनों सूर्य आकाशीय मध्य रेखा पर रहता है। इस रेखा से उत्तर या दक्खिन भी हमें सूर्य के निकलने की जगहें पड़ती हैं। उसका कारण सूर्य का आकाशीय मध्यरेखा से उत्तर या दक्षिण की ओर हटना होता है। जून में आकाशीय मध्यरेखा से सबसे अधिक उत्तर रहने से सूर्य पूर्व के कुछ उत्तर से उदय होता है और पश्चिम के कुछ उत्तर की जगह पर ही डूबता है। दिसंबर में जब यह आकाशीय भूमध्यरेखा से सबसे अधिक उत्तर रहने से सूर्य पूर्व के कुछ उत्तर से उदय होता है और पश्चिम के कुछ उत्तर की जगह पर ही डूबता है। दिसंबर में जब यह आकाशीय भूमध्यरेखा से दक्षिण पहुँचा रहता है तो पूर्व के कुछ दक्षिण निकलता और पश्चिम के कुछ दक्षिण डूबता है।

जिस तरह हमें सूर्य का स्थान और चलने का मार्ग बदला दिखाई पड़ता है, उसी तरह चंद्रमा और ग्रहों के चलने के मार्ग भी हटे मालूम होते हैं। इस कारण हमें राशि-चक्र की जगह भी इसी हिसाब से आसमान में हटी दिखाई पड़ती है। परन्तु वास्तव में आसमान या उसमें की तारामंडली या राशि नहीं हटी होती; उनकी तो एक स्थायी बँधी हुई जगह ही माननी चाहिए। पृथ्वी ही घूमती है और उसकी धुरी टेढ़ी है। इस कारण हमें राशियाँ अपनी जगह हटाती और बदलती जान पड़ती हैं। इन बातों को अच्छी तरह मन में रख कर ही हम आसमान का ठीक भेद समझ सकते हैं। ग्रह और तारे चलते अवश्य हैं जिसे हम भी देख या समझ सकते हैं किन्तु राशियों और आकाश में दूसरे तारामंडलों की ठीक दशा जान लेने पर ही, हम ग्रह चन्द्रमा आदि की ठीक चाल जानने और ग्रहों और तारागणों या नक्षत्रों को पहचान सकने में सफलता पा सकते हैं। यदि आप सारे आसमान को भी चलता माने और पृथ्वी को थोड़े समय के लिए ठहरा मान लें तब भी राशियों के हटते दिखाई पड़ने का क्रम ठीक उसी तरह समझ में आ सकता है जिस तरह आकाश की जगह पृथ्वी को नाचने और परिक्रमा करने की बात जानकर हमें मालूम पड़ सकता है।

—जगपति चतुर्वेदी

ट्रांसिस्टर

लेखक—श्री व० सोबती

संचार विधि में विद्युतणु-नाल की उपज्ञा के बाद ट्रांसिस्टर का आविष्कार एक बड़ा महत्वपूर्ण विकास है। यह युक्ति जिसका प्रयोग दिन प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है, जल्दी ही यंत्रों इत्यादि के लिये अति महत्वपूर्ण होती दिखाई देती है। इसके कई कारण हैं जैसे—कम जगह का घेरना, ऊर्जा का कम व्यय, विषमता, दीर्घ आयु और कम से कम देख भाल की आवश्यकता।

दूसरे उपकरणों की तरह इसके कई दुर्गुण भी हैं जैसे तापमान का प्रभाव, लक्षणिकता का परिवर्ती होना, उच्चवारंवारता के लिये प्रयोग में कुछ रुकावट, अधिक उद्ग्राह्य के लिये असमर्थता और शोर से प्रभावित होना। इन दुर्गुणों—जो कि कभी शायद अन्य विकास के साथ-साथ अति कम कर दिये जाएँगे—के होते हुए भी, ट्रांसिस्टर का प्रयोग कई कार्यों के लिये संतोषप्रद है। जैसे विपुलक, प्रदोलक, नियामक इत्यादि।

यह देखते हुए कि ट्रांसिस्टर का संचार विधि में इतना महत्वपूर्ण बन जाने की सम्भावना है, इसके विषय में कुछ जान लेना रुचिकर ही होगा।

ट्रांसिस्टर के बनाने में ऐसे पदार्थ प्रयोग होते हैं जिन्हें अर्धवाहक कहा जा सकता है। इनमें जिरेनियम और सिलिकन स्फट ही अब तक मुख्य हैं। इनसे कई प्रकार के ट्रांसिस्टर बनाए जा सकते हैं। मुख्य प्रकार 'संगम' ट्रांसिस्टर है।

अधिक बारीकियों में न भी जाना हो तो भी ट्रांसिस्टर के विषय में कुछ जानने से पहले, अर्धवाहकों के विषय में थोड़ा ज्ञान प्राप्त करना ठीक होगा। शुद्ध होने पर जिरेनियम जैसे अर्धवाहक प्रायः विसंवाहक से ही होते हैं। हाँ जब उनमें कुछ मिलावट हो तो कुछ-कुछ संवाहक की तरह ही आचरण करते हैं और जैसी-जैसी मिलावट हो वैसे-वैसे ही उनके लक्षणों में भी परिवर्तन होता जाता है।

ऐसी मिलावट जिससे स्वतंत्र विद्युदणु (इलक्ट्रान) बढ़ जावें "दाता" प्रकार की मिलावट कहलाती है और जिस स्फट में ऐसी मिलावट हो उसे 'न' प्रकार का स्फट कहते हैं। इसके विपरीत ऐसी मिलावट जिससे धन विद्युत प्रभावित क्षेत्र हो उठें कि विद्युदणु स्वतंत्रता से उनमें बह सकें, "स्वीकर्त्ता" प्रकार की मिलावट कहलाती है। जिस स्फट में ऐसी मिलावट हो उसे 'ध' प्रकार का स्फट कहते हैं।

इन दोनों तरह के स्फट में दोनों ओर सम-विद्युद्वाहन होता है, परन्तु जब स्फट में दोनों प्रकार के क्षेत्र हों ('न' और 'ध') तो विद्युद्वाहन एक ही दिशा में हो पाता है। ऐसे स्फट ही शुरू-शुरू में रेडियो बनाने के लिये प्रयोग किये गये थे। इनमें से संवाहन तो हो सकता है परन्तु ये विपुलन नहीं कर सकते।

"संगम" ट्रांसिस्टर से विपुलन करने के लिये ऐसा प्रबन्ध किया जाता है कि 'न' प्रकार के स्फट की दो तहों के बीच एक 'ध' प्रकार के स्फट की तह (न ध न) हो या इसी तरह 'ध' तहों के बीच 'न' तह (ध न ध) हो। बाहर वाली तहें एक 'उत्सर्जक' और "संग्रहक" कहलाती हैं। इसी प्रकार बीच वाली तह "आधार" कहलाती है।

निम्न चित्र में "न ध न" ट्रांसिस्टर से बना विपुलक परिपथ दिया गया है।

"उत्सर्जक" योजना आदा और प्रदा परिपथों के लिये साझा है, इसलिये ऐसे प्रबन्ध को "साझा उत्सर्जक विपुलक" कहते हैं। (दो प्रबन्धों "सा०

सं० वि०" और "सा० आ० वि०" का प्रयोग भी किया जाता है।) मान लें कि जनित्र ज की शक्मता
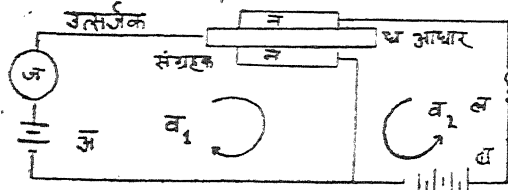
शून्य है। समूह अ के कारण विद्युद्वाह व₁ "आधार" में से और फिर "उत्सर्जक" में से होता हुआ होगा। इसके प्रभाव से "आधार" की ओर विद्युदणु धारा बहती है। आधार की तुलना विद्युदणुनाल के झरझर (ग्रिड) से की जा सकती है। इस विद्युदणु धारा और समूह ब की उच्च-शक्मता के प्रभाव से "उत्सर्जक" से, संग्रहक की ओर विद्युदणु आकर्षित होते हैं और इससे समूह ब से, ल से होता हुआ और भी अधिक वाह होता है।

अब ज यदि व्यत्यस्त शक्मता उत्पन्न करे तो इसके प्रभाव से उस जैसा ही व्यत्यस्त वाह व होगा जिससे व₂ और भी बढ़ी हुई शक्ति से होगा और ल के आर-पार कई गुणा बढ़ी हुई व्यत्यस्त शक्मता उत्पन्न हो जावेगी। इसी परिणाम को हम विपुलन क्रिया कहते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि ट्रांसिस्टर के विद्युदणुनाल की जगह सरलता से प्रयोग किये जाने के लिये तो अभी इसमें काफी सुधार की आवश्यकता है परन्तु इसके वर्तमान गुण भी इतने लाभदायक हैं कि निकटस्थ भविष्य में इसके और भी अधिकाधिक नये-नये प्रयोग सूझने की आशा की जा सकती है।

जहाँ-जहाँ इनका प्रयोग सम्भव है, ऊर्जा की बहुत बचत की जा सकती है। साथ ही इसका इतना छोटा आकार होने के कारण इसे इतनी कम जगह में कई प्रयोगों, विशेषतः उच्चवार्तावार्ता कार्य के लिये प्रबन्धित किया जा सकता है। इनके इतने दृढ़ होने से इनकी दीर्घायु का हो सकना स्वाभाविक ही है। इनकी देखभाल के लिये भी किसी विशेष सावधानी की आवश्यकता नहीं।

इनके इतने गुण होते हुए भी इनके साधारण प्रयोग में आने वाली कठिनाइयों का हटाया जाना अभी तक बाकी है। आशा है इन्हें निर्माण करने की कला के विकास के साथ-साथ, ऐसी बाधाएँ भी धीरे-धीरे न रहेंगी। फिर तो संचार क्षेत्रों में इनकी महत्ता और भी बढ़ जाएगी, और कौतुकीय होने के साथ-साथ इनके प्रयोग से प्रारम्भिक मूल्य और देख-रेख व चालन के व्यय में भारी बचत भी होगी।

घासपात से हानियां—(पृष्ठ २२ का शेषांश)

पालतू और जंगली दोनों ही प्रकार के पशुओं के कारण इनका विकिरण होता है। पशु घास चरते हैं और वे बहुत-सी ऐसी घास खाते हैं जिनके बीज उन्हें नहीं पचते और गोबर के साथ निकल जाते हैं। पशु एक जगह से दूसरी जगह घूमा-फिरा करते हैं और इस तरह जो बीज उनके गोबर के साथ निकल आते हैं, अनुकूल दशा पाने पर यहाँ-वहाँ अंकुरित हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त बहुत-से बीज पशुओं के शरीर से चिपट जाते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। जब कुछ जानवर कीचड़ आदि में होकर जाते हैं तो जो कीचड़ उनके शरीर में लग जाती है, वह बीज के चिपटने में सहायता करती है। जब कीचड़ सूख कर झड़ने लगती है तो उसके साथ बीज भी गिर पड़ते हैं। जिन पशुओं के शरीर पर बाल होते हैं उनके बालों में बीज लग जाते हैं और दूसरी जगह आकर गिर जाते हैं।

जंगली पशुओं द्वारा हमें विकिरण को रोकना बड़ा कठिन है लेकिन पालतू पशुओं द्वारा किया विकिरण कुछ रोका जा सकता है। पशुओं के चरने के लिये चरागाह होने चाहिये, जिससे वे चारों तरफ खेतों में चरते न फिरें।

घासपात से हानियाँ और उनका निराकरण

श्री तेजपाल सिंह, एम० एस-सी० (कृषि)

भारतवर्ष में घासपात की समस्या पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। इसके विपरीत दूसरे देशों में इस पर बहुत ध्यान दिया जाता है। घासपात व्यर्थ और हानिकारक वनस्पति हैं। यह वहाँ उगती है, जहाँ इसकी आवश्यकता नहीं होती। किसी पौदे को केवल उसके संलक्षण (Characteristic) और प्रकृति (Nature) के आधार पर घासपात नहीं कहा जा सकता बल्कि उनका अन्य पौदों और मनुष्य के साथ सम्बन्ध भी देखना पड़ता है, क्योंकि किसी फसल का पौदा जो कि दूसरी फसल के खेत में उग जाता है जहाँ उसकी आवश्यकता नहीं होती है वहाँ पर वह घासपात कहलाता है। लेकिन व्यावहारिक कार्यों के लिये घासपात उसी वनस्पति को कहा जाता है जो अनावश्यक, हानिकारक, कष्टदायक और कृषि क्रियाओं में बाधा डालती है। मनुष्य के, घासपात की वृद्धि और उसके विकिरण को रोकने पर कोई विशेष ध्यान न देने के कारण घासपात खेती, बागबानी और साग-भाजी के उत्पादन में बड़ी बाधा है। यह आवश्यक है कि घासपात की वृद्धि और उसके विकिरण की समस्या पर विशेष ध्यान दिया जाये। सुविधा के लिये घासपात तीन वर्गों में बाँटी जा सकती है।

१—वार्षिक (Anuual)—यह अपना जीवन-चक्र एक वर्ष में ही पूरा कर लेती हैं जो ऋतु के अनुसार दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक तो खरीफ की घासपात जो वर्षा ऋतु में उगती हैं जैसे—पथरचटा (Trianthema monogyna) दूसरे रबी की घासपात जो रबी की फसल के साथ-साथ उगती हैं। जैसे प्याजी (Asphodelus tenuifolius)

२—द्विवार्षिक (Biennial)—जिनका जीवन चक्र दो वर्ष में पूरा होता है जैसे: जंगली गाजर (Wild Carrot)

३—वर्षानुवर्षी (Perennial) जिनका जीवन चक्र दो वर्ष से अधिक समय में पूरा होता है जैसे नागरमोथा (Nut grass) आदि।

घासपात किसान को कई प्रकार की हानियाँ पहुँचाती हैं। जैसे :—

१—घासपात खेत में जगह घेरती हैं।

२ ये अपनी वृद्धि के लिये उस खाद, रोशनी और पानी का उपभोग करती हैं जिसकी फसल को करना चाहिये था। इसके फलस्वरूप फसल की बढ़वार की भारी हानि होती है।

३—कृषि-क्रियायें अच्छी तरह से नहीं हो सकतीं क्योंकि घासपात के कारण रुकावट होती है।

४—घासपात के पौदे कीटों को आश्रय देते हैं।

कुछ घास-पात रोगों को फैलाने में एकान्तर परिपालक का काम करती हैं।

कुछ घास-पातों के बीज स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होते हैं जैसे:—सत्यानाशी (Argemone mexicana)

घास-पातों के बीज फसलों के बीजों के साथ मिल जाते हैं जिसके कारण पैदावार के गुण घट जाते हैं और वह बाजार में अच्छी कीमत पर नहीं बेची जा सकती।

घास-पात की निराई (Weeding) करने में समय और खर्च भी अधिक लगता है। घास-पात चरागाहों की उपज शक्ति को कम करती है। जिसके फलस्वरूप जमीन का मूल्य घट जाता है।

चलने की शक्ति न होते हुये भी घासपात एक

स्थान से दूसरे स्थान पर चली जाती हैं। इनके बीजों का विकिरण हवा, पानी, मनुष्य, पशु और पक्षियों द्वारा होता है। इनके अतिरिक्त फल फटने से भी बीज बिखर जाते हैं। बीज-विकिरण का फल यह होता है कि जिस इलाके में पहले कोई विशेष घासपात नहीं थी वहाँ पर भी कुछ समय बाद घासपात उग आती है, और धीरे-धीरे उनकी फसल के साथ प्रतियोगिता हो जाती है इससे फसल को बहुत हानि होती है।

भारतवर्ष में घासपात के कारण जो हानि होती है उसका अनुमान नहीं लगाया जा सका है। अगर इस तरह का अनुमान लगाया जाय तो इनके द्वारा हानि का पता चल सकता है और फिर इनके नियन्त्रण पर भी ध्यान दिया जा सकता है जो देश के लिये बड़े महत्व की बात होगी।

इस लेख में खाद, औजार, पशु और बीज मिलावट के द्वारा बीज-विकिरण का वर्णन किया गया है।

किसान लोग बहुत सी घासपात उखाड़ कर खाद के गड्ढों में डाल देते हैं अथवा बहुत सी घासपात खाद के गड्ढों के किनारे पर उग आती हैं। इन सब के बीज खाद के गड्ढों में चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो घास-पात पशुओं को खिलाई जाती हैं उनके बीज पशु पचा नहीं पाते और बीज जैसे के तैसे गोबर के साथ निकल जाते हैं और मनुष्य द्वारा खाद के गडडों में गोबर के साथ ही डाल दिये जाते हैं। इसके साथ-साथ घासपातों के बीज कूड़े करकट के साथ खाद के गड्ढों में चले जाते हैं। इस तरह जो बीज खाद के गड्ढों में पहुँच जाते हैं उनकी अंकुरण-क्षमता (Germinating capacity) नष्ट नहीं होती।

खाद के साथ घासपातों के बीज भी खेत में पहुँचा दिये जाते हैं। जब बीजों के अंकुरण के लिये अनुकूल दशा मिलती है तो उनका अंकुरण शुरू हो जाता है। और जिन खेतों में पहले कोई विशेष घासपात नहीं पायी जाती थी, अब वहाँ भी दिखाई देने लगती है।

किसान को चाहिये कि कोई भी घासपात वह अपने खाद के गड्ढे की मेंड़ पर और उसके आस-पास न उगने दे और यदि घास-पात का पौदा दिखाई दे तो उसको उखाड़ कर जला देना चाहिये। कोई भी घास-पात का पौदा खाद के गड्ढे में नहीं डालना चाहिये। और यदि घास-पात डाले भी जायें तो उनको बिना जलाये नहीं डालना चाहिये।

अधिक तर किसान अपने खेतों पर न रहकर गाँव में रहते हैं और गाँव से खेतों पर काम करने जाते हैं।

बहुत-सी घास-पात फसलों के साथ खेतों में होती हैं। जैसे प्याजी (गेहूँ के साथ) और सेंजी (रिजके के साथ) ऐसी घास-पातों के बीज फसल के साथ-साथ पकने पर काट लिये जाते हैं। इस तरह से घास-पातों के बीज फसल के बीजों के साथ मिल जाते हैं और अगले वर्ष फसल के बीजों के साथ खेतों में बो दिये जाते हैं। इस तरह से घासपातों के बीज एक देश से दूसरे देशों तक फैल जाते हैं।

किसान यदि चाहे तो घासपात के बीजों और फसलों के बीजों के मिश्रण को थोड़ा बहुत रोक सकता है। किसान को समय-समय पर अपने खेतों और आस-पास की जगहों की जाँच करते रहना चाहिए और जो घास-पात दिखाई दे उनको उखाड़ कर जला देना चाहिये। फसल की निराई समय-समय पर करते रहना चाहिये। ऐसा करने से खेतों से घास-पात के पौदे ही नष्ट नहीं होंगे वरन् उनके फसलों के बीजों के साथ मिलने भी नहीं पायेंगे। यदि किसी कारण किसान अपने खेत में से बोने के लिए समय पर अच्छा बीज प्राप्त नहीं कर सकता तो सरकारी गोदाम से बीज लेकर बोना चाहिये।

बरहा, जिनके द्वारा खेतों में पानी दिया जाता है, साफ रखना चाहिये, जिससे किसी घास-पात के बीज पानी के साथ बहकर खेत में न जायें।

[शेष पृष्ठ २० पर]

ऋतु सम्बन्धी विविध बातें

डा० सत्य प्रकाश, डी० एस-सी०

कुहासा और कुहरा

[Mist and Fog]

जाड़े के दिनों में तुमने प्रातःकाल ५-६ बजे के बीच में किसी-किसी दिन घना कुहरा देखा होगा। कभी-कभी तो यह कोहरा इतना घना छा जाता है कि तुम १०-२० हाथ दूरी पर खड़े हुए व्यक्ति को भी नहीं देख सकते। कई बार ऐसा हुआ है कि रेलगाड़ी का ड्राइवर या गार्ड इस घने कोहरे में दूर का सिगनल न देख पाया, और उसकी गाड़ी सामने से आती हुई दूसरी गाड़ी से टकरा गयी और भयंकर दुर्घटनायें हो गयीं, अन्तरिक्ष में छाया हुआ यह कोहरा क्या है ?

संभवतः तुम यह जानते हो कि हमारे चारों ओर की वायु में पानी की काफी भाप है। नदी-तालाब का पानी सूख कर भाप बन जाता है और यह भाप तुम देख नहीं सकते पर यह हवा में रहती है। धूप में गीले कपड़े सूख जाते हैं क्योंकि उनका पानी भी भाप बनकर हवा में पहुँच जाता है। काँच के गिलास के भीतर थोड़ी सी बर्फ रक्खो। तुम देखोगे कि गिलास के बाहर गिलास पर पानी की छोटी-छोटी बूँदें जमा हो गयी हैं। ये बूँदें कहाँ से आयीं ? ये पानी की बूदें हवा से आयी हैं। बर्फ से गिलास ठंढा पड़ा और उससे ठंढी होकर गिलास के पास की हवा की भाप भी पानी बन गयी। प्रातःकाल पेड़ों के पत्तों पर और हरी घास पर पड़ी हुई ओस भी तो हवा से ही आयी है। हवा की भाप रात को ठंढी होकर पानी बन गयी और यह पत्तियों पर या घास पर ओस की बूँद कहलायी।

भाप ठंढा होने पर पानी बनती हैं, पर यदि पानी को और अधिक ठंढा किया जाय, तो यह बर्फ बन जाता है। तुमने ओले बरसते देखे होंगे। बादलों वाली पानी की भाप जब बहुत ठंढी हुई, तो यह ओले बन गयी, काले-काले बादल जो आकाश में घूमते दिखाई देते हैं—क्या ये पानी की भाप हैं ? नहीं। हम अभी कह चुके हैं कि पानी कोई आँखों से नहीं देख सकता। क्या तुम अपने चारों ओर की हवा में भाप देख रहे हो ? नहीं ! तो ये बादल क्या हैं ? पानी की भाप जब अन्तरिक्ष में ऊपर चढ़ी तो वहाँ ठंढी होकर जल-कण बन गयी, द्रव जल के ये कण अभी इतने छोटे हैं कि ये हवा में ही छितरे रह गये, बरस कर जमीन पर नहीं गिरे। अन्तरिक्ष में चलते हुए ये द्रव पानी के कण ही काले बादल हैं। द्रव पानी के ये नन्हें कण काफी मात्रा में बड़े हो जायँगे, तो पानी के रूप में बरसने लगेंगे।

जो कुहरा हम देखते हैं, वह केवल द्रव पानी नहीं हैं। इसमें कभी-कभी ठोस बर्फ के भी छोटे-छोटे कण होते हैं। पहाड़ी स्थानों पर रूई के समान मुलायम बर्फ गिरा करती है। अन्तरिक्ष की हवा जब बहुत ठंढी पड़ जाती है, तो यह अब पानी की भाप को अपने अन्दर कम रख सकती है, शेष भाप या तो ओस बन जाती है (जो द्रव पानी है) अथवा और भी अधिक ठंढी बनाकर बर्फ के नन्हें-नन्हें कण बन जाती है। पानी या बर्फ के ये नन्हें-नन्हें कण हवा में छितरे रहने पर कुहरा कहलाते हैं। सूर्य की रोशनी निकलते ही प्रातःकाल का कुहरा छँटने लगता है। सूर्य निकलने पर हवा का तापक्रम बढ़ जाता है, और ओस के कण फिर भाप बन जाते हैं।

हवा में भाप कितनी रह सकती है, यह हवा के तापक्रम पर निर्भर है। जैसे ठंढे पानी में नमक या चीनी कम घुलती है, और गरम पानी में अधिक.

उसी प्रकार ठंडी हवा थोड़ी ही भाप से संतृप्त (Saturate) हो जाती है। ज्यों-ज्यों तापक्रम बढ़ता है, संतृप्त होने की यह मात्रा भी बढ़ जाती है। ३२° F तापक्रम पर १६० भाग (तौल में) हवा में १ भाग पानी की भाप रह सकती है। २७° तापक्रम और बढ़ जाय (अर्थात् ५९° F पर), भाप की मात्रा हवा में दुगनी हो जायगी (१६० भाग में २ भाग भाप)। ८६° F पर १६० भाग हवा में ४ भाग भाप रह सकती है। भाप को जल-कणों में परिवर्त्तित करने में जहाँ तापक्रम का कम होना आवश्यक है, वहाँ यह भी आवश्यक है कि हवा में धूल के छोटे-छोटे कण भी छितराये हों। धूल के ये नन्हें कण भाप के द्रव बनने में बहुत सहायता देते हैं। यदि रज कण या धूल के कण बिलकुल न हों, तो तापक्रम कम होने पर भी ऐसा हो सकता है कि ओस न गिरे या कोहरा न छावे।

कुहासा (mist और कुहरा fog) लगभग एक ही चीज हैं। भेद इतना ही है कि कुहासा में पानी के कण कुछ अधिक छोटे होते हैं, और यह कुहरे की अपेक्षा अधिक पारदर्शक होता है। कुहासा ऊपर से नीचे उतरता दिखायी पड़ता है।

कुहरे और बादल में केवल इतना अन्तर है कि बादल अन्तरिक्ष में ऊँचाई पर होते हैं, पर कुहरा जमीन के निकट के अन्तरिक्ष में होता है।

मेघ-गर्जन और तड़ित्
[Thunder and Lightning]

तुमने बादलों को गरजते और बिजली को कड़कते बहुधा देखा होगा। सभी बादल गरजते और कड़कते नहीं हैं। कहा जाता है "जो गरजते सो बरसते नहीं"—पानी बरसने वाले बहुत से बादल बिना गरजे और कड़के ही बरस जाते हैं। यदि पानी की भाप बहुत शीघ्रता से मेघ बने तो गर्जन-मेघ (thunder cloud) बन जाते हैं।

तुमने बहुधा देखा होगा कि पानी बरसने से पहले "उमस" (sultriness) पैदा होती है। विपरीत दिशा में दो हवायें बहने के कारण हवा का बहाव रुक जाता है। इसी को कहते हैं कि हवा बन्द हो गयी। ऊपर से फिर ठण्डी हवा अन्तरिक्ष की गरम हवायें प्रविष्ट होती हैं। ठण्ढक हो जाने पर मेघ बरसने लगता है। १-२ घण्टे की उमस के बाद कुंतल (Cirrus) मेघ छा जाते हैं, और फिर श्यामवर्ण के कुञ्ज वर्षुक (Cumulo nimbus) गर्जन मेघ ३३०० फुट ऊँचाई पर दिखायी देते हैं। गर्जन मेघों के नीचे कुछ पीले-पीले बादल भी आवेंगे, और फिर घनघोर वर्षा होने लगेगी। आरम्भ में बड़ी-बड़ी बूँदें गिरती हैं, और बाद को मूसलाधार पानी।

कहा जाता है कि प्रतिवर्ष १ करोड़ ६० लाख गर्जन-तूफान संसार में आते हैं। प्रतिदिन ४४००० तूफान और ६००,००० बार बिजली के कौंधे चमकते हैं। एक तूफान में प्रति घंटे २०० बार बिजली कौंधती हैं।

बादल क्यों गरजते हैं और बिजली क्यों कड़कती है? इन्द्र देवता का लोग इसे प्रकोप मानते थे। बादलों के देवता थोर (Thor) की आवाज यूरोपवासी मानते थे [थौर देवता के नाम पर अँग्रेजी दिन थर्सडे—का नाम पड़ा है]। सन् १७४९ में बैंजामिन फ्रैंकलिन ने बादलों के निकट पतंग भेजकर जिसमें तार बंधा था, यह सिद्ध किया कि बादलों के कण विद्युन्मय हैं।

बिजली दो तरह की होती है, धन और ऋण धन विद्युत् वाले बादल यदि ऋण विद्युत् वाले बादल के सम्पर्क में आवेंगे, तो धन बादल की बिजली ऋण बादल की ओर दौड़ेगी। यह दौड़ इतनी जोर से होती है, कि बादल गरजने लगते हैं। कभी-कभी ऋण और धन बिजलियों के संयोग होने पर चिनगारी या रोशनी भी दिखायी देती है। यही बिजली का कौंधा है।

यह आवश्यक नहीं है कि ऋण बादल धन बादलों के सम्पर्क से ही बिजली के कौंधे दें। ऐसा भी होता है, कि जब मेघों पर ऋण विद्युत् बहुत बढ़ जाती है, तो पृथ्वी से धन विद्युत् मेघों की ओर

दौड़ती है। मेघ और पृथ्वी के बीच का अन्तरिक्ष इस प्रकार विद्युन्मय हो जाता है मानों मेघों को पृथ्वी से किसी ने धातु के तार से संयुक्त कर दिया हो। ऐसी अवस्था में बिजली का कौंधा पृथ्वी से उठकर मेघ तक पहुँचता है। ऐसा मालूम होता है कि मानों आपकी छत पर ही बिजली गिरी है। अनेक बार इस प्रकार की तड़ित् से पेड़ जल गये या मकान झुलस गये आदमी भी बहुधा मर जाते हैं।

तुमने देखा होगा कि बिजली की कड़क के घातक प्रभाव से मकानों और इमारतों को बचाने के लिए लोहे का त्रिशूल इमारतों की चोटी पर लगाते हैं, और ताँबे या लोहे के तार से (या पत्ती) से भूमि के भीतर नींव तक इस त्रिशूल का सम्बन्ध कर देते हैं। धातु के तार में होकर मकान पर गिरी बिजली शान्त रूप से पृथ्वी में चली जाती है।

मेघ से भूमि तक बिजली आने में एक सेकंड का लाखवाँ भाग समय का लगता है। मेघ-विद्युत् में ५००,०००,०००,५१००० की शक्ति होती है। यह बिजली १ सेकेंड में १८६००० मील के वेग से चलती है।

गरम प्रदेशों में (उष्णकटिबन्ध वाले) गर्जन तूफान बहुत होते हैं। एबीसीनिया में वर्ष में २१४ दिन इस प्रकार के गर्जन सुनायी देते हैं। दक्षिण ध्रुव प्रदेश में ये नहीं पाये जाते। उत्तर ध्रुव प्रदेश में भी बहुत कम होते हैं।

ओलों की वर्षा

[Hailstorms]

तुमने प्रतिवर्ष ही एकाध बार ओलों की वर्षा देखी होगी। मटर के दाने से लेकर आलू के बराबर तक के ओले जब बरसने लगते हैं, तो जमीन इनसे छा-जाती है। तुमने ओले बटोर कर बालटियाँ भरी होंगी। ये सफेद ओले देखने में बड़े सुन्दर लगते हैं। पर ओलों की वर्षा से हानि बहुत होती है। ओलों की वर्षा से फूल झर जाते हैं, और फल गिर जाते हैं। इनकी मार से छोटे-छोटे पक्षी मर जाते हैं। बागों और खेतों को बड़ा नुकसान होता है।

ओले बर्फ हैं, जो अन्तरिक्ष के मेघ-जल के जम जाने के कारण बनते हैं। आकाश के बादल कभी-कभी इतने ठंडे पड़ जाते हैं, कि भाप पानी न बन कर बर्फ बन जाती है। १ ग्राम बरफ ०° का पानी बनने में ८० केलॉरी गरमी लेगी। इसे बर्फ का गुप्त ताप (latent heat) कहते हैं। ऊँचे पहाड़ों पर (जैसे मसूरी में या एवरेस्ट की चोटी पर) जाड़े के दिनों में जमी बरफ तुमने सुनी होगी, उसी प्रकार की बर्फ यह ओले भी हैं।

चक्रवात

[Cyclones]

कदाचित् तुम यह जानते हो कि द्रव (जैसे पानी) और गैसें जैसे हवा गरमी पाकर आयतन में फैलती हैं, अर्थात् उनका घनत्व कम हो जाता है, वे हलकी हो जाती हैं। यदि हवा का तापक्रम बढ़ा दिया जाय तो वह पहले की अपेक्षा हलकी हो जायगी। यह नियम है कि हलकी चीज ऊपर उठती है और भारी चीज नीचे बैठती है।

गरमियों के दिनों में सूर्य्य की किरणें भूमध्य रेखा के निकटस्थ उष्ण;कटिबन्ध के प्रदेशों में सीधी पड़ती हैं। इस कटिबन्ध में हवा अधिक गरम हो उठती है। शीत और शीतोष्ण कटिबन्धों (उत्तर और दक्षिणी क्षेत्रों) में सूर्य्य की किरणें कुछ तिरछी आती हैं, अतः सूर्य्य से वहाँ की हवा को गरमी कम मिलती है, और ये हवायें उष्ण कटिबन्ध के समान अधिक गरम नहीं होतीं। इसका परिणाम ये होता है कि उष्ण कटिबन्ध की हवायें हलकी होकर पृथ्वी से अन्तरिक्ष की ओर ऊपर उठती हैं, और इनका स्थान घेरने के लिए शीतोष्ण कटिबन्ध के प्रदेश से ठंडी हवायें भूमध्य रेखा की ओर बड़े वेग जाती हैं। ये हवायें व्यापारी हवायें कहलाती हैं (क्योंकि इनके चलने की दिशा के आधार पर पुराने समय के व्यापारी जहाज यात्रा करते थे)।

जाड़े के दिनों में इसका उलटा होता है। सूर्य्य दक्षिणायन होता है, मिथुन रेखा (Capricorn) पर किरणें अधिक सीधी पड़ती हैं, और भूमध्यरेखा

पर तिरछी, फल यह होता है, कि हवा की दिशायें पहले की उल्टी हो जाती हैं।

इन व्यापारी हवाओं की दिशा तापक्रम और सूर्य्य की स्थिति पर तो निर्भर है ही, इनकी दिशायें एक और कारण से तिरछी हो जाती हैं। पृथ्वी अपनी धुरी पर नाच रही है। यह अक्ष या धुरी एक ओर को कुछ तिरछी भी है। मान लो कि उत्तर से भूमध्यरेखा (विषुवत् रेखा) की ओर सीधो एक व्यापारी हवा आ रही है। पृथ्वी अपनी धुरी पर नाचती है। पृथ्वी के नाचने की यह गति भूमध्य-रेखा के निकटस्थ स्थानों में अधिक होती है और ज्यों-ज्यों हम उत्तर की ओर बढ़ते हैं, यह गति कम होती जाती है। अतः उत्तर की ओर से जो हवा भूमध्यरेखा की ओर आयी, उसकी घुमाव वाली गति कम थी और भूमध्यरेखा की ओर उसे अधिक घुमाव की गति वाली हवायें मिलीं। फल यह हुआ कि ये हवायें साथ न चल सकीं और कुछ 'तिरछी हो गयीं।

जिस प्रकार तापक्रम की भिन्नता और पृथ्वी की भ्रामक गति के कारण व्यापारी हवायें एक प्रदेश से दूसरे प्रदेशों को चलती हैं, उसी प्रकार इन्हीं दोनों कारणों से एक ही स्थान के विभिन्न अंशों में तापक्रम का कुछ विचित्र परिवर्तन हो जाय, तो वहाँ भी जोरों की आँधियाँ या तूफान चलने लगते हैं। इन्हीं तूफानों में से चक्रवात या सायक्लोन भी एक है। तुमने नदी में भँवर देखी होगी। इसी प्रकार अन्तरिक्ष की हवाओं में तापक्रम की विचित्र स्थिति के कारण जब भँवरें आती हैं तो उन्हें चक्रवात कहा जाता है।

चक्रवात कब आते हैं—जब तापक्रम में स्थान-स्थान पर ऐसा भेद हो जाता है कि उसके कारण एक विशेष स्थान की हवा बहुत हल्की हो जाती है। (हवा का दाब न्यूनतम होता है)। इस न्यूनतम दाब वाले स्थान के चारों ओर हवा का दाब बहुत होता है, और हवायें चारों ओर से इस ओर झपटती हैं। पृथ्वी की भ्रामक गति इस झपट की दिशा में भँवर पैदा कर देती हैं। दक्षिणी गोलार्ध में चक्रवात की भँवरें घड़ी की सुई की दिशा (clockwise–दक्षावर्त) में नाचती है, और उत्तरी गोलार्ध में घड़ी की सुई की उल्टी दिशा में (anti clockwise–वामावर्त)

चक्रवात मानसूनी हवाओं से अधिक प्रबल और भयंकर होते हैं। ये स्थानिक होते हैं और अस्थायी। इन्हें नाचते हुए हवाई तूफान समझना चाहिये। चक्रवात हिन्द महासागर, प्रशान्त महासागर और चीन के समुद्रों में बहुत आते हैं। यहाँ इन्हें "टाइफून" (typhoon) या तूफान कहते हैं। वेस्ट इंडीज़ में इनका नाम "हरीकेन" (hurricane) या भँवरदार हवा है। आस्ट्रेलिया में इन्हें "विली-विली" (Willy-willy) कहते हैं। इनके कारण बहुत क्षति होती है। इनकी गति १०० मील प्रति घंटा या अधिक तक की होती है। सन् १८९६ में सेंट लुई (St- Louis) के नगर में एक चक्रवात ऐसा आया जिसकी गति ५५८ मील प्रति घंटा थी। इसने समस्त नगर का विध्वंस कर दिया। चक्रवात २० से लेकर कई सौ मील तक के विस्तार से आते हैं। चक्रवात आने के पूर्व कड़ी गर्मी पड़ती है और फिर थोड़ी देर के लिये ऋतु शान्त हो जाती है। फिर तूफान का अग्रिम झोंका बड़े जोर से धक्का देता है। फिर थोड़ी देर के लिए शान्त हो जाता है। अब पहले की उलटी दिशा में दूसरे झोंके का जोरों से धक्का लगता है।

सन् १८५१ में वेस्ट इंडीज में एक चक्रवात उठा जिसका विस्तार २५०० मील था। इसने अतुल सम्पत्ति नष्ट की और इससे १४७७ मनुष्य मरे। विशाल भवन जमीन पर गिर गये और जहाज टूट-फूटकर तट पर आ लगे। सन् १८०४ में कलकत्ते में एक चक्रवात आया था, जिसमें ६०,००० व्यक्ति मरे, १०० जहाज नष्ट हुए और कई नगरों की क्षति हुई। तीन बरस बाद ही दक्षिणी बंगाल में फिर एक चक्रवात आया जिसमें ६०,००० व्यक्ति मरे और ३०००० मकान गिरे।

[शेष दूसरे अङ्क में]

मधुमक्खी-पालन

लेखक—सर्वदेव सिंह

भारतवर्ष अपनी सभ्यता के प्रारम्भ काल से मधु का प्रयोग औषधियों एवं बहुमूल्य भोज्य पदार्थ के रूप में करता आ रहा है। अथर्ववेद में मधु के अनेक लाभों एवं गुणों के विषय में बहुत कुछ लिखा है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य्य-काल में मधु का प्रयोग अधिक मात्रा में होता था। आयुर्वेद शास्त्र के महान् ग्रंथ भावप्रकाश और सुश्रुत आदि मधु के लाभ और उसके प्रयोगों से परिपूर्ण हैं। मधु-विक्रय का उल्लेख अर्थशास्त्र में अनेक स्थलों पर आया है। यह स्पष्ट है कि यह पुस्तक अरस्तू के समकालीन प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चाणक्य की लिखी है। कुरान-शरीफ में भी मधु और उसकी जननी की महत्ता का रोचक वर्णन आया है। चीनी ह्वेनसांग और फाहियान आदि ने तत्कालीन भारतीय चिकित्सा शास्त्र की उत्तम रीति से प्रशंसा की है जिसमें मधु के प्रयोग विशेष महत्वपूर्ण है। हम लोग मधु का प्रयोग आयुर्वैदिक एवं यूनानी औषधियों में करते हैं; परन्तु दुख के साथ कहना पड़ता है कि हम लोग मधुमक्खी-पालन की कला को भूल से गये हैं जिसके फलस्वरूप हमारा एक बहुत ही महत्वपूर्ण कुटीर धन्धा का ह्रास होता जा रहा है।

भारतवर्ष में मधु-मक्खियों को उनके आकार के अनुसार चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) सारङ्ग, (२) खैरा, (३) भुनगा और (४) छोटी भुनगा। सारङ्ग सबसे बड़ी और छोटी भुनगा सबसे छोटी होती है।

(१) सारङ्ग—इसको हिन्दी में 'सारङ्ग' 'जंगली मक्खी' और संस्कृत में अर्घ्य कहते हैं। यह भौंरे से किंचित् छोटी होती है। यह एशिया के पूर्वी हिस्से में पायी जाती है। यह स्वतंत्र रहना पसन्द करती है। इसीलिये जंगलों में रहती है। साधारणतया खुले स्थानों पर वृक्षों की ऊँची टहनियों, ऊँचे मकानों की दिवारों के बगल में, पहाड़ों की उभरी हुई चट्टानों पर और पुलों के नीचे अपना छत्ता बनाती है। यह ४ इंच तक मोटा, ३ फुट से १२ फुट तक लम्बा और २ फुट से ६ फुट तक चौड़ा एकहरा छत्ता बनाती है। इसके छत्ते के एक वर्ग इंच में १५ कोष्ठ (कोठे) होते हैं। इसका डंक बहुत विषैला होता है। इसका आकार केवल भौंरों को छोड़कर संसार के अन्य सब मधु-मक्खियों से बड़ा होता है। यह मधु और मोम अन्य मक्खियों से अधिक देती है। अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक मि० गोनेटिलिक ने सारङ्ग मक्खी के एक छत्ता से १२ गैलन (डेढ़मन) शहद निकलते देखा है। अनेक प्रयोगों के बाद भी यह पालतू नहीं बन सकी है। आज यह पालतू हो गई होती तो भारत का व्यापार चमक उठता। फिर भी जंगली होने पर भी हमारे देश को इससे बहुत लाभ होता है।

(२) भुनगा-संस्कृत में भुनगा को क्षुद्रा कहते हैं। इसका रहन-सहन भी स्वतन्त्र है। यह भी सारङ्ग की भाँति छोटी मोटी झाड़ियों, पेड़ों की टहनियों आदि में एक-हरा छत्ता बनाती हैं। ये भी जंगली हैं। प्रयत्नों के बाद भी पालतू नहीं बन सकी। इसके पालतू न होने से विशेष आर्थिक लाभ नहीं हैं। इसके छत्ते में से अधिक से अधिक पौने दो सेर तक शहद निकलता पाया गया है। इसके छत्ते की लम्बाई करीब ९ इञ्च और चौड़ाई ५ इञ्च तक होती है। सारङ्ग और खैरा से कद में छोटी होती है। इसकी पीठ पर काली, सफेद और भूरी रेखायें होती हैं। सारङ्ग से इसका डंक कम विषैला होता है। भुनगा अपने छत्ते के एक

वर्ग इञ्च में १०० छोटे-छोटे कोठे बनाती है जिनमें कमेरी मक्खियाँ पाली जाती हैं। भुनगा शहद कम बनाती है किन्तु इसका शहद आयुर्वैदिक औषधों में अधिक लाभदायक होता है।

(३) छोटी भुनगा—यह भुनगा के छोटी होती है। संस्कृत में 'औद्दाल' नाम से पुकारते हैं। मच्छड़ के समान छोटी और काली होती है। इसका आकार गोल होता है। वायु और प्रकाश से बच कर बिल्कुल अन्धेरे स्थानों, वृक्षों के खोखलों, या घरों में, मकानों की दिवारों के अन्दर और मिट्टी के छोरो में रहना पसन्द करती है। इसको पाला जा सकता है, परन्तु दोष यह है कि आज कल के कृत्रिम घरों अर्थात् जो बक्स के आकार का होता है, उसमें छत्ते लगाने के चौखटों में छत्ता न लगाकर ये अनियमित रूप से छत्ता लगाती हैं। इस आदत से लोग इसे पालना बेकार समझते हैं। इसे अधिक से अधिक १ पौंड (आधा सेर) शहद देते पाया गया है। इस लिये आर्थिक दृष्टि से कोई विशेष महत्व का नहीं है। (४) खैरा पीले वर्णवाली, पीठ पर भूरे और गाढ़े रङ्ग की धारियाँ लिये, सारङ्ग से छोटी, लम्बाई में करीब ½ इञ्च, अंडाकार ऐसी जो मक्खी है उसको भाव प्रकाश में 'मधु मक्खी' के नाम से वर्णन किया गया है। संस्कृत में इसको 'मक्षिका' हिन्दी में 'खैरा' और 'पेलक' के नाम से पुकारा जाता है। बहुत से स्थानों पर इसको विभिन्न नाम से पुकारते हैं। यह भी अन्धेरे में रहना पसन्द करती है। पेड़ों के खोखलों, दीवारों की खोखलों, उपयोग में न आने वाली पुरानी पड़ी हुई लकड़ी की पेटियों मकान की चिमनियों, आलमारियों आदि में प्रकृति रूप से बने इनके छत्ते देखे गये हैं। परन्तु भारत में आज कल के नये ढंग से बने हुए कृत्रिम घरों में पाली जाती है। यह मीठे स्वभाव की होती है और इसका डंक कम घातक होता है।

प्रकृति की रचना बहुत ही विचित्र है। मनुष्यों की भाँति इनमें भी राजा, रानी और कमेरी मक्खियाँ होती है। रानी घर की अन्य मक्खियों से बड़ी होती है जो बहुधा सारे कुटुम्ब की माँ होती है। उसका कद लम्बा, वदन चमकीला, पर छोटे और शरीर शानदार होता है। रानी प्रति दिन हजार-दो हजार अन्डे तक देती है। अंडों का पालना, घर का साफ-सुथरा रखना कमेरी मक्खियों का काम है और रानी सुबह से रात्रि तक राज-कार्य देखती हैं। रानी की जिन्दगी दो वर्ष से तीन वर्ष तक होती है। राजा कद में रानी से छोटा और कमेरी से कुछ बड़ा होता है। इसका पिछला भाग निपट काला और गोल होता है। माथे के ऊपरी भाग में लगातार दो बड़ी-बड़ी आँखें होती हैं परन्तु कमेरी मक्खियों और रानी की आँखें सिर के अगल-बगल में होती है। नर स्वयं कुछ काम नहीं करता है और जीवन भर कमेरी मक्खियों की कमाई खाता है। उसका काम सन्तान पैदा करना है। कमेरी मक्खियों से इनकी आयु कम होती है। रानी रहित इनकी आयु केवल ३-४ महीने तक होती है अन्यथा सामान्य आयु लगभग दो माह की होती है। कमेरी मक्खियों की संख्या अधिक होती है। ये भी उन्हीं गर्भित अंडों से पैदा होती है। परन्तु साधारण भोजन मिलने के कारण इनमें संतानोत्पादन की शक्ति नहीं होती। ये आजीवन रानी और राजा की सेवा और सम्पत्ति संचय करती है।

मधु मक्खियों को मकरन्द और पराग निम्न-लिखित फूलों, पैदों और वृक्षों से प्राप्त होता है। जैसे फलों में सेब, नाशपाती, खुबानी, बेर, अमरूद, चकोतरा, जामुन, केला, लुकाट इत्यादि। खेतों की फसलों में सरसों, दाल की सम्पूर्ण फसलें, कूट्टू, कपास तथा कहवा इत्यादि, जंगली वृक्षों में तुन, शीशम, रीठा, जंगली बेर, इमली, नीलगिरि, साल जंगली अखरोट इत्यादि। तरकारियों में ककड़ी के सभी पौधे, मूली, भिंडी इत्यादि। कुछ घास-फूंस, जंगली झाड़ियों से भी मकरन्द मिलता है मधुमक्खियों के लिए आवश्यक नहीं है कि देहातों में ही पाली जायेंगी; बल्कि शहरों में भी पाली

जा सकती हैं। मक्खियों का प्राकृतिक आहार मधु ही है जिसका संचय अपनी छत्तों में किये रहती है। मधु निकालते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनके भोजन के लिये कुछ छत्ते बिना निकालें छोड़ देना चाहिए। दूसरी बात यह है कि शहद निकाला हुआ भी भोजन के रूप में दिया जा सकता है। यदि शहद बिल्कुल निचोड़ लिया गया हो तो कृत्रिम आहार देना चाहिए। मक्खियों को आहार के रूप में शक्कर का शीरा या रस भी दिया जा सकता है। यह भी अधिक फायदामन्द है। पराग की कमी को पूरा करने के लिये चुकन्दर, या चना या मटर का आटा और दूध का खोया दिया जा सकता है। परन्तु इससे बीमारी होने का डर बना रहता है।

गृह का निर्माण—प्रायः सभी लोग जानते हैं कि मधु से परिपूर्ण छत्ते बहुत ही सुन्दर प्रतीत होते हैं। अब कृत्रिम तरीके से भी इनके छत्ते और घर बनाये जा सकते हैं। भारतीय मधु-मक्खी पालक लैंगस्ट्राथ-हाइव की अपेक्षा कुछ छोटे करन्ड पसन्द करते हैं, क्योंकि भारतीय मधु-मक्खियाँ कम मधु देनेवाली और छोटे आकार की होती हैं। इसलिये जेवलीकोट के करन्ड के नमूना को प्रयोग में लाना चाहिए। अब इनको पालने में मधु-मक्खी पालक को सबसे पहिले इनके डंकों से बचना चाहिए। पुष्ट हृदयवाले मनुष्य को डंक का विष कम असर करता है। कमजोर हृदयवाले मनुष्यों की हृदयगति रुक जाती है। कुछ पालकों को आदत सी पड़ जाती है, इसलिये विष के असर का ध्यान ही नहीं रहता है। इसके बचाव के लिये हाथ में दस्ताना, मुँह पर जाली और पूरे शरीर में ऐसे वस्त्र होना चाहिए कि उसमें मधु-मक्खी फँस न सके। इसके साथ मधु-मक्खी को वश में करने के लिये धुआँ कर टीन या जस्ते की कलई वाली लोहे की चादर का है। इसमें सड़ी लकड़ी, शीशम की लकड़ी और बुरादा की धुआँ से मक्खियाँ बस में आ सकती हैं।

नये मधुमक्खी पालक के लिये सबसे अच्छा तरीका यह है कि किसी विश्वासनीय मधुवटी (एपियरी) से करंड के साथ मधुमक्खियों को खरीदने से बहुत-सी बातें मालूम हो सकती हैं। करन्ड से सम्बन्धित खोलने और रखने इत्यादि का ढंग आ जायेगा। यदि मान लीजिये कि करन्ड को न खरीदा जाय तो केवल मधुमक्खियों और उनकी रानी को डाक (पोस्ट) से मँगाना चाहिए। डाक से साधारणतः मक्खियों को वसन्त ऋतु के प्रारम्भ में मँगाना चाहिए। मैदानों में, जनवरी के अन्त या फरवरी के आरम्भ तक मँगा ली जाय। नहीं तो गर्मी के मौसिम में डाक से मक्खियों को मँगाने में उनके मरने का डर रहता है। दूसरी रीति यह है कि किसी प्राकृतिक छत्ते की मक्खियाँ (जंगली मधु-मक्खियों के छत्ते) पकड़ी जा सकती हैं। खर्च तो कम पड़ता है; परन्तु नये पालक के लिये अत्यन्त ही मुश्किल काम है। अनुभवी मधमक्खी पालक जंगलों में जंगली मक्खियों के साथ शिकार खेलते हैं और उनको पकड़ते हैं, उसमें आनन्द मिलता है। पेड़ों और दीवारों के खोखलों में से मक्खियों को पकड़ा जा सकता है। इन खोखलों में धुआँ देना चाहिए। शरीर रक्षा के लिये सम्पूर्ण उपर्युक्त साधनों का प्रयोग करना चाहिए। एक मार्गी द्वार (बी-इस्केप) लगाकर भी मक्खियाँ पकड़ी जा सकती हैं।

मधुवटी का कार्यक्रम—मक्खी पालक को इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि करन्ड को केवल जाँच करने के लिये खोलना चाहिए। बारम्बार खोलने से मधुमक्खियों के कार्य में अनेक असुविधायें होती हैं। इसके साथ ही करन्ड को आवश्यकता से अधिक न खोला जाय। नये पालकों को उतावला नहीं होना चाहिए और साथ ही मक्खियाँ किसी प्रकार से कुचल न जाय। ऐसा होने से पालक पर धावा बोल देती हैं। दस्ताना, जाली और शेष पोशाक ऐसे पहिने जायँ कि उनमें मधुमक्खियाँ न फँस सकें। ऋतु का काफी ध्यान रखना चाहिए। साधारण ऋतु अर्थात् न अधिक हवा और न बादल हो, उस समय निरीक्षण करनी चाहिए। जाड़े से मधुमक्खियों को

बचानी चाहिए। इसलिये जाड़े में प्रातःकाल ८ बजे के बाद और शाम को ४ बजे से पहिले और ग्रीष्म ऋतु में ११ बजे से पहिले या शाम को ४ बजे के बाद जाँच करनी चाहिए।

मधु-निकालना—मधु प्राप्त करने के लिए करन्ड से छत्तों को निकालना चाहिए और उस पर से मक्खियों को ब्रश से साफ कर देना चाहिए, या इसके स्थान पर एक मार्गी द्वार (बी-इस्केप) को इस्तेमाल में लाया जा सकता है। छत्ता के टोपियों को चाकू या किसी अन्य वस्तुओं से काट देना चाहिए। इसमें मधु भरा रहता है। मधु निष्कर्षक यंत्र की बनावट ऐसी होती है कि उनमें इन छत्तों की टोपियों को इस प्रकार से बैटा देते हैं कि हैंडल चलाने से मधु पूरा निकल आता है और छत्ता ज्यों का त्यों बना रहता है। इसके साथ ही छत्तों की टोपियों का मोम मधु निकालने की क्रिया के साथ न निकाल कर अलग से निकाला जाता है। इस प्रकार का मोम उत्तम होता है।

मधु-निष्कर्षक यंत्र को सावधानी से रखना चाहिए। हैंडल घुमाते समय मशीन इधर-उधर डगमग न होता रहे। इस यंत्र छत्ते ऐसे संतुलित ढङ्ग से रखे जायं कि यंत्र डगमग न हो सके। मधु छानते समय उसमें बुलबुले न पैदा हो सके। मधु निकालने का समय रात में या बदली-बून्दी के दिनों में करना चाहिए। छत्तों को घर से बाहर और बाहर से घर में लाते समय रास्ते में मधु टपकाते हुए न चलना चाहिए। इस यंत्र को साधारण तरीके से प्रयोग में लाना चाहिए। यदि कहीं हैंडल अधिक तेज से प्रारम्भ चलाया गया तो छत्ते टूटने का डर रहता है। परन्तु दुख के साथ कहना पड़ता है कि भारतवर्ष में मधु निकालने की रीति बहुत ही घृणाजनक है। जंगली जाति मुसहर लग्गी और किरासन तेल के लुकाट (कपड़ा में किरासन तेल लगाकर लग्गी में) से मधु-मक्खी के अंडे, बच्चे और छत्ते का सत्यानाश कर देते हैं और मधु गंध और विकारयुक्त हो जाता है। इसलिये मधु-मक्खी पालक को जेवलीकोट (नैनीताल) के वैज्ञानिक अनुसंधानालय के परामर्श से मधु निकालना चाहिए। अब तो भारतवर्ष में मधु को वैज्ञानिक रीति से निकालने की प्रणाली अपनायी जा रही है। बहुत ही निकट समय में भारतवर्ष में मधु निकालने की घृणाजनक प्रणाली समाप्त हो जायेगी।

मधु-मक्खियों और उनके छत्तों के भी शत्रु हैं। इनमें प्रमुख मोमी कीड़ा, बर्रे, मृत्यु शिरापतंग, दीमक, बन्दर इत्यादि हैं। मोमी कीड़ा यह मधु-मक्खियों के खाली छत्तों में घूस जाते हैं, अंडे देते हैं। मक्खियाँ छत्ता छोड़कर भाग जाती हैं। शेष शत्रुओं से बचाव के लिये मक्खी पालक की सावधानी काफी है।

मधु-मक्खियाँ दो दृष्टिकोण से पाली जाती हैं प्रथम मनोबहलाव के लिये, दूसरे आर्थिक लाभ के लिये। परन्तु आर्थिक दृष्टिकोण से कोई युवक, वृद्ध पाल सकता है और इससे लाभ उठा सकता है। यह बच्चों और स्त्रियों के लिये बहुत लाभदायक धंधा है। इससे आमदनी के साथ-साथ बेकार समय को सदुपयोग करने का अच्छा साधन है। कोई व्यक्ति २ से २० तक छत्ते सुविधापूर्वक पाल सकता है। इसमें न अधिक पूँजी और न अधिक साधन की आवश्यकता है और न अधिक स्थान और न अधिक समय की आवश्यकता है।

विज्ञान-समाचार

अन्तरिक्ष के प्रथम यात्री

भविष्य में पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की परिधि से बाहर अन्तरिक्ष में यात्रा करने के लिए जो वायुयान बनाये जायेंगे वे आकार में सम्भवतः छोटे नक्षत्रों के समान होंगे। उन विमानों में सर्वप्रथम यात्रा करने वाले यात्रियों के लिए वातावरण एवं दिन-रात तो कृत्रिम होंगे ही, गुरुत्वाकर्षण भी सम्भवतः कृत्रिम ही रहेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि उन यात्रियों को अपने साथ इन सबकी व्यवस्था करके चलना होगा।

बर्कली-स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के शरीर-क्रिया-विज्ञान के प्रोफेसर डा० नेलो पेस द्वारा उक्त संभावनाएँ प्रकट की गई हैं।

डा० पेस ने बताया है कि गुरुत्वाकर्षण की परिधि से बाहर उड़ने वाले वायुयान अथवा राकेट-वायुयान में ऐसा वातावरण बनाये रखने का कोई उपाय ढूंढा जाना चाहिए जिससे उसमें ऑक्सीजन और कोई निश्चल गैस, सम्भवतः नाइट्रोजन, मौजूद रहे। इसका अर्थ यह होगा कि या तो वायुयान के साथ गैसों की भारी टंकियाँ ले जाई जाएँ या वायुयान की उड़ान के दौरान में ही किसी प्रकार उन गैसों का निर्माण होता रहे।

इसके अलावा उस कार्बन-डायोक्साइड गैस को नष्ट करने की भी समस्या उपस्थित होगी जो उस वायुयान में यात्रा करने वाले यात्रियों द्वारा श्वास के जरिये छोड़ी जाएगी। डा० पेस ने सुझाव दिया है कि इस समस्या का आंशिक हल छोटे-छोटे हरे पौधों को साथ ले जाकर किया जा सकेगा, क्योंकि हरे पौधे वातावरण के लिए ऑक्सीजन गैस छोड़ते रहेंगे और कार्बन-डायोक्साइड को ग्रहण करते रहेंगे। फिर भी यह समस्या बनी रहेगी कि वातावरण में दूसरी गैस उपलब्ध की जाये, क्योंकि मनुष्य केवल शुद्ध ऑक्सीजन गैस पर जीवित नहीं रह सकते।

डा० पेस ने शरीर-विज्ञान सम्बन्धी अन्य कई ऐसी समस्याओं का उल्लेख किया, जिन्हें गुरुत्वाकर्षण की परिधि से बाहर के अन्तरिक्ष की यात्रा प्रारम्भ करने से पूर्व हल करना अत्यावश्यक है। इनमें से एक समस्या यह है कि क्या मनुष्य को दिन रात के एक नियमित क्रम की आवश्यकता है। यदि पता चला कि इसकी आवश्यकता है तो कृत्रिम दिन रात का ऐसा क्रम बनाने के लिए कुछ उपाय अवश्य किये जाने चाहिए।

उक्त वायुयान में गुरुत्वाकर्षण का अभाव दूसरी समस्या होगी। डा० पेस ने बताया है कि किसी भी अनुसन्धान से अभी तक यह पता नहीं चला है कि मनुष्य गुरुत्वाकर्षण के पूर्ण अभाव में अपने आप को व्यवस्थित रख सकता है या नहीं। ज्योंही वह विमान पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण वाले क्षेत्र को छोड़ेगा, यह स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

उस समय, मनुष्य की तीन ज्ञानेन्द्रियों में से दो अपना कार्य करना बन्द कर देंगी। ये कान के अन्दरूनी भाग, मांसपेशियों की ज्ञानवाहिनियां तथा गहरे जोड़ों में हैं, जो अपनी स्थिति बदलने में मनुष्य की सहायता करती हैं।

गुरुत्वाकर्षण के अभाव में गुरुत्वाकर्षण की परिधि के बाहर अन्तरिक्ष में वायुयान द्वारा यात्रा करने वाले लोगों को अपनी तीसरी ज्ञानेन्द्रिय पर ही निर्भर करना पड़ेगा। वह ज्ञानेन्द्रिय है चक्षु। इस समय, निश्चित रूप से यह कोई भी नहीं कह सकता कि क्या उक्त विमान में यात्रा करने वाला व्यक्ति केवल दृष्टि शक्ति के सहारे ही दिशाएँ मालूम कर सकेगा।

अमेरिका में इस सम्बन्ध में छोटे पैमाने पर परीक्षण किये जा चुके हैं कि गुरुत्वाकर्षण के अभाव अथवा भारशून्यता की स्थिति होने पर मनुष्यों की क्या प्रतिक्रिया होगी। एक प्रमुख राकेट-वैज्ञानिक ने ३ मिनट तक भारशून्यता की स्थिति का अन्दाज लगा कर देख लिया है। पर अधिक काल तक वैसी स्थिति में उस का मनुष्यों पर क्या असर होगा यह अभी कोई नहीं बता सकता।

दर्द को मापने वाला यन्त्र

अमेरिका की एक प्रमुख औषधि निर्माण संस्था कैलामाजू (मिशिगन) की "अपजौन कम्पनी" ने एक ऐसा मापक यन्त्र तैयार किया है, जो दर्द को दूर करने वाली दवाओं के प्रभाव के बारे में सही जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से तैयार किया गया है। इससे किसी दवा के प्रभाव के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भ्रम रहने की गुंजाइश नहीं रहेगी।

दर्द मापने के इस यन्त्र में एक "बिजली की आँख" रहती है। परीक्षित दवा चूहे इत्यादि किसी पशु को देने के उपरान्त उसके शरीर पर इसकी जिस समय प्रतिक्रिया होती है इस यन्त्र द्वारा उस समय को माप लिया जाता है। उदाहरण के रूप में जब चूहा अपनी पूँछ हिलाता है, तब "बिजली की आँख" अपने आप ही समय बताने वाले यन्त्र को रोक देती है। दर्द को दूर करने वाली दवाओं की गुणकारिता का निश्चय प्रतिक्रिया में लगने वाले समय को ध्यान में रखकर किया जाता है। जो दवा जितनी अधिक प्रभावकारी होती है, उसकी प्रतिक्रिया उतनी ही जल्दी होती है।

समुद्र-गर्भ के चित्र उतारने वाला कैमरा

अमेरिका की राष्ट्रीय भौगोलिक समिति ने संसार के गहरे से गहरे समुद्र का चित्र उतार सकने में समर्थ सर्वप्रथम कैमरे की हाल में ही परीक्षा की है तथा इसे सफल पाया है।

इस कैमरे के निर्माता मैसाचूसेट्स के टैक्नोलौजी संस्थान के डा० हैरल्ड ई० एगर्टन हैं। आप का कैमरा प्रति वर्ग इंच पर पड़ने वाले १७,००० पौण्ड के दबाव को सहन करने में समर्थ है। समुद्र की अधिकतम गहराई प्रशान्त सागर में गुआम के निकट पाई गई है। यह गहराई लगभग ३५,६४० फुट है। यह कैमरा इस गहराई में पानी का जितना दबाव पड़ सकता है उससे भी कहीं अधिक दबाव सहन कर सकता है।

इस कैमरे की अब तक भूमध्य सागर, लाल सागर और भारतीय समुद्र में परीक्षा की जा चुकी है। इसके फलस्वरूप समुद्र के गर्भ के चित्र उतारने में क्रान्ति हो गई है। कैमरे की सहायता से प्राचीन जहाजों का पता लगा कर उनको निकाला गया है तथा उनके रहस्यों की जानकारी प्राप्त कर ली गई है। भूमध्यसागर में समुद्र के भीतर ३ मील की गहराई तक मछलियों के चित्र लिए गए हैं। कम गहरे समुद्र में टैलिविजन का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है।

पुराने नक्षत्र नए नक्षत्रों का पोषण करते हैं

जो नए नक्षत्र पैदा हो रहे हैं वे उस सामग्री से पोषण पाते हैं जो पुराने नक्षत्र उगलते रहते हैं। यह सूचना अमेरिका की राष्ट्रीय वैज्ञानिक एकादमी ने प्रदान की है। पुराने और नए नक्षत्रों में तत्वों के बाहुल्य में जो अन्तर पाया गया है, उसका कारण भी पोषण का निरन्तर घूमने वाला यह चक्र बताया गया है।

माउण्ट विलसन और पैलोमर वैद्यशालाओं के डा० जैस्सी एल० ग्रीनस्टीन ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि पृथ्वी और सूर्य तत्वों के विकास की दृष्टि से अपेक्षाकृत पिछड़ी हुई दशा में हैं। नक्षत्रों से निकलने वाली गैसों के फलस्वरूप नए-नए नक्षत्र निरन्तर निर्मित हो रहे हैं, खगोलशास्त्री इस सिद्धान्त में अब साधारणतया विश्वास करने लगे हैं। डा० ग्रीनस्टीन ने बताया कि हाल में जो पर्यवेक्षण हुए हैं, उन से स्पष्ट है कि बहुत से पुराने नक्षत्र अनन्त आकाश में अपनी बहुत सी सामग्री सदैव खोते रहते हैं इस खोई हुई सामग्री से नए नक्षत्रों का अन्ततोगत्वा निर्माण होता है।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

Reg. No. A 372

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools;
Colleges and Libraries

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों की परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तक उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक - डा० देवेन्द्र शर्मा
सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

मुद्रक—श्री सरयू प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग तथा प्रकाशक—डा० रामदास तिवारी प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

विज्ञान

भाग ८३

संख्या ६

सितम्बर, १९५६ कन्या, २०१३

प्रति अङ्क छः आने

वार्षिक मूल्य चार रुपये

विज्ञान

भाग ८३

संख्या ६

सितम्बर, १९५६   कन्या, २०१३

प्रति अङ्क छः आने

वार्षिक मूल्य चार रुपये

विषय-सूची

विज्ञान-सम्पादक

बड़े हर्ष की बात है कि विज्ञान के प्रधान सम्पादक डा० हीरालाल निगम अनुसंधान-कार्य से विदेश चले गये हैं। डा० निगम ने गत पाँच छः वर्षों तक विज्ञान के सम्पादन का भार अपने ऊपर रख कर विज्ञान तथा परिषद की जो सेवा की है उसके प्रति परिषद आभार प्रदर्शित करती है।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तति। तै॰उ॰ ।३।५।

भाग ८३ | कन्या २०१३; सितम्बर १९५६ | संख्या ६

विज्ञान की आत्मा

मानव अनादि काल से सत्य की खोज में रहा है। यह खोज ही विज्ञान की आत्मा है। प्रस्तर युग से पहले से प्रारंभ हुई यह खोज अब भी जारी है और तब तक चलती रहेगी जब तक मानव सृष्टि में रहेगा। वैज्ञानिक अनुसन्धानों ने हमारे जीवन को कितना बदल दिया है, उसका अनुमान इस कल्पना से लग जाता है कि यदि कुछ सदियों पूर्व का मनुष्य अब इस पृथ्वी पर पुनः जीवित होकर रहने लगे तो उसकी क्या अनुभूतियाँ होंगी, या हमको यदि कुछ शताब्दियों पूर्व के काल में रहने का अवसर दिया जाय तो हमारा क्या हाल होगा।

लोगों की यह धारणा है कि विज्ञान ने मनुष्य को पहले की अपेक्षा अधिक अपाहिज, निर्बल और निष्ठुर बना दिया है—वह अणुबम आदि के उपयोग करने में नहीं झिझकता। यदि वैज्ञानिक अनुसन्धानों ने हमारी सुविधायें बढ़ाकर हमको कुछ अधिक आराम-पसन्द बनाया है तो यह बात तो धीरे-धीरे सब काल में होती रही है। जब आदि मानव ने पत्तों का घर बनाया होगा तब ही वह आराम की ओर अग्रसर हुआ होगा और यदि सुविधायें उपलब्ध करना ही निष्क्रियता है तो वह सदा से निष्क्रिय रहता रहा है। परन्तु यह दृष्टिकोण अत्यन्त अनुदार है। हम प्रायः अच्छाइयाँ छोड़ कर बुराइयाँ खोजने लगते हैं। वैज्ञानिक सदैव युद्ध की भीषणता और वीभत्सता का विरोधी रहा है। अभी कोई ५० नोबल पुरस्कार विजेताओं ने विज्ञप्ति दी जिसमें उन्होंने खुले तौर पर अणुशक्ति के युद्ध में उपयोग करने का विरोध किया है। आशा है प्रत्येक मानव वैज्ञानिकों के ऐसे विचारों को कार्यान्वित कराने में सहयोग देकर इस भूतल को अधिक सुन्दर समृद्ध और सुखी बनाने में सहायक होगा।

विज्ञान के नये चरण—

सूर्य-शक्ति का नियंत्रण व उपयोग

ले०—डाक्टर अरविन्द मोहन श्रीवास्तव, प्रयाग विश्वविद्यालय

आज विश्व की एक बड़ी समस्या यह भी है कि अगले सौ-पचास वर्षों के उपरान्त हमको ऊष्मा तथा शक्ति कहाँ से प्राप्त हो सकेगी? प्रश्न की भयंकरता पर सहसा ध्यान नहीं जाता परन्तु यह जानने पर कि विश्व का तमाम कोयला, पेट्रोल तथा अन्यान्य ईंधन केवल एक आध सौ वर्षों में पूर्णतया समाप्त हो जावेंगे हममें एकाएक गंभीरता तथा भय का संचार होना स्वाभाविक है। ऐसी परिस्थिति में विज्ञान का प्रयास निरंतर एक ऐसे खजाने की ओर झुक रहा है जिसके सहारे हमको लाखों, करोड़ों वर्ष तक ईंधन, शक्ति व ऊष्मा प्राप्त हो सकती हैं।

यदि हम अपने आँगन में गिरने वाली सूर्य की गरमी को ही शक्ति में परिवर्तित कर सकें तो यह एक विशाल सम्पत्ति के समान होगी। प्रति सेकण्ड पृथ्वी के धरातल पर पड़ने वाली किरणों की ऊष्मा की तुलना १६ करोड़ मन कोयले के ईंधन से की जा सकती है। भारतवर्ष के केवल २५ वर्ग मील भूमि पर पड़ने वाली किरणों की शक्ति द्वारा इस देश के प्रत्येक उद्योग-धन्धे, व्यवसाय तथा नागरिकों की समस्त विद्युत व प्रकाश की आवश्यकता की पूर्ति हो सकती। इसी से स्पष्ट है कि सूर्य शक्ति का संचय कितनी महत्ता रखता है।

दो प्रकार की किरणें?

सूर्य की शक्ति का सदुपयोग दो मुख्य विधियों पर ही निर्भर है। प्रथम विधि में तो सूर्य की व्यापक प्रकाश किरणों का नियंत्रण है तथा दूसरी में अदृश्य किरणों का जिनके द्वारा भी गरमी तथा इन्जिनों को चलाना सम्भव है। सूर्य की किरणें इन दो भागों में लगभग आधी-आधी मात्रा में बँटी हैं।

यह तो है इन किरणों का पृथ्वी पर पहुँचने के पश्चात् प्रभाव। वैसे सूर्य प्रति क्षण अनन्त आकाश में प्रखर रश्मियाँ देता रहता है जिसका एक अत्यन्त अल्प भाग नौ करोड़ तीस लाख मील चलकर वायुमंडल में अधिकाँश भाग विलीन करके हमारी पृथ्वी पर पहुँचता है। इस विशाल शक्ति का उपयोग हम केवल सेकण्ड-हैण्ड रूप से ही करते हैं—उदाहरणतः वर्षा का पानी, नदियाँ की बाढ़, जल-प्रपातों द्वारा विद्युत तथा वायु द्वारा चालित मशीनें। पेड़, वनस्पति तथा सभी अन्य स्रोत् सूर्य पर अवलम्बित हैं।

वनस्पति का पनपना 'फोटोसिन्थेसिस' नामक क्रिया पर निर्भर है परन्तु इस भाँति सौर ऊष्मा का केवल सहस्रवाँ भाग ही परिवर्त्तित हो पाता है। इस क्रिया में प्रकाश किरणों के पड़ने पर वायुमण्डल की कार्बन डाइ आक्साइड गैस, पानी तथा क्लोरोफिल नामक हरी वस्तु मिलने पर वनस्पति का भोजन बनता है तथा वृक्ष बढ़ते हैं। इन्हीं को काटकर सुखाने पर मिला ईंधन सूर्य की ऊष्णता का केवल एक प्रतिशत का दसवाँ भाग भर हमको वापस मिलता है। इस ईंधन द्वारा इंजिन या मशीनों को चलाया जा सकता है। अदृश्य किरणों का उपयोग अभी विशेष रूप से नहीं किया जा सका है।

परन्तु भविष्य में इसी दोनों प्रकार की किरणों पर हमारी सभ्यता को निर्भर रह कर ऊष्मा, ईंधन तथा शक्ति

ढूँढनी पड़ेगी। कोयले का युग अब समाप्त प्राय ही है—यूरोप की खानों में अब कोयला निकालना क्षीण हो गया है तथा उसका अभाव भी बढ़ चुका है। पेट्रोल की खानें भी कुछ दिनों की मेहमान हैं यद्यपि नवीन क्षेत्रों में खाने मिलती जाती हैं फिर भी पुरानी जितनी खाने आज समाप्त हो गई उतनी नवीन मिलना संभव न हो सका।

परमाणु शक्ति का विकास अभी चढ़ती पर तो है परन्तु इसका स्रोत यूरेनियम नामक तत्व है। यूरेनियम कोयला या पेट्रोल से तो अधिक समय तक चलेगा फिर इसका अन्त होगा ही। नवीन यूरेनियम की खाने मिलना अब कठिन है। अतः इसकी समाप्ति पर मानव-विकास का अन्त निकट आ जावेगा। ऐसी परिस्थियों में सूर्य शक्ति के संचय या नियंत्रण की अनिवार्य्यता स्पष्ट है।

सूर्य इंजिन असफल क्यों ?

आज औद्योगिक पराकाष्ठा पर पहुँचे राष्ट्रों के लिये सूर्य शक्ति का उपयोग हास्यास्पद प्रतीत होता है क्योंकि अन्य स्रोतों से उत्पन्न शक्ति सस्ती तथा सरलता पूर्वक प्राप्त है। सौर शक्ति इन क्षेत्रों में मँहगी पड़ेगी तथा उपयोगी न ठहरेगी। परन्तु पिछड़े क्षेत्रों में जिनमें अपना देश भी है मानव या जानवरों से किये जाने वाले कार्यों की अपेक्षा सूर्य शक्ति सस्ती तथा तीव्र गति से कार्य्य करेगी। उदाहरणतः कुँओं से पानी निकालना, घरेलू उद्योगों की छोटी मशीनों को चलाना, तथा प्रकाश व विद्युत के साधनों को सूर्य शक्ति से प्राप्त करना सस्ता सिद्ध होगा।

इस प्रकार के अनेकों प्रयोग सफलता प्राप्त भी कर चुके हैं परन्तु उनके विकास की आवश्यकता है। सूर्य की किरणों को केन्द्रित कर ताप को बढ़ाना नितान्त आवश्यक है अन्यथा किसी प्रकार के इन्जिन के कम तापमान पर चलाना सम्भव न हो सकेगा। चक्षु ताल के द्वारा किरणों को केन्द्रित कर अग्नि उत्पादित कर लेना इसका साक्षी है।

इन्जिनों में सर्वप्रथम १८८४ में पेरिस का एक छापाखाना था जहाँ दर्पणों द्वारा सूर्य किरणों को केन्द्रित कर भाप का इंजिन चलाया गया था। नील नदी से १९१३ में बीस अश्व बल का एक पम्प पानी उलीचता या जिसको कार्य्य हेतु शक्ति सूर्य से प्राप्त थी। गत वर्षों में पाँच सहस्त्र डिगरी से भी ऊँचे तापमान दर्पणों द्वारा सूर्य किरणें केन्द्रित कर सभी धातुओं को पल भर में पिघला देने वाली भट्ठी बनाई जा चुकी है। सूर्य की ऊष्मा द्वारा घरों को शीतकाल में गरम करने की व्यवस्था भी की जा चुकी है। अपने देश में छोटे सूर्य-चूल्हे भी सफलता पूर्वक बन चुके हैं। परन्तु फिर भी कोई ऐसा लोकप्रिय व उपयोगी यंत्र न बन सका जिसका प्रचार आज के साधनों से बढ़ निकले।

इस असफलता के कारण अनेकों हैं। दर्पणों के उपयोग में बड़े, चमकदार तथा ठीक शकल के दर्पण बनाना अत्यन्त कठिन होता है। धूल अथवा गर्द पड़ने पर दर्पणों के द्वारा आने वाली किरणें फीकी पड़ जाती हैं तथा उनके द्वारा उतनी गरमी नहीं मिल पाती। पोंछने पर दर्पण में खरोंच पड़ जाती है और उनकी उपयोगिता कम पड़ती जाती है। फिर दिन में सूर्य की स्थिति बदलते रहने के कारण दर्पणों को निरन्तर नियमित रूप से घूमते रखना आवश्यक है ताकि सूर्य की किरणें उस पर ठीक दिशा से आकर पड़ें। यह कठिन कार्य्य केवल मँहगी मशीनों द्वारा ही किया जा सकता है।

सूर्य द्वारा अन्य मशीनों को चलाने में भी मूल्य अधिक बैठता है क्योंकि इनका उपयोग सीमित तथा उत्पादन न्यून है। अन्य यंत्र लाखों कम्पनियाँ कम मूल्य पर प्रस्तुत करती हैं तथा उनके ग्राहक भी अधिक हैं इससे मूल्यों में भारी कमी मिलती है।

एकत्रीकरण—सूर्य शक्ति को पाँच विधियों द्वारा पाना

सैद्धान्तिक तौर पर सूर्य शक्ति को नियन्त्रित करना आवश्यक है तथा इसके हेतु प्रेरणा की कमी भी नहीं है। तनिक विचार करें कि क्या यह सत्य, कि हमारे घर की छत पर पड़ने वाली किरणें दो मन कोयले अथवा

दस-बारह गैलन पेट्रोल के समान है, अत्यन्त उपयोगी व रुचिकर नहीं सिद्ध होगा ? यह तो केवल एक दिन की मात्रा है, प्रति वर्ष यही ५० सहस्र वाट विद्युत शक्ति के समान है जब कि इसी शक्ति से उस घर की सम्पूर्ण आवश्यकता की पूर्ति हो सकेगी। न्यूयार्क या लन्दन में यह बात बेकार है परन्तु कम जनसंख्या वाले नगरों अथवा गाँवों में, जहाँ प्रति मनुष्य के लिये सूर्य किरणों का मिलने वाला क्षेत्रफल अधिक हो, इसकी संभावना असीमित है।

सूर्य शक्ति को पाने के हेतु आज पाँच दिशाओं में कार्य्य व शोध चालू है। इनका संक्षिप्त विवरण ही यहाँ प्रस्तुत किया जावेगा।

(१) सूर्य इंजिन—इनके द्वारा पानी से बनी भाप का दबाव कार्य्य करता है जैसा कि रेल के इञ्जिन में होता है। एक लम्बे परवलयकार दर्पण के बीच में लम्बी नली से जाने वाला पानी भाप में परिवर्तित हो जाता है। इसी भाँति अन्य द्रवों द्वारा सूर्य्य की गरमी को एकत्रित कर इञ्जिन चलाने के योग्य बनाया गया है।

(२) दर्पण—नवीन एलम्यूनियम पर बनाये गये हलके-फुलके दर्पणों का प्रयोग अब बढ़ रहा है। प्लास्टिक पर चमकदार धातु जमाकर भी ऊष्मा एकत्रित की जाती है। एक नवीन यंत्र ऐसा भी है जिसमें काले पात्र में रक्खे पानी को ऊपर से आई सूर्य की किरणें गरमी देती हैं। इसमें काँच की अनेकों ऐसी परतें है कि पानी के भीतर ही किरण अपनी गरमी देती रहती है परन्तु बाहर नहीं निकल सकती। परन्तु इन उपक्रमों द्वारा अधिक मात्रा में ऊष्मा एकत्रित करना सम्भव नहीं।

(३) प्रकाश-विद्युत—इसमें सूर्य किरण विद्युत में परिणित होकर मोटर चला सकती है। इस प्रकार की सूर्य बैटरी द्वारा प्रति वर्ग गज भूमि से १०० वाट वाला एक बल्ब जलाया जा सकता है। इसी प्रकार की बैटरी द्वारा हाल ही में दूर-दूर तक की टेलीफोन लाइनों में शक्ति प्रदान करना सफल हुआ है। अनेकों सूर्य बैटरियों के संयोग से अच्छी खासी शक्ति मिल सकती है। [देखें धर्मयुग २० जून १९५४ पृष्ठ २३]

(४) प्रकाश-रसायनिक—सूर्य किरणों का प्रकाश विभिन्न रसायनिक क्रियाओं को बढ़ा कर ऊष्मा दे सकता है। उदाहरणतः पानी की हाइड्रोजन व आक्सीजन का पृथक्करण इन गैसों में ऊष्मा संचित करता है। तथा उनके पुनर्मिलन से यह गरमी वापस मिल सकती है। यह सिद्धान्त तो ठीक विदित है परन्तु अभी तक कोई उपयुक्त वस्तु नहीं ढूँढ़ी जा सकी जिसके द्वारा सूर्य की गरमी मनमाने समय तक संचित रक्खी रहे। फोटो-सिन्थेसिस का ही यह कृत्रिम रूप है। अतः भविष्य में इसको कर सकना संभव होगा।

(५) घरों को गरम करना—इन्जिनों की अपेक्षा यह कार्य्य सरल है क्योंकि उसमें कम तापमान की आवश्यकता है है। बड़ी खिड़की, या छत पर पानी की नालियों को गरम करना तथा सूर्य द्वारा ठंडक उत्पन्न करना भी सम्भव हो चुका है। रेफ्रीजरेटर को सूर्य से चला कर गरमी से ठंडक पैदा करना भी कम आश्चर्य्यजनक नहीं! ईनका सिद्धान्त ठीक वैसा ही है जैसे नमकीन सागर के पानी को भाप बना कर नमक निकालते समय भाप को पुनः पानी बनाने पर ठंडक मिलना!

सूर्य यंत्रों का भविष्य

उपरोक्त सभी साधनों में एक विशेष कठिनता यही है कि सूर्य का बादलों आदि के कारण छिप जाने पर शक्ति का लोप! रात्रि में भी शक्ति न मिल पावेगी। अतः किसी विधि द्वारा दिन को मिली शक्ति लम्बे समय तक संचित रखना आवश्यक होगा अन्यथा सूर्य्य यन्त्रों के द्वारा नियमितता का अभाव रहेगा। यह करना कठिन नहीं है—उदाहरणतः सूर्य्य द्वारा मिली विद्युत से बैटरी में 'चार्ज' देकर रखना सम्भव है! परन्तु इन बैटरियों का मूल्य अत्यधिक है तथा वे लम्बे समय तक निरंतर कार्यशील नहीं रह सकती। सस्ती तथा सर्वथा भिन्न प्रकार की बैटरी की आवश्यकता है।

पानी में भी सूर्य से मिली ऊष्मा को संचित कर रखना

संभव है। इसके लिये रसायनिक पदार्थों अथवा एक विशेष मिट्टी की आवश्यकता है। परन्तु विशालकाय टंकियों की आवश्यकता है जिनका मूल्य अधिक तथा बनावट की कठिनाई—दोनों समस्यायें विषम हैं।

सूर्य्य शक्ति को संचय करने की एक विधि भोज्य वनस्पति या ईंधन स्वरूप है। इस प्रकार पूरे वर्ष में गिरने वाली सौर शक्ति का केवल एक प्रतिशत भाग ही संचित होकर रह पाता है परन्तु एक पानी में उपजने वाली वनस्पति 'एलगी' में दस प्रतिशत शक्ति का संचय करना संभव है। परन्तु इस खेती के हेतु विशालकाय क्षेत्रफल में कार्य करना पड़ेगा—और यह अत्यन्त असुविधाजनक है।

विज्ञान को सौर शक्ति की प्रचुरता एक चुनौती है जिसका नियंत्रण हमारे शक्ति-स्रोतों की समाप्ति के साथ बढ़ना आवश्यक है। संसार के राष्ट्रों के सम्मुख भी निकट भविष्य में यह प्रश्न अत्यन्त जटिल रूप में उपस्थित होगा।

आज संसार का सम्पन्न देश यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका है। इनका प्रत्येक नागरिक औसतन लगभग ३००० कलरी (ऊष्मा का माप दण्ड) भोजन स्वरूप पाता है तथा उसकी मशीनें १६४,००० कलरी शक्ति प्रतिदिन पाकर कार्य्य करती हैं। अन्य देशों को इनसे ईर्ष्या होना स्वाभाविक है—उनका विकास भी इसी समृद्धि की ओर लक्ष्य करता है। ऐसी परिस्थितियों में शक्ति का यह असीमित स्रोत ही सबको मनमानी ऊष्मा दे सकेगा।

सूर्य शक्ति का विज्ञान आगे के युग में बढ़ेगा तथा उत्तरोत्तर मानव विकास में सफलता पूर्वक योग देकर नवीन सुख, शांति तथा उच्च स्तर प्रदान करेगा। यद्यपि नवीन आविष्कार एक छोटे ही पैमाने पर सफल हो सके परन्तु इसके उत्तर में महान आविष्कारक ऐडिसन का कथन ही युक्तिसंगत है—"नवजात मानव विश्व-विजेता बन सकता है।"

कोयला बाबू

[पृष्ठ १० का शेषक

और पुनः पूर्वोक्ति प्राकृतिक प्रक्रिया के द्वारा जन्म धारण करता रहता हूँ। एवं मानव की सेवा के लिए प्रस्तुत रहता हूँ। इस प्रक्रिया के कारण मैं सृष्टिकर्ता के समान अनंत या अमर बन गया हूँ। जब तक यह सृष्टि चले, मेरा भी यह चक्र निरन्तर आपकी सेवा के रूप में व्यक्त होता रहे, जिससे आपकी संस्कृति निर्बाध, प्रगति पथ पर बढ़ती चले मैं सदैव परमेश्वर से यही विनय किया करता हूँ।

पर अब मेरा युग बदल गया है। शक्ति के साधन बदलते जा रहे हैं। मेरे बदले बड़े शक्तिशाली साधनों का अब विकास होता जा रहा है। विद्युत् द्वारा ऊष्मा प्राप्त करना इनमें से एक है। अभी तक विद्युत का उत्पादक मैं ही रहा, यह मैं आपसे बता चुका हूँ। पर जल और जलप्रपात भी मेरे प्रतिद्वन्द्वी के रूप में विद्युत-उत्पादक बन गये हैं। पर बिजली का अभी पूरा प्रसार भी नहीं हो पाया है कि परमाणु-विखंडन विधि से प्राप्त उष्मा से अब बिजली बनाने की प्रक्रिया कार्यान्वित होने लगी है। अतएव मैं अपने ही सामने शक्ति साधनों के युग बदलते देख रहा हूँ। पर इससे मेरी महत्ता और सेवा में कमी नहीं होती क्योंकि जहाँ मैं काम करता हूँ और जिन वस्तुओं को मैं मुलसाकर और हाइड्रोजन के साथ मिलाकर तुम्हें प्रस्तुत करता हूँ, वे शक्तिशाधन न होकर सभ्यता के अंग हैं जिन्हें उपयुक्त प्रतिद्वंद्वी नहीं दे सकते हैं। जब मेरे शक्ति के स्रोत का क्षेत्र संकुचित होता जा रहा है, मैं अधिकाधिक अपने भीतर से भौतिक विकास की सामग्री प्रस्तुत करने लगा हूँ। फलतः मेरी ये सेवायें मुझे मानव से चिरकाल तक भी विलग नहीं होने देंगी और फिर मानव.... मुझ ऐसे मूक और अनमोल सेवक को छोड़ भी कैसे सकता है ?

"अपनी इन मूक सेवाओं का प्रतिदान देकर भी क्या मैं इस युग में बाबू कहलाने योग्य नहीं हूँ ?"

कोयला बाबू

श्री नन्दलाल जैन

तुम सब लोग मुझे अच्छी तरह जानते हो कि मैं काला-कलूटा और खूसट हूँ। इसलिये तुम लोग मुझे देखकर नाक-भौं भी सिकोड़ते हो और आश्चर्य भी करोगे कि मैं इस नये युग में भी बाबू बन रहा हूँ! यह दुनिया मुझसे नहीं, मेरे रङ्ग से ही घृणा करती है चाहे, मैं कहीं भी आश्रय पाकर रहूँ। मेरा रङ्ग सड़ने या बिगड़ने की क्रिया का द्योतक है। नालियों का कूड़ा-कचरा सड़कर काला और बदबूदार हो जाता है, बहुत दिनों की रखी हुई वस्तुयें काली-भूरी पड़ जाती हैं, डामर और तारकोल काला होता है—उन्हें कौन पसन्द करता है?

गोरे आदमी काले आदमियों से घृणा करते हैं, अमेरिका में हब्शियों, दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को काले रङ्ग के कारण कितनी दुर्दशा होती है? अपने देश में ही काला-नीचा काम करने वाले शूद्रों की क्या स्थिति है? हम तो पश्चिमी देशों में काले रङ्ग वाले नाम से ही कहे जाते हैं। हमने तो अपने बीच भी कुछ काली जातियाँ या समुदाय बना रखे हैं। लेकिन जहाँ पाश्चात्यों ने हमारे रङ्ग के कारण हमसे घृणा की है, वहीं हमारे शक्ति शाली गुणों ने उन्हें चकित कर दिया है। हम मशीनगनों के युग में भी बिना शस्त्रों के ही अपनी दासता की जंजीरें तोड़ सकते हैं। दक्षिण अफ्रिका के भारतीयों के सत्याग्रह और अपने देश का स्वतन्त्रता आन्दोलन और अब गोआ वासियों का अहिंसक आन्दोलन हमारी बाहरी और भीतरी शक्ति का पुष्कल प्रमाण है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीय संस्कृति-द्रविड ही कालों की संस्कृति है जिसने प्रागैतिहासिक काल से ही अपनी उच्चवता और ज्ञान-गरिमा द्वारा गौरव प्राप्त किया हैं हमारी आध्यात्मकी मान्यता पुष्पक- विमान की कल्पना और शून्य की सर्जना विश्व-इतिहास में अपनी सानी नहीं रखती है। अस्तु ये तो जीवधारियों की दुनिया हैं, जिसमें विज्ञान के आविष्कारों द्वारा मानवीय एकता के स्थापित करने के प्रयत्नों के बावजूद भी रङ्ग के आधार पर बनी हुई भेदक रेखा अब तक नहीं मिटी है।

कहने का आशय यह है कि मेरे रङ्ग से घृणा की जाती है। परन्तु सत्य यह है कि मेरा रङ्ग अनंत शक्ति और महती उपयोगिता का प्रतीक है। मैं अपनी सेवा और कष्ट-सहिष्णुता तथा नमक हलाली के लिये पुरातन से प्रख्यात हूँ। उपेक्षापूर्ण स्थिति में यदि किसी स्रोत से मुझे अनुराग भरी दो थपकियाँ न मिलतीं तो मैं इस जगत में अब तक कभी का लुप्त हो गया होता। यही कारण है कि अपने रूप रङ्ग की अशोभन स्थिति में भी बहुत अच्छा लगता हूँ। उसकी आधी क्रियाशीलता तो रात्रि के काले अंधकार में ही व्यक्त होती हैं। पृथ्वी के गर्भ में पाये जाने वाले अधिकांश पदार्थों ने मेरे जैसा ही रङ्ग पाया है। कुछ समय पहले तक तो भारतीय रेल विभाग ने भी मेरा ही रङ्ग अपना लिया था।

प्रकृति के भक्त पुजारी वैज्ञानिक भी मेरे रङ्ग से बड़ा स्नेह रखते हैं, क्योंकि मैं ताप और प्रकाश को अपने भीतर सोख लेता हूँ। सूरज-चूल्हे बनाने के लिये मेरे रंग के वस्त्र और पटल ही काम आते हैं।

असामाजिक काम करने वाले तो भीतर से ही मेरे रङ्ग में रंगे होते हैं और पोल खुल जाने पर समाज भी उन्हें बाहर से मेरे रङ्ग में रङ्ग देता है। इन्हीं लोगों के कारण मेरे रङ्ग के नाम से ही अशोभन प्रकृतियों का बोध होने लगा है। 'काली करतूत, काला बाजार, काला दिल' इत्यादि।

अतः यद्यपि समाज और राष्ट्र मेरे रंग से घृणा करते हैं, पर वे मुझे अवश्य चाहते हैं। यदि मैं इस पृथ्वी

पर अवतरित न होता तो मानव भोजन कैसे पकाता? उसकी रेलगाड़ी कैसे चल पाती? उसके बिजली घरों में बिजली कैसे पैदा हो पाती? उसके कारखानों की सारी मशीनें कैसे चलतीं? मेरे बिना मानव भी अब तक प्रागैतिहासिक अंधकार युग में बना रहता— बिलकुल असभ्य असंस्कृत, निर्दय, बर्बर और न जाने क्या क्या.........। इसीलिए मैं आज राष्ट्र की संपत्ति माना जाता हूँ। राष्ट्र और मानव-समाज कितना समृद्धिशाली है, इसका पता इस बात से ही लगता है कि वह मेरी सेवायें कितनी मात्रा में ग्रहण करता है?

× × ×

तुम जानते हो कि हमारे पुराणों में सृष्टि को अनादि और अनंत बताया गया है, परंतु आज के वैज्ञानिक इस बात को नहीं मानते हैं। अपने निरीक्षण और प्रयोगों द्वारा उन्होंने पता लगाया है कि संसार सबसे पहले सूर्य का धधकता हुआ गोला मात्र था। उसके पहले क्या था, यह उन्हें मालूम नहीं है। इस गोले में किसी प्रकार पृथ्वी का पिंड पृथक् होकर छिटक पड़ा, जो धीरे-धीरे ठंडा हुआ, जलसम तरल हो गया। जब यह तरल और ठंडा भी हुआ, तो उसमें वनस्पतियों का अभ्युदय हुआ, इसी प्रकार कुछ जीवधारियों का भी क्रमशः विकास हुआ और बिना हड्डी वाले प्राणियों से विकसित होते-होते वनमानुस और आज का मानव भी पृथ्वी पर अवतरित हुआ। सृष्टि की इस विकास प्रक्रिया में अरबों वर्ष लगे हैं और तरल पृथ्वी क्रमशः ऊपरी सतह पर ठोस बनती गई है।

जब पृथ्वी ठोस होने लगी, तो वनस्पति जगत् में हाहाकार छा गया क्योंकि अनेक वनस्पति जड़ होकर पृथ्वी की तह में गिरने लगे। यह प्रक्रिया वनस्पति के अभ्युदय से ही चल रही है एवं पृथ्वी की ठोस तह भी बढ़ती जा रही है। इस प्रकार पृथ्वी की तहों में वनस्पति नीचे नीचे जमते जाते हैं। अपने ऊपर पृथ्वी की इस वर्तमान ठोस सतह के बढ़ते हुए भार और दबाव को ये वनस्पति नहीं सह सकते थे क्योंकि इससे बड़ी ही गर्मी उत्पन्न होती थी। इसलिये वनस्पतियों ने अपने शरीर से पसीने के रूप में अपना अन्तर्जल विमुक्त किया। जीवनदाता जल के निकलते रहने के कारण बेचारे वनस्पति सूख-सूख काले पड़ गये और इसी स्थिति में पृथ्वी की निचली तहों में उन्होंने मुझे जन्म दिया। इस प्रकार प्रकृति के ताप और दाब से अनुप्राणित होकर वनस्पति जगत ने इस विश्व में मेरा जन्म दिया है।

अब तुम पूछोगे, 'मैं कब जनमा था'?

मैं तुम्हें सृष्टि की कहानी सुना चुका हूँ, अरबों वर्ष पहले सृष्टि का उदय हुआ था, और मेरा जन्म होते-होते करोड़ों वर्ष तो जरूर लगे होंगे। इसलिए अरबों वर्षों में से करोड़ों वर्ष निकालने पर अरबों वर्ष पहले ही मेरा जन्म हुआ होगा। अपने जन्म की निश्चित तिथि इस स्थिति में मैं कैसे बता सकता हूँ?"

वनस्पति के परिमाण के अनुसार ही विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में न्यूनाधिक मात्रा में जन्म लेकर प्रकृति की गोद में पलता रहा और मानव के विकास के साथ ही उसके अथक् प्रयत्नों से मैं प्रकृति की संतत पर क्रीड़ा-भरी गोद छोड़ कर वरदान के समान उसके हाथ आ लगा।

जब मेरा जन्म हुआ, मैं कुछ काला, भूरा और हलका सा था, पर ज्यों-ज्यों मैं पृथ्वी के अंतस्तल में पहुँचता गया, मेरा रूप प्रस्तुत होता गया। मैं अपने अत्यन्त ही परिष्कृत कण रूप अ ही तुम्हारी रेलगाड़ी चलाता हूँ। मेरा प्रारंभिक या बाल्यकाल का नाम 'पीट' रखा गया है और पूर्ण युवावस्था का नाम ऐन्थ्रासाइट। अपनी सभी अवस्थाओं के मेरे भिन्न भिन्न नाम हैं और मैंने यथा समय अपनी भिन्न-भिन्न अवस्थायें धारण की हैं, जिसका प्रमाण वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के अंतस्तल को उत्खनित करके परीक्षा द्वारा प्राप्त कर लिया है। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में मेरे नीचे लिखे नाम मानव ने अपनी सुविधा के लिये रख लिये हैं—१. पीट (जन्म का नाम), २. लिंगनाइट (बचपन का नाम), ३. बिटुमिनस (कुमारावस्था का नाम), ४. केतल या पॅरोट (युवावस्था का नाम) और ५. एँथ्रसाइट (प्रौढ़ावस्था का नाम)।

मैं पृथ्वी के गर्भ में नीचेवाले स्तरों में अपने पूर्ण परिष्कृत व प्रौढ़ रूप में शान्ति से निवास करता हूँ। मैं कभी वृद्ध नहीं होता, यह मेरी विशेषता है। युवक के

समान मुझमें अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा अधिक शक्ति, सक्रियता, स्थायित्व तथा कठोरता होती है। मुझे अपने ऊपर पड़नेवाला पृथ्वी का भीमकाय भार तनिक भी असह्य नहीं प्रतीत होता है क्योंकि वह भार-बल और तज्जन्य भीषण ताप ही तो मेरे जनक हैं। यही कारण है कि मैं भीतर और बाहर से अनन्त शक्ति संचित करता रहता हूँ और तुम लोग जब मुझे जलाते हो, तो भीषण ताप उत्पन्न करने में और उसमें जलने में मुझे कोई कष्ट नहीं होता, इसे तो मैं अपने जीवन की सार्थकता मानता हूँ। मेरी इसी शक्ति को देखकर तुम लोगों ने नाम ही 'पत्थर या खान वाला' रख दिया है।

मैं आज भी भू-गर्भ में १० फीट से लेकर हजारों फीट की गहराई में विभिन्न स्तरों में विभिन्न अवस्थाओं में विद्यमान हूँ। मेरा निवास समस्त विश्व की अधिष्ठात्री माँ वसुन्धरा की गोद में है। तुम्हारे देश में भी मेरा निवास बंगाल, मद्रास, विंध्यप्रदेश, मद्रास, उड़ीसा राज्यों की भूमियों के गर्भ में (कई अरब खरब लाख टन की मात्रा बना हुआ है।

मानव से मेरे इस खनिज रूप का परिचय तो नया ही है—केवल कुछ हजार वर्षों का, पर मेरे एक रूपान्तर से, जो वह स्वयं अपने में वनस्पतियों को जलाकर प्रतिदिन प्राप्त करता है तो मानव तभी से परिचित है, जब से उसने अचानक अग्नि का आविष्कार कर लिया है।

तुम जानते हो, लकड़ी जलकर पहले काली हो जाती है, तब राख में बदल जाती है। उसका कालारूप ही मेरा रूपान्तर है जो वायु-दाब और कृत्रिम ताप से मानव ने स्वयं निर्मित कर लिया है। एक समय की बात है मानव पृथ्वी-तल पर होनेवाले परिवर्तनों पर विचार कर रहा था। उसे सहसा नद-नदियों के बरसात में बढ़ने वाले वेगशील जलप्रवाह का स्मरण आया, जिनमें उनके किनारे लगे हुए पेड़-पौधे उखड़-उखड़ कर बहते जा रहे हैं और उनपर पानी की मिट्टी की तह जमती जा रही है। उसने इस तह के निरंतर जमने और बढ़ते जाने की कल्पना की और अनुमान लगाया कि ये सभी वनस्पति सृष्टि के प्रारंभ से इसी प्रकार जल-प्रवाहित होकर भूगर्भ में नीचे-नीचे जमते जाते होंगे। इस कल्पना से उसे 'भूगर्भ में क्या है?' यह जिज्ञासा हुई और फलस्वरूप जब उसने भूगर्भ की मिट्टी व ऊपरी तहों का उत्खनन किया, तो उसने भूगर्भ के अनमोल भण्डार में वनस्पतियों द्वारा संजोये हुए विशाल परिमाण में मुझे भी देख लिया।

भू-गर्भ में मेरे रंगरूप को देखकर मानव ने मन में सोचा, "ऐसा पदार्थ तो मैं स्वयं बना लेता हूँ।" पर जब उसने मेरी जाँच की तो उसे पता चला कि मैं अपने अंदर असीम ताप शक्ति संजोये हुए हूँ, जब कि मानव निर्मित रूपान्तर की बहुत-सी अग्नि की ज्वालाओं के साथ उड़ जाती है। उसने यह भी देखा कि कच्ची धातुओं में से शुद्ध धातुयें मैं ही प्राप्त करा सकता हूँ। साथ ही मैं अपने मानव-जनित रूप की अपेक्षा दुगना ताप उत्पन्न करता हूँ।

अब मानव के सामने मेरी उपयोगिता स्पष्ट थी। अतः उसने मुझे भूगर्भ से पृथ्वीतल पर लाने के लिये उपाय सोचे। कुछ ही वर्ष तक तो मानव स्वयं ही भू-गर्भ को शक्तिशाली लौह-कुदालियों द्वारा उत्खनित कर मुझे 'ट्रालियों या टोकनों' में रखकर पृथ्वीतल पर ले आता था, परंतु मानव के औद्योगिक विकास और यंत्रों के आविष्कार ने मुझे इतना उपयोगी सिद्ध किया, कि अब विस्फोटक पदार्थों की सहायता से एवं यंत्रचालित कुदालियों को चला कर मुझे प्रकृति की प्रेमभरी गोद से प्रचुर परिमाण में विलगकर भूतल पर मुझे लाया जाता है।

× × ×

यदि तुम्हें अब कभी मेरा निवास देखने को मिले, तो तुम्हें पता चलेगा कि वह अब भू-गर्भ नहीं रह गया है, वहाँ तो विद्युत् की चकाचौंध, धरती माता की गोद में से टुकड़े-टुकड़े करके निकालने वाले विस्फोटकों की और यंत्रचालित कदालियों की हृदयविदारक ध्वनियाँ उत्पन्न कराने वाले अगणित मानव-समूह, ताजी हवा के मस्त झोंके एवं नलों के मधुर-शीतल जल को देखकर तुम दंग रह जावोगे।

"वाह, यह तो शहर-सा ही है। यहाँ के चौराहे और पटरियों पर चलने वाली छोटी छोटी ट्राँलियाँ कितनी अच्छी

लगती है ?" तुम्हारे मुँह से अचानक ही ये शब्द ध्वनित होंगे ।

"और, हाँ, बिजली की चकाचौंध में भी लगभग सभी मनुष्यों के हाथ में यह टिमटिमाती हुई लालटेन कैसी ?"

हाँ तुम्हें मालूम होगा कि भूगर्भ में जहाँ मेरा निवास है, भूतल के भार के दाब व तारतम्य प्रभाव से वनस्पतियों में जो भीतरी प्रक्रिया हुई, उससे उनके शरीर के अन्तर्तत्व निकल पड़े, पसीना कितना दूषित होता है ? वे पदार्थ भी कुछ-कुछ इतने विषैले होते हैं कि उनके सूंघते ही मानव परलोकगमन कर सकता है और कभी-कभी मेरी जन्मभूमि में विस्फोट भी होने लगता है। जिससे मेरा वह निवास भी बरबाद हो जाता है, और मेरे निष्कासक जन भी·········। इसी कारण गत एक-दो शताब्दियों में सैकड़ों मनुष्यों ने अपनी जान गंवाई है, पर उस महापुरुष और वैज्ञानिक श्री हम्फ्री डेवी को धन्यवाद है, जिन्होंने इस लालटेन का आविष्कार किया, जिसके कारण विषैले पदार्थों की उपस्थिति का ज्ञान उनके नुकसान करने से पहले ही हो जाता है और मानव अपनी सुरक्षा के लिए सावधानी अपना लेता है। यही कारण है कि इस जीवन-रक्षक लालटेन का ले जाना भूगर्भ में प्रवेश करने के लिये अनिवार्य घोषित कर दिया गया है।

मेरे निवासस्थान में बड़ी गरमी रहती थी, पर कुछ तो मेरे शरीर से निःसृत जल कणों की शीतलता से और शुद्ध हवा के नये पंखों के लगने से अब वह समाप्त सी हो गई है। सारा गंदा पानी और दूषित हवा नलियों द्वारा बाहर निकाल दी जाती है। इस प्रकार बिजली, ट्रॉली लाइन चौराहे, जल व वायु के नलों व प्रकाशित गलियों से सुसज्जित नगर में अब मैं रहता हूँ।

इस प्रकार मेरा नगर बनाने की योजना में मनुष्य को आधी सदी लगी है। पहले तो वह पैदल ही वहाँ जाता था, पर अब काफी नीचे होने के कारण शहरों में ऊँचाई पर पहुँचने के लिये लिफ्टों के समान मेरे नगर में पहुँचने के लिये भी लिफ्टें लग गई हैं। ये लिफ्टें जमीन की सतह में खोदे गये पक्के कुएँ के समान लगो वृत्त में चलती हैं। मेरे नगर में आने और जाने के लिए अलग-अलग लिफ्टें होती हैं, जिनके सिरे पर एक-एक लौह-चक्र होता है। इस चक्र पर लोहे की रस्सी लपेटी जाती है। लिफ्टें जब मेरे नगर की ओर जाती हैं, तो यह रस्सी खुलती जाती है और जब नगर से वापस आने लगती हैं तो वहीं रस्सी यंत्रों की सहायता से पुनः चक्र पर लपटती जाती है। कहीं-कहीं मेरे नगर की पहचान के लिए ये लिफ्टों के चक्र मेरी ध्वजाओं के रूप में मान लिये गये हैं। मेरे सभी नगर निवासी इन ध्वजाओं का यथोचित सम्मान करते हैं।

जो मनुष्य हाथों से या यंत्रों की सहायता से मेरा उत्खनन करते हैं, वे तुम्हारे देश में 'मलकट्टे' कहलाते हैं। मेरे साथ काम करते-करते इनकी शकल भी मेरे जैसी ही हो जाती है। भूगर्भ के अत्यंत ताप में निरंतर काम करते रहने के कारण इनका जीवन जाम भी सूखता जाता है और ये दुबले पतले हो जाते हैं। एक टोकनी, कुदाली और सुरक्षा लालटेन इनके जीविका और जीवन के अंग बन गये हैं। मेरे समान अमूल्य राष्ट्रीय संपत्ति का भूगर्भ से निष्कर्षण करने पर भी इन्हें इतना पारिश्रमिक नहीं मिल पाता कि वे अपने परिवार के समुचित भरण-पोषण के साथ अपने खोये हुए जीवन जल की भी पूर्ति कर सकें। इसीलिए तुम सदा घुटनों और टिहुनियों तक ही सवस्त्र पाओगे। और ऐसी ही स्थिति में उलटी टोकनी में कुदाली लटकाकर उसे अपने ही सिर पर रखे हुए और हाथ में सुरक्षा-दीप लिये हुए ये लोग मेरे नगर में लिफ्टों द्वारा प्रवेश करते हैं और अपनी पैनी कुदालियों के शक्ति तथा वेगमय आघातों से मुझे खोदते हैं।

भूगर्भ से खोदकर ये लोग मुझे अपनी टोकनियों में भर कर ट्रॉलियों में भर देते हैं। मुझे लेकर ट्रालियाँ भी पटरियों पर चला दी जाती हैं और मेरे भूगर्भ से पृथ्वी पर आने की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। कहीं-कहीं ये ट्रालियाँ बिजली से चलती हैं और कहीं मलकट्टे स्वयं ही इन्हें चलाते हैं। ये ट्रालियाँ नगर पार कर पृथ्वीतल की ओर जानेवाली पहाड़ी पर मुझे मस्ती से ले चलती हैं और भूतल पर पहुँचते-पहुँचते एक कोठे में मुझे ले जाती हैं, जहाँ यंत्रों की सहायता से ये स्वयं उलट जाती हैं और

मैं नीचे रखे रेल के डिब्बे में जा गिरता हूँ। मुझे यहाँ गिराकर ये ट्रालियाँ बिना मेरी कृतज्ञता स्वीकार किये ही यथास्थान लौट जाती हैं।

रेल के डिब्बों में आने से पहले मानव मेरे रूप का स्तरीकरण करता है, फलतः ट्रॉलियों से गिराकर मैं निरंतर गतिशील व तिरछी जाली में आता हूँ, जहाँ मेरा सूक्ष्म या या चूर्ण रूप पृथ्वी पर ही एकत्रित होने लगता है और बड़े-बड़े टुकड़ों के रूप में मैं रेल के डिब्बों में पहुँच जाता हूँ और फिर तो जहाँ-जहाँ डिब्बा जाता है, वहीं मैं पहुँचकर देश-विदेश के कोनों-कोनों की सैर करता हूँ। तेज चलते हुए डिब्बों में सैर करने में भी और वह भी खुली हवा में, क्या आनंद है?

× × ×

जब मैंने पृथ्वीतल पर आकर अपनी सैर प्रारंभ की तो मैं यहाँ की सफेदी भरी सभ्यता को देखकर सोचने लगा, "मेरा यहाँ कैसे निर्वाह हो सकेगा, मैं काला जो हूँ?"

प्रकृति की गोद में जन्म लेने के कारण मैं पर्याप्त कष्ट-सहिष्णु हूँ। मैं अत्यंत ताप में भी चमकता हूँ और स्वयं जलकर दूसरे को चमका देता हूँ। स्वयं दाब सहकर दूसरे को दाबमुक्त कर देता हूँ। अपने इस गुण के कारण ही मैंने मानव से विनय की, "आपने मुझे भूतल पर उपस्थित किया है, इसलिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं भूतल पर आपका ही सेवक बन कर रहूँ। कृपा कर बताइये, मैं आपके किस काम आ सकता हूँ?"

और तबसे स्वयं जलकर मैंने मानव का भोजन पकाया। उसके यंत्रों को चलाने के लिये पानी की भाप बनाई। बिजलीघर के डायनमो चलाये, कच्ची धातुओं से पक्की धातुयें बनाईं, काँच, चीनी मिट्टी और न जाने क्या-क्या......... मैंने स्वयं जलकर मानव के उपयोगों के लिये प्रस्तुत किये। जहाँ जहाँ मानव की गर्मी और ज्वालाओं की आवश्यकता प्रतीत हुई, उसने सदा मुझे अपने सामने खड़ा पाया। पर मुझ जैसे अनमोल सेवक को पाकर मानव ने मेरा धुंवाधार उपयोग करना शुरू किया।

ऐसी स्थिति में मैंने एक बार मानव को सलाह दी, "प्रकृति की लाखों वर्षों की प्रक्रिया में मेरा जन्म होता है इसलिये आपको मेरी सेवायें ग्रहण करने में मित-व्ययी होना चाहिये। आज आप जैसा कर रहे हैं, उससे तो करोड़ों वर्षों से संचित मेरी राशि एक सौ वर्ष में ही समाप्त हो जावेगी, फिर.........?"

मानव की आँख खुली पर मानव अब बड़ा विलासी बन गया था। उसे मितव्यय की बात खली पर वह कर ही क्या सकता था? उसने रासायनिक को बुलाया। उसने मेरा इतिहास देखा।

दो हजार वर्ष पहले चीन के लोगों ने मुझे हवा-बंद उपकरणों में झुलसाने की क्रिया की थी और मुझे अपने 'कोक' नामक रूपान्तर में परिवर्तित होने को विवश किया था। झुलसाने की तीव्र ताप शक्ति को सहकर मैंने अपना रूपान्तर तो दिया ही, एक जलाऊ गैस भी दिया था, जिसे वे काम नहीं ले सके। वे कोक ही जलाते थे।

रासायनिक ने भी ऐसे प्रयोग प्रारंभ किये और देखा कि मेरा गैस तो मुझसे भी अधिक ऊष्मा (गर्मी) उत्पन्न करता है। उसने मेरे गैस बनाने की प्रक्रिया को वृहत् रूप देकर जहाँ मेरे मितव्यय की ओर कदम बढ़ाया, वहीं मैंने भी उसे अपने भीतर वाले अगणित संचित अणुओं का पुनर्संगठन कर नये-नये उपयोगी सफेद-पीले पदार्थ अर्पित किये और तब उसने समझा कि मैं केवल बाहर से ही काला हूँ, भीतर से तो काफी सफेद हूँ। मेरे नाम के अनुसार ही मेरा गैस 'कोयला गैस' कहा जाने लगा। जो अब नगरों में भोजन पकाने में, प्रयोगशालाओं में और ऊष्मावाले कारखानों में पर्याप्त मात्रा में काम आता है। सबसे पहले श्री जॉन क्लेटव और बाद में १८९२ में श्री जॉन मर्डक ने मेरी गैसीकरण की विधि को वृहत्-रूप दिया था।

अपने गैसीकरण की इस प्रक्रिया में मैं अपने अणुओं को पुनर्गठितकर मानव को गंधक, अमोनिया और उसके खाद के काम आनेवाले लवण, तथा विस्फोटक पदार्थ, कोक और अपने गैस के अतिरिक्त अपने ही समान काला कलूटा, बदबूदार पर तरल एक पदार्थ और देता हूँ, जिसे तुम 'कोलतार' कहते हो। यह देखने में ही बुरा है, इसको बंद हवा में मेरे ही समान झुलसाने पर अनेक रंग-बिरंगे, खुशबूदार, कीटनाशक और रंजक

पदार्थ मिलते हैं। कपड़ों को सुरक्षा देने वाली नेप्थलीन की गोलियाँ, शरीर को कीटाणुओं से बचाने वाले साबुनों का कार्बोलिक अम्ल, तथा क्रीसोल (फिनाइल में), भिन्न-भिन्न रंगों को बनाने वाला एन्थासीन, गंदगियों को घोलने वाले बैंजीन आदि यौगिक, तथा सड़कों को पक्का करने वाले डामर मेरे तारकोल से ही मिलते हैं। मेरे कोलतार के इन यौगिकों से आधुनिक सभ्यता पल रही है। मेरे इन भीतरी रूपों को देखकर मानव ने मुझे जलाना बंदकर दिया और झुलसाना प्रारंभ कर दिया है। मैं अन्तिम सांस भर कर भी उसे अपने नये-नये अवयव बनाकर देता हूँ। मेरा गैसीकरण भी अब वैज्ञानिकों ने नयी-नयी विधियों से करना शुरू किया है और विभिन्न विधियों से बने मेरे गैस के भिन्न नाम भी रख लिये हैं। 'जल-गैस' और 'उत्पादक-गैस' इनमें प्रमुख हैं। अपने झुलसाने की प्रक्रिया में मैंने मानव को बहुत लाभ पहुँचाया है और उसकी वर्तमान सभ्यता में अपार वृद्धि की है। ऊष्माशक्ति के इतिहास में मेरे नाम से एक युग ही रहा है।

पहले मैं मोटर गाड़ियाँ भी चलाता था। तुम्हें तो मालूम होगा कि जब दूसरा विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ, तो पेट्रोल की कमी पड़ गई और मोटरें चलाने के लिये मेरी फिर से सहायता ली गई। सभ्यता के विकास के साथ पेट्रोल की अब विश्व के कई कोनों में कमी पड़ने लगी है, इसीलिये मानव ने मेरे गैसीकरण की एक नई विधि निकाली है जिसमें उत्प्रेरक की सहायता से मुझे हाइड्रोजन नामक ज्वलनशील पदार्थ के साथ संयुक्त होकर गैसीय रूप धारण करना पड़ता है जो बाद में ठंडा होकर पेट्रोल के समान हो जाता है। सबसे पहले जर्मनी में १६२३ में मैंने रासायनिक के हाथों पेट्रोल का रूप धारण किया था, अब तो तुम्हारे देश में भी जेलगोरा की अनुसंधान संस्था में अपना यह रूप धारण कर तुम्हारे देश वासियों की सेवा करूँगा। इस क्रिया में मानव को मैंने अपनी सारी अशुद्धियों को एकत्र कर दे दिया, पर मुझे तब बड़ा आश्चर्य हुआ जब इन अशुद्धियों से बूटपालिश, स्नो, पाउडर, ग्रीस, पिच आदि आधुनिक सभ्यता के अनिवार्य समझे जानेवाले पदार्थों का निर्माण कर लिया गया।

× × ×

भूगर्भ से भूतल पर आकर मैंने जो कुछ मनुष्य की सेवा की है, वह संक्षेप में मैंने तुम्हें बता दी है, सच पूछो तो उसकी वर्तमान सभ्यता की दीवार मैं ही बन गया हूँ। जब रसायनिक ने मेरी भीतरी जाँच की, उसे पता चला कि मैं खुद ही आपका भोजन हूँ और उसका पकानेवाला भी हूँ। मेरी शुद्ध रचना कार्बन नामक विश्वव्यापी और जगदाधारक तत्वमय है। पृथ्वी के संपर्क से नाइट्रोजन, गंधक आदि कुछ पार्थिवतत्व भी मेरे अन्दर समा गये हैं। तुम लोगों ने 'कार्बन चक्र' का नाम सुना होगा और खाद तथा खाद्यपदार्थों के विषय में भी कुछ सीखा होगा। इन सबके मूल में मैं ही हूँ। हवा से, बैक्टीरियाओं से मेरी अच्छी घनिष्टता है तभी तो मैं तुम्हारे भोजन को पचाकर तुम्हें जीवन शक्ति देता हूँ। मेरी परीक्षा करते-करते वैज्ञानिक ने मुझे बताया कि मेरे दो भाई और हैं। मेरा एक भाई तो इतना चमकदार है कि उसे देखकर सफेदी भूरी सभ्यता की आँखों में चकाचौंध लगने लगती है। श्री मोयसां ने सबसे पहले सिद्ध किया था कि हीरा मेरा ही सगा भाई है; उसका जन्म भी पृथ्वी के गर्भ में ही होता है। आजकल रसायनशास्त्री प्रयोगशाला में मेरा ही ताप-विद्युत की प्रक्रियाओं के द्वारा रूप परिष्कार कर मुझे ही हीरा के रूप में प्राप्त करने लगी हैं, पर यह उन्हें बहुत ही महंगा पड़ता है। मेरा मझला भाई ग्रेफाइट है, जो भूरा-काला होता है और वह ताप-विद्युत्-उपकरणों में मानव के बहुत काम आता है। बहुत सी धातुएँ बिना ग्रेफाइट के विद्युत् द्वारों के प्राप्त नहीं की जा सकती है। अपने भाइयों में मैं ही सबसे छोटा हूँ इसलिये मुझे आपकी सभ्यता को सर्वतः प्रकाशमान बनाने का कार्य स्वयं जानकर भी करना पड़ता है।

हाँ मैं तुम्हारी आँखों के सामने जलकर उड़ जाता हूँ और अपने भीतर की अशुद्धियों के रूप में थोड़ी सफेद राख छोड़ देता हूँ। पर मेरे मूल रूप का भूतल से नाश नहीं होता क्योंकि जलते समय मैं हवा से संयुक्त होकर उड़ जाता हूँ और तुम्हें ऊष्मा देता हूँ। प्रकृति में कुछ ऐसी क्रियायें होती रहती हैं जिनमें सूर्य रश्मियों और छोटे-छोटे कीटाणु भाग लेते हैं; इन क्रियाओं के कारण मैं पृथ्वीतल में आकर पुनः वनस्पतियों के रूप में प्रकट हो जाता हूँ

[शेष पृष्ठ ५ पर

प्रीति पतंग करी दीपक सौं आपहि प्रान दह्यो

डा० ब्रह्मस्वरूप मेहरोत्रा, वनस्पति विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

[वनस्पति शास्त्र पर आधारित एक रोचक और खोजपूर्ण लेख। ऐसे भी पौधे हैं जो कीड़ों का शिकार करते हैं—यह आश्चर्यजनक नहीं तो और क्या है ?]

पतंगे और दीपक की उपमा युग युगांतर से कवियों की वल्लभ रही है। पर कीटों को कुछ कीटाश पादपों द्वारा आकर्षित होकर जीवन दान देते देख कौन ऐसा कवि होगा जिसकी कविता न सजीव हो उठेगी। कीट द्वारा पादप का विनाश होना सामान्य अनुभव की बात है पर पादप द्वारा कीटों का नष्ट होना साधारण मनुष्य के लिए एक आश्चर्यजनक बात है। यद्यपि ऐसे पादप वास्तव में कम संख्या में हैं फिर भी वे युगों से अनेकों व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित करते रहे हैं। और प्राचीन यात्रियों की कहानी में इनका उल्लेख भी मिलता है। उदाहरणार्थ, कई वर्षों पूर्व विदेशों से यात्री आकर एक 'मनुष्यभक्षी पादप' की भयानक कहानियाँ सुना रहे हैं। इस पेड़ के लिए कहा जाता था कि मनुष्य को इसके समीप आने पर यह उसे फंसाकर पचा डालता है। यद्यपि यह किस्सा अधिक दिनों तक सच समझा जाता था और अभी भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो उसे सच मानते हैं, पर वास्तव में ऐसा कोई पादप नहीं है। जो भी जीव-भक्षी पादप हैं वे अधिक संख्या में नहीं हैं और केवल कीटों और अन्य क्षुद्र जन्तुओं से ही संतुष्ट रहते हैं। उनमें इतनी शक्ति ही नहीं होती कि वे बड़े जन्तुओं या मनुष्य को फंसा कर मार सकें।

कीटाश-पादप, अन्य पादपों की भांति, पशुओं के विपरीत निलग्न होते हैं और अपने शिकार को दौड़कर नहीं पकड़ पाते। उनकी इस असमर्थता से उनको कोई चिन्ता नहीं होती क्योंकि उन्होंने उसकी पूर्ति अत्यन्त सचेत फन्दों, कपट-जालों और मौत के कुओं से कर ली है, जिसका अनुमान लगाना भी कठिन है। प्रायः ये पादप दलदली स्थानों में ही उपस्थित रहते हैं पर कुछ जलीय भी होते हैं। दलदली स्थानों में वृद्धि होने के कारण ये पादप अपनी जड़ों द्वारा मिट्टी से उचित मात्रा में आहार, विशेष कर नाइट्रोजन-युक्त पदार्थ, नहीं प्राप्त कर पाते। इसीलिए इन पदार्थों ने अपने जीवन-निर्वाह के लिए अधिक मात्रा में नाइट्रोजन-युक्त कीटों को ही अपने भोजन का एक अंग बना लिया है। इनकी पत्तियाँ कीटों को फँसाने और परिपाचित करने के लिए भिन्न पादपों में भिन्न रूप धारण करती हैं। वे प्रायः लाल या जामुनी रंगों के मिश्रण से ऐसे आकर्षक रंग की होती हैं कि उनको भूल से पुष्प समझना कोई कठिन बात नहीं है।

सभी मांसाहारी पादपों में से 'सनड्यू' (सूर्य ओस)' जिसका वैज्ञानिक नाम 'ड्रोसेरा' है, सबसे अधिक विस्तृत है (चित्र १)। यों तो इनकी लगभग १०० किस्में हैं पर भारत में केवल तीन किस्में ही पाई जाती हैं। ऊँचाई में ये पादप कुछ इंच से अधिक बड़े नहीं होते। अपने परिमाण के अनुसार इनके शिकार भी क्षुद्र पतंगों, भुनगों, मच्छर आदि ही होते हैं। इनके चमचमाते पत्ती वाले जालों को समीप से देखने पर इनकी विचित्र रचना का अनुभव होता है। यों तो भिन्न किस्म के 'सनड्यू' की पत्तियाँ आकार में भिन्न होती हैं पर साधारण 'सनड्यू' की पत्तियाँ चिपटी और छोटे चम्मच सदृश्य होती हैं। इनके ऊपरी तल एवं किनारों पर हजारों की संख्या में हरे या जामुनी रोम सदृश्य उद्वर्ध होते हैं जिन्हें 'टेंटेकल्स' कहते हैं। यही 'टेंटेकल्स' कीटों को फसाने का काम करते हैं। पत्ती के मध्य के 'टेंटेकल्स' किनारे के 'टेंटेकल्स' से छोटे होते हैं (चित्र २) इन रोमों के सिरों पर एक गदा सदृश्य ग्रन्थि होती है जिससे एक प्रकार का चिप-

चिपा-पाचन तरल बूँद बूँद होकर निकलता रहता है। प्रातःकाल जब सूर्य की किरणें इन बूँदों पर पड़ती हैं तब वे ओस की बूँदों की तरह चमचमाती हैं। इसीलिये इन पौधों को सनड्यू (अर्थात् धूप में चमकने वाली ओस की बूँद) कहते हैं। चमचमाती पत्तियों से आकर्षित होकर बेचारे पतंगे अपनी सजी-धजी कब्र में प्रवेश कर जाते हैं। कीट के पत्ती पर पैर धरते ही वे पत्ती पर उपस्थित एक चिपकने तरल में उलझ जाते हैं। अब उन्हें एक क्षुद्र शाकी राक्षस का सामना करना होता है। 'टैंटेक्ल्स' धीरे-धीरे मुड़-मुड़ कर कीट को पत्ती के मध्य में ले आते हैं और किनारे के टैंटेक्ल्स मुट्ठी की मुड़ी उंगलियों की भाँति मुड़कर फँसे शिकार को भली प्रकार दबोच लेते
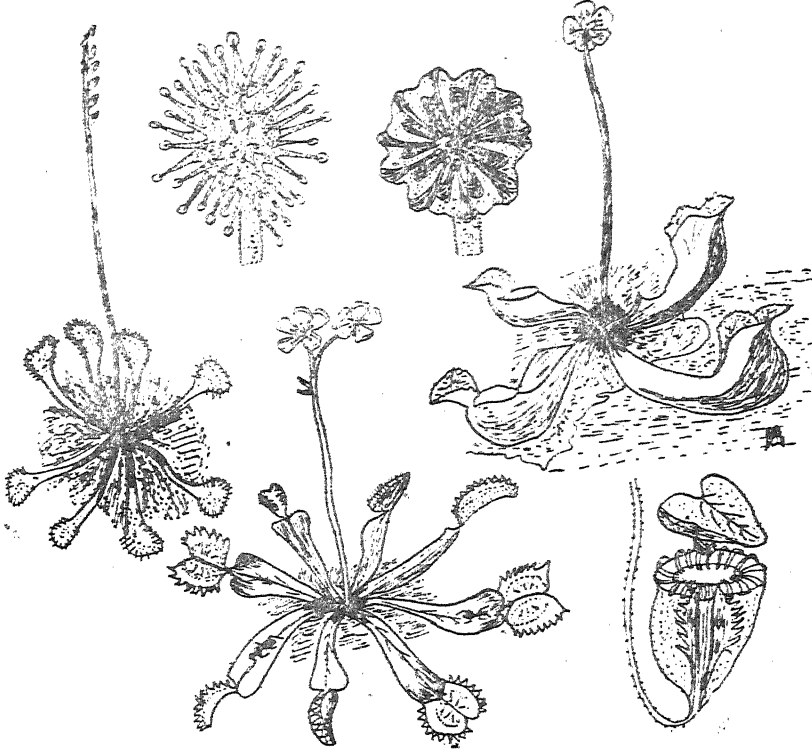
वे पादप जो कीड़ों का शिकार करते हैं
चित्र १—सनड्यू (सूर्य ओस) (बीच की पंक्ति में बायाँ)
२—खुले टैंटेक्ल्स (ऊपरी पंक्ति में बायाँ)
३—किनारे से मुड़े टैंटेक्ल्स (ऊपरी पंक्ति में दायाँ)
४—वीनस का मक्खी जाल (नीचे की पंक्ति में बायाँ)
५—नीपें धीज कलश पादप बीच की पंक्ति में दायाँ)
६—सैरासीनिया कलश पादप (नीचे की पंक्ति में दायाँ)

हैं (चित्र ३)। बेचारे कीट का दम घुट जाता है! तब 'टैंटेक्ल्स' की ग्रन्थियों से पाचन द्रव्य निकलती है जो कीट के प्रोटीन-युक्त पदार्थों को पाचित और विलय करने में समर्थ होती है। इस प्रकार प्राप्त हुए विलय नाइट्रोजन-युक्त पदार्थों को और ग्रन्थियों से निकले पाचन द्रव्य से फिर पादप द्वारा प्रचूषित कर लिए जाते हैं। परिपाचन समाप्त होने पर 'टैंटेक्ल्स' फिर से खुल जाते हैं और जाल कीटों को पकड़ने के लिए उद्यत हो जाता है।

'सनड्यू' की भाँति और भी कई मांसाहारी पादप हैं जिनका जीवन कम रोचक नहीं है। इन पौधों में से एक 'वीनस का मक्खी जाल' है जिसका वैज्ञानिक नाम 'डाओनिया' है (चित्र ४)। यह पादप अमरीका, विशेषकर उत्तरी केरोलिना, का आदिवासी है। प्रायः यह नर्म काईदार स्थानों में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ 'सनड्यू' की पत्तियों से बड़ी और अधिक आकर्षक होती हैं। वे दो भागों में विभाजित होती हैं। और दोनों भाग पत्ती की कब्जों रूपी मध्य-नाड़ी से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक भाग के ऊपर से तीन अत्यन्त सचेत रोम निकले रहते हैं जो कीट पकड़ने की सम्पूर्ण रचना को चलायमान करने में बन्दूक के घोड़े (ट्रिगर) की भाँति काम करते हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक भाग के किनारे पर एक कतार में कई काँटे होते हैं जो सचेत नहीं होते। पत्ती का तल, अनेकों क्षुद्र आपस में सटी हुई और छोटे वृन्त वाली अनगिनत ग्रन्थियों के कारण, अति सुन्दर लाल रंग का होता है। इन ग्रन्थियों का मुख्य ध्येय तो सुधासर्जन और पाचन ही है पर अपने चटकीले रंग के कारण वे कीटों को आकर्षित करने में भी सहायक होती हैं। अभागा कीट लोभ में पड़ कर पत्ती के रोम से छू जाने पर पत्ती के अन्दर बन्द हो जाता है। तीनों रोम में से एक रोम को छूने पर ही पत्ती के दोनों भाग आपस में मिल जाते हैं और किनारे के कांटे एक दूसरे से अन्तःपाश हो जाते हैं। ऐसा अनुभव किया गया है कि कीट के प्रवेश करने के लगभग आधे सेकिन्ड में ही पत्ती बन्द हो जाती है। इसलिए कभी-कभी कीट आधा पत्ती के अन्दर और आधा बाहर ही रह जाता है। पत्ती की इस तीव्र गति का कारण अभी स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं हो पाया है। इस प्रकार फंसे कीट या मनुष्य द्वारा रक्खे गए नाइट्रोजन-युक्त खाद्य पदार्थ, जैसे मांस, मछली आदि, के पत्ती में बन्द होने से पाचन ग्रन्थियां पाचन-द्रव्यों द्वारा उनको पाचित कर डालती हैं। पाचन क्रिया समाप्त होने पर पत्तियाँ फिर ज्यों की त्यों खुल जाती हैं और फिर से कीटों को खाने के लिए तैयार हो जाती हैं।

उपरोक्त दिए गए दोनों कीटाश-पादपों के कीट फाँसने के हथियार गतिशील होते हैं पर कुछ ऐसे भी कीटाश पादप हैं जिनके हथियार किसी प्रकार की गति नहीं दिखाते। इनकी पत्तियाँ कीटों को पकड़ने के लिए कलश का रूप धारण करती हैं। इसीलिए इन कीटाश पादपों को 'कलश पादप' (पिचर प्लान्टस) कहते हैं। मुख्यतः 'नीपें थीज' और 'सैरासीनियाँ' नामक कलश-पादक अधिक प्रसिद्ध हैं (चित्र : ५,६)। कलश-पादपों में कलशों के ढक्कन प्रायः चटकीले रंग के होते हैं जो कीटों को आकर्षित करने में समर्थ होते हैं। यह ढक्कन एक बार खुलने पर फिर बन्द होने की शक्ति नहीं रखता। कलश की कोर पर कई मधु-ग्रन्थियाँ होती हैं। चटकीले कलश के ढक्कन और मधु की उपस्थिति के कारण कीट आकर्षित हो उठते हैं। फिर कोर के नीचे कलश के अन्दर की सतह पर अनेकों पाचन ग्रन्थियाँ होती हैं। इनके भी नीचे एक चिकना प्रदेश रहता है जिसके अन्त में अन्दर की ओर मुड़े हुए रोम होते हैं। कलश के आधार में कुछ ऊँचाई तक पानी भरा होता है। सुन्दरता और शहद के लोभ में पड़ा भाग्यहीन कीट कलश के अन्दर के चिकने प्रदेश में फिसलता हुआ कलश में भरे पानी में जा गिरता है। बेचारा बहुत छटपटाता है, कलश के बाहर जाने का प्रयत्न भी करता है पर पानी के तल के ऊपर स्थित रोम के अन्दर की ओर मुड़े रहने के कारण वह बाहर जाने में कभी समर्थ हो ही नहीं पाता। अन्त में वह पानी में डूब जाता है और फिर उस मौत के कुएँ में उपस्थित जीवाणु (बैकटीरिया) और पाचन द्रव्यों की सहायता से उसे पचा लिया जाता है।

यदि ये कीट आज बोल सकते तो वे अवश्य कहते:—
'हम जो प्रीति करी पादप सों, आपहिं प्रान दह्यो।'

—"समाज-कल्याण"

आकाशबाण या सरगबान

रामबाण, अग्निबाण, आकाशबाण आदि की बातें हम सुना ही करते हैं। राम के नाम से बाण की करामात हमारे हृदय में बैठ जाने वाली बात है। राम ने जो भी बाण छोड़े वे अकारथ नहीं गए। आज की सस्ती दवा बेचने वाले भी अपनी दवा का असर रोग मिटाने में अचूक बताकर बहुत रुपया कमा लेते हैं। मालूम नहीं कि वह दवा सचमुच रोग पर अचूक साबित है या नहीं लेकिन दवा बेचने वाला तो इस नाम से कमा ही लेता है।

रामबाण का नाम तो हमारे कानों पर ही रहता है, लेकिन अग्निबाण का नाम भी कम मशहूर नहीं। कह नहीं सकते कि यह शब्द कहाँ से और कब मशहूर हुआ लेकिन पुरानी लड़ाइयों के वर्णन में यह नाम सुनने को जरूर मिल जाता है। तुलसीदास ने रामायण में लंका कांड में लिखा है :—

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा।
"पावक सायक" सपदि चलावा॥

जब रावण से लड़ने के लिए राम की सेना लंका में पहुँच गई थी तो युद्ध शुरू होने पर राक्षसों की माया से दिन में ही घना अंधेरा हो गया। उस समय अपनी सेना का भय हटाने के लिए राम ने "पावक सायक" यानी अग्निबाण छोड़ा। उससे तुरन्त अंधेरा मिट गया। सभी सेना में धीरज बँधा।

दूसरी जगह फिर तुलसीदास ने लिखा है:—

"पावक सर" छाँड़ेउ रघुबीरा।
छन महुँ जरे निसाचर तीरा॥

इसमें पावक सर या अग्निबाण छोड़ने का उस समय जिक्र है जब रावण के भयंकरबाण छूट रहे थे। उसकी काट राम के अग्निबाण ने की।

हम कह नहीं सकते कि राम का अग्निबाण कैसा था। यह भी नहीं कह सकते कि किस तरह वह कभी तो असुरों की माया से पैदा हुए अंधेरे और तूफान को मिटा देता था और कभी उनके छोड़े हुए तीरों और हथियारों को भी काट फेंकता था। जो भी हो, आज तो हम उसे कथा का अंश ही कह सकते हैं। यूनान की पुरानी पुस्तकों में भी अग्निबाण की चर्चा आती है। मिस्र में हमें वास्तव में एक ऐसी कल बनी मिलती है जिसे सिकंदरिया के हीरो नाम के चतुर पुरुष ने ईसा के दो सदियों पहले तैयार की थी। उसे आज के राकेट या आकाश बाण बनाने का बुनियादी तरीका कह सकते हैं।

हीरो की कल में एक बंद बर्तन में पानी खौलता रहता था और उसके ऊपर एक खोखला गोला इस तरह लटका रक्खा जाता कि दो छड़ियों के बीच अटका रह कर नाच सके। नीचे के पानी खौलते बर्तन से एक नली इस खोखले गोले में आ मिली थी। इस गोले में दो ओर दो टोंटियाँ थीं जिनके मुँह घड़ी की सुई घूमने वाली एक दिशा में ही मुड़े थे। जब खोखले बर्तन में भाप पहुँचती तो उसकी तेज फुहार टोंटियों से गोलाई की एक दिशा में ही निकलने लगती। उस जोर के कारण गोला गोलाई में नाचने लगता। गोलाई में घूमने की
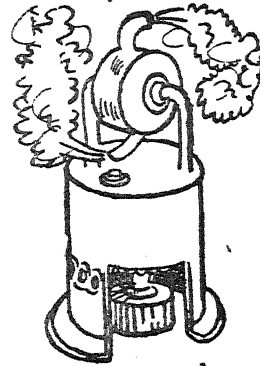
हीरो का इंजिन

जगह किसी चीज को सीध में या ऊँचाई नीचाई की ओर ही दौड़ाया जा सकता है। भाप या दूसरी चीज को तेजी

से किसी छेद से उसके अंदर से बाहर की ओर फुहार के रूप में फेंका जाय तो वह चीज अपने आप जरूर आगे बढ़ेगी। इसी कारण हीरो के इंजिन को आज आकाशबाण या राकेट का बुनियादी तरीका बताने वाली चीज मानते हैं, साथ ही भाप का इंजिन भी बनाने की बुनियाद इसी से पड़ी मानी जाती है।

भाप की जगह बारूद या दूसरी भड़क उठने वाली चीजों या गैसों से भी ऐसा झोंका पैदा करते रहने की तरकीब से कोई चीज दौड़ाई या भगाई जा सकती है। ऐसी तरकीब का इस्तेमाल कर अग्निबाण चलाने का जीता जागता नमूना चीन देशों के लोगों ने आज से बहुत पहले रक्खा था। उन्होंने बारूद की ईजाद ईसा की बारहवीं सदी में की थी। उनकी बनाई बारूद उतनी तेज नहीं थी। उससे हल्का धड़ाका ही होता था। एक नली के अन्दर
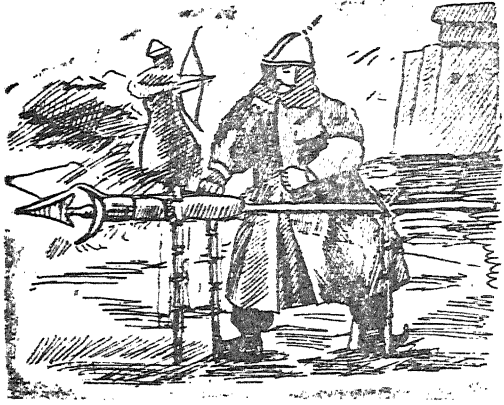
चीनियों का अग्निबाण
[ब्लाक—आदर्श पुस्तक मंदिर, चौक इलाहाबाद के सौजन्य से प्राप्त]

इस बारूद को रखकर उसमें आग लगा देते। बारूद धीमी होने से कुछ तो जलकर भड़क उठती और कुछ अधजली भीतर पड़ी रह जाती। इस धड़ाके के झोंके के कारण नली आगे दौड़ जाती। यह दुनिया का शायद पहला वास्तविक अग्निबाण था जिसकी ईजाद चीनियों ने कर दिखाई।

चीनियों का अग्निबाण कागज को कस कसकर नली या फोंफी बनाकर तैयार किया जाता। कागज की उस नली का एक सिरा बन्द रहता और उसके आगे नोक निकाली जाती जिससे अग्निबाण ठीक तरह उड़ान भर सके। लेकिन इतने से ही उसे सीधाई में उड़ाकर नहीं भेजा जा सकता था। रास्ते में वह इधर-उधर बहक जाता। उसका कारण यह था कि भद्दे ढंग की बनी बारूद सब जगह एक सी नहीं जल सकती थी। हमेशा ही एक ओर ज्यादा जलने लगती और दूसरी ओर कम। इसलिए अग्निबाण ज्यादा जलने वाले बगल की ओर से दूसरी ओर मुड़ पड़ता जिधर बची बारूद का बोझ ज्यादा बचा रहता। इस हालत में निशाना कैसे ठीक रक्खा जा सकता था।

मामूली तीर को भी सीध में भगाने में बाधा पड़ सकती है उसके लिए पिछले सिरे पर पंख लगाए जाते हैं। चीनी लोगों ने अपने अग्निबाणों या बारूद के लुकाड़ों को लम्बे तीरों की नोक पर बाँधकर सीधा चलाने की तरकीब की। बारूद के भड़क उठने पर तीर के पिछले सिरों के पंख जलभुन जाया करते लेकिन इतने पर भी उसके सीधे जाने में रुकावट न पड़ती। तीर की लम्बी छड़ का उस अग्निबाण या लुकाड़ों के सिरे पर इतना खिंचाव पड़ता कि वह सीधे रास्ते से भटक न पाता। अग्निबाण की नली में बारूद के किसी ओर ज्यादा भड़क उठने पर भी उसका रास्ता सीधा रहता। चीन वालों ने यह बात भी ढूँढ निकाली कि अग्निबाण में उसके लंबान की सात गुनी लम्बाई का तीर या डंडा बँधा हो तो उसे सीधा साधा रक्खा जा सकता है। यह बात आज भी बिलकुल सही है।

चीन के लोगों ने जो अग्निबाण बनाए थे उनका पहले पहल लड़ाई में इस्तेमाल होने का अवसर मंगोल सरदार कुबला खां के हमले के समय मिला था। सन् १२३२ ई० में एक किले की घेराबन्दी कराने की कोशिश हो रही थी। चीनियो ने अपने किले के चारों ओर मंगोल फौजों को घेरा डाले देखा तो उन पर अपने ईजाद किए हुई बारूद के लुकाड़ों या अग्निबाणों से मार शुरू की। मंगोल फौजों के अन्दर भगदड़ मच गई। घुड़सवार तक अपने घोड़े सामने टिका न रख सके। शायद यही अग्निबाण के हमले का पहला भारी नमूना

था जिसे चीनियों ने सबसे पहले संसार के सामने रक्खा।

हम आज की आतिशबाजी में आकाशबाण या अग्निबाण उड़ाते हैं। आकाशबाण कागज की परतों को चिपका-चिपका कर बनाई नली होती है। उसमें बारूद भरी होती है जिससे वह ऊपर सनसना कर उड़ उठे लेकिन एक और विचित्र बात भी होती है। अंतिम सिरे पर खोखला भाग होता है जिसमें रंग रंग की चिनगारी पैदा करने वाला मसाला रक्खा रहता है। नीचे वाले भाग की शक्ल बुर्जनुमा सी होती है जिससे सारी बारूद तुरन्त जल उठे और आकाशबाण आकाश में तुरंत सनसनाता उठ सके। ऊपर जाते ही सिरे पर की रंगीन बारूद या दूसरी जल उठने वाली चीजें भी सुलग उठती हैं। इस कारण आसमान में कई रंग की चिनगारियाँ उठ पड़ती हैं। लोगों के लिए यह कितना अच्छा तमाशा हो जाता है। देखने वालों में यह जानने की कभी इच्छा नहीं होती कि आसमान में तारा सा उजाला पैदा करने वाली चिनगारियाँ किस तरह पैदा होती हैं। आतशबाजी का यह तमाशा चीनियों के ईजाद किए हुए अग्निबाण की ही नकल है।

अग्निबाण या आकाशबाण सिर्फ खेल की ही चीज नहीं है। चीन वालों ने मंगोल फौजों से अपने एक किले की घेरेबंदी को बचाने में अग्निबाणों का इस्तेमाल किया ही था, भारत में भी लड़ाई में इस हथियार के इस्तेमाल

हैदरअली के अग्निबाण

का भारी नमूना देखने कों मिलता है। जब मैसूर के राजा हैदरअली पर अँग्रेजी फौजों ने हमला किया था तो उसने अग्निबाणों की बौछार की थी। हैदरअली के पास १२०० सिपाहियों की ऐसी टुकड़ी थी कि उनमें से हर एक अग्निबाणों से लैस था। उनके इन अग्निबाणों की बौछार से अँग्रेजी फौज के छक्के छूट गए थे।

हैदरअली के अग्निबाण तीन सेर से लेकर छ सेर वजन तक के थे। कागज की दफ्ती की जगह लोहे की नली होती जिसके अंदर बारूद रहती। उसके साथ एक दस फुट लंबा बाँस का डंडा-बँधा रहता। बड़ा और भारी होने के कारण ये अग्निबाण आधे मील तक मार कर सकते थे। चीनवालों या हैदर अली के अग्निबाणों का निशाना ठीक नहीं बैठ पाता था। फिर भी हैदरअली ने उनकी मार का जोर बढ़ाने के लिए एक साथ दर्जनों या सैकड़ों अग्निबाण छोड़ने की तरकीब की थी। १७८० ई० में इन अग्निबाणों की भारी बौछार से मैसुर में अंग्रेजी फौजें मैदान से भाग खड़ी हुई थीं।

हैदरअली की देखा-देखी अंग्रेजों को भी अग्निबाण बनाने की सूझी। अंग्रेजी तोपखाने के विलियम कांग्रेव नाम के कर्नल ने अग्निबाणों के बारे में खोजबीन शुरू की। उसने हैदरअली के अग्निबाणों से काफी बड़े अग्निबाण तैयार किए जो डेढ़ मील तक उड़ सकते थे। उसने एक दूसरी भी तरकीब की। अग्निबाण के अगले सिरे में उसने ऐसी चीजें भरीं जो बमगोलों की तरह किसी वस्तु से टकराने पर उसमें आग लगा दें। इस तरह दुश्मन के किलों और शहरों पर अग्निबाण से गोलाबारी हो सकती थी। अग्निबाण के पेंदे के बीच में डंडा लगाया गया और उसके चारों ओर छेद रक्खा गया जिससे भीतर की भड़क उठी चीज को पीछे निकलने का रास्ता मिल जाय। इनका इस्तेमाल अंग्रेजी फौजों में किया जाने लगा।

कांग्रेव ने १६ सेर और २१ सेर वजन के अग्निबाण तैयार किए। नैपोलियन से लड़ाई होने पर ये अग्निबाण जहाजों पर से छोड़े गए। फ्रांस में बोलोन बंदर पर पहले पहल १८०६ ई० में अंग्रेजी जहाजों ने २०० अग्निबाण से गोलाबारी थी। एक दूसरे बड़े शहर पर इसी तरह के २५ हजार अग्निबाड़ छोड़े गए जिससे वह बिल्कुल तहस-नहस हो गया। इस भारी कारनामें के बाद तो योरप के सभी देशों ने अपनी फौजों को अग्निबाणों से लैस करना शुरू कर दिया।

कांग्रेव द्वारा ईजाद अग्निबाणों का चलन जरूर देश

था जिसे चीनियों ने सबसे पहले संसार के सामने रक्खा ।

हम आज की आतिशबाजी में आकाशवाण या अग्निवाण उड़ाते हैं । आकाशवाण कागज की परतों को चिपका-चिपका कर बनाई नली होती है । उसमें बारूद भरी होती है जिससे वह ऊपर सनसना कर उड़ उठे लेकिन एक और विचित्र बात भी होती है । अंतिम सिरे पर खोखला भाग होता है जिसमें रंग रंग की चिनगारी पैदा करने वाला मसाला रक्खा रहता है । नीचे वाले भाग की शक्ल बुर्जनुमा सी होती है जिससे सारी बारूद तुरन्त जल उठे और आकाशबाण आकाश में तुरंत सनसनाता उठ सके । ऊपर जाते ही सिरे पर की रंगीन बारूद या दूसरी जल उठने वाली चीजें भी सुलग उठती हैं । इस कारण आसमान में कई रंग की चिनगारियाँ उठ पड़ती हैं । लोगों के लिए यह कितना अच्छा तमाशा हो जाता है । देखने वालों में यह जानने की कभी इच्छा नहीं होती कि आसमान में तारा सा उजाला पैदा करने वाली चिनगारियाँ किस तरह पैदा होती हैं । आतशबाजी का यह तमाशा चीनियों के ईजाद किए हुए अग्निबाण की ही नकल है ।

अग्निबाण या आकाशबाण सिर्फ खेल की ही चीज नहीं है । चीन वालों ने मंगोल फौजों से अपने एक किले की घेरेबंदी को बचाने में अग्निबाणों का इस्तेमाल किया ही था, भारत में भी लड़ाई में इस हथियार के इस्तेमाल

हैदरअली के अग्निबाण

का भारी नमूना देखने को मिलता है । जब मैसूर के राजा हैदरअली पर अँग्रेजी फौजों ने हमला किया था तो उसने अग्निबाणों की बौछार की थी । हैदरअली के पास १२०० सिपाहियों की ऐसी टुकड़ी थी कि उनमें से हर एक अग्निबाणों से लैस था । उनके इन अग्निबाणों की बौछार से अँग्रेजी फौज के छक्के छूट गए थे ।

हैदरअली के अग्निबाण तीन सेर से लेकर छ सेर वजन तक के थे । कागज की दफ्ती की जगह लोहे की नली होती जिसके अंदर बारूद रहती । उसके साथ एक दस फुट लंबा बाँस का डंडा-बँधा रहता । बड़ा और भारी होने के कारण ये अग्निबाण आधे मील तक मार कर सकते थे । चीनवालों या हैदर अली के अग्निबाणों का निशाना ठीक नहीं बैठ पाता था । फिर भी हैदरअली ने उनकी मार का जोर बढ़ाने के लिए एक साथ दर्जनों या सैकड़ों अग्निबाण छोड़ने की तरकीब की थी । १७८० ई० में इन अग्निबाणों की भारी बौछार से मैसुर में अंग्रेजी फौजें मैदान से भाग खड़ी हुई थीं ।

हैदरअली की देखा-देखी अंग्रेजों को भी अग्निबाण बनाने की सूझी । अंग्रेजी तोपखाने के विलियम कांग्रेव नाम के कर्नल ने अग्निबाणों के बारे में खोजबीन शुरू की । उसने हैदरअली के अग्निबाणों से काफी बड़े अग्निबाण तैयार किए जो डेढ़ मील तक उड़ सकते थे । उसने एक दूसरी भी तरकीब की । अग्निबाण के अगले सिरे में उसने ऐसी चीजें भरीं जो बमगोलों की तरह किसी वस्तु से टकराने पर उसमें आग लगा दें । इस तरह दुश्मन के किलों और शहरों पर अग्निबाण से गोलावारी हो सकती थी । अग्निबाण के पेंदे के बीच में डंडा लगाया गया और उसके चारों ओर छेद रक्खा गया जिससे भीतर की भड़क उठी चीज को पीछे निकलने का रास्ता मिल जाय । इनका इस्तेमाल अंग्रेजी फौजों में किया जाने लगा ।

कांग्रेव ने १६ सेर और २१ सेर वजन के अग्निबाण तैयार किए । नैपोलियन से लड़ाई होने पर ये अग्निबाण जहाजों पर से छोड़े गए । फ्रांस में बोलोन बंदर पर पहले पहल १८०६ ई० में अंग्रेजी जहाजों ने २०० अग्निबाण से गोलावारी थी । एक दूसरे बड़े शहर पर इसी तरह के २५ हजार अग्निबाड़ छोड़े गए जिससे वह बिल्कुल तहस-नहस हो गया । इस भारी कारनामें के बाद तो योरप के सभी देशों ने अपनी फौजों को अग्निबाणों से लैस करना शुरू कर दिया ।

कांग्रेव द्वारा ईजाद अग्निबाणों का चलन जरूर देश

देशों में फैलने लगी थी लेकिन इनका भी निशाना पहले बिल्कुल ठीक नहीं बैठता। ऐसा भी हो सकता था कि राकेट या अग्निनबाण जमीन से छूटकर तुरन्त कुछ दूरी पर नजदीक ही गिर कर आ फटे। कभी-कभी तो लौटकर चलाने वाले का सिर फोड़ देने के लिए ऊपर ही आ गिरता। इसके लिए कांग्रेव ने यह रास्ता निकाला था कि छोटे निशानों पर इनका इस्तेमाल न हो। बड़े निशानों, किलों या शहरों पर ही इन्हें छोड़ा जाय। इसीलिए ये भारी बनने लगे थे।

जिस अग्निबाण से अंग्रेजी फौज हैदरअली के सामने हार खा सकी थी, उसका ही सुधारा और बड़ा रूप उन्हें एक बड़ा कारगर हथियार जान पड़ा। नेपोलियन के हथियारों से अंग्रेजों के हथियार अग्निबाण की मदद से तेज साबित हुए। बोलोन बंदरगाह दो सौ अग्निबाणों से थोड़ा बहुत बर्बाद हो ही सका था। नेपोलियन के साथी देश, डेनमार्क का कोपेनहेगेन नगर पूरी तरह बर्बाद कर दिया गया था। डैंजिग का घेरा डालने में भी अंग्रेजों को कामयाबी मिली थी। समुद्र के अंदर जहाजों पर से अग्नि-बाणों की गोलाबारी होने से खाने का सारा भण्डार जलभुन गया था और नगर को हार मान लेनी पड़ी थी।

इतनी जीतों के बाद अंग्रेजी फौजों ने अपने इस अचूक हथियार अग्निबाण का इस्तेमाल अमेरिका की स्वतन्त्रता की लड़ाई में किया था। १८१४ ई० में बाल्टी-मोर पर इनकी मार जारी रखने पर भी अधिक कामयाबी न हो सकी। एक अमेरिकीय देशभक्त तो जहाज पर ही अंग्रेजों का क़ैदी बना पड़ा था और अग्निबाण छोड़ने का तमाशा देखता रहता। जब-जब अग्निबाण छूटने से आसमान में प्रकाश हो पड़ता, वह बाल्टीमोर पर अपने ही देश का अमेरिकीय राष्ट्रीय झंडा फहराता देखता। इस पर उसने एक अमर कविता लिखी है जो इस युद्ध में अंग्रेजों द्वारा अग्निबाण के हमले की हँसी उड़ाती है। आज भी अमेरिका के लोग अपनी राष्ट्रीयता के युद्ध की याद दिलाने वाली उस अमर कविता को गर्व के साथ पढ़ते हैं।

बाल्टीमोर में अग्निबाण की नाकामयाबी एक मामूली बात नहीं कही जा सकती। तोपों से उनकी मार जरूर तेज चाल की थी लेकिन खोज जारी रखने पर तोप के मुँह में चक्करदार खाँचों की तरकीब की गई जिन से गोलों की चाल तेज हो गई। बारूद की भी खोज होती रही। धड़ाका पैदा करने वाली तेज से तेज चीजें बनने लगीं। इस तरह ठीक निशाना लगाने वाले गोले तेज बनकर तोपों का युग लाए। उधर अग्निबाण का निशाना ठीक करने की तरकीब न निकल सकी। इस लिए कुछ समय के लिए वह पीछे हो गया।

निशाना बिल्कुल ठीक न बैठने पर भी अग्निबाण के कुछ विचित्र इस्तेमाल हो सकते थे। किनारे से कुछ दूर पर तूफान में कोई जहाज फँस गया हो और वहाँ तक पहुँचने की कोई तरकीब न हो तो एक राकेट या अग्निबाण मदद करता है। उसमें सिरे पर बारूद या जलने वाली भयानक वस्तु न रख कर रस्सी का बंडल रख देते हैं जिसका एक सिरा किनारे पर बँधा रक्खा हो। इस राकेट को छोड़ने पर जहाज के बीच कहीं गिरने दिया जा सकता है या उस पर से हो कर रस्सी आने तक कहीं जा पहुंचती है। उस रस्सी से फिर दूसरा कोई मजबूत रस्सा जहाज से किनारे तक पहुँचाया जा सकता है। उसकी मदद से जहाज पर के आदमी किनारे तक अपनी पहुंच कर सकते हैं।

तूफान के बीच फँसे जहाजों पर से आदमी बचाने के अलावे कहीं इशारों से कुछ संदेश भेजने में भी राकेट काम दे जाते हैं लेकिन ये सब बातें तो पुरानी पड़ गई हैं। अब तो इन अग्निबाणों ने नई खोजों से फिर ऐसा रूप बनाना प्रारम्भ किया है कि हम इनकी ही मदद से अपनी पृथ्वी से दूर चंद्रमा, मंगल शुक्र आदि ग्रहों तक पहुँचने की बात सोचने लगे हैं। इन खोजों की कहानी बड़ी ही मनोरंजक है जिन्हें सुनने की सब को इच्छा हो सकती है।*

—जगपति चतुर्वेदी

[*"राकेट या आकाशबाण"—आदर्श पुस्तक मंदिर, चौक, इलाहाबाद]

हमारी-खाद्य समस्या की रूप-रेखा

डा० अमर सिंह, रीडर, कृषि-वनस्पति विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

जीवन के सरस और सुगम प्रवाह के लिए अन्न आवश्यक है। इसी से विश्व में जन जन का पोषण होता है। समस्त सांसारिक वैभव को तिलांजलि देने वाले विरक्त तपस्वी भी इसे त्यागने में प्रायः असमर्थ रहे हैं। इसने अपनी दासता में समस्त जीवधारियों को यों जकड़ रखा है कि अनन्त काल तक भी मुक्ति असम्भव सी है। जीवन सचांलन की अद्भुत शक्ति और पोषण के अनुपम गुणों के कारण अन्न का गौरव सदियों से मान्य है। अपनी इस दिव्य विभूति के कारण मानवीय आवश्यकताओं में अन्न को प्राथमिकता पाना स्वाभाविक है। आज समस्त भारत का ध्यान अन्नोत्पादन की ओर केन्द्रित है जिससे निरंतर बढ़ती हुई जन-संख्या को भूख की जलती हुई ज्वाला से बचाया जा सके। भारतीय शासन के खाद्य तथा कृषिविभाग ने कृषि की उन्नति के लिए प्रथम योजना में २४३ करोड़ रुपए लगाये तथा द्वितीय में ३५० करोड़ रुपये अथवा सारे व्यय का ४४ प्रतिशत लगाने का निश्चय किया है।

विश्व की समस्त भूमि का क्षेत्रफल ३,५७० करोड़ एकड़ है जिसमें से केवल ११०० करोड़ एकड़ ही जलवायु के विचार से खेती के लिए उपयुक्त है। आज केवल ३००—४०० करोड़ एकड़ वा विश्व के ७—१० प्रतिशत स्थान में ही खेती होती है। के इसका ८५ प्रतिशत भाग में अन्नोत्पादन करते हैं। भारत की धरती का कुल क्षेत्रफल ८१ करोड़ एकड़ है जिसमें से प्रायः २६ करोड़ एकड़ में अन्न की खेती होती है। विश्व को भोजन उत्पन्न करने वाली धरती का क्षेत्र प्रतिव्यक्ति १½ एकड़ ही पड़ता है जब कि जलवायु के विचार से उपयुक्त क्षेत्र ३½ एकड़ होता है। क्या हम इसका उपयोग कर सकेगें? आज के वैज्ञानिक युग में यह असभंव तो नहीं है।

विश्व की जन-संख्या उन्नीसवीं सदी के आरम्भ से अब तक १६५ प्रतिशत बढ़ चुकी है। अनुमानतः लगभग ६०,००० व्यक्ति प्रति दिन इस धरती पर बढ़ते हैं। १६४६ में संसार की जन-संख्या २३० करोड़ थी। यह प्रतिवर्ष २ करोड़ बढ़ने की क्षमता रखती थी। यदि यह गति बनी रही तो अगले १०० वर्ष में ही विश्व की जन-संख्या तीन गुनी बढ़ जावेगी। भारत की जन-संख्या सन् १६०१—१६५१ के बीच में ५१.५ प्रतिशत बढ़ी जिसमें १६५६ पूरा होने तक लगभग ५५ प्रतिशत की वृद्धि तो अवश्य ही हो जावेगी। यदि जन-संख्या इसी तेजी से बढ़ती रही तो अगले ३५ वर्षों में यह दुगुनी हो कर रहेगी। वृद्धि गति के तीव्र होने की ही संभावना है क्योंकि जन्म की दर में तो कोई कमी न हुई पर मृत्यु दर में अवश्य कमी हुई। फलस्वरूप प्रति वर्ष प्रति हजार पीछे ४२ व्यक्तियों का जन्म तथा केवल २० की मृत्यु होती है, जिससे २२ व्यक्तियों की वृद्धि तो है ही—८,५००,००० प्रति वर्ष। सन् १६०१ से भारत की जन-संख्या में प्रति १० वर्ष में + १ करोड़ ३५ लाख,—६ लाख (संक्रामक रोगों के कारण), + २ करोड़ ७५ लाख, + ३ करोड़ ६३ लाख, + ४ करोड़ २० लाख का अन्तर होता रहा है। भारत में प्रति वर्ग मील में लगभग २८५ मनुष्य रहते हैं जबकि कैनाडा में ३.४, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ४८, चीन में १२३, पाकिस्तान में २००, आस्ट्रलिया में ४, तथा रूस में २३ ही हैं। खेती योग्य भूमि का अनुपात भारत में ०.६५ एकड़ प्रति व्यक्ति के लिए है जब अमेरिका में ६.५, बर्मा में १.१, इरान में २.६, इराक में ४.० एकड़ और कैनेडा में ३ एकड़ है। भारत की दशा खाद्यान्न के विषय में कुछ समय से शोचनीय रही है। खाद्यान्न योजना समिति के प्रकाशित विवरण (१६४७) के अनुसार यदि

शहरी और देहाती जनता को प्रति व्यक्ति प्रति दिन केवल ६ और ८ छटाँक ही अन्न दिया जावे तो भी अन्न की कमी पड़ती थी और केवल ६/७ जनता का ही पोषण संभव था। तबसे प्रति वर्ष जन-संख्या की बढ़ती के कारण १० लाख टन नाज की कमी और होती रही है। क्षेत्र के विस्तार, सिंचाई के साधनों में सुधार, खाद में वृद्धि इत्यादि से केवल १० प्रतिशत बढ़ने की सम्भावना है जबकि खाद्यान्न में कमी १३ प्रतिशत बनी रही। इस प्रकार अन्न का उत्पादन कठिनता से जन मात्र का ही पूर्णतया पोषण कर सकेगा। जानवरों को भी हमें इसी भूमि के देन से सुखी तथा बलिष्ठ रखना है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि हम अन्नोत्पादन संबंधी सभी पहलुओं को ध्यानपूर्वक समझें और उसमें सुधार करें।

यों भी कृषि का हमारे आर्थिक जीवन में विशेष महत्व है—यह हमारा आदि और मूल व्यवसाय है। लगभग तीन चौथाई जनता कृषि पर ही निर्भर है तथा राष्ट्र की पचास प्रतिशत आय कृषि से ही है। खाद्य समस्या को सुलझाने के अतिरिक्त खेती की उपज का एक बड़ा भाग विदेशों को निर्यात होता है जिसके बदले में वहाँ से बहुत सी उपयोगी वस्तुएँ आती हैं। अतः यह आवश्यक है कि भूमि और श्रम का उचित उपयोग किया जाय। उत्पादन में स्वतः पूर्ण होने के लिए हमें अनुमानतः ८५ लाख टन अन्न, १५ लाख टन दाल, १६ लाख टन गुड़, १२.६ लाख टन रूई की गाँठे, २१ लाख गाँठ जूट, ७ लाख टन चीनी और १४ लाख टन तेलहन की आवश्यकता है जिसका आयोजन हमें जल्दी करना है।

द्वितीय महायुद्ध व देश के विभाजन से हमें भारी क्षति पहुँची है। विभाजन से ८२ प्रतिशत जनता और केवल ७५ प्रतिशत अन्न (६५ प्रतिशत गेहूँ तथा ६८ प्रतिशत धान) की भूमि हमारे पास रह गई। सिंचाई की ३१ प्रतिशत भूमि भी हमसे छूट गई। फलतः भारत में सिंचाई की भूमि खेती योग्य भूमि का २४ प्रतिशत से घट कर १९ प्रतिशत ही रह गयी। खाद्यान्न की कमी की जटिल समस्या के विकट हो जाने से कृषि में सुधार तथा व्यवसाईक उन्नति करना अनिवार्य है। यदि इसमें सफलता न मिली तो इस महान गणतंत्र में रहन-सहन का स्तर गिरता ही रहेगा।

यद्यपि हमारे सामने नई समस्या हैं और उन सभी का समाधान करना है अन्न की समस्या के समाधान को पूर्ववर्तिता देना होगा। भूमि की प्रति एकड़ पैदावार को बढ़ाना ही सफलता का प्रथम चरण है। हमारा भोजन अपर्याप्त और असंतुलित है। अन्न के अलावा अन्य पौष्टिक पदार्थ जो जीवन के लिये आवश्यक हैं उनके उत्पादन में भी हमें विशेष ध्यान देना चाहिए। भारत में प्रति व्यक्ति केवल २½ छटांक दूध उपलब्ध है। जब कि स्वास्थ्य के विचार से कम से कम ५ छटांक होना चाहिए। अतएव दूध, मछली, मांस, अंडा इत्यादि के उचित उत्पादन, वितरण और व्यापार की ओर भी ध्यान रखना हितकर है।

यह नियत है कि खाद्यान्न के अलावा अन्य सभी वस्तुयें जो व्यापारिक दृष्टिकोण से लाभदायक हैं उनका भी उत्पादन बढ़ाना चाहिए। हमें नारियल, लाख, सुपारी मूंगफली, मिर्च, तरकारियाँ और फल सभी की उपज बढ़ानी है और कृषि के उपलब्ध क्षेत्र में इनको भी स्थान देना है। उत्पादन की वृद्धि में शुद्ध उन्नतिशील बीज पर्याप्त सिंचाई के साधन, भूमि सम्बन्धी सुधार, पौधों की बीमारी की रोकथाम, हानिकारक कीट, पंतगों से बचाव जीवांश तथा रसायनिक खाद का समुचित प्रबन्ध, कृषि क्षेत्र का उचित उपयोग, सहकारिक कृषि, भूमि का एकीकरण, अधिक उत्पादनशील जातियों का प्रयोग इत्यादि सभी सहायक तथा अनिवार्य हैं।

भारत सरकार ने यह प्रबन्ध किया है कि १९६०-६१ तक अनुमानतः ८.८ करोड़ एकड़ भूमि नहरों द्वारा सींची जा सकेगी जब कि इस समय केवल ६.७ करोड़ एकड़ भूमि में ही सिंचाई के साधन हैं। इसके अतिरिक्त १.२ करोड़ एकड़ भूमि की सिंचाई की व्यवस्था साधारणव पातालतोड़ कुवों और तालाबों द्वारा हो सकेगी। यदि हम इस कृषि-प्रधान देश को सम्पन्न देखना चाहते हैं तो प्रति एकड़ खेत के लिए कम से कम ४ मन नत्रजन की (एमोनियम सल्फेट) व इतनी ही फुस्फुस की खाद

(सुपरफास्फेट) का प्रबन्ध होना चाहिए। यह खाद खेत में प्रतिवर्ष शस्य की आवश्यकतानुसार हरी खाद वा गोबर-कूड़ा करकट की खाद के साथ पड़ना चाहिये। इसी तरह बीज बढ़ाने वाले क्षेत्र भी बहुत अधिक मात्रा में बढ़ाये जावें जिससे हर किसान को ये बीज आसानी से कम मूल्य में मिल सकें। काँस से दूषित भूमि का उद्धार कर अपने क्षेत्र को बढ़ाना है। भूमि की उर्वरता को बढ़ाना व स्थायी रखना हमारा प्रमुख ध्येय होना चाहिये जिससे भूमि की उत्पादन शक्ति बढ़ जावे। बंजर भूमि को भी उपजाऊ बना अन्न, वस्त्र के उत्पादन के काम में ले आना है। यदि यह अन्नोत्पादन के लिए ठीक न हो सके तो इनमें वृक्ष इत्यादि लगाए जावें।

जंगलों की उन्नति व उनका पूर्ण रूप से उपयोग में लाना भी एक महत्वपूर्ण पहलू है। जंगल हमारी लकड़ी की आवश्यकता को पूरा करने के अलावा वर्षा में सहायक हैं। जंगलों द्वारा भूमि की उत्पादन शक्ति के ह्रास में भारी कमी हो जाती है और भविष्य में कोयला भी इन्हीं से प्राप्त होता है। भूमि को अवनति की ओर अग्रसर करने वाले कारणों को दूर करना उन्नति का प्रथम चरण समझना चाहिये, अन्यथा किसी भी दिशा में हम कदम उठायें हमारा लक्ष्य अधूरा ही रह जावेगा। दूसरी पंचवर्षीय योजना ने इस विषय में जो ध्येय निर्धारित किया है उसके अनुसार यदि १९५०-५१ का आधार वर्ष माना जावे तो तुलनात्मक दृष्टि से १९५५-५६ में कृषि का उत्पादन ९५.६ से बढ़कर ११५, तथा १९६०-६१ में १३५ हो जावे। इतना होने पर प्रत्येक व्यक्ति के लिए २२५० केलारी शक्तियुक्त भोजन, २० गज कपड़ा, पर्याप्त रूई लकड़ी, जूट, इत्यादि मिल सकेगा और इसके उपरान्त विदेश भेजने के लिए भी सामान उपलब्ध हो सकेंगे।

प्रति एकड़ पैदावार

भारत की प्रति एकड़ पैदावार अन्य देशों की तुलना में कितनी कम है इसको जानने के लिए हमें आकड़ों की शरण लेनी पड़ेगी। नीचे दिये हुये आंकड़ों से यह भली भाँति ज्ञात होता है कि भारत इस विषय में अत्याधिक पीछे है :—

विभिन्न देशों का उत्पादन (१९४९)

(मन. प्रति एकड़)

देश	धान	गेहूँ	मक्का	गुड़	तम्बाकू	मूंगफली
भारत	१३.०	७.३	७.०	३८.१	८.६	९.६
पाकिस्तान	१५.६	१०.६	११.८	६१.१	१३.६	—
आस्ट्रेलिया	५२.७	१३.०	१८.४	२२५.९	११.४	९.०
चीन	२६.७	११.७	१४.५	९८.६	१२.५	२०.६
मिश्र	४१.६	२१.८	२२.२	१३०.१	—	१४.०
इटली	५०.७	१६.७	२३.२	—	१२.४	१८.८
जापान	४३.३	१९.३	१४.२	२६१.८	१९.०	१२.५
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२७.५	११.१	२७.२	४२०.१	१५.०	१०.०

यह स्पष्ट है कि भारत की प्रति एकड़ पैदावार अन्य देशों की अपेक्षा औसतन ३५, ४८,३७, २०, ६२ और ३४ प्रतिशत क्रमशः धान, गेहूँ, मक्का, खांड तम्बाकू तथा मूंगफली में कम है। सन् १९३४—३८ से ६३० लाख एकड़ तथा १९५०—५१ में ७५१ लाख एकड़ से क्रमशः ३४२ लाख टन व ३११ लाख टन धान भारत में पैदा हुआ जिसका तात्पर्य यह हुआ कि द्वितीय महायुद्ध के पहले की प्रति एकड़ पैदावार की दर से १९५१ में ११४ लाख टन की कमी हो गई। इसी भाँति अन्य शस्यों की भी प्रति एकड़ उपज में कमी हुई है। १९३६—

३७ में गेहूँ, जव, ज्वार, बाजरा, मक्का व चना की पैदावार क्रमशः ८, १०, ५.६, ४.७, ८.४ व ७.१ मन थी। वह घट कर १९४५–४६ में क्रमशः ६.८, ८.८, ४.२, ३.३ ७.६ व ६० मन, १९५१–५२ में ६.६, ७.४, ३.१, २.६, ६.६ व ५.० मन रह गई। क्या यही भावी प्रचुरता की सुख प्रद सूचना है ?

समस्त खाद्यान्नों की उपज का अनुपात यदि कृषि क्षेत्र से लगाया जाय तो ऐसा मालूम होता है कि प्रति टन पैदावार के लिये १९३६—३७ में ३.६, १९४७–४८ में ४.०, १९४९—५० में ४.३ १९५०—५१ में ४.६, १९५५–५६ में ४.७ एकड़ पड़ता है। नीचे दिये आँकड़ों से भी यही मालूम होता है कि दिन प्रति दिन उतने ही अन्न के उत्पादन के लिए अधिक भूमि का उपयोग हुआ है।

कृषि-भूमि का विस्तार व उत्पादन

(केवल अन्न के लिये)

वर्ष	क्षेत्र (लाख एकड़)		उत्पादन लाख टन	
	वास्तविक	अन्तर	वास्तविक	अन्तर
१९३६—३७ } १९३८—३९ }	१६७१		४६२	
		+५१		—२५
१९४७—४८	१७२२		४३७	
		+ १४६		—४
१९४८—४९	१८६८		४३३	
		+८७		+२७
१९४९—५०	१९५५		४६०	
		—२४		—४३
१९५०—५१	१९३१		४१७	

क्षेत्र में वृद्धि होने पर भी उत्पादन में भारी कमी होती रही है—यदि सदा नहीं तो प्रायः। निकट भविष्य में इस घटती हुई पैदावार को रोकना ही पड़ेगा अन्यथा जन मात्र का पोषण होना कठिन हो जायेगा। यह नहीं कि भारत के सुखहाल कृषि प्रदेशों में कुछ हाल अच्छा हो उदारहण के लिए उत्तर प्रदेश को ही लीजिए यहाँ भी पिछले ९ वर्षों (१९४६—१९५५) में धान की उपज प्रति एकड़ बदलती रही है (९.८८, ८.९१, १०.००, ८.७५, ७.९१, ६.५७, ७.९८, ९.६६, ९.६६, ९.१८ मन प्रति एकड़)। केवल सन् ४८ को छोड़कर सदा उपज में कमी होती रही है।

जहाँ तक 'केलारी' शक्ति का सम्बन्ध है भारत में युद्ध से पहले प्रति व्यक्ति के लिये १९७० उपलब्ध थी वह घट कर १९४९—५० में १६२० और १९५०—५१ से १५७० ही रह गई। यह हमारी गिरती हुई पैदावार और बढ़ती हुई जन-संख्या का स्पष्ट फल है। इन्हीं वर्षों में उपलब्ध कैलारी शक्ति कैनाडा में ३०७०, ३१४०, ३२४० अर्जन्टाइन में २७३०, ३१७०, ३१४०, बर्तानिया में ३१२०, ३०८०, ३१०० और तुर्कीस्तान में २५६०, २६७०, २७१० है।

भारत भूमि को अन्य देशों की तुलना से अधिक भरण पोषण करना है। यदि समस्त भूमि और व्यक्ति का अनुपात देखा जाय तो अमेरिका में १९० एकड़ भूमि पर १५ व्यक्ति, युरोप में १२१ पर ३९, रूस में ५९ पर १९ तथा भारत में केवल ८१ पर ४० व्यक्तियों का जीवन निर्भर है। हमारी पंचवर्षीय योजना की पत्रिका में अन्न की कमी दूर होने के पक्ष में यह दलील दीगई है कि सन् १९५४ में केवल ८ लाख टन नाज का आयात हुआ जब कि

१९५१ में ४७ लाख टन हुआ था। यह दलील कुछ जँचती नहीं। अभी हाल में ही भारत और अमेरिका के बीच में जो समझौता हुआ है उसके अनुसार भारत में केवल अमेरिका से ३५ लाख टन गेहूँ व २ लाख टन चावल का आयात होगा। पूर्वकथित दलील को सत्य मानें तो भी हमें खाद्यान्न संकट का बोध तो हो ही जाता है। यह खेद के साथ कहना पड़ता है कि भारत की प्रति एकड़ उपज के हीन होते रहने को सत्य मान कर उसे दूर करने का उपाय न कर अधिकतर लोग आँकड़ों की शरण ले जनता को भुलावे में रख संतुष्ट रहते हैं।

अन्नोत्पादन का रहस्य और उसके साधनों की स्थिति

अन्न का उत्पादन भूमि की उत्पादन शक्ति पर तथा उसमें उगाई जाने वाली शस्य की दैहिक क्रिया-कलाओं का प्रतिफल मात्र है। इसमें जलवायु तथा वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। किन-किन दशाओं में कौन-कौन से कारक, किन संयोजनो में, फसलों के विकास और उनके उत्पादन में अधिकतम प्रभावशाली होते हैं इनकी खोज और उसी के अनुसार श्रेष्ठतम वातावरण का निर्माण ही अन्नोत्पादन को बढ़ाने का एकमात्र रहस्य है। पौधों की जैविक क्रिया को समझने के पश्चात् ही हमें इस रहस्य का बोध हो सकता है। अनुमानतः प्रकृति की इस रसायनिक निर्माणशाला में केवल २ प्रतिशत सूर्य की रश्मियों की शक्ति के उपयोग से २०,००० करोड़ पोषक पदार्थों का निर्माण होता है। यदि हम विज्ञान की मदद से सूर्य रश्मियों की शक्ति के उपयोग की क्षमता पौधों में बढ़ा सके तो उत्पादन बढ़ सकता है। पौधों में सूर्य-रश्मियों की शक्ति के उपयोग कर सकने की क्षमता ३० प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है—ऐसा अनुमान है। अतः पौधों की कार्यक्षमता को बढ़ा अधिक से अधिक खाद्य पदार्थों का निर्माण की ओर ध्यान देना खाद्य समस्या के सुलझाने का सरल एवं वैज्ञानिक साधन है पर यह उसी अवस्था में सफलीभूत हो सकता है जब कि उर्वराशक्ति क्षीण न हो तथा उसमें भी अधिक उत्पादन की क्षमता इसी अनुपात से बढ़ाई और स्थिर रखी जाय।

देश की खाद्यान्न समस्या को सुलझाने के हेतु पिछले वर्षों में हमारा ध्यान कृषि-क्षेत्र को बढ़ाने में केन्द्रित रहा है फलस्वरूप इसमें विस्तार भी हुआ और हमारा खाद्य-संकट कुछ कम होता प्रतीत हुआ है। परन्तु भूमि की उत्पादन शक्ति के निरंतर कम होते रहने से तथा सिंचाई के पर्याप्त साधन न होने से इस देश की प्रति एकड़ पैदावार १९४२—१९५२ के बीच प्रति वर्ष गिरती रही है। कृषि योग्य भूमि के सीमित रहने से यह सम्भव नहीं कि इसमें निरंतर विस्तार हो सके। प्रकृति ने हमें केवल ३५ करोड़ एकड़ भूमि कृषियोग्य प्रदान की है जिसमें से लगभग ३० करोड़ एकड़ भूमि पर खेती हो ही रही है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाई जा सकती है? भूमि की उत्पादन शक्ति को क्षीण होने से बचाने के लिये खाद, पानी इत्यादि की सुविधा होनी चाहिए। देश के भिन्न-भिन्न भागों में किये गये प्रयोगों और प्रदर्शनों से यह सिद्ध हो गया है कि भूमि के उर्वरता की कमी ही प्रति एकड़ पैदावार के हीन होने का विशेष कारण है। पर्याप्त और संतुलित खाद देकर फसल-प्रतियोगताओं में पुरस्कृत होने वाले विजेताओं ने धान में १४६ मन (मद्रास) गेहूँ में ५६ मन (उत्तर प्रदेश) व आलू में ७२६ मन (उत्तर प्रदेश) पैदा कर दिखा दिया है कि भारत भूमि भी यहाँ की जनता का समुचित पोषण कर सकती यदि हम शस्य की जीवन क्रियाओं का रहस्य समझ कर उनको खाद्य के निर्माण में मदद करें। उन्नतशील कृषि द्वारा अविराम (intensive) कृषि से हमारी वर्तमान खाद्य समस्या का हल ही नहीं वरन् भावी सन्तानों को भी पर्याप्त व संतुलित भोजन का प्रबंध हो सकता है। आवश्यता केवल इस बात की है कि भारतीय कृषक अपने पुरातन गौरव को ध्यान में रखते हुए अपने उत्तरदायित्व को समझ कर और दृढ़ता के साथ इस कार्य में आगे बढ़ें। वैज्ञानिक ढंग से खेती करें और देश को समृद्धिशाली बनावें। प्रति एकड़ पैदावार का बढ़ाना ही हमारी सफलता की कसौटी है। भारतीय कृषक जबतक इस समस्या को हल न कर सकेगा वह दीन हीन बन विश्व से सहायता की याचना करने के लिये बाध्य रहेगा।

बाल विज्ञान

ऋतु सम्बन्धी विविध बातें

(गताङ्क से आगे)

डा० सत्य प्रकाश, डी० एस-सी०

हमारे वायु मण्डल के दो खण्ड

हमारी इस पृथ्वी के चारों ओर वायुमंडल है। मानों यह कम्बल है जो पृथ्वी की गरमी को इसमें बने रहने देता है, और शीत से इसे बचाता है। यह वायुमंडल पृथ्वी के अपनी धूरी पर नाचने के साथ ही परिभ्रमण करता है। अगर वायुमंडल न होता तो न तो उषा का सौन्दर्य होता और न गोधूली बेला का। हमारे यहाँ सूर्योदय और सूर्यास्त दोनों ही शनैः शनैः होते हैं, पर चन्द्रमा में जहाँ वायुमंडल नहीं है, क्षण भर में सूर्यास्त और अकस्मात् ही सूर्योदय हो जाता है।

यह कहना कठिन है कि पृथ्वी के ऊपर कितने मील तक वायुमंडल है। वायुमंडल शनैः शनैः ऊपर की ओर हल्का पड़ता जाता है। पृथ्वी के ध्रुवों से ५ मील की ऊँचाई पर और विषुवत् रेखा से १० मील की ऊँचाई पर एक और मंडल है जिसे स्तर मंडल या स्ट्रेटोस्फीयर (Stratosphere) कहते हैं। यह भी वायुमंडल का ही एक खंड है जो २५ मील तक चला गया है। इसे वायुमंडल का ऊपरी खंड कहते हैं। नीचे वाला वायुमंडल अधो खंड कहलाता है। वायुमंडल के इस उपरिखंड या स्तरमंडल की खोज पहले बार एक अन्तरिक्ष-वेत्ता टीसेरेंक डि बोर्ट (Teisserenc de Bort) ने १८६७ में की थी। उसने अन्तरिक्ष में आत्मलेखक यंत्रों से सम्पन्न गुब्बारे भेजे। इन यन्त्रों से पता चला कि वायुमंडल के इस खंड में सर्वत्र लगभग—५५° श० तापक्रम है। स्तरमंडल को इसलिए समताप मंडल भीं कहते हैं। वायुमंडल के हमारे अधोखंड में ज्यों-ज्यों हम ऊपर चढ़ते हैं, तापक्रम कम होता जाता है। पर २५ मील गहराई के स्तरमंडल में सर्वत्र तापक्रम—५५ अं० श० के लगभग हैं।

गुब्बारों और वायुयानों से वायुमंडल के इस उपरिखंड का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो सका है। सन् १८६२ में ग्लैशर (Glaisher) और कौक्सवेल (Coxwell) नामक दो व्यक्ति ३७,००० फुट अर्थात् लगभग ७ मील ऊपर गये। ऊपर हवा इतनी कम थी कि ग्लैशर तो २६००० पर फीट ही मूर्च्छित हो गया। १६०१ में डा० बरसन (Berson) और सुरिंग ३४५०० फुट ऊँचे और १६३१ में प्रो० पिकर्ड (Piccard) और डा० किपफर (Kipfr) ऐल्यूमीनियम के बने गोंडोला (Gondola) में ५१७७५ फुट ऊँचे उठे, ये अपने साथ साँस लेने के लिए द्रव आक्सीजन ले गये थे। इस से भी अधिक ऊँचे रूसी सेनापति कमांडर प्रोकोफीव (Prokofiev) १६३३ में पहुँचे ६२३२० फुट। तीन कामरेड बाद को १६३४ में ७२१७८फुट ऊँचे गये पर तीनों का वहाँ तक पहुँचने पर देहान्त हो गया। सन् १६३५ में संयुक्त राज्य अमरीका के गुब्बारे एक्सप्लोरर—II (Explorer II) में कैप्टन स्टीवेन्स और एण्डरसन (Stevens and Anderson) ७२३६५ फुट अर्थात् १३०७ मील ऊपर गये। हवाई जहाजों में अधिक से अधिक आज तक ५६०१६ फुट ऊँचा जाया जा सकता है। अक्टूबर १६३८ में कर्नल पेजी (Pezgi) नामक इटालियन इतने ऊँचे पहुँचा।

खाली गुब्बारे जिनमें कोई बैठा न था २५ मील ऊँचाई तक गये हैं।

स्तरमंडल के ऊपर की वायुमंडल और है। पृथ्वी से ७० मील ऊँचाई पर हेविसाइड-केनेली स्तर (Heaviside Kennelly) हैं, और २४० मील पर एप्लटन (Appleton) स्तर है। यहाँ पर गैसें प्राथमिक अवस्था में हैं और ये रेडियों की तरंगों को प्रतिबिम्बित करती हैं। रेडियो तरंगें पृथ्वी से चल कर एप्लटन स्तर तक चलती हैं और वहाँ से प्रतिबिम्बित होकर फिर पृथ्वी पर लौट आती हैं। आप रेडियो के सन्देश इसलिए मंगल आदि ग्रहों में नहीं भेज सकते।

हमारे अधोखण्ड के वायुमंडल में जो वायु है वह ७८% नाइट्रोजन, २०% आक्सीजन, १% आर्गन, ·०३% कार्बन द्वि आक्साइड, कुछ पानी की भाप आदि का मिश्रण है।

नाइट्रोजन ८० मील ऊपर तक पाया गया है, ऑक्सीजन ६८ मील ऊँचाई तक, कार्बन द्वि ऑक्साइड १२ मील तक और पानी की भाप ७—८ मील तक ही है।

अन्तरिक्ष मान विभाग

(Mateorological Department)

ऋतुचर्य्या आदि की सूचनाओं के लिए हमारे देश में एक अन्तरिक्ष मान विभाग है जिसका मुख्य कार्यालय पूना में है। इस विभाग का कार्य्य इस प्रकार है—

(क) बंदरगाहों और समुद्र तट पर स्थित नगरों को साइक्लोन और तूफानों की सूचना देते रहना।

(ख) तूफानों की सूचना बेतार के तार से हिंद महासागर में आते जाते जहाजों को देना, और उन जहाजों से ऋतु संबंधी आंकड़े इकट्ठा करना।

(ग) जनता के हित के लिए प्रतिदिन तापक्रम, वर्षा, ऋतु आदि के विवरण देना, और ऋतु संबंधी भविष्यवाणी करना।

(घ) हवाई जहाजों का ऋतु का ठीक ठीक परिचय देना।

(ङ) घड़ियों का शुद्ध शुद्ध नियंत्रण करना और रायल इंडियन नेवी के क्रोनोमीटरों की त्रुटियों को बताते रहना।

भारत में ऋतुमान के लिए अनेक स्टेशन कार्यालय हैं जहाँ ऋतुओं का यंत्रों द्वारा पता लगाया जाता है। इनमे मुख्य ये हैं—दार्जिलिंग, शिलांग, शिमला, बम्बई, मद्रास, प्रयाग, कलकत्ता, कानपुर, लखनऊ, कटक, नई दिल्ली, पटना, देहरादून, नागपुर आदि।

ऋतुमान के यंत्र

हर एक हवाई घर में निम्न यंत्र होते हैं—

१. ताप मापक—यह जानना आवश्यक होता है कि २४ घंटे में अधिक से अधिक तापक्रम कितना रहा और न्यून से न्यून कितना। ये दोनों तापक्रम (अधिकतम maximun, न्यूनतम—minimum) एक ही थर्मामीटर से पता लग जाते हैं। इस काम के लिए एक विशेष "maximun and minimum thermometer" होता है।

२. वर्षामापक यंत्र—२४ घंटे में कितनी वर्षा हुई, इसे नापने के लिए रेन गेज या वर्षा मापक यंत्र होता है। यह छत पर खुला रक्खा होता है जिससे वर्षा का पानी सीधे इसमें गिरे। ऐसा प्रबन्ध होता है कि इधर-उधर का पानी छिटक कर इसमें न जाय। पात्र में पेंदे से कितने इंच ऊँचाई तक पानी इकठा हुआ, यह नाप लेते हैं। इसी नाप के आधार पर कहते हैं कि पानी आज २ इंच बरसा, या १½ इंच बरसा, इत्यादि।

हवा की दिशा—हवा घर की छत पर एक ऐसा हत्था लगा यंत्र होता है जो हवा की दिशा के आधार पर घूमता रहता है। इससे पता चलता है कि हवा उत्तर-पश्चिम (N—W) चल रही है, दक्षिण-पूर्व (S—E) चल रही ही आदि।

आर्द्रता मापक यंत्र—आर्द्रता (humidity) नापने के कई प्रकार के यंत्र होते हैं। इन यंत्रों से पता चलता है कि हवा में कितना पानी है (कितनी नमी है), अगर कोई कहे कि आज आर्द्रता ७५ प्रतिशत है, इसका अर्थ यह है कि आज के तापक्रम पर हवा में अधिक से अधिक (संतृप्त होने तक) जितना पानी रह सकता था,

उसका ७५ प्रतिशत पानी ही है। अगर आर्द्रता ६५ प्रतिशत है तो ऐसी हवा में धोती नहीं सूखेगी, पसीना नहीं सूखेगा पर यदि आर्द्रता १०—२० % है, तो पसीना निकलते ही सूख जायगा, गीले कपड़े भी जल्दी सूखेंगे, आर्द्रता नापने के यंत्रों को आर्द्रतामापक या हाइग्रोमीटर (hygrometer) कहते हैं।

जाड़े के दिनों में तापक्रम कम होता है, अतः हवा में कम पानी होने पर भी आर्द्रता अधिक होती है। आर्द्रता नापते समय तापक्रम अवश्य बताना चाहिए।

भूकम्प लेखक सीस्मोग्राफ (Seismograph) प्रमुख हवा घरों में एक विशेष यंत्र होता है जिससे पता चलता है कि किस समय कितने जोर का भूकम्प आया, कई हवा घरों के इन यंत्रों के ब्यौरे को मिलाकर पता लगाया जा सकता है, कि इस भूकम्प का केन्द्र कहाँ था। इस यंत्र में एक कागज पर अपने आप भूकम्प का हाल अंकित हो जाता है।

बैरोग्राफ या बैरोमीटर—प्रत्येक स्थान का तापक्रम ही नहीं, बल्कि हवा का दाब (pressure) भी थोड़ा बहुत घटता बढ़ता रहता है। इसे नापने के लिए जो यंत्र होता है, उसे बैरोमीटर कहते हैं। यह एक गज के लगभग की नली होती है, जिसमें पारा होता है। पारा कितनी ऊँचाई पर ठहरा है, यह बात इंचों या सैंटीमीटरों में नापी जाती है। दाब ७४ सैंटीमीटर, ७५ सैंटीमीटर इत्यादि इस प्रकार लिखा जाता है।

बैरोमीटर के अंक आपको स्वयं पढ़ने पढ़ेंगे। बैरोग्राफ ऐसा यंत्र है, जो प्रत्येक क्षण हवा के दाब को एक पैंसिल से कागज पर खींचता जाता है। इससे आपको पता चल सकता है कि किस समय दाब घटा, या बढ़ा। दाब घटने बढ़ने का एक वक्र (Curve) खिंच जाता है।

विविध प्रकार के भेद

अन्तरिक्षमान विभाग यह भी सूचना देता है कि आकाश स्वच्छ है, कि इसमें बादल है। अगर बादल है, तो कितने ऊपर है, और यह पानी बरसाने वाले हैं या वे बरसाने वाले। मेघ या बादल कई प्रकार के होते हैं—

(क) कुंतल मेघ (cirrus)—ये घुंघराले होते हैं, और सबसे अधिक ऊँचाई पर होते हैं। इनका घनत्व न्यूनतम होता है। ये बहुत लंबे फैले होते हैं। सूर्योदय के पूर्व और सूर्यास्त के बाद ये अधिक लम्बे प्रकाशमान होते हैं। इनकी तुलना घोड़ी या बिल्ली की पूंछ और घुंघराले बालों से की जाती है। यह इतनी ऊँचाई पर होते हैं, कि इनकी भाप ठंडी होकर हिमकण बन जाती है, ये हिमकण रंगबिरंगे प्रकाशीय चित्र प्रदर्शित करते हैं।

(ख) कुंज मेघ (Cumulus)—ये मेघ रूई की फुटकों के समान एक के ऊपर सधे से प्रतीत होते हैं। ये ४००० से ६००० फुट ऊँचाई पर होते हैं। सूर्योदय के बाद कुछ थोड़ी सी फुटकें निर्मल आकाश में प्रकट होंगी, और ये ही आपस में मिलकर लम्बे बादल बन जायेंगी तीसरे पहर तक आकाश इनसे छा जायगा। सूर्यास्त तक ये विलुप्त हो जायेंगे।

(ग) स्तरित मेघ (Stratus)—ये निकटतम मेघ हैं। ४००० फुट से ऊपर नहीं उठते। ग्रीष्म और शरद् में बहुत दिखायी देते हैं। सूर्यास्त से सूर्योदय तक अधिक रहते हैं। मध्यरात्रि के बाद में इनका घनत्व अधिकतम होता है।। सूर्योदय पर ये या तो ऊपर चढ़कर कुञ्जमेघ बनजाते हैं, या बिल्कुल लुप्त हो जाते हैं।

(घ) वर्षुक मेघ (Nimbus)—जिन काले बादलों से पानी बरस रहा हो या बर्फ गिर रही हो उन्हें वर्षुक मेघ कहते हैं। इन्हें कुन्तलकुञ्ज—स्तरित मेघ (अर्थात् तीनों का सम्मिश्रण) भी समझा जा सकता है। इनमें ही बिजली कड़कती है। बहुधा वर्षा के पूर्व कुञ्जमेघ प्रकट होते हैं। ये धीरे-धीरे घने होकर कुञ्ज-स्तरित मेघ बन जाते हैं, फिर ये वर्षुक बन जाते हैं।

(ङ) कुन्तल-कुञ्ज मेघ (Cirro-cumulus) ये कुन्तल मेघों के घनीभूत होने से बनते हैं। ये गोल-गोल सफेद छोटे-छोटे मेघ से मालूम होते हैं। इन मेघों में जब चन्द्र या सूर्य्य आजाता है, तो उसके चारो ओर किरीट मंडल (Corona) बन जाता है।

(च) कुन्तल-स्तरित मेघ (Cirro Stratus)—ये लंबे पतले अनुप्रस्थ (Horizontal) मेघ होते हैं,

इनके प्रकट होने पर या तो हवा चलती है, या बाद को पानी बरसता है। ये पतले पर विस्तृत (फैले हुये) होते हैं, इसलिए चन्द्रमा और सूर्य्य इनमें परिवेश (Halo) प्राप्त करता है।

(छ) कुञ्ज-स्तरित मेघ (Cumulo-stratus)—कुन्तल स्तरित मेघ जब ढेरियों में इकट्ठे हो जाते हैं, तो इनका नाम कुन्ज स्तरित हो जाता है। ये जब आकाश में फैल जाते हैं तो वर्षकमेघ बन कर बरसने लगते हैं।

बादलों के रंग

हम पहले कह चुके हैं कि बादलों को हवायें छितरी हुई पानी की छोटी-छोटी बूँद समझा जा सकता है। कुछ बादलों में हिमकण भी होते हैं। अगर तुम पानी की बूँद को तेल के कागज पर रखकर इधर-उधर आँख घुमा कर देखो तो इसके भीतर तुम को कई रंग दिखायी-देंगे। ये रंग वैसे ही हैं जैसे झाड़ फानूस में होते हैं। सफेद रोशनी जब प्रिज्म (त्रिपार्श्व) या गोल बूँद में होकर बाहर निकलती है तो वह अपने सात रंगों में विभाजित हो जाती है—कासनी, बैंगनी, नील, हरा, पीला नारंगी, और लाल। सूर्य की किरणें जब बदलों में स्थित पानी की इन बूँदों पर पड़ती हैं, तो बादल भिन्न-भिन्न रंगों से चित्रित हो जाते हैं। प्रातः काल सूर्योदय के समय और सायंकाल सूर्यास्त पर मेघ में इतने सुन्दर रंग आते हैं, कि दृश्य बड़ा सुहावना लगता है। लगभग वर्षा के बाद आपको आकाश में एक साथ दो इन्द्रधनुष भी दिखायी देंगे। एक इन्द्रधनुष चटक रंग का होता है, और दूसरा उससे कुछ दूरी पर हल्के रंगों का।

ऋतु तालिकायें और भविष्यद्वाणी (Forecasts)

अंतरिक्षमान विभाग के कर्मचारी जनता को ऋतुओं की भविष्यवाणी भी किया करते हैं। बहुत से पशु-पक्षी ऐसे होते हैं, जिन्हें स्वाभाविक रूप से पता चल जाता है, कि अब आंधी आने वाली है, या तूफान आने वाला है, अथवा वर्षा होने वाली है। ये तूफान की सूचना पाते ही घोंसलों की ओर दौड़ने लगते हैं, और विचित्र तरह से चहचहाते हैं। अंतरिक्षमान विभाग के कर्मचारी विभिन्न स्टेशनों से बराबर ऋतु संबंधी आंकड़े प्राप्त करते हैं। कई वर्षों के पिछले आंकड़े भी इनके पास होते हैं। इनके आधार पर यह घोषणा करते रहते हैं कि किस प्रान्त में अब वर्षा होने की संभावना है, कहाँ पर ऋतु सूखी होगी, कहाँ तूफान आवेगा इत्यादि।

प्रत्येक दिन का तापक्रम न्यूनतम और अधिकतम हवा का दाब, आर्द्रता, हवा की दिशा, और वर्षा का मान, इन सब के आंकड़ों की तालिकायें हवाई घरों में तैयार की जाती हैं। ग्राफ पेपर (खाने दार कागजों पर) इन आकड़ों के वक्र (Curve) भी खींचे जाते हैं। इनके लेखे कार्यालय में बराबर रक्खे जाते हैं।

भू-अन्तराल

श्री एस० एम० वीजावत एम० ए०

भू-अन्तराल के बारे में हमारा ज्ञान अभी अपूर्ण है और प्रत्यक्ष निरीक्षणों की असंभावना के कारण हम उसके आन्तरिक स्वरूप का निश्चय नहीं कर सकते हैं। फिर हमारा इस विषयक जो भी ज्ञान है वह सिर्फ भौमिक असंतुलन (Diastorphism), पर्वत विमर्शणत्व, भूकप व ज्वालामुखी से सम्बन्धित परोक्ष निरीक्षण पर ही आधारित है। परन्तु भू-अन्तराल की इन गतिविधियों के भी विभिन्न कारण है और इनका वस्तुस्वरूप अभी तक सुनिश्चिततया समझा नहीं जा पाया है यद्यपि ये गतिविधियाँ अन्तराल की बाहरी अभिव्यक्ति हैं फिर भी ठोस प्रमाणों की न्यूनता व अभावों में केवल इन्हीं पर आधारित हमारा भू-अन्तराल का ज्ञान काल्पनिक मात्र ही होगा।

हम इतना जानते हैं कि पृथ्वी तल की ऊपरी सतह परतदार चट्टानों से आवेष्टित है जिसे (Lithosphere) की संज्ञा दी गई है। इस तह के नीचे की चट्टानों का रूप अधिक परिवर्तित व रवेदार है। अधः भाग की चट्टानें भी किन्हीं स्थानों पर ऊपर के परतदार आवरण के क्षय के कारण स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणतः कैनेडियन शील्ड, अंगार भू भाग, मध्य व दक्षिणी अफ्रीका का एक बहुत बड़ा भाग इसी प्रकार की चट्टानों से निर्मित हैं। इन रवेदार चट्टानों का औसत घनत्व २.५ है अर्थात् समान आयतन के पानी से इनका वजन ढाई गुना अधिक है। परन्तु पृथ्वी का पूर्ण रूप से घनत्व ५.५ है। यह साधारण बात हमें इस दिशा में ले जाती है कि ऊपरी सतह की अपेक्षा अन्तराल का घनत्व अधिक है। कोई कोई विचारक इसे समाधान करते हुए कहते हैं कि अन्तराल की चट्टानें अधिक भिड़ी हुई होने से (Compact nature) वहाँ दबाव की अधिकता हो जाती है और उसी कारण उसका घनत्व अधिक अंका जाता है वास्तव में वे इतनी घनी नहीं हैं। यद्यपि यह सत्य है कि दबाव बढ़ने से घनत्व बढ़ जाता है, परन्तु घनत्व की इस प्रकार की वृद्धि एक निश्चित सीमा तक ही होती है, उसके उपरांत दबाव वृद्धि का घनत्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, अतः केवल दबाव के कारण अन्तराल की चट्टानों का आघनत्व ५.५ से ऊँचा हो जाय, यह ठीक नहीं प्रतीत होता है। इससे निष्कर्ष निकला है कि अन्तराल की चट्टाने कुछ न कुछ मात्रा में सदैव भारी अर्थात् ऊपरी सतह से अधिक घनत्व वाली हैं।

भू-अन्तराल की चट्टानों की क्या दशा है? वे ठोस, द्रवीभूत, गैसीय या इन अवस्थाओं में से किन्हीं दो या तीन के मिश्रणरूप में है? ज्वालामुखियों से उद्गरित लावा (Lava) उष्ण सोतों व अन्तरगत तापक्रम वृद्धि-माप से माना जाता था कि अन्तराल की ये चट्टानें द्रवीभूत अवस्था में होनी चाहिये, परन्तु आज यह मान्यता पुरानी है व नवीन तर्कों के कारण त्याग दी गई है। अन्तरंगगत-ताप-वृद्धि (Thermal gradient) का उदाहरण कोयले की खदानों में देखा जा सकता है, जितना ही हम नीचे जायेंगे, तापक्रम बढ़ता जायगा परन्तु इस वृद्धि का परिमाण भिन्न भिन्न गहराइयों पर अलग अलग है। अंतरंग की उष्णता के अतिरिक्त रासायनिक प्रक्रिया, शाक्तिक परिवर्तन (Mechanical Changes) किरण प्रसरण (Radio Activity) आदि भी इसके कारण हैं। औसतन यह ताप वृद्धि प्रति २३ फुटों की गहराई पर १ फीट है परन्तु कहीं कहीं बीस पर ही और कहीं २५० फीटों पर जाकर १अं० फ० गर्मी की वृद्धि होती है। इस बात पर और (Nebular hypothesis) के आधार पर यह माना गया था कि उष्णता की इतनी

वृद्धि के कारण अन्तराल की कोई भी चट्टान ठोस नहीं हो सकती है, और २० मील नीचे जाने पर निश्चित ही चट्टाने द्रवीभूत अवस्था में ही होंगी। परन्तु बाद में यह पता चला कि दबाव के साथ साथ द्रवणांक भी बढ़ जाता है अतः यदि अन्तराल में तापक्रम अधिक है, तो वहाँ दबाव भी अधिक है और इस कारण उन चट्टानों का द्रवीभूत रूप नहीं हो सकता है। किन्तु इतना निश्चित है कि अन्तराल की चट्टानें इस रूप में हैं कि पृथ्वी की बाह्य सतह अन्तराल से ठीक उसी प्रकार अलग है जिस प्रकार द्रवित-लौह पर तैरने वाली पपड़ी। यह भी निर्विवाद सत्य है कि पृथ्वी कभी द्रव रूप में थी। निम्नोक्त कारणों से आज उसके द्रवित अन्तराल में विद्वानों की असहमति है :—

१—यदि पृथ्वी का अन्तराल धीरे-धीरे ठंडे होने वाले द्रव के रूप में है तो पहले द्रवित रूप अधिक होना चाहिए था अर्थात् उन भू-कम्प के भौमिक युगों में लावे का उद्गार व विस्फोटन अधिकतम होना चाहिये था और तदनुसार वह कम से कम होते हुए रूप में पाया जाना चाहिये। परन्तु वर्तमान प्रमाण बतलाते हैं कि अधिकतम लावे का उद्गम व ज्वालामुखी के विस्फोट का युग वर्तमान भौमिक युग से कुछ ही पहले बीता है। अर्थात् उन युगों में पृथ्वी का अन्तराल द्रवित रूप में न था।

२—यदि भू-अन्तराल द्रव रूप में है तो उसमें भी दो बार प्रतिदिन ज्वार-भाटा रूप परिणमन होना चाहिए जो कि नितान्त असत्य है।

३—आवर्तन व अनुगमन के (Precession and Nutations) खगोलिक सिद्धान्त की सत्यता के के अनुसार भी भू अन्तराल ठोस व काँच के समान होना चाहिये।

४—साइस्मोग्राफ द्वारा पठित भूकंपन की लहरें भी इसी बात को पुष्ट करती हैं कि वे ठोस अन्तराल में से होकर ही आरही हैं जैसा कि आगे और भी विवेचन किया गया है।

५—सामान्य शंका कि एक ठोस भाग किस प्रकार से द्रव भाग पर परिणमनशील हो सका है।

इन आधारों पर से अन्तराल की दशा ठोस रूप मय द्रवित अवस्था में होनी चाहिये। आगे यह भी बतलाया गया है कि भूपटल का बाह्य ठोस भाग अम्लीय (Acidic) ग्रेनाइट (Granite) चट्टानों से व भस्मीय (Basic) बैसाल्ट (Basalt) चट्टानों द्वारा निर्मित है। अम्लीय चट्टानें रसायनिक तत्वों की दृष्टि से रंग व भार में हल्की होती है जबकि भस्मीय चट्टानें घनीं व भारी होती हैं।

च्युत भूखण्ड (Meteorists) ज्ञाताओं ने यह निष्कर्ष निकाला है कि नभपटल के इन भूखण्डों में चुम्बकीय तत्व जैसे लोहे और निकल पाये जाते हैं ये दोनों तत्व घने भारी व चुम्बकीय गुण बतलाते हैं। ये दो ही पृथ्वी की भी विशेषता हैं। इसी ज्ञान पर आधारित होकर प्रसिद्ध आस्ट्रियन भूवेत्ता (Geologists) सुएस Suess ने पृथ्वी के बाह्य पटल (परतदार चट्टानों से आवेष्ठित भाग) को छोड़कर भू अन्तराल को सिआल, सीमा और नीफ नामक तीन भागों में विभाजित किया है।

उपरोक्त वर्गीकरण अधिकांशतः मान्य है व भूकंपन शास्त्र द्वारा भी इसकी पुष्टि की जाती है। तत्काल ही प्रतीत होता है कि यदि इस प्रकार से भू अन्तराल को ठोस मान लिया जाय तो लावा का उद्गमन कैसे होता है? इसके समाधान में बताया जाता है कि जिस प्रकार दबाव के कारण ठोस बर्फ बहता है उसी प्रकार दबाव के कारण लोहा या चट्टानें भी बिना पिघले हुए भी एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर बह सकती हैं। और न इसके लिए अधिक अंश तापमान की ही आवश्यकता है। या संभवतया दबाव कम होने पर उस भाग की चट्टानें द्रवित हो जाती होंगी जो कि लावे के रूप में बाह्य सतह पर बहती हैं। निम्न प्रमाण भी इस कथन को सत्य सिद्ध करते हैं :—

(१) अन्तराल की अनावरित चट्टानें जिन पर से परतदार चट्टानों का क्षरण हो गया हो वे बतलाती हैं कि वे बिना द्रवित हुए ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर बही थीं।

(२) (Grvity anomali) केन्द्राकर्षण अशुद्धि भी बतलाती है कि बाह्यस्तह पर दबाव व बोझ की न्यूनाधिकता से संतुलन (Isostacy) के परिणमन रूप ठोस चट्टानें भी बहती हैं।

उपरोक्त तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि पृथ्वी यद्यपि ठोस गोले की तरह से परिणमनशील है फिर भी इसका अन्तराल तरल चट्टानों की तरह से क्रियाशील है।

भूकंप विज्ञान (Seismology) भी भू अन्तराल के बारे में बहुत कुछ बतलाता है अतः उसका विवेचन भी यहाँ आवश्यक हो जाता है। भूकंपन केन्द्र (Seismic focus) कुछ इञ्चों के घेरे वाला ऐसा सतह होता है जहाँ कंपन होता है और वहीं से कंपन तरंग प्रारंभ होती हैं जो कि अन्तराल से होती हुई ठंडी बाह्य सतह तक पहुँचती हैं। अतः इन तरंगों का अध्ययन भी हमें भू अन्तराल के दिग्दर्शन में पर्याप्त सहायक होगा। जब ये लहरें एकही-सी पूर्णतया सदृश चट्टानों में से होकर आती हैं तो उनके मार्ग व गति में किंचित परिवर्तन नहीं होता, परन्तु जब इनके आने का माध्यम अर्थात् बीच की चट्टानों में किंचित् भी भिन्नता आती है तो प्रकाश तरंगों की भाँति इनकी गति व मार्ग में अन्तर पड़ जाता है। साधारणतः भू-कंपन तरंगे इस प्रकार की होती हैं :— P, S, और L प, स एवं ल तरंगें।

L ल सतह तरंग की गति सीधी होती है। साथ ही स और प वक्र अवनतोन्मुख होती हैं। इससे पता चलता है कि भूअन्तराल में ये तरंगें अपने मार्ग में मुड़ती हैं और इनकी गति में भी परिवर्तन होता है। इससे पता चलता है कि अन्तराल घनी चट्टानों का बना है।

जर्मन वैज्ञानिकों ने इस भूअंतराल को ४ भागों में में बांटा है।

(१) सिआल (Sial) भाग ३७ ½ मी० (६० कि० मी०) आ० घनत्व :—२.७५ से २.६

(२) अन्तःसिलेकट परत (अंशतः सीमा Sima) ७५० मी० (१२०० कि० मी०) घ० ३.१—४.७२

(३) पेलेसाइट भाग (Palesite zone) धातु आक्साइड व सल्फाइड मिश्रण भाग १८०० मी० (२६०० कि० मी० तक घ० ४.७५–५ तक)

(४) केन्द्रीय भाग (Nife केन्द्रतक। घनत्व ११.

इस विज्ञान की अन्य तथ्यगत खोजों से पता चला है कि भूकम्पन की ये तरंगें क्रमशः वृद्धिगत गति के रूप में निम्नवर्गों की होती है, PS., PS., Pg. Sg ये तीन वर्ग भी अंतराल की विविधता की ओर इंगित करते है। ये इस प्रकार हैः—

(१) ऊपरी तह — + ७½ मी०, × ३७½ मी०
(२) मध्य तह— + १५ ”
(३) निम्न तह— + ७५० ”
+ (जेफरी) की गणनानुसार
× जर्मन व जापानी वैज्ञानिकों के अनुसार।

डटन द्वारा प्रतिपादित भौमिक संतुलन (Isostacy) की वजह से होनेवाला उर्ध्वरेता व अधःरेता (Elevation & Depression) परिवर्तन भी अन्तराल के बारे में हमें बहुत कुछ बतलाते हैं। इसी सिद्धान्त के परिमार्जन कर्त्ता राजकीय खगोलवेत्ता बरार्ड के अनुसार १०० कि. मी. नीचे एक तरल और गाढ़े पदार्थ का भाग है जिसमें उपरी चट्टानें तैरा करती है (Viscous magma) यह रूप सतह (Level of Compensation) कहलाती हैं। इसकी वजह से तैरने वाली चट्टानें बड़ी २ इकाइयों के रूप में संतुलन प्राप्त करती है। इस से पता चलता है कि समुद्र के तटों की चट्टाने घने अधिक भारी बेसाल्ट (Basalt or sima) की बनी हुई हैं और ऊपर की महाद्वीपों की चट्टाने हल्की, कम घनत्व वाली (Sial) होकर उस (Magma) में तैरा करती हैं।

अर हेनिस के सिद्धान्तानुसार अंतराल आंशिक रूप से गैसीय अवस्था में है। दबाव की अधिकता से यह गैसीय, व द्रवित भाग और ऊपर का ठोस भाग सब एक ठोस गोले की तरह परिणमनशील होते हैं।

पृथ्वी की आभ्यन्तार उष्णता के बारे में भी यहाँ कुछ विचार करना युक्तिसंगत होगा। हम जानते हैं कि पृथ्वी के अन्तरंग में उष्णता की क्रमानुगत वृद्धि के परिणाम प्रति ६३ फु० की गहराई पर १° फ० है। मेटियोरिटीक सिद्धांत और नेलबुर सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी के अन्तराल में सर्वत्र सामान्यतया उष्णता पाई जाती है जब कि (SpiralNebula) सिद्धांतानुसार अन्तराल की उष्णता भीतरी दबाव के कारण उत्पन्न होती हैं।

संकोचन सिद्धान्त वाले मानते हैं कि भीतरी उष्णता ऊपरी ठोस व ठंडे तह से आच्छादित है और

भीतर की उष्णता संचालन क्रिया के द्वारा अनंत में विकीर्ण होती रहती है और इस प्रकार भीतरी भाग ठंडा होकर सिकुड़ता जा रहा है। उपरी सतह में इतना संकोच नहीं होने से अन्तराल के ठंडे होने वाले भागों का ऊपरी भाग ठीक रूप से आवेष्टित नहीं हो पाता और ठंडा होने के कारण इस पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। ये ही झुर्रियाँ पर्वतों के निर्माण और भूभाग के अधःगमन का कारण हैं। परन्तु यह धारणा निम्न कारणों से आज असंगत मानी गई है:—

(१) यदि यह माना जाय कि संकोचन के कारण पर्वतों का निर्माण होता है तो उन शक्तियों से बनने वाले पहाड़ इतने ऊँचे नहीं हो सकते जितने ऊँचे पाये जाते हैं।

(२) इस धारणा के अनुसार निम्न का भी ठीक प्रकार से समाधान नहीं होता है :—

(अ) पर्वतों का एक ही विशेष पट्टी में बनना और समय समय पर ऐसी पट्टियों का पर्वत रहित हो जाना।

(आ) निकट भूत की अपेक्षा वर्तमान में ज्वालामुखी के उद्गारों में कमी।

(इ) उर्ध्वरेता व अधोरेता की क्रियाओं का लम्बी अवधि तक बंद रहना व मैदान का बनते जाना।

फिर भी इस सिद्धान्त को हम पूर्ण रूप से गलत भी नहीं मान सकते हैं क्योंकि आखिर हमारी पृथ्वी आग के गोले सूर्य का ही भाग तो है, जैसे कि अन्य ग्रह। अंतर इतना ही है कि यह ठण्डी होकर इस अवस्था को पहुंची है। चद्र इससे कहीं ठण्डा होकर हिमांक की स्थिति पर पहुँच गया है। गुरु इसकी अपेक्षा उष्ण है।

पृथ्वी की उत्पत्ति के अन्य सिद्धान्त आभ्यन्तर उष्णता का कारण स्थानीय विशेषतायें बतलाते हैं। खास करके रसायनिक परिवर्तन जैसे किरण प्रसरण (Radio activity) यह एक ऐसी रसायनिक प्रक्रिया है जिससे उष्णता उत्पन्न होती है। पृथ्वी के अन्तराल में ऐसे तत्व हैं जो अपनी निम्नश्रेणियों में विघटित होते रहते हैं। यह विघटन ही किरण-प्रसरण (Radio activity) है। यूरेनियम के जो कि किरण-प्रसरणिक का तत्व है विघटन के पूर्व आणविक भार २३८ होता है। विघटन के पश्चात् इसका रसायनिक भार २०६ रह जाता है, सीसे (Lead) के रूप में परिणत हो जाता है। विघटन से समय यह अल्फा किरणों व हिलियम गैस के अंशों को छोड़ता है। इसी से कुछ सीसे का अनुमान लगाकर यह आंका जा सकता है कि कितने वर्षों में युरेनियम का इतना सीसा बना होगा। इस प्रकार पृथ्वी की उम्र व उसकी रसायनिक बनावट का पता लगाया जा सकता है।

इस किरण-प्रसरण के बारे में भी विद्वानों में मतभेद है। जेफरी के मतानुसार यह किरण-प्रसरण की क्रिया बाहरी सतह पर अधिकतम व नीचे-नीचे कम होती जा रही है। यहाँ तक कि अधिक नीचे जाने पर यह क्रिया नगण्य हो जाती है। दूसरी ओर होम्स (Holms) का कथन है कि यह किरण-प्रसारण (Radio Activity) ऊपर और भीतर समान रूप से पाया जाता है। जेफरी ने यह निष्कर्ष इस पर से निकाला है कि जब पृथ्वी तरल हुई थी तो उस तरल द्रव में संवाहनिक धारायें प्रवाहित हुईं। इसी सिद्धान्तानुसार एक दिन ऐसा आवेगा जबकि उष्णता के बाहरी निष्कसन के कारण अन्तराल इतना अधिक ठंडा हो जायगा कि सतह के जरा नीचे तापक्रम लगभग द्रवणांक पर पहुंच जावेगा और इस कारण Lithosphere के नीचे की चट्टानें ठोस होंगी परन्तु उनमें इतनी शक्ति या कठोरता नहीं होगी। ऐसी चट्टानें जब कभी दबेंगी तो वे बहेंगी। यह कमजोर भाग Asthenosphere (अस्थेनोस्फीयर) के नाम से पुकारा जाता है। यह केवल इसी अवस्था में हो सकता है जबकि यह किरण-प्रसरण की क्रिया अधः भाग में न्यूनतर होती जावे।

होम्स के मतानुसार यह अधो भाग (Substratum) ऊष्णता रखने में पर्याप्त सूक्ष्म होगा। इस कारण से भू-अन्तराल तरल होना चाहिये। यह मत संवाहनिक धाराओं पर वेगनर की महाद्वीप के प्रसरण (Continental Drift) मान्यता को भी पुष्ट करना है।

उपरोक्त विवेचनों से यह निर्णय निकलता है कि भू-अन्तराल गाढे तरल पदार्थ (Viscous magma) का निर्मित है जो कि ठोस सतह से परिणमनशील है।

विज्ञान समाचार

कपड़ा-उद्योग में रेडियम-सक्रिय आइसोटोप

सोवियत संघ के औद्योगिक कारखानों में रेडियो-सक्रिय आइसोटोप व्यापक रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। उदाहरण के रूप में अब तक यह काम काफी कठिन समझा जाता था कि सूती धागे की मोटाई शुरू से लेकर अन्त तक बराबर एक जैसी हो। यह मालूम ही है कि कपड़े की किस्म इस पर निर्भर करती है। मास्को के पास, ग्लूखोव में लैनिन सूती मिल के इंजीनियरों ने इस समस्या को बड़ी दक्षता से सुलझाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने विशेष प्रकार के ठीक करनेवाले यंत्र का सुझाव दिया है जिसमें रेडियो सक्रिय तत्व विद्यमान होंगे। इस यंत्र के द्वारा मशीन में दिये जाने वाले सूत की मोटाई निर्धारित कर ली जाती है, फिर धागा बनाने वाले यंत्र में जितना सूत डाला जाता है, उसके अनुसार यह यंत्र अपने-आप तेज और धीमा होता जाता है।

रेयन के कपड़े का उत्पादन करने के लिए भी रेडियो-सक्रिय आइसोटोप प्रयोग में लाये जाते हैं। इन रेशों की कुछ किस्में ऐसी होती हैं, जिनका आसानी से विद्युतीकरण किया जा सकता है और वे धूल के कणों को आकर्षित करते हैं। इससे उसमें गांठें पड़ जाती हैं, धागा टूटने लगता है और अनेक सूत के रेशे बेकाम हो जाते हैं। रासायनिक इंजीनियरिंग के मास्को वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान में एक ऐसा तरीका खोज निकाला गया है, जिसकी सहायता से रेडियो-सक्रिय प्रकाश द्वारा रेशों से अवांछनीय विद्युत को दूर किया जा सकता है। संस्थान की ओर से जो विधियां सुझायी गयी है, उन्हें कपड़ा मिलों ने स्वीकार कर लिया है।

रेडियो-सक्रिय तत्वों का प्रयोग कपड़ा उद्योग के लिए ऊँची किस्म के रंगों को बनाने में भी किया जाता है। उनके द्वारा रेशों की गन्दगी को साफ किया जाता है और उसका प्रयोग ऐसे क्षेत्रों में भी किया जाता है, जहां पुरानी विधियों से कोई परिणाम नहीं निकलता।

कृषि में रेडियो-सक्रिय तत्व

सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी की जीव-भौतिक विज्ञान संस्था ने कृषि में रेडियो-सक्रिय तत्वों का प्रयोग करने के सिलसिले में दिलचस्प छानबीन की है। इस संस्था ने दूसरी वैज्ञानिक संस्थाओं के साथ मिल कर कुछ प्रयोग किये हैं। गाजर के बीजों को बोने से पहले गामा-रश्मियों द्वारा उन्हें दीप्यमान किया गया। इसके परिणाम-स्वरूप फसलों में १५-२० प्रतिशत वृद्धि हुई है। किन्तु उससे अधिक महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि गाजर के गूदे में, जिससे विटामिन ए पदार्थ बनता है, लगभग एक तिहाई वृद्धि हुई। स्पष्ट है, कि इसी ढंग से कृषि की दूसरी फसलों में भी वृद्धि की जा सकती है।

रेडियो-सक्रिय तत्वों का प्रयोग उन पदार्थों का अध्ययन करने में भी किया गया, जिनके आधार पर पौधों की जड़ें पनपती हैं।

रेडियो-सक्रिय तत्वों का प्रयोग कृषि को नष्ट करने वाले संक्रामक रोगों, विशेषकर, खलिहान में पैदा होने वाले विषैले गोबरैलों के विरुद्ध किया गया है, जिससे बहुत लाभदायक परिणाम निकले हैं। एक विशेष यंत्र भी स्थापित किया है, जिसकी सहायता से ऐसे अनाज में गामा रश्मियों की चमक फेंकी जा सके, जो इस घातक—कीड़े के सम्पर्क से दूषित हो गया है। इस उपाय द्वारा अनाज के गुण में कोई परिवर्तन लाये बिना खलिहान के इस घातक कीड़े को नष्ट कर दिया जाता है।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—श्री रामदास गौड़ और प्रो० सालिगराम भार्गव ।=)

२—चुम्बक—प्रो० सालिगराम भार्गव ।।=)

३—मनोरञ्जन रसायन—प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव २)

४—सूर्य सिद्धान्त—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव छः भाग मूल्य ८) । इस पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

५—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी १)

६—समीकरण मीमांसा—पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)

७—निर्णायक डिटर्मिनैंटस—प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री ।।।)

८—बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)

९—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशंकर पचौली; ।=)

१०—व्यङ्ग-चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; २)

११—मिट्टी के बरतन—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; (अप्राप्य)

१२—वायुमंडल डाक्टर के० बी० माथुर, २)

१३—लकड़ी पर पालिश डा० गोरखप्रसाद और श्री रामरतन भटनागर, एम० ए०, २) (अप्राप्य)

१४—कलम पेवंद ले० श्री शंकरराव जोशी; २)

१५—जिल्दसाजी—श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० २)

१६—तैरना—डा० गोरखप्रसाद १)

१७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—(अप्राप्य)

१८—वायुमण्डल का सूक्ष्म हवाएं—डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० ।।)

१९—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकारनाथ परती; मूल्य ।।।)

२०—फोटोग्राफी—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन) ४),

२१—फल संरक्षण—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह २।।)

२२—शिशु पालन—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई । मूल्य ४)

२३—मधु मक्खी पालन—दयाराम जुगड़ान; ३)

२४—घरेलू डाक्टर—डाक्टर जी० घोष डा० उमाशङ्कर प्रसाद, डा० गोरखप्रसाद, ४)

२५—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, ३।।)

२६—फसल के शत्रु—श्री शङ्कर राव जोशी ३।।)

२७—साँपों की दुनिया—श्री रमेश वेदी ४)

२८—पोर्सलीन उद्योग—प्रो० हीरेन्द्र नाथ बोस ।।।)

२९—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ—२)

३०—गर्भस्थ शिशु की कहानी—प्रो० नरेन्द्र २।।)

अन्य पुस्तकें

१—विज्ञान जगत की झाँकी (डा० परिहार) २)

२—खोज के पथ पर (शुकदेव दुबे) ।।)

३—विज्ञान के महारथी (जगपति चतुर्वेदी) २)

४—पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ (,,) १।।)

५—हमारे गाय बैल (,,) ।।)

६—मवेशियों के खून के रोग (,,) ।।)

७—मवेशियों के साधारण रोग (,,) ।।)

८—मवेशियों के कृमि-रोग (,,) ।।)

९—फसल-रक्षा की दवाएँ (,,) ।।)

१०—देशी खाद (,,) ।।)

११—वैज्ञानिक खाद (,,) ।।)

१२—मवेशियों के विविध रोग (,,) ।।)

पता—विज्ञान परिषद् (म्योर सेन्ट्रल कालेज भवन) प्रयाग

Reg. No. A 372

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools;
Colleges and Libraries

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तक उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक - डा० देवेन्द्र शर्मा
सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

मुद्रक—श्री सरयू प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग तथा प्रकाशक—डा० रामदास तिवारी प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद, इलाहाबाद।